जातक

[षष्ठ खण्ड]

जातक

[षष्ठ खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

दो शब्द

अनेक अप्रत्याशित विघ्न-बाधाओ के बावजूद 'जातक' का यह छठा और अतिम खड भी प्रकाशित हो ही सका है। इन सभी खण्डो के अनुवाद-कार्य, पाण्डु-लिपि तैयार करने और प्रूफ देखने आदि मे जितने सुहृद-मित्रो का सहयोग मिला उन सभी को हार्दिक धन्यवाद।

सुयोग की बात है कि जिस वर्ष 'जातक' अनुवाद-कार्य और उसका प्रकाशन एक प्रकार मे ममाप्त हो रहा है वही वर्ष सम्यक्-सबुद्ध तथागत के परिनिर्वाण का पच्चीमवा शतक है। देश-विदेश की जनता तथा सरकारे जिम उत्माह के साथ इस वर्ष की वैशाख-पूर्णिमा के पुण्यपर्व को मनाने जा रही है उसी उत्साह की समवेत धारा को लेखक की यह जातक-रूपिणी जलाजलि भी समर्पित है।

अनुवादक और मुद्रक की भौगोलिक दूरी के कारण जहाँ-तहाँ कुछ अन्यथा मुद्रण भी हो ही गया है, जिसे विज्ञजन सुधार ही लेगे।

'जातक' अनुवाद का यह कार्य विना उसकी एक विस्तृत अनुक्रमणिका के अधूरा ही समझा जायगा। 'जातक' के पाठक शीघ्र ही उसे भी देख सकेगे।

इस अवसर पर मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्राण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, सम्मेलन के पिछले अनेक वर्षो के साहित्य-मत्रियो, सहायक-मत्री आदि के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना विशेष कर्तव्य समझता हूँ, जिनके सतत सहयोग के बिना यह कार्य कभी पूरा हो ही नही सकता था।

'जातक' के सभी खण्डो को मुद्रित करने वाले प्रेसो, विशेषकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन मुद्रणालय का भी मैं कम आभारी नही हूँ।

धर्मोदय विहार
कालिम्पोङ्ग
वैशाख पूर्णिमा
बुद्धवर्ष २५००

--आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

५३८ मूगपक्ख जातक १ से ३४

[काशीराजा को सन्तान लाभ का सुख नही था। उसकी पटरानी चन्द्रादेवी ने सत्य-क्रिया की। तेमिय कुमार का जन्म। बडे होने पर उसकी राज्य-भार से मुक्त होने की इच्छा। देवी ने उसे लूला न होते हुए भी लूले की तरह, बहरा न होते हुए भी बहरे की तरह और गूँगा न होते हुए भी गूँगे की तरह बरतने की सलाह दी। तेमिय-कुमार ने ऐसा ही किया। उसकी तरह-तरह से परीक्षा ली गई। वह हर परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ। तब राजाज्ञा से कच्चे-श्मशान मे गडवा डालने की व्यवस्था की गई। सारथी जगल मे पहुच कर जब गढा खोदकर उसे गाडने की तैय्यारी करने लगा तो बोधिसत्व ने उसे ऐसा करने से रोका और मैत्री-धर्म का उपदेश दिया। सारथी ने उसे वापिस लौटा ले चलने का बहुत प्रयास किया। बोधिसत्व ने एक न सुनी। प्रव्रजित होने का आग्रह किया। तब सारथी ने भी बोधिसत्व के साथ अनु-प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाही। बोधिसत्व ने उसे 'उऋण' होकर आने के लिये कहा। सारथी ने लौटकर बोधिसत्व के माता-पिता को सूचना दी। वे सभी जगल मे बोधिसत्व के पास पहुचे। बोधिसत्व ने उन्हे वैराग्य-प्रधान उपदेश दिया। राजा सहित सभी बोधिसत्व के पास प्रव्रजित हुए।]

५३९ महाजनक जातक ३४ से ७७

[मिथिला-नरेश महाजनक के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ राजा बना। कनिष्ठ उपराजा। एक नौकर ने ज्येष्ठ का मन

कनिष्ठ के प्रति खराब कर दिया। ज्येष्ठ ने कनिप्ठ को बन्धनागार मे डलवा दिया। कनिष्ठ की सत्य-क्रिया के प्रनाप से जजीरे टूट गईं और बन्धनागार के दरवाजे खुल गये। वह जाकर प्रत्यन्त-जनपद मे रहने लगा।

वाद मे वह अपने बहुत से अनुयाइयो को लेकर आया और भाई को कहला भेजा—"या तो राज्य दो या युद्ध करो।"

राजा युद्ध मे मारा गया। गर्भिणी देवी को शक्र ने चम्पा-नगर पहुचाया। दिशा-प्रसिद्ध आचार्य ने उसे 'बहन' बना घर मे रखा। देवी ने 'महाजनक' को जन्म दिया जो विधवा-पुत्र कहलाने लगा।

वडे होने पर उसने 'माँ' के धन मे से आधा धन लिया और अधिक कमाने के लिये नौका पर चढ स्वर्ण-भूमि गया। रास्ते मे नौका टूट गई। महाजनक तैरने लगा। सप्ताह भर तैरता रहा। मणि-मेखला देवी ने उसकी परीक्षा ली और उसे अत्यन्त वीर्य्यवान पा अपने वल से 'मिथिला नगर' पहुचा दिया।

पोलजनक को कोई पुत्र नही था। उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न सामने आया। बोधिसत्व राजा बना।

आगे चलकर महाजनक के मन मे वैराग्य पैदा हो गया। वह सोचने लगा। वह समय कब आयेगा—"जब मैं मिथिला-नगरी को छोड हिमालय मे प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण करूगा।"

वह चुपके से प्रव्रजित-वेष मे राजमहल से निकल पडा। उसे रोकने के सब प्रयास विफल हुए।

महाजनक वैराग्य की मूर्ति था।]

५४० साम जातक ७८ से १०८

[सेठ-पुत्र प्रव्रजित हो गया। उसके माता-पिता दरिद्र हो गये। वह 'भिक्षु' रहता हुआ भी माता-पिता की सेवा करने लगा।

पिलीयक्ख नरेश ने माता-पिता के लिये पानी भरने आये

'साम' को तीर से वीध दिया। माता-पिता की सत्य-क्रियाओ ने 'साम' को विपमुक्त किया।]

५४१ निमिजातक १०९ से १४७

[दानाभिरत निमि राजा के मन में सन्देह पैदा हो गया कि दान और ब्रह्मचर्य्य मे किसका फल अधिक है? शक्र ने समाधान किया।

देवताओ ने निमि-नरेश के दर्शन की इच्छा प्रकट की। शक्र ने मातलि को भज राजा को मगवाया। मातलि राजा को पहले उस मार्ग से ले गया जो पापियो के जाने का मार्ग है और नाना प्रकार के नरक दिखाये, बाद मे उस मार्ग मे ले गया जो पुण्य कर्मियो के जाने का मार्ग है और नाना प्रकार के स्वर्ग दिखाये।

शक्र की आज्ञा से मातलि ने निमि-राजा को वापिस मिथिला नगरी पहुचाया।]

५४२ खण्डहाल जातक १४८ से १९१

[घूस खोर खण्डहाल ब्राह्मण अपने 'न्यायाधीश' के पद मे हटा दिये जाने के कारण चन्द्रकुमार का बैरी बन गया। खण्डहाल ने राजा को 'यज्ञ' करने के लिये कहा जो प्रधान रूप से चन्द्रकुमार की हत्या कराने का ही एक आयोजन था। राजा कभी हत्या से विरत होता था और कभी खण्डहाल के उत्साहित करने पर पुन प्रवृत्त होता था। भयानक अन्त-र्द्वन्द्व था।

अन्त में शक्र ने राजा को भय-भीत कर सभी को मुक्त कराया।]

५४३ भूरिदत्त जातक १९१ से २५५

[राजा ने पुत्र से सशकित हो उसे जगल भेज दिया। जगल मे उसने एक नाग-कन्या को पत्नि-रूप में स्वीकार किया। पिता के मरने पर अमात्य-गण उसे अपने राज्य मे लौटा लाये। नाग-कन्या ने साथ आना अस्वीकार किया। राज-पुत्र नाग-कुमार को साथ लिये चला आया। वहाँ एक कछुवे

ने नाग-कुल और राज-कुल मे भेद पैदा कर नागो द्वारा राज-कुल को नष्ट कराना चाहा। राज-कुल को मजबूर होकर नाग-नरेश धृतराष्ट्र को राज्य-कन्या सौपनी पडी।

राज-कन्या ने नाग-भवन मे रहते समय चार पुत्रो को जन्म दिया। उनमे से एक भूरि-दत्त ने देव-कुल मे जन्म ग्रहण करने की इच्छा से उपोसथ-व्रत करना आरम्भ किया। एक ब्राह्मण द्वारा उपोसथ-व्रत के पालन मे बाधा उपस्थित होने की सभावना देख वह पुत्र सहित उस ब्राह्मण को भी नाग-भवन ले गया। कुछ समय नाग-भावन रह पिता-पुत्र फिर मनुष्य-लोक लौट आये। ब्राह्मण पहले की तरह ही मृगया द्वारा जीविका चलाने लगा।

एक दूसरे ब्राह्मण को भूरिदत्त की सेविकाओ से मणि प्राप्त हो गई थी। इस ब्राह्मण ने उससे वह मणि ठगने का प्रयास किया। अन्य उपाय न देख उसने भूरि-दत्त के साथ मित्र-द्रोह करके उस ब्राह्मण से वह मणि प्राप्त की। आल-म्बायन का भूरि-दत्त को पकडना। सुदर्शन का उसे मुक्त कराना। यज्ञ-वेद तथा ब्राह्मणो की मिथ्या-प्रशसा तथा इस मिथ्या-दृष्टि का जोरदार खण्डन।]

५४४ महानारद कस्यप जातक २५७ से २९२

[विदेह-नरेश ने अमात्यो से परामर्श किया कि चातुर्मासिक कुमुदिनी का उत्सव किस प्रकार मनाया जाय। तै हुआ कि अर्थ-धर्म के जानकार श्रमण-ब्राह्मणो की सगति की जाय। राजा सर्वप्रथम आजीवक के पास गया। काश्यप आजीवक की बाते सुन राजा एक दम योग-वादी बन गया।

उसकी रुजा नाम की कन्या उससे मिलने गई तो राजा ने उसकी दान-शीलता का उपहास किया। रुजा राज-कन्या ने राजा को नाना प्रकार से धर्मोपदेश दिया।

उस समय बोधिसत्व नारद नामक महाब्रह्मा थे। उन्होने प्रव्रजित वेष मे आकर राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त किया।]

५४५ विधुर जातक — २९३ से ३६९

[कुरु राष्ट्र मे इन्द्रप्रस्थ नगर मे धनञ्जय नामक कोरव्य राजा राज करता था। उसका विधुर-पण्डित नाम का मेधावी धर्म अर्थ-धर्मानुशासक था। उसने शक्र, गरुड, नागराज तथा धनञ्जय-राज की शकाओ का समाधान किया।

नागराज की विमला नामक भार्य्या ने विधुर-पण्डित का उपदेश सुनना चाहा। पुण्णक यक्ष ने विधुर-पण्डित को नाग-भवन ले जाने का प्रयास किया। अन्य उपाय न देख उसने कोरव्य-नरेश को जुए मे जीत लिया।

नाग-भवन जाने से पहले विधुर-पण्डित ने नाना प्रकार के नीति के उपदेश दिये।

नाग-भवन मे विधुर-पण्डित के उपदेश।]

५४६ महाउम्मग्ग जातक — ३६९ से ५१६

[मिथिला के विदेह नाम के राजा के चार अर्थ धर्मानुशासक अमात्य थे—सेनक, पुक्कुस, काविन्द तथा देविन्द।

उधर यवमज्झक गाव मे श्री वर्धन नामक सेठ की सुमना नामक देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो महोपध-पण्डित कहलाया।

राजा को उसकी वुद्धि के चमत्कारो की बात सुनने को मिलती थी, तो वह महोषध-पण्डित को अपने राज-दरबार मे बुलाना चाहता था। चारो पण्डित ईर्पा के वशीभूत हो चिर काल तक इसमे बाधक बने रहे।

उन्होने राजा से कह कर तरह तरह से 'महोषध-पण्डित' की परीक्षा लिवाई। अन्त मे राजा ने महोषध-पण्डित को अपने यहा वुलवाया। बोधिसत्व के प्रज्ञा-बल के कारण राजा उसके प्रति उत्तरोत्तर निष्ठावान होता गया।

राजा के अमात्यो ने महोषध-पण्डित से लक्ष्मी-पति श्रेष्ठ है अथवा प्रज्ञावान श्रेष्ठ है, प्रश्न पुछवाकर उसे हतप्रभ करना चाहा। महोषध पण्डित के समाधान से राजा उसके प्रति और भी निष्ठावान हो गया।

उदुम्बरादेवी ने अपने 'छोटे भाई' महोषध-पण्डित का अमरादेवी से विवाह कराया।

चारो पण्डितो ने महोषध-पण्डित को चोर बनाकर बद-नाम करना चाहा। किन्तु उनकी पोल खुल गई।

छत्र मे रहने वाली देवी ने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी सेनक आदि किसी दूसरे पण्डित से नही बना।

चारो पण्डितो ने षडयन्त्र करके महोषध-पण्डित को राजा के सामने राज-वैरी बनाकर दिखाना चाहा। वे असफल रहे। महोपध-पण्डित ने अपने अहित चिन्तको के प्रति भी उदारता का व्यवहार किया।

अब राजा ने महोपध-पण्डित को अपना अर्थ-धर्मानु-शासक अमात्य बना लिया।

इसके बाद कम्पिल राष्ट्र के चूळनी-ब्रह्मदत्त राजा के केवट्ट नाम के ब्राह्मण-अमात्य और महोषध पण्डित के राज-नीतिक दाँव-पेंच आरम्भ होता है। छल-कपट, गुप्तचर-लीला, युद्ध, सन्धि सभी कुछ हैं।

अन्त मे महोषध-पण्डित ही श्रीवान् होता है।]

५४७ महावेस्सन्तर जातक ५१८ से ६५६

[सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर मे राज्य करते समय सिवि-नरेश को सञ्जय नाम के पुत्र का लाभ हुआ। सञ्जय और मद्र-राज्य कन्या फुसति 'वेस्सन्तर' कुमार के माता-पिता हुए।

वेस्सन्तर बचपन से ही दान-शील था। उत्तरोत्तर उसकी दान-चेतना बढती ही गई। अन्त मे उसने कलिङ्ग राष्ट्र से आगत ब्राह्मणो को मगल-काशी तक का दान दे दिया। सिवि जनपदवासी क्षुब्ध हो उठे। उन्होने राजा को मजबूर किया कि वह उसे राज्य से निकाल दे। वेस्सन्तर अपने दोनो पुत्रो तथा उनकी माता को ले जगल मे जाकर रहने लगा।

एक ब्राह्मण उस जगल मे से भी उन दोनो बच्चो को 'माग' लाया।

अतमें सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सतर ने ही राज्य ग्रहण किया।]

५३८. मूगपक्ख जातक

'मा पण्डितिय' यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महानैष्क्रम्य के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षु धर्म सभा में एकत्रित हो भगवान के महाभिनिष्क्रमण की प्रशसा करने लगे । भगवान् ने आकर पूछा, "भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ, इसमें क्या आश्चर्य है, यदि मैंने इस समय जब मै पारमितायें पूरी कर चुका हूँ अभिनिष्क्रमण किया है । मैंने ज्ञान के अपरिपक्व रहने पर, पारमियो की पूर्ति के समय भी राज्य छोडकर अभिनिष्क्रमण किया हो' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे काशीराजा धर्मानुसार राज्य करता था । उसकी सोलह हजार स्त्रियाँ थी । उनमें से किसी एक को भी लडका अथवा लडकी नही हुई । नागरिको ने 'हमारे राजा के वश का रक्षक पुत्र नही हैं' सोच, कुस जातक[1] में आये वर्णन के अनुसार इकट्ठे हो, राजा से निवेदन किया कि पुत्र के लिये प्रार्थना करे । राजा ने सोलह हजार स्त्रियो को आज्ञा दी कि पुत्रो की प्रार्थना करो । उन्होने चन्द्रादि की सेवा मे रह प्रार्थना की, किन्तु उन्हें पुत्र लाभ नही ही हुआ । उसकी पटरानी मद्द्राज कन्या, नाम चन्द्रादेवी सदाचारिणी थी । उसे भी कहा गया, "पुत्र की प्रार्थना कर ।" उसने पूर्णिमा के दिन उपोसथ-व्रत ग्रहण किया, और फिर छोटी चारपाई पर लेट अपने शील का विचार कर यह सत्य-क्रिया की कि यदि मैं अखण्डित-शील हूँ तो इस सत्य के प्रताप से मुझे एक पुत्र मिले । उसके शील तेज से शक्र भवन गरम हो उठा ।

---

१ कुस जातक (५३१)

शक्र को विचार करने पर यह मालूम हुआ कि चन्द्रादेवी पुत्र की कामना करती है। उसने सोचा, 'इसे पुत्र दूंगा।' फिर उसके योग्य पुत्र का विचार करते हुए बोधिसत्व को देखा। उस समय बोधिसत्व बीस वर्ष वाराणसी मे राज्य कर चुकने के बाद, वहाँ से च्युत होकर उस्सद-नरक मे अस्सी हजार वर्ष पकता रहा था। वहाँ से वह त्र्योत्रिंश-भवन मे पैदा हुआ था वहाँ आयु भर रह, वहाँ से च्युत होकर ऊपर के देवलोक में जाना चाहता था। शक्र ने उसके पास पहुँच, कहा—"मित्र ! यदि तू मनुष्य-लोक मे जन्म ग्रहण करेगा तो पारमिताओ की भी पूर्ति होगी और जनता की भी उन्नति होगी। यह काशी-नरेश की चन्द्रा नामकी पटरानी पुत्र की कामना करती है। तू उसकी कोख से जन्म ग्रहण कर।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और पाँच सौ देवपुत्रो के साथ च्युत होकर, स्वय पटरानी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। अन्य देवपुत्रो ने अमात्यो की स्त्रियो की कोख मे जन्म ग्रहण किये। देवी की कोख ऐसी हो गई, मानो उसमे वज्र भरा हो। उसने 'गर्भ धारण हुआ' जान राजा को कहा। राजा ने 'गर्भ की आवश्यकताये' दिलवाई। गर्भ पूरा होने पर पटरानी ने धान्य-पुण्य लक्षणो वाले पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन अमात्यो के घरो मे पाँच सौ कुमारो ने जन्म ग्रहण किया। उस समय राजा अमात्यो के बीच (राज प्रासाद के) महान् तल पर बैठा था। उसे सूचना दी गई, "देव ! आपको पुत्र हुआ है।" यह शब्द सुनते ही उसके मन मे पुत्र-प्रेम उमड पडा और वह चमडी आदि को छेदकर हड्डी-मज्जा तक जा पहुचा। अन्दर प्रीति भर गई। हृदय शीतल हो गया। उसने अमात्यो से पूछा, "मेरे पुत्रके पैदा होने पर क्या तुम्हे प्रसन्नता हुई है?" "देव ! क्या कहते है ! हम पहले अनाथ थे। अब सनाथ हो गये। हमे स्वामी मिल गया।"

राजा ने महासेना-रक्षक को आज्ञा दी, "मेरे पुत्र को साथियो की अपेक्षा होगी। देखो अमात्य-कुलो में आज कितने बच्चे पैदा हुए है?" उसने पाँच सौ बच्चे देख, आकर राजा को सूचना दी। राजा ने पाँच सौ कुमारो के लिये पाँच सौ ही अलकारादि भेज, पाँच सौ ही दाइयाँ भेजी। बोधिसत्व के लिये अति-दीर्घ आदि दोषो से रहित, जिनके स्तन लम्बे नही थे और जिनका दूध मीठा था, ऐसी चौसठ दाइयो की व्यवस्था की। बहुत लम्बी (स्त्री) के पास बैठकर स्तन पान करने से बच्चे की

गरदन वहुत लम्वी हो जाती है। वहुत छोटी के पास वैठकर पीने मे कन्वे की हड्डी दव जाती है। वहुत दुवली के पास वैठकर पीनेवालो की जाघ दुखने लगती है। अति स्थूल के पास वैठकर पीने से पैर सुन्न (?) हो जाते है। अति काली का शरीर अति शीतल होता है। अति श्वेत का वहुत गरम। लम्वी-स्तन वालियो का दूध पीने से नाक का अगला हिस्सा चिपटा हो जाता है। किसी का दूध खट्टा होता है, किसी का कडुआ आदि। इसीलिये इन सभी दोपो को वचा, अति-दीर्घ आदि दोषो से रहित, जिनके स्तन लम्बे नही थे और जिनका दूध मधुर था, ऐसी चौसठ दाइयो की व्यवस्था कर वहुत सत्कार किया और चन्द्रा देवी को भी 'वर' दिया। उसने 'लिया' करके रख दिया। नाम-ग्रहण के दिन लक्षण जाननेवाले महा ब्राह्मणो का वहुत सत्कार कर उनसे पूछा गया—"कुमार को कोई विघ्न-वाधा तो नही है?" उन्होने उसके लक्षणो को देख उत्तर दिया, "महाराज! यह कुमार धान्य तथा पुण्य लक्षणोवाला है। एक द्वीप की तो वात ही क्या, यह चारो महाद्वीपो का राज्य करने मे समर्थ है। इसे कोई खतरा नही दिखाई देता।" राजा ने उनपर प्रसन्न हो कुमार का नाम रखते हुए, क्योकि कुमार के पैदा होने के दिन सारे अस्सी राष्ट्रो मे देव वर्षा और क्योकि वह राजा और अमात्यो के हृदयो को स्निग्ध करता हुआ पैदा हुआ, इसलिये उसका नाम तेमिय-कुमार ही रख दिया गया।

जव वह एक महीने का हो गया तो उसे सजाकर राजा के पास लाये। प्रिय पुत्र को देख राजा ने उसका आलिगन कर उसे गोद में विठाया और (स्वय) आनन्द मनाता हुआ वैठा रहा। उस समय चार चोर लाये गये। राजाने उनमे से एक के लिये आज्ञा की कि इसे हजार कॉटेदार कोडे लगाये जॉय। दूसरे को बेडियाँ पहनाकर जेल-खाने में डाल देने की। तीसरे को शक्ति-प्रहार की। चौथे को सूली पर चढाने की। बोधिसत्व ने पिता की आज्ञा सुनी तो भयभीत होकर सोचने लगा, "ओह! मेरा पिता राज्य के लिये भयानक नरक-गामी कर्म करता है।" आगे चलकर एक दिन उसे श्वेत-छत्र के नीचे अलकृत शय्या पर लिटाया गया। थोडी देर सोते रहने के बाद, जागने पर, आँख खुलते ही श्वेत-छत्र को देखते हुए उसने वडे ऐश्वर्य को देखा। वह पहले से ही भयभीत था। और भी अधिक भयभीत हो गया। वह विचार करने लगा कि मै इस राज-गृह में कहाँ से आया हूँ? पूर्व-जन्म का ज्ञान होने

से उसे मालूम हुआ कि देव-लोक से। इससे आगे विचार करने पर उसे पता लगा कि वह नरक मे पकता रहा है। उससे आगे सोचने पर उसने अपने आपको उसी नगर में राज-गृह मे देखा। यह सोचकर उसके मन मे वडा ही भय पैदा हुआ कि "मैं वीस वर्ष राज्य करके अस्सी हजार वर्ष तक उस्सद-नरक मे जलता रहा। अव फिर इस चोर-गृह मे पैदा हो गया हूँ। मेरे पिता ने भी कल उन चोरो के लाये जाने पर वैसी कठोर, नरक ले जानेवाली वात ही कही। यदि मै राज्य करूगा, तो फिर नरक मे जन्म ग्रहण कर वडा दु ख भोगूंगा। उसकी कचन जैसी देह हाथ से मली गई की तरह म्लान तथा दुर्वर्ण हो गई। वह पडा-पडा सोचने लगा कि इस चोर-गृह से कैसे मुक्त होऊ ?"

तब किसी पूर्व-जन्म मे उसकी मा रही, छत्र मे रहने वाली देवी ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "तात तेमिय! डर मत। यदि यहाँ से मुक्त होना चाहता है तो लूला न होते हुए भी लूले की तरह हो जा, वहरा न होते हुए भी वहरे की तरह हो जा, गूगा न होते हुए भी गूगे की तरह हो जा। इन तीनो अगो से युक्त वनकर अपना पाण्डित्य मत प्रकट कर।" यह कह उसने गाथा कही—

मा पण्डितिय विभावय
बालमतो भव सब्बपाणिन
सब्बो त जनो ओचिनायतु
एव तव अत्थो भविस्सति॥१॥

[अपना पाण्डित्य मत प्रकट कर। सभी के लिये 'मूर्ख' वन जा। सभी तेरी अवज्ञा करने लग जॉय। तभी तेरा उद्देश्य पूरा होगा॥१॥]

उसने उसकी वात सुनी तो आश्वस्त हुआ और बोला—

करोमि ते त वचन य म भणसि देवते,
अत्थकामासि मे अम्म हितकामासि देवते॥२॥

[हे देवी! मुझे जो कहा है, मै तेरा कहना करूगा। हे अम्म! तू मेरा अर्थ चाहने वाली है, तू मेरा हित चाहनेवाली है॥२॥]

यह गाथा कह उसने वे तीन सकल्प किये। राजा ने कुमार का दिल लगाये रखने के लिये उन पाँच सौ कुमारो को उसके पास ही रखवा दिया। वे वच्चे स्तन के लिये

रोते थे। वोधिसत्व नही रोते थे—नरक के भय के सिर पर रहने सूखकर मर जाना ही श्रेयस्कर है। दाइयो ने यह समाचार चन्द्रा देवी को कहा। उसने राजा को कहा। राजा ने निमित्तज्ञ ब्राह्मणो को बुलाकर पूछा। ब्राह्मण बोले, "देव ! कुमार को स्वाभाविक समय के वीतने पर स्तन पान कराना चाहिये। ऐसा होने पर वह रोता हुआ स्तन को दृढता पूर्वक पकड स्वय ही पियेगा।" उसके वाद से वे स्वाभाविक समय विताकर स्तन पान कराने लगी। देती तो कभी एक 'वार' लघा देती और कभी सारा दिन भी न देती। वह नरक-भय से भयभीत होने के कारण सूखता जाता हुआ स्तन के लिये न रोता। उसके न रोने पर भी 'पुत्र भूखा है' सोच माता अथवा दाइयाँ दूध पिला देती। शेष वच्चो को स्तन न मिलते ही रो पडते। वह न रोता, न सोता, न हाथ-पाँव सिकोडता और न आवाज सुनता। तव उसकी दाइयो ने सोचा, "लूलो के हाथ-पाँव ऐसे नही होते। गूगो के जवडो का अन्त ऐसा नही होता। वहरो के कान ऐसे नही होते। इसमे कोई वात होगी। हम इसकी परीक्षा करेगी।" उन्होने दूध से परीक्षा करने के इरादे से सारा दिन दूध न दिया। वह सूखता हुआ भी दूध नही ही मागता था। तव उसकी माता 'मेरा पुत्र भूखा है, इसे दूध दो' कह दूध दिला देती। इस प्रकार वीच-वीच मे दूध देकर वर्ष भर तक परीक्षा करते रहने के वावजूद वे कुछ पता न पा सकी।

तब 'वच्चो को पूए तथा खाजा आदि वहुत अच्छे लगते है। इनसे परीक्षा करेगी' सोच पाँच सौ कुमारो को उसके पास विठाकर नाना प्रकार की मिठाइयाँ ला, थोडी दूरी पर रख, 'यथारुचि मिठाइयाँ लो' कह छिपकर खडी हुई। शेष वच्चे परस्पर झगडते हुए, एक दूसरे के साथ मार-पीट करते हुए, उसे लेकर खाने लगे। वोधिसत्व तेमिय सोचता कि 'पूवे और खाजे की इच्छा का मतलव है नरक की इच्छा करना'। इसलिये नरक के डर के मारे वह मिठाई की ओर देखता तक नही था। इस प्रकार वर्ष भर पूओ और मिठाई से परीक्षा लेते रहने पर भी कुछ पता न लगा।

तब यह समझकर कि वच्चो को फलाफल वहुत अच्छे लगते हैं, नाना प्रकार के फलाफल लाकर परीक्षा की गई। शेष वच्चे परस्पर झगडकर खाने लगे। उसने उधर देखा तक नही। इस प्रकार फलाफलो से भी वर्ष भर परीक्षा की गई। तब 'वच्चो को खिलौने प्रिय होते हैं' सोच स्वर्ण आदि के हाथी आदि थोडी दूर पर रखे।

शेप वच्चो ने लूटमार शुरू कर दी। बोधिसत्व ने देखा तक नहीं। इस प्रकार खिलोनों से भी वर्ष भर परीक्षा ली गई। तव सोचा गया कि चार वर्ष के वच्चो को भोजन प्रिय होता है, उससे परीक्षा लेंगे। नाना प्रकार के भोजन लाये गये। शेप वच्चे कौर-कौर करके खाने लगे। किन्तु वोधिसत्व ने अपने आपको सम्वोधन कर, 'हे तेमिय! ऐसे जन्मो की गिनती नही है, जव तुझे ये सब भोजन मिले हैं' कहा और नरक के डर के मारे उधर नही देखा। तव उसकी मा ने स्नेह के वशीभूत हो अपने हाथ से खिलाया। तव यह सोचा गया कि 'पाँच वर्ष के वच्चे आग से डरते हैं। हम इस तरह इसकी परीक्षा लेंगे।' उन्होंने अनेक द्वारोंवाला एक वडा घर वनाया। उसे ताड-पत्रों से ढका। फिर उसे सभी वच्चो के बीच उस घर मे विठाकर आग लगा दी गई। सभी वच्चे चिल्लाते हुए भाग खडे हुए। बोधसत्व यह समझ कि नरक की आग मे पकने से यही अच्छा है ध्यानावस्थित की तरह बैठा रहा। आग पास आने लगी तो उसे उठाकर ले गये। तव यह सोच कि छ वर्ष की आयु के बच्चे मस्त हाथी से डरते हैं, हाथी को अच्छी तरह सिखा, वोधिसत्व को शेप बच्चो के बीच मे विठा हाथी को छोडा। वह क्रौंच-नाद करता हुआ सूड से भूमि को मर्दित करता हुआ, डराता हुआ आया। शेष बच्चे मृत्यु-भय के मारे इधर-उधर भागे। बोधिसत्व नरक के भय के मारे वही बैठा रहा। सुशिक्षित हाथी ने उसे लेकर इधर-उधर किया और बिना कष्ट दिये ही चला गया। सात वर्ष की आयु होने पर उसे बच्चों के बीच विठा ऐसे साँपो को छोडा जिनके दात निकाल दिये गये थे और मुह बाध दिये गये थे। वाकी सभी बच्चे चिल्लाकर भाग खडे हुए। बोधिसत्व नरक-भय का ध्यानकर उसकी अपेक्षा नाश को प्राप्त होने को ही श्रेष्ठतर मान निश्चल ही बैठा रहा। साँप उसके सारे शरीर से लिपट गये ओर सिर पर फण कर लिया। तब भी वह निश्चल ही बैठा रहा। इस प्रकार बीच-बीच मे परीक्षा लेने से भी कुछ पता न लगा।

तव यह सोच कि बच्चो को तमाशा देखना अच्छा लगता है, उसे राजागन मे पाँच सौ वच्चो के वीच बिठाया और वही नृत्य कराया। शेष बच्चे तमाशा देख 'साधु' कह जोर-जोर से हँसने लगे। बोधिसत्व इस वात को याद करके कि नरक में पैदा होने पर कुछ भी हसना तया प्रसन्न होना नही है, नरक-भय का ध्यान कर

निश्चल ही बैठा रहा। देखा (तक) नही। इस प्रकार बीच-बीच मे परीक्षा लेने पर भी कुछ पता नही लगा।

तब 'खड्ग से परीक्षा लेगे' सोच बच्चो के साथ राजागन मे बिठाया। जिस समय बच्चे खेल रहे थे, एक आदमी स्फटिक-वर्ण तलवार घुमाता हुआ दौडकर आया और बोला, "काशी-राज का एक मनहूस लडका है। वह कहाँ है ? उसका सिर काटेगे।" उसे देख बाकी सभी बच्चे भय के मारे चिल्लाते हुए भाग गये। बोधिसत्व नरक के भय की चिन्ता करता हुआ अ-बूझ की तरह बैठा रहा। उस आदमी ने सिर से तलवार को छूकर 'तेरा सिर काटूगा' कह डराना चाहा। जब वह इस प्रकार भी नही डरा सका, तो वह चला गया। इस प्रकार बीच-बीच मे परीक्षा लेने पर भी कुछ पता नही लगा।

दस वर्ष की आयु होने पर उसके बहरेपन की परीक्षा करने की सोची गई। उसकी शैय्या को कनात से घेर दिया गया। चारो ओर छेद कर दिये गये और उससे छिपाकर उसकी शैय्या के नीचे शख बजानेवाले छिपा दिये गये। वे सब एक साथ जोर से शख बजाते। बडी आवाज होती। आमात्यो ने चारो ओर खडे होकर छिद्रो में से झाका। उन्हे एक दिन भी न उसकी घबराहट दिखाई दी, न हाथ-पैर हिलाना और न हिलना-डोलना। इस प्रकार वर्ष बीत जाने पर अगले वर्ष उसी प्रकार ढोल से परीक्षा की गई। तब भी कुछ न पता लगा।

तब दीपक से परीक्षा करने की सोची गई। यह पता लगाना चाहा कि रात को अन्धेरे में हाथ पैर हिलाता है या नही ? घडो मे दीपक जलाये गये। शेष सभी दीपक बुझा दिये गये। फिर उसे थोडी देर अन्धेरे में बिठा, यकायक घडो में से दीपक बाहर किये गये। एक बार ही प्रकाश करके उसके उठने-बैठने का निरीक्षण किया गया। इस प्रकार वर्ष भर तक निरीक्षण करने पर भी उसके शरीर का हिलना तक नही दिखाई दिया। तब शीरे से परीक्षा करने की सोची गई। सारे शरीर पर शीरा मल, बहुत मक्खियो की जगह पर लिटा, मक्खियाँ उडाई गईं। वह उसे चारो ओर से घेर सूई से बीधने की तरह खाने लगी। वह निरोध-ध्यान में बैठे हुए की तरह निश्चल ही बैठा रहा। इस प्रकार वर्ष भर परीक्षा करते रहने पर भी कुछ पता नही लगा।

चौदह वर्ष की आयु होने पर सोचा गया कि अब यह बडा हो गया। अब इसे सफाई अच्छी लगती होगी और गन्दगी बुरी। इसलिये अब गन्दगी से परीक्षा लेंगे। वे उसे न नहलाते और न शौच के हाथ धुलाते। वह पेशाब-पाखाना करके वही पडा रहता। दुर्गन्ध के मारे अन्दरका[1] बाहर आने जैसा होता। मक्खियाँ खाती। उसे घेरकर कहा जाता, "तेमिय! अब तू बडा हो गया। कौन हमेशा तेरी टहल करेगा? क्या तुझे लज्जा नही आती? क्यो पडा है? उठकर शरीर को ठीक कर।" इस प्रकार उसे गाली दी जाती, उसका मजाक उडाया जाता। उस प्रकार के गूह ढेर मे पडा हुआ भी 'सो योजन दूर बैठे लोगो के हृदय को भी घृणा से भर देनेवाले गूह के नरक की दुर्गन्ध की याद कर' वह उपेक्षावान् ही रहा। बीच-बीच मे वर्ष भर तक परीक्षा लेते रहने पर भी कुछ पता नही लगा सके। उसकी चारपाई के नीचे आग के ठीकरे रखे गये। हो सकता है कि गरमी के मारे वेदना न सह सकने के कारण चचलता प्रकट करे। शरीर मे छाले से पड गये। बोधिसत्व 'अवीचि नरक की आग सौ योजन तक फैलती है। महान् दु ख है। यह दु ख उससे सौ गुणा हज़ार गणा अच्छा है' सोच शान्त ही रहा।

उसके माता-पिता का तो मानो हृदय टूट गया। उन्होने आदमियो को हटा दिया और उसे अग्नि-ताप से दूर ले जाकर निवेदन किया, "तात! तेमिय कुमार! हम जानते है कि तू लूला आदि नही है। उनके पैर, मुह, कान, इस तरह के नहीं होते। तू हमारी प्रार्थना से मिला पुत्र है। हमारा विनाश मत कर। हमे जम्बुद्वीप भर के राजाओ की निन्दा से बचा।" उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी वह अन-सुने ही की तरह चुप-चाप पडा रहा। उसके माता-पिता भी रोते-पीटते लौट गये। इसके बाद कभी अकेला पिता आकर गिडगिडाता, कभी अकेली माता। इस प्रकार वर्ष भर तक बीच-बीच मे परीक्षा लेते हुए भी कुछ पता न पा सके।

जब सोलह वर्ष का हुआ तो सोचने लगे, "चाहे लूला हो, चाहे गूगा हो, चाहे बहरा हो, आयु-प्राप्त होने पर ऐसा कोई नही जो राग की जगह अनुरक्त न हो और द्वेष की जगह विरक्त न हो। समय आने पर पुष्पो के विकसित होने की तरह यह

---

१ 'अन्तरुद्धीन' शब्द अस्पष्ट है।

स्वाभाविक ही है। इसकी सेवा मे नर्तकियाँ उपस्थित कर, इसकी परीक्षा करेंगे। तव देव-कन्याओ के समान तीन सुन्दर, विलास-युक्त कन्याओ का वुलाया गया और उन्हे कहा गया, "जो कुमार को हसा सकेगी अथवा रति-क्रीडा मे वाँध सकेगी, वही इसकी पटरानी होगी।" फिर कुमार को सुगन्धित जल से स्नान कराया गया, देव-पुत्र की तरह सजाया गया, देव-विमान सदृश शयनागार मे, अच्छी शैय्या पर लिटाया गया और यह सव कर वे शयनागार को मालाओ, पुष्पो, धूप, सुगन्धी तथा मदिरासव आदि सुगन्धियो से भरकर चले गये।

उन स्त्रियो ने उसे घेरकर नृत्य-गीत और मधुर वचन आदि नाना प्रकार से वहलाने का प्रयत्न किया। उसने यह देख कि ये स्त्रियाँ वडी वुद्धिमान् हैं सोचा कि ये मेरे शरीर-स्पर्श का अनुभव न कर सके और अपना साँस रोक लिया। उसका शरीर जड हो गया। उन्हे जव उसके शरीर-स्पर्श का अनुभव नही हुआ और उन्होने देखा कि वह तो जड है तो उन्होने उसके माता-पिता को सूचना दी कि यह मनुष्य नही, यक्ष है। इस प्रकार बीच-बीच मे परीक्षा करते हुए भी उसके माता-पिता उसका पता नही पा सके। इस प्रकार सोलह वर्ष मे सोलह वडी परीक्षाये लेकर तथा अन्य अनेक छोटी-छोटी परीक्षाये लेकर भी उसका पता नही ही लगा सके।

तव राजा को बडा अनुताप हुआ। उसने लक्षणज्ञो को बुलाया और पूछा—"तुम तो कहते थे कि यह धान्य-पुण्य लक्षण वाला है। इसे किसी प्रकार की विघ्न-वाधा नही है। यह तो लूला, गूगा तथा वहरा हो गया। तुम्हारा कथन तो मेल नही खाता।"

"महाराज! ऐसी कोई वात नही जिसे आचार्य्य न देख सके। लेकिन यह सोचकर कि 'राजकुल में प्रार्थना करके प्राप्त हुआ पुत्र मनहूस है' कहने से तुम्हारा मन खिन्न हो जायगा, नही कहा।"

"अव क्या करना चाहिये?"

"महाराज! इस कुमार के इस घर मे रहने से तीन खतरे दिखाई देते है, जीवन को, अथवा छत्र को अथवा पटरानी को। इसलिये अमगल-रथ मे अमगल घोडो को जोत कर, वहाँ उसमे लिटाकर, पश्चिम द्वार से निकाल कच्चे श्मशान में गडवा देना चाहिये।"

राजा ने खतरो की वात सुनी तो डर के मारे 'अच्छा' कह स्वीकार कर लिया। चन्द्रा देवी को पता लगा तो वह राजा के पास पहुची और वोली, "देव ! तुमने मुझे वर दिया था। मैंने वह 'लिया' करके रख दिया था। अव मुझे वह 'वर' दे।"

"देवी ! ले।"

"मेरे पुत्र को राज्य दे।"

"देवी ! नही दे सकता। तेरा पुत्र मनहूस है।"

"देव ! तो जीवन-भर का न देकर सात-वर्ष का दे।"

"देवी ! नही दे सकता।"

"तो छ वर्ष, पॉच, चार, तीन, दो, एक वर्ष, सात महीने, छ, पाच, चार, तीन, दो महीने, एक महीना अथवा आधा महीना दे।"

"देवी ! नही दे सकता।"

"तो सात दिन दे।"

"अच्छा, ले।"

यह कहने पर उसने पुत्र को अलकृत कराया, तेमिय कुमार का राज्याभिपेक होगा, कह नगर में मुनादी कराई, नगर सजवाया, पुत्र को हाथी के कन्धे पर विठा सिर पर श्वेत छत्र झुलाया, और नगर की प्रदक्षिणा कराई। लौटकर आने पर उसने उसे शैय्या पर लिटाया और सारी रात प्रार्थना करती रही, "तात तेमिय कुमार ! तेरे कारण सोलह वर्ष तक जागते रहने से मेरी ऑखे पक गई। शोक के मारे हृदय फटा जा रहा है। मै जानती हूँ कि तू लूला नही है। मुझे अनाथ मत बना।" इसी प्रकार दूसरे दिन भी और तीसरे दिन भी करके पॉच दिनो तक गिडगिडाती रही।

छठे दिन राजा ने सुनन्द नामक सारथी को बुलवाकर आज्ञा दी, "तात ! कल प्रात काल ही अमगल रथ मे अमगल घोडे जोत, कुमार को उसमे लिटा, पश्चिम-द्वार से बाहर ले जा, कच्चे श्मशान मे चौकोर गढा खोदकर, उसे उसमे फेक, कुदाल की मूठ से उसका सिर फोड, जान से मार, ऊपर मिट्टी डाल, जमीन को वरावर कर स्नान करके आना।"

छठी रात भी देवी कुमार की मिन्नत करती रही, "तात ! काशी राज ने कल तुझे कच्चे श्मशान मे गाडने की आज्ञा दे दी है। पुत्र। कल मृत्यु हो जायगी।"

यह सुन तेमिय बोधिसत्व के मन मे यह सोच आनन्द हुआ कि सोलह वर्ष तक किया गया परिश्रम सफल होगा। किन्तु उसकी माँ का हृदय फटा जा रहा था। ऐसा होने पर भी उसने मुह से एक शब्द नही निकाला, कि कही मेरे उद्देश्य की पूर्ति मे बाधा न हो जाय।

रात के बीतने पर प्रात काल ही सुनन्द सारथी ने रथ जोता और द्वार पर लाकर खड़ा किया। फिर शयनागार मे जा 'देवी! मुझ पर क्रोध न करे, राजाज्ञा है' कह, पुत्र को लेकर सोई हुई देवी की पीठ को हाथ से हटा, कुमार को पुष्प-गुच्छ की तरह उठाया और महल मे उतरा। चन्द्रा देवी ने छाती पीट ली और जोर जोर से विलाप करती हुई महल के तल्ले पर रह गई। बोधिसत्व ने देखा तो उसे लगा कि यदि मै चुप रहा तो यह हृदय फटकर मर जायगी, इसलिये उसको बोल देने की इच्छा हुई। किन्तु फिर उसने सोचा, 'मेरा सोलह वर्ष का परिश्रम बेकार चला जायगा। मै बिना बोले ही अपनी तथा माता-पिता की प्रतिष्ठा का कारण बनूगा।" उसने सब कुछ सह लिया।

सारथी ने उसे रथ मे बिठाया और पश्चिम द्वार की बजाय (भूल से) पूर्व द्वार की ओर हो लिया। रथ का पहिया देहली से टकराया। बोधिसत्व ने आवाज सुनी तो मन मे अच्छी तरह प्रसन्न हुआ कि मेरी कामना पूरी हुई। रथ नगर से निकलकर देवताओ के प्रताप से तीन योजन दूर चला गया। वहाँ का जगल सारथी को कच्चे श्मशान सा प्रतीत हुआ। उसने यह समझ कि यह स्थान सुविधाजनक है, रथ को रास्ते से एक ओर खड़ा किया। फिर रथ से उतर, बोधिसत्व के गहने उतार, उनकी गठरी बाँधी, एक ओर रखा और कुदाल ले थोड़ी ही दूर पर गढा खोदने लगा।

तब बोधिसत्व ने सोचा, "अब यह मेरा समय आया है। मैने सोलह वर्ष तक हाथ-पाँव नही हिलाये। मै देखू कि उन पर मेरा काबू है अथवा नही?" उसने उठकर बायें हाथ से दाहिना हाथ, दाहिने हाथ से बायाँ हाथ, दोनो हाथो से पाँवों को रगड़कर रथ से उतरने का इरादा किया। उसी समय इसके पाँव रखने की जगह वायु भरी धूकनी के चमड़े की तरह ऊपर उठकर रथ के अन्तिम सिरे से लग गई। उसने उतरकर कई बार इधर उधर चहल-कदमी की और देखा कि इस तरह

एक दिन मे सौ योजन जाने का भी वल है। फिर यह देखने के लिये कि यदि सारथी लडे, तो उससे लडने का भी वल है अथवा नही वह रथ के पिछली ओर गया और बच्चो के खेलने के रथ को उठा लेने की तरह उस रथ को उठाकर खडा हुआ। उसे निश्चय हो गया कि उसमे लडने का वल है। तव उसके मन मे अपने आपको सजाने का सकल्प पैदा हुआ। उसी समय शक्र-भवन गरम हो उठा।

शक्र ने जान लिया कि तेमिय कुमार का उद्देश्य पूरा हो गया और अब वह अपने आपको अलकृत करना चाहता है। उसने सोचा, 'इसे मानुषी अलकारो से क्या ?' और उसने विश्वकर्मा को दिव्य अलकारो के साथ भेजा तथा आज्ञा दी, "जा काशी राजपुत्र को अलकृत कर।" उसने 'अच्छा' कहा और जाकर दस हजार दुशाले लपेट उसे दिव्य तथा मानुषी अलकारो से शक्र की तरह अलकृत किया। उसने देवराज के ढग से सारथी के गढा खोदने की जगह पहुच, गढे के किनारे खडे हो तीसरी गाथा कही—

किन्नु सन्तरमानोव कासु खणसि सारथि,
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि किं कासुया करिस्ससि ॥३॥

[सारथी! यह क्या जल्दी-जल्दी गढा खोद रहा है? हे मित्र! मुझे कहो कि गढे का क्या करेगा? ॥३॥]

यह सुन सारथी ने बिना ऊपर देखे, गढा खोदते हुए ही चौथी गाथा कही—

रञ्जो मूगोच च पक्खो च पुत्तो जातो अचेतसो,
सोम्हि रञ्ञो समज्झिट्ठो पुत्त मे निखण वने ॥४॥

[राजा के यहाँ एक गूगा, (बहरा) लूला, जड, लडका पैदा हुआ है। राजा ने मुझे आज्ञा दी है कि मेरे पुत्र को वन मे गाड आ ॥४॥]

तव वोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न बधिरो न मूगोस्मि न पक्खो न पि पगुलो,
अधम्म सारथी कयिरा मञ्चे त्व निखण वने ॥५॥
ऊरू वाहू च मे पस्स भासितञ्च सुणोहि मे,
अधम्म सारथी कयिरा मञ्चे त्व निखण वने ॥६॥

[न बहरा हूँ, न गूगा हूँ, न लूला हूँ और न लगडा हू । यदि हे सारथी ! तू मुझे वन मे गाडता है तो तू अधर्म करता है ।।५।। मेरी जाघो को देख, मेरे वाजुओ को देख और मेरी वाणी सुन । यदि हे सारथी ! तू मुझे वन मे गाडता है तो तू अधर्म करता है ।।६।।]

सारथी सोचने लगा, यह कौन है जो आने के समय मे ही अपनी प्रशसा कर रहा है ? उसने गढा खोदना छोड ऊपर देखा और उसका सौन्दर्य देख, यह न जान सकने के कारण कि यह मनुष्य है अथवा देवता, यह गाथा कही—

देवतानुसि गन्धब्बो आदु सक्को पुरिन्ददो
को व त्व कस्स वा पुत्तो कथ जानेमु त भथ ।।७।।

[तू देवता है ? तू गन्धर्व है ? अथवा तू इन्द्र है ? तू कौन है ? अथवा किसका पुत्र है ? हम तुझे कैसे जाने ? ।।७।।]

बोधिसत्व ने अपने आपको प्रकट करते हुए तथा धर्मोपदेश देते हुए कहा—

नम्हि देवो न गन्धब्बो न पि सक्को पुरिन्ददो,
कासिरञ्ञो अह पुत्तो य कासुया निघञ्ञसि ।।८।।
तस्स रञ्ञो अह पुत्तो य त्व समूपजीवसि,
अधम्म सारथी कयिरा य चे त्व निखण वने ।।९।।
यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा,
न तस्स साख भञ्जेय्य मित्तदूभो हि पापको ।।१०।।
यथा रुक्खो तथा राजा यथा साखा तथा अह
यथा छायूपगो पोसो एव त्वमसि सारथी,
अधम्म सारथी कयिरा मञ्चे त्व निखण वने ।।११।।

[न मैं देव हूँ, न गन्धर्व हूँ और न इन्द्र ही हूँ । मै काशी राज का पुत्र हूँ, जिसके लिये तू गढा खोदता है ।।८।। मैं उस राजा का पुत्र हूँ, जिसके सहारे तू जीता है । यदि हे सारथी ! तू मुझे वन मे गाडता है तो तू अधर्म करता है ।।९।। जिस वृक्ष की छाया में बैठे या सोये उसकी शाखा न काटे, मित्र-द्रोह पातक है ।।१०।। जैसे छाया में बैठने वाला पुरुष उसी के समान हे सारथी ! तू है । यदि हे सारथी ! तू मुझे वन में गाडता है तो अधर्म करता है ।।११।।]

बोधिसत्व के ऐसा कहने पर भी सारथी को विश्वास नही हुआ। बोधिसत्व ने सोचा, "इसे विश्वास कराऊगा।" उसने देवताओ के 'साधुकार' और अपने वचन से सारे जगल को गुजाते हुए मैत्री-धर्म सम्बन्धी दस गाथाये कही—

पहूत भक्खो भ" ति विप्पवुत्थो सका घरा,
बहू नं उपजीवन्ति यो मित्तानं न दूभति ॥१२॥
यं यं जनपद याति निगमे राजधानियो,
सब्बत्थ पूजितो होति यो मित्तान न दूभति ॥१३॥
नास्स चोरा पसहन्ति नातिमञ्ञेति खत्तियो,
सब्बे अमित्ते तरति यो मित्तान न दूभति ॥१४॥
अक्कुद्धो स घरं एति सभाय पटिनन्दितो,
ञातीन उत्तमो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१५॥
सक्कत्वा सक्कतो होति गरु होति सगारवो,
वण्णकित्तिभतो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१६॥
पूजको लभते पूज वन्दको पटिवन्दन,
यसो कित्तिञ्च पप्पोति यो मित्तान न दूभति ॥१७॥
अग्गि यथा पज्जलति देवताव विरोचति,
सिरिया अजहितो होति यो मित्तान न दूभति ॥१८॥
गावो तस्स पजायन्ति खेत्ते वुत्त विरूहति,
वुत्तानं फलमस्नाति यो मित्तान न दूभति ॥१९॥
दरितो पब्बतातो वा रुक्खातो पतितो नरो,
चुतो पतिट्ठ लभति यो मित्तानं न दूभति ॥१०॥
विरूळह मूल सन्तान निग्रोधमिव मालुतो,
अमित्ता न प्पसहन्ति यो मित्तानं न दूभति ॥२१॥

[अपने घर से प्रवास मे जाने पर उसे खाने-पीने की कमी नही रहती। वह बहुतों की जीविका का आश्रय होता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ॥१२॥ जिस-जिस जनपद मे जाता है, निगम मे अथवा राजधानी मे, वह सभी जगह आदृत होता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ॥१३॥ चोर उसके साथ जबर्दस्ती नही कर सकते

और क्षत्रिय (= राजागण) भी उसकी अवहेलना नही कर सकते, जो मित्रो के साथ द्रोह नही करता ।।१४।। शान्ति-युक्त अपने घर लौटता है, सभा मे प्रसन्न रहता है, रिश्तेदारो मे श्रेष्ठ माना जाता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।१५।। दूसरो का सत्कार करके स्वय सस्कृत होता है, दूसरो का गौरव करके स्वय गौरवान्वित होता है, उसका गुणानुवाद होता है और उसकी कीर्ति फैलती है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।१६।। दूसरो की पूजा करके स्वय पूजित होता है, दूसरो की वन्दना करके स्वय वन्दित होता है, वह यश तथा कीर्ति को प्राप्त होता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।१७।। जैसे अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे ही वह देवता के समान प्रकाशित होता है, वह श्री से वियुक्त नही होता, जो मित्र-द्रोह नही करता है ।।१८।। उसकी गौवे जनती है, उसके खेतो मे उगता है, और जो उगता है उसे वह खाता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।१९।। दरार से, पर्वत से फिसल जाने पर, अथवा पेड से गिर पडने पर वह चोट से बच जाता है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।२०।। जिस प्रकार मालुता लता जडे बढे न्यग्रोध पेड का कुछ नही बिगाड़ सकती, उसी प्रकार उसके शत्रु उससे पार नही पा सकते है, जो मित्र-द्रोह नही करता ।।२१।।]

इतनी गाथाओ से धर्मोपदेश देने से भी सुनन्द ने उसे नही पहचाना । 'यह क्या है !' जानने के लिये वह रथ के समीप पहुँचा । उसे तथा वह अलकार-सामग्री देख उसने पहचान लिया, और पाँव मे गिर, हाथ जोड कर प्रार्थना करते हुए उसने यह गाथा कही—

अहं त पटिनेस्सामि राजपुत्त सक घर
रज्ज कारेहि भद्दन्ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ।।२२।।

[हे राजपुत्र ! मै तुझे वापिस घर ले चलूगा । तेरा भला हो । तू राज्य कर । जगल मे क्या करेगा ।।२२।।]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अल मे तेन रज्जेन ञातकेहि धनेन वा,
य मे अधम्मचरियाय रज्ज लब्भेथ सारथि ।।२३।।

[मुझे उस राज्य, धन तथा रिश्तेदारो की अपेक्षा नही है, हे सारथि ! जो मुझे अधर्म--चर्या से प्राप्त हो ।।२३।।]

सारथी बोला—

पुण्णपत्त पलब्भेहि राजपुत्त इतो गतो,
पिता माता च मे दज्जु राजपुत्त तयि गते।।२४।।
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
तेपि अत्तमना दज्जु राजपुत्त तयि गते।।२५।।
हत्थारूहा अणीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
तेपि दज्जु पतीता मे राजपुत्त तयि गते।।२६।।
बहू जानपदा चञ्ञे नेगमा च समागता,
उपायनानि मे दज्जु राजपुत्त तयि गते।।२७।।

[हे राजपुत्र ! यहाँ से जाने पर पूर्ण-सतोष मिलेगा । हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर (तेरे) पिता-माता मुझे (बहुत कुछ) देगे ।।२४।। रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण—ये सब भी सन्तुष्ट होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (बहुत कुछ) देगे ।।२५।। हाथी-सवार, घुडसवार, रथी और पैदल भी प्रसन्न होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (बहुत कुछ) देगे ।।२६।। दूसरे बहुत जान-पद तथा आगत नेगम भी हे राजकुमार तेरे जाने पर मुझे बहुत सी भेट देगे ।।२७।।]

बोधिसत्व का उत्तर था—

पितुमातुवह चत्तो रट्ठस्स निगमस्स च,
अथो सब्बकुमारान नत्थि मय्ह सक घर।।२८।।
अनुञ्ञातो अह मत्या सञ्चत्तो पितरा अह
एको अरञ्ञे पब्बजितो न कामे अभिपत्थये।।२९।।

[पिता-माता ने मुझे छोड दिया । राष्ट्र ने और निगम ने भी । सभी कुमारो ने भी । मेरा अपना घर नही है ।।२८।। मुझे माता ने अनुज्ञा दे दी और पिता ने त्याग दिया । मैने अकेले जगल मे प्रव्रज्या ग्रहण की है । मुझे काम भोगों की इच्छा नही है ।।२९।।]

इस प्रकार अपने गुणो की याद करने से बोधिसत्व के मन में आनन्द पैदा हो गया। तब आनन्दाभिभूत हो उसने उल्लास-पूर्ण-गाथाये कही—

अपि अतरमानान फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एवं जानाहि सारथि ॥३०॥
अपि अतरमानान सम्मदत्थो विपच्चति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि निक्खन्तो अकुतोभयो ॥३१॥

[सब्र करने से फल की आशा पूरी हो जाती है। हे सारथी ! तू यह जान ले कि मैं सिद्ध-ब्रह्मचारी हूँ ॥३०॥ सब्र करने से अर्थ अच्छी तरह पूरा होता है। मैं सिद्ध ब्रह्मचारी हू। मुझे (घर से) निकलने मे क्या भय ? ॥३१॥]

सारथी बोला—

एवं वग्गुकथो सन्तो विस्सट्ठवचनोचसि,
कस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणी तदा ॥३१॥

[जब तेरी वाणी इतनी सुन्दर और स्पष्ट है तो तू ने पिता ओर माता के पास मुह क्यो नही खोला ? ॥३२॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

नाहं असत्थिता पक्खो न बधिरो असोतता,
नाहं अजिह्वता मूगो मा म मूगो अधारयि ॥३३॥
पुरिम सरामहं जातिं यत्थ रज्जमकारयिं,
कारयित्वा तहिं रज्ज पापत्थ निरयं भुस ॥३४॥
वीसतिं चेव वस्सानि तहिं रज्जमकारयिं,
असीति वस्ससहस्सानि निरयम्हि अपच्चिस ॥३५॥
तस्स रज्जस्सहं भीतो मा म रज्जाभिसेचयु,
तस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणिं तदा ॥३६॥
उच्छङ्गे म निसीदेत्वा पिता अत्थानुसासति,
एक हनथ बन्धथ एक खारापतच्छिक,
एक सूलस्मि अप्पेथ इच्चस्समनुसासति ॥३७॥

[मुझे उस राज्य, धन तथा रिश्तेदारो की अपेक्षा नही है, हे सारथि ! जो मुझे अधर्म-चर्या से प्राप्त हो ।।२३।।]

सारथी बोला—

पुण्णपत्तं पलब्भेहि राजपुत्त इतो गतो,
पिता माता च मे दज्जु राजपुत्त तयि गते ।।२४।।
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
तेपि अत्तमना दज्जु राजपुत्त तयि गते ।।२५।।
हत्थारूहा अणीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
तेपि दज्जु पतीता मे राजपुत्त तयि गते ।।२६।।
वहू जानपदा चञ्ञे नेगमा च समागता,
उपायनानि मे दज्जु राजपुत्त तयि गते ।।२७।।

[हे राजपुत्र ! यहाँ से जाने पर पूर्ण-सतोप मिलेगा । हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर (तेरे) पिता-माता मुझे (वहुत कुछ) देगे ।।२४।। रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण—ये सब भी सन्तुष्ट होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (वहुत कुछ) देगे ।।२५।। हाथी-सवार, घुडसवार, रथी और पैदल भी प्रसन्न होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (बहुत कुछ) देगे ।।२६।। दूसरे बहुत जान-पद तथा आगत नेगम भी हे राजकुमार तेरे जाने पर मुझे बहुत सी भेंट देगे ।।२७।।]

बोधिसत्व का उत्तर था—

पितुमातुवह चत्तो रट्ठस्स निगमस्स च,
अथो सब्बकुमारान नत्थि मय्ह सक घर ।।२८।।
अनुञ्ञातो अह मत्या सञ्चत्तो पितरा अह
एको अरञ्ञे पब्बजितो न कामे अभिपत्थये ।।२९।।

[पिता-माता ने मुझे छोड दिया । राष्ट्र ने और निगम ने भी । सभी कुमारो ने भी । मेरा अपना घर नही है ।।२८।। मुझे माता ने अनुज्ञा दे दी और पिता ने त्याग दिया । मैंने अकेले जगल मे प्रव्रज्या ग्रहण की है । मुझे काम भोगो की इच्छा नही है ।।२९।।]

इस प्रकार अपने गुणो की याद करने से बोधिसत्व के मन में आनन्द पैदा हो गया। तब आनन्दाभिभूत हो उसने उल्लास-पूर्ण-गाथाये कहीं—

अपि अतरमानान फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एव जानाहि सारथि ॥३०॥
अपि अतरमानानं सम्मदत्थो विपच्चति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि निक्खन्तो अकुतोभयो ॥३१॥

[सब्र करने से फल की आशा पूरी हो जाती है। हे सारथी ! तू यह जान ले कि मै सिद्ध-ब्रह्मचारी हूँ ॥३०॥ सब्र करने से अर्थ अच्छी तरह पूरा होता है। मै सिद्ध ब्रह्मचारी हू। मुझे (घर से) निकलने मे क्या भय ? ॥३१॥]

सारथी बोला—

एवं वग्गुकथो सन्तो विस्सट्ठवचनोचसि,
कस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणी तदा ॥३१॥

[जब तेरी वाणी इतनी सुन्दर और स्पष्ट है तो तू ने पिता और माता के पास मुह क्यो नही खोला ? ॥३२॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

नाह असत्थिता पक्खो न बधिरो असोतता,
नाहं अजिह्वता मूगो मा मं मूगो अधारयि ॥३३॥
पुरिमं सरामह जातिं यत्थ रज्जमकारयिं,
कारयित्वा तहिं रज्ज पापत्थ निरयं भुस ॥३४॥
वीसतिं चेव वस्सानि तहिं रज्जमकारयिं,
असीति वस्ससहस्सानि निरयम्हि अपच्चिस ॥३५॥
तस्स रज्जस्सह भीतो मा मं रज्जाभिसेचयु
तस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणिं तदा ॥३६॥
उच्छङ्गे म निसीदेत्वा पिता अत्थानुसासति,
एक हनथ बन्धथ एक खारापतच्छिक,
एक सूलस्मि अप्पेथ इच्चस्समनुसासति ॥३७॥

तस्साह फरुसं सुत्वा वाचायो समुदीरिता,
अमूगो मूगवण्णेन अपक्खो पक्खसम्मतो
सके मुत्तकरीसस्मि अच्छाह सम्परिप्लुतो ॥३८॥
कसिरञ्च परित्तञ्च तञ्च दुक्खेन संयुत,
को त जीवितमागम्म वेर कयिराथ केनचि ॥३९॥
पञ्ञाय च अलाभेन धम्मस्स च अदस्सना,
को तं जीवितमागम्म वेर कयिराथ केनचि ॥४०॥
अपि अतरमानान फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एव जानाहि सारथि ॥४१॥
अपि अतरमानान सम्मदत्थो विपच्चति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि निक्खन्तो अकुतोभयो ॥४२॥

[मैं जाघ न होने से लगडा नही हूं, कान न होने से बहरा नही हूँ और जिह्वा न होने से गूगा नही हूँ। मुझे तू गूगा मत समझ ॥३३॥ मुझे अपने पूर्व जन्म का स्मरण है, जहाँ मैंने राज्य किया। वहाँ राज्य करने से मैं चिरकाल तक नरक मे रहा ॥३४॥ वहाँ मैंने बीस वर्ष राज्य किया और नरक (की आग) मे मुझे बीस हजार वर्ष पकना पडा ॥३५॥ उस राज्य से मैं भय-भीत हूँ। मुझे डर था कि मेरा राज्याभिषेक न कर दे। इस लिये मै उस समय पिता और माता के पास नही बोला ॥३६॥ मुझे गोद मे बिठाकर पिता अनुशासन करता था—एक को मारो, एक को बाधो, एक को यन्त्रणा दो और एक को सूली पर चढाओ ॥३७॥ मैं उसकी कठोर वाणी सुनकर गूगा न होता हुआ भी गूगा बन गया, लगडा न होता हुआ भी लगडा हो गया। मैं अपने पेशाब-पाखाने में लथ-पथ पडा रहा ॥३८॥ कठिन, थोडा-सा तथा दु:ख से प्राप्त। इस जीवन के लिये कौन किसी से वैर करे! ॥३९॥ प्रज्ञा न होने से तथा धर्म का दर्शन न होने से, इस जीवन के लिये कौन किसी से वैर करे ॥४०॥ सब्र करने से निकलने मे क्या भय ॥४१-४२॥]

यह सुन सुनन्द ने सोचा, "इस कुमार ने राज्य-ऐश्वर्य को लाश के समान छोड दिया है। यह अपने सकल्प पर दृढ रह प्रव्रजित होने के लिये वन मे प्रविष्ट हुआ है।

मुझे ही इस दुर्जीवन से क्या प्रयोजन है ? मैं भी इसके साथ प्रव्रजित होऊगा" उसने यह गाथा कही—

अहम्पि पब्बजिस्सामि राजपुत्त तवन्तिके,
अव्हयस्सु म भद्दन्ते पवज्जा मम रुच्चति ॥४३॥

[हे राजपुत्र ! मैं भी तेरे पास प्रव्रजित होऊँगा । तेरा भला हो ! मेरा भी आह्वाहन कर। मुझे प्रव्रज्या अच्छी लगती है ॥४३॥]

उसके इस प्रकार प्रार्थना करने पर बोधिसत्व ने सोचा, "यदि मैं अभी इसे प्रव्रजित कर दूगा, तो मेरे माता-पिता यहाँ नही आ सकेगे । उनकी हानि होगी । ये घोडे, रथ तथा अलकार नष्ट हो जायेगे । मेरी निन्दा भी होगी कि वह यक्ष है, सारथी को खा गया ।" इस प्रकार अपने आपको निन्दा से बचाने के लिये तथा माता-पिता की अभिवृद्धि का ख्याल कर उसने घोडे, रथ और अलकार उसे 'ऋण' करके दिये और कहा—

रथ निय्यादयित्वान अनणो एहि सारथि,
अनणस्स हि पबज्जा एत इसिहि वण्णित ॥४४॥

[हे सारथी ! रथ को सौपकर 'उऋण' होकर आ । ऋषियो ने 'उऋण' की प्रव्रज्या की ही प्रशसा की है ॥४४॥]

यह सुन सारथी ने सोचा, "यदि मेरे नगर मे चले जाने पर यह अन्यत्र चला जाय, और इसका पिता यह समाचार सुनकर 'मेरे पुत्र को दिखाओ', कह चला आये, और वह इसे न देखे, तो वह मुझे राज्य-दण्ड भी दे सकता है । इसलिये मै अपने गुण कहकर इस से अन्यत्र कही न जाने की प्रतिज्ञा कराऊँगा" उसने दो गाथाये कही—

यदेव त्याह वचन अकर भद्दमत्थु ते,
तदेव मे त्वं वचन याचितो कत्तुमरहसि ॥४५॥
इधेव ताव अच्छस्सु याव राजानमानये,
अप्पेव ते पिता दिस्वा पतीतो सुमनो सिया ॥४६॥

[तुम्हारा भला हो, जैसे मै तुम्हारा कहना करता हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे लिये यह योग्य है कि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ॥४५॥ जब तक मैं राजा को लेकर

नही आता हूँ, तब तक यही रहो। यह सम्भव है कि तुम्हारे पिता को तुम्हें देखकर आनन्द हो ॥४६॥]

तब बोधिसत्व बोला—

करोमि ते त वचन य म भणसि सारथि,
अहम्पि दट्ठुकामोस्मि पितरम्मे इधागत ॥४७॥
एहि सम्म निवत्तस्सु कुसल वज्जासि ञातिन,
मातर पितर मय्हं वुत्तो वज्जासि वन्दन ॥४८॥

[सारथी ! जो तू मुझे करने को कहता है मैं तेरे कहने के अनुसार करूँगा। मै भी यहाँ आने पर अपने पिता का दर्शन करना चाहता हूँ ॥४७॥ मित्र ! तू जाकर (शीघ्र) लौटकर आ। रिश्तेदारो को मेरा कुशल-समाचार कहना और माता-पिता से मेरा प्रणाम कहना ॥४८॥]

उसने सन्देश लिया, और

तस्स पादे गहेत्वान कत्वा च न पदक्खिण,
सारथी रथमारुय्ह राजद्वार उपागमि ॥४९॥

[उसके पैरो मे पड और उसकी प्रदक्षिणा कर, सारथी रथ पर चढकर राज-द्वार आ पहुचा ॥४९॥]

उस समय चन्द्रा देवी झरोखे मे बैठी सारथी के आने की प्रतीक्षा कर रही थी कि मेरे पुत्र का क्या समाचार लाता है ? उसने उसे अकेले आता देखा तो रोने-पीटने लगी।

इसी बात को स्पष्ट करने के लिये शास्ता ने कहा—

सुञ्ञ माता रथं दिस्वा एक सारथिमागत,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि रोदन्ती न उदिक्खति ॥५०॥
अय सो सारथी एति निहन्त्वान ममत्रजं
निहतो नून मे पुत्तो पथव्या भूमिवड्ढनो ॥५१॥
अमित्ता नून नन्दन्ति पतीता नूनवेरिनो,
आगत सारथि दिस्वा निहन्त्वान ममत्रज ॥५२॥

सुञ्ञ माता रथं दिस्वा एक सारथिमागतं,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि रोदन्ति परिपुच्छति ॥५३॥
किन्नु मूगो किन्नु पक्खो किन्नु सो विलपी तदा,
निहञ्ञमानो भूमिया तम्मे अक्खाहि सारथी ॥५४॥
कथं हत्थेहि पादेहि मूगो पक्खो विवज्जयि,
निहञ्ञमानो भूमिया तम्मे अक्खाहि पुच्छितो ॥५५॥

[रथ को शून्य तथा सारथी को अकेला आया देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से रोती हुई माता उसकी ओर देखने लगी ॥५०॥ मेरे पुत्र को मारकर यह सारथी चला आ रहा है। इसने निश्चय से मेरे भूमि के पृथ्वी-वर्धन पुत्र को मार डाला ॥५॥ निस्सन्देह मेरे पुत्र को मारकर आये सारथी को देख कर शत्रु तथा वैरी आनन्दित होगे ॥५२॥ रथ को शून्य तथा सारथी को अकेला आया देख अश्रुपूर्ण नेत्रो से रोती हुई माता ने पूछा ॥५३॥ क्या वह गूगा ही रहा ! क्या वह जड ही रहा ? अथवा भूमि में गाडे जाने के समय वह बोला ? हे सारथी ! मुझे यह बता ॥५४॥ हे सारथी ! मै तुझे पूछती हूँ, मुझे बता कि गाडे जाते समय उस गूगे ने, उस लगडे ने हाथ पैरो से तुझे कैसे मना किया ॥५५॥]

सारथी बोला—

अक्खिस्सं ते अहं अय्ये दज्जासि अभयं मम,
यम्मे सुतं वा दिट्ठं वा राजपुत्तस्स सन्तिके ॥५६॥

[हे आर्ये ! यदि मुझे 'अभय' मिले तो जो कुछ मैने राजपुत्र के पास सुना या देखा, वह मै सब कहूँ ॥५६॥]

चन्द्रा देवी बोली—

अभयं सम्म ते दम्मि अभीतो भण सारथि,
यं ते सुतं वा दिट्ठं वा राजपुत्तस्स सन्तिके ॥५७॥

[मै तुझे 'अभय' देती हूँ। हे सारथी ! जो कुछ तूने राज-पुत्र के पास देखा या सुना, उसे निर्भय होकर कह ॥५७॥]

तव सारथी वोला—

न सो मूगो न सो पक्खो विस्सट्ठवचनोव सो,
रज्जस्स किर सो भीतो अकरी आलये बहू ।।५८।।
पुरिम सो सरती जांति यत्थ रज्जमकारयि,
कारयित्वा तहिं रज्ज पापत्थ निरय भुस ।।५९।।
वीसतिञ्चेव वस्सानि तहिं रज्जमकारयि,
असीति वस्स सहस्सानि निरयम्हि अपच्चि सो ।।६०।।
तस्स रज्जस्स सो भीतो मा म रज्जाभिसेचयुं,
तस्मा पितुच्च मातुचव सन्तिके न भणी तदा ।।६१।।
अगपच्चगसम्पन्नो आरोहपरिनाहवा,
विस्सटठवचनो पञ्ञो मग्गे सग्गस्स तिट्ठति ।।६२।।
सचे त्व दट्ठुकामासि राजपुत्ति तवत्रज,
एहि त पापयिस्सामि यत्थ सम्मति तेमियो ।।६३।।

[न वह गूगा है, न वह जड है। वह स्पष्ट वाणी वोलता है। उसने राज्य से भयभीत होने के कारण ही वहुत से ढग वनाये ।।५८।। उसे अपना पूर्व-जन्म याद है, जहाँ उसने राज्य किया। वहाँ राज्य करके वह दीर्घ-काल तक नरक मे रहा ।।५९।। वीस वर्ष उसने वहाँ राज्य किया, और बीस हजार वर्ष तक वह नरक मे पकता रहा ।।६०।। उस राज्य के कारण ही उसे डर लगता था कि कही फिर मुझे राजा न वना दे। इसलिये उस समय उसने पिता और माता के सामने मुह नही खोला ।।६१।। उसके अग-प्रत्यग सम्पूर्ण है, वह लम्वा-चौडा है, उसकी वाणी-स्पष्ट है, वह प्रज्ञावान है तथा वह स्वर्ग के मार्ग पर आरूढ है ।।६२।। हे राजपुत्री ! यदि तू अपने पुत्र को देखना चाहती है, तो आ मैं तुझे वहाँ ले चलू जहाँ तेमिय रहता है ।।६३।।]

कुमार सारथी को विदा कर चुका तो उसकी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई। उसके मन की वात जान शक्र ने विश्वकर्मा को भेजा "तात ! तेमिय कुमार प्रव्रजित होना चाहता है। उसके लिये पर्णशाला और प्रव्रजित की आवश्यकताये तैयार करके आ।" उसने अच्छा' कह स्वीकार किया, और जल्दी से आकर तीन योजन के वन-खण्ड मे आश्रम का निर्माण किया। फिर उसे रात्रि-स्थान, दिन के स्थान,

पुष्करिणी, गढे और फलो के वृक्षो से युक्त कर, प्रव्रजितो की आवश्यकतायें तैयार की और अपने निवास-स्थान पर लौट आया। बोधिसत्व ने उसे देख जान लिया कि शक्र की व्यवस्था है। उसने पर्णशालामे प्रवेश कर वस्त्र उतारे और रक्तवर्ण वल्कल-चीर धारण कर, अजिन चर्म को एक कन्धे पर रखा ओर जटा बांधी। फिर वँहगी को कन्धे पर रख, हाथ की लकडी ले, पर्णशाला से निकला और प्रव्रजित-श्री का प्रदर्शन करते हुए, इधर उधर चन्क्रमण करने लगा। इसके बाद 'अहो सुख', 'अहो सुख' कहते हुए पर्णशाला मे प्रवेश किया और काष्ठासन पर बैठ पाँच अभिञ्ञायें प्राप्त की। शाम को निकलकर चन्क्रमण-भूमि के सिरे पर खडे वृक्ष से पत्ते ले, उन्हे शक्र के दिये हुए बरतन मे, बिना निमक के, बिना घी (तक्र) के, बिना छौंके, पानी मे उबालकर अमृत का सेवन करने की तरह खाया और चारो ब्रह्मविहारो की भावना करता हुआ वही रहने लगा।

काशीराज ने भी सुनन्द की बात सुन महा सेना-रक्षक को बुला चलने की तैयारी करने को कहा—

योजयन्तु रथे अस्से कच्छ नागानवम्मथ,
उदीरयन्तु सङ्खपणवा वदन्तु एकपोक्खरा ॥६४॥
नदन्तु भेरी सन्नद्धा वग्गुं वदतु दुन्दुभि
नेगमा च म अन्वेन्तु गच्छ पुत्तनिवेदको ॥६५॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छ पुत्तनिवेदको ॥६६॥
हत्थारोहा अणीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छ पुत्तनिवेदको ॥६७॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छ पुत्तनिवेदको ॥६८॥

[रथो मे घोडे जोते जाये, हाथियो का साज-सामान (कच्छ ?) बान्धा जाय। शङ्ख तथा पणव बजाये जाये और एक पोक्खर (-वाद्य) बजे ॥६४॥ भेरी-वादक भेरी बजाये और दुन्दुभि सुन्दर प्रकार से वजे। मै पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ। निगम-वासी मेरे पीछे-पीछे आयें ॥६५॥ मै पुत्र को निवेदन

करने जा रहा हूँ। रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण शीघ्र यानो को जुतवाये ॥६६॥ मै पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ । हाथी- असवार, घुड-सवार, रथी तथा पैदल शीघ्र यानो को जुतवाये ॥६७॥ मै पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ । आगत जनपद के लोग तथा आगत निगमवासी शीघ्र यान जुतवाये ॥६८॥]

इस प्रकार राजाज्ञा से रथो मे घोडे जोते गये और रथों को राज-द्वार पर लाकर राजा को सूचना दी गई। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

अस्से च सारथी युत्ते सिन्धवे सीघवाहने,

राजद्वारं उपागञ्छु युत्ता देव इमे हया॥६९॥

[सैन्धव, शीघ्रगामी घोडे जुते रथो को लेकर सारथी राज-द्वार पर आये और बोले, "देव ! ये घोडे जुते है ॥" ॥६४॥]

तब राजा बोला—

थूला जवेन हायन्ति, किसा हायन्ति थामुना।

[स्थूल तेज चलने से थक जाते है और कृष बल की कमी से थक जाते है ॥]

इस प्रकार के घोडे न लो। सारथी बोला—

'किसे थूले विवज्जेत्वा ससट्ठा योजिता हया'

[कृष और स्थूलो को छोड कर समान गति तथा बल-वाले ही जोते गये है ॥७०॥]

राजा ने पुत्र के पास जाने के लिये चारो प्रकार की अठारह सेनायें तथा तमाम फौज इकट्ठी की। सारी फौज को इकट्ठे करने मे तीन दिन बीत गये। चौथे दिन निकल, लेने योग्य सभी वस्तुये ले, आश्रम पहुच, पुत्र को देख, आनन्दित हो कुशल-क्षेम वार्तालाप किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च राजा तरमानो युत्त मारुय्ह सन्दन,
इत्थागार अज्झभासि सब्बाव अनुयाथ मे॥७१॥
वाळबीजनिमुण्हीस खग्गं छत्तञ्च पण्डर,
उपाधिरथमारुय्ह सुवण्णेन अलकता॥७२॥

ततो च राजा पायासि पुरक्खत्वान सारथि

खिप्पमेव उपागञ्छि यत्थ सम्मति तेमियो ॥७३॥

तञ्च दिस्वान आयन्त जलन्तमिव तेजसा

खत्तसघपरिब्बूळह् तेमियो एतदब्रवि ॥७४॥

[तव शीघ्रतापूर्वक रथ पर चढते हुए राजाने सभी स्त्रियो को कहा, "मेरे पीछे-पीछे आओ ॥७१॥ चौंरी, उष्णीप, तलवार, श्वेत छत्र लेकर स्वर्ण मे अलकृत (राजा) रथ पर चढा ॥७२॥ उसी समय राजा सारथि को आगे कर निकल पडा और जहाँ तेमिय रहता था वहाँ शीघ्र ही जा पहुचा ॥७३॥ तेज मे चमकते हुए के समान तथा क्षत्रियो के वीच उसे आता देखकर तेमिय बाला ॥७४॥]

तेमिय—कच्चिन्नु तात कुसल कच्चि तात अनामय,

कच्चिन्नु राजकञ्ञायो अरोगा मय्ह् मातरो ॥७५॥

राजा—कुसलञ्चेव मे पुत्त अथो पुत्त अनामय,

सब्बाव राजकञ्ञायो अरोगा तुय्ह् मातरो ॥७६॥

[तात ! क्या कुशल है ? क्या सभी स्वस्थ है ? क्या मेरी राज-कन्या मातायें निरोग है ? ॥७५॥ पुत्र ! सभी कुशल है, सभी स्वस्थ है। तेरी सभी राजकन्या माताये निरोग है ? ॥७६॥]

तेमिय—कच्चिस्स मज्जपो तात कच्चि ते सुरमप्पिय

कच्चि सच्चे च धम्मे च दाने ते रमती मनो ॥७७॥

राजा—अमज्जपो अह पुत्त अथो मे सुरमप्पिय,

अथो सच्चे च धम्मे च दाने मे रमती मनो ॥७८॥

[तात क्या तू अमद्यप है ? क्या तुझे सुरा अप्रिय है ? क्या सत्य, धर्म तथा दान तुझे अच्छा लगता है ॥७७॥ पुत्र ! मै अमद्यप हूँ, मुझे सुरा अप्रिय है। सत्य, धर्म और दान मुझे अच्छा लगता है ॥७८॥]

तेमिय—अरोगं योग्ग ते कच्चि वहति वाहन,

कच्चि ते व्याधयो नीत्थ सरीरस्सुपतापना ॥७९॥

राजा—अथो अरोग योग्ग मे अथवो वहति वाहन,

अथो मे व्याधयो नत्थि सरीरस्सुपतापना ॥८०॥

[क्या तेरी (घोडे बैल आदि) की जोडियाँ निरोग हैं ? क्या तेरे वाहन (ठीक से) वहन करते हैं ? क्या तेरे शरीर मे कष्ट देनेवाली व्याधियाँ नही हैं ? ।।७९।। मेरी जोडियाँ निरोग हैं । मेरे वाहन (ठीक से) वहन करते हैं । मेरे शरीर मे कष्ट देनेवाली व्याधियाँ नही हैं ।।८०।।]

तेमिय—कच्चि अन्ता चते फीता मज्झे च बहुला तव,
कोट्ठागारञ्च कोसञ्ज कच्चि ते पटिमन्थत ।।८१।।

राजा—अथो अन्ता च मे फीता मज्झे च बहुला मम,
कोट्ठागारञ्च कोसञ्च सब्ब मे पटिसन्थतं ।।८२।।

[क्या तेरे प्रत्यन्त-जनपद समृद्ध हैं ? क्या मध्यभाग घना वसा है ? क्या तेरा भडार और कोष भरा है ? ।।८१।। प्रत्यन्त-जनपद समृद्ध है । मध्यभाग घना वसा है । भण्डार और कोष भरा है ।।८२।।]

तेमिय—स्वागत ते महाराज अथो ते अदुरागत
पतिट्ठापेन्तु पल्लक यत्थ राजा निसक्कति ।।८३।।

[महाराज ! तेरा स्वागत है । जहाँ राजा का बैठना हो, वहा पलग बिछाया जाय ।।८३।।]

बोधिसत्व के प्रति गौरव का भाव होने से राजा पलग पर नही बैठा । तब बोधिसत्व ने 'यदि पलग पर नही बैठता, तो पत्तो का आस्तरण बिछाओ' कह वह बिछवाया और उसके बिछ जाने पर गाथा कही—

इधेव ते निसिन्नस्स नियते पण्णसन्थते,
एत्तो उदकमादाय पादे पक्खालयन्तु ते ।।८४।।

[यही इस बिछे पत्तो के आस्तरण पर बैठे ही बैठे यहा से पानी लाकर तेरे पैर धोये जाये ।।८४।।]

राजा गौरव के कारण पत्तो के आसन पर भी न बैठ जमीन पर बैठा । बोधि-सत्व ने भी पर्ण-शाला मे जाकर और वह पत्तो का भोजन बाहर लाकर राजा को उसका निमत्रण देते हुए यह गाथा कही—

इदम्पि पण्णक मय्ह रन्ध राज अलोणक,
परिभुञ्ज महाराज पाहुनो मेसि आगतो ।।८५।।

[हे राजन् ! यह मेरा विना नमक के, पत्तो का वना हुआ भोजन है। महा-राज भोजन करे। आप हमारे अतिथि है ॥८५॥]

राजा वोला— न चाह पण्ण भुञ्जामि न हेत मय्ह भोजन
सालीन ओदन भुञ्जे सुचि मसूपसेवन ॥८६॥

[मै पत्ते नही खाता। यह मेरा भोजन नही है। मै मास के साथ शुद्ध शाली (-धान) के भात का भोजन करता हू ॥८६॥]

इस प्रकार राजा ने उस के भोजन का निषेध कर अपने भोजन की प्रशसा करते हुए भी, उसके प्रति गौरव प्रदर्शित करने के लिये थोडे पत्ते हाथ की हथेली पर ले, बैठकर उस से प्यारी बातचीत करने लगा "तात ! तू ऐसा भोजन खाता है ?"

उस समय रनिवास मे घिरी हुई चन्द्रा देवी पहुची। उसने प्रिय पुत्र को पैर पकडकर प्रणाम किया और आँखो मे आँसू भर एक ओर बैठी। राजा ने थोडे पत्ते उसके हाथ पर रखते हुए कहा, "भद्रे ! पुत्र का भोजन देख"। शेप स्त्रियो को भी थोडा-थोडा दिया। वे सभी, 'स्वामी। ऐसा भोजन करते हैं' कह, उसे ले, 'स्वामी ! वहुत दुष्कर कार्य्य करते हैं' कह उसे नमस्कार कर वैठ गई। तव राजा ने 'तात', मुझे यह वडे आश्चर्य की वात लगती है, कह गाथा कही—

अच्छेरक मं पटिभाति एककम्पि रहोगत,
एदिस भुञ्जमानान केन वण्णो पसीदति ॥८७॥

[मुझे यह वडा आश्चर्य मालूम देता है कि एकान्त में अकेले रहने और इस प्रकार का भोजन करने पर भी चेहरे पर तेज है ! ॥८७॥]

बोधिसत्व ने उसे उत्तर देते हुए कहा—

एको राज निपज्जामि नियते पण्णसन्थते,
ताय मे एक सेय्याय राज वण्णो पसीदति ॥८८॥
न चे नेत्ति सवन्धा मे राजरक्खा उपट्ठिता,
ताय मे सुखसेय्याय राज वण्णो पसीदति ॥८९॥
अतीत नानुसोचामि नप्पजप्पामनागत,
पच्चुप्पन्नेन यापेमि तेन वण्णो पसीदति ॥९०॥

अनागतप्पजप्पाय अतीतस्सानुसोचना,
एतेन बाला सुस्सन्ति नलोव हरितो लुतो ॥९१॥

[हे राजन् ! मैं पत्तो के नियत आस्तरण पर अकेला सोता हूँ। इससे चेहरे पर तेज है ॥८८॥ तलवार बांधे पहरेदार भी पहरे के लिये उपस्थित नही रहते। हे राजन् ! मेरे उस सुखपूर्वक सोने के कारण मेरे चेहरे पर तेज है ॥८९॥ मैं भूत-काल के सम्बन्ध मे और भविष्यकाल के सम्बन्ध मे भी सकल्प-विकल्प नही उठाता रहता, मै वर्तमान मे ही रहता हू, इससे मेरे चेहरे पर तेज है ॥९०॥ भविष्य सम्बन्धी सकल्प-विकल्प उठाते रहने तथा भूत-काल सम्बन्धी चिन्ता करते रहने से ही मूर्ख आदमी सूखते रहते है, जैसे काटा हुआ हरा बाँस ॥९१॥]

राजा ने विचार किया कि यहीं इसे राज्याभिषिक्त कर लेकर जाऊगा। यह सोच, उसने उसे राज्य का निमन्त्रण देते हुए कहा—

हत्थाणीकं रथाणीक अस्से पत्ती च वम्मिनो,
निवेसनानि रम्मानि अहं पुत्त ददामि ते ॥९२॥
इत्थागारम्पि ते दम्मि सब्बालकारभूसित,
ता पुत्त पटिपज्जस्सु त्वनो राजा भविस्ससि ॥९३॥
कुसला नच्चगीतस्स सिक्खिता चतुरित्थियो,
कामे त रमयिस्सन्ति किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥९४॥
पटिराजूहि ते कञ्ञा आनयिस्सं अलकता,
तासु पुत्ते जनेत्वान अथ पच्छा पब्बजिस्ससि ॥९५॥
युवा च दहरो चासि पठमुप्पत्तितो सुसु,
रज्ज कारेहि भद्दते कि अरञ्ञे करिस्ससि ॥९६॥

[हाथी-सेना, रथ-सेना, अश्व, पैदल, कवचधारी और हे पुत्र ! मै तुझे सुन्दर घर देता हूँ ॥९२॥ हे पुत्र ! मैं तुझे सभी अलकारो से अलकृत स्त्रियाँ भी देता हूँ। तू उन्हे ग्रहण कर। तू हमारा राजा होगा ॥९३॥ नृत्य-गीत मे कुशल, शिक्षित, चतुर स्त्रियाँ तेरे साथ रमण करेंगी, तू जगल मे क्या करेगा ? ॥९४॥ मै तेरे

लिये दूसरे राजाओं की कन्याएँ भी लाऊँगा। उनमे पुत्र पैदा करके, पीछे प्रव्रजित होना ॥९५॥ तू युवा है, तरुण है, उत्पत्ति मे ही शिशु है। तेरा भला हो, तू राज्य कर, जगल मे क्या करेगा ? ॥९६॥]

इससे आगे बोधिसत्व का धर्मोपदेश है—

युवा चरे ब्रह्मचरिय ब्रह्मचारी युवा सिया,
दहरस्स हि पब्बज्जा एत इसिहि वण्णित ॥९७॥
युवा चरे ब्रह्मचरिय ब्रह्मचारी युवा सिया,
ब्रह्मचरिय चरिस्सामि नाह रज्जेनमत्थिको ॥९८॥
पस्सामि वोह दहर अम्मतात वद नर
किच्छा लद्ध पिय पुत्त अप्पत्वाव जरमत ॥९९॥
पस्सामि वोह दहरिं कुमारिं चारुदस्सन
नलवसकलीरव पलुग्ग जीवितक्खये ॥१००॥
दहरापि हि मीयन्ति नरा च अथ नारियो,
तत्थ कोविस्ससे पोसो दहरोम्हीति जीविते ॥१०१॥
यस्स रत्या विवसने आयु अप्पतर सिया,
अप्पोदकेव मच्छान किन्नु कोमारक तहिं ॥१०२॥
निच्चमब्भाहतो लोको केन च परिचारितो,
अमोघासु वजन्तीसु किं म रज्जेन सिञ्चसि ॥१०३॥
केनमब्भाहतो लोको केन च परिवारितो,
कायो अमोघो गच्छन्ति त मे अक्खाहि पुच्छितो ॥१०४॥
मच्चुना ब्याहतो लोको जराय परिवारितो,
रत्यो अमोघा गच्छन्ति एव जानाहि खत्तिय ॥१०५॥
यथापि तन्ते वितते यं यदेवूपवीयति,
अप्पक होति वेतब्ब एव मच्चानजीवित ॥१०६॥
यथा वारिवहो पूरो गच्छसुपनिवत्तति,
एवमायु मनुस्सान गच्छसुपनिवत्तति ॥१०७॥

यथा वारिवहो पूरो वहे रुक्खूपकूलजे,
एवं जराय मरणेन वुय्हन्ते वन पाणिनो ।।१०८।।

[तरुण ब्रह्मचारी हो और ब्रह्मचारी तरुण हो । ऋषियो (बुद्धादि) ने तरुण की प्रव्रज्या के ही गुण गाये है ।।९७।। तरुण ब्रह्मचारी हो और ब्रह्मचारी तरुण हो । मै ब्रह्मचर्य्याचरण करूगा, मुझे राज्य की अपेक्षा नही ।।९८।। मै देखता हूँ कि 'माँ-माँ, पिता-पिता' कहनेवाला, बडी कठिनाई से प्राप्त हुआ पुत्र बूढा होने से पहले ही मर जाता है ।।९९।। मै देखता हूँ कि सुन्दर-वर्ण तरुण कुमारी, तरुण बाँस की तरह, मृत्यु को प्राप्त होकर छिन्नविछिन्न हो जाती है ।।१००।। नर और नारियाँ जवान भी मर जाती है । मै जवान हूँ, कहकर कौन जीवन का विश्वास करे ।।१०१।। रात्रि के अवसान की तरह जब आयु ही थोडी-सी हो, तो थोडे पानी की मछलियो के समान कुमार-पन का क्या अर्थ है ? ।।१०२।। जब ससार नित्य बन्धा हुआ है, जब ससार नित्य परिचालित है, जब अव्यर्थ (?) जा रहे है, तो मुझे क्या राज्या-भिषिक्त करता है ? ।।१०३।। (राजा ने प्रश्न किया) यह ससार किससे बधा हुआ है ? यह ससार किससे परिचालित है ? क्या अव्यर्थ जा रही है ?—यह मुझे बता ।।१०४।। ससार मृत्यु से बधा हुआ है, ससार जरा से परिचालित है, रात्रियाँ अव्यर्थ जा रही है—हे क्षत्रिय ! ऐसा जान ।।१०५।। जिस तरह जुलाहा ज्यो-ज्यो कपडा बुनता जाता है, त्यो-त्यो बुनने के लिये शेष रहा कपडा थोडा होता जाता है, वैसा ही आदमियो का जीवन है ।।१०६।। जिस प्रकार भरी हुई नदी चली ही जाती है, रुकती नही है, उसी प्रकार मनुष्यो की आयु चली ही जाती है, रुकती नही है ।।१०७।। जिस प्रकार भरी हुई नदी तट के वृक्षो को बहा ले जाती है, उसी प्रकार जरा तथा मृत्यु प्राणियो को बहा ले जाती है ।।१०८।।]

राजा ने बोधिसत्व की धर्मकथा सुनी तो उसे गृहस्थी से विरक्ति हो गई और उसकी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई । वह कहने लगा, 'मै फिर नगर नही जाऊँगा, यही रहूँगा । यदि मेरा लडका नगर जाये, तो इसे श्वेत छत्र दिया जाय ।' उसने उसका विचार जानने के लिये फिर राज्य स्वीकार करने का निमन्त्रण देते हुए कहा—

हत्थाणीक रथाणीक अस्से पत्ती च वम्मिनो,
निवेसनानि रम्मानि अह पुत्त ददामि ते ।।१०९।।

इत्थागारम्पि ते दम्मि सब्बालकारभूसित,
ता पुत्त पटिपज्जस्सु त्व नो राजा भविस्ससि ॥११०॥
कुसला नच्च गीतस्स सिक्खिता चतुरित्थियो,
कामे त रमयिस्सन्ति किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥१११॥
पटिराजूहि ते कञ्ञा आनयिस्स अलकता,
तासु पुत्ते जनेत्वान अथो पच्छा पब्बजिस्ससि ॥११२॥
युवाच दहरोचासि पठमुप्पत्तितो सुसु,
रज्ज कारेहि भद्द ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥११३॥
कोट्ठागारञ्च कोसञ्च वाहनानि वलानिच,
निवेसनानि रम्मानि अह पुत्त ददामि ते ॥११४॥
गोमण्डल परिब्बूलहो दासिसघपुरक्खतो,
रज्ज कारेहि भद्द ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥११५॥

[१०९–११३ (अर्थ ऊपर आ गया है) । भण्डार, कोष, वाहन, सेना तथा सुन्दर घर हे पुत्र ! मै तुझे देता हूँ ॥११४॥ सुभाषिणी राजकन्याओ के बीच रहकर, दासियो की सेवा प्राप्त करते हुए राज्य कर। तेरा भला हो। जगल मे क्या करेगा ? ॥११५॥]

वोधिसत्व ने राज्य की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—

किं धनेन य जीयेथ किं भरियाय मरस्सति
किं योब्बनेन चिण्णेन य जरा अभिहेस्सति ॥११६॥
तत्थ का नन्दि का खिड्डा का रतीका धनेसना
किं मे पुत्तेहि दारेहि राज मुत्तोस्मि बन्धना ॥११७॥
सोह एव पजानामि मच्चु मे न प्पमज्जति,
अन्तकेनाधिपन्नस्स का रती का धनेसना ॥११८॥
फलानमिव पक्कान निच्च पतनतो भय,
एव जातान मच्चान निच्च मरणतो भय ॥११९॥
सायमेके न दिस्सन्ति पातो दिट्ठा बहुज्जना
पातो एके न दिस्सन्ति साय दिट्ठा बहुज्जना ॥१२०॥

अज्जेव किच्च आतप्प को जञ्ञा मरण सुवे,
नहि नो संगर तेन महासत्तेन मच्चुना ॥१२१॥
चोरा धनस्स पत्थेन्ति राज मुत्तोस्मि बन्धना,
एहि राज निवत्तस्सु नाह रज्जेन मत्थिको ॥१२२॥

[उस धन से क्या जो नष्ट हो जायगा, उस भार्य्या से क्या जो मर जायगी, उस यौवन से क्या जिसे जरा समाप्त कर देगी ॥११६॥ इसमे क्या आनन्द, क्या खिलवाड, क्या मजा और क्या धन की लालसा ? राजन् ! मुझे पुत्रो से और स्त्री से क्या, मै बन्धन से मुक्त हो गया हूँ ॥११७॥ मै यह जानता हूँ कि मृत्यु मेरे विषय मे प्रमाद नही करेगी । यमराज के सिर पर रहते हुए क्या मजा और क्या धन की लालसा ! ॥११८॥ पके फलो के लिये नित्य गिर पडने का भय बना है उसी प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियो के लिये नित्य मरने का भय बना है ॥११९॥ जो बहुत से जन प्रात काल दिखाई देते है, उनमे से कुछ सायकाल नही दिखाई देते और जो बहुत से सायकाल दिखाई देते है, उनमे से कुछ प्रात काल नही दिखाई देते ॥१२०॥ आज ही प्रयत्न करणीय है, कौन जानता है कल मरना हो । उस महान सेना वाले मृत्यु से हमारा कोई समझौता नही है ॥१२१॥ चोर धन की इच्छा करते है, राजन् ! मै (धनेच्छा रूपी) बन्धन से मुक्त हुआ । राजन् । आप मेरे वचन मे दृढ हो। मुझे राज्य की अपेक्षा नही ॥१२२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व का उपदेश यथाक्रम समाप्त हुआ । यह सुन राजा तथा चन्द्रा देवी से आरम्भ करके सोलह हजार रनिवास के लोग तथा अमात्यादि प्रव्रज्या के लिये तैयार हुए। राजा ने मुनादी करा दी, "जो मेरे पुत्र के पास प्रव्रजित होना चाहते है, वे प्रव्रजित हो जाँय।" उसने सभी स्वर्ण-भाण्डारादि के दरवाजे खुलवाकर 'अमुक अमुक स्थान मे खजाने के बडे-बडे घडे है, उन्हे ले लें' स्वर्ण-पट्ट पर लिखवाकर राज प्रासाद के ऊपर खम्भे से बन्धवा दिया । नागरिक भी दुकानो तथा घरो को खुला छोडकर राजा के पास गये । जनता सहित राजा ने बोधिसत्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण की । तीन योजन का शक्र प्रदत्त आश्रम हो गया ।

बोधिसत्व ने पर्ण-कुटियो का विचार किया । यह कहकर कि स्त्रियाँ भीरु

स्वभाव की होती है, उसने स्त्रियो को बीच की कुटियाँ दिलवाई और पुरुषों को बाहर की। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित फलो के वृक्षो मे सभी लोग जमीन पर खडे ही खडे फल लेकर, खाकर श्रमण-धर्म करते थे। जिसके मन में काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क विहिंसा-वितर्क पैदा होता, उसके मन की बात जानकर बोधिसत्व आकाश मे बैठकर धर्मोपदेश देते। उसे सुन लोग शीघ्र ही अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ करते। एक सामन्त-राजा ने जब यह सुना कि काशी-राज्य प्रव्रजित हो गया, तो वह वाराणमी का राज्य लेने की नीयत से (वाराणसी) आया। उसने नगर मे प्रवेश करके अलकृत नगर को देखा और राजभवन पर चढ सात प्रकार के रतन देखे। उसने सोचा यह धन किसी भय का कारण हो सकता है। उसने एक सुरापायी को बुलवाकर पूछा—"राजा किस द्वार से निकला ?" उत्तर मिला, "पूर्व द्वार से।" वह भी उसी द्वार से निकलकर नदी तट पर पहुचा। उमके आने का समाचार पा, बोधिसत्व ने वहाँ पहुच, आकाश मे स्थित होकर धर्मोपदेश दिया। परिपद सहित वह राजा बोधिसत्व के पास प्रव्रजित हुआ। इमी प्रकार ओर भी तीन राज्य छोड दिये गये। हाथी आरण्यक-हाथी हो गये, अश्व भी आरण्यक-अश्व हो गये। रथ आरण्य में ही विनष्ट हो गये। भाण्डागारो मे के कार्पापण आश्रम मे वालुका की तरह बिखेर दिये गये। सभी ने आठ समापत्तियाँ लाभ की और जीवन की समाप्ति पर ब्रह्म-लोकगामी हुए। पशुयोनि के हाथी, घोडे भी ऋषि-गण के प्रति श्रद्धावान् होने के कारण छ काम-स्वर्गो में उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, 'भिक्षुओ, न केवल अभी, मैंने पहले भी र... छोड अभिनिष्क्रम किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय छत्र में ...नेवाली देवी उत्पलवर्णा थी, सारथी सारिपुत्र था, मातापिता महाराज-कुल, ... बुद्ध-परिपद, और मूगपक्ख पण्डित तो मैं ही था।

सिहल-द्वीप में आकर मङ्गणवासी खुद्दकतिस्स स्थविर तथा महावसक ... , कटवन्धकारवासी फुस्सदेव स्थविर, उपरिमण्डल मालवासी महारक्षित ... मग्गरिवासी महातिस्स स्थविर, वामन्थयपब्भारवासी महामीव स्थविर ... मलिय महादेव स्थविर—ये सब स्थविर कुद्दालक-सम्मेलन में,

अज्जेव किच्चं आतप्प को जञ्ञा मरण सुवे,
नहि नो सगर तेन महासत्तेन मच्चुना ॥१२१॥
चोरा धनस्स पत्थेन्ति राज मुत्तोस्मि बन्धना,
एहि राज निवत्तस्सु नाहं रज्जेन मत्थिको ॥१२२॥

[उस धन से क्या जो नष्ट हो जायगा, उस भार्य्या से क्या जो मर जायगी, उस यौवन से क्या जिसे जरा समाप्त कर देगी ॥११६॥ इसमे क्या आनन्द, क्या खिलवाड, क्या मजा और क्या धन की लालसा ? राजन् ! मुझे पुत्रो से और स्त्री से क्या, मै बन्धन से मुक्त हो गया हूँ ॥११७॥ मै यह जानता हूँ कि मृत्यु मेरे विषय मे प्रमाद नही करेगी। यमराज के सिर पर रहते हुए क्या मजा और क्या धन की लालसा ! ॥११८॥ पके फलो के लिये नित्य गिर पडने का भय बना है उसी प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियो के लिये नित्य मरने का भय बना है ॥११९॥ जो बहुत से जन प्रात काल दिखाई देते है, उनमे से कुछ सायकाल नही दिखाई देते और जो बहुत से सायकाल दिखाई देते है, उनमे से कुछ प्रात काल नही दिखाई देते ॥१२०॥ आज ही प्रयत्न करणीय है, कौन जानता है कल मरना हो। उस महान सेना वाले मृत्यु से हमारा कोई समझौता नही है ॥१२१॥ चोर धन की इच्छा करते है, राजन् ! मै (धनेच्छा रूपी) बन्धन से मुक्त हुआ। राजन्। आप मेरे वचन मे दृढ हो। मुझे राज्य की अपेक्षा नही ॥१२२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व का उपदेश यथाक्रम समाप्त हुआ। यह सुन राजा तथा चन्द्रा देवी से आरम्भ करके सोलह हजार रनिवास के लोग तथा अमात्यादि प्रव्रज्या के लिये तैयार हुए। राजा ने मुनादी करा दी, "जो मेरे पुत्र के पास प्रव्रजित होना चाहते है, वे प्रव्रजित हो जाँय।" उसने सभी स्वर्ण-भाण्डारादि के दरवाजे खुलवाकर अमुक अमुक स्थान मे खजाने के बडे-बडे घडे है, उन्हे ले लें' स्वर्ण-पट्ट पर लिखवाकर राज प्रासाद के ऊपर खम्भे से बन्धवा दिया। नागरिक भी दुकानो तथा घरो को खुला छोडकर राजा के पास गये। जनता सहित राजा ने बोधिसत्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। तीन योजन का शक्र प्रदत्त आश्रम हो गया।

बोधिसत्व ने पर्ण-कुटियो का विचार किया। यह कहकर कि स्त्रियाँ भीरु

स्वभाव की होती है, उसने स्त्रियो को बीच की कुटियां दिलवाई और पुरुषो को बाहर की। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित फलो के वृक्षो मे सभी लोग जमीन पर खडे ही खडे फल लेकर, खाकर श्रमण-धर्म करते थे। जिसके मन मे काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क विहिंसा-वितर्क पैदा होता, उसके मन की बात जानकर बोधिसत्व आकाश मे बैठकर धर्मोपदेश देते। उसे सुन लोग शीघ्र ही अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ करते। एक सामन्त-राजा ने जब यह सुना कि काशी-राज्य प्रव्रजित हो गया, तो वह वाराणमी का राज्य लेने की नीयत से (वाराणसी) आया। उसने नगर मे प्रवेश करके अलकृत नगर को देखा और राजभवन पर चढ सात प्रकार के रतन देखे। उसने सोचा यह धन किसी भय का कारण हो सकता है। उसने एक सुरापायी को बुलवाकर पूछा—"राजा किस द्वार से निकला ?" उत्तर मिला, "पूर्व द्वार से।" वह भी उसी द्वार से निकलकर नदी तट पर पहुचा। उसके आने का समाचार पा, बोधिसत्व ने वहाँ पहुच, आकाश मे स्थित होकर धर्मोपदेश दिया। परिषद सहित वह राजा बोधिसत्व के पास प्रव्रजित हुआ। इसी प्रकार ओर भी तीन राज्य छोड दिये गये। हाथी आरण्यक-हाथी हो गये, अश्व भी आरण्यक-अश्व हो गये। रथ आरण्य मे ही विनष्ट हो गये। भाण्डागारो में के कार्षापण आश्रम मे वालुका की तरह बिखेर दिये गये। सभी ने आठ समापत्तियाँ लाभ की और जीवन की समाप्ति पर ब्रह्म-लोकगामी हुए। पशुयोनि के हाथी, घोडे भी ऋषि-गण के प्रति श्रद्धावान् होने के कारण छ काम-स्वर्गो मे उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, 'भिक्षुओ, न केवल अभी, मैंने पहले भी राज्य छोड अभिनिष्क्रम किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय छत्र मे रहनेवाली देवी उत्पलवर्णा थी, सारथी सारिपुत्र था, मातापिता महाराज-कुल, परिषद बुद्ध-परिषद, और मूगपक्ख पण्डित तो मैं ही था।

[सिंहल-द्वीप में आकर मङ्गणवासी खुद्दकतिस्स स्थविर तथा महावसक स्थविर, कटकन्धकारवासी फुस्सदेव स्थविर, उपरिमण्डल मालवासी महारक्षित स्थविर, भग्गरिवासी महातिस्स स्थविर, वामन्तयपब्भारवासी महासीव स्थविर और कळावेलवासी मलिय महादेव स्थविर—ये सब स्थविर कुद्दालक-सम्मेलन मे,

अज्जेव किच्च आतप्प को जञ्ञा मरण सुवे,
नहि नो सगर तेन महासत्तेन मच्चुना ॥१२१॥
चोरा धनस्स पत्थेन्ति राज मुत्तोस्मि बन्धना,
एहि राज निवत्तस्सु नाह रज्जेन मत्थिको ॥१२२॥

[उस धन से क्या जो नष्ट हो जायगा, उस भार्य्या से क्या जो मर जायगी, उस यौवन से क्या जिसे जरा समाप्त कर देगी ॥११६॥ इसमे क्या आनन्द, क्या खिलवाड, क्या मजा और क्या धन की लालसा ? राजन् ! मुझे पुत्रो से और स्त्री से क्या, मै वन्धन से मुक्त हो गया हूँ ॥११७॥ मै यह जानता हूँ कि मृत्यु मेरे विषय मे प्रमाद नही करेगी। यमराज के सिर पर रहते हुए क्या मजा और क्या धन की लालसा ! ॥११८॥ पके फलो के लिये नित्य गिर पडने का भय बना है उसी प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियो के लिये नित्य मरने का भय बना है ॥११९॥ जो बहुत से जन प्रात काल दिखाई देते है, उनमे से कुछ सायकाल नही दिखाई देते और जो बहुत से सायकाल दिखाई देते है, उनमे से कुछ प्रात काल नही दिखाई देते ॥१२०॥ आज ही प्रयत्न करणीय है, कौन जानता है कल मरना हो। उस महान सेना वाले मृत्यु से हमारा कोई समझौता नही है ॥१२१॥ चोर धन की इच्छा करते है, राजन् ! मै (धनेच्छा रूपी) वन्धन से मुक्त हुआ। राजन्। आप मेरे वचन मे दृढ हो। मुझे राज्य की अपेक्षा नही ॥१२२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व का उपदेश यथाक्रम समाप्त हुआ। यह सुन राजा तथा चन्द्रा देवी से आरम्भ करके सोलह हजार रनिवास के लोग तथा अमात्यादि प्रव्रज्या के लिये तैयार हुए। राजा ने मुनादी करा दी, "जो मेरे पुत्र के पास प्रव्रजित होना चाहते है, वे प्रव्रजित हो जॉय।" उसने सभी स्वर्ण-भाण्डारादि के दरवाजे खुलवाकर अमुक अमुक स्थान मे खजाने के बडे-बडे घडे है, उन्हे ले लें' स्वर्ण-पट्ट पर लिखवाकर राज प्रासाद के ऊपर खम्भे से बन्धवा दिया। नागरिक भी दुकानो तथा घरो को खुला छोडकर राजा के पास गये। जनता सहित राजा ने बोधिसत्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। तीन योजन का शक्र प्रदत्त आश्रम हो गया।

बोधिसत्व ने पर्ण-कुटियो का विचार किया। यह कहकर कि स्त्रियाँ भीरु

स्वभाव की होती है, उसने स्त्रियो को वीच की कुटियाँ दिलवाई और पुरुषो को बाहर की। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित फलो के वृक्षो मे सभी लोग जमीन पर खडे ही खडे फल लेकर, खाकर श्रमण-धर्म करते थे। जिसके मन मे काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क विहिंसा-वितर्क पैदा होता, उसके मन की वात जानकर वोधिसत्व आकाश मे वैठकर धर्मोपदेश देते। उसे सुन लोग शीघ्र ही अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ करते। एक सामन्त-राजा ने जव यह सुना कि काशी-राज्य प्रव्रजित हो गया, तो वह वाराणसी का राज्य लेने की नीयत से (वाराणसी) आया। उसने नगर मे प्रवेश करके अलकृत नगर को देखा और राजभवन पर चढ सात प्रकार के रतन देखे। उसने सोचा यह धन किसी भय का कारण हो सकता है। उसने एक सुरापायी को बुलवाकर पूछा—"राजा किस द्वार से निकला ?" उत्तर मिला, "पूर्व द्वार से।" वह भी उसी द्वार से निकलकर नदी तट पर पहुचा। उसके आने का समाचार पा, वोधिसत्व ने वहाँ पहुच, आकाश मे स्थित होकर धर्मोपदेश दिया। परिषद सहित वह राजा वोधिसत्व के पास प्रव्रजित हुआ। इसी प्रकार ओर भी तीन राज्य छोड दिये गये। हाथी आरण्यक-हाथी हो गये, अश्व भी आरण्यक-अश्व हो गये। रथ आरण्य मे ही विनष्ट हो गये। भाण्डागारो मे के कार्षापण आश्रम मे वालुका की तरह बिखेर दिये गये। सभी ने आठ समापत्तियाँ लाभ की और जीवन की समाप्ति पर ब्रह्म-लोकगामी हुए। पशुयोनि के हाथी, घोडे भी ऋषि-गण के प्रति श्रद्धावान् होने के कारण छ काम-स्वर्गो मे उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, 'भिक्षुओ, न केवल अभी, मैंने पहले भी राज्य छोड अभिनिष्क्रम किया ही है" कह जातक का मेल वैठाया। उस समय छत्र में रहनेवाली देवी उत्पलवर्णा थी, सारथी सारिपुत्र था, मातापिता महाराज-कुल, परिषद बुद्ध-परिषद, और मूगपक्ख पण्डित तो मैं ही था।

[सिहल-द्वीप में आकर मङ्गणवासी खुद्दकतिस्स स्थविर तथा महावसक स्थविर, कटकन्धकारवासी फुस्सदेव स्थविर, उपरिमण्डल मालवासी महारक्षित स्थविर, मग्गरिवासी महातिस्स स्थविर, वामन्थयपब्भारवासी महासीव स्थविर और कळावेलवासी मलिय महादेव स्थविर—ये सब स्थविर कुद्दालक-सम्मेलन मे,

मूगपक्ख सम्मेलन मे, अयोघर सम्मेलन[1] में तथा हस्तिपाल सम्मेलन[2] मे पीछे आने-वाले कहे जाते हैं। मद्धवासी महानाग स्थविर तथा मलिय महादेव स्थविर ने तो परिनिर्वाण के दिन कहा, "आयुष्मानो, मूगपक्ख जातक के समय की परिषद आज छीज गई।" "भन्ते। क्यो?" "आयुष्मानो! उस समय हम सुरापायी थे। अपने साथ सुरापीने वाले दूसरे लोगो के न मिलने पर सबके बाद निकलकर प्रव्रजित हुए।]

५३९. महाजनक जातक

'कोय मज्झे समुद्दस्मि' यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महान् अभिनिष्क्रमण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा मे बैठे हुए भिक्षु तथागत के महान् अभिनिष्क्रमण की प्रशसा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा, "भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत।" 'न केवल अभी, भिक्षुओ, पहले भी तथागत ने महान् अभि-निष्क्रमण किया ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र में मिथिला मे महाजनक नाम का राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे अरिट्ठजनक तथा पोळजनक। राजा ने उनमे से ज्येष्ठ को उपराज दे दिया और छोटे को सेनापति पद। आगे चलकर महाजनक के मरने पर ज्येष्ठ राजा हुआ। उसने छोटे को उपराजा बना दिया। राजा के एक नौकर ने उसके पास पहुचकर कहा, "देव! उपराजा तुम्हें मार डालना चाहता है," बार

---

१ अयोघर जातक (५१०)। २ हस्तिपाल जातक (५०९)

बार उसकी बात सुनने से राजा ने विश्वास कर पोळजनक को जजीरो से बधवा राजगृह से दूर एक घर मे कैद करके पैहरा बिठा दिया।

कुमार ने सत्य-क्रिया की, "यदि मै भ्रातृद्रोही हूँ तो मेरी जजीरे भी न खुलें और द्वार भी न खुले, और यदि मैं भ्रातृद्रोही नही हूँ तो जजीरे भी खुल जाँय और द्वार भी खुल जाय।" उसी समय जजीरे टुकडे टुकडे हो गई और द्वार भी खुल गया। वह निकलकर एक प्रत्यन्त-ग्राम मे जाकर रहने लगा। प्रत्यन्त-ग्राम-वासियो ने उसे पहचानकर उसकी सेवा की। राजा उसे नही पकडवा सका।

क्रमश प्रत्यन्त जनपद उसके हाथ मे आ गया। जब उसके बहुत अनुयाई हो गये तो उसने सोचा, 'पहले तो मै भाई का वैरी नहीं था, किन्तु अब वैरी हूँ।' बडे समूह के साथ वह मिथिला पहुचा और नगर के बाहर डेरे डाल दिये। नगर वासियो को जब पता लगा कि पोळजनक कुमार आया है तो उनमे से अधिकाश हाथी, वाहन आदि ले उसी के पास जा पहुचे। दूसरे भी नागरिक आये। उसने भाई के पास सदेश भेजा, "मै पहले तुम्हारा वैरी नही था, किन्तु अब वैरी हूँ। या तो (राज-) छत्र दो, या युद्ध करो।"

राजा लडने के लिये चला तो उसने पटरानी को बुलाकर कहा, "भद्रे! युद्ध मे जीत हार के बारे मे कुछ नही कहा जा सकता। यदि मेरे लिये खतरा पैदा हो जाय, तो तू गर्भ की रक्षा करना।" इतना कह उसने विदा ली। युद्ध मे पोळजनक के योधाओ ने उसे जान से मार डाला। सारे नगर मे हल्ला हो गया कि राजा मारा गया। देवी को जब पता लगा कि वह मर गया तो उसने सोना आदि सारवान वस्तुओ को टोकरी मे डाला, उनके ऊपर चीथडे रखे, ऊपर चावल बिखेरे और मैले कुचैले वस्त्र पहन, शरीर को कुरूप बना, टोकरी को सिर पर रखकर ठेठ दिन मे ही निकल पडी। किसी ने नहीं पहचाना।

वह उत्तर-द्वार से निकली। पहले कही न गई रहने से मार्ग का ज्ञान न होने के कारण दिशा न जान सकी। उसने केवल इतना सुन रखा था कि काळ चम्पानगर है, इसलिये बैठ गई और पूछने लगी कि क्या कोई काळचम्पानगर जाने वाला है? उसकी कोख मे कोई ऐसा वैसा प्राणी नहीं था। वह बोधिसत्व था जिसने पारमिताओ

की पूर्ति की थी। उसके तेज से शक्र-भवन काँप उठा। शक्र ने ध्यान दिया तो उसे कारण ज्ञात हुआ। उसने सोचा "उसकी कोख का प्राणी महापुण्यवान् है। मेरा जाना योग्य है।" उसने एक पर्देवाली गाडी तैयार की, उसमे शैय्या बिछाई और बूढे आदमी की तरह गाडी को हांकता हुआ उस शाला के द्वार पर पहुच कर खडा हुआ जहाँ वह बैठी थी, और पूछा—"कोई काळचम्पानगर जाने वाला है?"

"तात! मै चलूगी।"

"अम्म! तो रथपर चढकर बैठ।"

'तात! मै गर्भ-पूर्णा हूँ। मै गाडी पर नही चढ सकती। म पीछे पीछे आऊँगी। मेरी इस टोकरी को जगह दे दे।"

"अम्म! क्या कहती है। मेरे जैसा कोई दूसरा गाडी हांकनेवाला नही है। डर मत। चढकर बैठ।"

उसके चढने के समय शक्र ने अपने प्रताप से पृथ्वी को ऊपर उठाकर गाडी के पिछले किनारे से लगा दिया। उसने चढकर शैय्या पर लेटते ही जान लिया कि यह देवता होगा। उसे दिव्य शय्या पर लेटते ही नीद आ गई।

तीस योजन पर एक नदी के किनारे पहुच, शक्र ने उसे जगाकर कहा, "अम्म! उतरकर नदी मे स्नान कर। तकिये पर कपडा है। उसे पहन ले। गाडी के अन्दर भोजन की पोटली है। उसे खा ले।" उसने वैसा किया और फिर लेट गई। शाम को चम्पा नगर पहुच, वहाँ के द्वार, अट्टालिका तथा प्राकार देख पूछा—"तात! इस नगर का क्या नाम है?"

"अम्म! चम्पा नगर।"

"तात! क्या कह रहे हो? क्या हमारे नगर से चम्पा नगर साठ योजन की दूरी पर नही है!"

"अम्म! ऐसा ही है किन्तु मै सीधा रास्ता जानता हूँ।"

उसने उसे दक्षिण-द्वार के समीप उतार दिया और बोला, "अम्म! हमारा गाँव आगे ही है। तू नगर मे प्रवेश कर।"

आगे जाकर शक्र अन्तर्धान होकर अपने भवन को ही चला गया। देवी भी जाकर एक शाला मे बैठी।

उस समय एक चम्पा-वासी मन्त्र-पाठी ब्राह्मण पाच सौ शिष्यों को साथ लिये स्नान करने जा रहा था। उसने दूर से ही उस सुन्दर रमणी को वहाँ बैठे देखा। कोख के बालक के प्रताप से, देखने के साथ ही उसके मन में छोटी बहन का स्नेह पैदा हो गया। उसने शिष्यों को छोडा और अकेले ही शाला में पहुचकर पूछा—

"बहन! किस गाँव की रहनेवाली है?"

"मैं मिथिला के राजा अरिट्ठजनक की पटरानी हूं।"

"यहाँ किसलिये आई?"

"पोळजनक ने राजा को मार डाला। मैं डरकर गर्भ-रक्षा के निमित्त भाग आई।"

"इस नगर में तुम्हारा कोई रिश्तेदार है?"

"तात! नहीं है।"

"तो चिन्ता मत कर। मैं ब्राह्मण महाशाल दिशा-प्रसिद्ध आचार्य्य हूँ। मैं तुझे बहन मानकर, तेरा पालन-पोषण करूगा। तू मुझे 'भाई' कहकर पैर पकडकर रो।"

वह चिल्लाती हुई उसके पैरों पर गिर पडी। वे परस्पर मिलकर रोये। शिष्यों ने दौडकर पूछा, "आचार्य्य! क्या लगती है?"

"मेरी छोटी बहन है। अमुक समय मुझसे पृथक हो गई।"

उसे देख लेने के बाद ही शिष्यों ने कहा, "आचार्य! चिन्ता न करे।" उसने उसे पर्देवाली गाडी में चढा, वहाँ बिठाकर शिष्यों से कहा, "तात! ब्राह्मणी से कहना, 'यह मेरी बहन है, सभी करणीय करे।'" उसने उसे घर भेज दिया। ब्राह्मणी ने उसे गर्म पानी से स्नान करवा, शैय्या बिछाकर उसपर लिटाया। ब्राह्मण नहाकर आया। भोजन के समय उसने कहा, 'मेरी बहन को बुलाओ'। उसके साथ साथ भोजन करके उसने उसे घर में रखकर ही उसका पालन पोषण किया।

थोडे ही समय बाद उसने पुत्र को जन्म दिया। पितामह के नामपर उसका नाम महाजनक कुमार ही रखा गया। वह बढने लगा। लडकों के साथ खेलने के समय, यदि वे उसे क्रोधित कर देते, तो वह शुद्ध क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न होने के कारण,

की पूर्ति की थी। उसके तेज से शक्र-भवन काँप उठा। शक्र ने ध्यान दिया तो उसे कारण ज्ञात हुआ। उसने सोचा "उसकी कोख का प्राणी महापुण्यवान् है। मेरा जाना योग्य है।" उसने एक पर्देवाली गाडी तैयार की, उसमे शैय्या बिछाई और बूढे आदमी की तरह गाडी को हाँकता हुआ उस शाला के द्वार पर पहुच कर खडा हुआ जहाँ वह बैठी थी, और पूछा—"कोई काळचम्पानगर जाने वाला है?"

"तात! मै चलूगी।"

"अम्म! तो रथपर चढकर बैठ।"

'तात! मै गर्भ-पूर्णा हूँ। मै गाडी पर नही चढ सकती। मै पीछे पीछे आऊँगी। मेरी इस टोकरी को जगह दे दे।"

"अम्म! क्या कहती है। मेरे जैसा कोई दूसरा गाडी हाँकनेवाला नही है। डर मत। चढकर बैठ।"

उसके चढने के समय शक्र ने अपने प्रताप से पृथ्वी को ऊपर उठाकर गाडी के पिछले किनारे से लगा दिया। उसने चढकर शैय्या पर लेटते ही जान लिया कि यह देवता होगा। उसे दिव्य शय्या पर लेटते ही नीद आ गई।

तीस योजन पर एक नदी के किनारे पहुच, शक्र ने उसे जगाकर कहा, "अम्म! उतरकर नदी मे स्नान कर। तकिये पर कपडा है। उसे पहन ले। गाडी के अन्दर भोजन की पोटली है। उसे खा ले।" उसने वैसा किया और फिर लेट गई। शाम को चम्पा नगर पहुच, वहाँ के द्वार, अट्टालिका तथा प्राकार देख पूछा—"तात! इस नगर का क्या नाम है?"

"अम्म! चम्पा नगर।"

"तात! क्या कह रहे हो? क्या हमारे नगर से चम्पा नगर साठ योजन की दूरी पर नही है!"

"अम्म! ऐसा ही है किन्तु मै सीधा रास्ता जानता हूँ।"

उसने उसे दक्षिण-द्वार के समीप उतार दिया और बोला, "अम्म! हमारा गाँव आगे ही है। तू नगर में प्रवेश कर।"

आगे जाकर शक्र अन्तर्धान होकर अपने भवन को ही चला गया। देवी भी जाकर एक शाला मे बैठी।

उस समय एक चम्पा-वासी मन्त्र-पाठी ब्राह्मण पाँच सो शिष्यो को साथ लिये स्नान करने जा रहा था। उसने दूर से ही उस सुन्दर रमणी को वहाँ बैठे देखा। कोख के बालक के प्रताप से, देखने के साथ ही उसके मन मे छोटी वहन का स्नेह पैदा हो गया। उसने शिष्यो को छोडा और अकेले ही शाला मे पहुचकर पूछा—

"वहन ! किस गाँव की रहनेवाली है ?"

"मै मिथिला के राजा अरिट्ठजनक की पटरानी हूँ।"

"यहाँ किसलिये आई ?"

"पोळजनक ने राजा को मार डाला। मै डरकर गर्भ-रक्षा के निमित्त भाग आई।"

"इस नगर में तुम्हारा कोई रिश्तेदार है ?"

"तात ! नही है।"

"तो चिन्ता मत कर। मै ब्राह्मण महाशाल दिशा-प्रसिद्ध आचार्य्य हूँ। मै तुझे वहन मानकर, तेरा पालन-पोषण करूगा। तू मुझे 'भाई' कहकर पैर पकडकर रो।"

वह चिल्लाती हुई उसके पैरो पर गिर पडी। वे परस्पर मिलकर रोये। शिष्यो ने दौडकर पूछा, "आचार्य्य ! क्या लगती है ?"

"मेरी छोटी वहन है। अमुक समय मुझसे पृथक हो गई।"

उसे देख लेने के बाद ही शिष्यो ने कहा, "आचार्य ! चिन्ता न करे।" उसने उसे पर्देवाली गाडी में चढा, वहाँ बिठाकर शिष्यो से कहा, "तात ! ब्राह्मणी से कहना, 'यह मेरी वहन है, सभी करणीय करे।" उसने उसे घर भेज दिया। ब्राह्मणी ने उसे गर्म पानी से स्नान करवा, शैय्या बिछाकर उसपर लिटाया। ब्राह्मण नहाकर आया। भोजन के समय उसने कहा, 'मेरी वहन को बुलाओ'। उसके साथ साथ भोजन करके उसने उसे घर मे रखकर ही उसका पालन पोषण किया।

थोडे ही समय बाद उसने पुत्र को जन्म दिया। पितामह के नामपर उसका नाम महाजनक कुमार ही रखा गया। वह बढने लगा। लडको के साथ खेलने के समय, यदि वे उसे क्रोधित कर देते, तो वह शुद्ध क्षत्रिय-वश मे उत्पन्न होने के कारण,

बलवान होने के कारण तथा अभिमानी होने के कारण उन्हें जोर से पीट देता। वे ज़ोर ज़ोर से चिल्लाते। जब उन्हें पूछा जाता कि किसने पीटा ? वे कहते— "विधवा के पुत्र ने।" कुमार सोचने लगा, यह मुझे नित्य 'विधवा का पुत्र' कहते हैं, मैं माँ से पूछूंगा। उसने एक दिन पूछा— माँ ! मेरा पिता कौन है ?" माँ ने धोखा दिया, "तात! ब्राह्मण तेरा पिता है।" उसने फिर एक दिन पीटा। लोगों ने उसे 'विधवा-पुत्र' कहा। वह बोला, क्या ब्राह्मण मेरा पिता नहीं है ? वे बोले "ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?" तब वह सोचने लगा, "यह कहते हैं, ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ! माँ मुझे यह बात नहीं बताती है। वह अपनी मर्जी से नहीं बतायेगी। अच्छा, मैं उसे बताने के लिये मजबूर करूंगा।" उसने स्तन-पान करते समय उसे डस लिया और बोला, "बता मेरा पिता कौन है ? यदि नहीं बतायेगी तो तेरा स्तन काट खाऊंगा।" उसने धोखा न दे सकने के कारण कहा, "तात ! तू मिथिला के राजा अरिट्ठजनक का पुत्र है। तेरे पिता को पोळजनक ने मार डाला। मैं तेरी रक्षा करती हुई इस नगर में आ पहुंची। ब्राह्मण मुझे बहन मानकर पालन-पोषण करता है।" उसके बाद में वह "विधवा-पुत्र" कहने पर भी क्रुद्ध नहीं होता था।

उसने सोलह वर्ष के भीतर ही तीनों वेद और सब शिल्प सीख लिये। सोलह वर्ष की आयु होने पर सुन्दर रूपवान हुआ। 'पिता का राज्य लूंगा,' सोच उसने माता से पूछा, "अम्म ! कुछ तेरे पास है ? अन्यथा व्योपार करके धन उपार्जन कर राज्य ग्रहण करूँगा।"

"तात ! मैं खाली हाथ नहीं आई। एक एक मोती, मणि तथा वज्र राज्य ग्रहण करने के लिये पर्याप्त है। उसे लेकर राज्य ग्रहण कर। व्योपार मत कर।"

"मा ! वह भी धन मेरा ही है। उसमें से आधा लें, स्वर्ण-भूमि जा, बहुत धन ला, राज्य ग्रहण करूंगा।"

उसने आधा धन मगवाया, उससे सामान खरीदा। फिर उसे स्वर्ण-भूमि जाने वाले व्योपारियों के साथ नौका पर लदवा, जाकर माता को कहा, "मा ! मैं स्वर्ण-भूमि जाऊँगा।"

"तात ! समुद्र मे सिद्धि कम है, खतरा बहुत हैं। मत जा। राज्य ग्रहण करने के लिये तेरे पास बहुत धन है।"

उसने, 'माँ ! जाऊंगा ही' कहा और माँ को नमस्कार कर निकल कर नौका पर जा चढा।

उसी दिन पोळजनक के शरीर मे रोग उत्पन्न हो गया। वह फिर न उठने के लिये पड गया। सात सौ आदमी नौकाओ पर चढे। नौका सात दिनो मे सात सौ योजन गई। वह बहुत तेजी से जाकर आगे न बढ सकी। तख्ते टूट गये। जहाँ तहाँ से पानी निकलने लगा। नौका बीच समुद्र टूट गई। लोग रोने-पीटने लगे, नाना प्रकार के देवताओ को नमस्कार करने लगे। बोधिसत्व ने न रोना-पीटना किया और न किसी देवता को ही नमस्कार किया। जब यह पता लगा कि नौका डूबने जा रही है तो घी और शक्कर मिलाकर, पेट भर खाया। फिर दो चिकने कपडो में तेल चिपड, अच्छी तरह लपेट, मस्तूल के सहारे खडा हो गया। जब नौका डूबने लगी, मस्तूल पर चढ गया। लोग मच्छ तथा कच्छुओ का भोजन बन गये। सारा पानी रक्तवर्ण हो गया।

बोधिसत्व ने मस्तूल पर चढे ही चढे विचार किया कि मिथिला नगरी अमुक दिशा में है। फिर मस्तूल मे उछलकर मच्छ तथा कछुओ को मारकर, महाबलशाली होने के कारण, उसभ भर आगे गिरा। उसी दिन पोळजनक की मृत्यु हो गई। उस समय से बोधिसत्व मणिवर्ण लहरो मे स्वर्णवर्ण लट्ठ की तरह तैरने लगे। जैसे एक दिन, उसी प्रकार वह सप्ताह तक तैरता रहा। समय देख, नमकीन-जल से मुँह प्रक्षालन कर उपोसथ-व्रत धारण करता रहा। उस समय चारो लोक-पालो ने मणि-मेखला नामकी देव-कन्या को समुद्र-रक्षक नियुक्त किया था कि माता-पिता की सेवा आदि गुणो से युक्त जो प्राणी समुद्र में गिरने के अयोग्य हो और तो भी गिर पडे, तो तू उनका ख्याल रख। उसने उन सात दिनो मे समुद्र की ओर ध्यान नही दिया। सम्पत्तिका मजा लूटते रहने के कारण ही वह स्मृतिमूढ हो गई। यह भी कहा जाता है कि वह 'देव-समागम' में गई। उसने सोचा, 'मुझे समुद्र की ओर ध्यान दिये सात दिन बीत गये। क्या समाचार है?' जब उसने बोधिसत्व को देखा तो सोचा, "यदि महाजनक कुमार समुद्र में विनाश को प्राप्त

हुआ तो मुझे देव-सम्मेलन मे प्रवेश तक नही मिलेगा।" उसने बोधिसत्व से थोडी ही दूर पर, अलकृत शरीर से आकाश मे खडे ही, वोधिसत्व की परीक्षा लेते हुए यह गाथा कही—

कोयं मज्झे समुद्दस्मि अपस्स तीरमायुहे,
क त्व अत्थवस अत्वा एव वायमस्स भुस ॥१॥

[यह कौन है जो समुद्र मे तट को न देखते हुए भी प्रयत्न कर रहा है? तू किस वात को समझकर इतना प्रयत्न कर रहा है? ॥१॥]

तव वोधिसत्व ने यह सोच कि आज मुझे समुद्र मे तैरते हुए सातवाँ दिन हो गया। मैने कोई दूसरा प्राणी नही देखा। यह कौन है जो मुझसे वात कर रहा है, आकाश की ओर देखते हुए दूसरी गाथा कही—

निसम्म वत्तं लोकस्स वायामस्स च देवते,
तस्मा मज्झे समुद्दस्मि अपस्स तीरमायुहे ॥२॥

[हे देवी! लोक के कर्तव्य और प्रयत्न पर विचार किये रहने के कारण किनारे के अदृश्य रहने पर भी मै समुद्र मे प्रयत्न कर रहा हूँ ॥२॥]

उसने उसकी धर्मकथा सुनने की इच्छा से फिर गाथा कही—

गम्भीरे अप्पमेय्यस्मि तीरं यस्स न दिस्सति,
मोघो ते पुरिस वायामो अप्पत्वाव मरिस्ससि ॥३॥

[गहरे, असीम समुद्र में, जिसका तट भी दिखाई नही देता, हे पुरुष! तेरा प्रयत्न वृथा है। तू बिना तट पर पहुचे ही मर जायगा ॥३॥]

बोधिसत्व ने यह 'क्या कहती है, मै प्रयत्न करता हुआ मरने पर भी निन्दा से तो मुक्त रहूगा' कह गाथा कही—

अनणो ञातीनं होति देवान पितुनोच सो,
करं पुरिस किच्चानि न च पच्छानुतप्पति ॥४॥

[जो आदमी का कर्तव्य करता है, वह रिश्तेदारो के, देवताओ के, तथा पितृ-ऋण से उऋण हो जाता है और उसे बाद मे अनुताप नही होता ॥४॥]

तव देवी बोली—

अपारणेय्य यं कम्म अफल किलमथुद्दय,
तत्थ को वायमेनत्थो मच्चु यस्साभिनिप्पत ॥५॥

[जो प्रयत्न करने पर भी असाध्य है, जिसका कोई फल नही, जिसमे क्लेश ही क्लेश है और जिसका निश्चित परिणाम केवल मृत्यु है, ऐसे प्रयत्न से क्या लाभ ? ॥५॥]

ऐसा कहे जाने पर बोधिसत्व ने देवी को निष्प्रभ करने वाली गाथाये कही—

अपारणेय्य अच्चन्त यो विदित्वान देवते,
न रक्खे अत्तनो पाण जञ्ञा सो यदि हापये ॥६॥
अधिप्पाय फल एके अस्मि लोकस्मि देवते,
पयोजयन्ति कम्मानि तानि इज्झन्ति वा न वा ॥७॥
सन्दिट्ठिक कम्मफल ननु पस्ससि देवते,
सन्ना अञ्ञे तरामह तञ्च पस्सामि सन्तिके ॥८॥
सो अहं वायमिस्सामि यथा सत्ति यथाबल,
गच्छ पार समुद्दस्स कास पुरिसकारिय ॥९॥

[हे देवी ! जो यह जानकर कि उद्देश्य की पूर्ति अत्यन्त असम्भव है अपने प्राणो की रक्षा नही करता, वह यदि प्रयत्न छोडता है, तो यह उसके प्रमाद का ही परिणाम है (?) ॥६॥ देवी ! इस लोक मे कुछ लोग अभिप्राय-विशेष से किसी काम में लगते है। वह पूरा होता है, नही भी होता है ॥७॥ हे देवी ! मेरे इस कर्म का तो क्या तू साक्षात् फल नही देखती है ? दूसरे लोग डूब गये। मै अभी भी तैर रहा हूँ और तेरा दर्शन मिला है ॥८॥ इसलिये मै यथा-शक्ति यथा-बल समुद्र पार जाने का प्रयत्न करूगा। मै 'आदमी का कर्तव्य' करूगा ॥४॥]

देवी ने उसकी दृढ प्रतिज्ञा सुन उसकी प्रशसा करते हुए गाथा कही—

यो त्व एव गते ओघे अप्पमेय्ये महण्णवे,
धम्मवायाम सम्पन्नो कम्मना नावसीदसि,
सो त्व तत्थेव गच्छाहि यत्थ ते निरतो मनो ॥१०॥

[जो तू इस प्रकार के असीम, गहरे, महासमुद्र मे भी अपने धार्मिक-प्रयत्न रूपी कर्म को नहीं छोड रहा है, तो जहाँ तेरा मन है, तू वहीं पहुच जा ।।१०।।]

इतना कहकर देवी ने पूछा, "पण्डित महापराक्रम ! तुझे कहाँ पहुँचा दू ?" "मिथिला नगर।" उसने बोधिसत्व को वैसे ही उठाया जैसे कोई माला-समूह को और दोनो हाथो में ले, छाती से लगा उसे उसी प्रकार आकाश में उडा कर ले चली जैसे कोई प्रिय-पुत्र को। नमकीन पानी मे रहने मे उसका शरीर पक गया था। दिव्य-स्पर्श के कारण निद्रा आ गई। वह उसे मिथिला ले गई और आम्रवन की मङ्गल-शिला पर दक्षिण-पार्श्व लिटा दिया। फिर उद्यान-देवताओं पर उसकी रक्षा का भार डाल अपने भवन को चली गई। पोळजनक का पुत्र नही था। हाँ, उसकी एक लडकी थी। उसका नाम सीवली देवी था, पण्डिता, व्यक्ता। जिस समय राजा मृत्यु-शैय्या पर था, उसे पूछा गया, "देव ! तुम्हारे देवत्व प्राप्त करने पर राज्य किसे सौपें ?"

"जो मेरी पुत्री सीवली देवी को अच्छा लगे, जो चौकोर चारपाई का सिर-हाना जानता हो, जो हजार के बल वाले धनुष को चढा सकता हो तथा जो सोलह महान् निधियो को निकाल ला सके, उसे सौप दे।"

"देव ! उन निधियो का उदान-वाक्य कहे।"

राजा ने निधियों के साथ शेष चीजो का भी 'उदान' कहा—

सुरियुग्गमणे निधि अथो ओग्गमणे निधि,
अन्तो निधि बहि निधि न अन्तो न बहि निधि ।।११।।
आरोहणे महानिधि अथो ओरोहणे निधि,
चतुरोच महासाला समन्ता योजने निधि ।।१२।।
दन्तग्गेसु महानिधि वालग्गेसु च केवुके,
रुक्खग्गेसु महानिधि सोळसेते महानिधि,
सहस्सत्थोमो पल्लको सीवला रायनेन च ।।१३।।

[सूर्य्योदय होने के स्थान पर निधि है, सूर्य्यास्त होने के स्थान पर निधि है। अन्दर निधि है, बाहर निधि है, 'न अन्दर न बाहर' निधि है।

चढने की जगह पर निधि है, उतरने की जगह पर निधि है। चारो महाशाल और चारो ओर योजन भर मे निधि है। दान्तो के आगे महानिधि है। बालो के सिरो पर, पानी मे बडे वृक्षो पर—इन सोलह जगहो मे महानिधि है। सहस्र के उठाने का धनुष, पलग और सीविलि की सतुष्टी ॥११—१३॥]

अमात्यो ने राजा की मृत्यु के बाद उसका मृतक-कृत्य कर सातवे दिन इकट्ठे होकर सोचा, "राजा ने कहा है कि जो उसकी लडकी को अच्छा लगे उसे राज्य दिया जाय, उसे कौन सन्तुष्ट कर सकेगा?" उन्होने सेनापति को 'प्रिय-पात्र' समझ सन्देश भेजा। उसने 'अच्छा' कहा और राज्यार्थी होकर राज-द्वार पर पहुचा। उसने राजकन्या को अपने आगमन की सूचना भिजवाई। उसे जब सेनापति के आने का उद्देश्य मालूम हुआ तो उसने इस बात की परीक्षा करने के लिए कि उसमे राज्य-छत्र धारण करने की धृति है वा नही, कहला भेजा कि शीघ्र आ जाये।

वह जहाँ से सीढी आरम्भ होती थी वही से तेजी से जा उसके पास खडा हुआ। उसने उसकी परीक्षा लेने के लिए कहा "ऊचे तल्ले पर तेजी से दौड।" वह राज्य-कन्या को प्रसन्न करने के उद्देश्य से जोर से कूदा। उसे फिर कहा "आ।" वह फिर तेजी से आया। उसने उसमे धृति का अभाव देख, कहा, "आ मेरे पैर दबा।" वह उसे प्रसन्न करने के लिए बैठकर पाँव दबाने लगा। उसने उसकी छाती मे पाँव का प्रहार कर उसे चित्त गिरा दिया और दासियो को सकेत किया कि इस अधे, मूर्ख, धृति-हीन आदमी को पीटकर गरदन से पकड बाहर निकाल दो। उन्होने वैसा ही किया। लोगो ने पूछा, "सेनापति! कैसा रहा?" वह बोला, "कुछ मत पूछो, वह स्त्री नही है, वह यक्षिणी है।" तब खजानची गया। उसे भी वैसे ही लज्जित कराया। तब श्रेष्ठी, छत्र-ग्राह, तथा असिग्राह सभी को लज्जित ही कराया। तब जनता ने विचार किया, "राज्य-कन्या को प्रसन्न कर सकने वाला कोई नही है, हजार के बल के धनुष को चढा सकनेवाले को (राज्य) दे।" उसे भी कोई नही चढा सका। तब कहा, "चौकोर चारपाई के सिरहाने के जानकार को दो।" उसे भी कोई नही जानता था। तब "सोलह महानिधि निकाल सकने वाले को दे।" वह भी कोई नही निकाल सका।

तब वे सोचने लगे, "राजा विहीन राज्य की रक्षा नही की जा सकती। क्या करना चाहिए?" तब पुरोहित ने कहा, "चिन्ता न करो। पुष्य-रथ का छोड़ना योग्य है। पुष्य-रथ से मिला हुआ राजा सारे जम्बु द्वीप पर राज्य कर सकता है।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नगर को सजवाकर मङ्गल-रथ मे चार कुमुद-वर्ण घोडे जुतवाये। फिर ऊपर का कपडा डलवा पाँचो राजकीय चिन्ह रखवाये और उसे चतुरङ्गिनी सेना से घेरा। सस्वामी रथ मे बाजे आगे-आगे बजते है और अस्वामी-रथ के पीछे-पीछे। इसलिए पुरोहित ने बाजे पीछे पीछे बजवाये। फिर रथ के बाजे तथा पैणी को सोने की झारी से अभिसिञ्चित कर कहा, "जिसका राज्य करने का पुण्य है, उसके पास जा।" रथ राजगृह की प्रदक्षिणा कर घोषणा-पथ पर हो लिया। सेनापति आदि सोचने लगे, "रथ मेरे पास आयेगा, मेरे पास आयेगा।" वह सबके घर लाँघ नगर की प्रदक्षिणा कर, पूर्व-द्वार से निकल उद्यान की ओर चला गया।

उसे तेजी से जाता देख, लोगो ने रुकने के लिए कहा। पुरोहित ने मना किया, "मत रोको। चाहे सौ योजन भी जाये, जाने दो।" रथ उद्यान मे दाखिल हुआ और मङ्गल-शिला की प्रदक्षिणा कर चलने को तैयार होकर खडा हुआ। पुरोहित ने बोधिसत्व को लेटे देख, अमात्यो को सबोधित कर कहा, "भो! शिला पर एक आदमी लेटा दिखाई देता है। नही कह सकते कि उसमे श्वेत-छत्र धारण करने योग्य धृति है अथवा नही है? यदि पुण्य-शाली होगा तो नही देखेगा। यदि मनहूस होगा तो डरकर, घबराकर उठेगा और काँपता हुआ देखेगा। शीघ्र सभी बाजे बजाओ।" उसी समय सैकडो बाजे बजाये गये। सिन्धु-गर्जन के समान हुआ। बोधिसत्व की आँख खुल गई। उसने सिर उघाड कर लोगो को देखा तो समझ लिया कि श्वेत-छत्र लेकर आये होगे। वह फिर सिर ढककर पलटकर बाई करवट लेट रहा। पुरोहित ने पाँव नगेकर, लक्षणो को देखकर जान लिया कि एक द्वीप की तो बात ही क्या, यह चारो द्वीपो का राज्य कर सकता है। उसने फिर बाजे बजवाये। बोधिसत्व ने मुँह उघाड, पलटकर दक्षिण करवट लेट जनता को देखा। पुरोहित ने लोगो को हटा दिया और हाथ जोडकर, झुककर प्रार्थना की, "देव उठे। आपको राज्य प्राप्त हुआ है।"

"राजा कहाँ गया ?"

"मृत्यु हो गई ।"

"उसका पुत्र या भाई नही है ?"

"देव ! नही है ।"

"अच्छा, राज्य करूंगा" कह शिला पर पालथी मारकर बैठा । उसका वही अभिषेक किया गया । महाजनक राजा हुआ । वह श्रेष्ठ रथ पर चढ, बडे ठाट-बाट के साथ नगर मे दाखिल हुआ । अपने राज-भवन पर चढते हुए उसने सोचा कि सेनापति आदि के पदो पर जो नियुक्त रहे है, वे ही नियुक्त रहे । राजकन्या ने पहली मान्यता के अनुसार ही उसकी परीक्षा लेने के लिये एक आदमी को आज्ञा दी, "जा राजा को जाकर कह, देव ! सीवली देवी आपको बुलाती है, शीघ्र आये ।" राजा पण्डित था । उसकी बात अनसुनी करके, महल की ही प्रशसा करता रहा, "ओह ! महल बडा सुन्दर है ।" जब वह नही ही सुना सकी तो उसने जाकर देवी से कहा, "आर्ये ! वह राजा तुम्हारी बात नही सुनता । प्रासाद की ही प्रशसा करता है । तुम्हे तिनके के बराबर भी नही समझता । महान् आशयवाला पुरुष होगा ।" उसने दूसरी और तीसरी बार भी भेजा । राजा अपनी रुचि से, स्वाभाविक गति से सिह की तरह जाग्रत हो प्रासाद पर चढा । उसके पास जाने पर राज-कन्या उसके तेज के कारण अपने आपको सभाले न रख सकी । उसने आकर हाथ का सहारा दिया ।

उसके हाथ का सहारा ले वह महल के ऊपर के तल्ले पर चढा और श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ उसने आमात्यो को सम्बोधित कर पूछा, "क्या राजा ने मरते समय कोई खास बात कही थी ?"

"देव ! हाँ ।"

"तो कहो ।"

"देव ! उसने कहा जो सीवली देवी को अच्छा लगे उसे राज्य देना ।"

"सीवली देवी ने आकर हाथ का सहारा दिया, सो वह प्रसन्न है, दूसरी बात कहो ।"

"देव ! चौकोर चारपाई का सिराहना जान सकने वाले को राज्य देना ।"

तब वे सोचने लगे, "राजा विहीन राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। क्या करना चाहिए?" तब पुरोहित ने कहा, "चिन्ता न करो। पुष्य-रथ का छोड़ना योग्य है। पुष्य-रथ से मिला हुआ राजा सारे जम्बु द्वीप पर राज्य कर सकता है।' उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नगर को सजवाकर मङ्गल-रथ में चार कुमुद-वर्ण घोड़े जुतवाये। फिर ऊपर का कपड़ा डलवा पाँचों राजकीय चिन्ह रखवाये और उसे चतुरङ्गिनी सेना से घेरा। सस्वामी रथ में बाजे आगे-आगे बजते हैं और अस्वामी-रथ के पीछे-पीछे। इसलिए पुरोहित ने बाजे पीछे पीछे बजवाये। फिर रथ के बाजे तथा पैंणी को सोने की झारी से अभिसिञ्चित कर कहा, "जिसका राज्य करने का पुण्य है, उसके पास जा।" रथ राजगृह की प्रदक्षिणा कर घोषणा-पथ पर हो लिया। सेनापति आदि सोचने लगे, "रथ मेरे पास आयेगा, मेरे पास आयेगा।" वह सबके घर लाँघ नगर की प्रदक्षिणा कर, पूर्व-द्वार से निकल उद्यान की ओर चला गया।

उसे तेजी से जाता देख, लोगो ने रुकने के लिए कहा। पुरोहित ने मना किया, "मत रोको। चाहे सौ योजन भी जाये, जाने दो।" रथ उद्यान मे दाखिल हुआ और मङ्गल-शिला की प्रदक्षिणा कर चलने को तैयार होकर खड़ा हुआ। पुरोहित ने बोधिसत्व को लेटे देख, अमात्यो को सबोधित कर कहा, "भो! शिला पर एक आदमी लेटा दिखाई देता है। नहीं कह सकते कि उसमे श्वेत-छत्र धारण करने योग्य धृति है अथवा नही है? यदि पुण्य-शाली होगा तो नहीं देखेगा। यदि मनहूस होगा तो डरकर, घबराकर उठेगा और काँपता हुआ देखेगा। शीघ्र सभी बाजे बजाओ।" उसी समय सैकडो बाजे बजाये गये। सिन्धु-गर्जन के समान हुआ। बोधिसत्व की आँख खुल गई। उसने सिर उघाड कर लोगो को देखा तो समझ लिया कि श्वेत-छत्र लेकर आये होगे। वह फिर सिर ढककर पलटकर बाई करवट लेट रहा। पुरोहित ने पाँव नगेकर, लक्षणो को देखकर जान लिया कि एक द्वीप की तो बात ही क्या, यह चारो द्वीपो का राज्य कर सकता है। उसने फिर बाजे बजवाये। बोधिसत्व ने मुँह उघाड, पलटकर दक्षिण करवट लेट जनता को देखा। पुरोहित ने लोगो को हटा दिया और हाथ जोडकर, झुककर प्रार्थना की, "देव उठे। आपको राज्य प्राप्त हुआ है।"

"राजा कहाँ गया ?"

"मृत्यु हो गई।"

"उसका पुत्र या भाई नही है ?"

"देव ! नही है।"

"अच्छा, राज्य करूंगा" कह शिला पर पालथी मारकर बैठा। उसका वही अभिषेक किया गया। महाजनक राजा हुआ। वह श्रेष्ठ रथ पर चढ, बडे ठाट-बाट के साथ नगर मे दाखिल हुआ। अपने राज-भवन पर चढते हुए उसने सोचा कि सेनापति आदि के पदो पर जो नियुक्त रहे हैं, वे ही नियुक्त रहे। राजकन्या ने पहली मान्यता के अनुसार ही उसकी परीक्षा लेने के लिये एक आदमी को आज्ञा दी, "जा राजा को जाकर कह, देव ! सीवली देवी आपको बुलाती है, शीघ्र आयें।" राजा पण्डित था। उसकी बात अनसुनी करके, महल की ही प्रशसा करता रहा, "ओह ! महल बडा सुन्दर है।" जब वह नही ही सुना सकी तो उसने जाकर देवी से कहा, "आर्ये ! वह राजा तुम्हारी बात नही सुनता। प्रासाद की ही प्रशसा करता है। तुम्हे तिनके के बराबर भी नही समझता। महान् आशयवाला पुरुष होगा।" उसने दूसरी और तीसरी बार भी भेजा। राजा अपनी रुचि से, स्वाभाविक गति से सिंह की तरह जाग्रत ही प्रासाद पर चढा। उसके पास जाने पर राजकन्या उसके तेज के कारण अपने आपको सभाले न रख सकी। उसने आकर हाथ का सहारा दिया।

उसके हाथ का सहारा ले वह महल के ऊपर के तल्ले पर चढा और श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ उसने आमात्यो को सम्बोधित कर पूछा, "क्या राजा ने मरते समय कोई खास बात कही थी ?"

"देव ! हाँ।"

"तो कहो।"

"देव ! उसने कहा जो सीवली देवी को अच्छा लगे उसे राज्य देना।"

"सीवली देवी ने आकर हाथ का सहारा दिया, सो वह प्रसन्न है, दूसरी बात कहो।"

"देव ! चौकोर चारपाई का सिराहना जान सकने वाले को राज्य देना।"

राजा ने सोचा, 'यह जानना कठिन है। किन्तु उपाय करके जाना जा सकता है।' उसने सिर मे से स्वर्ण-सूई निकालकर देवी के हाथ पर रखी कि इसे रख दे। उसने उसे ले पलग के सिराहने रखा। यह भी कहते ही हैं कि खङ्ग दी। इस वात से उसने जान लिया कि यह सिराहना है। फिर बात नहीं सुनी होने के समान होकर पूछा, "क्या कहते हो ?" उनके फिर उसी बात को दोहराने पर कहा, "इसका जान सकना कोई आश्चर्य की बात नही है। यह सिराहना है। और क्या है ?"

"देव। आज्ञा दी है कि जो हजार के बलवाले धनुष को चढा सके उसी को राज्य देना।"

'तो मगवाओ'। वह धनुप मगवा उसने पलक पर बैठे ही बैठे स्त्रियो के कपास धुनने की धुनकी की तरह उसे चढा दिया। फिर पूछा, "और कहो ?" "उसने कहा था कि जो सोलह निधियो को निकाल सके, उसे राज्य देना।" उनका कुछ अता-पता है ? 'हाँ है' कहकर उन्होंने 'सुरियुग्गमणे निधि' आदि कहा। उसके सुनते ही उसे आकाश के चन्द्रमा की तरह उसका अर्थ प्रकट हो गया।

उसने उन्हे कहा, "आज समय नही है। कल निधि निकालेगे।" अगले दिन उसने अमात्यो को एकत्रित कर पूछा, "तुम्हारा राजा प्रत्येक-बुद्धो को भोजन कराता था ?" "देव ! हाँ।" उसने सोचा, 'सूर्य्य' का मतलब 'सूर्य्य' नही है, सूर्य्य के समान होने से प्रत्येक-बुद्ध ही सूर्य्य हैं। उनकी अगवानी करने की जगह निधि होनी चाहिये। तब प्रश्न किया, "प्रत्येक बुद्धो के आने पर उनकी अगवानी करने के लिये राजा कहाँ तक जाता था ?" 'अमुक स्थान तक' कहने पर वह जगह खुदवाकर वहाँ से खजाना निकलवाया। फिर पूछा, "जाते समय कहाँ तक पीछे जाकर, कहाँ खडा होकर विदा करता था ?" "अमुक-स्थान पर" कहने पर 'वहाँ से निधि निकालो' कह निधि निकलवाई। जनता चिल्ला पडी। उसने यह कहते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि "'सुरियुग्गमण' कहने के कारण हम सूर्योदय की दिशा मे खोदते फिरे और 'अवगमन' कहने के कारण सूर्य्यास्त की दिशा मे। यह धन तो यही है। ओह आश्चर्य !" 'अन्दर खजाना' के सकेत से राजभवन के बडे दरवाजे की देहली के नीचे से निधि निकलवाई। 'वाहर खजाना' के सकेत से देहली के बाहर से निधि निकलवाई। 'न अन्दर न वाहर' सकेत से देहली के नीचे

से निधि निकलवाई। 'चढने के स्थान पर' सकेत से मगल-हाथी पर चढने के समय सोने की सीढी रखने के स्थान से निधि निकलवाई। 'उतरने के स्थान पर' सकेत से हाथी से उतरने के स्थान से निधि निकलवाई। 'चार महासाल' सकेत से भूमि मे गडी हुई शैय्या के चारो पौवे शालमय थे। उनके नीचे से खजाने के घडे निकलवाये। 'चारों ओर योजन भर में' सकेत से योजन का अर्थ 'रथ-युग' करके शैय्या के चारो ओर युग भर की दूरी मे से खजानो के घडे निकलवाये। 'दान्तो के आगे महानिधि' के सकेत से मङ्गल हाथी के स्थान पर उसके दोनो दान्तो के सामने के स्थान से दो खजाने निकलवाये। 'बाल के सिरे पर' के सकेत मे मङ्गल घोडे के स्थान पर उसकी पूछ उठाने की जगह से खजाना निकलवाया। 'केब्रुक' सकेत से यह जानकर कि केवुक कहते है जल को, मङ्गल-पुष्करिणी से जल निकलवाकर निधि दिखाई। 'वृक्षो के नीचे' के सकेत से अपने उद्यान में ही वडे शाल वृक्ष के नीचे ठीक मध्याह्न के समय, मण्डलाकार वृक्ष की छाया के अन्दर से खजाने के घडे निकलवाये। इस प्रकार सोलह निधियाँ निकलवाकर पूछा, "और कुछ है ?"

"देव। और कुछ नही।" जनता वडी प्रसन्न हुई।

राजा ने यह धन 'दान करूँगा' सोच नगर के बीच मे एक 'तथा चारों द्वारो पर चार, इस प्रकार पाँच दान शालाये बनवाकर महादान दिया। काल चम्पानगर मे माता तथा ब्राह्मण को बुलाकर वडा सत्कार किया। उसके राज्य करना आरम्भ करने पर ही सारे विदेह राष्ट्र मे उसका दर्शन करनेकेलिए हलचल मच गई। "अरिट्ठजनक राजा का लडका महाजनक राजा राज्य करता है। वह पण्डित है। उसे देखेंगे।" जहाँ तहाँ से बहुत सी भेंटे लेकर आये। नगर मे महान् उत्सव किया गया। राज-भवन मे हाथियो को झोल आदि ओढाये गये, सुगन्धियाँ और मालाये फैलाई गई, खील, फूल, सुगन्धी तथा धूप की अधिकता से अन्धेरा सा करके, नाना तरह के भोजन तैयार किये गये। लोग राजा को भेंट देने के लिये चान्दी सोने आदि के वरतनो में नाना प्रकार की खाने पीने आदि की सामग्री और फला-फल लिये जहाँ तहाँ इकट्ठे होकर खडे थे। एक ओर आमात्य-मण्डल बैठा। एक ओर ब्राह्मण-गण, एक ओर श्रेष्ठी आदि। एक ओर उत्तम रूपवाली नटियाँ। ब्राह्मणो में स्वस्ति-वाचन तथा मङ्गल पाठ करने वाले थे। वे मङ्गल-गीत आदि में कुशल थे। उन्होने

मङ्गल गाने गाये। सैकडो बाजे बजे। राजभवन-युगन्धर सागर की कोख की तरह गूज उठा। जहाँ जहाँ देखा वही कापता था।

बोधिसत्व ने श्वेतछत्र के नीचे राज्यासन पर बैठे, बैठे शक्र के ऐश्वर्य के समान ऐश्वर्य देख, अपने महासमुद्र मे किये गये प्रयत्न को याद किया। उसने सोचा, प्रयत्न करना ही चाहिये। यदि मैंने महासमुद्र मे प्रयत्न न किया होता, तो मुझे यह सम्पत्ति न मिलती। उसे बड़ा आनन्द आया। उसने आनन्द मे मगन हो 'उदान' कहते हुए कहा—

आसिसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोह अत्तान यथा इच्छि तथा अहु॥१४॥
आसिसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोह अत्तान उदका थलमुब्भत॥१५॥
वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोह अत्तान यथा इच्छि तथा अहु॥१६॥
वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोह अत्तान उदका थलमुब्भत॥१७॥
दुक्खूपनीतोपि नरो सपञ्ञो
आस न छिन्देय्य सुखागमाय,
बहू हि फस्सा अहिता हिता च
अवितक्किता मच्चुमुपब्बजन्ति॥१८॥
अचिन्तितम्पि भवति चिन्तितम्पि विनस्सति,
न हि चिन्तामया भोगा इत्थिया पुरिसस्स वा॥१९॥

[आदमी आशा करता ही रहे। पण्डित को चाहिये कि कभी निराश न हो। मै अपने आपको देखता हूं कि मैंने जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हो गया॥१४॥ आदमी न हो। मै अपने आपको देखता हूँ कि मै जल से स्थल पर लाया गया॥१५॥ आदमी प्रयत्न करता ही रहे। पण्डित को चाहिये कि कभी निराश न हो। मै अपने आपको ही देखता हूँ कि मैंने जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हो गया॥१६॥ आदमी प्रयत्न न हो। मै अपने आपको ही देखता हूँ कि मै जल से स्थल पर

लाया गया ।।१७।। बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि दु:ख आ पडने पर भी सुख की आशा न छोडे। बहुत से दु:खो तथा सुखो का विचार न करनेवाले यू ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते है ।।१८।। जिस की आशा नही होती है, वह भी हो जाता है जिसकी आशा होती है, वह भी नष्ट हो जाता है। स्त्री अथवा पुरुष के वैभव चिन्तन के आधीन नही है ।।१९।।]

इसके बाद से वह दस राज धर्मों के विरुद्ध न जा धर्मानुसार राज्य करने लगा। प्रत्येक-बुद्धो की सेवा करने लगा। आगे चलकर सीवली देवी ने धन तथा पुण्य के लक्षणो वाले पुत्र को जन्म दिया। दीर्घायुकुमार उसका नाम रखा गया। उसके बडे होने पर राजा ने उसे उपराज पद दे दिया। एक दिन माली फलाफल और नाना प्रकार के पुष्प लाया। उन्हे देख सन्तुष्ट हो राजा ने उसका सम्मान किया और फिर कहा, "माली! हम उद्यान देखेंगे। उसे सजवाओ।" उसने 'अच्छा' कह, वैसा करके राजा को सूचना दी। वह हाथी के कन्धे पर चढ, बहुत से अनुयाइयो के साथ उद्यान-द्वार पर पहुचा। वहाँ दो आम के पेड थे, गहरे हरे रग के। एक पर फल थे दूसरे पर नही। फलवाले के फल अत्यन्त मधुर थे। किन्तु क्योकि राजा ने उसका पहला-फल नही खाया था, इसलिये कोई उसका फल नही ले सकता था। राजा ने हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे उसका एक फल लेकर खाया। जिह्वा पर रखते ही उसे दिव्य-ओज जैसा लगा। उसने सोचा, "लौटते समय बहुत खाऊगा।" यह जान कि राजा ने पहला फल खा लिया उपराज से लेकर, यहाँ तक हथवान ने भी, सभी ने फल खाये। फल न मिलने पर डण्डो से शाखाये तोड उन्हें पत्र-विहीन कर दिया। पेड लुज-मुज हो गया। दूसरा पेड मणि-पर्वत के समान चमकता हुआ (पूर्ववत्) खडा रहा।

राजा ने उद्यान मे निकलते समय उसे देख पूछा, 'यह क्या है?' उत्तर मिला, "देव! आपने पहला फल खा लिया, जान जनता ने इसे नोच-खसोट डाला।" "किन्तु उस (दूसरे) वृक्ष के न पत्ते ही बिगडे और न रग ही बिगडा।" "देव! फल-रहित होने से कुछ नही बिगडा।" राजा के मन में वैराग्य पैदा हो गया। वह सोचने लगा, "यह वृक्ष फल-रहित होने से हरा-भरा खडा है। यह फलदार होने से नोचा-खसोटा गया। यह राज्य भी फलदार वृक्ष के समान है। प्रव्रज्या

फल-रहित वृक्ष के समान हे। जिसके पास कुछ है, उसे ही भय है, जिसके पास कुछ नही, उसे भय भी नही। मै फलदार वृक्ष जैसा न रह, फल-रहित वृक्ष जैसा होऊगा। सम्पत्ति छोड, निकलकर प्रव्रजित होऊगा।" उसने अपने मन मे दृढ सकल्प किया ओर नगर मे प्रविष्ट हो, प्रासाद के द्वार पर खडे ही खडे सेनापति को बुलाकर कहा, "महासेनापति ! आज से भोजन लानेवाले तथा मुखोदक और दातुन आदि लाने वाले सेवक के अतिरिक्त और कोई मेरे पास न आने पावे। पुराने न्यायाधीश अमात्यो को लेकर राज्य का अनुशासन करो। मै अबसे ऊचे तल्ले पर रहकर श्रमण-धर्म करूगा।" यह कह, प्रासाद पर चढ वह अकेला ही श्रमण-धर्म करने लगा। इस प्रकार समय बीतने पर जनता राजाङ्गण मे इकट्ठी हुई ओर कहने लगी, "हमारा राजा पहले जैसा नही रहा!" उसने दो गाथाये कही—

अपुराण वत भो राजा सब्बभुम्मो दिसम्पति,
नाज्ज नच्चे निसामेति न गीते कुरुते मनो ॥२०॥
न मिगे नपि उय्याने न पि हसे उदिक्खति,
मूगोव तुण्हिमासीनो न अत्थमनुसासति ॥२१॥

[हमारा सर्वत्र का दिशम्पति राजा अब पूर्व जैसा नही रहा, न अब वह नृत्य मे ध्यान देता है और न उसे गीत अच्छे लगते है ॥२०॥ न शिकार, न उद्यान-क्रीडा और न वह (जल के) हसो को ही देखता है। वह गूगा बना बैठा रहता है। वह राज्य का अनुशासन नही करता है ॥२१॥]

राजा का मन काम-भोगो की ओर से उदासीन हो विवेक की ओर झुक गया। उसने अपने कुल-विश्वस्त प्रत्येक-बुद्धो की याद की और सोचने लगा कि कौन है जो मुझे उन शीलादि गुणो से युक्त, अकिञ्चन प्रत्येक-बुद्धो का निवास स्थान बतायगा? उसने गाथाये कही—

सुखकामा रहोसीला वधबन्धा उपारता,
केस नु अज्ज आरामे दहरा वुद्धा च अच्छरे ॥२२॥
अतिक्कन्तवनथा धीरा नमो तेस महेसिन,
ये उस्सुकम्हि लोकम्हि विहरन्ति अनुस्सुका ॥२३॥

ते छेत्वा मच्चुनो जाल तन्त मायाविनो दळ्ह,
छिन्नलयत्ता गच्छन्ति को तेस गतिमापये ॥२४॥

[(निर्वाण–)सुख की कामना करने वाले, शील का विज्ञापन न करने वाले, वध-बन्धन से विरत छोटे और बडे प्रत्येक बुद्ध आज किस विहार मे रहते है ?॥२२॥ उन तृष्णा-रहित धैर्यवान महर्षियो को नमस्कार हैं, जो उत्सुकता-पूर्ण लोक मे अनुत्सुक होकर विहार करते है ॥२३॥ मायावी द्वारा दृढ करके फैलाये हुए तृष्णा-जाल को काटकर, आसक्ति-रहित होकर चले जाते है। कौन है जो मुझे उनके निवास-स्थान तक पहुचा दे ॥२४॥]

प्रासाद में रहते हुए ही श्रमण-धर्म करते-करते उसके चार महीने गुजर गये। प्रव्रज्या की ओर उसका चित्त अत्यधिक झुक गया। घर लोकान्तरिक-नरक के समान लगने लगा। तीनो भव जलते हुए से प्रतीत हुए। वह सोचने लगा, 'वह समय कब आयेगा जब मैं इस शक्रभवन के समान सजे हुए मिथिला नगर को छोडकर हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण करूगा।' उसने मिथिला नगरी का वर्णन आरम्भ किया—

कदाह मिथिल फीत विसाल सब्बतो पभ,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥२५॥
कदाह मिथिल फीत विभत्त भागसोमित,
पहाय . . ॥२६॥
कदाह मिथिल फीत बहुपाकारतोरण,
पहाय . ॥२७॥
कदाह मिथिल फीत दळ्हमट्टालकोट्ठक
पहाय . ॥२८॥
कदाह मिथिल फीत सुविभत्त महापथ
पहाय .. ॥२९॥
कदाह मिथिल फीत सुविभत्तन्तरापण,
पहाय पब्बजिस्सामि . ॥३०॥
कदाह मिथिल फीत गवास्सरथ पीळित,
पहाय ॥३१॥

कदाह मिथिल फीत आरामवनमालिनिं,
पहाय ॥३२॥
कदाह मिथिल फीत उय्यानवनमालिनिं,
पहाय ॥३३॥
कदाह मिथिल फीत पासादवनमालिनिं,
पहाय पब्बज्जिस्सामि ॥३४॥
कदाह मिथिल फीतं तिपुर राजबन्धुनिं,
मापित सोमनस्सेन वेदेहेन यसस्सिना,
पहाय ॥३५॥
कदाह वेदेहे फीते निचिते धम्मरक्खिते,
पहाय पब्बजिस्सामि .. . . ॥३६॥
कदाहं वेदेहे फीते अजेय्ये धम्मरक्खिते,
पहाय पब्बजिस्सामि . . . . ॥३७॥
कदा अन्तेपुर रम्म विभत्त भागसोभित
पहाय .. . . ॥३८॥
कदा अन्तेपुरं रम्म सुधामत्तिकलेपनं,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥३९॥
कदा अन्तेपुर रम्म सुचिगन्धमनोरम
पहाय पब्बजिस्सामि .. .. . ॥४०॥
कदाह कूटागारे विभत्ते भागसोभिते,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥४१॥
कदाह कूटागारे सुधामत्तिकलेपने,
पहाय. .. . . ॥४२॥
कदाह कूटागारे सुचिगन्धे मनोरमे,
पहाय .... . . ॥४३॥
कदाह कूटागारे लित्ते चन्दन फोसिते,
पहाय ॥४४॥

कदाह सुवण्णपल्लके गोणके चित्तसन्थते,
पहाय . . . ॥४५॥
कदाह कप्पासकोसेय्य खोमकोटुम्बरानिच,
पहाय पब्बजिस्सामि . ॥४६॥
कदाह पोक्खरणियो रम्मा चक्कवाकूपकूजिता,
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च,
पहाय . . . ॥४७॥
कदाहं हत्थिगुम्बे सब्बालकारभूसिते,
सुवण्णकच्छे मातगे हेमकप्पन वाससे ॥४८॥
आरूळहे गामणीयेहि तोमरकुसपाणिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥४९॥
कदाह अस्सगुम्बे सब्बालकारभूसिते,
आजानियेव जातिया सिन्धवे सीघवाहने ॥५०॥
आरूळहे गामणीयेहि इल्लियाचाय धारिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि त ॥५१॥
कदाह रथसेणियो सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालकारभूसिते ॥५२॥
आरूळहे गामणीयेहि चाप हत्थेहि वम्मिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि . ॥५३॥
कदाह सोवण्णरथे सन्नद्धे उस्सितद्धजे
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालकारभूसिते ॥५४॥
आरूळहे गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥५५॥
कदाह सज्झुरथे सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालकारभूसिते ॥५६॥
आरूळहे गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥५७॥

कदाह् अस्सरथे सन्नद्धे
दीपे ॥५८॥
आरूळहे
पहाय ॥५९॥
कदाह् ओट्ठरथे सन्नद्धे
दीपे ॥६०॥
आरूळहे
पहाय ॥६१॥
कदाह् गोरथे सन्नद्धे
दीपे ॥६२॥
आरूळहे
पहाय ॥६३॥
*कदाह् अजरथे सन्नद्धे
दीपे ॥६४॥
आरूळहे
पहाय ॥६५॥
कदाह् मेण्डरथे सन्नद्धे
दीपे ॥६६॥
आरूळहे
पहाय ॥६७॥
कदाह् मिगरथे सन्नद्धे
दीपे ॥६८॥
आरूळहे
पहाय ॥६९॥
कदाह् हत्थारूहे सब्बालंकारभूसिते
नील वम्मधरे सूरे तोमरकुसपाणिने
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥७०॥

कदाहं अस्सारूहे . . .
नील वम्मधरे इल्लियाचापधारिने
पहाय पब्बजिस्सामि . . ॥७१॥

कदाहं धनुग्गहे . .
नीलवम्मधरे सूरे चापहत्थे कलापिने
पहाय पब्बज्जिस्सामि . . ॥७२॥

कदाहं राजपुत्ते . .
चित्त वम्मधरे सूरे कञ्चनावेळधारिने
पहाय पब्बजिस्सामि . ॥७३॥

कदाहं अरियगणे वत्थवन्ते अलङ्कते
हरिचन्दनलित्तगे कासिकुत्तमधारिने
पहाय . . ॥७४॥

कदा सत्तसता भरिया सब्बालङ्कारभूसिता
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥७५॥
कदा सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥७६॥
कदा सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
'पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥७७॥
कदा सतफल कस सोवण्ण सतराजिकं,
पहाय पब्बजिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥७८॥
कदास्सु म हत्थिगुम्ब सब्बालङ्कारभूसिता
सुवण्णकच्छा मातंगा हेमकप्पनवासा॥७९॥
आरूळहा गामणीयेहि तोमरंकुसपाणिहि,
यन्त मा नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥८०॥
कदास्सु म अस्सगुम्बा . ..
आजानिय्या च जातिया सिन्धवा सीघवाहना ॥८१॥

आरूळ्हा गामणीयेहि इल्लियाचापधारिहि
यन्त मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८२॥
कदास्सु म रथसेनी सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालङ्कारभूसिता ॥८३॥
आरूळ्हा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि
यन्त म नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८४॥
कदास्सु म सोवण्णरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालंकारभूसिता ॥८५॥
आरूळ्हा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
यन्त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥८६॥
कदास्सु म सज्झुरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालङ्कारभूसिता ॥८७॥

आरूळ्हा .
यन्त म . .. ॥८८॥
कदास्सु म अस्सरथा ..
दीपा . . ॥८९॥
आरूळ्हा .
यं त म .. . . ॥९०॥
कदास्सु म ओट्ठरथा
दीपा . ॥९१॥
आरूळ्हा
य त म ॥९२॥
कदास्सु म गोरथा .
दीपा ॥९३॥
आरूळ्हा
यं त म.

कदास्सु म अजरथा
दीपा . . ॥९५॥
आरूळहा... . .
य त म . ... ॥९६॥
कदास्सु म मेण्डरथा .
दीपा . ॥९७॥
आरूळहा . . .
य त म . ॥९८॥
कदास्सु म मिगरथा
दीपा ॥९९॥
आरूळहा
यन्त म ॥१००॥
कदास्सु म हत्थारूहा सब्बालकारभूसिता
नीलवम्मधरा सूरा तोमरकुसपाणिनो,
य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०१॥
कदास्सु म अस्सारूहा
नीलवम्मधरा सूरा इल्लिया चापधारिनो
यं तं म . . . ॥१०२॥
कदास्सु य धनुग्गहा सब्बालकारभूसिता
नील वम्म धरा सूरा चापहत्थाकलापिनो
य त म . . . ॥१०३॥
कदास्सु म राजपुत्ता सब्बालकारभूसिता
चित्तवम्मधरा सूरा कञ्चनावेठधारिनो,
य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०४॥
कदास्सु म अरियगणा वत्थवन्ता अलकता,
हरिचन्दनलित्तगा कासिकुत्तमधारिनो,
य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०५

आरूळहा गामणीयेहि इल्लियाचापधारिहि
यं त मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८२॥
कदास्सु म रथसेनी सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालकारभूसिता ॥८३॥
आरूळहा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि
य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥८४॥
कदास्सु म सोण्णरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालकारभूसिता ॥८५॥
आरूळहा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
यन्त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥८६॥
कदास्सु म सज्झुरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालकारभूसिता ॥८७॥
आरूळहा .
यन्त म . .. ॥८८॥
कदास्सु म अस्सरथा . ..
दीपा . ॥८९॥
आरूळहा .
यं त म . . . ॥९०॥
कदास्सु म ओट्ठरथा
दीपा . ॥९१॥
आरूळहा
य त म . ॥९२॥
कदास्सु मं गोरथा .
दीपा . ॥९३॥
आरूळहा
यं त म ॥९४॥

कदास्सु म अजरथा .

दीपा . . . . ॥९५॥

आरूळ्हा . . . .

य त म . . . . . . ॥९६॥

कदास्सु म मेण्डरथा . .

दीपा ॥९७॥

आरूळ्हा . . . .

य तं म . . ॥९८॥

कदास्सु म मिगरथा

दीपा . ॥९९॥

आरूळ्हा . . .

यन्त म . . . ॥१००॥

कदास्सु म हत्थारूळ्हा सब्बालकारभूसिता

नीलवम्मधरा सूरा तोमरकुसपाणिनो,

य तं म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०१॥

कदास्सु म अस्सारूळ्हा

नीलवम्मधरा सूरा इल्लिया चापधारिनो

य तं म . ॥१०२॥

कदास्सु य धनुग्गहा सब्बालकारभूसिता

नील वम्म धरा सूरा चापहत्थाकलापिनो

यं त म . . . . ॥१०३॥

कदास्सु म राजपुत्ता सब्बालकारभूसिता

चित्तवम्मधरा सूरा कञ्चनावेठधारिनो,

य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०४॥

कदास्सु म अरियगणा वत्थवन्ता अलकता,

हरिचन्दनलित्तगा कासिकुत्तमधारिनो,

य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०५॥

कदास्सु मं सत्तसता भरिया सब्बालङ्कारभूसिता,
य त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०६॥
कदा सत्त सता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा
यन्ता म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०७॥
कदा सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी
यन्त म नानुयिस्सन्ति त कदास्सु भविस्सति ॥१०८॥
कदा पत्त गहेत्वान मुण्डो सघाटिपारुतो
पिण्डिकाय चरिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥१०९॥
कदाह पसुकूलान उज्झितान महापथे
सघाटि धारयिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥११०॥
कदाह सत्ताह मेघे ओवट्ठो अल्लचीवरो,
पिण्डिकाय चरिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥१११॥
कदाह सब्बह ठान रुक्खा रुक्ख वना वन
अनपेक्खो विहरिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥११२॥
कदाह गिरिदुग्गेसु पहीनभयभेरवो,
अदुतियो विहरिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥११३॥
कदाह वीणव रुजको सत्ततन्ति मनोरम
चित्त उजु करिस्सामि त कदास्सु भविस्सति ॥११४॥
कदाह रथकारोव परिकन्त उपाहन
कामसयोजने छेच्छ ये दिब्बे ये च मानुसे ॥११५॥

(यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, विशाल, सभी ओर प्रकाशित मिथिला नगरी को छोडकर प्रव्रजित होऊगा ? ॥२५॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, विभक्त, हिस्से कर के नापी गई मिथिला नगरी को छोडकर प्रव्रजित होऊगा ? ॥२६॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, अनेक प्राकारों तथा तोरणो वाली मिथिला नगरी को ? ॥२७॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध दृढ अट्टालिकाओ तथा कोठोवाली मिथिला नगरी को ? ॥२८॥ यह कब होगा सुविभक्ता, महापथवाली मिथिला नगरी को ? ॥२९॥ यह कब होगा सुविभक्ता, अन्दर दुकानोंवाली मिथिला

नगरी को ?।।३०।। यह कब होगा गौवो, घोड़ो तथा रथो से भरी मिथिला नगरी को ?।।३१।। यह कब होगा कि आराम वनो की पक्तियोवाली मिथिला नगरी को ?।।३२।। यह कब होगा उद्यान, वनो की पक्तियो वाली मिथिला नगरी को ?।।३३।। यह कब होगा प्रासाद वनो की पक्तियो वाली मिथिला नगरी को ?।।३४।। यह कब होगा तीन पुरो वाली, राज-बन्धुओ वाली, यशस्वी, प्रसन्नचित्त विदेह द्वारा निर्मित मिथिला नगरी को ?।।३५।। यह कब होगा कि धान्यादि सग्रह से युक्त, धर्म-रक्षित, विदेह-नगरी को ?।।३६।। यह कब होगा कि अजेय धर्म-रक्षित विदेह ?।।३७।। यह कब होगा कि रमणीय, विभक्त, हिस्से कर के नापे गये अन्त पुर को ?।।३८।। यह कब होगा कि रमणीय, चूने तथा मिट्ठी से लेपे गये अन्त पुर को ?।।३९।। यह कब होगा कि रमणीय, पवित्र, मनोरम अन्त पुर को ?।।४०।। यह कब होगा कि विभक्त, हिस्से करके नापे गये, चूने तथा मिट्टी से लेपे गये, पवित्र मनोरम शिखरो को छोडकर . ?।।४१-४३।। यह कब होगा कि रक्त-चन्दन से चर्चित किये गये शिखरो को . ?।।४४।। यह कब होगा कि चित्रित ऊनी आस्तरणो वाले सुनहरी पलगो को ?।।४५।। यह कब होगा कि मै कपास, कोसिय क्षोम तथा कोटुम्बर (नगर) के वस्त्रो को ?।।४६।। यह कब होगा कि मैं उन रमणीय पुष्करणियो को जहाँ चक्रवाक गूजते हैं, जो मन्दालक से तथा पद्म और उत्पलो मे ढकी है, छोडकर ।।४७।। यह कब होगा कि मै उन हाथियो को जो सभी अलकारो से विभूषित हैं, जिनके गलो मे स्वर्णमालायें हैं, जिनके तन पर सुनहरी झोल है और जिनके कधे पर तोमर तथा अकुश लिये हथवान बैठे हैं, छोडकर ?।।४८-४९।। यह कब होगा कि मै ऐसे घोडो के समूह को जो सभी अलकारो से विभूषित हैं, जो जाति से श्रेष्ठ हैं, सैन्धव हैं, शीघ्रगामी हैं, जिन पर इल्ली (-शस्त्र) तथा धनुष धारण किये घुडसवार बैठे है, छोडकर ? ।।५०-५१।।यह कब होगा कि रथो की पक्तियो को, जो सन्नद्ध है, जिन पर ध्वजाये लहराती हैं, जिनपर चीते तथा व्याघ्रो के चमडे बँधे है, जो सब अलकारो से विभू-

पित हैं, जिनपर धनुप-धारी कवच-धारी रथवान बैठे है, छोडकर ? ॥५२-५३॥ यह कब होगा कि स्वर्ण रथो को, जो सन्नद्ध है छोडकर . ॥५४-५५॥ यह कब होगा कि चान्दी के रथो को, जो सन्नद्ध है छोडकर ॥५६-५७॥ यह कब होगा कि अश्व-रथो क जो सन्नद्ध है छोडकर ॥५८-५९॥ यह कब होगा कि ऊँटो के रथा को, जो सन्नद्ध है छोडकर . ॥६०-६१॥ यह कब होगा कि बैलो के रथो को, जो सन्नद्ध है छोडकर . ॥६२-६३॥ यह कब होगा कि बकरी के रथो को, जो सन्नद्ध है छोडकर ॥६४-६५॥ यह कब होगा कि मेढो के रथो को, जो सन्नद्ध है छोड-कर ॥६६-६७॥ यह कब होगा कि मृगो के रथो को, जो सन्नद्ध है छोडकर ? ॥६८-६९॥ यह कब होगा कि मै सब अलकारो से विभूपित,-नीलकवचधारी, शूर, तोमर-अकुशधारी हथवानो को छोडकर ? ॥७०॥ यह कब होगा कि मै सब उल्लिय (-शस्त्र) तथा धनुपधारी घुडसवारो को छोडकर ? ॥७१-७२॥ यह कब होगा कि मै सब अलकारो से विभूपित, नीलकवचधारी, शूर, धनुप तथा तूणीरधारी धनुर्धारियो को छोडकर ? ॥७२॥ यह कब होगा कि मै सब अलकारो से विभूपित, चित्रित कवचधारी, शूर, स्वर्णमालाये धारण करनेवाले राजपुत्रो को छोडकर ? ॥७३॥ यह कब होगा कि मै वस्त्रधारी, अलकारधारी काचन-वर्ण चन्दन का लेप करनेवाले, काशी का उत्तमवस्त्र धारण करनेवाले आर्य-गण को छोडकर ? ॥७४॥ यह कब होगा कि मै सभी अलकारो से विभूपित सात सौ स्त्रियो को छोडकर ? ॥७५॥ यह कब होगा कि मैं सात सो सुसयत, पतली कमरवाली स्त्रियो को छोडकर ? ॥७६॥ यह कब होगा कि मै सात सौ आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी भार्य्याओ को छोडकर ? ॥७७॥ यह कब होगा कि सौ लकीरो वाली स्वर्णमय थाली को छोडकर . ॥७८॥ यह कब होगा कि वे हाथी, जो सभी अलकारो से विभूषित है, जिनके गलो मे स्वर्ण-मालाये है, जिनके तन पर सुनहरी झोल है और जिनके कन्धे पर तोमर तथा अकुश लिये हथवान बैठे है, मेरा पीछा न करें ? ॥७९-८०॥ यह कब होगा कि ऐसे घोडो के समूह, जो सभी अलकारो से विभूषित है जो जाति से श्रेष्ठ है, सैन्धव है, शीघ्रगामी है, जिन पर इल्ली (-शस्त्र) तथा धनुप

धारण किये घुडसवार बैठे है, मेरा पीछा न करें ।।८१-८२।। यह कब होगा कि रथो की पक्तियाँ, जो सन्नद्ध है, जिन पर ध्वजाये लहराती है, जिन पर चीते तथा व्याघ्रो के चमडे बधे है, जो सब अलकारो मे विभूपित है, जिन पर धनुषधारी कवच-धारी रथवान बैठे है, मेरा पीछा न करेगी ? ।।८३-८४।। यह कब होगा कि मेरे स्वर्ण-रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।८५-८६।। यह कब होगा कि मेरे चान्दी के रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।८७-८८।। यह कब होगा कि मेरे अश्व-रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ।।८९-९०।। यह कब होगा कि मेरे ऊंटो के रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।९१-९२।। यह कब होगा कि मेरे बैलो वाले रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।९३-९४।। यह कब होगा कि मेरे बकरो वाले रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।९५-९६।। यह कब होगा कि मेरे मेढो वाले रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।९७-९८।। यह कब होगा कि मेरे मृगो वाले रथ, जो सन्नद्ध है ... न करेगे ? ।।९९-१००।। यह कब होगा कि सब अलकारो से विभूपित, नील कवचधारी, शूर, तोमर-अकुशधारी रथवान मेरा पीछा न करे ? ।।१०१।। यह कब होगा कि सब अलकारो मे अलकृत ... इल्लिय-(शस्त्र) तथा धनुषधारी घुडसवार पीछा न करें ? ।।१०२।। यह कब होगा कि सब अलकारो से विभूपित, नील कवचधारी, शूर, धनुष तथा तूणीरधारी धनुषधारी मेरा पीछा न करे ? ।।१०३।। यह कब होगा कि सब अलकारो से विभूपित, चित्रित कवच-धारी, शूर, स्वर्णमालाये धारण करनेवाले राजपुत्र मेरा पीछा न करे ? ।।१०४।। यह कब होगा कि वस्त्रधारी, अलकार-धारी, काचन-वर्ण चन्दन का लेप करनेवाले काशी का उत्तम वस्त्र धारण करनेवाले आर्य-गण मेरा पीछा न करे ? ।।१०५।। यह कब होगा कि सभी अलकारो से अलकृत, सात सौ भार्याये मेरा पीछा न करे ? ।।१०६।। यह कब होगा कि सात सौ सुसयत, पतली कमरवाली स्त्रियाँ मेरा पीछा न करें ।।१०७।। यह कब होगा कि सात सौ आज्ञाकारिणी, प्रिय भाषिणी भार्य्याये मेरा पीछा न करे ? ।।१०८।। यह कब होगा कि मै भिक्षापात्र हाथ मे लेकर, सिर मुण्डाकर, सघाटी धारण कर भिक्षाटन के लिये निकलूगा ? ।।१०९।। यह कब होगा कि मै रास्ते पर फेंके हुए चीथडो की सघाटी बनाकर पहनूगा ? ।।११०।। यह कब होगा कि सप्ताह भर, पानी बरसने पर मै भीगेवस्त्र भिक्षाटन के लिये

निकलूंगा ? ॥१११॥ यह कब होगा कि मैं सारा दिन एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तथा एक वन से दूसरे वन अपेक्षा-रहित होकर विचरूंगा ? ॥११२॥ यह कब होगा कि मैं गिरि तथा दुर्गों मे भय-रहित होकर विचर सकूँगा ? ॥११३॥ यह कब होगा कि मैं वीणा-वादक के सप्त-तन्त्री सुन्दर वीणा को सीधा करने की तरह अपने चित्त को सीधा कर लूंगा ?॥११४॥ यह कब होगा कि रथ-कार के उपाहन को काट डालने की तरह मैं काम-सयोजन को काट डालूँगा ? ॥११५॥)

उसका जन्म उस समय हुआ था, जब मनुष्यो की आयु दस हजार वर्ष की होती थी। उसने सात हजार वर्ष राज्य किया। तीन हजार वर्ष की आयु शेष रह जाने पर प्रव्रजित हुआ। हाँ, प्रव्रजित होते हुए वह उद्यान-द्वार पर आम्र-वृक्ष देखने के समय से चार महीने ही घर मे रहा। उसने सोचा, "इस वेष से प्रव्रजित वेष ही अच्छा है, प्रव्रजित होऊंगा।" उसने चुपके से सेवक को आज्ञा दी, "तात ! विना किसी को सूचना दिये बाजार से कापाय वस्त्र तथा मिट्टी के पात्र ले आओ।" उसने वैसा ही किया। राजा ने नाई को बुलवा, केश तथा दाढी मुडवायी। फिर उसे विदाकर, एक काषाय-वस्त्र पहन लिया, एक ओढ लिया और एक कधे पर रख लिया। उसने मिट्टी का वरतन भी थैली मे डाल कन्धे पर लटका लिया। तब हाथ की लकडी ले प्रत्येक-बुद्ध की तरह तल्ले पर कई बार इधर से उधर टहला। उस दिन वह वही रहकर, अगले दिन सूर्योदय के समय प्रासाद से उतरने लगा।

तब सीवली देवी ने उन सात सौ भार्याओ को बुलाकर कहा, "राजा को देखे बहुत दिन हो गये। चार महीने बीत गये। आज उसे देखने चलेगे। सभी सज-सजाकर आओ और स्त्रियो के हाव-भाव दिखाकर उसे यथाशक्ति राग के बधन मे बाधने का प्रयत्न करो।" फिर उन अलकृत स्त्रियो को साथ ले, राजा को देखूंगी, सोचती हुई वह प्रासाद पर चढने लगी। उसने राजा को उतरते देखा, किन्तु देखकर भी नही पहचाना। यह समझ कि राजा को उपदेश देने आये कोई प्रत्यक-बुद्ध होगे, वह प्रणाम कर एक ओर खडी हो गई। बोधिसत्व भी महल से उतरा। उन्होने ऊपर जाकर जब शैय्या पर राजा के काले वाल तथा सिंगार का सामान देखा, तब जाना "वह प्रत्येक-बुद्ध नही, हमारा प्रिय स्वामी ही होगा।" उसने उन सबको कहा, "आओ, उसकी मिन्नत कर उसे रोकेगे।" वह ऊपर से उतरी और आङ्गन मे

पहुच, उन सबके साथ वालो को खोल, पीठ पर विखेर लिया। फिर छाती पीटते हुए अत्यन्त करुण स्वर मे यह कहते हुए कि 'महाराज ! ऐसा क्यो करते है ?' उसका पीछा किया। सारा नगर भी क्षुब्ध हो गया। वे भी रोते हुए राजा के पीछे हो लिये, "हमारा राजा प्रव्रजित हो गया। इस प्रकार का धार्मिक राजा हम फिर कहाँ पायेगे ?" उस समय उन देवियो का रोना-पीटना तथा उनके रोने-पीटने के वावजूद राजा का चल देना व्यक्त करने के लिये शास्ता ने कहा—

ता च सत्तसता भरिया सब्बालकारभूसिता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११६॥
ता च सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११७॥
ता च सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११८॥
ता च सत्तसता भरिया सब्बालकारभूसिता,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥११९॥
ता च सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥१२०॥
ता च सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥१२१॥

[वह सात सौ, सब अलकारो से विभूषित स्त्रियाँ बाहे उठाकर रोने लगी, "हमें क्यो छोडता है ?" ॥११६॥ वे सात सौ, सुसयत पतली कमरवाली स्त्रियाँ वे सात सौ आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी स्त्रियाँ बाहे उठाकर रोने लगी, "हमे क्यो छोडता है ?" ॥११७-११८॥ उन सभी अलकारो से विभूषित स्त्रियो को छोड राजा प्रव्रजित होने के उद्देश्य से चल पडा ॥११९॥ उन सभी सुसयत, पतली कमरवाली आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी स्त्रियो को छोड राजा प्रव्रजित होने के उद्देश्य मे चल पडा ॥१२०-१२१॥]

हित्वा सतफल वस सोवण्ण सतराजिक,
अग्गही मत्तिकापत्त त दुतियाभिसेचन ॥१२२॥

[सौ जोड़ोंवाले, सौ लकीरोंवाले सोने के बरतन को छोड़कर मिट्टी का बरतन ग्रहण किया, यह उसका दूसरा जीवन हुआ ॥१२२॥]

जब सीवली देवी रोती-पीटती हुई भी राजा को न रोक सकी, तो उसे एक उपाय सूझा। उसने महासेना-रक्षक को बुलवाकर आज्ञा दी, "तात! राजा के जाने के रास्ते पर आगे आगे पुराने घरों तथा पुरानी शालाओं में आग लगा दो। घास-पत्ते इकट्ठे कराकर जहाँ-तहाँ धुआँ करा दो।" उसने वैसा करा दिया। उसने राजा के पास पहुँच, पाँवों में गिर, मिथिला में आग लगने की बात कहते हुए दो गाथायें कहीं—

वेस्मा अग्गिस्मा जाला कोसा डय्हन्ति भागसो,
रजतं जातरूपञ्च मुत्ता वेलुरिया बहू ॥१२३॥
मणयो सङ्खमुत्ता च वत्थिकं हरिचन्दनं,
अजिनं दन्तभण्डञ्च लोहं काळायसं बहुं,
एहि राज निवत्तस्सु मा ते तं विनसा धनं ॥१२४॥

[घरों में लगी आग में से ज्वाला निकल रही है, खजाने भी हिस्सा हिस्सा करके जल रहे हैं, चान्दी, सोना, मुक्ता तथा बहुत से बिलौर भी (जल रहे हैं) ॥१२३॥ मणियाँ, शङ्ख-मुक्ता, वस्त्र, हरित-वर्ण चन्दन, अजिन (चर्म), हाथी-दाँत का सामान, लोहा, बहुत-सा ताम्बा आदि (जल रहा है)। हे राजन्! आकर रोकें। तुम्हारा धन नष्ट न हो ॥१२३॥]

तब बोधिसत्व ने, 'यह देवी क्या कहती है? जिनका कुछ होता है उन्हीं का जलता है। हम तो अकिंचन हैं' प्रकट करने के लिये गाथा कही—

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं,
मिथिलाय डय्हमानाय न मे किञ्चि अडय्हथ ॥१२५॥

[हमारे पास कुछ नहीं है। हम सुखपूर्वक जीते हैं। मिथिला नगरी के जलने पर मेरा कुछ नहीं जलता ॥१२५॥]

यह कह उत्तर-द्वार से निकल पड़ा। उसकी वे स्त्रियाँ भी निकल पड़ीं। फिर देवी ने एक उपाय सोच कर आज्ञा दी, "ग्राम-घात, देश का लूटना जैसा करके

दिखाओ।" उसी समय शस्त्रधारी आदमी जहां तहां मे दौड आकर लूट मचाने लगे, शरीर मे लाख का रग लगाकर जख्मी बने हुए जैसे और तख्तो पर लिटाकर लिये जाते हुए मरो जैसे (आदमी) राजा को दिखाये गये। लोग चिल्लाने लगे, "महाराज! तुम्हारे जीते जी राज्य लूटा जा रहा है। आदमी मारे जा रहे हैं।" देवी ने भी राजा को प्रणाम कर रोकने के लिये गाथा कही—

अटवियो समुप्पन्ना रट्ठ विद्धसयन्ति न,
एहि राज निवत्तस्सु मा रट्ठ विनसा इदं ॥१२६॥

[जगल मे डाकू उत्पन्न हो गये हैं। वे राष्ट्र को उजाड रहे हैं। हे राजन् रुकें। इस राष्ट्र का विनाश न हो ॥१२६॥]

राजा समझ गया कि मेरे रहते ही चोर उठकर राष्ट्र को उजाडने लगे हो, यह बात नही। यह सीवली देवी की ही कृति होगी। उसने उसे अप्रतिभ करते हुए कहा—

सुसुख वत जीवाम येस नो नत्थि किञ्चन
रट्ठे विलुम्पमानम्हि न मे किञ्चि अजीरथ ॥१२७॥
सुसुख वत जीवाम येस नो नत्थि किञ्चन
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥१२८॥

[हमारे पास कुछ नही। हम सुखपूर्वक जीते हैं। राष्ट्र के उजडने से मेरी कुछ हानि नही ॥१२७॥ हमारे पास कुछ नही। हम सुखपूर्वक जीते हैं। जैसे अभास्वर देवता, वैसे ही हम प्रीति-भक्षक होकर रहेंगे ॥१२८॥]

ऐसा कहने पर भी जनता ने राजा का पीछा नही छोडा। तब उसके मन मे हुआ, लोग रुकते नही हैं। इन्हें रोकूगा। आधे गव्यूति चले जाने पर महा-मार्ग पर खडे हो उसने अमात्यो से पूछा, "यह किसका राज्य है?"

"देव! आपका।"

"तो इस रेखा को लाघनेवाले को राज-दण्ड दो" कह हाथ की लकडी से तिरियक-लकीर खीची। तेजस्वी द्वारा खीची उस लकीर को कोई नही लाघ सका। जनता रेखा पर सिर रख जोर जोर से चिल्लाने लगी। देवी का भी उस रेखा को लाघने

का साहस नही हुआ। जब उसने देखा कि राजा पीठ फेरकर चला गया है तो वह शोक को न सह सका। वह छाती पीटती हुई महा-मार्ग पर गिर पडी और लुढकती हुई रेखा लाघ गई। जनता ने देखा कि रेखा के स्वामियो ने ही रेखा तोड दी है, वह भी उसी मार्ग से गई। बोधिसत्व उत्तर हिमालय की ओर चला गया। देवी भी सारी सेना-वाहन आदि ले उसके साथ हो गई। राजा जनता को न रोक सकने के कारण उसे साथ लिये लिये ही साठ योजन गया।

उस समय हिमालय की स्वर्ण-गुफा मे नारद नाम का तपस्वी रहता था। वह सप्ताह भर तक पाँच अभिञ्ञाओ तथा ध्यान-सुख का आनन्द लेता रहा। सप्ताह बीतने पर वह ध्यान से उठ उल्लास-पूर्वक कहने लगा, "आह सुख! ओह सुख!" वह सोचने लगा, क्या जम्बू द्वीप मे कोई ऐसा है जो इस सुख की खोज करता हो? दिव्य-चक्षु से देखने पर उसे महाजनक बुद्धाङ्कुर दिखाई दिया। उसने देखा कि राजा ने महाभिनिष्क्रमण किया है ओर वह सीवली देवी के पीछे पीछे आती हुई जनता को रोक नही सक रहा है। उसे डर हुआ कि लोग विघ्न भी डाल सकते है। उसने सोचा कि मै उसे ओर भी प्रसन्नतापूर्वक दृढ सकल्प करने का उपदेश दूगा। यह सोच ऋद्धि-बल से जाकर, राजा के सामने आकाश मे स्थित हो, उसका उत्साह बढाने के लिये कहा—

किम्हेसो महतो घोसो कानु गामे किलीलिया,
समणञ्ञेव पुच्छाम कत्थेसो अभिसटोजनो ॥१२९॥

[यह हल्ला किस कारण है? यह गाव जैसी किलकिल क्या है? हे श्रमण! मै तुझी से पूछता हूँ यह जनता क्यो इकट्ठी हुई है? ॥१२९॥]

राजा बोला—

मम ओहाय गच्छन्त एत्थेसो अभिसटोजनो,
सीमातिक्कमनं यन्त मुनि मोनस्स पत्तिया,
मिस्स नन्दीहि गच्छन्त कि जानमनुपुच्छसि ॥१३०॥

[मै छोडकर जा रहा हू। यह जनता इसीलिये इकट्ठी हुई है। मै सीमा-क्रान्त मुनि हूँ और मौन की प्राप्ति के लिये निकला हूँ। मै मिश्रित-नन्दी-राग सहित जा रहा हूँ। क्या तुम जान बूझकर पूछ रहे हो? ॥१३०॥]

उसने उसे दृढ रहने के लिये उत्साहित करते हुए फिर गाथा कही—

मास्सु तिण्णो अमञ्ञित्थो सरीरं धारयं इमं,
अतीरणेय्यमिदं कम्मं बहूहि परिपन्थयो ॥१३१॥

[इस वेश को धारण कर लेने मात्र से यह नही समझना कि मै पार हो गया हूँ। यह इस तरह से पार नही किया जा सकता। इसमे बहुत से विघ्न है ॥१३१॥]

तब बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

को नु मे परिपन्थस्स मम एवं विहारिनो,
यो नेवदिट्ठे नादिट्ठे कामानमभिपत्थये ॥१३२॥

[मै जो न इस लोक मे और न देव-लोक मे ही काम-भोगो की इच्छा करता हूँ, मेरे इस प्रकार विहार करनेवाले के रास्ते मे कौन से विघ्न है ?]

उसने विघ्नो का उल्लेख करते हुए गाथा कही—

निद्दा नन्दि विजम्भिका अरती भत्तसम्मदो,
आवसन्ति सरीरट्ठा बहूहि परिपन्थयो ॥१३३॥

[निद्रा, आलस्य, जम्हाई लेना, उत्कण्ठा तथा भोजन-मद—ये बहुत से विघ्न शरीर में ही निवास करते है॥१३३॥]

बोधिसत्व ने उसकी प्रशसा करते हुए गाथा कही—

कल्याणं वत यं भवं ब्राह्मणमनुसाससि,
ब्राह्मणञ्ञेव पुच्छामि कोनु त्वमसि मारिस ॥१३४॥

[आप मुझे श्रेष्ठ बात का उपदेश दे रहे है। मै ब्राह्मण को ही पूछता हूँ कि हे मित्र ! आप कौन है ? ॥१३४॥]

तब नारद बोला—

नारदो इति मे नाम कस्सपो इति मं विदू,
भोतो सकासे आगच्छि साधु सब्भि समागमो ॥१३५॥
तस्स ते सब्बो आनन्दो विहारो उपवत्ततु,
यदून तं परिपूरेहि खन्तिया उपसमेन च ॥१३६॥

पसारय सन्नत्त च उन्नतञ्च पसारय,
कम्म विज्जञ्च धम्मञ्च सक्कत्वान परिब्बज ॥१३७॥

[मेरा नाम नारद है, (गोत्र से) मुझे काश्यप जानते है । मै आपके पास आया हूँ, क्योंकि सज्जनो की सगति अच्छी होती है ॥१३५॥ तेरे लिये सब आनन्द है। तू (ब्रह्म-) विहारो का अभ्यास कर। हे क्षत्रिय ! जो कमी है उसे उपशमन द्वारा पूरा कर ॥१३६॥ नीच-मान तथा ऊच-मान को छोड दे। कर्म, विद्या और धर्म को दृढकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ॥१३७॥]

इस प्रकार वह बोधिसत्व को उपदेश दे आकाश-मार्ग से अपने-निवास स्थान को ही चला गया।

उसके चले जाने पर एक दूसरा मिगाजिन नामका तपस्वी भी उसी प्रकार ध्यान से उठा और उसने बोधिसत्व को देखा, सोचा कि जनता को रोकने के लिये उसे उपदेश दूगा। वह भी उसी प्रकार जा, आकाश मे खडा हो बोला—

बहू हत्थी च अस्से च नगरे जनपदानि च,
हित्वा जनक पब्बजितो कपल्ले रतिमज्झगा ॥१३८॥
कच्चिन्नु ते जानपदा मित्तामच्चा च ञातका,
दूभि अकसु जनक कस्मा चेत अरुच्चथ ॥१३९॥

[हे जनक ! तूने बहुत से हाथी, घोडे, नगर तथा जनपदो को छोडकर प्रव्रज्या ग्रहण की है और मिट्टी के भिक्षा-पात्र को पसन्द किया है ॥१३८॥ हे जनक ! क्या तेरे जनपद के लोगो ने, मित्र-अमात्यो ने अथवा सम्बन्धियो ने विद्रोह किया है ? तुझे यह भिक्षा-पात्र क्यो अच्छा लगा है ? ॥१३९॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न मिगाजिन जातुच्च अहकञ्चि कुदाचन,
अधम्मेन जिने ञातिं न चापि ञातयो मम ॥१४०॥

[मिगाजिन ! न मैने ही अपने किसी रिश्तेदार को कभी भी अधर्म से जीता और निश्चय से ही न मेरे किसी रिश्तेदार ने मुझे अधर्म से हराया ॥१४०॥]

इस प्रकार उसके प्रश्न का प्रत्याख्यान कर प्रव्रज्या का कारण बताया —

दिस्वान लोक वत्तन्त खज्जन्त कद्दमीकत,
हञ्ञरे बज्झरे चेत्थ यत्थ सत्तो पुथुज्जनो,
एताह् उपमं कत्वा भिक्खकोस्मि मिगाजिन ॥१४१॥

[मैंने इस लोक को परिवर्तित होते, खाये जाते, गारा बनते देखा। यहाँ आसक्त पृथक-जन मारा जाता है, बांधा जाता है। मैंने अपने आपको उनके समान समझा और इसीलिये हे मिगाजिन! मैंने भिक्षा-पात्र ग्रहण किया ॥१४१॥]

उसने 'मिगाजिन' करके सम्बोधन किया। प्रश्न है कि उसे उसका नाम कैसे ज्ञात हो गया था? उत्तर है कि आरम्भ मे कुशल-क्षेम पूछने के समय ही उसने पूछ लिया था। तपस्वी ने विस्तार-पूर्वक जानने की इच्छा से गाथा कही—

कोनु ते भगवा सत्था कस्सेत वचन सुचिं,
नहि कप्प वा विज्ज वा पच्चक्खाय रथेसभ,
समण आहु वत्तन्त यथा दुक्खस्सतिक्कमो ॥१४२॥

[तुम्हारा शास्ता भगवान् कौन है? यह किसका पवित्र वचन है? हे राजन्! कर्मवादी-श्रमण अथवा विद्या-श्रमण का प्रत्याख्यान करके दुक्ख का अन्त करने-वाला श्रमण नही कहला सकता ॥१४२॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न मिगाजिन जातुच्च अह कञ्चि कुदाचन,
समण ब्राह्मण वापि सक्कत्वा अनुपाविसिं ॥१४३॥

[हे मिगाजिन! मैंने निश्चय से कभी किसी श्रमण-ब्राह्मण की पूजा कर उससे नही पूछा ॥१४३॥]

इसने प्रत्येक-बुद्ध आदि से धर्म सुना था, किन्तु प्रव्रज्यादि के गुण विशेष रूप से कभी नही पूछे थे, इसीलिये ऐसा कहा।

इतना कह जिस कारण से प्रव्रजित हुआ उसे आरम्भ से स्पष्ट करने के लिये कहा—

महताचानुभावेन गच्छन्तो सिरियाजल,
गीयमानेसु गीतेसु वज्जमानेसु वग्गुसु,
तुरियताळितसघुट्ठे सम्पताल समाहिते ॥१४४॥

समिगाजिनमद्दक्खि फल अम्ब तिरोच्छद,
तुज्जमान मनुस्सेहि फल कामेहि जन्तुहि ॥१४५॥
सो खोहेत सिरिं हित्वा ओरोहित्वा मिगाजिन,
मूल अम्बस्सुपागञ्छि फलिनो निप्फलितस्सचा ॥१४६॥
फल अम्ब हत दिस्वा विद्धस्त विनलीकत,
अथेत इतर अम्ब नीलोभासं मनोरम ॥१४७॥
एवमेव नून अम्हे इस्सरे बहुकण्टके,
अमित्ता नो वधिस्सन्ति यथा अम्बो फली हतो ॥१४८॥
अजिनम्हि हञ्ञते दीपि नागो दन्तेहि हञ्ञति,
धनम्हि धनिनो हन्ति अनिकेतमसन्थवं,
फली अम्बो अफलोच ते सत्थारो उभो मम ॥१४९॥

[बडे प्रताप ओर ठाट बाट के साथ, जब गीत गाये जा रहे थे और जब बाजे बज रहे थे मैंने तुरिय-वादन से उद्घोपित तथा सम्म-ताळ युक्त उद्यान मे जाते समय हे मृगाजिन! मैंने प्राकार की ओट मे आम्र-फल देखा जिसे फल की कामना वाले मनुष्य तथा अन्य प्राणी नाच रहे थे ॥१४४-१४५॥ हे मृगाजिन! मैंने उस वैभव को छोडा ओर उतरकर मैं उस फलवाले तथा बिना फलवाले आम के पेड के नीचे आया ॥१४६॥ मैंने फल-दार पेड को ध्वस्त तथा उजडा हुआ देखा ओर दूसरे को हरा-भरा तथा मनोरम ॥१४७॥ तब मैंने सोचा, "इसी प्रकार बहुत काँटोवाले ऐश्वर्य्यवान हम लोगो को हमारे शत्रु मार डालेंगे, जैसे फलदार पेड को ॥" ॥१४८॥ चमडे के लिये चीता मारा जाता है, हाथी-दात के लिये हाथी मारा जाता है और धन के लिये धनी मारा जाता है, अनागरिक तथा तृष्णाविहीन को कौन मारेगा? फलदार तथा बिना फलवाला—ये दोनो आम के पेड मेरे शास्ता है ॥१४९॥]

यह सुन मृगाजिन ने राजा को अप्रमादी रहने का उपदेश दिया और अपने निवास-स्थान को चला गया। उस समय सीवली देवी राजा के पैरो पर गिरकर बोली—

सब्बो जनो पब्यथितो राजा पब्बजितो इति,

हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारिका ॥१५०॥

अस्सासयित्वा जनत ठपयित्वा पटिच्छद,

पुत्त रज्जे ठपेत्वान अथ पच्छा पब्बजिस्ससि ॥१५१॥

[हाथी-वाले, घोडे-वाले, रथवाले, पैदल—सभी इस बात से दुखी है कि राजा प्रव्रजित हो गया ॥१५०॥ जनता को आश्वासन देकर, उसकी चादर बनकर और पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करके बाद मे प्रव्रजित होना ॥१५१॥]

तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

चत्ता मया जानपदा मित्तामच्चा च ञातका,

सन्ति पुत्ता विदेहानं दीघावु रट्ठवड्ढनो,

ते रज्ज कारयिस्सन्ति मिथिलाय पजापति ॥१५२॥

[मैंने जनपद, के लोगो का, मित्र-अमात्यो का तथा सम्बन्धियो का त्याग कर दिया है। विदेहो का पुत्र राष्ट्रवर्धन दीर्घायु (कुमार) है। हे प्रजापति ! वे उससे मिथिला का राज्य करा लेगे ॥१५२॥]

देवी बोली, 'तुम्हारे प्रव्रजित हो जाने पर मै क्या करूगी ?" "मै बताता हूँ, मेरा कहना करना" कह उसने उत्तर दिया—

एहि त अनुसिक्खामि य वाक्य मम रुच्चति,

रज्ज तुव कारयन्ती पापं दुच्चरित बहु ॥१५३॥

कायेन वाचा मनसा येन गच्छिसि दुग्गति,

परदिन्नकेन परनिट्ठितेन

पिण्डेन यापेहि सरीरधम्मो ॥१५४॥

[आ तुझे जो बात मुझे अच्छी लगती है, उसकी शिक्षा दूं। जब तू राज्य करायेगी तो तुझे बहुत पाप होगा ॥१५३॥ शरीर, वाणी और मन से (बहुत पाप करेगी), जिससे दुर्गति को प्राप्त होगी। दूसरे के दिये हुए, दूसरे द्वारा समाप्त किए हुए भोजन से काम चला। यही धैर्यवानो का धर्म है ॥१५४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे उपदेश दिया। उनके परस्पर बातचीत करते हुए जाते जाते सूर्य्यास्त हो गया। देवी ने योग्य स्थान पर छावनी डलवा दी।

बोधिसत्व भी एक वृक्ष के नीचे पहुँचा। वह वहाँ रात भर रह अगले दिन प्रात कृत्यो से निवृत्त हो मार्गारूढ हुआ। देवी भी 'सेना पीछे आती रहे', उसे छोड उसके पीछे हो ली। वे भिक्षाटन के समय थून नामक नगर मे पहुँचे।

उस समय नगर मे एक आदमी कसाई-खाने से वडा-सा माँस-खण्ड खरीद कर लाया था। वह उसे रसोइये से अगारो पर भुनवाकर, ठण्डा करने के लिये एक पटडे के सिरे पर रखवाकर, खडा था। उसका ध्यान कही ओर देख एक कुत्ता लेकर भागा। उसे पता लगा तो उसने दक्षिण-द्वार तक कुत्ते का पीछा किया। इसके वाद थककर रुक गया। कुत्ते के सामने आ जाने से राजा और देवी दो ओर हो गये। वह डरके मारे माँस छोड भाग गया। वोधिसत्व ने यह देख सोचा, "यह छोडकर अपेक्षा-रहित होकर भाग गया। और भी इसका कोई मालिक नही दिखाई देता। इस प्रकार का निर्दोष धूलि मे पडा हुआ भोजन मिलना (आसान) नही। मैं इसे खाऊगा।" उसने मिट्टी का वरतन बाहर निकाला, उस माँस के टुकडे को लिया, पोछकर पात्र मे रखा और पानी की सुविधा की जगह जाकर खाया। तव देवी ने, 'यदि यह राज्य चाहता होता तो इस प्रकार का घृणितधूल-लगा, कुत्ते का जूठा, माँस का टुकडा न खाता। अब यह हमारा नही ही है, सोच, कहा—"महाराज! ऐसा घृणित खाते हे?"

'देवी, तू अपनी मर्खता के कारण इस भिक्षा को विशेषता नही जानती है' कह उसके प्रतिष्ठा-स्थान की प्रत्यवेक्षणा कर, उसे अमृत के समान ग्रहण कर, मुह साफ कर हाथ पैर धोये। उस समय देवी निन्दा करती हुई वोली—

> योपि चतुत्थे भत्तकाले न भुञ्जे,
> अजद्धुमारीव खुदाय मीये
> न त्वेव पिण्ड लुलित अनरिय
> कुल पुत्तरूपो सप्पुरिसो न सेवे॥१५५॥
> तयिद न साधु तयिद न सुट्ठु
> सुनखुच्छिट्ठक भुञ्जसे त्व॥१५६॥

[जो चौथे (दिन) भोजन के समय भी न खाये, वह अनशन करनेवाले की तरह क्षुधा से मर भी जा सकता है। ऐसा होने पर भी सत्पुरुष, कुलपुत्र को चाहिये कि

घूल लगे अनार्य-भोजन का सेवन न करे ।।१५५।। यह ठीक नही है, यह अच्छा नही है कि जो तू कुत्ते का जूठा माँस खाता है ।।१५६।।]

वोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न चापि मे सीवलो सो अभक्खो,
ये होति चत्त गिहिनो सुनखस्स वा,
ये केचि भोगा इध धम्मलद्धा
सब्बो सो भक्खो अनवज्जो ति वुत्तो ।।१५७।।

[हे सीवली ! जो कुछ आदमी अथवा कुत्ते ने त्याग दिया वह मेरे लिये अभक्ष्य नही है । जो कुछ भी धर्म से प्राप्य है, वह सभी भक्ष्य है, और निर्दोष है—ऐसा कहा गया है ।।१५७।।]

इस प्रकार दोनो वातचीत करते हुए नगर द्वार पर जा पहुचे । वहाँ खेलते हुए वच्चो के बीच में एक लडकी छोटे कुल्लक (?) से वालू को थपथपा रही थी । उसके एक हाथ मे एक कडा था । दूसरे मे दो । वे परस्पर वजते थे । दूसरा हाथ नि शब्द था । राजा ने यह वात जान सोचा, "सीवली मेरे पीछे पीछे चलती है । स्त्री प्रव्रजित के लिये मलिनता है । 'यह प्रव्रजित होकर भी भार्य्या को नही छोड सकता है,' ऐसी मेरी निन्दा भी हो सकती है । यह कुमारी पण्डिता होगी । सीवली देवी को रोकने का उपाय कहेगी । इसकी वात सुन सीवली देवी को विदा करूगा ।" तव वह वोला—

कुमारिके उपसेनिये निच्च निगळमण्डिते,
कस्मा ते एको भुजो जनति एको न जनति भुजो ।।१५८।।

[हे कुमारी ! हे (मा के) पास सोनेवाली ! हे श्रृगार करने वाली ! क्या कारण है कि तेरी एक भुजा वजती है, एक नही वजती ? ।।१५८।।]

कुमारी ने उत्तर दिया—

इमस्मि मे समण हत्थे पटिमुक्का दुनीधुरा,
सघाता जायते सद्दो दुतियस्सेव सा गति ।।१५९।।
इमस्मि मे समण हत्थे पटिमुक्का एकनीधुरो,
सो अदुतियो न जनति मुनि भूतोव तिट्ठति ।।१६०।।

विवादपत्तो दुतियो केनेको विवदिस्सति,
तस्स ते मग्ग कामस्स एकत्तमुपरोचत ॥१६१॥

[हे श्रमण ! मेरे इस हाथ मे दो कङ्गन हैं। रगड से शब्द पैदा होता है। दो होने मे यही होता है ॥१५९॥ हे श्रमण ! मेरे इस हाथ मे एक ही कङ्गन है। वह अकेला होने से आवाज नही करता, चुपचाप रहता है ॥१६०॥ दो होने से विवाद होता है, एक किस से विवाद करेगा ? तुझे स्वर्ग की कामना करनेवाले को अकेला रहना ही रुचिकर लगे ॥१६१॥]

उसने उस छोटी लडकी की बात सुन, उसे आधार मान, देवी से बात करते हुए कहा—

सुणसी सीवलि गाथा कुमारिया पवेदिता,
पेस्सिका म गरहित्थो दुतियस्सेव सा गति ॥१६२॥

[हे सीवली ! कुमारी द्वारा कही गई गाथा सुनती है। यह 'दासी' मेरी निन्दा करती है। दो होने से ही यह हालत है ॥१६२॥]

अय द्वेधा पथो भद्दे अनुचिण्णो पथाविहि,
तेस त्व एक गण्हाहि अहमेक पुनापरं,
नेव म त्व पति मेति माह भरियति वा पुन ॥१६३॥

[भद्रे ! पथिको द्वारा बनाया हुआ यह रास्ता दो ओर जाता है। तू इनमें से एक ग्रहण कर ले, दूसरा मैं। अब से मैं तेरा पति नही, तू मेरी भार्य्या नही ॥१६३॥]

उसकी बात सुनी तो वह बोली, "देव ! तुम उत्तम हो, दक्षिण दिशा ग्रहण करो, मै बाई दिशा।" यह कह, प्रणाम कर थोडी दूर गई। किन्तु शोक को न सह सकने के कारण लौट आई और राजा के साथ बात करते हुए उसने उसके साथ ही नगर मे प्रवेश किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने आधी गाथा कही—

इममेव कथ कथयन्ता,
थूण नगरुपागमु ॥

(यहीं बातचीत करते 'थूण' नगर पहुचे ।।]

उस गाँव मे प्रवेश करने पर बोधिसत्व भिक्षाटन करते हुए बस-फोड के दरवाजे पर पहुचे । सीवली भी एक ओर खडी थी । उस समय बस-फोड अंगीठी मे बास को गरम कर, काञ्जी (?) से भिगो, एक आँख बन्दकर एक से देखता हुआ उसे सीधा कर रहा था । उसे देख, बोधिसत्व ने सोचा, "यदि यह पण्डित होगा, मुझे एक बात कहेगा । इसे पूछता हूँ ।" वह उसके पास पहुचा । उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

कोट्ठके उसुकारस्स भत्तकाले उपट्ठिते
तत्र च सो उसुकारो एकञ्च चक्खु निग्गय्ह,
जिव्हमेकेन पेक्खति ।।१६४।।

[भोजन के समय वह बस-फोड के द्वार पर उपस्थित हुआ । वह बस-फोड एक आख बन्द करके एक से (बास का) टेढापन देखता था ।।१६४।।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

एवं नो साधु पस्ससि उसुकार सुणोहि मे,
यदेक चक्खुं निग्गय्ह जिव्हमेकेन पेक्खसि ।।१६५।।

(हे बस-फोड ! मेरी बात सुन । क्या तुझे इस तरह अच्छा दिखाई देता है, जो तू एक आँख को बन्द करके एक से (बास के) टेढेपन को देखता है ? ।।१६५।।)

उसने उत्तर देते हुए कहा—

द्वीहि समण चक्खूहि विसालं विय खायति,
असम्पत्वा परं लिंगं नुज्जुभावाय कप्पति ।।१६६।।
एकञ्च चक्खु निग्गय्ह जिव्हमेकेन पेक्खतो,
सम्पत्वा परमं लिंगं उजुभावाय कप्पति ।।१६७।।
विवादपत्तो दुतियो केनेको विवदिस्सति,
तस्स ते सग्गकामस्स एकत्तमुपरोचतं ।।१६८।।

[हे श्रमण ! दोनों आँखो से विस्तृत-सा दिखाई पडता है । टेढी जगह का पता न लगने से (बास) सीधा नही होता ।।१६६।। एक आँख को बन्द करके एक

मे टेढापन देखने से, टेढापन दिखाई देकर (वास) सीधा हो जाता है ।।१६७।। दो होने से विवाद होता है। एक किस से विवाद करेगा ? तुझ स्वर्ग की कामना करनेवाले को अकेला रहना ही रुचिकर लगे ।।१६८।।]

बोधिसत्व ने भिक्षाटन कर, मिला-जुला भोजन इकट्ठाकर, पानी की सुविधा की जगह बैठकर भोजन किया। भोजन कर चुकने पर भिक्षा-पात्र को थैली मे डाल सीवली को सम्बोधित किया—

सुणसी सीवलि गाथा उसुकारेन पवेदिता,
पेस्सिया म गरहित्थो दुतियस्सेव सा गति ॥१६९॥
अय द्वेधापथो भद्दे अनुचिण्णो पथाविहि,
तेस त्व एक गण्हाहि अहमेते पुनापर,
नेव मं त्व पति मेति माह भरियति वा पुन ॥१७०॥

[हे सीवली ! बस-फोड द्वारा कही गई गाथा सुनती है। इस 'दासी' शब्द से मेरी निन्दा होती है। दो होने से ही यह हालत है ।।१६९।। भद्रे ! पथिको द्वारा बनाया हुआ यह रास्ता दो ओर जाता है। तू इनमे से एक ग्रहण कर ले, दूसरा मै। अब से मै तेरा पति नही, तू मेरी भार्य्या नही ।।१७०।।]

उसने 'दासी' शब्द कुमारी के ही सम्बन्ध मे कहा। 'अबसे नही' कहने के बावजूद भी देवी बोधिसत्व के पीछे पीछे ही आई। राजा उसे नही रोक सकता था। जनता भी पीछे पीछे चली आ रही थी। वहाँ से जगल दूर न था। बोधिसत्व ने हरियाली की पक्ति देख उसे रोकना चाहा। उसे चलते चलते, रास्ते पर ही गूज का तिनका दिखाई दिया। उसमे से सीक खीचकर उसने कहा, "सीवली ! देख' अब यह फिर इससे मिलाया नही जा सकता। इसी तरह से अब फिर मेरा तेरा साथ वास नही हो सकता।" इतना कह यह आधी गाथा कही—

मुञ्जा विसिकापवाळहा एका विहर सीवलि ॥

[सीवलि ! गूंज की खीची गई सीक की तरह से अकेली विचर ।।]

यह सुना तो उसे विश्वास हो गया कि अब महाजनक राजा के साथ मेरा सवास नही होगा। वह शोक नही सहन कर सकी, और दोनो हाथो से छाती पीटती हुई, बेहोश हो महामार्ग पर गिर पडी। बोधिसत्व ने जब देखा कि वह बेहोश हो गई है

तो पद (चिह्नो) को नष्ट करते हुए जगल मे प्रवेश किया। अमात्यो ने आकर उसके शरीर पर पानी छिडका और हाथ-पैर मलकर उसे होश मे लाये। उसने पूछा—

'तात! राजा कहाँ है?"

"आप ही जानती होगी।"

"तात! ढूढो!"

इधर-उधर दौडने पर भी नही दिखाई दिया। वह बहुत जोर से रो-पीटकर, जहा राजा खडा था वहाँ चैत्य बनवाकर, उसकी गन्ध-मालादि से पूजाकर लौटी।

बोधिसत्व ने भी जगल मे प्रवेश कर सप्ताह के भीतर ही अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। इसके बाद वह पुन बस्ती मे लौट आया।

देवी ने भी जहाँ बस-फोड से बातचीत हुई थी, जहाँ कुमारी से बात-चीत हुई थी, जहाँ माँस का भोजन किया गया था, जहाँ मिगाजिन से बात हुई थी—सभी स्थानो पर चैत्य बनवा, उनकी गन्ध मालादि से पूजा कराई। फिर सेना सहित मिथिला नगरी लौट, आम्रवन मे पुत्र का अभिषेक करा, उसे सेना सहित नगर मे भेज, स्वय ऋषियो के ढग की प्रव्रज्या ग्रहण कर वही उद्यान मे रहने लगी। वहाँ रहते रहते योग-विधि का अभ्यास कर, ध्यान-लाभ कर ब्रह्मलोकगामी हुई।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी महाभिनिष्क्रमण किया है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय समुद्रदेवी उत्पल-वर्णा थी। नारद सौरिपुत्र। मृगाजिन मौद्गल्यायन। कुमारी, क्षेमा-भिक्षुणी। बस फोड आनन्द। सीवलि राहुलमाता। दीर्घायुकुमार राहुल। माता-पिता महाराज-कुल। महाजनक राजा तो मै ही था।

५४०. साम जातक

"को नु म उसुना विज्झि ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक मातृ सेवक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे अठारह करोड धनवाले एक सेठ का एक पुत्र था, माता-पिता को बहुत प्रिय, अच्छा लगने वाला। एक दिन प्रासाद के ऊपर बैठा वह झरोखे से गली मे झाँक रहा था। उसने देखा गन्ध-माला आदि हाथ मे लिये लोग धर्म सुनने के लिये जेतवन जा रहे हैं। उसने सोचा, "मै भी जाऊगा।" गन्ध माला आदि लिवाकर वह विहार पहुचा और वस्त्र, भैषज्य, पेय-पदार्थ आदि सघ को दिलवाकर उसने गन्धमाला आदि से भगवान् की पूजा की। फिर एक ओर बैठ धर्म सुना और काम-भोगो का दोष तथा प्रव्रज्या का लाभ समझ, परिषद के उठने के समय उसने भगवान् से प्रव्रज्या की याचना की। उसे पता लगा कि माता पिता की अनुज्ञा मिलने से ही तथागत प्रव्रजित करते हैं। वह गया और सप्ताह भर निराहार रहकर माता पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर, आकर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने एक भिक्षु को आज्ञा दी। उसने उसे प्रव्रजित किया। प्रव्रजित होने पर उसे बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त होने लगा। उसने आचार्यों तथा उपाध्यायो को (सेवा से) प्रसन्नकर उपसम्पदा प्राप्त की। फिर पाँच वर्ष तक धर्म का पालन करते रहकर उसने सोचा, "यहाँ मै भीड-भाड मे रहता हूँ। यह मेरे अनुकूल नही है।" उसने 'जगल मे रहकर 'विपश्यना' प्राप्त करने की इच्छा की और इसलिये आचार्य के पास जा कर्म-स्थान ग्रहण किया। फिर एक प्रत्यन्त-ग्राम में जा आरण्य मे रहने लगा। विपश्यना प्राप्त

कर वारह वर्ष तक लगातार प्रयत्न-शील रहने पर भी वह अर्हत्व नही प्राप्त कर सका। समय के व्यतीत होने के साथ साथ उसके माता पिता भी दरिद्र हो गये। जो भी उनका खेत वा उनसे व्यापार करते थे, जब उन्होने देखा कि इस कुल मे कोई पुत्र या भाई जोर डालकर वसूल करनेवाला नही है, तो वे जो-जो कुछ उनके हाथ लगा वह सब लेकर भाग गये। घर के दास और नौकर-चाकर आदि भी सोना आदि ले कर चम्पत हुए। आगे चलकर वे दोनो जन पानी के बरतन से भी हीन हो, घर बेच, बेघर हो, दरिद्र बन, चीथडे पहन, हाथ मे खप्पर ले भीख मागने लगे।

उस समय एक भिक्षु जेतवन से निकल उसके निवास-स्थान पर पहुचा। उसने उसका आगन्तुक सत्कार कर सुख पूर्वक बैठने पर पूछा, "कहा से आया ?" उत्तर मिला "जेतवन से।" तब उसने शास्ता और महाश्रावको आदि का कुशल समाचार पूछ माता-पिता का हालचाल पूछा—

"भते ! श्रावस्ती मे अमुक सेठ परिवार का कुशल समाचार ?"

"आयुष्मान ! उस कुल का हाल मत पूछ।"

'भते ! क्यो ?"

"आयुष्मान ! उस कुल मे एक ही पुत्र था। वह (बुद्ध-) शासन मे प्रव्रजित हो गया। उसके प्रव्रजित हो जाने के बाद से इस प्रकार सब कुछ क्षीण हो गया। अब दोनो जने परम दयनीय अवस्था को प्राप्त हो भीख माग कर खाते हैं।"

वह उसकी बात सुन होश सम्हाले न रख सका। आखो मे आसू भरकर रोने लगा। 'आयुष्मान ! रो क्यो रहा है' पूछने पर उत्तर दिया, "भते ! वे मेरे माता पिता हैं। मैं उनका पुत्र हूं।" "आयुष्मान ! तेरे माता पिता तेरे कारण विनाश को प्राप्त हुए। जा उनकी सेवा कर।" उसने सोचा, "बारह वर्ष तक प्रयत्न करके भी मैं मार्ग अथवा फल कुछ भी प्राप्त नही कर सका। हो सकता है कि मैं उसके लिये योग्य ही न होऊ। मुझे, प्रव्रज्या से क्या लेना ? गृहस्थ हो, माता पिता का पोषण कर, दान दे स्वर्गाभिमुख होऊगा।" यह सोच उसने अपना अरण्य निवास उस स्थविर को सौंपा और अगले दिन निकल क्रमश श्रावस्ती के समीप ही जेतवन के पिछवाडे के विहार आ पहुचा। वहा दो मार्ग थे। एक जेतवन जाता था, दूसरा श्रावस्ती। उसने वहा खडे होकर सोचा—'पहले माता पिता का दर्शन करू अथवा

दशवलधारी (बुद्ध) का ?' उसने सोचा—'मैंने चिरकाल से माता-पिता को नही देखा किन्तु अव इसके वाद मेरे लिए बुद्धदर्शन दुर्लभ हो जायगा। आज सम्यक सम-वुद्ध का दर्शन कर, धर्म सुन, कल प्रात काल ही माता पिता का दर्शन करूगा।' उसने श्रावस्ती का मार्ग छोड दिया और गाम को जतवन पहुचा। उस दिन शास्ता ने प्रात काल लोक का ध्यान करते हुए इस कुलपुत्र के उद्धार की सभावना देखी। उसके आने के समय तथागत ने माता-पिता की सेवा करनेवाले पुत्र के लिये माता-पिता के गुणो का वर्णन किया। परिपद के अत मे खडे होकर धर्मकथा सुनते हुए उस भिक्षु ने सोचा—"मै सोचता था कि गृहस्थ होकर माता पिता की सेवा करूगा। किन्तु शास्ता तो प्रव्रज्जित पुत्र का ही उपकारी होना कहते है। यदि मै विना शास्ता का दर्शन किये चला जाता तो इस प्रकार की प्रव्रज्या मे हीन हो जाता। अव विना गृहस्थ हुए प्रव्रजित रहकर ही माता पिता की सेवा करूगा।" उसने शलाका[1] ली और उसके अनुसार शलाका-भात तथा शलाका-खिचडी प्राप्त की। वारह वर्ष तक वन-वास मे रहे भिक्षु को ऐसा लगा मानो पाराजिका[2] जैसा गम्भीर अपराध हो गया हो।

उसने प्रात काल ही श्रावस्ती मे प्रवेश करने पर सोचा, "पहले मै खिचडी लूं। अथवा माता-पिता को देखूं ?" उसने सोचा, 'दरिद्रो के पास खाली हाथ जाना उचित नही है।' इसलिये वह खिचडी लेकर ही उनके पुराने घर-द्वार पर पहुचा। माता-पिता खिचडी की भीख माग किसी पराये की दीवार के पास जा बैठे थे। उन्हे उस स्थिति मे बैठे देख उसके मन मे शोक उत्पन्न हुआ ओर वह अश्रुपूर्ण नेत्रो से उनके थोडी ही दूर पर जा खडा हुआ। उन्होने उसे देखकर भी नही पहचाना। उसकी माता ने यह समझ कि भिक्षा के लिये खडा होगा कहा, "भन्ते! तुम्हे देने योग्य नही है। आगे बढ जाये।" उसकी वात सुन उसका हृदय शोक से भर गया ओर वह अश्रुपूर्ण नेत्रो से वही खडा रहा। दूसरी तीसरी वार कहने पर भी खडा ही रहा।

---

१ विहारों में आधुनिक काल के टिकटो की भाति सलाइयो का उपयोग होता है।

२ वे चार अपराध जिनका अपराधी भिक्षु नही रहता, पाराजिका कहलाते हैं।

तब उसके पिता ने माँ को कहा, "जा, पहचान यह तेरा पुत्र है।" वह उठकर गई और पहचानकर पाँव मे गिरकर रोने लगी। उसके पिता ने भी वैसे ही किया। बडी करुणाजनक स्थिति थी। वह भी माता पिता को देख अपने को सभाले न रख सकने के कारण आसू बहाने लगा। फिर शोक पर काबू पा उसने माता पिता को आश्वासन दिया, "चिन्ता न करे। मै पालन-पोषण करूगा।" फिर उन्हे यवागु[1] पिला, एक ओर बैठा, वह पुन भिक्षाटन के लिये गया और भिक्षा लाकर उन्हें खिलाई। इसके बाद अपने लिए भीख लाया और उनके पास जाकर, दुबारा भोजन के लिये पूछकर, अपना भोजन समाप्त होने पर उन्हे एक ओर बिठाया।

वह इस प्रकार माता-पिता की सेवा करता। उसे जो पाक्षिक-भात आदि मिलता वह भी उन्हे ही दे देता। अपने भिक्षाटन के लिये जाता, मिलने पर खाता। वर्षा-काल का वस्त्र और भी जो कुछ मिलता, उन्हे ही दे देता। उनके पहने हुए चीथडो मे थेगली लगाकर, रगकर उन्हे स्वय पहनता। भिक्षाटन के लिये जाने के दिनो मे ऐसे बहुत से दिन थे जब उसे भिक्षा नही मिलती थी। उसका ओढना-बिछाना बहुत रूखा था। वह माता पिता की सेवा में लगा ही रहा। आगे चलकर कृष हो गया, पीला पड गया। उसके मित्रो ने पूछा, "आयुष्मान्! पहले तेरा शरीर-वर्ण सुन्दर था। अब पीला पड गया है। क्या तुझे कोई रोग हो गया है?" उसने, "आयुष्मानो! मुझे रोग तो नहीं है, किन्तु बाधा अवश्य है," कह, वह बात बताई।

"आयुष्मान्! शास्ता श्रद्धापूर्वक दी हुई वस्तु को नष्ट नही करने देते। तू श्रद्धापूर्वक दी हुई चीज गृहस्थो को दे देता है, यह अनुचित करता है।"

उनकी बात सुन उसने लज्जा से सिर झुका लिया। वे इतना कहकर भी सन्तुष्ट नही हुए। उन्होने जाकर शास्ता से शिकायत की, "भन्ते! अमुक भिक्षु श्रद्धा पूर्वक दी हुई वस्तु का नाशकर गृहस्थो का पालन-पोषण करता है।" शास्ता ने उस कुल-पुत्र को बुलवाकर पूछा—

---

1 बहुत पतली खिचडी

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच श्रद्धापूर्वक दी हुई चीजे लेकर उनमे गृहस्थो का पालन-पोषण करता है ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

शास्ता ने उसके सुकृत्य की प्रशंसा करने तथा अपने पूर्व-कृत्य का वर्णन करने के उद्देश्य से फिर पूछा—"भिक्षु ! गृहस्थो का पालन-पोषण करता हुआ किनका पालन-पोषण करता है ?"

"भन्ते ! माता-पिता का।"

तब शास्ता ने उसे उत्साहित करने के लिये, तीन बार 'साधु, साधु' कहा और कहा, "तू मेरे मार्ग पर ही स्थित है। मैने पूर्व-जन्म मे माता-पिता की सेवा की है।" वह भिक्षु उत्साहित हुआ। शास्ता ने उस पूर्व-चर्य्या को प्रकट करने के लिये, भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी से थोडी ही दूर पर, नदी के इस किनारे पर एक निषाद-ग्राम था। दूसरे किनारे पर दूसरा। एक एक गाँव मे पाँच पाँच सौ कुल थे। दोनो गाँवो के दोनो निषाद-मुखिया मित्र थे। उन्होने तरुणाई के समय ही परस्पर तै किया था—यदि हममे से एक को पुत्र हो और दूसरे को पुत्री तो दोनो का परस्पर विवाह हो। इस किनारे रहने वाले निषाद-मुखिया के यहाँ पुत्र हुआ। पैदा होने के समय ही दोनो कुलो से ग्रहीत होने के कारण उसका नाम दुकूलक रखा गया। दूसरे के घर लडकी पैदा हुई। परले तीर पर पैदा होने के कारण उसका नाम पारिका रखा गया।

वे दोनो सुन्दर थे, स्वर्ण-वर्ण। निषाद-कुल मे पैदा होने के बावजूद प्राणाति-पात नही करते थे। आगे चलकर सोलह वर्ष के दुकूल कुमार के माता-पिता ने कहा—"पुत्र ! तेरे लिये कुमारी लाते हैं।" ब्रह्म-लोक से आया हुआ शुद्ध-प्राणी होने से उसने दोनो कानो पर हाथ रखे और बोला, "मुझे गृहस्थी नही चाहिये। ऐसा न कहे।" तीन बार पूछे जाने पर भी उसने इच्छा नही ही की। पारिका कुमारी को भी जब यह कहा गया कि 'हमारे मित्र का पुत्र सुन्दर है, स्वर्ण वर्ण है,

तुझे उसे देंगे' तो उसने भी कानो पर हाथ रखे। वह भी ब्रह्म-लोक से ही आई थी। दुकूल कुमार ने उसके पास गुप्त-सन्देश भिजवाया—'यदि मैथुन-धर्म की इच्छा है, तो दूसरे घर जाये। मेरी तनिक इच्छा नही है।' उसने भी वैसा ही सन्देश भेजा। उनकी अनिच्छा के बावजूद उनका विवाह कर दिया गया। वे दोनो रागार्णव मे विना उतरे दो ब्रह्माओ की तरह इकट्ठे रहे। दुकूल-कुमार मत्स्य या मॉस नही मारता था, यहा तक कि लाया हुआ मास भी नही बेचता था।

उसके माता पिता ने उसे कहा, "तात! निपाद-कुल मे जन्म लेकर भी न गृहस्थी चाहता है और न प्राणि-वध ही करता है। तू क्या करेगा?" "माँ! पिताजी! आपकी अनुज्ञा हो तो आज ही निकलकर प्रव्रजित हो जाऊगा।" 'तो जाओ' कह दोनो को विदा किया गया। वे माता पिता को प्रणाम कर, निकलकर, गङ्गा-तट पर हिमालय मे प्रविष्ट हुए। जिस जगह मिग नामक नदी हिमालय से उतर गङ्गा मे मिलती है, वहाँ पहुँच, गङ्गा नदी को छोड मिग नदी के ऊपर की ओर बढे। उस समय शक्र-भवन गर्म हुआ प्रतीत हुआ।

शक्र को उस बात का पता लगा तो शक्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा, "तात! विश्वकर्म! दो महा-पुरुष गृह त्यागकर हिमालय मे प्रविष्ट हुए हैं। इन्हे निवास-स्थान मिलना चाहिये। मिग नदी के आधे कोस के अन्दर इनके लिये पर्णशाला तथा प्रव्रजितो की दूसरी सभी आवश्यकताये बनाकर आ।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और मूगपक्ख जातक[1] मे आये वर्णन के अनुसार ही सब कुछ तैयार कर, बुरी बुरी आवाजें लगानेवाले पशुओ को भगा और पगडण्डी बना अपने निवास स्थान को ही लौट आया। वे भी वह मार्ग देख उस आश्रम जा पहुचे। दुकूल-पण्डित ने पर्णशाला मे प्रवेशकर जब प्रव्रजितो की आवश्यकताये देखी तो समझ लिया कि वे शक्र द्वारा देखे गये हैं और वे सामान शक्र द्वारा ही दिये गये है। उसने कपडा उतारा और लाल रग का वल्कल-चीर धारण कर, पहन, अजिन-चर्म कधे पर रखा। फिर जटाये बाँध, ऋषी-वेश बनाया और पारिका को भी प्रव्रज्या दी। दोनो कामावचर-लोक में मैत्री भावना करते हुए वहाँ रहने लगे।

---

१ मूगपक्ख जातक (५३८)

उनकी मैत्री के प्रताप से सभी पशु-पक्षी परस्पर मैत्री-चित्त युक्त हो गये। कोई किसी को कष्ट नही देता था। पारिका पानी लाती, आश्रम मे झाड़ू लगाती तथा अन्य सब कृत्य करती। दोनो फलाफल लाकर, खाकर, अपनी अपनी पर्ण-कुटी मे जा, श्रमण-धर्म करते हुए रहने लगे। शक्र कभी कभी उनकी सेवा मे आता था। उसने एक दिन देखते हुए विचार किया कि इनकी आखे जाती रहेगी। यह विघ्न देख वह दुकूल पडित के पास गया और प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। बोला—

"भते ! भविष्य मे तुम्हारे लिये विघ्न दिखाई देता है। सेवा करनेवाला पुत्र होना चाहिए। लोक धर्म सेवन करे।"

"शक्र ! यह क्या कहता है ! हमने घर मे रहते हुए भी इस लोक-धर्म को छोड इससे कीडो के गू की तरह घृणा की। अब अरण्य मे प्रवेश कर ऋषि प्रव्रज्या ले ऐसा कैसे करे ?"

"भते ! यदि ऐसा नही कर सकते तो ऋतुनी होने पर पारी तपस्विनी की नाभि हाथ से छू दे।"

बोधिसत्व ने 'यह किया जा सकता है।' कह स्वीकार किया। शक्र उसे प्रणाम कर अपने भवन को चला गया। बोधिसत्व ने भी यह बात पारी को कह उसके ऋतुनी होने पर उसकी नाभि का स्पर्श किया।

तब बोधिसत्व ने देव लोक मे च्युत हो उसकी कोख मे जन्म ग्रहण किया। दस मास बीतने पर उसने स्वर्ण वर्ण पुत्र को जन्म दिया। इसीलिए उसका नाम स्वर्णसाम रखा गया। पारी के लिये भी पर्वत मे रहने वाली किन्नरियो ने दायी का काम किया। वे दोनो बोधिसत्व को नहलाकर पर्णशाला मे लिटा फलाफल के लिये जाते। उस समय किन्नर लोग कुमार को कन्दरा आदि में ले जाकर नहलाते, फिर पर्वत के शिखर पर चढ नाना प्रकार के फूलो से अलकृत करके और हरे पीले लेप का तिलक लगा, लाकर पर्णशाला मे लिटा देते। पारी आकर पुत्र को स्तन पान कराती। आगे चलकर बडे होने पर सोलह वर्ष की आयु होने पर भी माता पिता उसके सरक्षण की दृष्टि से पर्णशाला में लिटा, स्वय ही वन मे फलाफल के लिये जाते।

बोधिसत्व, जिस रास्ते से वह जाते उस रास्ते पर नजर लगाए रहता कि कही कोई आपत्ति न आ जाय ।

एक दिन जब वे वन से फलाफल लिये सन्ध्या समय लौट रहे थे और आश्रम से थोडी ही दूर पर थे तो जोर का बादल आया । वे एक वृक्ष के नीचे बॉबी के पास खडे हो गये । उसके अन्दर जहरीला सॉप था । उनके शरीर से पसीने की दुर्गन्ध मिला हुआ पानी चूकर उसके नथनो पर जा गिरा । उसने क्रोधित होकर फुकार मारी । दोनो अन्धे हो गये और एक दूसरे को न देख सके । दुकूल पण्डित ने पारी को सम्बोधित कर, "पारी ! मेरी ऑखे जाती रही, मै तुझे नही देखता हू ।" वह भी वैसे ही बोली । वे 'अब हम जीते नही रह सकते' कह मार्ग दिखाई न देने के कारण रोते-पीटते भटकने लगे ।

उनका पूर्व-कर्म क्या था ? वे पूर्व-जन्म मे वैद्य थे । उसने वैद्य होकर एक बडे धनी की ऑखो की बीमारी की चिकित्सा की थी । उसने उसे कुछ नही दिलवाया । वैद्य ने क्रुद्ध होकर अपनी भार्य्या से पूछा—"क्या करू ?" उसने भी गुस्से मे कहा—"हमें उसका धन नही चाहिये । दवाई के बहाने उसे कुछ देकर आँखो से अन्धा कर दो ।" उसने 'अच्छा' कह उसका कहना स्वीकार कर वैसा ही किया । वे दोनो इस (पूर्व-) कर्म के कारण चक्षु-विहीन हो गये ।

तब बोधिसत्व ने सोचा, "मेरे माता-पिता और दिन इस समय तक आ जाते थे । अब उनका कुछ पता नही । मै अगवानी के लिये जाता हूँ ।" उसने आगे जाकर आवाज की । उन्होने उसकी आवाज पहचान ली और प्रति-शब्द करके पुत्र-स्नेह के कारण कहा "तात साम ! यहाँ खतरा है । मत आ ।" तब उसने उन्हे एक लम्बी लकडी दी—"तो इसे लेकर आओ ।" वे लाठी का सिरा ले उसके पास गये । उसने उन्हे पूछा, "आँखें जाती रहने का कारण क्या है ?", "तात ! वर्षा के समय हम वृक्ष के नीचे बाँबी के पास खडे हो गये थे ।" वह सुनते ही जान गया कि वहाँ विषैला सर्प होगा । उसने क्रुद्ध हो फुँकार मारी होगी । वह माता-पिता को देखकर पहले रोया और फिर हँसा । उन्होने उससे पूछा—"तात ! क्यो रोया ? और क्यो हसा ?" "मा और पिताजी ! तरुणाई मे ही आपकी आँखे जाती रही' सोच रोया, और 'अब सेवा करने को मिलेगा' सोच, हसा । "चिन्ता न करे । मै सेवा करूगा ।"

वह माता पिता को आश्रम पर ले आया। उसने उनकी रात की जगह, दिन की जगह, घूमने की जगह, पर्णशाला मे, शौच की जगह और पेशाब करने की जगह सभी जगहो पर रस्सी बाध दी। उसके बाद से वह उन्हे आश्रम मे छोड वन के फल-मूल लाता। प्रात काल ही उनके रहने की जगह को साफ करता। मिग नाम की नदी पर जाकर पानी लाता और पीने का पानी रखता। दातुन, मुख धोने का पानी आदि देकर मधुर फलाफल देता। उनके मुह धो चुकने पर स्वय खाकर माता पिता को प्रणाम कर, मृगो से घिरा हुआ, फलाफल के लिये जगल मे जाता। पर्वतो के बीच किन्नरो से घिरा हुआ वह फलाफल लेकर शाम को लौटता, फिर घडे मे पानी ला, गरम कर, गरम पानी मे जैसी उनकी इच्छा होती नहाना, वा पैर धोना कर, अगीठी ले, उनके ताप चुकने पर उन्हे फलाफल देता। फिर स्वय भी खाकर, जो बचता उसे रख देता। इस प्रकार वह माता-पिता की सेवा करता था।

उस समय वाराणसी मे पिलीयक्ख नाम का राजा राज्य करता था। मृग मास के लोभ से उसने माता को राज्य सौपा और पाचो आयुध ले हिमालय मे प्रवेश किया। वहा वह मृगो को मार मास खाता हुआ मिग नामक नदी पर आ पहुचा। क्रमश वह वहा आया, जहा से साम पानी ले जाता था। उसने उसे मृग चिन्ह समझा। वह मणिवर्ण शाखाओ की ओटकर धनुष ले, विषबुझा तीर चढा वहा छिप रहा। बोधिसत्व भी शाम को फलाफल ला, आश्रम मे रख, माता पिता को प्रणाम कर "नहाकर, पानी लेकर आता हूँ" कह घडा ले विदा हुआ। मृगो के बीच चलते हुए उसने दो मृगो को इकट्ठा कर उनकी पीठ पर पानी का घडा रखा और उन्हे हाथ से पकडे ले चलकर नदी किनारे पहुचा।

ओट मे खडे राजा ने उसे आते देख, सोचा, "इतने दिनो से इस प्रकार घूमते हुए मैंने मनुष्य नही देखा। यह देव होगा अथवा नाग होगा? यदि मै इसके पास जाकर पूछूगा तो यदि देव होगा तो आकाश को चला जाएगा और नाग होगा तो भूमि में प्रविष्ट हो जायगा। मै सदैव हिमालय में ही नही रहूँगा। वाराणसी भी जाऊगा ही। वहाँ मुझे अमात्य पूछेंगे, "महाराज हिमालय में रहते समय कोई आश्चर्यकर बात भी देखी?' उस समय यदि मै उन्हे कहूगा कि मैंने ऐसा प्राणी

देखा है, तो वे पूछेंगे, 'उसका क्या नाम है ?' यदि कहूंगा कि नही जानता हूँ तो वे मेरी निन्दा करेगे इसलिये इसे बीधकर दुर्बल करके पूछूंगा ।"

जिस समय मृग पहले ही उतरकर, पानी पीकर ऊपर आ गये थे, बोधिसत्व ने अभ्यस्त महास्थविर की तरह धीरे धीरे पानी मे उतर, गरमी शान्त होने पर ऊपर आ, वल्कल वस्त्र पहन, अजिन-चर्म कन्धे पर रख, पानी के घडे को उठाकर, पानी पोछ, उसे बाये कन्धे पर रखा। उसी समय को बीधने के लिये उपयुक्त समय समझ, राजा ने विष-बुझा तीर छोडकर उसे दाहिनी ओर बीध दिया। तीर बाई ओर से निकल गया। मृगो को जब पता लगा कि वह बिंध गया तो वे डर के मारे भाग गये।

यद्यपि स्वर्ण-साम-पण्डित तीर से बिंध गया था, तो भी उसने पानी के घडे को जैसे-तैसे गिरने न देकर, होश सभाले रख, धीरे से उतारा और बालू को हटाकर भूमि पर रखा। फिर दिशा का विचार कर माता-पिता के रहने की दिशा मे सिर कर रजत-वस्त्र के समान बालू पर स्वर्ण-मूर्ति की तरह लेट रहा। फिर चित्त ठिकाने रख, 'इस हिमालय प्रदेश मे मेरा कोई वैरी नही है, मेरे मन मे भी किसी के प्रति वैर नही है' कह, मुह से रक्त गिराते हुए, राजा को बिना देखे ही यह गाथा कही—

को नु म उसुना विज्झि पमत्त उदहारक,
खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो को म विद्धो निलीयसि ॥१॥

[मुझे (इस क्षण पर मैत्री-भावना-रहित) प्रमत्त को पानी ले जाते समय किसने तीर से बीधा है ? कौन क्षत्रिय, ब्राह्मण वा वैश्य है, जो मुझे बीधकर छिप रहा है ? ॥१॥]

इतना कहकर, फिर यह प्रकट करने के लिये कि उसके शरीर का मास अभक्ष्य है, उसने गाथा कही—

न मे मंसानि खज्जानि चम्मेनत्थो न विज्जति,
अथ केन नु वण्णेन विद्धेय्य म अमञ्ञथ ॥२॥

[मेरा मास भी खाद्य नही है, मेरा मास भी निष्प्रयोजन है। मुझे किस कारण से वध्य माना गया है ? ॥२॥]

फिर दूसरी गाथा के द्वारा उसका नाम आदि जानना चाहा—

को वा त्व कस्स वा पुत्तो (पुरत्ता ?) कथ जानेमु त मय
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि किं म विद्वा निलीयसि ॥३॥

[तू कौन है अथवा किसका पुत्र है, और हम तुझे कैसे जाने ? हे मित्र ! बता कि मुझे तीर से बीधकर छिपा क्यो है ? ॥३॥]

यह सुन राजा ने सोचा कि यह विष-बुझे तीर से मेरे द्वारा गिराया जाने पर भी न मुझे गाली देता है, न अपशब्द कहता है। हृदय को मलते हुए जैसे शब्दो से सम्बोधन करता है। मै इसके पास जाता हू। वह वहाँ जा, उसके पास खडा हो, कहने लगा—

राजा हमस्मि कासीनं पिलियक्खोति म विदू,
लोभा रट्ठ पहत्वान मिगमेसञ्चरामह ॥४॥
इस्सत्थे चस्मि कुसलो दळहधम्मोति विस्सुतो,
नागोपि मे न मुच्चेय्य आगतो उसु पातन ॥५॥

[मै काशी (के लोगो) का राजा हू। मुझे पिलियक्ख करके जानते हैं। मै तीर चलाने मे कुशल हूँ, बहुत दृढ हूँ—यह बात प्रसिद्ध है। मेरे तीर के सामने आया हुआ हाथी भी नही बच सकता ॥५॥]

इस प्रकार अपने बल का बखान कर, उसका नाम-गोत्र जानने के लिये बोला—

त्वञ्च कस्स वा पुत्तोसि कथ जानेयुमुत मयं,
पितुनो अत्तनो वापि नामगोत्त पवेदय ॥६॥

[तू किसका पुत्र है ? हम तुझे कैसे जाने ? अपना और अपने पिता का नाम-गोत्र कह ॥६॥]

यह सुन बोधिसत्व ने 'यदि मै अपने आपको देव, नाग, किन्नर आदि अथवा क्षत्रिय आदि कुछ कहूँ, तो भी यह विश्वास कर ही लेगा, किन्तु मुझे सत्य बोलना चाहिये' सोच, कहा—

नेसादपुत्तो भद्दते सामो इति म आतयो,
आमन्तयिसु जीवन्त स्वाज्जवाह गतो सये ॥७॥
विद्धोस्मि पुथु सल्लेन सविसेन यथा मिगो,
सकम्हि लोहिते राज पस्स सेमि परिप्लुतो ॥८॥

पटिचम्म गतं सल्ल पस्स विहामि लोहित,

आतुरो त्यानु पुच्छामि किं म विद्धा निलीयसि ॥९॥

अजिनम्हि हञ्ञते दीपि नागो दन्तेहि हञ्ञते,

अथ केन नु वण्णेन विद्धेय्य म अमञ्ञथ ॥१०॥

[मैं निषाद-पुत्र हूँ, तेरा भला हो, मेरे रिश्तेदार मुझे जीते जी 'साम' कहकर वुलाते रहे है। सो आज या कल में मृत्यु को प्राप्त हो जाऊगा ॥७॥ हे राजन् ! मै मृग की भाति विष-वुझे भारी तीर से बीधा गया हूँ। देख, मैं अपने ही रक्त मे लथ-पथ पडा हूँ ॥८॥ तीर चमडी मे मे आरपार हो गया है। देख, मैं रक्त थूकता हूँ। मैं रुग्ण अवस्था में पूछ रहा हूँ कि मुझे बीधकर तू छिपा क्यो है ? ॥९॥ व्याघ्र चमडे के लिये मारा जाता है हाथी हाथी-दात के लिये मारा जाता है। तूने मुझे किस कारण से वध्य समझा ? ॥१०॥]

राजा ने उसकी बात सुन यथार्थ बात न कह, झूठी बात कही—

मिगो उपट्ठितो आसि आगतो उसुपातनं,

तं दिस्वा उब्बिज्जि साम तेन कोधो म आविसि ॥११॥

[मेरे तीर के सामने मृग आया था, वह तुझे देखकर डर गया। इसलिये मुझे क्रोध आ गया ॥११॥]

तब बोधिसत्व ने 'महाराज ! क्या कहते है, इस हिमालय प्रदेश में मुझे देखकर भागनेवाला मृग नही है' कह गाथाये कही—

यतो सरामि अत्तान यतो पत्तोस्मि विञ्ञुत,

न म मिगा उत्तसन्ति अरञ्ञे सापदानिपि ॥१२॥

यतो निधिं परिहरिं यतो पत्तोस्मि योब्बनं,

न म मिगा उत्तसन्ति अरञ्ञे सापदानिपि ॥१३॥

भीरु किम्पुरिसा राज पब्बते गन्धमादने,

सम्मोदमाना गच्छाम पब्बतानि वनानि च,

अथ केन नु वण्णेन उत्रसे सो मिगो मम ॥१४॥

[जव मे मुझे अपनी याद है, जवसे मैंने होश सभाला है, तवसे मुझसे मृग नही डरते है—शिकार किये जानेवाले भी ॥१२॥ जव से मैंने वल्कल चीर धारण

किया, जव से मै तरुण हुआ, तव मे मुझमे मृग नही डरते है—शिकार किये जाने वाले भी ।।१३।। राजन् ! गन्धमादन पर्वत मे किन्नर (लाग) रहते है । वे अत्यन्त भीरु स्वभाव के है । उनके साथ भी हम पर्वतो और वनो मे आनन्दपूर्वक विचरते है । तव वह मृग मुझसे कैसे भयभीत हो सकता है ? ।।१४।।]

तव राजा ने 'मैने इस निरपराध को मारकर झूठ बोला, सच कहूँगा' सोचा और कहा ।

न तद्दसा मिगो साम किन्ताह अलिक भणे,
कोधलोभाभिभूतोह उसु ते त अवस्सजिं ।।१५।।

[साम ! मैने मृग को नही देखा, किन्तु झूठ बोला । मैने क्रोध और लोभ के वशीभूत होकर ही तुझपर वाण छोडा ।।१५।।]

यह कह फिर यह सोच कि 'यह स्वर्ण-साम इस जगल मे अकेला ही नही रहता होगा, इसके रिश्तेदार भी होगे, मै इसे पूछूगा' उसने दूसरी गाथा कही—

कुतो नु सम्म आगम्म कस्स वा पहितो तुवं,
उदहारो नदिं गच्छ आगतो मिगसम्मत ।।१६।।

[मित्र ! तू कहाँ से आया है ? अथवा किसका भेजा हुआ तू पानी लेने के लिये मिग-नामक नदी पर आया है ? ।।१६।।]

उसने उसकी बात सुन तीव्र वेदना को सहन करते हुए, मुह से लहू छोडते हुए गाथा कही—

अन्धा माता पिता मह्ह ते हरामि ब्रहावने,
तेसाह उदहारको आगतो मिग सम्मतं ।।१७।।

[मेरे अन्धे माता-पिता है । मै उनके लिये फल-मूल लाकर भयानकवन में उनका पोषण करता हूँ ।उन्ही के लिये पानी लेने को मै मिग-नदी पर आया ।।१७।।]

यह कह माता पिता की याद कर विलाप करता हुआ बोला—

अत्थि नेस उसामत्तं अथ साहस्स जीवित,
उदकस्स च अलाभेन मञ्ञे अन्धा मरिस्सरे ।।१८।।

न मे इद तथा दुक्ख लब्भा हि पुमुना इद,
यञ्च अम्म न पस्सामि त मे दुक्खतर इतो ॥१९॥
न मे इद तथा दुक्ख लब्भा हि पुमूना इद,
यञ्च तात न पस्सामि त मे दुक्ख तर इतो ॥२०॥
सा नून कपणा अम्मा चिर रत्ताय रुच्छति,
अड्ढरत्तेव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति ॥२१॥
सो नून कपणो तातो चिर रत्ताय रुच्छति,
अड्ढरत्तेयव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति ॥२२॥
उट्ठानपारिचरियाय पादसम्बाहनस्सच,
साम तालाति विलपन्ता हिण्डिस्सन्ति ब्रह्मवने ॥२३॥
इद दुतियक सल्ल कम्पेति हृदय मम,
यञ्च अन्धे न पस्सामि यञ्च हेस्सामि जीवित ॥२४॥

[उनके पास भोजन मात्र है—सप्ताह भर का जीवन । लेकिन लगता है कि पानी के न मिलने से अन्धे मर जायेंगे ॥१८॥ यह (मरण) मेरे लिये वैसा दु ख नहीं है, यह तो आदमी को होता ही रहता है, जैसा यह कि मै माता को नही देख सकूगा ॥१९॥ यह (मरण) मेरे लिये वैसा दु ख नहीं है, यह तो आदमी को होता ही रहता है, जैसा यह कि मै पिता को नही देख सकूगा ॥२०॥ वह विचारी अम्मा निश्चय से देर तक रोती रहेगी । फिर आधी रात को अथवा उसकी समाप्ति पर नदी की तरह सूख जायगी । ॥२१॥ वह विचारा पिता निश्चय से देर तक रोता रहेगा । फिर आधी रात को अथवा उसकी समाप्ति पर नदी की तरह सूख जायगा ॥२२॥ मैं आलस्य-रहित होकर उनकी सेवा करता था, पैर दबाना आदि करता था । मेरे माता-पिता "साम तात !" कहते हुए घोर जगल में भटकेंगे ॥२३॥ यह दूसरा शल्य है जो मेरे हृदय को कपाता है कि मै अपने अन्धे-माता-पिता को न देख सकूगा और मै प्राणो का त्याग कर दूगा ॥२४॥]

राजा ने उसका विलाप सुना तो सोचने लगा, 'यह एकनिष्ठ ब्रह्मचारी है । धर्म में स्थित है । माता-पिता का पोषण करता है । अब इस दु ख मे भी उन्ही की याद करके विलाप करता है । ऐसे गुणवान् के प्रति मैंने अपराध किया । अब मैं

इसे कैसे आश्वस्त करू ?' फिर 'मेरे नरक मे जाने के समय राज्य क्या करेगा ? जिस तरह यह माता-पिता की सेवा करता रहा है, उसी तरह मैं भी उनकी सेवा करू। इससे इसका मरना न मरने जैसा होगा।' यह निश्चय करके बोला—

मा बाळ्ह परिदेवेसि साम कल्याणदस्सन
अह कम्मकरो हुत्वा भरिस्स ते ब्रह्मवने ॥२५॥
इस्सत्थेवस्मि कुसलो दळ्हधम्मोति विस्सुतो,
अह कम्मकरो हुत्वा भरिस्स ते ब्रह्मवने ॥२६॥
मिगान विघासमन्वेस वनमूलफलानि च,
अह कम्मकरो हुत्वा भरिसस ते ब्रह्मवने ॥२७॥
कतम त वन साम यत्थ माता पिता तव
अह ते तथा भरिस्स यथा ते अभरी तुव ॥२८॥

[हे कल्याण-दर्शन साम ! अधिक विलाप मत कर। मैं सेवक बनकर घोर जगल मे उनकी सेवा करूगा ॥२५॥ मै तीर चलाने मे कुशल हूँ और यह प्रसिद्ध है कि उसमे दृढ हूँ। मैं सेवक बनकर घोर जगल मे उनकी सेवा करूगा ॥२६॥ मृगो का आहार खोजता हुआ तथा वन के फल-फूल खोजता हुआ, मैं सेवक बनकर घोर-जगल मे उनकी सेवा करूगा ॥२७॥ हे साम ! वह कौन-सा जगल है, जहाँ तेरे माता-पिता हैं। मैं उनका वैसे ही पालन-पोषण करूगा जैसे तू करता रहा है। ॥२८॥]

तब बोधिसत्व ने "महाराज ! अच्छा, माता-पिता का पोषण करें" कह, उसे मार्ग बताते हुए गाथा कही—

अय एकपदी राज यो य उस्सीसके मम
इतो गन्त्वा अड्ढकोस तत्थ तेस अगारकं,
तत्थ माता पिता मय्हं ते भरस्सु इतो गतो ॥२९॥

[राजन् ! यह मेरे सिर की ओर जो पग-डण्डी है उससे आधे-कोस जाने पर उनका निवास-स्थान है। वहाँ मेरे माता-पिता रहते है। यहाँ से जाने पर उनका पोषण कर ॥२९॥]

इस प्रकार उसे रास्ता बता, माता पिता के प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण उसने वैसी वेदना को सहन करते हुए भी उनकी सेवा करने के लिये हाथ जोडकर प्रार्थना करते हुए फिर कहा—

नमो ते कासिराजत्थु नमो ते कासिवद्धन,
अन्धा माता पिता मय्हं ते भरस्सु ब्रहावने॥३०॥
अञ्जलिं ते पग्गण्हामि कासिराज नमत्थुते,
मातरं पितरं मय्हं वुत्तो वज्जासि वन्दनं॥३१॥

[हे काशीराज नमस्कार है। हे काशी-वर्धन! तुझे नमस्कार है। घोर-जगल मे मेरे अन्धे माता पिता की सेवा कर ॥३०॥ हे काशीराज! तुझे नमस्कार है! मैं हाथ जोडता हूँ। मेरे माता-पिता को मेरा प्रणाम कहना ॥३१॥]

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। बोधिसत्व भी माता-पिता को प्रणाम भेज, बेहोश हो गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वान सो सामो युवा कल्याणदस्सनो,
मुच्छितो विसवेगेन विसञ्ञी समपज्जथ॥३२॥

[यह कहकर 'साम' नामका वह कल्याण-दर्शन तरुण विष-वेग से मूर्छित हो गया, उसे होश नही रहा ॥३२॥]

उसने ऊपर की जितनी बातचीत की वह हाँपते हुए (?) की। लेकिन अब विष के जोर से उसकी चित्त-सन्तति हृदय की ओर प्रवाहित हुई। बातचीत छीज गई। मुँह बद हो गया। आँखे मुद गई। हाथ-पाँव कडे पड गये। सारा शरीर रक्त से भीग गया। राजा ने सोचा, 'अभी तो यह मुझसे बातचीत कर रहा था, क्या हुआ?'। उसने उसकी साँस देखी। साँस नही आ रही थी। शरीर कडा पड गया था। यह समझ कि साम की मृत्यु हो गई, वह शोक को सहन नही कर सका और दोनो हाथो को सिर पर रख जोर जोर से रोने लगा। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

स राजा परिदेवेसि वहु कारुञ्ञसहितं,
अजरामरो वह् आसिं अज्जेतञ्ञासि नो पुरे,
साम कालकत दिस्वा नत्थि मच्चुस्सनागमो ॥३३॥
दस्सु मं पतिभन्तेति सविसेन समप्पितो,
स्वाज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभासति ॥३४॥
निरय नून गच्छामि एत्य मे नत्थि ससयो,
तदा हि पकत पाप चिररत्ताय किब्बिस ॥३५॥
भवन्ति तस्स वत्तारो गामे किब्बिसकारको,
अरञ्ञे निम्मनुस्सम्हि कोम वत्तुमरहति ॥३६॥
सारयन्ति हि कम्मानि गामे सगच्छ माणवा,
अरञ्ञे निम्मनुस्सम्हि को नु म सारयिस्सति ॥३७॥

[वह राजा अत्यन्त करुणार्द्र होकर विलाप करने लग।—मैं अपने आपको अजर-अमर समझता था। आज साम को मरा देखकर ममझ सका हूँ कि मृत्यु का आगमन होता ही है। इससे पहले नही समझा था ॥३३॥ विष बुझे बाण से विधा होने पर भी जो मुझसे बातचीत कर रहा था, वह अब समय बीतने पर एक शब्द भी नही बोलता ॥३४॥ निस्सन्देह मै नरक ही जाऊगा। यह किया पाप चिर-काल तक पीडा पहुचायेगा ॥३५॥ बस्ती मे 'दारुण-कर्म करनेवाला' कहकर निन्दा करनेवाले रहते है। आदमी-रहित इस जगल मे मुझे कौन कहनेवाला है ॥३६॥ बस्ती मे आदमी इकट्ठे होकर पाप-कर्मो की याद दिलाते है। आदमी-रहित जगल मे मुझे कौन याद दिलायेगा ॥३७॥]

उस समय गन्धमादन मे रहनेवाली बहुसोदरी नाम की देव-कन्या थी। वह बोधिसत्व के सातवे पूर्व जन्म मे उसकी माता थी। उसी पूर्व स्नेह के कारण वह नित्य बोधिसत्व का चिन्तन करती थी। उस दिन उसने दिव्य सम्पत्ति का भोग करने मे लगे रहने के कारण उसकी याद नही की। यह भी कहते ही है कि देव-सम्मेलन मे गई रहने के कारण (याद नही की)। उसके बेहोश हो जाने पर उसे ध्यान आया कि मेरे पुत्र का क्या हाल है? उसने देखा, "पिलियक्ख राजा ने मेरे पुत्र को विष बुझे बाण से बींध दिया है। अब उसे मिग नदी के किनारे बालू पर लिटाकर जोर जोर से

रो रहा है ।" उसने सोचा, "यदि मैं नहीं जाऊंगी तो मेरा पुत्र स्वर्ण-साम वहीं नष्ट हो जायगा। राजा का भी हृदय फट जायगा। साम के माता पिता भी निराहार रहकर पानी भी न मिलने के कारण सूखकर मर जायेंगे। मेरे जाने पर राजा पानी का घड़ा ले उसके माता पिता के पास जायगा। उनकी बात सुन वह उन्हें पुत्र के पास लायेगा। तब वे आर मैं मिलकर सत्य-क्रिया करेंगे। साम का विष उतर जायेगा। इस प्रकार मेरा पुत्र जीवन लाभ करेगा। माता पिता की आँख खुल जायगी। राजा साम की धर्मदेशना सुन, जाकर महादान दे स्वर्ग-गामी होगा। इसलिये मैं वहाँ जाती हू।" वह वहाँ पहुची और मिग नदी के किनारे अदृश्य रहकर, आकाश मे ठहर, राजा से बोली।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा देवता अन्तरहिता पब्बते गन्धमादने,
रञ्ञोव अनुकम्पाय इमा गाथा अभासथ ॥३८॥
आगु करि महाराज अकरा कम्म दुक्कट,
अदूसका पिता पुत्ता तयो एकूसुना हता ॥३९॥
एहि त अनुसिक्खामि यथा ते सुगती सिया,
धम्मेनन्धे वने पोस मञ्ञेहं सुगती तया ॥४०॥

[गन्धमादन पर्वत मे अन्तर्धान रह उस देवी ने राजा पर अनुकम्पा करने के लिये ये गाथायें कहीं ॥३८॥ महाराज ! तुमने बड़ा पाप किया है, । तुमने दुष्कृत किया है। तूमने निर्दोष और उसके माता पिता तीनो को एक बाण से मार डाला ॥३९॥ आ, तुम्हे सीख दू, जिससे तुम्हे सुगति मिले । तू धर्मानुसार वन मे अन्धो की सेवा कर। मैं मानती हू कि इसमे तेरी सुगति होगी ॥४०॥]

उसने देवी की बात सुन सोचा, "मैं इसके माता-पिता का पोषण कर स्वर्ग जाऊंगा।" इस पर श्रद्धाकर उसने निश्चय किया, 'मुझे राज्य से क्या ? उन्ही का पोषण करूंगा।' इस पर दृढ निश्चय कर, जोर जोर से रो-पीटकर, शोक कुछ हलका कर और यह सोच कि स्वर्ण-साम मर गया होगा उसने नाना पुष्पो से उसके शरीर की पूजा की। फिर पानी से अभिषेक कर, तीन वार प्रदक्षिणा कर, चार जगह वन्दना

की। फिर उसका भरा हुआ पानी का घडा ले, भारी मन से दक्षिण दिशा की ओर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स राजा परिदेवित्वा बहु कारुञ्ञसहित,
उदककुम्भमादाय पक्कामि दक्खिणामुखो ॥४१॥

[रो पीटकर, बहुत कारुणिक स्थिति मे वह राजा पानी का घडा लेकर दक्षिणाभिमुख गया ॥४१॥]

स्वभाव से भी राजा बलवान था। पानी का घडा लिये वह आश्रम-भूमि को कूटता हुआ, दुकूल पण्डित की पर्ण-कुटी के द्वार पर पहुचा। पण्डित ने अन्दर बैंठे ही बैंठे उसकी पदध्वनि सुन जान लिया कि यह साम की पदध्वनि नही है। 'यह किसकी पदध्वनि है?' पूछते हुए उसने दो गाथायें कही—

कस्स नु एसो पदसद्दो मनुस्सस्सेव आगतो,
नेसो सामस्स निग्घोसो को नु त्वमसि मारिस ॥४२॥
सन्त हि सामो व्रजति सन्त पदानि अत्तति,
नेसो सामस्स निग्घोसो को नु त्वमसि मारिस ॥४३॥

[यह किस आनेवाले मनुष्य की पदध्वनि है? यह साम की आवाज नहीं है। मित्र! तू कौन है? ॥४२॥ साम शान्त होकर चलता है, साम शान्ति से पैर रखता है। यह साम की आवाज नहीं है। मित्र! तू कौन है? ॥४३॥]

यह सुन राजा ने सोचा, 'यदि मै बिना अपने राजा होने की बात कहे, इन्हे कहूँ कि मैने तुम्हारा पुत्र मार डाला है, तो यह क्रुद्ध होकर मुझसे कठोर वचन बोलेंगे। इससे मेरे मन मे भी इनके प्रति क्रोध पैदा हो जायगा। तब मै इनको कष्ट दे सकता हूँ। यह मेरे लिये अकुशल-कर्म होगा। 'राजा' कहने पर सभी को डर लगता है। इसलिये 'अभी' 'राजा' होने की बात कहता हूँ।' उसने पानी रखने की जगह पर पानी का घडा रख दिया और पर्णशाला के द्वार पर खडे होकर कहा—

राजाहमस्मि कासीन पिलियक्खोति म विदू
लोभा रट्ठं पहत्वान मिगमेसञ्चरामह ॥४४॥

इस्सत्थे चस्मि कुसलो दळहधम्मोति विस्सुतो
नागोपि मे न मुच्चेय्य आगतो उसुपातन ॥४७॥

[मैं काशी (के लोगों) का राजा हूँ। मुझे पिलियक्ख करके जानते हैं। मैं तीर चलाने में कुशल हूँ, बहुत दृढ हूँ, यह बात प्रसिद्ध है। मेरे तीर के सामने आया हुआ हाथी भी नहीं बच सकता ॥४४-४५॥]

पण्डित ने भी उनका कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

स्वागतन्ते महाराज अथो ते अदुरागत
इस्सरोपि अनुप्पत्तो य इधत्थि पवेदय ॥४६॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज राज वरं वर ॥४७॥
इदम्पि पानीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाराज सचे त्व अभिकङ्खसि ॥४८॥

इसका अर्थ सत्तिगुम्ब जातक[1] मे आ गया है। यहाँ गिरिगब्भरा से मिग नदी ही ग्रहण करना चाहिये। वह गिरिगह्वर से निकलने के कारण गिरि-गह्वर ही हो गई।

इस प्रकार स्वागत किये जाने पर राजा ने सोचा, 'मैंने तुम्हारे पुत्र को मार डाला, यह पहले ही कहना योग्य नहीं है। अजानकार की तरह बातचीत आरम्भ करके कहूंगा।' यह सोच, बोला—

नाल अन्धा वने दट्ठु कोनुमे फलमाहरि,
अनन्धस्सेवय सम्मा निवापो मय्हं खायति ॥४९॥

[अन्धा तो वनों मे देखने मे समर्थ नहीं हो सकता। इन फलों को कौन लाया है? मुझे लगता है कि यह (खाद्य-सामग्री का) सग्रह किसी आँखवाले का ही किया हुआ है? ॥४९॥]

यह सुन पण्डित ने यह प्रकट करने के लिये कि 'महाराजा हम यह फलाफल नही लाते, हमारा पुत्र लाता है' प्रकट करने के लिये दो गाथाये कही—

---

[1] सत्तिगुम्ब जातक (५०३—१२-१३,१४)।

दहरो युवा नाति ब्रह्म सामो कल्याणदस्सनो,
दीघस्स केसा असिता अथो सूनग्गवेल्लिता ॥५०॥
सो हवे फलमाहत्वा इतो आदा कमण्डुल,
नदिं गतो उदहारो मञ्ञे न दूरमागतो ॥५१॥

[तरुण है, जवान है, न अति लम्बा है और न अति छोटा है, उसका नाम साम है, वह कल्याण-दर्शन है । उसके बाल लम्बे हैं, काले हैं और मुडे हुए हैं ॥५०॥ वह फल लाकर, यहाँ से कमण्डलू लेकर पानी लाने के लिये नदी गया है । मैं समझता हूँ कि वह दूर नही होगा, वह आता ही होगा ॥५१॥]

यह सुन राजा ने कहा—

अह त अवधि साम यो तुय्ह परिचारको,
यं कुमार पवेदेथे साम कल्याणदस्सन ॥५२॥
दीघस्स केसा असिता अथो सूनग्गवेल्लिता,
तेसु लोहितलित्तेसु सेति सामो मया हतो ॥५३॥

[जो तुम्हारी सेवा करता था, जिस कल्याण-दर्शन साम कुमार की बात करते हो उसे मैंने मार दिया ॥५२॥ उसके बाल लम्बे हैं, काले हैं और मुडे है । उन रक्त लगे हुए बालो मे वह मेरे द्वारा आहत होकर पडा है ॥५३॥]

पण्डित के थोडी ही दूर पर पारिका की पर्णशाला थी । वह वहाँ बैठी राजा की बात सुन, वह बात जानने की इच्छा से वहाँ से निकली और रस्सी के सहारे से दुकूल पण्डित के पास आकर बोली—

केन दुकूल मन्तेसि हतो सामोति वादिना,
हतो सामोति सुत्वान हदय मे पवेधति ॥५४॥
अस्सत्थस्सेव तरुण पवाल मालुतेरित,
हतो सामोति सुत्वान हदय मे पवेधति ॥५५॥

[साम मारा गया कहनेवाले किससे हे दुकूल तू बात कर रहा है ? 'साम मर गया' सुनने से मेरा हृदय काँपता है ॥५४॥ जैसे पीपल के नये पत्ते को हवा ने चचल कर दिया हो, उसी प्रकार 'साम मर गया' सुनकर मेरा हृदय कापता है ॥५५॥]

पण्डित ने उसे उपदेश देते हुए कहा—

पारिके कासिराजाय सो साम मिगसम्मते,
कोधसा उसुना विज्झि तस्स मा पापमिच्छिम ॥५६॥

[हे पारिके ! यह काशीराज है । इसने स्वय मिग नदी के तट पर क्रोध के वशीभूत हो उसे बीध डाला है । हम इसका बुरा न सोचे ॥५६॥]

पारिक बोली—

किच्छा लद्धो पियो पुत्तो यो अन्धे अभरी वने,
त एक पुत्त घातिम्हि कथ चित्त न कोपये ॥५७॥

[बडी कठिनाई से प्रिय-पुत्र मिला, जो वन मे अन्धे माता पिता की सेवा करता था । उस एक पुत्र को मारने वाले के प्रति क्रोध कैसे न पैदा हो ? ॥५७॥]

दुकूल-पण्डित ने कहा—

किच्छा लद्धो पियो पुत्तो यो अन्धे अभरी वने,
त एक पुत्त घातिम्हि अक्कोध आहु पण्डिता ॥५८॥

[बडी कठिनाई से प्रिय-पुत्र मिला, जो अन्धे माता-पिता की सेवा करता था । पण्डितो ने कहा है कि ऐसे एक पुत्र को मारनेवाले के प्रति भी क्रोध नही करना चाहिये ॥५८॥]

यह कह वे दोनो ही हाथो से छाती मलते हुए, बोधिसत्व के गुणो को याद करते हुए बहुत रोये ।

राजा ने उन्हे आश्वासन देते हुए कहा—

मा बाळ्हं परिदेवेथ हतो सामोति वादिना,
अह कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥५९॥
इस्सत्थेचस्मि कुसलो दळ्हधम्मोति विस्सुतो,
अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥६०॥
मिगान विघासमन्वेस वनमूल फलानि च,
अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥६१॥

['साम मारा गया' कहने वाले द्वारा 'साम मारा गया,' सोच बहुत विलाप न करो । मै भारी जगल में तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पालन करूगा ॥५९॥

मैं तीर चलाने में कुशल हूँ, दृढ हूँ—यह प्रसिद्ध है। मैं भारी जगल में तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पोषण करूँगा ॥६०॥ मृगो का मास तथा जगल के फल-मूल खोजता हुआ मै तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पालन करूगा ॥६१॥]

इस प्रकार राजा ने 'तुम चिन्ता न करो। मुझे राज्य की अपेक्षा नही। मै जीवन भर तुम्हारी सेवा करूगा' कह उन्हे आश्वासन दिया। उन्होने उसके साथ बात-चीत करते हुए कहा—

नेस धम्मो महाराज नेत अम्हेसु कप्पति,
राजा त्वमसि अम्हाकं पादे वन्दाम ते मय ॥६२॥

[महाराज! यह धर्म नही है। यह हमे शोभा नही देता है। तू हमारा राजा है। हम तेरे पाँव की वन्दना करते है ॥६२॥]

यह सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ। ओह! आश्चर्य है! मै इतना दोषी हूँ, तो भी मेरे प्रति कठोर वचन तक नही! मुझे (ऊपर ही) उठाते है। उसने गाथा कही—

धम्म नेसादा भणथ कता अपचिती तया,
पिता त्वमसि अस्माक माता त्वमसि पारिके ॥६३॥

[हे निषाद! धर्म की बात करते हो! तुमने मेरा आदर किया है। तू हमारा पिता है और हे पारिक! तू माता है ॥६३॥]

उन्होने हाथ जोडकर कहा, "महाराज! तेरे हमारी सेवा करने की आवश्यकता नही है। हमारी लाठी का सिरा पकडकर हमें वहाँ ले जाकर साम को दिखा।" यह प्रार्थना करते हुए उन्होने दो गाथाये कही—

नमो ते कासिराजत्थु नमोते कासिवद्धन,
अञ्जलिं ते पगण्हाम याव सामानुपापय ॥६४॥
तस्स पादे पमज्जन्ता मुखञ्च भुज दस्सन,
ससुम्भमाना अत्तान कालमागमयामसे ॥६५॥

[हे काशीराज! तुझे नमस्कार है। हे काशी-वर्धन! तुझे नमस्कार है। हम तुझे हाथ जोडते है। जहाँ साम है, वहाँ हमें पहुचा दे ॥६४॥ उसके पाँव

तथा सुन्दर मुँह को पोछने हुए और लोटते हुए हम अपने मरने के समय की प्रतीक्षा करेगे ॥६५॥]

उनके ऐसा कहते समय ही सूर्य्यास्त हो गया । 'यदि मै इन्हे अभी वहाँ ले जाऊगा, तो उसे देखकर ही इनका हृदय फट जायगा । इन तीनो के मर जाने पर मेरा नरक जाना निश्चित ही है । इसलिये वहाँ जाने नही दूगा ।' यह सोच राजा ने चार गाथाये कही—

ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति चन्दोव पतितो छमा ॥६६॥
ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति सुरियोव पतितो छमा ॥६७॥
ब्रहा वाळमिगाकिण्णं आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति पसुना पतिकुण्ठितो ॥६७॥
ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति इधेव वसथ अस्समे ॥६८॥

[जिस वन में साम आहत होकर उसी प्रकार पडा है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर पडा हो वह मृगो से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त मे दिखाई देता है ॥६६॥ जिस वन मे साम आहत होकर उसी प्रकार पडा है जैसे सूर्य्य पृथ्वी पर पडा हो वह मृगो से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त मे दिखाई देता है ॥६७॥ जिस वन में साम बालू से ढका हुआ, आहत होकर पडा है वह मृगो से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ॥६८॥ जिस वन मे साम आहत पडा है, वह मृगो से आकीर्ण वन आकाश के अन्त मे दिखाई देता है । इसलिये यही आश्रम में ही रहें ॥६९॥]

तब उन्होने (वाल-) मृग आदि से अपनी निर्भयता प्रदर्शित करते हुए गाथा कही—

यदि तत्थ सहस्सानि सतानि बहुतानि च,
नेवम्हाक भय कोचि वने वाळेसु विज्जति ॥६९॥

[यदि वहाँ सौ, हजार, अगणित (बाल-) मृग भी हो, तो भी हमें वन में उनसे कुछ भय नही है ॥६९॥]

मैं तीर चलाने मे कुशल हूँ, दृढ हूँ—यह प्रसिद्ध है। मैं भारी जगल में तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पोषण करूँगा ॥६०॥ मृगो का मास तथा जगल के फल-मूल खोजता हुआ मैं तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पालन करूगा ॥६१॥]

इस प्रकार राजा ने 'तुम चिन्ता न करो। मुझे राज्य की अपेक्षा नही। मैं जीवन भर तुम्हारी सेवा करूगा' कह उन्हे आश्वासन दिया। उन्होने उसके साथ बात-चीत करते हुए कहा—

> नेस धम्मो महाराज नेत अम्हेसु कप्पति,
> राजा त्वमसि अम्हाक पादे वन्दाम ते मय ॥६२॥

[महाराज! यह धर्म नही है। यह हमे शोभा नही देता है। तू हमारा राजा है। हम तेरे पाँव की वन्दना करते हैं ॥६२॥]

यह सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ। ओह! आश्चर्य है! मै इतना दोषी हूँ, तो भी मेरे प्रति कठोर वचन तक नही! मुझे (ऊपर ही) उठाते हैं। उसने गाथा कही—

> धम्म नेसादा भणथ कता अपचिती तया,
> पिता त्वमसि अस्माक माता त्वमसि पारिके ॥६३॥

[हे निषाद! धर्म की बात करते हो! तुमने मेरा आदर किया है। तू हमारा पिता है और हे पारिक! तू माता है ॥६३॥]

उन्होने हाथ जोडकर कहा, "महाराज! तेरे हमारी सेवा करने की आवश्यकता नही है। हमारी लाठी का सिरा पकडकर हमे वहाँ ले जाकर साम को दिखा।" यह प्रार्थना करते हुए उन्होने दो गाथायें कही—

> नमो ते कासिराजत्थु नमोते कासिवद्धन,
> अञ्जलिं ते पगण्हाम याव सामानुपापय ॥६४॥
> तस्स पादे पमज्जन्ता मुखञ्च भुज दस्सन,
> संसुम्भमाना अत्तान कालमागमयामसे ॥६५॥

[हे काशीराज! तुझे नमस्कार है। हे काशी-वर्धन! तुझे नमस्कार है। हम तुझे हाथ जोडते हैं। जहाँ साम है, वहाँ हमे पहुचा दे ॥६४॥ उसके पाँव

तथा सुन्दर मुँह को पोछते हुए और लोटते हुए हम अपने मरने के समय की प्रतीक्षा करेंगे ।।६५।।]

उनके ऐसा कहते समय ही सूर्य्यास्त हो गया । 'यदि मैं इन्हें अभी वहाँ ले जाऊँगा, तो उसे देखकर ही इनका हृदय फट जायगा । इन तीनो के मर जाने पर मेरा नरक जाना निश्चित ही है । इसलिये वहाँ जाने नहीं दूँगा ।' यह सोच राजा ने चार गाथाये कही—

ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति चन्दोव पतितो छमा ।।६६।।
ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति सुरियोव पतितो छमा ।।६७।।
ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकाशत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेनि पसुना पतिकुण्ठितो ।।६७।।
ब्रहा वाळमिगाकिण्ण आकासत पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति इधेव वसथ अस्समे ।।६८।।

[जिस वन में साम आहत होकर उसी प्रकार पडा है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर पडा हो वह मृगों से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त मे दिखाई देता है ।।६६।। जिस वन मे साम आहत होकर उसी प्रकार पडा है जैसे सूर्य्य पृथ्वी पर पडा हो वह मृगो से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ।।६७।। जिस वन में साम वालू से ढका हुआ, आहत होकर पडा है वह मृगो से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ।।६८।। जिस वन में साम आहत पडा है, वह मृगो से आकीर्ण वन आकाश के अन्त मे दिखाई देता है । इसलिये यही आश्रम मे ही रहे ।।६९।।]

तब उन्होने (वाल-) मृग आदि से अपनी निर्भयता प्रदर्शित करते हुए गाथा कही—

यदि तत्थ सहस्सानि सतानि बहुतानि च,
नेवम्हाक भय कोचि वने वाळेसु विज्जति ।।६९।।

[यदि वहाँ सौ, हजार, अगणित (वाल-) मृग भी हो, तो भी हमें वन में उनसे कुछ भय नही है ।।६९।।]

राजा ने जब देखा कि वह उन्हे नही रोक सकता तो वह उन्हे पकडकर वहाँ ले गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो अन्धानमादाय कासीराजा ब्रहावने,
हत्थे गहेत्वा पक्कामि यत्थ सामो हतो अहू ॥७०॥

[तब राजा उस बडे वन मे अन्धो को हाथ से लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ साम आहत पडा था। ॥७०॥]

उन्हे उसके पास ले जाकर उनसे कहा, यह पुत्र है। तब उसके पिता ने सिर और माँ ने पाँव जाघो मे रखकर, बैठकर विलाप किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

दिस्वान पतित सामं पुत्तक पसुकुण्ठित,
अपविद्ध ब्रहारञ्ञे चन्दव पतित छमा ॥७१॥
दिस्वान पतित साम पुत्तक पसुकुण्ठित,
अपविद्ध ब्रहारञ्ञे सुरिय व पतित छमा ॥७२॥
दिस्वान पतित साम पुत्तक पसुकुण्ठित,
अपविद्ध ब्रहारञ्ञे करुण परिदेवयु ॥७३॥
दिस्वान पतित साम पुत्तक पसुकुण्ठित,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु अधम्मो किर भो इति ॥७४॥

[साम पुत्र को धूल में लिपटे, बिधे, बडे वन मे वैसे ही पडे देख जैसे पृथ्वी पर चन्द्रमा पडा हो, जैसे पृथ्वी पर सूर्य्य पडा हो वे करुणार्द्र हो रोये ॥७३॥ साम पुत्र को धूल मे लिपटा पडा देख वे बाँहे उठाकर रोये कि 'ओह ! अधर्म हुआ'। ॥७४॥]

बाळ्ह खोसि तुव सुत्तो साम कल्याणदस्सन
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥७५॥
बाळ्ह खोसि तुव मत्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥७६॥
बाळ्ह खोसि तुव पमत्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥७७॥

बाळह खोसि तुव कुद्धो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥७८॥
बाळह खोसि तुव दित्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥८१॥
बाळह खोसि तुवं विमनो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेव गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥८२॥

(हे कल्याणदर्शन साम ! तू बहुत सोया है। इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नही बोलता है ! ॥७५॥ हे कल्याणदर्शन साम ! तू बहुत मत्त हो गया है। इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नही बोलता है ! ॥७६॥ हे कल्याण-दर्शन साम ! तू बहुत प्रमत्त हो गया है तू बहुत क्रुद्ध हो गया है तू बहुत अभिमानी हो गया है तू बहुत रुष्ठ हो गया है, जो इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नही बोलता है ॥७७-८२॥)

जट वलित पकगत कोदानि सण्ठपेस्सति,
सामो अय कालकतो अन्धान परिचारको ॥८३॥
को वे सम्मज्जनादाय सम्मज्जिस्सति अस्सम,
सामो अयं कालकतो अन्धान परिचारको ॥८४॥
कोदानि नहापयिस्सति सीतेनुण्होदकेन च,
सामो अयं कालकतो अन्धान परिचारको ॥८५॥

[हमारी जटाये उलझ गई है, कीचड से लथ-पथ हो गई है। इन्हें अब कौन ठीक करेगा ? अन्धो की सेवा करनेवाला यह साम अब नही रहा ॥८३॥ कौन अब झाड़ू लेकर आश्रम को साफ करेगा ? अन्धो की सेवा करनेवाला यह साम अब नही रहा ॥८४॥ कौन अब ठण्डे और गर्म जल से स्नान करायेगा ? अन्धो की सेवा करनेवाला साम अब नही रहा ॥८५॥]

को दानि भोजयिस्सति वन मूल फलानि च,
सामो अय कालकतो अन्धानं परिचारको ॥८६॥

[कौन अब वन के फल-मूल खिलायेगा ? अन्धो की सेवा करनेवाला साम अब नही रहा ॥८६॥]

उसकी मा ने बहुत विलाप करने के बाद पुत्र की छाती पर हाथ रखकर गरमी देखी। जब उसने देखा कि गरमी तो अभी है ही तो सोचा कि जहर के जोर से बेहोश हो गया होगा। उसने निश्चय किया कि उसका जहर उतारने के लिये सत्य-क्रिया करेगी। उसने सत्य-क्रिया की।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

दिस्वान पतित साम पुत्तक पसुकुण्ठित,
अट्टिता पुत्तसोकेन माता सच्चमभासथ ।।८७।।
येन सच्चेनय सामो धम्मचारी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।८८।।
येन सच्चेनय सामो ब्रह्मचारी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ।।८९।।
येन सच्चेनय सामो सच्चवादी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।९०।।
येन सच्चेनय सामो मातापेत्तिभरो अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामास्स हञ्ञतु ।।९१।।
येच सच्चनय सामो कुले जेटठापचायिको,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।९२।।
येन सच्चेनयं सामो पाणा पियतरो मम,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।९३।।
यं किञ्चत्थि कत पुञ्ञ मय्हं चेव पितुच्च ते,
सच्चेन तेन कुसलेन विसं सामस्स हञ्ञतु ।।९४।।

[धूल में लिपटे पुत्र साम को गिरा देख, पुत्र शोक से दुःखी हो माता ने सत्य कहा ।।८७।। जिस सत्य से यह साम पहले धर्मचारी था, पहले ब्रह्मचारी था सत्यवादी था माता पिता की सेवा करनेवाला था बड़ो का आदर करनेवाला था मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय था, उस सत्य के प्रताप से इसके विष का नाश हो जाय ।।८८-९३।। मैंने अथवा इसके पिता ने जो कुछ भी पुण्य किया है, उस कुशल-कर्म के प्रताप से साम का विप नष्ट हो जाय ।।९४।।]

इस प्रकार मा के सात गाथाओ द्वारा सत्य-क्रिया करने पर साम ने करवट ली। तब उसके पिता ने "मेरा पुत्र जीता है, मै भी सत्य-क्रिया करूगा"[1] सोच ठीक उन्ही शब्दो में सत्य-क्रिया की।

उसके सत्य-क्रिया करने पर वोधिसत्व पलटकर दूसरी करवट लेटा। तव उस देवी ने तीसरी सत्य-क्रिया की। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा देवता अन्तरहिता पब्बते गन्धमादने,
सामस्स अनुकम्पाय इय सच्चमभासथ ।।।।१०३।।
पब्बत्याह गन्धमादने चिररत्तनि वासिनी,
न मे पियतरो कोचि अञ्ञो सामा न विज्जति,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।१०४।।
सब्बे वना गन्धमया पब्बते गन्धमादने,
एतेन सच्चवज्जेन विस सामस्स हञ्ञतु ।।१०५।।
तेस लालप्पमानानं बहु कारुञ्ञसहित,
खिप्प सामो समुट्ठासि युवा कल्याणदस्सनो ।।१०६।।

[गन्धमादन पर्वत में अन्तर्धान रहकर उस देवी ने साम पर अनुकम्पा करने के लिये यह सत्य कहा ।।१०३।। मैं चिरकाल से गन्धमादन पर्वत पर निवास कर रही हूँ। साम से वढकर दूसरा कोई मेरा प्रिय नही है। इस सत्य के प्रताप से साम का विष नष्ट हो जाय ।।१०४।। गन्धमादन पर्वत पर सभी वन सुगन्धित हे। इस सत्य के प्रताप से साम का विप नष्ट हो जाय ।।१०५।। उनके अत्यन्त करुणार्द्र स्वर मे कहते समय कल्याण-दर्शन तरुण साम शीघ्रता से उठ खडा हुआ ।।१०६।।]

इस प्रकार बोधिसत्व का निरोग होना, माता-पिता को आँख मिलना, अरुणोदय, देवी के प्रताप से उन चारो का आश्रम पहुच जाना, यह सब एक ही क्षण मे हुआ। माता-पिता आँख मिल जाने से और साम के निरोग हो जाने से वहुत प्रसन्न हुए। उन्हे साम पण्डित ने गाथा कही—

---

१ गाथा (९५–१०२)

सामोहमस्मि भद्द वो सोत्थिनम्हि समुट्ठितो,
मा बाल्ह परिदेवेथ मञ्जुनाभिवदेथ म ॥१०७॥

[तुम्हारा भला हो, मैं साम हूं, सकुशल उठ खडा हूं। अधिक विलाप मत करो। मुझसे सुन्दर वाणी बोलो। ॥१०७॥]

तब बोधिसत्व ने राजा को देख उसका स्वागत करते हुए कहा—

सागत ते महाराज अथो ते अदुरागत,
इस्सरोसि अनुप्पत्तो य इधत्थिपवेदय ॥१०८॥
तिण्डुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज राज वर वर ॥१०९॥
अत्थि मे पाणीय सीत आभत गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाराज सचेत्व अभिकखसि ॥११०॥

[अर्थ पहले आ गया है। गाथा ४६, ४७, ४८,]

राजा ने उस आश्चर्य को देखकर कहा—

सम्मुम्ह यामि पमुम्हयामि सब्बा मुम्हन्ति मेदिसा,
पेत ते साम अद्दक्खि कोनु त्व साम जीवसि ॥१११॥

[मुझे मोह होता है, प्रमोह होता है, सभी दिशाए मुझे मूढ बनाती हैं। हे साम! मैने तेरी लाश देखी थी तुझे किसने जिलाया। ॥१११॥]

साम ने यह सोच कि यह राजा उसे मृत समझता रहा है अपने जीवित रहने की बात प्रकाशित करते हुए गाथा कही—

अपिजीव महाराज पुरिस गाल्हवेदन,
उपनीतमनसकप्प जीवन्त मञ्ञते मत ॥११२॥
अपिजीव महाराज पुरिस गाल्हवेदन,
त निरोधगत सन्त जीवन्त मञ्ञते मत ॥११३॥

[महाराज! अत्यन्त वेदनाग्रस्त प्राणी भी भवग अवस्था मे जीता हुआ भी मृत समझ लिया जाता है। ॥११२॥ महाराज! अत्यन्त वेदनाग्रस्त प्राणी भी निद्रित अवस्था मे जीता हुआ भी मृत समझ लिया जाता है ॥११३॥]

इस प्रकार लोक मुझे जीते जी ही मृत मान रहे थे, कह राजा को सदर्थ मे लगाने की इच्छा से धर्मोपदेश देते हुए दो गाथाये कही—

यो मातर वा पितरं वा मच्चो धम्मेन पोसति,
देवापि न तिकिच्छन्ति माता पेत्ति भर जन ॥११४॥
यो मातर वा पितर वा मच्चो धम्मेन पोसति,
इध चेव न पसंसन्ति पेच्च सग्गे च मोदति ॥११५॥

[जो मनुष्य माता अथवा पिता की धर्मानुसार सेवा करता है, देवता भी उस मातापिता की सेवा करनेवाले की चिकित्सा करते है ॥११४॥ जो मनुष्य माता अथवा पिता की धर्मानुसार सेवा करता है, उसकी यहाँ भी प्रशसा होती है और वह परलोक जाने पर स्वर्ग मे भी आनन्द मनाता है ॥११५॥]

यह सुन राजा सोचने लगा, 'भो ! आश्चर्य है। माता पिता की सेवा करनेवाले के रोग की देवता भी चिकित्सा करते है ! यह साम अत्यन्त सुशोभित होता है।' वह हाथ जोडकर बोला—

एस भीयो मुय्हामि सब्बा मुय्हन्ति मे दिसा,
सरण त साम गच्छामि त्वञ्च मे सरण भव ॥११५॥

[मै और भी मोह को प्राप्त हो गया हूं। सभी दिशाये मुझे मूढ बनाती है। हे साम ! मै तेरी शरण जाता हूँ। तू मेरी प्रतिष्ठा बन ॥११५॥]

तब बोधिसत्व ने 'महाराज ! यदि देवलोक जाने की इच्छा है, महान् दिव्य-सम्पत्ति भोगने की इच्छा है, तो इन दस धर्म-चर्य्याओ का पालन कर।' उसने दस धर्म-चर्या गाथायें कही।

धम्मञ्चर महाराज मातापितुसु खत्तिय,
इध धम्म चरित्वान राज सग्ग गमिस्ससि ॥११६॥
धम्मञ्चर महाराज पुत्तदारेसु खत्तिय
इध ॥११७॥
धम्मञ्चर महाराज मित्तामिच्चेसु खत्तिय,
इध ॥११८॥

धम्मञ्चर महाराज वाहनेसु बलेसु च,
इध धम्म चरित्वान राज सग्गं गमिस्ससि ॥११९॥
धम्मञ्चर महाराज गामेस च निगमेसु च
इध . .... . ॥१२०॥
धम्मञ्चर महाराज रट्ठे जनपदेसु च
इध . .. . ॥१२१॥
धम्मञ्चर महाराज समणब्राह्मणेसु च
इध.................... ॥१२२॥
धम्मञ्चर महाराज मिगपक्खोसु खत्तिय
इध. . .. . ॥१२३॥
धम्ञ्चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो,
इध... . . . ... ॥१२४॥
धम्मञ्चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो,
इध धम्म चरित्वान स इन्दा देवा सब्रह्मका,
सुचिण्णेन दिव पत्ता मा धम्मं राज पमादो ॥१२५॥

[अर्थ पहले (दे० तेसकुण जातक ५२१) आ ही चुका है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने दस राजधर्मों का उपदेश दे, और और भी उपदेश दे उसे पचशील दिये। उसने उस उपदेश को सिर से स्वीकार किया और वाराणसी जा, दानादि पुण्य कर परिषद सहित स्वर्ग-गामी हुआ। बोधिसत्व भी मातापिता के साथ अभिञ्ञा और समापत्तियाँ लाभ कर ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशनाला 'भिक्षुओ, माता पिता की सेवा करना पण्डितो की वश-परम्परा हैं' कह सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो की समाप्ति पर उस भिक्षु ने स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया। उस समय राजा आनन्द था। देव-कन्या उत्पल वर्णा। शक्र अनुरुद्ध था। पिता काश्यप था। माता भद्र कपिला थी। स्वर्ण साम-पण्डित तो मैं ही था।

५४१. निमि जातक

"अच्छेर वत लोकाम्मि   "यह शास्ता ने मिथिला के आश्रम मखादेव-म्ब्वन मे विहार करते ममय मुस्कराने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शाम के समय जव अनेक भिक्षुओ के साथ शास्ता उस आम्रवन मे चारिका कर रहे थे, तो शास्ता एक सुन्दर भूमि-प्रदेश देखकर अपना पूर्व-चरित्र करने की इच्छा से मुस्कराये। आयुष्मान आनन्द स्थविर ने मुस्कराहट का कारण पूछा। 'आनन्द! मखादेव राजा के रूप में पैदा होने के समय में इस प्रदेश में ध्यान-क्रीडा करता हुआ रहा हूँ।' उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने बिछे आसन पर बैठ पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय म, विदेह राष्ट्र मे, मिथिला नगर में, मखादेव नाम का राजा था। उसने चौरासी हज़ार वर्ष कुमार-क्रीडा मे विताये और चौरासी हजार वर्ष तक उप-राज्य किया। चोरासी हजार वर्ष राज्य करते हुए उसने नाई को कहा, "मित्र नाई! जव मेरे सिर में सफेद वाल देखे, तव मुझे कहना' आगे चलकर जब नाई को सफेद बाल दिखाई दिये तव उसने कहा। राजा ने उन्हे उखडवाकर हथेली पर रखवाया। उन वालो को देखकर राजा को ऐसा लगा मानो मृत्यु सिर पर ही आ गई है। उसने सोचा, अव यह मेरा प्रव्रजित होने का समय है। इसलिये उसने नाई को श्रेष्ठ गाव दे, ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर कहा—"तात! राज्य सभाल। मैं प्रव्रजित होऊगा।" उसके यह पूछने पर कि देव! क्यो? उत्तर दिया—

उत्तमगरूहा मय्ह इमे जाता वयोहरा,
पातुभूता देवदूता पब्बज्जा समयो मम ॥१॥

[मेरी आयु का हरण करनेवाले ये मेरे सिर के (सफेद) बाल पैदा हो गये हैं। ये देव-दूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है ॥१॥]

यह कह और उसे राज्याभिषिक्त कर तथा उसे भी यह उपदेश दे कि तू भी ऐसा ही करना, वह नगर से निकला और भिक्षुओं के प्रव्रज्या-क्रम के अनुसार प्रव्रजित हुआ। उसने चौरासी हजार वर्ष तक चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्म-लोक में जन्म ग्रहण किया। इसी प्रकार उसका पुत्र भी प्रव्रजित हो ब्रह्मलोक-गामी हुआ। फिर उसका पुत्र और उसका पुत्र, इस प्रकार दो कम चौरासी हजार क्षत्रिय सिर में सफेद बाल देखकर ही उस आम्रवन में प्रव्रजित हुए। वे भी चारों ब्रह्म-विहारों की भावनाकर ब्रह्मलोक में पैदा हुए। उनमें सर्व-प्रथम-उत्पन्न मखादेव राजा ने ब्रह्म-लोक में रहते समय अपने वंश की ओर देखा तो उसे दो कम चौरासी हजार क्षत्रिय प्रव्रजित दिखाई दिये। उसने प्रसन्न हो विचार किया कि इससे आगे वंश चलेगा अथवा नहीं चलेगा ? उसे दिखाई दिया कि नहीं चलेगा। तब उसने सोचा कि अपने वंश को मैं ही चालू करूंगा। वह वहाँ से च्युत हुआ और उसने मिथिला नगर में राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। उसके नामकरण के दिन लक्षणज्ञों ने लक्षण देखकर कहा, "महाराज ! यह राजकुमार तुम्हारे वंश को समाप्त करने के लिये उत्पन्न हुआ है। तुम्हारा वंश ही प्रव्रज्या-वंश है। इससे आगे न चलेगा।"

यह सुन राजा ने 'यह रथ-चक्र की नेमि की तरह मेरे वंश को चालू रखने के लिये पैदा हुआ है' सोच उसका नाम नेमि-कुमार ही रख दिया। बचपन से ही उसकी दान, शील और उपोसथ-कर्म में रुचि थी। उसका पिता पूर्व की भाँति ही, सफेद बाल देख, नाई को गाँव दे, पुत्र को राज्य सौंप, आम्रवन में प्रव्रजित हो, ब्रह्म-लोकगामी हुआ। निमि-राजा ने दान देने की इच्छा से चारों नगर-द्वारों पर और नगर के बीच, इस प्रकार पाँच-दानशालायें बनवाईं और महादान दिया। एक एक दान-शाला में लाख के हिसाब से प्रतिदिन पाँच पाँच लाख कार्षापणों का त्याग किया। प्रति-दिन पाँच शीलों की रक्षा की। पक्ष के दिनों में उपोसथ-व्रत ग्रहण कर जनता

को भी दानादि पुण्य-कर्मों मे प्रेरित किया। स्वर्ग मार्ग बताकर और नरक का भय दिखाकर धर्मोपदेश दिया। उसके उपदेशानुसार चल, पुण्यादि करने वाले, मर-मरकर देव लोक मे उत्पन्न होते थे। देव-लोक भर गया। नरक खाली-सा हो गया।

तब त्र्योतिंश-भवन मे देवता सुधर्मा देव-सभा मे इकट्ठे हुए और यह कहकर बोधिसत्व का गुणानुवाद करने लगे कि ओह! हमारा आचार्य निमि-राजा। उसी के कारण हम यह बुद्ध-ज्ञान द्वारा भी अपरिमेय दिव्य-सम्पत्ति का अनुभव करते है। महासमुद्र के ऊपर छिडके गये तेल की तरह मनुष्य-लोक मे भी इसकी प्रशसा फैल गई। शास्ता ने वह बात प्रकटकर उसे भिक्षु-सघ को कहते हुए कहा—

अच्छेर वत लोकस्मि उप्पज्जन्ति विचक्खणा,
यदा अहू निमिराजा पण्डितो कुसलत्थिको ॥१॥
राजा सब्बविदेहान अदा दान अरिन्दमो,
तस्स त ददतो दान सकप्पो उदपज्जथ,
दान वा ब्रह्मचरिय वा कतम सु महप्फल ॥२॥

[आश्चर्य का विषय है कि लोक मे बुद्धिमान लोग पैदा होते रहते है। जब कुशलार्थी पण्डित निमि राजा पैदा हुआ, तो उस अरिमर्दन, सब विदेहो के राजा ने दान दिया। दान देते समय उसके मन मे सकल्प पैदा हुआ—दान और ब्रह्मचर्य मे मे किसका अधिक फल है? ॥१२॥]

उस समय इन्द्र-भवन गरम हो गया। शक्र ने उसके कारण पर विचार किया तो उसे उस प्रकार विचार करते देख उसने सोचा कि मै इसके सन्देह का निवारण करूगा। वह अकेला ही शीघ्र आया और सारे घर को प्रकाशित कर शयनागार मे प्रवेश किया। फिर प्रकाश फैलाकर, आकाश मे खडे हो, उसके पूछने पर उत्तर दिया। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स सकप्पमञ्ञाय मघवा देवकुञ्जरो,
सहस्सनेत्तो पातुरहु वण्णेन निहन तम ॥३॥
स लोमहट्ठो मनुजिन्दो वासव अवचा निमि,
देवतानुसि गन्धब्बो आदु सक्को पुरिन्ददो,
न चे मे तादिसो वण्णो दिट्ठो वा यदि वा सुतो ॥४॥

स लोमहट्ठ मत्वान वासवो अवचा निमिं,
सक्को हमस्मि देविन्दो आगतोस्मि तवन्तिके,
अलोमहट्ठो मनुजिन्द पुच्छ पञ्ह यदिच्छसि ॥५॥
सो च तेन कतोकासो वासव अवचा निमि,
पुच्छामि त महाबाहु सब्बा भूतानमिस्सर,
दान वा ब्रह्मचरिय वा कतमं सु महप्फल ॥६॥
सो पुट्ठो नरदेवेन वासवो अवचा निमिं,
विपाक ब्रह्मचरियस्स जान अकरवास जाननो ॥७॥
हीनेन ब्रह्मचरियेन खत्तिये उपपज्जति,
मज्झिमेन च देवत्त उत्तमेन विसुज्झति ॥८॥
न हेते सुलभा याचयोगेन केनचि,
ये काये उपपज्जन्ति अनागारा तपस्सिनो ॥९॥

[देवेन्द्र शक्र को जब उसके सकल्प का पता लगा तो वह सहस्र-नेत्र अपने प्रकाश से अन्धकार का नाश करता हुआ प्रकट हुआ ॥३॥ उस लोम-हर्षित मनुजेन्द्र निमि ने वासव को कहा "तू देव है ! गन्धर्व है अथवा पुरेन्द्र शक्र है ? मैंने ऐसा वर्ण न देखा है और न सुना है" ॥४॥ वासव ने निमि को लोमहर्षित देख कहा, "हे देवेन्द्र ! मै शक्र हूँ। मै तेरे पास आया हूँ। हे मनुजेन्द्र ! बिना रोमा-चित हुए जो प्रश्न चाहे पूछे ॥५॥ उसके अनुज्ञा देने पर, निमि ने शक्र से कहा, "हे सर्व भूतेश्वर महाबाहु ! मै तुझसे पूछता हूँ कि दान और ब्रह्मचर्य्य में से किसका फल अधिक है ?" ॥६॥ नरेन्द्र द्वारा पूछे गये शक्र ने जानते हुए उस अजानकार को ब्रह्मचर्य का फल कहा—निम्न-स्तर के ब्रह्मचर्य्य से क्षत्रिय होकर उत्पन्न होता है, मध्यम-स्तर के ब्रह्मचर्य से देवता होकर उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य से विशुद्ध होता है ॥७॥ ये जन्म किसी भी अन्य यज्ञादि से सुलभ नही हैं। इनमें अनागरिक तपस्वी ही जन्म ग्रहण करते है ॥८॥]

दुदीपो सागरो सेलो मुचलिन्दो भगीरसो,
उसीनरो अट्ठको च अस्सको च पुथुज्जनो ॥९॥

एते चञ्ञे च राजानो खत्तिया ब्राह्मणा बहू,
पुथुयञ्ञ यजित्वान पेत ते नातिवत्तिसुं ॥१०॥

[दुदीप, सागर, सेल, मुचलिन्द, भगीरथ, उसीनर, अट्ठक और अस्सक, जितने भी पृथक-जन हुए तथा और भी जो बहुत से क्षत्रिय-ब्राह्मण राजा हुए उन्होने बहुत से यज्ञ किये, किन्तु वे (कामावचर) प्रेत-योनि से आगे नही बढ सके ॥१०॥]

अद्धा इमे अवत्तिसु अनागारा तपस्सिनो,
सत्तिमयो यामहनु सोमयागो मनोजवो ॥११॥
समुद्दो माघो भरतो च इसिकालिक रक्खियो,
अगीरसो कस्सपो च किसवच्छो अकित्ति च ॥१२॥

[ये अनागारिक तपस्वी—सात ऋषि, यामहनु, सोमयाग, मनोजव, समुद्र, माघ, भरत और इसिकालिक रक्खिय तथा अङ्गीरस, काश्यप, किसवच्छ और अकीर्ति —निश्चय से (कामावचर प्रेत—योनि) लाघ गये ॥११-१२॥]

इस प्रकार पहले अनु-श्रुति के अनुसार ब्रह्म-चरिय के महान फल का वर्णन कर अब अपने अनुभव के अनुसार कहा—

उत्तरेन नदी सीदा गम्भीरा दुरतिक्कमा,
नलग्गिवण्णा जोतन्ति सदा कञ्चन पब्बता ॥१३॥
परूळ्हकच्छा तगरा रूळ्हकच्छा वना नगा,
तत्रासु दस सहस्सानि पोराणा इसयो पुरे ॥१४॥
अह सेट्ठोस्मि दानेन सयमेन दमेन च,
अनुत्तर वतं कत्वा पकिरचारी समाहिते ॥१५॥
जातिवन्त अजच्चञ्च अहमुज्जुगतं नर,
अतिवेलं नमस्सिस्सं कम्मबन्धू हि मातिया ॥१६॥
सब्बे वण्णा अधम्मट्ठा पतन्ति निरय अधो,
सब्बे वण्णा विसुज्झन्ति चरित्वा धम्ममुत्तम ॥१७॥

[उत्तर-हिमालय मे सीदा नामकी नदी है, जो गम्भीर है, जो दुरतिक्रमण है। वहाँ काचन पर्वत सरकण्डो से निकलने वाली आग के समान चमकते है ॥१३॥

उस नदी के तट पर तगर (-सुगन्धी) है, और पर्वतो मे वन है। वहाँ पूर्वकाल मे दस हजार ऋषी थे ॥१४॥ मैंने दान में श्रेष्ठ-पद लाभ किया, उन सयमी, इन्द्रिय-दमन-युक्त, अनुत्तर व्रत करने वाले, एकान्तवासी एकाग्रचित्त ऋषियो को (दान देकर) ॥१५॥ मैंने उनकी जाति आदि की चिन्ता न कर, उनकी ऋजु-चर्य्या के कारण उन्हे नमस्कार किया, क्योकि कर्म ही मनुष्यो का वन्धु है ॥१६॥ अधर्म-मार्ग पर चलनेवाले सभी वर्ण नरक मे जाते हैं। श्रेष्ठ-धर्म का आचरण कर सभी वर्ण (दु ख के) निरोध को प्राप्त होते हैं ॥१७॥]

यह कह 'यद्यपि महाराज दान से ब्रह्मचर्य्य ही श्रेष्ठफलदायी है, तो भी ये दोनो ही महापुरुषो के वितर्क है, इसलिये इन दोनो बातो मे अप्रमादी हो, दान दें और शील की रक्षा करें' उपदेश दिया और अपने निवास स्थान को ही चला गया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
वेदेह अनुसासित्वा सग्गकाय अपक्कमि ॥१८॥

[इतना कह देवेन्द्र, सुजम्पति, शक्र विदेह (राज) को अनुशासित कर स्वर्ग-लोक चला गया ॥१८॥]

तब देव-गण ने पूछा—"महाराज ! दिखाई नही दिये। कहाँ गये थे ?"

'मित्रो ! मिथिला में निमि राजा के मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था। उसके प्रश्न का समाधान कर उसे सन्देह-रहित करने गया था।' यह कह, फिर उसी बात को गाथा द्वारा कहने के लिये कहा—

इम भोन्तो निसामेथ यावन्तेत्थ समागता,
धम्मिकान मनुस्सान वण्ण उच्चावच बहु ॥१९॥
यथा अयं निमि राजा पण्डितो कुसलत्थिको,
राजा सब्बविदेहान अदा दानं अरिन्दमो ॥२०॥
तस्स त ददतो दानं सकप्पो उदपज्जथ,
दान वा ब्रह्मचरियं वा कतमंसु महप्फल ॥२१॥

[आप जितने लोग यहाँ आये हैं, सब सुनें। धार्मिक मनुष्यो का तर-तम बहुत है ॥१९॥ जैसे यह पण्डित, कुशलार्थी, नमी विदेहो का राजा निमि है।

इस शत्रुओ का दमन करने वाले राजा ने दान दिया ।।२०।। दान देते हुए उसके मन मे यह सकल्प पैदा हो गया—दान और ब्रह्मचर्य्य में किसका फल अधिक है ? ।।२१।।]

इस प्रकार उसने बिना कोई बात छोडे, राजा का गुणानुवाद किया । यह सब सुन देवताओ की इच्छा हुई कि राजा को देखे । वे बोले, "महाराज । निमि राजा हमारा आचार्य्य है । उसके उपदेशानुसार चलकर ही हमे दिव्य-सम्पत्ति प्राप्त हुई । हम उसे देखने की इच्छा रखते है । उसे बुलाकर, महाराज ! हमें दर्शन कराये ।" शक्र ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और मातलि को बुलाकर कहा, "मातलि ! वेजयन्त रथ जोतो। मिथिला जाकर निमि राजा को दिव्य-यान पर विठाकर लाओ।" वह 'अच्छा' कह, स्वीकार कर रथ जोतकर चल दिया । जितनी देर शक्र देवताओ से बातचीत करता रहा और मातलि को आज्ञा दे रथ जुतवाता रहा, उतनी देर मे मनुष्य-गणना के हिसाब से एक महीना बीत गया ।

जिस समय पूर्णिमा की रात को उपोसथ-व्रत धारण किये निमि राजा खिडकी खोलकर अमात्यो के बीच घिरा बैठा शील का मनन कर रहा था, पूर्व दिशा से उगते हुए चन्द्रमा के साथ ही वह रथ भी प्रकट हुआ । शाम का भोजन समाप्त कर सुख-पूर्वक घर के द्वारो पर बैठे हुए मनुष्य कहने लगे, "आज दो चाँद उगे ।" उनके वार्तालाप करते समय ही रथ प्रकट हुआ । जनता ने जब यह देखा कि यह चन्द्रमा नही और शनै शनै जब लोगो ने मातलि द्वारा हाके जाते हुए, रथ मे जुते हुए हजार घोडे देखे तो लोग सोचने लगे "यह दिव्य-यान किसके लिये आता है ?" फिर सोचा, और किसके लिये होगा ? हमारा राजा धार्मिक है । उसी के लिये शक्र ने वेजयन्त रथ भेजा होगा । हमारा राजा ही इसके योग्य है, सोच, प्रसन्न हो गाथा कहने लगे—

अब्भुतो वत लोकस्मि उप्पज्जि लोमहसनो,
दिब्बो रथो पातुरहु वेदेहस्स यसस्सिनो ।।२२।।

[लोक मे अद्भुत लोम-हर्षक बात हुई है । यशस्वी विदेह के लिये दिव्य-रथ आया है ।।२२।।]

जिस समय लोग बातचीत कर रहे थे उसी समय वायु-वेग से मातलि आ पहुचा । उसने रथ को रोका और उसे खिडकी की देहली से पिछली ओर सटाकर, चढाने

की तैयारी कर, राजा को आवाहन किया। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

देवपुत्तो महिद्धिको मातली देवसारथी,
निमन्तयित्थ राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं ॥२३॥
एहि म रथमारुय्ह राजसेट्ठ दिसम्पति,
देवा दस्सनकामा ते तावतिंसा सइन्दका
सरमाना हि ते देवा सुधम्मायं समच्छरे ॥२४॥

[महान् ऋद्धिवान्, देव-पुत्र, देव-सारथी मातलि ने मिथिलेश विदेह राजा को निमन्त्रण दिया ॥२३॥ उसने कहा—"हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओं के पति ! आयें और रथपर चढे। इन्द्र सहित त्रयोत्रिंश देवता तेरे दर्शन की इच्छा करते है। देवतागण, सुधर्मा मे बैठे तुम्हे याद कर रहे है" ॥२४॥]

राजा ने सोचा"इससे पहले नही देखा। देव-लोक देख सकूगा। और मैं मातलि का भी सग्रह कर सकूगा। मै जाऊगा।" उसने अन्त पुर के लोगो को तथा जनता को बुलाकर कहा, "मै शीघ्र ही लौट आऊगा। तुम अप्रमादी होकर दान आदि पुण्य करना।" यह कह रथ पर चढ गया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च राजा तरमानो वेदेहो मिथिलग्गहो,
आसना वुट्ठहित्वान पमुखो रथमारुहि ॥२५॥
अभिरूळ्हं रथं दिब्बं मातली एदब्रवी,
केन त नेमि मग्गेन राजसेट्ठ दिसम्पति,
येन वा पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२६॥

[तब मिथिलेश, विदेह, प्रमुख राजा ने शीघ्रता की और आसन से उठ रथ पर आ बैठा ॥२५॥ दिव्य रथ पर चढे हुए राजा से मातलि ने पूछा—हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओ के पति ! मैं तुझे किस मार्ग से ले चलू ? जिससे पापी लोग जाते हैं अथवा जिससे पुण्यवान् लोग जाते है ? ॥२६॥]

शक्र से वैसी आज्ञा न मिली रहने पर भी उसने अपनी विशेषता प्रकट करने

के लिये वैसा कहा। राजा ने सोचा, मैंने दोनो मे से एक भी स्थान नही देखा। उसने दोनो को देखने की इच्छा से कहा—

उभयेनेव म नेहि मातलि देवसारथि,
येन या पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२७॥

[हे देव-सारथि ! हे मातलि ! मुझे दोनो रास्तो से ले चल।—पापियो के रास्ते से भी और पुण्य-कर्मो के रास्ते से भी ॥२७॥]

तब मातलि ने 'दोनो रास्तो से एक साथ नही जाया जा सकता' सोच फिर प्रश्न किया—

केन नं पठम नेमि राजसेट्ठ दिसम्पति,
येन वा पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२८॥

[हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओ के पति ! मै पहले तुझे किस रास्ते ले चलू ? जिस रास्ते पापी लोग गये है, अथवा जिस रास्ते पुण्यवान् लोग गये है ? ॥२८॥]

तब राजा ने सोचा, 'देव-लोक तो मै जाऊगा ही, अभी नरक देख लू।' उसने उत्तर दिया।—

निरये ताव पस्सामि आवासे पापकम्मिनं,
ठानानि लुद्दकम्मान दुस्सीलानञ्च या गति ॥२९॥

[मै पहले पापियो के निवासस्थान, लोभियो के निवास-स्थान तथा दुश्शीलो की क्या दुर्गति होती है, वह नरक ही देखूगा ॥२९॥]

उसे वेतरणी दिखाई गई। उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

दस्सेसि मातली रञ्ञो दुग्ग वेतरणिं नदिं,
कुथन्ति खारसयुत्त तत्त अग्गिसिखूपमं ॥३०॥

[मातलि ने राजा को बडी कठिनाई से पार की जा सकनेवाली नदी दिखाई, जो उबल रही थी, जिसमें काटे थे, जो अग्नि-शिखा के समान तप्त थी ॥३०॥]

राजा ने वेतरणी में लोगो को नाना प्रकार के दु ख से पीडित होते देख, सोचा, "मातलि ! इन प्राणियो ने क्या पाप-कर्म किये है ? ।" उसने उत्तर दिया। इस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

निमी हवे मातलि अज्झभासथ
दिस्वा जन पतमान विदुग्गे,
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना वेतरणि पतन्ति ॥३१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खासजानतो ॥३२॥
ये दुब्बले बलवन्तो जीवलोके
हिंसेन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
ते मे जना वेतरणि पतन्ति ॥३३॥

[आदमियो को कष्ट मे गिरते देखकर निमि ने मातलि को कहा, "हे सारथि ! इन्हे देखकर मुझे भय लगता है । हे देव सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ, इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे यह वेतरणी मे आ पडे ॥३१॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्मो का फल कहा ॥३२॥ जीव-लोक मे जो पापी बलवान दुर्बलो को कष्ट देते है, तकलीफ देते है वे रौद्र-कर्म करने-वाले पाप-कर्म के पकने पर वेतरणी नदी मे आकर गिरते है ॥३३॥]

इस प्रकार मातलि ने उसका समाधान किया । जब राजा ने वेतरणी देख ली तो वहाँ से अन्तर्धान हो रथ को आगे बढा उसे कुत्तो आदि से खाई जानेवाली जगह दिखाई । भयभीत राजा के प्रश्न करने पर उसने समाधान किया । उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

सामा च सोणा सबला च गिज्झा,
काकोळसंघा च अदेन्ति भेरवा,
भय हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देव सारथि ॥३४॥

इमे नु मच्चा किमकसु पाप
यथिम जनं काकोळा अदेन्ति ॥३५॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाक पापकम्मान जान अक्खास जानतो ॥३६॥
ये केचिमे मच्छरिनो कदरिया
परिभासका समणब्राह्मणान,
हिंसेन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
तथिम जन काकोळा अदेन्ति ॥३७॥

[लाल-वर्ण तथा चितकबरे कुत्ते, गीध और भयानक कुत्ते (आदमियो को) खा रहे हैं। हे सारथि ! इन्हें देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ, इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है जिससे ये कौवे इन्हें खा रहे हैं ॥३५॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ॥३६॥ जो भी कजूस, बुरी नियत वाले, पापी, श्रमण-ब्राह्मणों का मजाक करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं, वे रौद्र-कर्म करने वाले पाप-कर्म के पकने पर इसी प्रकार कुत्तो द्वारा खाये जाते हैं ॥३७॥]

अगले प्रश्नो का समाधान भी इसी प्रकार है—

सजोतिभूता पठवि कमन्ति
तत्तेहि खन्धेहि च पोथयन्ति,
भय हि म विन्दति सुत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देव सारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पाप
ये मे जना खन्धहता सयन्ति ॥३८॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मानं जान अक्खास जानतो ॥३९॥
ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो
नरञ्च नारिञ्च अपापधम्म,

हिंसन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पाप
ते मे जना खन्धहता सयन्ति ॥४०॥

[जलते हुए शरीर से (तप्त) पृथ्वी पर चलते है और जलते तनो से पीटे जाते है। हे सारथि ! इन्हे देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ, इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे यह जलते हुए तनो से पीटे गये पडे है ॥३८॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ॥३९॥ जीव लोक मे जो पापी सदाचारी पुरुष अथवा स्त्री को कष्ट देते है, वे रौद्र-कर्म करनेवाले (ये) पाप-कर्म के पकने पर जलते हुए तनों से पीटे गये (गिर) पडे है ॥४०॥]

अङ्गारकासु अपरे थुनन्ति
नरा रुदन्ता परिदड्ढगत्ता,
भय हि मं विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना अगार थुनन्ति ॥४१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव सारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खास जानतो ॥४२॥
ये केचि पूगायतनस्स हेतु
सक्खि करित्वा इण जापयन्ति,
ते जापयित्वा जनत जनिन्द
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप,
ते मे जना अगारकासु थुनन्ति ॥४३॥

[ये दूसरे आदमी अङ्गारों के गढो में पडे हुए, जलते शरीरो के कारण रोते हुए तडपते है। हे सारथि ! इन्हे देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हू, इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे ये अङ्गारो में पडे तड-

पते हैं ।।४१।। तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ।।४२।। जो पूग के वन को (झूठे) साक्षी की मदद से नष्टकर डालते हैं, हे जनिन्द ! वे जनता को धोखा देते हैं। वे (ऐसे) रौद्रकर्म करने वाले पाप-कर्म के पकने पर अङ्गार के गढो मे तडपते हैं ।।४३।।]

सजोतिभूता जलिता पदित्ता
पदिस्सति महती लोहकुम्भी,
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देव सारथि
इमे तु मच्चा किमकंसु पाप
ये मे जना अवसिरा लोह कुम्भिं पतन्ति ।।४४।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मान जान अवखास जानतो ।।४५।।
ये सीलव समण ब्राह्मण वा
हिंसन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मिनो,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
ते मे जना अवसिरा लोहकुम्भि पतन्ति ।।४६।।

[जलती हुई, प्रदीप्त, लोहे की बडी कुम्भी दिखाई देती है। हे सारथि ! इन्हे है। हे देवसारथि ! मै तुझे पूछता हूँ सिर नीचे पैर ऊपर लोह-कुम्भी मे तडपते हैं ।।४४।। तब उस जानकार देव-सारथि मातलिने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ।।४५।। जो पापी किसी सदाचारी श्रमण अथवा ब्राह्मण को कष्ट देते हैं, तकलीफ देते हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले पाप-कर्म के पकने पर सिर नीचे, पैर ऊपर हो लोह-कुम्भी नरक में गिरते हैं ।।४६।।]

लुञ्चेन्ति गीव अथ वेठयित्वा
उण्होदकस्मिं पकिलेदयित्वा,
भय हि य विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि त मातलि देव सारथि

इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना लुत्तसिरा सयन्ति ।।४७।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मान जान अक्खास जानतो ।।४८।।
ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो
पक्खी गहेत्वान विहेठयन्ति
ते हेठयित्वा जनत जनिन्द
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
ते मे जना लुत्तसिरा सयन्ति ।।४९।।

[ऊष्ण रक्त में भिगोकर, गरदन को मरोडकर नोचते है । हे सारथि ! इन्हें है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ सिर कटे पडे हैं ।।४७।। तब उस जानकार फल कहा ।।४८।। जीव लोक मे जो पापी पक्षियो को पकडकर मरोडते है, वे हे राजन् ! जनता को कष्ट देते हैं । वे रौद्र-कर्मकरनेवाले पाप-कर्म के पकने पर सिर कटकर पडे रहते है ।।४९।।]

पहूत तोया अनिखातकूला
नदी अयं सन्दति सूपतित्था,
घम्माभितत्ता मनुजा पिवन्ति
पिवतञ्च तेसं भुसं होति पाणि ।।५०।।
भय हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किम कंसु पाप
पिवतञ्च तेस भुस होति पाणि ।।५१।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मानं जान अक्खास जानतो ।।५२।।
ये सुद्ध धम्मं पलापेन मिस्स
असुद्धकम्मा कथिनो ददन्ति,

घम्माभितत्तास पिपासितान
पिवतञ्च तेस भुस होति पाणि ॥५३॥

[यह भरपूर जलवली, विना गहरे किनारोवाली, सुन्दर तीर्थवाली नदी वहती है । घाम से तप्त आदमी पानी पीते हैं । पीने से उनकी प्यास और भी बढ जाती है ॥५०॥ हे सारथि ! इन्हे   है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ   प्यास और भी बढ जाती है ॥५१॥ तब उस जानकार   फल कहा ॥५२॥ जो पापी धान में भुस मिलाकर ग्राहको को देते हैं, वे घाम से अभितप्त होकर प्यास के मारे पानी पीते हैं । पीने से उनकी प्यास और भी बढ जाती है ॥५३॥]

उसूहि सत्तीहि च तोमरेहि
दुभयानि पस्सानि तुदन्ति कन्दत,
भय हि म विन्दति सुत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना सत्तिहता सयन्ति ॥५४॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि
विपाक पापकम्मान जान अक्खासि जानतो ॥५५॥
ये जीवलोकस्मि असाधुकम्मिनो
अदिन्नमादाय करोन्ति जीविक,
धञ्ञ धन रजत जातरूप
अजेलक चापि पसु महीस
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
ते मे जना सत्तिहता सयन्ति ॥५६॥

[वाणो से, शक्ति से तथा भालो से दोनो ओर छेदे जाते हुए क्रन्दन करते हैं । हे सारथि ! इन्हें   । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये शक्ति के मारे पडे हैं ॥५४॥ तब उस जान-कार   फल कहा ॥५५॥ इस जीव लोक में जो पापी धान्य, धन, चान्दी,

सोना, वकरी, भेड और भैंस आदि की चोरी अथवा ठगी से अपनी जीविका चलाते हैं, उन रौद्र-कर्म करनेवालो का जब पाप-कर्म पकता है तो वे शक्ति के मारे (गिर) पडते है ॥५६॥]

गीवाय वद्धा किस्स इमे पुनेके
अञ्ञे विकता बिलकता पुनेके,
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना विलकता सयन्ति ॥५७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खासजानतो ॥५८॥
ओरब्भिका सूकरिका च मच्छिका
पसु महिसञ्च अजेलकञ्च,
हन्त्वान सूनेसु पसारयिसु
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
तेमे जना विलकता सयन्ति ॥५७॥

[ये कुछ लोग किस कारण से गरदन से बधे है, दूसरे क्यो टुकडे-टुकडे हुए पडे हैं और ये कुछ क्यो ढेरी हुए पडे है ? हे सारथि ! इन्हें है। हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये ढेरी हुए पडे है ? ॥५७॥ तब उस जानकार फल कहा ॥५८॥ भेड मारनेवाले, सूअर मारनेवाले, मछली मारनेवाले, बकरी-भेड और भैंस मारनेवाले जब इन पशुओ को मारकर उनका माँस बेचने के लिये दुकानो पर फैलाते है, तो इन रुद्र-कर्म करनेवालो के पाप-कर्म पकने पर वे ढेर होकर गिर पडते है ॥५९॥]

रहदो अय मुत्तकरीस पूरो
दुग्गन्धरूपो असुचि पूति वायति,
खुधापरेता मनुजा अदेन्ति
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा

पच्छामि त मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना मुत्तकरीसभक्खा ॥६०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खास जानतो ॥६१॥
ये केचिमे कारणिका विरोसका
परेस हिसाय सदा निविट्ठा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
मित्तद्दुनो मीळ्हमदेन्ति बाला ॥६२॥

[यह पेशाव-पाखाने से भरा तालाव है, दुर्गन्ध पूर्ण है, खराव गन्ध आती है। इसे भूख से पीडित मनुष्य खाते है। हे सारथि ! इन्हे है। हे देव-सारथि ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है कि यह पेशाव-पाखाना खाते हैं ॥६३॥ तव उस जानकार फल कहा ॥६४॥ ये जो शिकारी (?) विरोधी है, सदा दूसरो की हिसा करने मे ही रत है, वे रौद्र-कर्म करनेवाले, मित्र-द्रोही पाप के पकने पर गन्दगी खाते हैं ॥६५॥]

रहदो अय लोहितपुब्बपूरो
दुग्गन्धरूपो असुचि पूति वायति,
घम्माभितत्ता मनुजा पिवन्ति
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देव-सारथि
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना लोहितपुब्बभक्खा ॥६६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि
विपाक पापकम्मान जान अक्खास जानतो ॥६७॥
ये मातर पितर वा जीव लोके
पाराजिका अरहन्ते हनन्ति,

ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
ते मे जना लोहितपुब्बभक्खा ॥६८॥

[यह रक्त और पीप से भरा हुआ ताल।व है, दुर्गन्ध-पूर्ण है, खराव गन्ध आती है। इसे घाम से तपे हुए आदमी पीते हैं। हे सारथि! इन्हे है। हे देवसारथि! मै तुझे पूछता हूँ कि इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये रक्त और पीप खाते हैं ॥६६॥ तव उस जानकार फल कहा ॥६७॥ इस जीव-लोक मे जो माता पिता अथवा अरहतो को मारकर पाराजिका को प्राप्त होते हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले पाप के पकने पर रक्त-पीप पीनेवाले होते हैं ॥६८॥]

दूसरे उस्सद नरक मे भी नरकपाल नारकियो की ताड जितने वडे जलते हुए लोहे के हुक से जिह्वा छेद, खींच, उठ प्राणियो को जलती हुई लोहे की पृथ्वी पर गिरा, बैल के चमडे की तरफ फैला सौ जजीरो से पीटते हैं। वे स्थल पर पडी मछली की तरह तडपते हैं। उस दु ख को न सह सकने के कारण मुख से फेन गिराते हैं। मातलि ने जव यह दिखाया, तो राजा बोला—

जिव्हञ्च पस्स बलिसेन विद्ध
विहत यथा सकुसतेन चम्म,
फन्दन्ति मच्छाव थलम्हि खित्ता
मुञ्चन्ति खेलं रुदमाना किमेते ॥६९॥
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना वकघस्ता सयन्ति ॥७०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव सारथि
विपाकं पापकम्मान जानं अक्खास जानतो ॥७१॥
ये केचि सन्थानगता मनुस्सा
अग्घेन अग्घ कय हापयन्ति,
कूटेन कूट घन लोभहेतु
छन्न यथा वारिचर वधाय ॥७२॥

न हि कुटकारिस्स भवन्ति ताणा
सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्स,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना वंकघस्ता सयन्ति ।।७३।।

[हुक से छिदी जिह्वा और सौ जजीरो से पीटा गया जैसा चमडा देखा और स्थल पर फेंकी हुई मछलियो के समान तडपते तथा रोते हुए मुँह से फेन फेंकते देखा। हे सारथि ! इन्हे हैं। हे देवसारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगो ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये हुक से छेदे गये है ? ।।७०।। तव उस जानकार फल कहा ।।७१।। लोग क्रय-विक्रय के स्थान पर जाकर, कीमत दर कीमत से क्रय करने वालो को हानि पहुचाते हैं, धन के लोभ से तराजू की डण्डी मारना आदि कूट-कर्म करते हैं और उसे वैसे छिपाते हैं जैसे मछली मारनेवाले मछली पकडने के काटे को। कूट-कर्म करनेवाले को त्राण नही मिलता। वह अपने कर्म से ही पुरस्कृत होता है। वे रौद्र-कर्म करनेवाले लोग पाप-कर्म के पकनेपर हुक से छेदे जाते हैं।।७२-७३।।

नरिया इमा सम्परिभिन्नगत्ता
पग्गय्ह कन्दन्ति भुजो वुजच्चा,
सम्मक्खिता लोहितपुब्बलित्ता
गावो यथा आघातने विकत्ता,
ता भूमि भागस्मि सदा निखाता
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभुता ।।७४।।
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातली देवसारथि,
इमा नु नरियो किमकसु पाय
या भूमिभागस्मिसदा निखाता
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभूता ।।७४।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खासजानतो ।।७५।।

कोलिनियायो इध जीवलोके
असुद्धकम्मा असत अचारु
ता दित्तरूपा पतिविप्पहाय
अञ्ञ अचारं रतिखिड्डहेतु
ता जीवलोकस्मिं रमापयित्वा
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभूता ॥७६॥

[ये भली प्रकार ढकी घृणित स्त्रियाँ बाहें उठाकर रोती है—चारो ओर से रक्त और पीप से ढकी हुई, वध-स्थल पर कटी हुई गौओ के समान । उस प्रदेश मे गडी हुई वे ज्वलन्त पर्वतो द्वारा पीसी जाती है ॥७४॥ हे सारथि । इन्हे है । हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन नारियो ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये इस प्रदेश में गडी हुई है और ज्वलन्त पर्वतो द्वारा पीसी जाती है ॥७४॥ तव उस जानकार . फल कहा ॥७५॥ इस जीवलोक में जो कुलाङ्गनाये असयत-कर्म करती है, शठ-रूपा रति-क्रीडा के लिये अपने पति को छोड दूसरे के पास जाती है, वे पर-पुरुष के साथ अपने चित्त को रमाकर, ज्वलन्त पर्वतो द्वारा पीसी जाती है ॥७६॥]

पादे गहेत्वा किस्स इमे पुनुके
अवंसिरा नरके पातयन्ति,
भयं हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथी,
इमे नु मच्चा किमकसु पाप
ये मे जना अवसिरा नरके पातयन्ति ॥७७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पापकम्मान जान अक्खासजानतो ॥७८॥
य जीवलोकस्मि असाधुकम्मिनो
परस्सदारानि अतिक्कमन्ति,
ते तादिसा उत्तमभण्डथेना
ते मे जना अवसिरा नरके पातयन्ति ॥७९॥

ते वस्सपूगानि बहूनि तत्थ
निरये दुक्ख वेदन वेदयन्ति,
न हि पापकारिस्स भवन्ति ताणा,
सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्स
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
तेमे जना अवसिरा नरके पातयन्ति ॥८०॥

[ये नरकपाल किनके पाँवो को पकडकर सिर नीचे पैर ऊपर करके गिराते है। हे सारथि ! इन्हे   है। हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन्होने क्या पाप-कर्म किया है कि इन्हे (नरक-पाल) सिर नीचे, पैर ऊपर करके गिराते है ॥७७॥ तब उस जानकार   फल कहा ॥७८॥ इस जीव-लोक में जो असत्पुरुष दूसरो की स्त्रियों का अतिक्रमण करते है, वे दूसरो की प्रिय-वस्तु चुरानेवाले नरक में गिराये जाते है ॥७९॥ वे अनेक वर्ष तक वहाँ नरक में दु ख भोगते है। पाप-कर्म करनेवाले को त्राण नही मिलता। वह अपने कर्म से ही पुरस्कृत होता है। वे रौद्र-कर्म करनेवाले लोग पाप-कर्म के पकने पर सिर नीचे, पैर ऊपर करके नरक में गिराये जाते है। ॥८०॥]

यह कह सर्व-सग्राहक मातलि ने उस नरक का भी लोपकर, रथ को आगे ले जा मिथ्या-दृष्टियो के जलने का नरक दिखाया—

उच्चावचा मे विविधा उपक्कमा
निरयेसु दिस्सन्ति सुघोररूपा,
भय हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
येमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा
खरा कटुका वेदना वेदियन्ति ॥८१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासि जानतो ॥८२॥

ये जीवलोकस्मि सुपापदिट्ठिनो
विस्सासकम्मानि करोन्ति मोहा,
परंच दिट्ठिसु समादपेन्ति
ते पापदिट्ठि पसवेत्वा पाप
तेमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा
खरा कटुका वेदना वेदियन्ति ।।८३।।

[नरक मे मुझे छोटे बडे नाना प्रकार के भयानक उपक्रम दिखाई देते है । हे सारथि ! इन्हे है । हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन्होने क्या पाप-कर्म किया है कि ये लोग इतनी अधिक मात्रा मे तीव्र, कठोर, कटु वेदनाओ का अनुभव करते है ? ।।८१।। तब उस जानकार फल कहा ।।८२।। इस जीव लोक मे जो मिथ्या-दृष्टिवाले, उस दृष्टि मे विश्वास के कारण, मोहग्रस्त होने से पाप करते हैं, वे ही जन इतनी अधिक मात्रा में तीव्र, कठोर, कटु वेदनाओ का अनुभव करते हैं ।।८३।।]

मातली ने राजा को मिथ्या-दृष्टियो के पकने का नरक दिखाया । देवलोक मे भी देवता राजा के आने की प्रतीक्षा करते हुए सुधर्मा मे इकट्ठे हुए । शक्र सोचने लगा कि मातली देर क्यो कर रहा है ? उसने जाना कि मातली अपनी विशेषता प्रकट करने के लिये 'महाराज ! अमुक काम करके आदमी अमुक नरक मे जलता है दिखाता घूम रहा है । उसने सोचा कि निमि राजा की आयु ही समाप्त हो जा सकती है और नरको का अन्त नही हो सकता । तब उसने एक शीघ्रगामी दूत को बुलाकर कहा कि मातली को जाकर कहो कि राजा को शीघ्र लेकर आये । मातल ने उसकी बात सुन सोचा, अब देर नहीं की जा सकती । उसने एक ही बार मे राजा को चारों ओर के बहुत से नरक दिखाकर गाथा कही—

विदितानि ते महाराज आवास पापकम्मिन,
ठानानि लुद्दकम्मान दुस्सीलानञ्च या गति,
उय्याहिदानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके ।।८४।।

[महाराज ! आपने पापियो के निवास-स्थान जान लिये और रौद्र-कर्म करने

वालो के स्थान भी तथा दुश्शीलो की जो दुर्गति होती है, वह भी जान ली। हे राजन्! अब देव-राज के पास चले ॥८४॥)

नरक-काण्ड समाप्त

यह कह मातलि ने देव-लोक की ओर रथ का मुह मोडा। राजा ने देव-लोक जाते समय वीरणि नामकी देव-कन्या का आकाश-स्थित विमान देखा, जो बारह योजन का था, जिसके स्तम्भ मणिमय-कचन निर्मित थे, जो सब अलकारो से मण्डित था, जो उद्यान तथा पुष्करिणियो से युक्त था तथा जो कल्प-वृक्षो से घिरा था। उसने उस देव-कन्या को भी देखा जो कूटागार के भीतर शैया पर सहस्रो अप्सराओ से घिरी बैठी थी और मणिमय-झरोखे को खोलकर बाहर झाक रही थी। उसने मातलि से प्रश्न करते हुए गाथा कही—

पञ्चथूप दिस्सतिद विमान
मालापिलन्धा सयनस्स मज्झे,
तत्थच्छति नारी महानुभावा
उच्चावच इद्धि विकुब्बमाना ॥८५॥
वित्ति हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
अय नु नारी किमकासि साधु
या मोदति सग्गपत्ता विमाने ॥८६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जानं अक्खासजानतो ॥८७॥
यदि ते सुता बीरणी जीवलोके
आमाय दासी अहु ब्राह्मणस्स,
सा पत्तकाल अतिथि विदित्वा
माताव पुत्त सकिमाभिनन्दि ॥८८॥
सयमा सविभागा च,
सा विमानस्मि मोदति ॥८९॥

[यहाँ यह विमान दिखाई देता है, जिसके पाँच शिखर हैं, जो मालाओ से अलकृत है और जहा शैय्या पर वह महाप्रतापी नारी नाना प्रकार की देव-नारियो को प्रकट करती हुई बैठी है ।।८५।। हे सारथी ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देवसारथी ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस नारी ने क्या पुण्य-कर्म किया है, जो स्वर्ग में विमान-सुख भोग रही है ।।८६।। तब उस जानकार देव-सारथी मातलि ने उस अजानकार को पुण्य-कर्मों का फल कहा ।।८७।। इस जीव-लोक में यदि तुमने सुना हो, तो ब्राह्मण की वीरणी (?) नामकी गृह-दासी थी। उसने अतिथियो का आगमन-समय जान उनका वैसे ही आदर किया, जैसे माता पुत्र का करती है। अपने सयम और त्याग के प्रताप से ही वह विमान मे आनन्द मनाती है ।।८९।।]

यह कह मातली ने रथ को आगेकर सोण-दिन्न देव-पुत्र के सात स्वर्ण-विमान दिखाये। उसने उन्हें और उसकी श्री-सम्पत्ति देख, उसके द्वारा किये गये कर्म के बारे में पूछा। मातलि ने उत्तर दिया—

दद्दल्लमाना आभेन्ति विमाना सत्तनिम्मिका
तत्थ यक्खो महिद्धिको सब्बाभरणभूसितो
समन्ता अनुपरियाति नारीगणपुरक्खतो ॥८८॥
वित्ति हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
अय नु मच्चो किमकासि साधु
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ॥८९॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाकं पुञ्ञकम्मान जानं अक्खासि जानतो ॥९०॥
सोणदिन्नो गहपति एसदानपति अहू
एस पब्बजितुद्दिस्स विहारे सत्त कारयि ॥९१॥
सक्कच्चं ते उपट्ठासि भिक्खवो तत्थ वासिके,
अच्छादनञ्च भत्तञ्च सेनासनपदीपियं
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥९२॥

चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठङ्गसुसमागतं ॥९३॥
उपोसथञ्च उपवसी सदा सीलेसु संवुतो
संयमो संविभागो च सो विमानस्मिं मोदति ॥९४॥

[प्रज्वलित चमकते हुए सात विमान हैं। वहाँ सभी आभरणों से विभूषित महाप्रतापी यक्ष, नारी-समूह के साथ चारों ओर घूमता है ॥८८॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द होता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है, जो यह स्वर्ग में विमान-सुख भोग रहा है ? ॥८९॥ तब उस जानकार फल कहा ॥९०॥ यह सोण-दिन्न गृहपति दानी था। इसने प्रव्रजितों के लिये सात विहार बनवाये। इसने वहाँ रहनेवाले भिक्षुओं की अच्छी तरह सेवा की। इसने प्रसन्न-चित्त से ऋजु-चरित्रों को वस्त्र, भोजन, शयन-आसन तथा प्रदीप-सामग्री का दान दिया चतुर्दशी, पंचदशी और अष्टमी तथा सप्तमी-नवमी आदि को भी अष्टांग उपोसथ-व्रतका पालन किया। इसने शील तथा संयम के साथ सदा उपोसथ-व्रत का पालन किया है। अपने संयम तथा त्याग के प्रताप से ही वह विमान में आनन्द मनाता है ॥९१-९४॥]

इस प्रकार सोण-दिन्न का कर्म कह मातलि ने रथ को आगे बढ़ा स्फटिक-विमान दिखाया। वह विमान ऊंचाई में पच्चीस योजन था, अनेक सौ रक्त रत्नमय स्तम्भों से युक्त था, अनेक सौ शिखरों से युक्त था, छोटी छोटी घंटियों के जाल से घिरा था, स्वर्ण-रजतमय ध्वजायें लहलहा रही थीं, नाना प्रकार के पुष्पों, विचित्र उद्यानों तथा वन-भूमि से विभूषित था, रमणीय पुष्करिणियों से युक्त था और वहाँ गीत-वाद्य में यक्ष अप्सरायें भरी पड़ी थीं। यह देख राजा ने उन अप्सराओं का पूर्व-कर्म पूछा। मातलि ने भी बताया—

पभासति इदं ब्यम्हं फलिकासु सुनिम्मितं,
नारीवरगणाकिण्णं कूटागारवरोचितं,
उपेतं अन्नपानेहि नच्चगीतेहि चूभयं ॥९५॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा

प्रच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमा नु नारियो किमकंसु साधुं
या मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥९६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाक पुञ्ञकम्मान जानं अक्खासि जानतो ॥९७॥
या काचि नारियो इध जीवलोके
सीलवतियो उपासिका,
दानेरता निच्च पसन्नचित्तो
सच्चे ठिता उपासये अप्पमत्तो
सयमा सविभागा च ता विमानस्मि मोदरे ॥९८॥

[यह स्फटिक-निर्मित विमान चमकता है, जो नारियो के समूह से आकीर्ण है और शिखरो से सुशोभित है तथा जो अन्नपान और नृत्य-गीतादि से युक्त है ॥९५॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव.-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन नारियो ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि जिसके प्रताप से यह स्वर्ग मे आनन्द मनाती है ॥९६॥ तब उस जानकार फल कहा ॥९७॥ इस जीवलोक मे जितनी भी नारियाँ शीलवान् उपासिकाये है, दान मे रत है, नित्य प्रसन्न रहनेवाली है, सत्य में स्थित है, उपोसथ-व्रत में अप्रमादी है, सयमी है तथा त्याग मे रुचि रखती है—वे सब विमान मे आनन्द मना रही है ॥९८॥]

उसने रथ को आगे बढा एक मणिमय विमान दिखाया। वह समभूमि पर खडा करने पर मणिपर्वत की तरह ऊचा होता था । दिव्य-गीत-वादित युक्त बहुत से देव-पुत्रो को देख राजा ने उन देव-पुत्रो का किया कर्म पूछा । मातलि ने कहा—

पभासति इद ब्यम्हं वेलुरियासु सुनिम्मित,
उपेत भूमिभागेहि विभत्तं भागसोमितं ॥९९॥
आलम्बरा मुतिगाच नच्चगीता सुवादिता,
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति सवणेय्य मनोरमा ॥१००॥

नाह एव गतं जातु एव सुरुचिर पुरे
सद्द समभिजानामि दिट्ठं वा यदि वा सुत ॥१०१॥
वित्ति हि म विन्दति सूतदिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु साधु
ये मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥१०२॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खासि जानतो ॥१०३॥
ये केचि मच्चा इध जीवलोके सीलवन्तो उपासका,
आरामउदपाने च पपा सकमनानि च ॥१०४॥
अरहन्ते सीतिभूते सकच्च पटिपादयुं,
चीवर पिण्डपातञ्च पच्चय सयनासनं,
अदसु उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१०५॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठगसुसमागत ॥१०६॥
उपोसथ उपवसुं सदासीलेसु सवुता,
सञ्ञमा सविभागा च ते विमानस्मि मोदरे ॥१०७॥

[यह बिल्लौर का बना विमान चमक रहा है, यह रमणीय भूमि से युक्त है और भलि प्रकार विभक्त है ॥९९॥ आलम्बर तथा मृदङ्ग का शब्द, सुवादित नृत्य-गीत और सुन्दर सुनने योग्य, दिव्य शब्दो की ध्वनि आती है ॥१००॥ मैं निश्चय से नही जानता कि मैने कभी इस प्रकार के सुन्दर नगर में इस प्रकार का मनोरम शब्द सुना हो ॥१०१॥ हे सारथि! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि! मैं तुझसे पूछता हूँ कि इन आदमियो ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि ये स्वर्ग के विमान में आनन्द मनाते हैं ॥१०२॥ तब उस जानकर फल कहा ॥१०३॥ इस जीवलोक मे जिन शीलवान् उपासको ने शान्त-चित्त अरहतो की भलि प्रकार सेवा की, जिन्होंने उनके लिए आराम, जलाशय, प्याऊ और चक्रमण-स्थान बनवाये, जिन्होंने प्रसन्न-चित्त हो चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयना-

पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमा नु नारियो किमकसु साधु
या मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥९६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खास जानतो ॥९७॥
या काचि नारियो इध जीवलोके
सीलवतियो उपासिका,
दानेरता निच्च पसन्नचित्ता
सच्चे ठिता उपोसथे अप्पमत्ता
सयमा सविभागा च ता विमानस्मि मोदरे ॥९८॥

[यह स्फटिक-निर्मित विमान चमकता है, जो नारियो के समूह से आकीर्ण है और शिखरो से सुशोभित है तथा जो अन्नपान और नृत्य-गीतादि से युक्त है ॥९५॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मै तुझे पूछता हूँ कि इन नारियो ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि जिसके प्रताप से यह स्वर्ग मे आनन्द मनाती हैं ॥९६॥ तव उस जानकार फल कहा ॥९७॥ इस जीवलोक मे जितनी भी नारियाँ शीलवान् उपासिकाये हैं, दान मे रत हैं, नित्य प्रसन्न रहनेवाली हैं, सत्य में स्थित है, उपोसथ-व्रत में अप्रमादी है, सयमी है तथा त्याग मे रुचि रखती है—वे सब विमान मे आनन्द मना रही हैं ॥९८॥]

उसने रथ को आगे बढा एक मणिमय विमान दिखाया। वह समभूमि पर खडा करने पर मणिपर्वत की तरह ऊचा होता था । दिव्य-गीत-वादित युक्त बहुत से देव-पुत्रो को देख राजा ने उन देव-पुत्रो का किया कर्म पूछा । मातलि ने कहा—

पभासति इद ब्याम्हं वेलुरियासु सुनिम्मितं,
उपेत भूमिभागेहि विभत्तं भागसोमितं ॥९९॥
आलम्बरा मुतिगांच नच्चगीता सुवादिता,
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति सवणेय्य मनोरमा ॥१००॥

नाहं एव गत जातु एव सुरुचिर पुरे
सद्दं समभिजानामि दिट्ठ वा यदि वा सुत ॥१०१॥
वित्ति हि म विन्दति सूतदिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु साधु
ये मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥१०२॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खास जानतो ॥१०३॥
ये केचि मच्चा इध जीवलोके सीलवन्तो उपासका,
आरामउदपाने च पपा सकमनानि च ॥१०४॥
अरहन्ते सीतिभूते सकच्च पटिपादयुं,
चीवर पिण्डपातञ्च पच्चय सयनासनं,
अदसु उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१०५॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठगसुसमागत ॥१०६॥
उपोसथ उपवसुं सदासीलेसु सवुता,
सञ्ञमा सविभागा च ते विमानस्मि मोदरे ॥१०७॥

[यह बिल्लौर का बना विमान चमक रहा है, यह रमणीय भूमि से युक्त है और भलि प्रकार विभक्त है ॥९९॥ आलम्बर तथा मृदङ्ग का शब्द, सुवादित नृत्य-गीत और सुन्दर सुनने योग्य, दिव्य शब्दो की ध्वनि आती है ॥१००॥ मैं निश्चय से नही जानता कि मैंने कभी इस प्रकार के सुन्दर नगर में इस प्रकार का मनोरम शब्द सुना हो ॥१०१॥ हे सारथि! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि! मै तुझे पूछता हूँ कि इन आदमियो ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि ये स्वर्ग के विमान में आनन्द मनाते है ॥१०२॥ तब उस जानकर फल कहा ॥१०३॥ इस जीवलोक मे जिन शीलवान् उपासको ने शान्त-चित्त अरहतो की भलि प्रकार सेवा की, जिन्होने उनके लिए आराम, जलाशय, प्याऊ और चक्रमण-स्थान बनवाये, जिन्होने प्रसन्न-चित्त हो चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयना-

तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मान नान अक्खासजानतो ॥१२२॥
मिथिलायं गहपति एस दानपतो अहू,
आरामे उदपाने च पपा सकमनानिच ॥१२३॥
अरहन्ते सोतभूते सकच्च पटिपादयि,
चोवर पिण्डपातञ्ञ पच्चय सयनासन.
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१२४॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं यावपक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारिय पक्खञ्च अट्ठंगसुसमागत ॥१२५॥
उपोसथञ्चुपवसि सोलेसु सवुतो
सयमो सविभागो च सो विमानास्मि मोदति ॥१२६॥

[यह स्फटिक का बना विमान चमक रहा है, नारि-गण से घिरा हुआ, शिखरो से सजा हुआ तथा अन्न-पान से युक्त और नृत्य तथा गीत से भी समन्वित । नाना प्रकार पुष्प-द्रुमो वाली नदियाँ भी बहती है ॥११८-११९॥ राजायतन, कैथ, आम्र, शाल, जामुन, तिन्दुक (?) पियाल तथा और भी नित्य फल देनेवाले बहुत से वृक्ष है ॥१२०॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ग के विमान मे आनन्द मना रहा है ॥१२१॥ तब उस जानकार फल कहा ॥१२२॥ यह गृहस्थ मिथिला नगरी मे दानपति था । इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त चित्त अरहतो की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ तथा चन्क्रमण-स्थान बनवाये, इसने चीवर, पिण्ड-पात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये, इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टाग-शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये । यह अपने सयम तथा त्याग के कारण विमान मे आनन्द मना रहा है ॥१२३-१२६॥]

इस प्रकार उसका भी कर्म कह रथ को आगे बढाया । फिर पहले जैसा ही एक दूसरा स्फटिक विमान दिखाया । राजा ने उस विमान के देव-पुत्र का कर्म पूछा । मातली ने कहा—

पभासति इद ब्याम्ह वेलुरियासु निम्मित,
उपेत भूमिभागेहि विभत्तं भागसीमित ॥१२७॥
आलम्बरा मुतिङ्गा च नच्चगीता सुवादिता,
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति सवणेय्या मनोरमा ॥१२८॥
नाह एव गत जातु एव सुरुचिर पुरे,
सद्द समभिजानामि दिट्ठ वा यदि वा सुत ॥१२९॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि
अय नु मच्चो किमकासि साधु
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ॥१३०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खासजानतो ॥१३१॥
वाराणसिय गहपति एस दानपती अहू,
आरामे उदपाने च पपा सकमनानि च ॥१३२॥
अरहन्ते सीतिभूते सकच्च पटिपादयि,
चीवर पिण्डपातञ्च पच्चय सयनासन,
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१३३॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठंगसुसमागत ॥१३४॥
उपोसथ उपवसी सदा सीलेसु सवुतो,
सयमो सविभागा च सो विमानस्मि मोदति ॥१३५॥

[यह बिल्लौर का बना विमान चमक रहा है, यह रमणीय भूमि से युक्त है और भलि प्रकार विभक्त है ॥१२७॥ आलम्बर तथा मृदङ्ग का शब्द, सुवादित नृत्य-गीत और सुन्दर सुनने योग्य दिव्य शब्दो की ध्वनि आती है ॥१२८॥ मैं निश्चय से नही जानता कि मैंने कभी इस प्रकार के सुन्दर नगर में इस प्रकार का मनोरम शब्द सुना हो ॥१२९॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह

स्वर्ग के विमान मे आनन्द ले रहा है ॥१३०॥ तव उस जानकार. . .फल कहा ॥१३१॥ यह गृहस्थ वाराणसी मे दानपति था। इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त-चित्त अरहतो की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ, तथा चन्क्रमण-स्थान वनवाये। इसने चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये। इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टाग-शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये। यह अपने सयम तथा त्याग के कारण विमान मे आनन्द मना रहा है ॥१३२-१३५॥]

तव रथ को आगे वढा वाल-सूर्य के समान चमकनेवाले स्वर्ण-विमान को दिखा-कर, वहाँ रहनेवाले देव-पुत्र की सम्पत्ति (के वारे मे) पूछने पर कहा—

यथा उदयमादिच्चो होति लोहितको महा,
तथूपम इदं व्यम्हं जातरूपस्स निम्मित ॥१३६॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
अय नु मच्चो किमकासि साधु
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ॥१३७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खासजानतो ॥१३८॥
सावत्थिय गहपति एस दानपतो अहू,
आरामे उदपाने च पपा सकमनानिच ॥१३९॥
अरहन्ते सीतिभूते सकच्च पटिपादयि,
चीवरं पिण्डपातञ्च पच्चय सयनासन,
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१४०॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं यावपक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारिय पक्खञ्च अट्ठगसुसमागतं ॥१४१॥
उपोसथं उपवसी सदा सीलेसु सवुतो,
सयमो संविभागो च यो विमानस्मि मोदति ॥१४२॥

[जिस प्रकार बाल-सूर्य्य अति रक्त-वर्ण होता है, उसी प्रकार का यह स्वर्ग-निर्मित विमान है ॥१३६॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ग के विमान में आनन्द ले रहा है ॥१३७॥ तब उस जानकार फल कहा ॥१३८॥ यह गृहस्थ श्रावस्ती में दानपति था। इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त-चित्त अरहतो की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ तथा चन्क्रमण-स्थान बनवाये, इसने चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये, इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टाग-शील ग्रहण करके उपासथ-व्रत किये। यह अपने सयम तथा त्याग के कारण विमान मे आनन्द मना रहा है ॥१३९-१४२॥]

इस प्रकार जब उसने आठ विमानो का वर्णन किया, तो देवेन्द्र शक्र को लगा कि मातली बहुत विलम्ब कर रहा है। उसने एक दूसरा शीघ्रगामी देव-पुत्र भेजा। उसने उसकी बात सुनी तो समझा कि अब अधिक विलब नही किया जा सकता। उसने एक बार ही बहुत से विमान दिखाये। जो वहाँ की सम्पत्ति का आनन्द ले रहे थे, उनके बारे में राजा द्वारा पूछे जाने पर कहा—

वेहासयामे बहुका जातरूपस्स निम्मिता,
दद्दल्लमाना आभेन्ति विज्जुवब्भघनन्तरे ॥१४३॥
वित्ति हि म विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकसु साधु
ये मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥१४४॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥१४५॥
सद्धाय सुनिविट्ठाय सद्धम्मे सुप्पवेदिते,
अकसु सत्थु वचन सम्मासम्बुद्धसासन
तेस एतानि ठानानि यानि त्व राज पस्ससि ॥१४६॥

[ये बहुत से आकाश-स्थित विमान हैं, जो स्वर्ण-निर्मित हैं और जो बादलों मे चमकने वाली बिजली के समान चमक रहे हैं ।।१४३।। हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ण-विमान मे आनन्द ले रहा है ।।१४४।। तब उस जानकार फल कहा ।।१४५।। हे राजन् ये स्थान जो तुम देखते हो उन लोगो के हैं जिन्होंने भलि प्रकार स्पष्ट किये गये बुद्ध धर्म मे स्थिर श्रद्धा रखकर सम्यक-सम्बुद्ध शास्ता के वचन का पालन किया है ।।१४६।।]

इस प्रकार उसे आकाश-स्थित विमान दिखाकर शक्र के पास चलने के लिये उत्साहित करते हुए कहा—

विदितानि ते महाराज आवासं पापकम्मिन,
अथो कल्यान कम्मान ठानानि विदितानि ते,
उय्याहदानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके ।।१४७।।

[हे महाराज ! तूने पापियो के निवास देख लिये हैं, और तूने शुभ-कर्म करने वालो के भी निवास-स्थान देख लिये हैं । हे राजर्षि ! अब तू देवेन्द्र के पास चल ।।१४७।।]

यह कह रथ को आगे बढा सिनेरु-पर्वत के गिर्द खडे सात पर्वत दिखाये । उन्हें देख राजा ने मातली से प्रश्न किया । इस बात को स्पष्ट करते हुए शास्ता ने कहा—

सहस्सयुत्त हयवाहिं दिब्बं यानं अधिट्ठितो,
यायमानो महाराज अद्दा सीदन्तरे नगे,
विस्वानामन्तयी सूत इमे के नाम पब्बता ।।१४८।।

[सहस्र घोडे जुते दिव्य-यान मे बैठे राजा ने जाते हुए, महासमुद्रो के बीच में पर्वतो को देखा । उसने देख कर सूत को सबोधित किया—ये कौन से पर्वत हैं ?' ।।१४८।।]

इस प्रकार (राजा) निमि द्वारा प्रश्न किये जाने पर मातली ने कहा ।

सुदस्सनो करवीको ईसधरो युगन्धरो,
नेमिन्धरो विनतको अस्सकण्णो गिरि ब्रहा

एते सीदन्तरे नगा अनुपुब्ब समुग्गता,
महाराजानमा वासा यानि त्व राज पस्ससि ॥१४९॥

[सुदस्सन, करवीक, ईसधर, युगन्धर, नेमिन्धर, विनतक तथा अस्सकण्ण पर्वत । हे राजन् ! जिन को तुम देखते हो वे ये महाराजाओ के निवास स्थान हैं । इनके बीच मे एक एक के वाद महासमुद्र है ॥१४९॥]

इस प्रकार उसे चातुमहाराजिक देव-लोक दिखा, रथ को आगे भेज, त्रयोत्रिंश भवन के चित्रकूट द्वार-कोष्ठ के गिर्द स्थित इन्द्र-प्रतिमा दिखाई । उन्हे देख राजा ने प्रश्न किया । मातली ने उत्तर दिया—

अनेक रूप रुचिर नानाचित्र पकासति,
आकिण्ण इन्दसदिसेहि व्यग्घेहेव सुरक्खित ॥१५०॥
वित्ति हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इम नु द्वार किमभिञ्ञमाहू ॥१५१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खासजानतो ॥१५२॥
चित्तकूटोति य आहु देवराज पवेसन,
सुदस्सनस्स गिरिनो द्वार हेत पकासति ॥१५३॥
अनेकरूप रुचिर नानाचित्र पकासति,
आकिण्ण इन्दसदिसेहि व्यग्घेहेव सुरक्खित
पविसेतेन राजिसि अरज भूमिमक्कम ॥१५४॥

[यह क्या है जो अनेक रूप, सुन्दर, नाना प्रकार से चित्रित, व्याघ्रो से वन के समान इन्द्र-समान प्रतिमाओ से घिरा दिखाई देता है ? ॥१५०॥ हे सारथि ! यह देख कर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! इस द्वार का क्या नाम है ? ॥१५१॥ तव उस जानकार फल कहा ॥१५२॥ यह चित्र-कूट नामका देवेन्द्र का प्रवेश-द्वार है । यह सुदर्शन पर्वत का द्वार ही दिखाई देता है ॥१५३॥ यह अनेक रूप, सुन्दर, नाना प्रकार से चित्रित, व्याघ्रो के वन के समान इन्द्र-समान प्रतिमाओ से घिरा है । हे राजर्षि ! इस अरज भूमि मे प्रवेश करे ॥१५४॥]

यह कह मातली ने राजा को देव-नगर मे दाखिल किया। इसी से कहा गया—

सहस्सयुत्त हयवाहिं दिब्बं यान अधिट्ठितो,
यायमानो महाराजा अद्दा देवसभं इद ॥१५५॥

[सहस्र घोडे जुते दिव्य-यान मे बैंठे महाराजा ने, जाते समय इस देव-सभा को देखा ॥१५५॥]

उसने दिव्य-यान में बैठे ही बैठे, जाते हुए सुधर्मा देव-सभा को देख मातली से पूछा। उसने भी उसे कहा—

यथा सरदे आकासो नीलोव पतिदिस्सति,
तथूपम इम व्यम्ह वेळुरियासु निम्मित ॥१५६॥
वित्ति हि म विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
इम हि व्यम्हं किमभिञ्ञमाहू ॥१५७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मान जान अक्खासजानतो ॥१५८॥
सुधम्मं इति यमाहु पस्सेसा दिस्सते सभा,
वेळुरिया रुचिरा चित्रा धारयन्ति सुनिम्मिता ॥१५९॥
अट्ठसा सुकता थम्भा सब्बे वेळुरिया मया,
यत्थ देवा तावतिंसा सब्बे इन्दपुरोहिता ॥१६०॥
अत्थ देवमनुस्सान चिन्तयन्ता समच्छरे,
पविसेतेन राजिसि देवान अनुमोदन ॥१६१॥

[शरद् ऋतु मे आकाश जैसा नीला दिखाई देता है, वैसा ही यह बिल्लौर-निर्मित विमान है ॥१५६॥ हे सारथि! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि! मै तुझे पूछता हूँ कि इस विमान का क्या नाम है? ॥१५७॥ उस जानकार फल कहा ॥१५८॥ जिसे सुधर्मा कहते है, उस इस सभा को देखो। यह बिल्लौर-निर्मित है, सुन्दर है, चित्रित है और इसे बिल्लौर-निर्मित अष्ट-कोणवाले स्तम्भ धारण किये हैं। यहाँ इन्द्र-प्रमुख सभी त्रयोत्रिंश देवता

रहते है। ये देव-मनुष्यो का हित सोचते रहते हैं। हे राजर्षि! जहाँ देवता परस्पर अनुमोदन करते है, वहाँ प्रवेश करो ॥१५९-१६१॥]

देवतागण भी बैठे उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होने जब सुना कि राजा आया है तो हाथो मे दिव्य-गन्ध-पुष्प ले चित्र-कूट द्वार कोष्ठक तक अगवानी कर, गन्धादि से बोधिसत्व की पूजा कर उसे सुधर्म-सभा मे ले आये। राजा ने रथ से उतर धर्म-सभा मे प्रवेश किया। वहाँ देवताओ ने उसे आसन पेश किया। इन्द्र ने आसन तथा काम-भोग। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

तं देवा पटिनन्दिसु दिस्वा राजानमागत,
स्वागत ते महाराज अथो ते अनुरागत ॥१६२॥
निसीददानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके,
सक्कोपि पटिनन्दित्थ वेदेह मिथिलग्गह ॥१६३॥
निमन्तयि च कामेहि आसनेन च वासवो,
साधुखोसि अनुप्पत्तो आवास वसवत्तिन ॥१६४॥
वस देवेसु राजिसि सब्बकामसमिद्धिसु,
तावतिंसेसु देवेसु भुञ्ज कामे अमानुसे ॥१६५॥

[राजा को आया देख देवताओ ने उसका अभिनन्दन किया—"महाराज! तेरा स्वागत है।" वे बोले—हे राजर्षि! अब देवराज के पास बैठें।" शक्र ने भी विदेह मिथिलेश का अभिनन्दन किया। इन्द्र ने उसे काम-भोगो का निमत्रण दिया और कहा—"वशवर्तियो के निवास-स्थान पर तुम्हारा आगमन शुभ है।" (उसने यह भी कहा)—"हे राजर्षि! सभी स्मृद्धियो से युक्त देव-लोक में निवास करे और त्र्योत्रिंश देव-लोक में दिव्य-काम-भोगो का सेवन करे।" ॥१६२-१६५॥]

इस प्रकार शक्र द्वारा कामभोगो का निमत्रण मिलने पर राजा ने उनका निषेध करते हुए कहा।

यथा याचितकं यान यथा याचितकं धन,
एव सम्पदमेवेत यं परतो दानपच्चया ॥१६६॥
न चाह एत इच्छामि य परतो दानपच्चया,
सय कतानि पुञ्ञानि त मे आवेणिय धनं ॥१६७॥

सोहं गन्त्वा मनुस्सेसु काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय संयमेन दमेन च
यं कत्वा सुखितो होति न च पच्छानुतप्पति ।।१६८।।

[जो दूसरे के दान के परिणाम-स्वरूप प्राप्त हो वह भिखारी के वाहन अथवा भिखारी के धन के समान है। मै दूसरे के दान के परिणाम-स्वरूप प्राप्त होनेवाले काम-भोगो की इच्छा नही करता हूँ। अपने किये पुण्य-कर्म ही मेरा परम्परागत धन है ।।१६६-१६७।। इसलिये मै मनुष्य-लोक मे जाकर बहुत कुशल-कर्म करूगा। मै दान दूगा, मै विपम-चर्य्या का त्याग करूगा, मै सयत रहूगा। यह करने से आदमी सुखी रहता है और उसे अनुताप नही होता ।।१६८।।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवताओ को मधुर-स्वर से धर्मोपदेश दिया। मनुष्यो की गणना के हिसाब से सात दिन तक वहाँ ठहर, धर्मोपदेश देते रहकर, देवताओ को प्रसन्नकर, देवताओ के बीच मे खडे ही खडे मातलि का गुण कहते हुए कहा।

बहूपकारो नो भवं मातली देवसारथि,
यो मे कल्याणकम्मान पापानि पटिदस्सयि ।।१६९।।

[देव सारथी मातली ने मुझे कुशल-कर्म तथा अकुशल-कर्म करनेवालो के स्थान दिखाकर मेरा बडा उपकार किया है ।।१६९।।]

तब राजा ने शक्र को सम्बोधन करके कहा, "महाराज! मै मनुष्य-लोक जाना चाहता हूँ।"

शक्र ने आज्ञा दी, "तो मातली! निमि राजा को उसी प्रकार मिथिला पहुचाओ।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और रथ को ले आकर प्रस्तुत किया। राजा ने देव-गण से विदा ली और वह उन्हे रोक रथ पर चढा। मातली रथ को लिये पूर्व की ओर से मिथिला पहुचा। जनता दिव्य-रथ देख आनन्दित हुई—"हमारा राजा आ रहा है।" मातली ने मिथिला की प्रदक्षिणा की और राजा को उसी झरोखे में उतार राजा से विदा मांगी—'महाराज! हम जाते है।" इतना कह वह अपने निवास-स्थान ही चला गया।

जनता ने भी राजा को घेरकर पूछा—"देव! देवलोक कैसा है!" राजा ने देवताओ की और देवेन्द्र शक्र की सम्पत्ति का वर्णन कर धर्मोपदेश

दिया—"तुम दानादि पुण्य कर्म करो। ऐसा करने से तुम भी देव-लोक मे जन्म-ग्रहण करोगे।"

आगे चलकर जब नाई ने सफेद बाल उग आने की बात कही, और बाल लेकर उसकी हथेली पर रखा तो उसने नाई को श्रेष्ठ गाँव दे, प्रव्रजित होने की इच्छा से पुत्र को राज्य सौंप दिया। जब पूछ कि देव ! किसलिये प्रव्रजित होते है तो उसने "उत्तमङ्गरूहा मय्ह " गाथा कही और पूर्व के राजाओ की तरह ही प्रव्रजित हो, उसी आम्रवन में विहार करते हुए, चारो ब्रह्म विहारो की भावना कर ब्रह्मलोक गामी हुआ। उसके इस प्रकार प्रव्रजित होने की बात स्पष्ट करते हुए शास्ता ने अन्तिम गाथा कही।

इदं वत्वा निमिराजा वेदेहो मिथिलग्गहो,
पुथु यञ्ञ यजित्वान सञ्ञम अज्झुपागमि ॥१७०॥

[यह कह विदेश मिथिलेश निमि राजा ने बहुत (दान-) यज्ञ कर सयम ग्रहण किया ॥१७०॥]

उसका पुत्र कळार जनक नाम था। वह उस वश परम्परा का उच्छेद कर प्रव्रजित हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी अभिनिष्क्रमण किया ही है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र अनुरुद्ध था। मातली आनन्द था। चौरासी हजार राजा बुद्ध-परिषद। निमि राजा तो मै ही था।

५४२. खण्डहाल जातक

"राजासि लुद्दकम्मो "यह शास्ता ने गृध्र-कूट में विहार करते समय देवदत्त के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह कथा सङ्घ भेदक स्कन्ध मे आई ही है। उसकी प्रव्रज्या से लेकर विम्बसार राजा के भरने तक की कथा वहाँ आये क्रम से ही जाननी चाहिए। उसे मरवाकर देवदत्त ने अजातशत्रु के पास जाकर कहा "महाराज! आपका मनोरथ पूरा हुआ। मेरा मनोरथ अभी पूरा नहीं हुआ।"

"भन्ते! आपका मनोरथ क्या है?"

"दसवल को मरवाकर बुद्ध बनने की इच्छा है।"

"हम इस सम्बन्ध मे क्या करे?"

"धनुर्धारियो का एकत्र करना योग्य है।"

'भन्ते, अच्छा' कह राजा ने पाचसौ अक्षण-वेधी धनुर्धारियो को इकट्ठा कराया और उनमें से एक सौ तीस जनो को चुनकर देवदत्त के पास भेजा, "स्थविर का कहना करो।" उसने उनके मुखिया को बुलाकर कहा, "आयुष्मान्! श्रमण गौतम गृद्ध-कूट मे विहार करता है। अमुक-समय दिन मे रहने की जगह चन्क्रमण करता है। तुम वहा जाकर उसे विष-बुझे तीर से बीधकर जान से मार डालना और अमुक मार्ग से चले आना।" उसने उस मार्ग पर दो धनुर्धारी खडे किये और उन्हें आज्ञा दी "तुम्हारे रास्ते से एक पुरुष आयेगा, तुम उसे जान से मार कर अमुक रास्ते से आना।" उस मार्ग पर चार जनो को खडा किया, "तुम्हारे मार्ग से दो आदमी आयेगे,

उन्हे जान से मारकर अमुक रास्ते से आना।" उस मार्ग पर आठ जनो को खडा किया।" तुम्हारे मार्ग से चार आदमी आयेंगे, तुम उन्हे जान से मार कर अमुक मार्ग से आना।" उस मार्ग पर सोलह जनो को खडा किया, "तुम्हारे मार्ग से आठ आदमी आयेंगे। तुम उन्हे जान से मारकर अमुक मार्ग से आना।" उसने ऐसा क्यो किया? अपने कर्म को छिपाने के लिए। तव वह धनुर्धारियो का मुखिया बाई ओर तलवार बाँध और पीठ पर तरकश कस, मेढे के सीग का महा धनुष ले तथागत के पास पहुचा। उसने तथागत को बीधने के लिए धनुष पर तीर चढाकर उसे खीचा, किन्तु वह तीर छोड न सका। उसका सारा शरीर जड हो गया, मानो यन्त्र मे कसा गया हो। वह मृत्यु भय के मारे डर गया।

शास्ता ने उसे देख मधुर वाणी से सम्बोधन किया, "डर मत। यहाँ आ"। उसने उसी समय शस्त्र त्यागे और भगवान के चरणो पर सिर रख क्षमा मागी, "भन्ते! मेरे अपराध को क्षमा करे, जैसे एक मूर्ख के अपराध को, जैसे एक मूढ के अपराध को और जैसे एक पापी के अपराध को। मैं तुम्हारे गुणो से अपरिचित होने के कारण उस अन्धे, मूर्ख देवदत्त के कहने में आकर तुम्हारी जान लेने के लिये आया। मुझे क्षमा करे।" इस प्रकार क्षमा माग वह एक ओर बैठा। शास्ता ने सत्यो का प्रकाशन कर उसे स्रोतापत्ति मार्ग पर प्रतिष्ठित किया और कहा, "आयुष्मान्! देवदत्त के बताये मार्ग से न जा, दूसरे मार्ग से जा।" इस प्रकार उसे विदाकर तथागत चन्क्रमण करना छोड एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस धनुर्धारी को न आता देख दूसरे दो धनुर्धारियो ने सोचा कि उसे देर क्यो हो रही है? वह उल्टे-पाव लौट पडे। रास्ते में जब उन्होने तथागत को देखा तो पास आकर एक ओर बैठ गये। शास्ता ने उन्हे भी सत्य प्रकाशित किये और स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर यह कह कर विदा किया कि आयुष्मानो देवदत्त के बताये मार्ग से न जाकर, इस मार्ग से जाओ। इसी प्रकार दूसरे भी जब आकर इसी प्रकार पास बैठे तो उन्हें भी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर दूसरे ही मार्ग से भेजा।

तब उस पहले आये धनुर्धारी ने देवदत्त के पास पहुचकर कहा, "भन्ते! देवदत्त!! मैं सम्यक सम्बुद्ध को जान से नही मार सका। वह भगवान् बडे ऋद्धिवान् हैं बडे ही प्रतापवान् हैं।" वे सभी यह समझ कि सम्यक् सम्बुद्ध के ही कारण उनके

प्राण बचे, सम्यक् सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होकर अर्हत हुए। यह बात भिक्षुसघ मे प्रकट हो गई। भिक्षुओ ने धर्म सभा मे यह बात चलाई।"आयुष्मानो ! देवदत्त ने तथागत के प्रति वैर बाध अनेक आदमियो की जान लेने का प्रयत्न किया। शास्ता के ही कारण उन सब की जान बची।"शास्ता ने आकर पूछा,"भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी, देवदत्त ने पहले भी मुझ अकेले से वैर बाध बहुत जनो की जान लेने की कोशिश की ही थी" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी का नाम पुप्फवती था। वहा वशवर्ती राजा का एकराजा नाम का पुत्र राज्य करता था। उसका चन्द्र कुमार नाम का पुत्र उपराजा था। खण्डहाल नाम का ब्राह्मण पुरोहित था। वह राजा का अर्थ-धर्मानुशासक था। राजा ने उसे पण्डित मान न्यायाधीश के पद पर बैठा दिया। वह घूस-खोर होकर घूस खाता और अस्वामियो को स्वामी बना देता तथा स्वामियो को अस्वामी। एक दिन मुकद्दमे मे हारा हुआ एक आदमी न्यायालय को कोसता हुआ जा रहा था। उसने राजा की सेवा मे जाते हुए चन्द्र कुमार को देखा। वह उसके पाँव मे गिर पडा। चन्द्र कुमार ने पूछा,"हे आदमी ! क्या बात है ?" "स्वामी ! खण्डहाल ने न्यायाधीश पद पर बैठ लूट मचा रखी है। उसने रिशवत लेकर मेरे विरुद्ध फैसला दे दिया।" कुमार ने उसे कहा "डर मत" और न्यायालय ले जाकर स्वामी को ही स्वामी बनवाया। जनता ने उच्च-स्वर, से साधुवाद दिया। राजा ने सुनकर पूछा," यह क्या आवाज है ?" "खण्डाल के गलत निर्णय को चन्द्र कुमार ने ठीक कर दिया, उसी का यह साधुवाद है।" राजा ने यह सुना तो जब कुमार आकर प्रणाम करके खडा हुआ तो प्रश्न किया, "तात ! तूने एक मुकद्दमे का निर्णय किया ?"

"देव ! हाँ।"

'तात ! तो अबसे तू ही न्याय किया कर,' कह उसे न्यायाधीश बना दिया। खण्डहाल की आय जाती रही। उसी समय से वह चन्द्र कुमार का वैरी बन अवसर ढूढने लगा। राजा मूढ-श्रद्धावान था। एक दिन उसने ब्राह्म महूर्त मे स्वप्न में

त्रयो-त्रिंश-भवन देखा, जहाँ के द्वार-कोष्ठ अलकृत थे, जहाँ की चार दीवारी सप्त रत्न-मय थी, जहाँ का साठ योजन का दर्शनीय बाजार था, जो हजार योजन ऊचे वैजयन्त प्रासाद से सुशोभित था, जो नन्दन बन आदि से रमणीय बना था, जो नन्दा पुष्परिणी आदि पुष्करिणियो से रमणीय था, और जहाँ देवता ही देवता थे। उसे देख उसकी वहाँ जाने की इच्छा हुई। उसने सोचा कि आचार्य्य खण्डहाल के आने पर उससे देवलोक जाने का मार्ग पूछ, उसी के बताये मार्ग से देवलोक जाऊगा। खण्ड हाल ने भी प्रात काल ही राजभवन पहुच राजा से सुख पूर्वक सोये रहने की बात पूछी। राजा ने उसे आसन दिलवा कर उससे प्रश्न किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

राजासि लुद्दकम्मो एकराजाति पुप्फवतिया,
सो पुच्छि ब्रह्म बन्धु खण्डहाल पुरोहित मूळ्ह ॥१॥
सग्गमग्गाचिक्ख त्वसि ब्राह्मण धम्मविनय कुसलो,
यथा इतो वजन्ति सुगति नरा पुञ्ञानि कत्वान ॥२॥

[वह राजा था। रौद्र-कर्मी। उसका नाम एकराजा था। वह पुष्प-वती का राजा था। उसने मूढ ब्रह्म-बन्धु खण्डहाल नाम के पुरोहित से प्रश्न किया—"हे ब्राह्मण! तू धर्म-विनय का कुशल ज्ञाता है। तू बता कि किस प्रकार मनुष्य यहाँ पुण्य कर्म करके स्वर्ग-गामी होते हैं?," ॥ १-२ ॥]

यह प्रश्न सर्वज्ञ बुद्ध अथवा उसके श्रावक और उन दोनो के न होने पर बोधिसत्व से पूछना योग्य है। किन्तु जैसे कोई सप्ताह भर से रास्ता भटकने वाला आदमी महीने भर से रास्ता भटकने वाले से पूछे उसी प्रकार खण्डहाल से प्रश्न किया। उसने भी सोचा, अब यह शत्रु से बदला लेने का समय है। अब चन्द्र कुमार का प्राणान्त करवा अपना मनोरथ पूरा करूगा। उसने राजा को सम्बोधन कर तीसरी गाथा कही।

अतिदान ददित्वान अवज्झे देव घातेत्वा,
एव वजन्ति सुगति नरा पुञ्ञानि कत्वान ॥३॥

[हे देव! अति-दान देकर और अवध्यो का वध करके पुण्यवान नर स्वर्ग को जाते हैं ॥३ ॥]

राजा ने उसका स्पष्टार्थ पूछा——

किं पन तं अतिदान कंच अवज्झा इमस्मि लोकस्मि,
एतञ्च नो अक्खाहि यजिस्साम ददाम दानानि ॥४॥

[वह अति-दान क्या है ? और इस लोक मे अवध्य कौन है ? हमे यह बताये । हम यज्ञ करेगे और दान देगे ॥४॥]

उसने स्पष्ट किया——

पुत्तेहि देव यजितब्ब महेसीहि नेगमेहि उसमेहि,
आजानोयेहि चतुहि सब्बचतुक्केन देव यजितब्ब ॥५॥

हे देव ! पुत्रो का वध करके यज्ञ करना चाहिए, भार्य्याओ का, निगम-वासियो (=सेठो) का, वृषभो का, श्रेष्ठ अश्वो का—इस प्रकार सभी चार-चार होने चाहिए ॥ ५॥

इस प्रकार उसने यह सोच कि यदि अकेले चन्द्र कुमार का नाम लूगा तो समझेंगे कि वैर-चित्त से कहता है, इसलिए उसने उसे बहुतो के बीच में डाल दिया। लेकिन उन्हे इस प्रकार बोलते सुन रनिवास के लोग डर के मारे एक बार ही चिल्ला उठे। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने गाथा कही——

त सुत्वा अन्ते पुरे
कुमारा व महेसियो व हञ्जन्तु,
एको अहोसि निग्घोसो
भेस्मा अच्चुगतो सद्दो ॥६॥

[अन्त पुर मे जब यह सुना गया कि कुमार तथा भार्य्यायें मारी जाये तो एक भयानक हल्ला हुआ, बहुत ही ऊची आवाज ॥६॥]

ब्राह्मण ने भी राजा से पूछा,"महाराज। यज्ञ कर सकेगे अथवा नहीं कर सकेगे ?"

"आचार्य्य ! क्या कहते है, यज्ञ करके देवलोक जायेंगे।"

"महाराज ! डरपोक, दुर्बल-सकल्प वाले यज्ञ नही कर सकते। आप यहाँ सभी को इकट्ठा करें। मै यज्ञ-कुण्ड बनाने का काम करूगा।"

उसने अपने साथ पर्य्याप्त आदमी लिये और नगर से निकल यज्ञ-कुण्ड को समतल करा उसके चारो ओर वाड वना दी। धार्मिक श्रमण अथवा ब्राह्मण आकर वाधा न डाले इसलिये पुराने ब्राह्मणो ने यह नियम वना दिया कि यज्ञ-कुण्ड के चारो ओर वाड रहे। राजा ने भी आदमियो को वुलाकर आज्ञा दी, "तात ! मै अपने बेटा-बेटी तथा भार्य्याओ को मारकर, यज्ञ करके देव-लोक जाऊगा। जाओ उन्हे कहकर सभी को ले आओ।" पुत्रो को लाने के लिये कहा—

गच्छथ वदेथ कुमारे
चन्द सुरियञ्च भद्दसेनञ्च,
सूरञ्च वामगोत्त
पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥७॥

[जाओ, सूर्य्य, चन्द्र, भद्रसेन तथा वैमानिक सूर—सभी को कहो कि यज्ञ के लिये एक स्थान में एकत्रित हो ॥७॥]

वे सर्व प्रथम चन्द्रकुमार के पास पहुचे और बोले, "कुमार ! तुम्हे मारकर तुम्हारा पिता देव-लोक जाना चाहता है। उसने हमें तुम्हे पकडने के लिये भेजा है।"

"किस के कहने से मुझे पकडवा रहा है ?"

"देव ! खण्डहाल के कहने से।"

"क्या वह मुझे ही पकडवा रहा है, अथवा औरो को भी ?"

"औरो को भी पकडवा रहा है। वह सभी के चार चार लेकर यज्ञ कराना चाहता है।"

उसने सोचा, "उसका और किसी से वैर नही है। न्यायाधीश होकर लूटना नही मिलता है, सोच मेरे प्रति वैर वाध लेने के कारण वहुतो को मरवा रहा है। पिता से भेट होने पर इन सभी को मुक्त कराने की मेरी जिम्मेदारी है।" यह सोच उसने उन्हे कहा, "तो पिता का कहना करो।" उन्होने उसे ले जाकर राजाङ्गण में एक ओर खडा किया तथा और तीनो जनो को भी लाकर उसी के पास खडा कर राजा को सूचना दी—"देव ! तुम्हारे पुत्रो को ले आये।" उसने उनकी वात सुन, आज्ञा दी, "तात ! तो अव मेरी पुत्रियो को भी लाकर उन्ही के पास विठाओ।" उसने यह गाथा कही।

कुमारियोपि वदेथ उपसेनिं कोकिलं मुदितं,
नन्दञ्चापि कुमारिं पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥८॥

[उपसेनि, कोकिला, मुदिता तथा नन्दा कुमारियो को भी कहो कि यज्ञ के लिये एक जगह इकट्ठी हो ॥८॥]

उन्होने 'ऐसा ही करेंगे' कह उनके पास जा उन्हे रोती पीटती हुई को ला भाइयों के पास ही कर दिया। तब राजा ने अपनी प्यारी भार्य्याओ को पकड लाने के लिये दूसरी गाथा कही।

विजयम्पि मय्ह महेसिं एरावतिं केसिनिं सुनन्दञ्च,
लक्खणवरूपपन्ना पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥९॥

[मेरी विजय, एरावति, केसिनि तथा सुनन्दा नाम की रुप सम्पन्न भार्य्याओ को भी कहो कि यज्ञ के लिये एकत्र हो ॥९॥]

उन्होने उन्हे भी रोती पीटती हुईयो को ला कुमारो के पास किया। तब राजा ने चारो सेठो को लाने के लिये दूसरी गाथा कही।

गहपतयोपि वदेथ पुण्णमुख भद्दिय सिगालञ्च,
वड्ढञ्चापि गहपतिं पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥१०॥

[गृहपतियो को भी कहो—पूर्ण मुख, भद्रिय, सिगाल तथा वड्ढ गृहपति को—वे भी यज्ञ के लिये एक जगह आये ॥१०॥]

राजपुरुष जाकर उन्हे ले आये। राजा के स्त्री-बच्चो को ले जाते समय सारा नगर कुछ नही बोला। सेठो के कुल के तो बहुत सम्बन्ध थे। इसलिये उनके पकडने के समय सारा नगर क्षुब्ध हो गया—हम सेठो को मारकर राजा को यज्ञ करने न देंगे। सेठ अपने ज्ञाति-वर्ग के साथ ही राज-कुल पहुचे। रिश्तेदारो से घिरे सेठो ने राजा से अपने प्राणो की भिक्षा मागी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

ते तत्थ गहपतयो
अवोचिंसु समागता पुत्तदारपरिकिण्णा,
सब्बसिखिनो देव करोहि
अथवा नो दासे सावेहि ॥११॥

[पुत्र-दारा सहित आये उन गृहपतियो ने राजा से कहा—देव ! हम सबके सिर पर चोटी मात्र रखवा अपना चाकर बना ले अथवा दास बना ले ।।११।।]

इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी उन्हें जीवनदान नही मिला। राज-पुरुषो ने और सबको वापिस कर उन्ही को पकड कुमारो के पास ले जाकर बिठा दिया। तब राजाने हाथी आदि के बारे मे आज्ञा दी।

अभयकरपि हत्थि नालागिरिं अच्चुत्त वरुणदन्तं,
आनेथ पन खो खिप्पं यञ्ञत्थाय भविस्सन्ति ।।१२।।
अस्सरतनम्पि केसिं सुरामुख पुण्णकं विनतकञ्च,
आनेथ खो ने खिप्पं यञ्ञत्थाय भविस्सन्ति ।।१३।।
उसभम्पि युथपति अनोज
निसभं गवम्पतिं तेपि मय्ह आनेथ,
समुपाकरोन्तु सब्बं
यजिस्साम ददाम दानानि ।।१४।।
सब्ब पटियादेथ यञ्ञ पन उग्गतम्पि सुरियम्हि,
आणापेथ कुमारे अभिरमन्तु इमं रत्तिं ।।१५।।
सब्ब उपट्ठपेथ यञ्ञ पन उग्गतम्हि सुरियम्हि,
वदेथदानि कुमारे अज्ज वो पच्छिमा रत्ति ।।१६।।

[अभयङ्कर, नालागिरि, अच्युत तथा वरुणदन्त हाथी को शीघ्र लाओ, यज्ञ के लिये होगे ।।१२।। केसी, सुरामुख, पुण्णक तथा विनतक अश्व-रत्नो को भी शीघ्र लाओ, यज्ञ के लिये होगे ।।१३।। यूथपति, अनोज, निसभ तथा गवम्पति वृपभो को भी लाओ। और भी सब (पक्षियो आदि) को इकट्ठा करो। हम यज्ञ करेगे और दान देगे ।।१४।। सभी कुछ ले आओ। सूर्य्योदय के साथ ही यज्ञ आरम्भ होगा। कुमारो को कह दो कि आज की रात मौज कर ले ।।१५।। सभी कुछ लाकर उपस्थित करो। सूर्य्योदय के साथ ही यज्ञ होगा। अब कुमारो को कह दो कि आज उनकी अन्तिम रात्रि है ।।१६।।]

उस समय राजा के माता पिता जीवित ही थे। अमात्यो ने जाकर माता को सूचना दी—"आर्य्ये तुम्हारा पुत्र स्त्री-बच्चो को मारकर यज्ञ करना चाहता है।"

वह 'तात ! क्या कहते हो ?' करके हृदय पर हाथ रक्खे रोती-पीटती आई और पूछा—"पुत्र ! क्या सचमुच तेरा यज्ञ ऐसा होगा ?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

त त माता अवचा रोदन्ती आगता विमानतो,
यञ्ञे किर ते पुत्त भविस्सति चतुहि पुत्तेहि ॥१७॥

[माता अपने निवासस्थान से रोती हुई आई और पूछा—"पुत्र ! क्या तेरा यज्ञ चार पुत्रो के घात से होगा ? ॥१७॥]

राजा बोला—

सब्बेपि मटहं पुत्ता चत्ता
चन्दस्मि हञ्ञमानस्मि,
पुत्तेहि यञ्ञ यजित्वान
सुगति सग्गं गमिस्सामि ॥१७॥

[चन्द्र-कुमार के मारे जाते हुए मैंने सभी पुत्रो का त्याग कर दिया है। पुत्रो की हत्या करके, यज्ञ करके मैं स्वर्ग-गामी होऊगा ॥१७॥]

माता बोली—

मा पुत्त सद्दहेसि
सुगति किर होति पुत्तयञ्ञेन,
निरयानेसो मग्गो
नेसो मग्गो सग्गान ॥१८॥
दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्ब भूतभब्यान,
एसमग्गो सुगतिया
न च मग्गो पुत्तयञ्ञेन ॥१९॥

[पुत्र इस बात में विश्वास मत कर कि पुत्र की बलि देने से स्वर्ग-लाभ होता है। यह नरक का मार्ग है, स्वर्ग का नही ॥१८॥ हे कोण्डञ्ञ ! दान दे। सभी प्राणियो के प्रति अहिंसा का व्यवहार कर। यह सुगति का रास्ता है, पुत्रो की बलि देना नही ॥१९॥]

राजा बोला—

आचरियान वचना
घातेस्स चन्दञ्च सुरियञ्च
पुत्तेहि यजित्वान दुच्चजेहि
सुगति सग्ग गमिस्सामि ॥२०॥

[मै आचार्य्यो का कहना मान चन्द्र-कुमार तथा सूर्य्य-कुमार पुत्रो को मरवा रहा हूँ। जिनका त्याग दुष्कर है, ऐसे पुत्रो की वलि देकर मै स्वर्ग-गामी वनूगा ॥२०॥ ॥२०॥]

जब माता ने देखा कि वह अपना कहना नही मनवा सकती, वह चली गई। पिता ने यह समाचार सुना, तो उसने आकर पूछा। इस अर्थ को भी शास्ता ने प्रकाशित किया।

त त पितापि अवच वसवत्ती ओरसं सकं पुत्त,
यञ्ञो किर ते पुत्त भविस्सति चतुहि पुत्तेहि ॥२१॥

[वशवर्ती नामक पिता ने भी अपने ओरस-पुत्र को पूछा—पुत्र ! क्या चारो पुत्रो की वलि देने से तेरा यज्ञ होगा ? ॥२१॥]

राजा बोला—

सब्बेपि मट्ंह पुत्ता चत्ता चन्दस्मि हञ्ञमानस्मि,
पुत्तेहि यञ्ञ यजित्वान सुगति सग्ग गमिस्सामि ॥२२॥

[अर्थ ऊपर आ गया है—देखो गाथा स० १७॥]

तव पिता बोला—

मा पुत्त सद्दहेसि
सुगति किर होति पुत्तयञ्ञेन,
निरयानेसो मग्गो
नेसो मग्गो सग्गान ॥२३॥
दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्बभूत भब्ययानं,

एसमग्गो सुगनिया
न च मग्गो पुत्तयञ्ञेन ॥२४॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा, १८, १९ ॥]

राजा बोला—

आचरियानं वचना
घातेस्सं चन्दञ्च सुरियञ्च,
पुत्तेहि यजित्वा दुच्चजेहि
सुगति सग्ग गमिस्सामि ॥२५॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा, २०॥]

तब पिता बोला—

दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्बा भूत भव्यान,
पुत्तपरिवुतो तुवं
रट्ठं जनपद पालेहि ॥२६॥

[कोण्डञ्ञ! दानादि दे। सब प्राणियो के प्रति अहिंसा का व्यवहार कर। पुत्रो-सहित राष्ट्र और जनपद का पालन कर ॥२६॥]

वह भी उसे अपनी बात न मनवा सका। तब चन्द्रकुमार ने सोचा, "केवल मेरे कारण इतने जन विपत्ति मे पड गये। पिता से प्रार्थना कर इतने जनो को मृत्यु-दुःख से मुक्त करूंगा।" उसने पिता से बातचीत करते हुए कहा।

मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगलबन्धकापि
हत्थी अस्से च पालेम ॥२७॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
पि निगलबन्धकापि
हत्थिच्छकणानि उज्झेम ॥२८॥

मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
अस्सच्छकणानि उज्झेम ॥२९॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि यस्स होन्ति तव कामा,
अपि रट्ठा पब्बजिता
भिक्खाचरियं चरिस्साम ॥३०॥

[देव ! हमारा बध न करें। हमें 'दास' बनाकर खण्डहाल को दे दें। पैरों में बेड़ी पड़ी रहने पर भी हम हाथी घोडो का पालन करेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें   हम हाथियो की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें   हम घोडों की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें जिसे चाहें 'दास' बनाकर दे दे। हम राष्ट्र से बाहर निकाल दिये जाने पर भी भिखारी बनकर जियेंगे ॥२७-३०॥]

उसका नाना प्रकार का विलाप सुन मानो राजा का चित्त फटने लगा। वह आँखो में आँसू भरकर बोला, "मेरे पुत्रो को कोई न मार सकेगा। मुझे देवलोक की आवश्यकता नही है।" उसने उन सभी को छुडा देने के लिए कहा।

दुक्खं खो मे जनयथ
विलपन्ता जीविकस्स कामा हि,
मुञ्चथदानि कुमारे
अलम्पि मे होतु पुत्तयञ्ञेन ॥३१॥

[जीने की इच्छा से विलाप करते हुए मेरे मन मे दुख पैदा करते हैं। अब कुमारो को छोड दो। मुझे पुत्रो की बलि वाला यज्ञ नही चाहिए ॥३१॥]

राजा की बात सुनी तो राज-पुरुषो से आरम्भ करके पक्षियों तक सभी प्राणियो को मुक्त कर दिया गया। खण्ड-हाल यज्ञ-कुण्ड का काम कराने मे लगा हुआ था। एक आदमी बोला अरे दुष्ट खण्ड-हाल ! राजा ने पुत्रो को छुडवा दिया। तू

मेरे जैसे शूर यज्ञ मे वलि देने के लिये नही होते ।।३६।। प्रत्यन्त-देश के विद्रोह करने पर अथवा जगलो की देख-भाल करने के लिये मेरे जैसो को भेजा जाता है। तात ! हम यहाँ विना कारण अस्थाने मारे जा रहे है ।।३७।। हे देव ! तिनकोके घोसले वनाकर जो पक्षी रहते है, उन्हें भी अपने पुत्र प्रिय होते है। और हे देव तुम हमारी हत्या करा रहे हो ! ।।३८।। उसका विश्वास न करे। खण्डहाल मुझे न मारे। वह मुझे मारकर देव ! पीछे तुम्हे भी मरवा सकता है ।।३९।। महाराज ! इस ब्राह्मण को श्रेष्ठ ग्राम, श्रेष्ठ निगम तथा श्रेष्ठ भोग सामग्री भी दी जाती है, और ये कुल मे अग्र-पिण्ड होकर ही भोजन भी करते है ।।४०।। महाराज ! ये श्रेष्ठ-ग्राम आदि देनेवालो का भी बुरा सोचते है। देव ! ब्राह्मण प्राय अकृतज्ञ ही होते है ।।४१।। देव ! हमारा वध न करे। हमें 'दास' वनाकर खण्डहाल को दे दे। पैरो मे बेडी पडी रहने पर भी हम हाथी घोडो का पालन करेगे। देव ! हमारा वध न करे। हमे हम हाथियो की लीद वटोरेगे। देव ! हमारा वध न करे। हमे हम घोडो की लीद बटोरेगे। देव ! हमारा बध न करे। हमे जिसे चाहे 'दास' बनाकर दे दे। हम राष्ट्र से वाहर निकाल दिये जाने पर भी भिखारी वनकर जियेगे ।।४२-४५।।]

राजा ने कुमार का विलाप सुन यह गाथा कह, उसे फिर छोड दिया।

> दुक्ख खो मे जनयथ
> विलपन्ता जीवितस्स कामा हि,
> मुञ्चथदानि कुमारे
> अलम्पि मे होतु पुत्तयञ्ञेन ।।४६।।

[जीने की इच्छा से विलाप करते हुए मेरे मन मे दुःख पैदा करते है। अव कुमारो को छोड दो। मुझे पुत्रो की वलि वाला यज्ञ नही चाहिये ।।४६।।]

खण्डहाल फिर आकर कहने लगा—

> पुब्बेपि खोसि वुत्तो
> दुक्कर दुरभिसम्भवञ्चेत,
> अथ नो उपक्खटस्स
> यञ्ञस्स करोति विक्खेप ।।४७।।

सब्बे वजन्ति सुगति
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति,
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तान एदिस महायञ्ञ ॥४८॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा ३२-३३॥]

उसने कुमारो को फिर पकडवा दिया। कुमार ने राजा की मिन्नत करने के लिये कहा।

यदि किर यजित्वा पुत्तेहि
देवलोक इतो चुता यन्ति,
ब्राह्मणो ताव यजतु
पच्छापि यजसि तुव राज ॥४९॥
यदि किर यजित्वा पुत्तेहि
देवलोक इतो चुता यन्ति,
एसो च खण्डहालो
यजतु सकेहि पुत्तेहि ॥५०॥
एवं जान वो खण्डहालो
किं पुत्तके न घातेसि,
सब्बञ्च ञातिजन
अत्तानञ्च न घातेसि ॥५१॥
सब्बे वजन्ति निरय
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तान एदिस महायञ्ञ ॥५२॥

[यदि पुत्रो की बलि चढाकर यज्ञ करनेवाले यहाँ से मरने पर देव-लोक जाते हैं, तो पहले ब्राह्मण यज्ञ करे। देव! आप पीछे यज्ञ करे ॥४९॥ यदि पुत्रो की बलि चढाकर यज्ञ करनेवाले यहाँ से मरने पर देव-लोक जाते है, तो यह ब्राह्मण

अपने पुत्रो को बलि चढाकर यज्ञ करे ।।५०।। इस प्रकार का ज्ञान रखनेवाला खण्ड-हाल अपने पुत्रो की हत्या क्यो नही करता ? अपने सभी रिश्तेदारो को क्यो नही मारता ? और अपने आपको क्यो नही मारता ? ।।५१।। जो यज्ञ करते है, जो कराते है और जो इस प्रकार के महायज्ञ का अनुमोदन करते है, वे सभी नरक को जाते हैं ।।५२।।]

इतना कहकर भी कुमार जब राजा से अपनी बात नही मनवा सका तो उसने राजा को घेरकर खडी परिषद को सम्बोधन करके कहा ।

कथञ्च किर पुत्तकामायो
गृहपतयो घरणियो च
नगरम्हि न उपरवन्ति राजानं
मा घातयि ओरसं पुत्त ।।५३।।
कथञ्च किर पुत्तकामायो
गहपतयो घरणियो च,
नगरम्हि न उपरवन्ति राजान
मा घातयि अत्रज पुत्त ।।५४।।
रञ्ञोम्हि अत्थकामो
हितो च सब्बदा जनपदस्स,
न कोचि अस्स पटिघ मया
जनपदो न पवेदेति ।।५५।।

[पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर मे चिल्लाकर राजा को क्यो नही कहते है कि अपने ओरस पुत्र को न मारे ।।५३।। पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर मे चिल्लाकर राजा को क्यो नही कहते है कि अपने अत्रज पुत्र को न मारे ।।५४।। मै राजा का शुभचिन्तक रहा हूँ और जनपद का सदा हितैषी रहा हूँ । कोई यह नही कह सकता कि इसका मुझ से वैर है । तो भी कोई जानपद राजा को नही कहता ? ।।५५।।]

इतना कहने पर भी किसी ने भी कुछ भी नही कहा । तब राजकुमार ने अपनी भार्याओ को राजा से प्रार्थना करने की प्रेरणा देने के लिये कहा ।

गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अदूसके सहिसकासे ॥५६॥
गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥५७॥

[हे गृहणियो! जाओ और तात को तथा खण्डहाल को कहो कि सिंह समान कुमारो की हत्या न करायें ॥५६॥ हे गृहणियो! जाओ और तात को तथा खण्डहाल को कहो कि सब लोगो द्वारा इच्छित कुमारो की हत्या न करायें ॥५७॥]

उन्होंने जाकर याचना की। राजा ने ध्यान नही दिया। तब कुमार ने अनाथ हो विलाप किया।

य नुनाहं जायेय्य
रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा,
वेणेसु वा जायेय्य
नहज्ज म राजा यञ्ञत्थाय घातेय्य ॥५८॥

[यदि मैं रथ-कार कुल मे पैदा हुआ होता, यदि भंगी के कुल मे पैदा हुआ होता और यदि बस-फोड के घर पैदा हुआ होता तो राजा निश्चय से आज यज्ञ के लिये मेरा घात न करता ॥५८॥]

और फिर उन्हें ही प्रेरित करने के लिये कहा—

सब्बा सीमन्तिनियो
गच्छथ अय्यस्स खण्डहालस्स,
पादेसु निपतथ
अपराधाहं न पस्सामि ॥५४॥

अपने पुत्रो की बलि चढाकर यज्ञ करे ।।५०।। इस प्रकार का ज्ञान रखनेवाला खण्ड-हाल अपने पुत्रो की हत्या क्यो नही करता ? अपने सभी रिश्तेदारो को क्यो नही मारता ? और अपने आपको क्यो नही मारता ? ।।५१।। जो यज्ञ करते है, जो कराते है और जो इस प्रकार के महायज्ञ का अनुमोदन करते है, वे सभी नरक को जाते है ।।५२।।]

इतना कहकर भी कुमार जब राजा से अपनी बात नही मनवा सका तो उसने राजा को घेरकर खडी परिषद को सम्बोधन करके कहा ।

कथञ्च किर पुत्तकामायो
गृहपतयो घरणियो च
नगरम्हि न उपरवन्ति राजान
मा घातयि ओरस पुत्त ।।५३।।
कथञ्च किर पुत्तकामायो
गहपतयो घरणियो च,
नगरम्हि न उपरवन्ति राजान
मा घातयि अत्रजं पुत्त ।।५४।।
रञ्ञोम्हि अत्थकामो
हितो च सब्बदा जनपदस्स,
न कोचि अस्स पटिघ मया
जनपदो न पवेदेति ।।५५।।

[पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर मे चिल्लाकर राजा को क्यो नही कहते है कि अपने ओरस पुत्र को न मारे ।।५३।। पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर मे चिल्लाकर राजा को क्यो नही कहते है कि अपने अग्रज पुत्र को न मारे ।।५४।। मै राजा का शुभचिन्तक रहा हूँ और जनपद का सदा हितैषी रहा हूँ । कोई यह नही कह सकता कि इसका मुझ से वैर है । तो भी कोई जानपद राजा को नही कहता ? ।।५५।।]

इतना कहने पर भी किसीने भी कुछ भी नही कहा । तब राजकुमार ने अपनी भार्य्याओ को राजा से प्रार्थना करने की प्रेरणा देने के लिये कहा ।

गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अदूसके सहिसफासे ॥५६॥
गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥५७॥

[हे गृहणियो ! जाओ और तात को तथा खण्डहाल को कहो कि सिह समान कुमारो की हत्या न कराये ॥५६॥ हे गृहणियो ! जाओ और तात को तथा खण्ड-हाल को कहो कि सब लोगो द्वारा इच्छित कुमारो की हत्या न करायें ॥५७॥]

उन्होंने जाकर याचना की। राजा ने ध्यान नही दिया। तब कुमार ने अनाथ हो विलाप किया।

य नुनाह जायेय्य
रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा,
वेणेसु वा जायेय्य
नहज्ज म राजा यञ्ञत्थाय घातेय्य ॥५८॥

[यदि मै रथ-कार कुल मे पैदा हुआ होता, यदि भगी के कुल में पैदा हुआ होता और यदि बस-फोड के घर पैदा हुआ होता तो राजा निश्चय से आज यज्ञ के लिये मेरा घात न करता ॥५८॥]

और फिर उन्हे ही प्रेरित करने के लिये कहा—

सब्बा सीमन्तिनियो
गच्छथ अय्यस्स खण्डहालस्स,
पादेसु निपतथ
अपराधाह न पस्सामि ॥५९॥

सब्बा सीमन्तिनियो
गच्छथ अय्यस्स खण्डहालस्स,
पादेसु निपतथ
किं ते भन्ते मय अदूसेम ॥६०॥

[सभी स्त्रियाँ आर्य्य खण्डहाल के पास जाकर उसके पैरो पडो। मैं नही समझता कि मैंने उसका कोई अहित किया हो ॥५६॥ सभी स्त्रियाँ आर्य्य खण्डहाल के पास जाकर उसके पैरो पड। और कहो कि भन्ते! हमने तुम्हारा क्या अपराध किया है? ॥६०॥]

चन्द्रकुमार की छोटी वहन शैलकुमारी शोक को न सह सकने के कारण पिता के चरणो पर गिरकर रोने लगी। उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया।

कपणं विलपति सेला
दिस्वान भातरो उपनीतत्ते,
यञ्ञो किर मे उक्खिपितो
तातेन सग्गकामेन ॥६१॥

[भाई को (बलि के लिये) लाया देखकर विचारी शैल-कुमारी विलाप करती है—स्वर्ग-कामी तात ने यज्ञ करने की तैयारी की है ॥६१॥]

राजा ने उसका कहना भी नही सुना। तव चन्द्रकुमार के वासुल नामक पुत्र ने पिता को दुखी देख सोचा, 'मै पितामह से याचनाकर अपने पिता के प्राणो की रक्षा करूगा।" वह राजा के पाँव मे गिर विलाप करने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

आवत्ती च परिवत्ति च
वासुलो सम्मुखा रञ्ञो,
मा नो पितर अवधि
दहरम्हा अयोब्बन पत्ता ॥६२॥

[वासुल राजा के सामने लोट-पोट होकर कहने लगा—हमारे पिता का बध न करे। अभी हम बालक है। हम जवान नही हुए है ॥६२॥]

राजा ने उसका विलाप सुना तो उसका हृदय फट-सा गया। उसने आँखो मे आँसु भर कुमार का आलिगन किया और कहा, "तात ! निश्चिन्त हो। तेरे पिता को छोडता हूँ।" उसने गाथा कही।

एसो ते वासुल पिता समेहि पितर
दुक्ख खो मे जनयसि विलपन्तो अन्तरपुरस्मि,
मुञ्चथदानि कुमारे अलम्पि मे होतु पुत्त यञ्ञेन ॥६३॥

[वासुल ! यह तेरे पिता है। पिता से भेट कर। अन्त पुर का विलाप सुन मुझे दु ख होता है। अब कुमारो को छोड दो। मुझे पुत्र की बलि वाले यज्ञ की अपेक्षा नही ॥६३॥]

फिर खण्डहाल आकर बोला—

पुब्बेव खोसि वुत्तो
दुक्कर दुरभिसम्भवञ्चेत,
अथ नो उपक्खटस्स
यञ्ञस्स करोसि विक्खेप ॥६४॥
सब्बे वजन्ति सुगति
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति,
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तान एदिस महायञ्ञं ॥६५॥

[अर्थ ऊपर आ गया है—देखो गाथा ३२-३३॥]

राजा भी अन्धा मूर्ख ही था। फिर उसके कहने मे आकर पुत्रो को पकडवा लिया। तब खण्डहाल सोचने लगा—"यह राजा कोमल-हृदय है। कभी पकडवाता है, कभी छोडता है। फिर भी बच्चो की बात सुन पुत्रो को छुडा दे सकता है। इसे यज्ञ-कुण्ड पर ही ले चलू।"

उसने उसे ले चलने के लिये गाथा कही।

सब्ब रतनस्स यञ्ञो
उपक्खटो एकराज तव पटियत्तो,

अभिनिक्खमस्सु देव
सग्गं गतो त्वं पमोदिस्ससि ॥६३॥

[हे एकराज ! तेरा सर्वरत्नमय यज्ञ तैयार हो गया है। हे देव ! अब चलें। स्वर्ग पहुचने पर तुम्हे आनन्द होगा ॥६३॥]

बोधिसत्व को यज्ञ-कुण्ड ले चलने के समय उसका सारा रनिवास इकट्ठा हो निकल पड़ा। इस अर्थ को प्रकाशित करते समय शास्ता ने कहा।

दहरा सत्तसता
एता पन चन्दकस्स भरियायो
केसे परिकिरित्वान
रोदन्तियो मग्गमनुयन्ति ॥६४॥
अपरा पन सोकेन
निक्खन्ता नन्दने विय देवा
केसे परिकिरित्वान
रोदन्तियो मग्गमनुयन्ति ॥६५॥

[चन्द्र-कुमार की सात सौ तरुण भार्य्यायें बालो को बिखेरकर रास्ते पर निकल पड़ी ॥६४॥ जिस प्रकार नन्दन-वन मे देव-कन्यायें उसी प्रकार दूसरी (स्त्रियाँ) बालो को बिखेर रास्ते पर निकल पड़ी ॥६५॥]

इसके आगे उनका विलाप है—

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्द सुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥६६॥
कासिक सुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
मातु कत्वा हदयसोकं ॥६७॥

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हदयसोक ॥६८॥

मसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥६९॥

मसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
मातु कत्वा हदयसोक ॥७०॥

मसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता
नीयन्ति चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हदय सोक ॥७१॥

यस्स पुब्बे हत्थीवर धुरगते
हत्थीहि अनुवजन्ति,
त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७२॥

यस्स पुब्बे अस्सवर धुरगते
अस्सेहि अनुवजन्ति,
त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७३॥

यस्सु पुब्बे रथवर धुरगते
रथेहि अनुवजन्ति,

त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७४॥

ये हिस्सु पुब्बे निय्यसु
तपनीय कप्पनेहि तुरगेहि,
त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७५॥

[काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरु-चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो को एकराज के यज्ञ के लिये लिये जा रहे हैं। ॥६६॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरु चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो को मा के हृदय मे शोक उत्पन्न करके लिये जा रहे हैं ॥६७॥ काशी के कुमारो को जनता के हृदय मे शोक उत्पन्न करके लिये जा रहे हैं ॥६८॥ मास-रस का भोजन किये, स्नान करानेवालो द्वारा भली प्रकार स्नान कराये गये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये, चन्द्र-सूर्य्य कुमारो को एकराज के यज्ञके लिये लिये जा रहे हैं ॥६९॥ मास-रस का भोजन किये कुमारो को मा के हृदय मे शोक-उत्पन्न करने के लिये लिये जा रहे हैं ॥७०॥ मास-रस का भोजन किये कुमारो को जनता के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये लिये जा रहे हैं ॥७१॥ जो पहले श्रेष्ठ हाथियो के कन्धो पर सवार होते थे और जिनका हाथी ही अनुगमन करते थे वे दोनो चन्द्र-सूर्य्य आज पैदल चले जा रहे हैं। ॥७५॥ जो पहले श्रेष्ठ घोडो पर घोडे ही आज पैदल चले जा रहे हैं ॥७३॥ जो पहले श्रेष्ठ रथो पर रथ ही आज पैदल चले जा रहे हैं ॥७४॥ जो पहले चमकदार काठी वाले घोडो पर बैठकर बाहर निकलते थे, वे दोनो चन्द्र-सूर्य्य आज पैदल चले जा रहे हैं ॥७५॥]

इस प्रकार वे विलाप करती रही और बोधिसत्व को नगर से ले गये। सारा नगर क्षुब्ध होकर निकल पडा। जनता को निकलने के लिये दरवाजे कम पड रहे थे। ब्राह्मण ने बहुत लोगो को निकलते देख सोचा—कौन जाने क्या हो? उसने दरवाजे बन्द करवा दिये। जनता को बाहर निकलना नही मिला तो नगर-द्वार के समीप एक उद्यान मे इकट्ठे हो लोग जोर जोर से चिल्लाने लगे। उनकी आवाज से

क्षुब्ध हो पक्षी आकाश मे उडने लगे । जनता उस उस पक्षी को सम्बोधन कर विलाप करती हुई कहने लगी ।

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुष्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि पुत्तेहि ॥७६॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि कञ्ञाहि ॥७७॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि महेसीहि ॥७८॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि गहपतीहि ॥७९॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि हत्थीहि ॥८०॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि अस्सेहि ॥८१॥

यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि उसभेहि ॥८२॥
यदि सकुणि मसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो सब्ब चतुक्केन ॥८३॥

[हे पछी ! यदि मास की कामना है तो पुप्पवती की पूर्व-दिशा मे उड। वहाँ मूर्ख एकराज चारो पुत्रों की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७६॥ हे पछी ! यदि चारो कन्याओ की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७७॥ हे पछी ! यदि चारो भार्य्याओ की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७८॥ हे पछी ! यदि चारो गृहपतियो की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा हैं ॥७९॥ हे पछी ! यदि चारो हाथियो की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८०॥ हे पछी ! यदि चारो घोडो की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८१॥ हे पछी ! यदि चारो वृषभो की वलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८२॥ हे पछी ! यदि मास की कामना है तो पुप्प-वती की पूर्व-दिशा मे उड। वहाँ मूर्ख एक-राजा सभी चार चार प्रकार के पदार्थों से यज्ञ करने जा रहा है ॥८३॥]

इस प्रकार जनता वहाँ से पीटकर बोधिसत्व के निवास-स्थान पर पहुची और प्रासाद की प्रदक्षिणा कर अन्त पुर, कूटागार, उद्यानादि को देख देख गाथाओ द्वारा विलाप करने लगी।

अयमस्स पासादो इद अन्तेपुर सुरमणीय,
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८४॥
इदमस्स कूटागार सोवण्ण पुप्फमल्यवीतिकिण्ण
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८५॥
इदमस्स उय्यान सुपुप्फित सब्बकालिक रम्म
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८६॥

इदमस्स असोकवन सुपुप्फित सब्बकालिक रम्म,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८७॥
इदमस्स कणिकारवन सुपुप्फित सब्बकालिक रम्म,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८८॥
इदस्स पाटलीवन सुपुप्फित सब्बकालिक रम्म,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८९॥
इदमस्स अम्बवन सुपुप्फित सब्बकालिक रम्म,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९०॥
अयमस्स पोक्खरणी सञ्छन्ना पदुमपुण्डरीकेहि सुरमणीया,
नावाच सोवण्ण निकता पुप्फावलिया विचित्ता
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९१॥

[यह उसका प्रासाद है, यह रमणीय अन्त पुर है। अब वे चारों आर्य-पुत्र वध करने के लिये ले जाये गये हैं ॥८४॥ यह उसका पुष्पमालाओं से विकीर्ण स्वर्णिम कूटागार है। अब वे चारों आर्यपुत्र वध के लिये ले जाये गये हैं ॥८५॥ यह उसका सर्व-कालिक रमणीय सुपुष्पित उद्यान है। अब वे ले जाये गये हैं ॥८६॥ यह उसका अशोक बन है। अब वे ले जाये गये हैं ॥८७॥ यह उसका कर्णिकार वन है। अब वे ले जाये गये हैं ॥८८॥ यह उसका पाटलिवन है। अब वे ले जाये गये हैं ॥८९॥ यह उसका आम्रवन है। अब वे ले जाये गये हैं ॥९०॥ यह उसकी पुष्करिणी है, जो पद्मों तथा पुण्डरीको से आच्छादित है, जहाँ स्वर्ण-खचित, पुष्पोंवाली, सुन्दर तथा रमणीय नौकायें हैं। अब वे चारों आर्य-पुत्र वध के लिये ले जाये गये हैं ॥९१॥]

इतनी जगहो पर विलाप कर फिर हस्ति-शाला आदि के पास पहुच कहने लगे।

इदमस्स हत्थिरतन एरावणो गजो वरुणदन्ती,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९२॥
इदमस्स अस्सरतन एकखुरो अस्सो,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९३॥

अयमस्स अस्सरथो सालियनिग्घोसो सुभो रतनचित्तो
यत्थस्सु अय्यपुत्ता सोभिसु नन्दने विय देवा,
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९४॥
कथ नाम साम सम सुन्दरेहि चन्दनमरकतगत्तेहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञ सम्मूळ्हो चतुहि पुत्तेहि ॥९५॥
कथ नाम साम सम सुन्दराहि चन्दनमरकतगत्ताहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञ सम्मूळ्हो चतुहि कञ्ञाहि ॥९६॥
कथ नाम साम सम सुन्दराहि चन्दनमरकतगत्ताहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञ सम्मूळ्हो चतुहि महेसीहि ॥९७॥
कथ नाम साम सम सुन्दरेहि चन्दनमरकतगत्तेहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञ सम्मूळ्हो चतुहि गहपतीहि ॥९८॥
यथा होन्ति गाम निगमा सुञ्ञा अमनुस्सका ब्रहारञ्ञा,
तथा हेस्सति पुप्फवतिया यिट्ठेसु चन्दसुरियेसु ॥९९॥

[यह उसका हस्ति-रतन है, एरावण वरुण दन्ती गज। अब वे चारो आर्य-पुत्र वध के लिए ले जाये गये है ॥९२॥ यह उसका अश्व रतन है, एक खुर अश्व। अब वे ले जाये गये है ॥९३॥ यह उसका अश्व-रथ है, मैना के समान आवाज करने वाला, शुभ रतनो से चित्रित, जिसमे आर्य-पुत्र उसी प्रकार शोभा देते थे, जैसे नन्दन वन मे देवता। अब वे ले जाये गये है ॥९४॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारों पुत्रो को मूर्ख राजा यज्ञ मे कैसे वलि देगा ॥९५॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारो कन्याओ को मूर्ख राजा यज्ञ मे कैसे बलि देगा ॥९६॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त वर्ण चन्दन से लिप्त चारो भार्य्याओ को मूर्ख राजा यज्ञ मे कैसे बलि देगा? ॥९७॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारो गृहपतियो को मूर्ख राजा यज्ञ मे कैसे वलि देगा? ॥९८॥ चन्द्र-सूर्य्य की वलि चढ जाने पर पुष्पवती का वही हाल हो जायगा जो शून्य, मनुष्य-रहित, वडे जगलो का होता है? ॥९९॥]

वोधि सत्व यज्ञ कुण्ड के पास ले जाया गया। उसकी माता गौतमी देवी राजा

के पैरो पर गिरकर लोटपोट होती हुई बोली, "मेरे पुत्रो को जीवन दान दे।" उसने गाथा कही।

उम्मत्तिका भविस्सामि
भुनहना पसुना च परिकिण्णा,
सचे चन्दवर हन्ति
पाणा मे देव निरुज्झन्ति ॥१००॥
उम्मत्तिका भविस्सामि
भुनहना पसुना च परिकिण्णा,
सचे सुरियवर हन्ति
पाणा मे देव निरुज्झन्ति ॥१०१॥

[मै पगली हो जाऊगी। भ्रूण-हता और धूली परिकीर्णा। यदि चन्द्रकुमार की हत्या होती है तो हे देव! मेरे प्राण नही रहेगे ॥१००॥ मै पगली हो जाऊगी। भ्रूण-हता और धूली परिकीर्णा। यदि सूर्य-कुमार की हत्या होती है तो हे देव! मेरे प्राण नही रहेंगे ॥१०१॥]

जब इस प्रकार रो पीटकर भी वह राजा का कुछ भी ध्यान न आकर्षित कर सकी तो वह कुमार की चारो भार्य्याओ को गले से लगाकर रोती हुई बोली—"मेरा पुत्र तुमसे रूठकर गया होगा। तुमने क्यो नही रोका?" उसने गाथा कही।

किन्नुमा न रमयेय्यु
अञ्ञमञ्ञ पियवदा,
घट्टिया ओपरक्खीच
पोक्खरक्खीच नायिका
चन्दसुरियेसु नच्चन्तियो
समो तास न विज्जति ॥१०२॥

[इन परस्पर प्रियभाणिनी घट्टिया, ओपरक्खी, पोक्खरक्खी तथा नायिका ने उसे क्यो नही रोका। चन्द्र-सूर्य के सामने नाचने पर इनकी समानता करने वाला कोई नही ॥१०२॥]

अपनी बहुओ के साथ रो पीटकर और किसी को न पा उसने खण्डहाल को कोसते हुए आठ गाथाये कही।

इम मय्ह हदयसोक
पटिमुञ्चतु खण्डहाल तव माता,
यो मय्ह हदयसोको
चन्दस्मि वधाय निन्नीते ॥१०३॥

इम मय्ह हदयसोक
पटिमुञ्चतु खण्डहाल तव माता,
यो मय्ह हदयसोको
सुरियस्मि वधाय निन्नीते ॥१०४॥

इम मय्ह हदयसोक
पटिमुञ्चतु खण्डहाल तव जाया,
यो मय्ह हदयसोको
चन्दस्मि वधाय निन्नीते ॥१०५॥

इम मय्ह हदयसोक
पटिमुञ्चतु खण्डहाल तव जाया,
यो मय्ह हदयसोको
सुरियस्मि वधाय निन्नीत ॥१०६॥

मा पुत्ते मा च पति
अदक्खि खण्डहाल तव माता,
यो घातेसि कुमारे
अदूसके सीहसकासे ॥१०७॥

मा पुत्ते मा च पति
अद्दक्खि खण्डहाल तव माता,
यो घातेसि कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥१०८॥

मा पुत्ते मा च पतिं
अद्दक्खि खण्डहाल तव जाया,
यो घातेसि कुमारे
अदूसके सीहसकासे॥१०९॥
मा पुत्ते मा च पति
अदक्खि खण्डहाल तव जाया
यो घातेसि कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स॥११०॥

[हे खण्डहाल! चन्द्रकुमार की हत्या करने के लिए ले जाये जाने पर मुझे जो हृदय-शोक हुआ है वह हृदय-शोक तेरी मा पर पड़े॥१०३॥ हे खण्डहाल! सूर्य्य-कुमार की मा पर पड़े॥१०४॥ हे खण्डहाल! चन्द्र कुमार की हत्या करने के लिए ले जाये जाते समय मुझे जो हृदय-शोक हुआ है वह तेरी भार्य्या पर पड़े॥१०५॥ हे खण्डहाल! सूर्य कुमार की भार्या पर पड़े॥१०६॥ हे खण्डहाल! तूने निर्दोष, सिंह-समान कुमारों को मरवाया, तेरी मा को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले॥१०७॥ हे खण्डहाल! तूने सब लोगों के सामने कुमारों को मरवाया, तेरी मा को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले॥१०८॥ हे खण्डहाल! तूने निर्दोष सिंह-समान कुमारों को मरवाया, तेरी भार्या को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले॥१०९॥ हे खण्डहाल! तूने सब लोगों के सामने कुमारों को मरवाया, तेरी भार्य्या को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले॥११०॥]

बोधिसत्व ने यज्ञ-कुण्ड के पास पिता से प्रार्थना की।

मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
हत्थी अस्से च पालेम॥१११॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,

अपि निगळबन्धकापि
हत्थिच्छकणानि उज्झेम ॥११२॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
अस्सच्छकणानि उज्झेम ॥११३॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि यस्स होन्ति तव कामा,
अपि रट्ठा पब्बजिता
भिक्खाचरिय चरिस्साम ॥११४॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखे ४२-४५ ॥]

दिब्य उपयाचन्ति
पुत्तत्थिका दळिद्दापि नारियो,
पटिभाणानि पि हित्वा
पुत्ते नहि लभन्ति एकच्चा ॥११५॥
अस्सासकानि करोन्ति
पुत्ता नो जायन्तु ततो पुत्ता,
अथ नो अकारणस्मा
यञ्ञत्थाय देव घातेसि ॥११६॥
उपयाचितकेन पुत्त
लभन्ति मा तात नो अघातेसि,
मा किच्छालद्धकेहि
पुत्तेहि यजित्थो इम यञ्ञ ॥११७॥
उपयाचितकेन पुत्त
लभन्ति मा तात नो अघातेसि,
मा कपणलद्धकेहि
पुत्तेहि अम्माय नो विप्पवासेहि ॥११८॥

[पुत्र-कामना वाली दरिद्र नारियां भी दिव्य वस्तुओं की इच्छा करती हैं। दोहदों को छोड़कर भी किसी किसी के पुत्र नहीं भी होते ।।११५।। प्राणी कामना करते हैं कि पुत्र पैदा हो और पुत्रों के भी पुत्र पैदा हों। देव ! हमारी अकारण यज्ञ के लिये हत्या न करायें ।।११६।। मिन्नत करने पर पुत्र मिलते हैं। हे तात ! हमारी हत्या न करायें। कठिनाई से प्राप्त होनेवाले पुत्रों की यज्ञ में बलि न दें ।।११७।। मिन्नत करने से पुत्र मिलते हैं। हे तात ! हमारी हत्या न करायें। जैसे-तैसे प्राप्त हुए पुत्रों का उनकी माता से वियोग न करायें ।।११८।।]

उसके इतना कहने पर भी जब पिता ने कुछ ध्यान न दिया तो वह माता के चरणों में गिरकर विलाप करता हुआ कहने लगा।

बहुदुक्खपोसिया चन्द
अम्म तुवं जीय्यसे पुत्त,
वन्दामि खो ते पादे
लभत तातो परलोक ।।११९।।
हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितु देहि,
गच्छामि दानि पवास
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ।।१२०।।
हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितु देहि,
गच्छामि दानि पवास
मातुकत्वा हृदयसोक ।।१२१।।
हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितु देहि,
गच्छामि दानि पवास
जनस्स कत्वा हृदयसोक ।।१२२।।

[माँ ! बहुत कष्ट से पाला हुआ तेरा पुत्र चन्द्र अब तुझसे छूट रहा है। मैं तेरे चरणों की वन्दना करता हूँ। तात पर-लोक प्राप्त करे।।११९।। माँ मेरे!

शिर को सूघ और मुझे अपने चरणो की वन्दना करने दे। मै अब एकराज के यज्ञ के निमित्त प्रवास कर रहा हूँ ॥१२०॥ माँ ! मेरे सिर को सूघ और मुझे अपने चरणो की वन्दना करने दे। मै माता को शोकाकुल करके प्रवास कर रहा हूँ ॥१२१॥ माँ ! मेरे सिर को सूँघ और मुझे अपने चरणो की वन्दना करने दे। मै जनता को शोकाकुल करके प्रवास कर रहा हूँ ॥१२२॥]

माता ने विलाप करते हुए चार गाथाये कही।

हन्द च पदुमपत्तान
मोळि बन्धस्सु गोतमी पुत्त,
चम्पकदलि वीतिमिस्सायो
एसा ते पोराणिया पकति ॥१२३॥
हन्द च विलेपनन्ते
पच्छिमक चन्दन विलिम्पस्सु
येहि च सुविलित्तो
सोभसि राजपरिसाय ॥१२४॥
हन्द च मुदुकानि वत्थानि
पच्छिमक कासिक वासेहि,
येहि च सुनिवत्थो
सोभसि राजपरिसाय ॥१२५॥
मुत्ता मणिकनकविभूसितानि
गणहस्सु हत्थाभरणानि
सोभसि राजपरिसाय ॥१२६॥

[हन्त ! हे गोतमी-पुत्र ! हे चन्द्र-कुमार ! पदुम-पत्र नाम के अलकार से अपने सिर के जूडे को अलकृत कर। चम्प-कदली आदि नाना प्रकार के पुष्पो को धारण कर। यही तेरा अभ्यास रहा है ॥१२३॥ हन्त ! तू अपना अन्तिम चन्दन का लेप कर ले, जिससे विलिप्त होकर तू राज-परिषद मे शोभा देता है ॥१२४॥ हन्त ! काशी के कोमल वस्त्रो को अन्तिम वार पहन ले, जिन्हे धारण कर, तू राज-परिषद मे शोभा

देता है ॥१२५॥ मोती, माणिक्य और स्वर्णभूषित हाथ के आभरणो को धारण कर जिनसे तू राज-परिषद मे शोभा देता है ॥१२६॥]

तब उसकी चन्दा नामक पटरानी ने चरणो मे गिरकर विलाप किया।

नहनूनाय रट्ठपालो
भूमिपति जनपदस्स दायादो
लोकिस्सरो महन्ता
पुत्तेसु सिनेह जनयति ॥१२७॥

[निश्चय से इस राष्ट्रपाल को, इस भमिपति को इस जनपद के उत्तराधिकारी को, इस लोकेश्वर को, इस महान व्यक्ति को पुत्रो के प्रति स्नेह नही है ॥१२७॥]

यह सुन राजा बोला—

मय्ह पिया पुत्ता
अत्तापि पियो तुम्हे च भरियायो,
सग्गञ्च पत्थयानो
तेन मह घातयिस्सामि ॥१२८॥

[मुझे पुत्र प्रिय है, अपना आप भी प्रिय है और तुम (सभी) भार्यायें भी प्रिय है किन्तु मै स्वर्ग की कामना करता हूँ, इसी लिए इनकी हत्या करवा रहा हूँ ॥१२८॥]

चन्दा बोली—

म पठम घातेहि
मा मे हदय दुक्ख अफालेसि,
अलकतो सुदरको
पुत्तो तव देव सुखुमालो ॥१२९॥
हन्दय्य म हनस्सु
सलोका चन्दियेन हेस्सामि,
पुञ्ञ करस्सु विपुल
विचराय उभोव परलोके ॥१३०॥

[पहल मेरी हत्या कर दो। दु ख मेरे हृदय के टुकडे टुकडे न करे। हे देव ! तेरा पुत्र अलकृत है सुन्दर है तथा सुकुमार है ॥१२९॥ हन्त ! आर्य मेरी हत्या कर दें। मै चन्द्र-कुमार के साथ, समान लोक वाली हो जाऊगी। आप बहुत पुण्य करे। हम परलोक मे इकट्ठे विचरेंगे ॥१३० ॥]

राजा बोला—

मा त्व चन्दे रुच्चि
बहुका तव देवरा विसालक्खि,
ते त रमयिस्सन्ति
यिट्ठस्मि गोतमीपुत्ते ॥१३१॥

[हे चन्द्रे ! तुझे यह अच्छा न लगे। हे विशालाक्षी ! तेरे बहुत से देवर है। गोतमी पुत्र के बलि चढ जाने पर वे तेरे साथ रमण करेंगे ॥१३१॥]

तब शा ता ने आधी गाथा कही—

एव वुत्ते चन्दा
अत्तान हन्ति तत्थ तलकेहि,

[ऐसा कहे जाने पर चन्द्रा ने अपने आप को हाथो से पीट लिया।]

इससे आगे उसी का विलाप है—

अलमत्थु जीवितेन
पायामि विस मरिस्सामि ॥१३२॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
मित्ता मच्चा च विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजान
मा घातयि ओरसे पुत्ते ॥१३३॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
ञाती मित्ताच विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजान
मा घातयि अत्रजे पुत्ते ॥१३४॥

इमे तेपि मय्ह पुत्ता
गुणिनो कायुरधारिनो राज,
तेहिपि यजस्सु यञ्ञ
अथ मुञ्चतु गोतमी पुत्ते ॥१३५॥
बिलसत म कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अदूसक सीहसकास ॥१३६॥
बिलसत म कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अपेक्खित सब्बलोकस्स ॥१३७॥

[मुझे जीने की इच्छा नही है। मै विष-पान कर के मर जाऊगी ॥१३२॥ निश्चय से उस राजा के कोई मित्र, अमात्य वा सुहृद नही हं जो इसे कहते कि ओरस पुत्रो की हत्या न करे ॥१३३॥ निश्चय से इस राजा के कोई रिश्तेदार, मित्र अथवा सुहृद नहा हं जो इमे कहते कि अग्रज पुत्रो की हत्या न करे ॥१३४॥ हे राजन! ये मेरे पुत्र है—मालाधारी तथा वाजुवन्दधारी। आप गोतमी-पुत्र को छोडकर इनसे यज्ञ कर ले ॥१३५॥ महाराज मेरे टुकडे टुकडे करके सात वार यज्ञ कर ले। निर्दोश सिंह समान ज्येष्ठ -पुत्र का वध न करे ॥१३६॥ महाराज मेरे टुकडे टुकडे करके सात वार यज्ञ कर लें। सारे लोक के देखते ज्येष्ठ पुत्र का वध न करे ॥१३७॥]

इस प्रकार उसने इन गाथाओ द्वारा राजा के सामने विलाप किया। जब उसे आश्वासन न मिला, तो वह वोधिसत्व के ही पास जा खडी खडी विलाप करने लगी। उसने उसे कहा, "चन्द्रे! अपने जीवन-काल मे जब-जब तूने कोई अच्छी वात कही, मैंने तुझे वडे-छोटे मणि-मुक्तादि वहुत से आभरण दिये। आज तुझे यह अपने शरीर के आभरण अन्तिम रूप से देता हूँ। ग्रहण कर।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

[पहल मेरी हत्या कर दो। दु ख मेरे हृदय के टुकडे टुकडे न करे। हे देव ! तेरा पुत्र अलकृत है सुन्दर है तथा सुकुमार है ॥१२९॥ हन्त ! आर्य मेरी हत्या कर दे। मै चन्द्र-कुमार के साथ, समान लोक वाली हो जाऊगी। आप बहुत पुण्य करे। हम परलोक मे इकट्ठे विचरेंगे ॥१३० ॥]

राजा बोला—

मा त्व चन्दे रुच्चि
बहुका तव देवरा विसालक्खि,
ते त रमयिस्सन्ति
यिट्ठस्मि गोतमीपुत्ते ॥१३१॥

[हे चन्द्रे ! तुझे यह अच्छा न लगे। हे विशालाक्षी ! तेरे बहुत से देवर हैं। गोतमी पुत्र के बलि चढ जाने पर वे तेरे साथ रमण करेंगे ॥१३१॥]

तब शा ता ने आधी गाथा कही—

एव वुत्ते चन्दा
अत्तान हन्ति तत्थ तलकेहि,

[ऐसा कहे जाने पर चन्द्रा ने अपने आप को हाथो से पीट लिया।]

इससे आगे उसी का विलाप है—

अलमत्थु जीवितेन
पायामि विस मरिस्सामि ॥१३२॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
मित्ता मच्चा च विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजान
मा घातयि ओरसे पुत्ते ॥१३३॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
ञाती मित्ताच विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजान
मा घातयि अत्रजे पुत्ते ॥१३४॥

इमे तेंपि मय्हं पुत्ता
गुणिनो कायुरधारिनो राज,
तेहिपि यजस्सु यञ्ञ
अथ मुञ्चतु गोतमी पुत्ते ॥१३५॥
बिलसत म कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अदूसक सीहसकास ॥१३६॥
बिलसत म कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अपेक्खित सब्बलोकस्स ॥१३७॥

[मुझे जीने की इच्छा नही है। मै विष-पान कर के मर जाऊगी ॥१३२॥ निश्चय से उस राजा के कोई मित्र, अमात्य वा सुहृद नही हैं जो इसे कहते कि ओरस पुत्रो की हत्या न करे ॥१३३॥ निश्चय से इस राजा के कोई रिश्तेदार, मित्र अथवा सुहृद नहा हैं जो इसे कहते कि अग्रज पुत्रो की हत्या न करे ॥१३४॥ हे राजन ! ये मेरे पुत्र हैं—मालाधारी तथा बाजुबन्दधारी। आप गोतमी-पुत्र को छोडकर इनसे यज्ञ कर ले ॥१३५॥ महाराज मेरे टुकडे टुकडे करके सात बार यज्ञ कर ले। निर्दोश सिंह समान ज्येष्ठ -पुत्र का वध न करे ॥१३६॥ महाराज मेरे टुकडे टुकडे करके सात बार यज्ञ कर लें। सारे लोक के देखते ज्येष्ठ पुत्र का वध न करे ॥१३७॥]

इस प्रकार उसने इन गाथाओ द्वारा राजा के सामने विलाप किया। जब उसे आश्वासन न मिला, तो वह बोधिसत्व के ही पास जा खडी खडी विलाप करने लगी। उसने उसे कहा, "चन्द्रे ! अपने जीवन-काल मे जब-जब तूने कोई अच्छी बात कही, मैंने तुझे बडे-छोटे मणि-मुक्तादि बहुत से आभरण दिये। आज तुझे यह अपने शरीर के आभरण अन्तिम रूप से देता हूँ। ग्रहण कर।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

बहुका तव दिन्ना आभरणा
उच्चावचा सुभणितम्हि,
मुत्ता मणिवेळुरिया
इद ते पच्छिमक दानं ॥१३८॥

[तेरे कोई अच्छी बात कहने पर तुझे बहुत से छोटे-बडे मोती, माणिक्य तथा बिल्लौर के आभरण दिये। यह तुझे अन्तिम देना है॥१३८॥]

यह सुन चन्द्रा देवी ने नौ गाथाओं मे विलाप किया—

येसं पुब्बे खन्धेसु
फुल्लमाला गुणा विवत्तिसु,
ते सज्ज पीतनिसितो
नेत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु॥१३९॥

येस पुब्बे खन्धेसु
चित्रमालागुणा विवत्तिसु,
तेसज्ज पीतनिसितो
नेत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु॥१४०॥

अचिरा वत नेत्तिसो
विवत्तिस्सति राजपुत्तान खन्धेसु,
अथ मम हृदय न फलति
ताव दळहबन्धनञ्च मे आसि॥१४१॥

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दन विलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स॥१४२॥

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदय सोक॥१४३॥

कासिक सुचिवत्यधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्द सुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोक ॥१४४॥
मसरस भोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्जत्थाय एकराजस्स ॥१४५॥
मसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदयसोक ॥१४६॥
मसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोक ॥१४७॥

[जिनके गलो मे पहले फूलो की माला पडती थी, उनके गलो पर आज पीली (?) तेज तलवार पडेगी ॥१३९॥ जिनके गलो मे पहले विभिन्न मालायें पडती थीं, उनके गलो पर आज पीली (?) तेज तलवार पडेगी ॥१४०॥ अचिर काल मे ही राजपुत्रो की गरदन पर तलवार गिरेगी। अभी भी मेरा हृदय नही फटता। वह इतना कठोर है ॥१४१॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिये जाओ ॥१४२॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो मा के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४३॥ काशी के चन्द्र-सूर्य्य कुमारो जनता के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४४॥ मास-रस का भोजन किये स्नान कराने वालो द्वारा भलि प्रकार स्नान कराये गये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिए

बहुका तव दिन्ना आभरणा
उच्चावचा सुभणित्तम्हि,
मुत्ता मणिवेळुरिया
इदं ते पच्छिमक दानं ॥१३८॥

[तेरे कोई अच्छी बात कहने पर तुझे बहुत से छोटे-बडे मोती, माणिक्य तथा बिल्लौर के आभरण दिये। यह तुझे अन्तिम देना है ॥१३८॥]

यह सुन चन्द्रा देवी ने नौ गाथाओं से विलाप किया—

येस पुब्बे खन्धेसु
फुल्लमाला गुणा विवत्तिसु,
ते सज्ज पीतनिसितो
नेंत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु ॥१३९॥
येस पुब्बे खन्धेसु
चित्रमालागुणा विवत्तिसु,
तेसज्ज पीतनिसितो
नेंत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु ॥१४०॥
अचिरा वत नेंत्तिसो
विवत्तिस्सति राजपुत्तान खन्धेसु,
अथ मम हृदय न फलति
ताव दळहबन्धनञ्च मे आसि ॥१४१॥
कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दन विलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥१४२॥
कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदय सोक ॥१४३॥

कासिक सुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्द सुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोक ॥१४४॥
मसरस भोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्जत्याय एकराजस्स ॥१४५॥
मसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदयसोक ॥१४६॥
मसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोक ॥१४७॥

[जिनके गलो मे पहले फूलो की माला पडती थी, उनके गलो पर आज पीली (?) तेज तलवार पडेगी ॥१३९॥ जिनके गलो मे पहले विभिन्न मालाये पडती थी, उनके गलो पर आज पीली (?) तेज तलवार पडेगी ॥१४०॥ अचिर काल मे ही राजपुत्रो की गरदन पर तलवार गिरेगी। अभी भी मेरा हृदय नही फटता। वह इतना कठोर है ॥१४१॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिये जाओ ॥१४२॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो मा के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४३॥ काशी के चन्द्र-सूर्य्य कुमारो जनता के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४४॥ मास-रस का भोजन किये स्नान कराने वालो द्वारा भलि प्रकार स्नान कराये गये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिए

जाओ ।।१४५।। मास-रस का भोजन किये चन्द्र-सूर्य्य कुमार मा के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ।।१४६ ।। मास-रस का भोजन किये चन्द्र-सूर्य्य कुमार जनता के हृदय मे शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ।।१४७।।]

इस प्रकार जब वह रोती पीटती रही, तभी यज्ञ-कुण्ड की सारी तैयारी पूरी हो गई। राजपुत्र को गरदन झुकाकर बिठाया गया। खण्डहाल स्वर्ण-थाल मगवाये हाथ मे खड्ग लिये खडा था कि उसकी गरदन काटूगा। यह देख चन्द्रा देवी ने सोचा कि अब कोई दूसरा उपाय नही है। मै अपने सत्य के बल से स्वामी का मगल करूगी। उसने हाथ-जोड परिषद मे विचरते हुए सत्य-क्रिया की। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

सब्बस्मि उपक्खटस्मि
निसीदिते चन्दियस्मि यञ्ञत्थाय,
पञ्चालराजधीता
पञ्जलिका सब्ब परिसमनुपरियासि ।।१४८।।
येन सच्चेन खण्डहालो
पापकम्म करोति दुम्मेधो,
एतेन सच्चवज्जेन
समगिनी सामिकेन होमि ।।१४९।।
येधत्थि अमनुस्सा
यानि च यक्ख भूत भब्यानि
करोन्तु मे वेय्यावटिक
समगिनी सामिकेन होमि ।।१५०।।
या देवता इधागता
यानि च यक्ख भूत भब्यामि,
सरणेसिनि अनाथ
तायथ मं याचामह पतिमाह अजिय्य ।।१५१।।

[यज्ञ की सारी तैयारी हो जाने पर, चन्द्र कुमार के बलि दिये जाने के लिये बैठ जाने पर, पञ्चालराजधीता हाथ जोडे सारी परिषद मे घूमने लगी ॥१४८॥ मूर्ख खण्ड-हाल जिस "सत्य" से पाप-कर्म करता है, उसी सत्य के प्रताप से मै स्वामी की सगिनी बनू ॥१४६॥ यहाँ जितने अमनुष्य हैं, जितने यक्ष है और जितने हुए अथवा होनेवाले प्राणी है वे सब मेरी सेवा करे, मै स्वामी की सगिनी बनूं ॥१५०॥ यहाँ जितने देवता आये हैं, जितने यक्ष तथा हुए और होनेवाले प्राणी हैं, वे सब मुझ शरणागत अनाथ का त्राण करे। मै याचना करती हूँ कि मै अपने पति को न गँवाऊ ॥१५१॥]

देवेन्द्र शक्र ने उसका विलाप सुना और जब वह समाचार जाना तो वह गर्म लोहा लेकर पहुचा और राजा को डराकर सभी को मुक्त कर दिया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

त सुत्वा अमनुस्सो
अयोकूट परिब्भमेत्वान,
भयमस्स जनयन्तो
राजान इदमवोच ॥१५२॥
बुज्झस्सु खो राजकलि
माताह मत्थक निताळेमि,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अदूसक सीहसकास ॥१५३॥
को ते दिट्ठा राजकलि
पुत्त भरियायो हञ्ञमाना
सेट्ठी च गहपतयो
अदूसका सग्गकामा हि ॥१५४॥
त सुत्वा खण्डहालो
राजा च अब्भुतमिद दिस्वान,
सब्बेस बन्धनानि मोचेसु
यथा त अपापान ॥१५५॥

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये तत्थ समागता तदा आसुं,
सब्बे एकेकलेड्डुकमदसु
एस वधो खण्ड हालस्स ॥१५६॥

[यह सुन शक्र ने वज्र (अयकूट) घुमाते हुए, राजा के मन मे भय सञ्चार करके कहा ॥१५२॥ हे पापी-राजा! ममज्ञ! कही मै तेरा मस्तक न फोड दू। निर्दोष सिंह-समान ज्येष्ठ पुत्र का वध मत कर ॥१५३॥ हे पापी-राजा! स्वर्ग की कामना से निर्दोष पुत्रो, भार्य्याओ तथा श्रेष्ठी गृहपतियो की हत्या करने वाले तूने कहाँ देखे है ॥१५४॥ यह सुन और यह अदभुत दृश्य देख खण्डहाल तथा राजा ने सभी निर्दोष जनो के बन्धन खोल दिये ॥१५५॥ सब के मुक्त होने पर वहाँ जितने लोग इकट्ठे हुए थे उन सब ने खण्डहाल पर एक-एक ढेला फेका। यही खण्डहाल का मरण हुआ ॥१५६॥]

उसकी जान ले जनता राजा की जान लेने लगी। बोधिसत्व ने पिता का आलिङ्गन कर उसे मारने नही दिया। जनता बोली—"इस पापी-राजा का प्राण नही लेगे, किन्तु अब हम इसे न राज-छत्र देगे और न नगर मे रहने देगे। चण्डाल बनाकर नगर के बाहर बसायेगे।" उन्होने उसकी राजकीय पोषाक उतारी, काषाय वस्त्र पहनाया तथा पीले रग के चीथडो से सिर लपेट, चण्डाल बना चण्डालो की बस्ती मे ही भेज दिया। जिन्होने पशु-घात वाला यज्ञ किया, कराया अथवा अनुमोदन किया वे सब नरकगामी ही हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सब्बे पतिंसु निरय
यथा त पापक करित्वान,
नहि पापकम्म कत्वा
लब्भा सुगति इतो गन्तु ॥१५७॥

[उस पाप-कर्म को करके सभी नरक मे पडे। पाप करके यहाँ से जाने पर किसी को भी सुगति नही मिलती ॥१५७॥]

उस जनता ने भी दो मनहूसों को छोड़ वहीं अभिषेक का सामान मंगवा चन्द्रकुमार का अभिषेक किया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
चन्द अभिसिञ्चिंसु,
समागत राजपरिसा च ॥१५८॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
चन्द अभिसिञ्चिंसु
समागता राजकञ्ञायो ॥१५९॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
चन्द अभिसिञ्चिंसु
समागता देवपरिसा च ॥१६०॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
चन्द अभिसिञ्चिंसु
समागता देवकञ्ञायो ॥१६१॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु
चेळुक्खेपमकरु
समागता राजपरिस च ॥१६२॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु
चेळुक्खेपमकरु
समागता राजकञ्ञायो ॥१६३॥

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
वेळुक्खेपमकरू
समागता देव पीरसा च ॥१६४॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसु,
वेळुक्खेपमकरू
समागता राजकञ्ञायो ॥१६५॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
बहु आनन्दतो अहु वसो,
नन्दिप्पवेसि नगर
बन्धना मोक्खो अघोसित्थ ॥१६६।'

[सभी के मुक्त होने के समय राजपरिषद के साथ और जो सब आये थे, उन्होंने चन्द्र-कुमार का अभिषेक किया ॥१५०॥ सभी के राज कन्याओं के अभिषेक किया ॥१५९॥ सभी के देव परिषद के अभिषेक किया ॥१६०॥ सभी के . देवकन्याओ के अभिषेक किया ॥१६१॥ सभी के मुक्त होने के समय राज परिषद के साथ और जो सब आये थे, उन्होंने आकाश में वस्त्र उछाले ॥१६२॥ सभी के राज कन्याओ के आकाश मे वस्त्र उछाले ॥१६३॥ सभी के देव परिषद के आकाश मे वस्त्र उछाले ॥१६४॥ सभी के देव कन्याओ के आकाश मे वस्त्र उछाले ॥१६५॥। सभी के मुक्त होने पर बहुत आनन्द हुआ, नगर मे आनन्द-भेरी बजा और घोषणा की गई कि सभी मुक्त हुए ॥।१६६॥]

बोधिसत्व ने पिता के गिर्द चार-दीवारी (?) बनवा दी। किन्तु वह नगर के भीतर नही ही आ सकता था। जब खर्चा नही रहता तो बोधिसत्सव के उद्यान क्रीडा आदि के लिये जाते समय 'पिता होने के कारण' प्रणाम नही करता। किन्तु

हाथ जोडकर 'स्वामी, चिरकाल तक जीवें' कहता। क्या आवश्यकता है? पूछने पर कहता। वह खर्चा दिलवा देता।

बोधिसत्व धर्मानुसार राज्य कर आयु की समाप्ति पर देव-लोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी पहले भी देवदत्त ने अकेले मेरे कारण बहुतो को मारने का प्रयत्न किया' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय खण्ड-हाल देवदत्त था। गोतमी देवी महामाया। चन्द्रा राहुल माता। वासुल राहुल। सेला उप्पलवण्णा। सूर वाम गोत्त कस्सप। चन्द्र सेन मोग्गलान। सुरिय कुमारो सारिपुत्त। चन्द्र राजा तो मैं ही था।

५४३. भूरिदत्त जातक

'य किञ्चि रतन अत्थि ' यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय उपोसथ-व्रत करने वाले उपासको के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे उपोसथ-व्रत रखने के दिन प्रात काल ही व्रत का अधिष्ठान कर, दान दे, भोजनान्तर हाथ में गन्ध माला आदि ले, जेतवन जा, धर्म-श्रवण के समय एक ओर बैठे। शास्ता ने धर्म सभा मे आ, अलकृत बुद्धासन पर बैठ, भिक्षु सघ की ओर देखा। भिक्षु आदि जिनके बारे में भी बात चीत पैदा होने को होती है, उन्ही से तथागत वार्तालाप करते है। इस लिए यह जान कर कि आज उपासको के बारे में पूर्व-चर्य्या सम्बन्धी धर्म-कथा चलेगी, शास्ता ने उपासको से बातचीत करते समय पूछा—"उपासको! क्या उपोसथ-व्रतधारण किया है?" उनके "भन्ते! हाँ" कहने पर कहा, "उपासको! अच्छा किया। इसमे कुछ आश्चर्य नही है कि यदि तुमने मेरे समान बुद्ध उपदेष्टा आचार्य को पाकर उपोसथ-व्रत धारण किया है, पुराने पण्डितो ने आचार्य-हीन होने पर भी

वडी सम्पत्ति को छोड उपोसथ-व्रत किया।" शास्ता ने उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त ने राज्य करने के समय पुत्र को (उप?) राज्य दिया। जव उसने पुत्र का वैभव देखा तो उसे शका हुई कि कही राज्य भी न ले ले। वह वोला, "तात! तू यहाँ से निकल, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाकर रह और मेरे मरने पर आकर कुलागत राज्य ग्रहण करना।" उसने 'अच्छा' कह पिता को प्रणाम किया और निकल कर क्रमश यमुना के तट पर पहुचा, यमुना, समुद्र तथा पर्वत के वीच मे पर्ण-शाला वना जगल के फल-मूल खाकर रहने लगा।

उस समय समुद्र तटवर्ती नाग-भवन मे एक ऐसी नाग-तरुणी रहती थी, जिसका पति मर गया था। उसने दूसरी स्वामी-वालियो का वैभव देखा तो राग के वशीभूत हो नाग-भवन से निकल समुद्र-तट पर विचरने लगी। वहाँ उसने राजपुत्र के पद-चिह्न देखे। वह उनका अनुसरण करती हुई पर्णशाला पहुची। उस समय राज-पुत्र फल-मूल चुगने गया था। पर्णशाला मे प्रवेश करने पर काठ की चौकी तथा अन्य चीजो को देखकर उसने सोचा कि यह किसी प्रव्रजित का निवास स्थान होगा। उसने तै किया कि वह परीक्षा करेगी कि वह श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ है वा नही? यदि श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ होगा तो नैष्क्रमय की रुचि होने के कारण मेरे द्वारा अलकृत शयनासन अङ्गीकार नही करेगा। यदि रागी होगा और श्रद्धा से प्रव्रजित नही हुआ होगा तो मेरे द्वारा तैयार की गई शैय्या पर ही लेट जायगा। तव इसे लेकर अपना स्वामी वना कर यही रहूँगी।

वह नागभवन गई और वहाँ से दिव्य-पुष्प तथा दिव्य सुगधियाँ लेकर आई। फिर उसकी पुष्प-शैया सजा, पर्णशाला को पुष्प-मय वना, सुगधित चूर्ण विखेर, पर्णशाला को अलकृत कर नागभवन ही गई। राजपुत्र शाम को लौटा तो पर्णशाला में प्रविष्ट होने पर जव उसने वह क्रिया देखी तो सोचने लगा कि यह शैया किसने तैयार की? फल-मूल खा चुकने पर उसे हुआ कि ओह फूलो की सुगधी! शैय्या अच्छी तरह विछाई गई है। श्रद्धा से प्रव्रजित न हुआ होने के कारण उसे

आनन्द आया। वह पुष्प शैय्या पर लेट गया और सो गया। दूसरे दिन सूर्य्योदय होने पर उठा और शाला को बिना ही झाडे-बुहारे फल-मूल के लिए चला गया।

नाग-कन्या ने आकर पुष्पों को कुम्हलाया हुआ देखा। सोचा—'यह रागी है। श्रद्धा से प्रव्रजित नहीं हुआ है। मैं इसे फसा सकती हूँ।' उसने पुराने फूल हटा दिये और दूसरे फूल लाकर शैया तैय्यार की, पर्णशाला सजाई और टहलने की जगह फूल बिखेर कर नाग-भवन ही चली गई। वह उस दिन भी पुष्प-शैय्या पर ही सोया। दूसरे दिन सोचने लगा—"इस पर्णशाला को कौन सजाती है?' वह फल-मूल के लिये न जाकर पर्णशाला से थोडी ही दूर पर छिप कर खडा रहा। वह भी बहुत-सी सुगन्धियाँ तथा पुष्प ले आश्रम आई।।

राजपुत्र सुन्दर नाग-तरुणी को देखते ही उस पर आसक्त हो गया। उसने बिना अपने आप को प्रकट किये, उसके पर्णशाला मे दाखिल होकर शैय्या तैयार करने पर पूछा—"तू कौन है?"

स्वामी नाग-तरुणी।"

"तेरा स्वामी है! अथवा नहीं है?"

'मेरा स्वामी नहीं है। मैं विधवा हूँ। आप कहाँ रहते है?"

"मै वाराणसी नरेश का पुत्र हू। मेरा नाम ब्रह्मदत्त कुमार है। तू नाग-भवन छोडकर क्यों घूम रही है?"

"मैं स्वामी वाली नाग-तरुणियो का वैभव देख राग के कारण उत्कण्ठित हूँ। वहाँ से निकल स्वामी की खोज मे भटक रही हूँ।"

"मै भी श्रद्धा से प्रव्रजित नहीं हुआ हूं। पिता द्वारा निकाल दिया गया हूँ। यहाँ आकर रहता हूँ। तू चिन्ता न कर। मैं तेरा स्वामी हो जाऊगा। दोनो यहाँ इकट्ठे रहेंगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

इसके बाद वे दोनो जने वहाँ इकट्ठे रहने लगे। उसने अपने प्रताप से अत्यन्त मूल्यवान घर बनवाया और अत्यन्त मूल्यवान पलग मगवाकर उस पर बिछावन बिछवाया। उसके बाद से फल-मूल का खाना बन्द हो गया। दिव्य खाना-पीना

ही होने लगा। आगे चलकर नाग-तरुण. ने पुत्र को जन्म दिया। उसका सागर ब्रह्मदत्त नाम रखा गया। उसके पावो से चलने लगने पर नाग-तरुणी ने पुत्री को जन्म दिया। समुद्र तट पर जन्म होने से उसका नाम समुद्र-जन्मा रखा गया।

एक वाराणसी निवासी वनचर वहाँ आ पहुचा। उसका स्वागत-सत्कार किया गया। उसने राज-पुत्र को पहचान लिया और कुछ दिन वहाँ रहकर "देव! मै आपके यहाँ रहने की वात राज-कुल को सूचित करूगा" कह, निकल कर, वाराणसी गया। उस समय राजा मर गया था। अमात्य उसका शारीरिक कृत्य समाप्त कर सातवे दिन इकट्ठे हुए और सोचने लगे, "विना राजा के राज्य नही रहता। राज-पुत्र कहाँ है और है भ. अथवा नही है, पता नही? पुष्प-रथ विसर्जित करके राजा का निर्णय करेगे।" उसी समय वनचर ने नगर मे प्रवेश कर वह वात सुन, अमात्यो के पास जाकर कहा, "मै राज-पुत्र के पास तीन-चार दिन रह कर आया हूं।"

यह सुन अमात्यो ने उसका सत्कार किया और उसे मार्ग-दर्शक वना वहाँ पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत सत्कार हुआ। उन्हो ने राजा के मर जाने की वात कह निवेदन किया, "देव! राज्य सभाले।" वह नाग-कन्या के मन की वात जानने के लिये उसके पास गया। वोला—"भद्रे! मेरे पिता का देहान्त हो गया। आमात्य मुझे छत्र धारण कराने के लिये आये है। भद्रे चले। दोनो मिलकर वारह योजन की वाराणसी पर राज्य करेगे। तू सोलह हजार स्त्रियो की पटरानी होगी।"

"स्वामी! हम नही जा सकते।"

"किस कारण?"

"हम घोर विषैली है, शीघ्र क्रोध आता है, थोडी वात पर भी गुस्सा हो जाती हूं। सपत्नि का क्रोध भयानक होता है। यदि मैने कुछ देख-सुनकर क्रोध की आँख से देखा तो वह भुस की मुट्ठी की तरह विखर जायेगी। इस कारण से मै नही जा सकती।"

राजपुत्र ने अगले दिन भी आग्रह किया। वह वोली—"मै किसी भी तरह नही जा सकती। हाँ यह मेरे पुत्र नाग-कुमार है। यह तेरे सम्वन्ध से पैदा हुए है। ये मनुष्य-जाति के है। यदि तेरा मेरे प्रति स्नेह है तो इनके सम्वन्ध मे

अप्रमादी रहना। ये पानी के जीव हैं, सुकुमार है। रास्ते चलते धूप-हवा के कष्ट से मर भी जा सकते हैं। एक नौका उत्कीर्ण करवाकर, पानी से भर, उसमे इन्हे जल-क्रीडा करते हुए ले जाना। नगर मे भी भूमि के अन्दर ही पुष्करिणी बनवाना। इस प्रकार इन्हें कष्ट न होगा।"

यह कह राजपुत्र को प्रणामकर और उसकी प्रदक्षिणा कर पुत्रो का आलिंगन किया। फिर उन्हे स्तनो के बीच लिटा उनका मुँह चूमकर उन्हे राजपुत्र को सौपा। तब रो-पीटकर वही अन्तर्धान हो नाग-भवन ही गई। राज-पुत्र खिन्न मन से अश्रु-पूर्ण नेत्रो सहित निवास-स्थान से निकला और आँखो के आँसू पोछ कर अमात्यो के पास आया। उन्होने वही उसका अभिषेक किया और बोले—"देव! अपने नगर चले।" तो शीघ्र ही नौका उत्कीर्ण कर उसे गाडी पर चढाओ और उसमे पानी भरकर पानी पर नाना वर्ण तथा गन्ध के फूल बिखेर दो। मेरे पुत्रो का मूल पानी मे है। वे उसमे क्रीडा करते हुए सुख पूर्वक जायेंगे।" अमात्यो ने वैसा ही किया। राजा ने वाराणसी पहुच, अलकृत नगर मे प्रवेश किया और सोलह हजार नर्तकियो तथा अमात्य आदि के बीच बैठ सप्ताह भर तक महापान पिया और पुत्रो के लिए पुष्करिणी बनवाई। वे लगातार वही क्रीडा करते रहे।

एक दिन जब पुष्करिणी मे पानी छोडा जा रहा था एक कछुआ आ गया। जब उसे निकलने की जगह नही मिली तो वह पुष्करिणी की तह मे पड रहा। बच्चो के खेलने के समय पानी से सिर बाहर निकाला, किन्तु उन्हे देख फिर पानी मे नीचे चला गया। वे उसे देख डरे और पिता के पास जाकर कहा, "तात! पुष्करिणी मे एक यक्ष हमे त्रास देता है।" राजा ने आदमियो को आज्ञा दी, "जाओ उसे पकडो।" उन्होने जाल फेंककर कछुवे को पकड लिया और लेजाकर राजा को दिखाया। कुमार उसे देख चिल्लाये। "तात! यह पिशाच है।" राजा को पुत्र-स्नेह के कारण कछुवे पर क्रोध आया। उसने आज्ञा दी—"जाओ इसे दण्ड दो।" वहाँ कुछ का प्रस्ताव था कि यह राज-वैरी है, इसे ऊखल में डालकर मूसलो मे कूटकर चूर्ण-विचूर्ण कर देना चाहिए। कुछ का प्रस्ताव था कि तीन बार पकाकर खाना चाहिये। कुछ का प्रस्ताव था कि अङ्गारो पर सेकना चाहिये। कुछ का प्रस्ताव था कि इसे कडाही मे ही पकाना चाहिये। किन्तु एक जल-भीरु

अमात्य ने प्रस्ताव किया कि—'इसे यमुना मे गढे मे डालना चाहिये।' वहाँ यह महान-विनाश को प्राप्त होगा। इससे बढकर इसे दण्ड नही दिया जा सकता।" कछुए ने उसकी बात सुनी तो सिर निकाल कर कहा—"भो! मेरा क्या अपराध है, जिससे मुझे ऐसा दण्ड दिया जा रहा है। मैं दूसरे दण्ड सह सकता हूँ किन्तु यह अत्यन्त कठोर है। ऐसा मत सोचे।" यह सुना तो राजा ने कहा "नही, यही दण्ड दिया जाना चाहिए।" उसने उसे यमुना मे गढे मे फिकवा दिया। वह एक नाग-भवन-गामी प्रवाह में पडकर नाग-भवन जा पहुचा।

उस बाढ मे धृतराष्ट्र नाग-नरेश के पुत्र खेल रहे थे। उन्होने उसे देखा तो बोले, "इस दास को पकडो।" वह सोचने लगा—"मै वाराणसी-नरेश के हाथ से मुक्त हो कर इन दारुण नागो के हाथ आ फसा। अब इनसे किस उपाय से मुक्त होऊ?" उसे सूझा, एक उपाय है। वह झूठ बोला, और कहा, "तुम धृतराष्ट्र नाग-नरेश की सतान होकर ऐसी बात क्यो करते हो। मै चित्त-चूल नाम का कछुआ हूँ। वाराणसी-नरेश का दूत हूँ। धृतराष्ट्र के पास आया हूं। हमारा राजा धृतराष्ट्र को अपनी कन्या देना चाहता है। उसने मुझे भेजा है। मेरी उससे भेंट कराओ।"

वे प्रसन्न हुए और उसे राजा के पास लेजाकर वह बात कही। राजा ने उसे बुलवाया, कहा,"लाओ दिखाओ।" उसे देखते ही वह असन्तुष्ट हुआ। बोला "क्या इस प्रकार के निकृष्ट शरीर वाले दूत-कर्म कर सकते है?" यह बात सुनी तो कछुआ बोला—"क्या राजा के राज-दूत को ताड जैसा बडा होना चाहिए? यह गौण बात है कि शरीर छोटा है वा बडा है। असली बात जहाँ जाय वहाँ का कार्य ही है। महाराज! हमारे राजा के पास बहुत से दूत है। स्थल पर कोई काम हो तो आदमी करते है। आकाश मे पक्षिगण- और जल मे मै। मेरा नाम चित्त-चूल है। मै पदाधिकारी हूँ। राजा का प्रिय हूँ। मेरा परिहास न करे।" इस प्रकार उसने अपने गुणो का वर्णन किया।

उसे धृतराष्ट्र ने पूछा। राजा ने तुझे किस उद्देश्य से भेजा है? "महाराज, मुझे राजा ने यह कहा कि मैंने सारे जम्बुद्वीप के राजाओ के साथ मैत्री-धर्म स्थापित किया है। अब मै धृतराष्ट्र राजा के साथ मैत्री करने के लिए अपनी समुद्र-जा नाम की कन्या दूंगा—यह कह मुझे भेजा है। आप विलम्ब न कर मेरे साथ ही परि

पद भेज, दिन निश्चित कर कुमारी को ग्रहण करे।" उसने सन्तुष्ट हो, सत्कार कर उसके साथ चार नाग-तरुण भेजे, "जाओ, राजा की बात सुन, दिन निश्चित कर के आओ।"

उन्होंने 'अच्छा' कहा और कछुवे को ले नाग-भवन से निकले। यमुना तथा वाराणसी के बीच मे एक कमल-तालाब देखकर किसी उपाय से कछुवे की भाग निकलने की इच्छा हुई। इसलिये वह बोला—"भो नाग-तरुणो! हमारा राजा और उसके पुत्र तथा पत्नी जब मुझे पानी मे से होकर राज-भवन आया देखते है तो कहते है—हमें कँवल दो। हमे भिमे दो। मै उनके लिये ये लेता हूँ। तुम मुझे छोडकर, मेरे बिना ही पहले से राजा के पास जाओ। मै तुम्हे वही मिलूँगा।" उन्होने उसका विश्वास कर उसे छोड दिया। वह वहाँ एक ओर जा छिपा नाग-तरुणो ने भी जब उसे न देखा तो समझा कि वह राजा के पास चला गया होगा। वे ब्रह्मचारी का रूप धारण कर राजा के पास पहुचे।

राजा ने स्वागत-सत्कारकर पूछा—"कहाँ से आये?"

"महाराज, धृतराष्ट्र के पास से।"

"किस कारण से?"

"महाराज! हम उसके दूत है। धृतराष्ट्र ने आपका कुशल-समाचार पूछा है। आप जो चाहे, सो वह आपको देने को तैयार है। अपनी समुद्र-जा नामकी कन्या को हमारे राजा की चरण-सेविका बना दे।" यह अर्थ प्रकाशित करने के लिये पहली गाथा कही—

य किञ्चि रतन अत्थि धतरट्ठनिवेसने,
सब्बानि ते उपायन्तु धीतर देहि राजिनो॥१॥

[धृतराष्ट्र के घर मे जितने भी रतन है, वे तुझे मिले। तू (हमारे) राजा को (अपनी) लडकी दे॥१॥]

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

न नो विवाहो नागेहि कतपुब्बो कुदाचन,
त विवाह असयुत्त कथ अम्हे करोमसे॥२॥

अमात्य ने प्रस्ताव किया कि—'इसे यमुना मे गढे मे डालना चाहिये।' वहाँ यह महान-विनाश को प्राप्त होगा। इससे बढकर इसे दण्ड नही दिया जा सकता।" कछुए ने उसकी बात सुनी तो सिर निकाल कर कहा—"भो! मेरा क्या अपराध है, जिससे मुझे ऐसा दण्ड दिया जा रहा है। मै दूसरे दण्ड सह सकता हूँ किन्तु यह अत्यन्त कठोर है। ऐसा मत सोचे।" यह सुना तो राजा ने कहा "नही, यही दण्ड दिया जाना चाहिए।" उसने उसे यमुना मे गढे मे फिकवा दिया। वह एक नाग-भवन-गामी प्रवाह में पडकर नाग-भवन जा पहुचा।

उस बाढ मे धृतराष्ट्र नाग-नरेश के पुत्र खेल रहे थे। उन्होने उसे देखा तो बोले, "इस दास को पकडो।" वह सोचने लगा—"मै वाराणसी-नरेश के हाथ से मुक्त हो कर इन दारुण नागो के हाथ आ फसा। अब इनसे किस उपाय से मुक्त होऊ?" उसे सूझा, एक उपाय है। वह झूठ बोला, और कहा, "तुम धृतराष्ट्र नाग-नरेश की सतान होकर ऐसी बात क्यो करते हो। मै चित्त-चूल नाम का कछुआ हूँ। वाराणसी-नरेश का दूत हूँ। धृतराष्ट्र के पास आया हू। हमारा राजा धृतराष्ट्र को अपनी कन्या देना चाहता है। उसने मुझे भेजा है। मेरी उससे भेट कराओ।"

वे प्रसन्न हुए ओर उसे राजा के पास लेजाकर वह बात कही। राजा ने उसे बुलवाया, कहा,"लाओ दिखाओ।" उसे देखते ही वह असन्तुष्ट हुआ। बोला "क्या इस प्रकार के निकृष्ट शरीर वाले दूत-कर्म कर सकते है?" यह बात सुनी तो कछुआ बोला—"क्या राजा के राज-दूत को ताड जैसा बडा होना चाहिए? यह गौण बात है कि शरीर छोटा है वा बडा है। असली बात जहाँ जाय वहाँ का कार्य ही है। महाराज! हमारे राजा के पास बहुत से दूत है। स्थल पर कोई काम हो तो आदमी करते है। आकाश मे पक्षिगण- और जल मे मै। मेरा नाम चित्त-चूल है। मै पदाधिकारी हूँ। राजा का प्रिय हूँ। मेरा परिहास न करे।" इस प्रकार उसने अपने गुणो का वर्णन किया।

इसे धृतराष्ट्र ने पूछा। राजा ने तुझे किस उद्देश्य से भेजा है? "महाराज, मुझे राजा ने यह कहा कि मैने सारे जम्बुद्वीप के राजाओ के साथ मैत्री-धर्म स्थापित किया है। अब मै धृतराष्ट्र राजा के साथ मैत्री करने के लिए अपनी समुद्र-जा नाम की कन्या दूँगा—यह कह मुझे भेजा है। आप विलम्ब न कर मेरे साथ ही परि

पद भेज, दिन निश्चित कर कुमारी को ग्रहण करे।" उसने सन्तुष्ट हो, सत्कार कर उसके साथ चार नाग-तरुण भेजे, "जाओ, राजा की बात सुन, दिन निश्चित कर के आओ।"

उन्होंने 'अच्छा' कहा और कछुवे को ले नाग-भवन से निकले। यमुना तथा वाराणसी के बीच में एक कमल-तालाब देखकर किसी उपाय से कछुवे की भाग निकलने की इच्छा हुई। इसलिये वह बोला—"भो नाग-तरुणो! हमारा राजा और उसके पुत्र तथा पत्नी जब मुझे पानी में से होकर राज-भवन आया देखते हैं तो कहते हैं—हमे कँवल दो। हमे भिसे दो। मैं उनके लिये ये लेता हूँ। तुम मुझे छोडकर, मेरे बिना ही पहले से राजा के पास जाओ। मैं तुम्हे वही मिलूंगा।" उन्होने उसका विश्वास कर उसे छोड दिया। वह वहाँ एक ओर जा छिपा नाग-तरुणो ने भी जब उसे न देखा तो समझा कि वह राजा के पास चला गया होगा। वे ब्रह्मचारी का रूप धारण कर राजा के पास पहुचे।

राजा ने स्वागत-सत्कारकर पूछा—"कहाँ से आये?"

"महाराज, धृतराष्ट्र के पास से।"

"किस कारण से?"

"महाराज! हम उसके दूत हैं। धृतराष्ट्र ने आपका कुशल-समाचार पूछा है। आप जो चाहें, सो वह आपको देने को तैयार है। अपनी समुद्र-जा नामकी कन्या को हमारे राजा की चरण-सेविका बना दें।" यह अर्थ प्रकाशित करने के लिये पहली गाथा कही—

> य किञ्चि रतन अत्थि धतरट्ठनिवेसने,
> सब्बानि ते उपायन्तु धीतर देहि राजिनो॥१॥

[धृतराष्ट्र के घर में जितने भी रतन हैं, वे तुझे मिले। तू (हमारे) राजा को (अपनी) लडकी दे॥१॥]

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

> न नो विवाहो नागेहि कतपुब्बो कुदाचन,
> त विवाह असयुत्त कथ अम्हे करोमसे॥२॥

[नागो के साथ कर्म। हमने पहले विवाह नही किया। यह अयोग्य विवाह हम कैसे करेंगे ? ॥२॥]

यह सुना तो नाग-तरुणो ने क्रोधित हो राजा को धमकाया, "यदि धृतराष्ट्र के साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है तो अपने चित्तसूल नाम के सेवक को "समुद्रजा दीता दूंगा" कहकर हमारे राजा के पास क्यो भेजा ? इस प्रकार भेजकर अब हमारे राजा का अपमान करता है ! हम देखेंगे कि ऐसा करनेवाले के साथ हमे क्या व्यवहार करना चाहिये? हमारा नाम नाग है।" उन्होंने दो गाथाये कही—

जीवितं नून ते चत्त रट्ठ वा मनुजाधिप,
नहि नागे कुपितम्हि चिर जीवन्ति तादिसा ॥३॥
यो त्व देव मनुस्सेसु इद्धिमत अनिद्धिमा,
वरुणस्स निय पुत्त यामुन अतिमञ्ञसि ॥४॥

[हे राजन् ! तूने निश्चय मे जीवन अथवा राष्ट्र का त्याग कर दिया है। नाग के कुपित हो जाने पर तुम्हारे जैसे अधिक काल तक जीते नही रहते ॥३॥ हे देव ! तू मनुष्यो मे ऋद्धि-रहित होकर ऋद्धिमान, यमुनोत्पन्न, वरुण के अपने पुत्र का अपमान करता है ॥३ ॥]

तब राजा ने दो गाथाये कही—

नातिमञ्ञामि राजान धतरट्ठ यसस्सिन,
धतरट्ठोहि नागान बहुन्नम्पि इस्सरो ॥४॥
अहि महानुभावो पि न मे धीतरमारहो,
खत्तियोव विदेहान अभिजाता समुद्दजा ॥५॥

[मै यशस्वी धृतराष्ट्र का अपमान नही कर रहा हूँ। धृतराष्ट्र बहुत से नागो का 'ईश्वर' है। वह साप निस्सन्देह बडे प्रतापवाला है, किन्तु वह मेरी लडकी के योग्य नही है। मेरी समुद्रजा कन्या के लिये विदेहो का क्षत्रिय ही योग्य है ॥५ ॥]

नाग-तरुणो की इच्छा हुई कि उसे वही फुंकार से मार डाले। किन्तु, उन्होने सोचा कि हम दिन निश्चय करने के लिये भेजे गये है, हमारे लिये ऐसा करना योग्य नही। हम जाकर राजा को कहेंगे और तब अपना कर्त्तव्य जानेंगे। यह सोच वे वही अन्तर्धान हो गये। राजा ने पूछा, "तात ! क्या लडकी मिली ?" उन्होने

क्रोधित हो उत्तर दिया, "देव! हमे विना मतलव ही आप जहाँ-तहाँ भेजते है? यदि हमारा मरण चाहते है, तो यही मार डाले। वह तुम्हे गालियाँ देता है, परिहास करता है। जात्याभिमान के कारण अपनी लडकी को ऊंचा उठाता है।" राजा ने जो कहा था और जो नही कहा था, वह सव कह उन्होने उसका क्रोध जाग्रत किया। उसने अपनी परिषद को इकट्ठा होने की आज्ञा देते हुए कहा—

कम्वलस्सतरा उट्ठेन्तु,
सब्बे नागे निवेदय,
वाराणसिं पवज्जन्तु
माचकिञ्चि विहेठयु ॥६॥

[कम्वलस्सतरा नाग उठकर तैयार हो। सभी नागो को कहे कि वाराणसी चले। हाँ किसी को कष्ट न दे ॥६॥]

तव उन नागो ने सोचा, "यदि किसी मनुष्य को कष्ट नही देना है, तो हम जाकर क्या करेंगे?" उन्होने "यह करो, मैं भी यह करूंगा" कहते हुए दो गाथायें कही —

निवेसनेसु सोब्भेसु रथिया चच्चरेसुच,
रुक्खग्गेसु च लम्बन्तु वितता तोरणेसु च ॥७॥
अहम्पि सब्बसेतेन महता सुमहं पुरं,
परिक्खिपिस्सं भोगेहि कासीनं जनयं भयं ॥८॥

[घरो मे, पुष्करणियो में, रास्तो के चौराहो पर, पेडो पर और दरवाजो पर फैल-फैल कर लटक जाओ ॥७॥ मैं भी अपने सर्व-श्वेत वडे शरीर को लेकर फनों से काशी के लोगो को भयभीत करता हुआ वडे काशी-नगर को घेर लूँगा ॥८॥]

नागो ने वैसा ही किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स तं वचनं सुत्वा उरगानेकवण्णिनो,
वाराणसिं पवज्जिसु न च किञ्चि विहेठयुं ॥९॥
निवेसनेसु सोब्भेसु रथिया चच्चरेसु च,
रुक्खग्गेसु च लम्बिसु वितता तोरणेसु च ॥१०॥

ते दिस्वान लम्बन्ते पुथु कदिसु नारियो,
नागे सोण्डिकते दिस्वा पस्ससन्ते मुहु मुहु ॥११॥
वाराणसी पव्यधीता अतुरा समपज्जथ,
बाहा पग्गटह पक्कन्दु धीतर देहि राजिनो ॥१२॥

[उसका यह कहना सुनकर अनेक वर्ण के नागों ने वाराणसी मे प्रवेश किया। उन्हो ने किसी को कष्ट नही दिया॥ ९ ॥ वे घरो मे, पुष्करणियों मे, रास्तो के चौराहो पर, पेडो पर और दरवाजो पर फैल-फैल कर लटक गये ॥१० ॥ उन सर्पों को वार वार फन फैलाकर देखते तथा लटकते हुए जब नारियों ने देखा तो वे बहुत चिल्लाने लगी ॥११ ॥ वे सभी वाराणसी (नरेश के पास) आई और बाहो को पीट-पीट कर कहने लगी कि धृतराष्ट्र को लडकी दो ॥१२ ॥]

उसने जब लेटे ही लेटे नगर-वासियो तथा अपनी भार्याओ का विलाप सुना और जब उसे चारो नाग-तरुणो ने धमकाया तो उसने मृत्यु-भय के मारे तीन बार कहा, "मै अपनी समुद्र-जायी कन्या धृतराष्ट्र को देता हूँ।" यह सुन सभी नाग राज गव्यूति-मात्र पीछे हट गये और एक देव-नगर का निर्माण कर भेट भिजवाई कि लडकी को भेजे। राजा ने उनकी भेट ली और उन्हे यह कह कर विदा किया कि तुम जाओ, मै लडकी अमात्यो के साथ भेजूगा। उन्हे विदा कर चुकने पर वह लडकी को ऊपर महल पर ले गया और झरोखा खोलकर बोला, देख यह अलकृत नगर है। तू इसके राजा की पटरानी होगी। नगर दूर नही है। मन न लगने पर यहाँ आ सकेगी। तुझे इस नगर मे जाना है।" इस प्रकार उसे समझा कर, सिर से स्नान करवा, सभी अलकारो मे अलकृत कर, पर्देदार रथ पर चढा, अमात्यो के साथ भेजा। नागराजाओ ने अगवानी कर बहुत सत्कार किया। अमात्य नगर मे गये, उसे लडकी सौपी और बहुत सा धन लेकर वापिस लौटे। राज-कन्या को ऊपर महल पर ले जाया गया और अलकृत दिव्य शैया पर लिटाया गया। उसी समय नाग-तरुणियो ने छोटा रूप धारण कर मानवी-सेविकाओ की तरह उसे घेर लिया।

दिव्य शैय्या पर लेटते ही उसे दिव्य-स्पर्श के कारण नीद आ गई। धृतराष्ट्र नाग-परिषद सहित उसे ले वहाँ से अन्तर्धान हो नाग-भवन मे ही जाकर प्रकट हुआ।

राज-कन्या की आँख खुली तो उसने अलङ्कृत शयनासन, अन्य स्वर्णमय तथा मणिमय प्रासाद आदि, उद्यान, पुष्करणियाँ ठीक देव-नगर की भान्ति देखी । इस नाग-भवन को देखकर उसने कुबड़ी आदि सेविकाओं को पूछा, "यह नगर अत्यन्त अलङ्कृत है। यह हमारे नगर जैसा नही है। यह किसका नगर है ?"

"देवी ! यह तेरे स्वामी का नगर है। अल्प-पुण्यों को यह सम्पत्ति नही मिलती तुझे महा-पुण्यवान् होने से मिली है।"

धृतराष्ट्र ने भी पाँच सौ योजन के नाग-भवन में मुनादी करा दी, "जो समुद्र-जाया को सर्प रूप दिखायेगा उसे राज-दण्ड मिलेगा।" इसलिये कोई एक भी उस पर अपना सर्प-रूप प्रकट न कर सका। वह उसे मनुष्य-लोक ही समझ, उसके साथ प्रसन्नता-पूर्वक प्रेमपूर्वक रही।

नगर काण्ड समाप्त

आगे चलकर धृतराष्ट्र से उसने गर्भ धारण किया और पुत्र को जन्म दिया। प्रिय-दर्शन होने से उसका नाम सुदर्शन रखा गया। फिर दूसरे पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम दत्त रखा गया। वह बोधिसत्व था। फिर एक को जन्म दिया। उसका सुभग नाम रखा गया। और भी एक को जन्म दिया। उसका नाम अरिट्ठ रखा गया। इस प्रकार चार पुत्रों को जन्म देकर भी वह यह न जान सकी कि वह नाग-भवन में है।

एक दिन अरिट्ठ को बताया गया, तेरी मा मानुषी है, नागिन नही। अरिट्ठ ने सोचा, मैं इसकी जाँच करूँगा। एक दिन स्तन-पान करते समय ही उसने साप की शक्ल बना माता की पीठ पर पूछ का प्रहार दिया। उसने उसका सर्प-शरीर देखा तो डर के मारे चिल्लायी और उसे जमीन पर फेकते समय नाखून से उसकी आँख फोड दी। उसमें से रक्त वहने लगा। राजा ने उसका स्वर सुना तो पूछा, "यह क्यो रोती है ?" उत्तर मिला, 'अरिट्ठ की करतूत देखकर।" वह उसे धमकाता हुआ आया, "इस दास को पकडो और जान से मार डालो।" राज-कन्या ने जब देखा कि वह क्रोधित हो गया है तो पुत्र-स्नेह के कारण बोली, देव ! मेरे पुत्र की आँख जाती रही है। इसे क्षमा कर दे।" जब यह ऐसा कहती है तो क्या किया जा सकता

ने, सोच राजा ने उसे क्षमा कर दिया। उस दिन उसे पता लगा कि यह नाग-भवन है। तब से अरिट्ठ का नाम काणा-अरिट्ठ हो गया। चारो पुत्र बडे हो गये।

उनके पिता ने उन्हे सौ सौ योजन का राज्य दे दिया। बडा ठाट-बाट रहा। सोलह सोलह हजार नाग-कन्याये गिर्द हो गई। पिता के पास सौ योजन भर का ही राज्य रह गया। तीनो पुत्र महीने-महीने माता-पिता को देखने आते। बोधिसत्व प्रत्येक पन्द्रहवे दिन आता। नाग-भवन मे यदि कोई प्रश्न पैदा होता तो वही उसका हल करता। वह उसके साथ गरुड महाराज की भी सेवा मे जाता। वहाँ भी यदि कोई प्रश्न पैदा होता तो वही उसका समाधान करता।

एक दिन जब नाग-परिषद के साथ गरुड त्रयोत्रिंशपुर मे शक्र के गिर्द बैठा था तो देवताओ के बीच मे प्रश्न पैदा हुआ। कोई उसका उत्तर नही दे सका। आसन पर पालथी मारे बैठे बोधिसत्व ने ही शका समाधान किया। देवराजा ने उसकी दिव्य गध-पुष्पो से पूजा की और कहा, "देव ! तू पृथ्वी समान विपुल प्रज्ञा से युक्त है। अब से तेरा नाम भूरि-दत्त हो गया।" उसने उसका नाम भूरिदत्त ही कर दिया।

इसके बाद से जब वह शक्र की सेवा मे जाता तो अलकृत वैजयन्त प्रासाद, देवप्सराये तथा अतिमनोहर शक्र सम्पत्ति देखता। उसे देव-लोक अच्छा लगने लगा और उसने सोचा, "यह मेण्डक-भक्षक बने रहने मे क्या है ! नाग-भवन जाकर उपोसथ-व्रत ग्रहण कर इस देवलोक मे उत्पन्न होने का कारण करूगा।" यह सोच वह नाग-भवन गया और माता-पिता से अनुज्ञा माँगी—"माताजी, पिताजी, उपोसथ व्रत करूगा।" "अच्छा तात कर। किन्तु बाहर न जाकर यही किसी एकान्त विमान मे कर। बाहर जाने पर नागो का बहुत भय है।"

उसने अच्छा कह स्वीकार किया और वही शून्य विमान मे आराम-उद्यानो मे उपोसथ-व्रती होकर रहने लगा।

उसे नाना वाद्य हाथ मे लिये नाग-कन्यायें घेर लेती। उसने सोचा, यहाँ मेरा उपोसथ-व्रत पूरा नही होगा। मै मनुष्यो मे जाकर व्रत पूरा करूगा। उसे भय हुआ कि कही माता-पिता रोक न दे। इसलिये उसने उन्हे सूचना नही दी। उसने अपनी भार्या को बुलाकर कहा, "भद्रे मै मनुष्यो मे जाता हूं। वहाँ यमुना तट पर

महान्यग्रोध-वृक्ष है। उससे थोडी ही दूर पर वाम्बी के ऊपर फन रखकर चतुरङ्ग सम्पूर्ण व्रत का अधिष्ठान कर वही पडे रहकर उपोसथ-व्रत करूगा। सारी रात पडे रहकर उपोसथ-व्रत कर चुकने पर, अरुणोदय के समय तुममे से दस दस जनी वारी वारी से हाथ मे वाजा ले, मेरे पास आकर और पुष्पो तथा सुगन्धी मे मेरी पूजा कर, गा-नाचकर मुझे नाग-भवन लिवा जाना।" इतना कह कर वह वहाँ पहुचा और वाम्बी के उपर फन को रख सकल्प किया कि जो कोई मेरी चमडी, नसे, हड्डी अथवा रक्त चाहे ले जाये। इस प्रकार चारो अङ्गो वाले उपोसथ-व्रत का अधिष्ठान कर, हलकी मूठ जितना शरीर वना, वहाँ पडे रहकर उपोसथ-व्रत किया। अरुणोदय होते ही नाग-कन्याये जाकर आज्ञा के अनुसार आचरण कर उसे नाग-भवन ले आती।

इस प्रकार उसे उपोसथ-व्रत करते-करते वहुत समय बीत गया। उस समय वाराणसी-द्वार ग्रामवासी एक ब्राह्मण सोमदत्त नाम के पुत्र के साथ जगल जाता था और काँटा, यत्र, फदा तथा जाल फैलाकर, मृगो को मार, वैहगी पर मास रख, वेचकर जीविका चलाता था।

एक दिन जव उसे गोह-वच्चे तक का मास नही मिला तो उसने कहा—"तात! सोमदत्त यदि खाली हाथ जायेगे तो तेरी माता क्रुद्ध होगी। कुछ न कुछ लेकर ही जाये।" जिधर वोधिसत्व पडा था वह उस वाम्बी की ओर गया और वहाँ उसने पानी पीने के लिये गये मृगो के पद-चिन्ह देखे। उन्हे देख वह बोला, "तात! मृग मार्ग दिखाई देता है। तू रुक! मै पानी के लिये आने वाले मृग को वींधूगा।" वह धनुष लेकर मृगो को अगोरता हुआ एक वृक्ष के नीचे खडा हुआ।

सध्या समय एक मृग पानी पीने के लिये आया। उसने उसे वीध दिया। मृग वहाँ गिरा नही। वाण-वेग से भयभीत हो लहू चुआता हुआ भागा। पिता-पुत्र ने उसका पीछा किया। जहाँ वह गिरा था, वहा से उसका मास ले, आरण्य से निकल सूर्यास्त के समय उस न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे पहुचे। उन्होने सोचा, "अब असमय हो गया। जा नही सकते। यही रहेंगे।" इसलिये मास को एक ओर रख वे वृक्ष पर चढ गये और शाखाओ मे पड रहे। ब्राह्मण वहुत सवेरे उठा और उसने मृगों की आवाज सुनने के लिये कान लगाया। उस समय नाग-कन्याओ ने

आकर बोधिसत्व के लिये आसन बिछाया। उसने नाग-शरीर का लोप कर दिया और सभी अलकारो से सुसज्जित दिव्य शरीर का निर्माण कर शक्र की तरह पुष्पासन पर बैठा। नाग-तरुणियो ने भी गन्ध मालादि से उसका पूजन किया और बाजे बजा नृत्य-गीत का प्रदर्शन किया।

ब्राह्मण ने आवाज सुनी तो उसकी इच्छा हुई कि पता लगाये कि यह कौन है? उसने 'हे पुत्र' कह कर पुत्र को जगाना चाहा। जब नही जगा सका तो सोचा, 'थका होगा, सोता रहे, मैं ही जाता हू।' वह पेड से उतर उसके पास गया। नाग-तरुणियाँ उसे देख बाजो सहित अन्तर्धान हो नाग-भवन जा पहुची। अकेला बोधिसत्व ही रह गया। ब्राह्मण ने उसके पास खडे हो, पूछते हुए दो गाथाये कही—

पुप्फाभिहारस्स वनस्स मज्झे
को लोहितक्खो विहततरसो,
का कम्बुकायूरधरा सुवत्था
तिट्ठन्ति नरियो दस वन्दमाना॥१॥
को त्व महाबाहु वनस्स मज्झे
विरोचसी घतसित्तोव आग्गि,
महेसक्खो अञ्ञतरोसि यक्खो
उदाहु नागोसि महानुभावो॥२॥

[इस वन मे फूलो से लदा हुआ, लाल-लाल आँखो वाला चारो ओर प्रकाश फैलाता हुआ तू कौन है? और ये स्वर्णाभरणो से अलकृत, सुवस्त्रधारिणी कौन दस नारियाँ हैं जो हाथ जोडे खडी हैं॥१॥ हे विशालबाहु! तू कौन है जो घी पडी हुई आग की तरह वन मे प्रकाशमान है। क्या तू कोई महान् यक्ष है अथवा कोई बडे प्रतापवाला नाग? ॥२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा, "यदि मैं शक्र आदि मे से कोई एक हूँ', कहू तो भी यह ब्राह्मण विश्वास कर ही लेगा, किन्तु आज मुझे सत्य ही बोलना चाहिये।" उसने अपने नाग-राज होने की बात प्रकट करने के लिये कहा—

नागोहमस्मि इद्धिमा तेजसी दुरतिक्कमो,
डसेटय तेजसा कुद्धो फीत जनपद अपि॥३॥

समुद्दजा हि मे माता धतरट्ठो च मे पिता,
सुदस्सनकणिट्ठोस्मि भूरिदत्तोति मं विदु ॥४॥

[मैं ऋद्धिवान्, तेजस्वी, दुर्दमनीय नाग हूं। क्रुद्ध होने पर मैं अपने तेज से स्मृद्ध जनपद को भी डस लेता हूँ ॥३॥ मेरी माता समुद्रजा और पिता का नाम है धृतराष्ट्र। मैं सुदर्शन का छोटा भाई हूँ और मेरा नाम भूरिदत्त है ॥४॥]

यह कह बोधिसत्व ने सोचा, "यह ब्राह्मण चण्डाल है, कठोर है, सपेरे को सूचना देकर मेरे उपोसथ-व्रत मे बाधा भी डाल सकता है। क्यो न मैं इसे नाग-भवन ले जा, बहुत सा ऐश्वर्य दे अपने उपोसथ-कर्म को चिर-स्थायी करूं?" वह बोला, "ब्राह्मण! तुझे बहुत ऐश्वर्य दूंगा। आ सुन्दर नाग-भवन चलें।" "स्वामी! मेरा पुत्र है। उसके आने पर आऊंगा।" तब बोधिसत्व ने 'ब्राह्मण, जा, उसे लेकर आ' कहते हुए अपने निवास-स्थान का पता बताते हुए कहा—

यं गम्भीरं सदावट्टं रहदं भेस्मं अवेक्खसि,
एस दिब्यो ममावासो अनेकसतपोरिसो ॥५॥
मयूरकोञ्चाभिरुदं नीलोदं वनमज्झतो,
यमुनं पविस मा भीतो खेमं वत्तवतं सिवं ॥६॥

[जो तुझे यह भयानक, गहरा, बड़ा भारी तालाब दिखाई देता है, यह सैकड़ो पुरुसा तालाब ही मेरा दिव्य निवास स्थान है। इसके तट पर मोर और क्रौंच पक्षी नाद करते हैं, इसका जल नीला है, यह वन के बीच से बहती है। हे ब्राह्मण! तू निर्भय होकर व्रतियों की निवास-स्थान, इस कल्याणकर नदी मे प्रवेश कर ॥५६॥]

ब्राह्मण गया और पुत्र को यह बात कह उसे ले आया। बोधिसत्व उन दोनो को लेकर यमुना-तट पर पहुचा और कहा—

तत्थ पत्तो सानुचरो सहपुत्तेन ब्राह्मण,
पूजितो मय्हं कामेहि सुखं ब्राह्मण वच्छसि ॥७॥

[हे ब्राह्मण! वहाँ अनुचर पुत्र के साथ पहुचने पर, मेरे द्वारा काम-भोग की सामग्री से पूजित होकर तू सुख-पूर्वक रहेगा ॥७॥]

यह कह बोधिसत्व उन दोनो पिता-पुत्र को नाग-भवन ले गया। वहाँ उनका दिव्य जन्म हुआ। बोधिसत्व ने उन्हें दिव्य-सम्पत्ति दे चार चार सौ नाग-कन्यायें

दी। उन्होंने महान् सम्पत्ति का उपभोग किया। बोधिसत्व भी अप्रमादी हो उपोसथ-व्रत करने लगे। हर आधे महीने पर माता-पिता की सेवा मे जा, धर्म-कथा कह, वही से ब्राह्मण के पास जा, उसका कुशल-समाचार जान और उसे यह कह कि जिस चीज की आवश्यकता हो कहे तथा अनुद्विग्न हो रहे, वह मोमदत्त का कुशल-समाचार पूछ अपने निवासस्थान जाता।

पुण्य की कमी से ब्राह्मण वर्ष भर ही नाग भवन मे रह उद्विग्न हो गया। उसने मनुष्य-लोक जाने की इच्छा की। उसे नाग-भवन नरक लगने लगा, अलकृत प्रासाद कारागार और नाग-कन्याये यक्षिणी प्रतीत होने लगी। उसने सोचा, "मै तो उद्विग्न हूँ। सोमदत्त के भी चित्त की बात जानूगा।" वह उसके पास गया और बोला, "तात! क्या उद्विग्न नही होता?"

"उद्विग्न क्यो होऊ? उद्विग्न नही हूँ।"

"तात! क्या तू उद्विग्न है?"

ब्राह्मण बोला, "हाँ! तात।"

"किस वजह से?"

"तेरी माता तथा भाई-बहन का देखना न मिलने से। आ तात सोमदत्त चले।"

उसने पहले तो कहा, 'नही जाता हूँ', किन्तु पिता के बार-बार कहनेपर स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ने सोचा, "पुत्र के मन का तो पता लग गया। लेकिन यदि मै भूरिदत्त से जाने की बात कहूँगा तो वह मुझे और भी ऐश्वर्य्य देगा। इस प्रकार मेरा जाना न हो सकेगा। इसलिये एक ढग से उसके ऐश्वर्य्य की प्रशसा कर उससे पूछूगा कि "तू इस प्रकार की सम्पत्ति छोड, मनुष्य-लोक जाकर उपोसथ-व्रत क्यो करता है?" उसके "स्वर्ग के लिये" कहने पर उसे सकेत करूगा कि जब तू इस प्रकार की सम्पत्ति छोड उपोसथ-व्रत करता है, तो हमारा क्या जो दूसरो का वध करके जीविका चलाते है! मै भी मनुष्य-लोक जा, रिश्तेदारों को देख, प्रव्रजित हो श्रमण-धर्म करूगा।" उसने सोचा, 'इस प्रकार वह मुझे जाने की आज्ञा दे देगा।" एक दिन जब उसने जाकर पूछा, "ब्राह्मण! क्या उद्विग्न तो नही है?" तो 'तुम्हारे पास किसी चीज की कमी नही है' जैसी गमन-सम्बन्धी कोई बात न कह उसने आरम्भ से उसके ऐश्वर्य्य की ही बडाई करनी आरम्भ की—

समा समन्ता परितो वहुत तगरा मही,
इन्दगोपकसञ्छन्ना सोभति हरितुत्तमा ॥८॥
रम्मानि वनचेत्यानि रम्मा हसूपकूजिता,
ओपुप्फपदमा तिट्ठन्ति पोक्खरञ्ञो सुनिम्मितो ॥९॥
अट्ठंसा सुकतत्थम्मा सब्बे वेलुरियामया,
सहस्स थम्भ पासादा पूरा कञ्ञाहि जोतरे ॥१०॥
विमान उपपन्नोसि दिब्ब पुञ्ञेहि अत्तनो,
असम्बाध सिव रम्म अच्चन्तसुखसहित ॥११॥
पञ्ञे सहस्सनेत्तस्स विमान नाभिकखसि,
इद्धि हि त्याय विपुला सक्कस्सेव जुतीमतो ॥१२॥

[यह पृथ्वी चारो ओर से समतल है, इन्द्रगोपो से ढकी है और हरे-वर्ण से सुशोभित है ॥८॥ रमणीक वन है, हसो के कूजन के कारण भी रमणीक है, सुनिर्मित पुष्करिणियाँ सुपुष्पित पद्मो से ढकी है ॥९॥ अठकोण सुनिर्मित स्तम्भ है, सभी विल्लौरमय है । हजारो स्तम्भोवाले प्रासाद (नाग-) कन्याओ मे देदिप्यमान है ॥१०॥ अपने पुण्य-कर्मो के कारण दिव्य विमान मे उत्पन्न हुआ है,जो बाधा रहित है, जो कल्याणकर है, जो रमणीय है तथा जो अत्यन्त सुखदायक है ॥११॥ लगता है कि तू सहस्र-नेत्र इन्द्र के विमान की भी कामना नही करता है । तेरी ऋद्धि देदिप्यमान शक्र के समान ही विशाल है ॥१२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने कहा, "ब्राह्मण ! ऐसी बात मत कह । शक्र के ऐश्वर्य्य के मुकाबले मे हमारा एश्वर्य सुमेरु पर्वत के मुकाबले मे सरसो के दाने के समान है । हम उसके परिचारक होने के भी योग्य नही है ।" उसने गाथा कही—

मनसापि न पत्तब्बा आनुभावो जुतीमतो,
परिचारयमानान सइन्दान वसवत्तिन ॥१३॥

[उस द्युतिमान का प्रताप मन से भी प्राप्त नही किया जा सकता, उसके परिचारक वशवर्ती चारो महाराजाओ का भी ॥१३॥]

इतना कह, 'यह तेरा सहस्र नेत्र के विमान सदृश विमान है' सुनकर मुझे उसकी याद आ गई और अब मैं वैजयन्त की ही इच्छा से उपोसथ व्रत करता हूँ', कहा और अपनी कामना प्रकट करने के लिये गाथा कही—

त विमान अभिज्झाय अमरान सुखेसिन,
उपोसथ उपवसन्तो सेमि वम्मिकमुद्धनि ॥१४॥

[सुख की कामना करने वाले उन देवताओ के विमान की कामना से ही मै बाँबी के मुह पर पडा रहकर उपोसथ-व्रत करता हूँ ।।१४।।]

यह सुन ब्राह्मण ने विचार किया कि अब मेरे लिये सुअवसर है। उसने प्रसन्न हो जाने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये दो गाथाये कही—

अहञ्च मिगमेसानो सपुत्तो पाविसि वन,
त म मत वा जीव वा नाभिवेदेन्ति ञातका ॥१५॥
आमन्तये भूरिदत्त कासिपुत्त यसस्सिन,
तया वो समनुञ्ञाता अपि पस्सेमु ञातके ॥१६॥

[मै मृग की खोज करता हुआ सपुत्र वन मे प्रविष्ट हुआ हूँ। मेरे सम्बन्धी यह भी नही जानते कि मै मरा हूँ अथवा जीवित हूँ। मै काशीराजकन्या के पुत्र यशस्वी भूरिदत्त को सम्बोधित करता हूँ। यदि तुम्हारी अनुज्ञा हो तो हम रिश्तेदारो से भेट करे ।।१७-१८।।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

एसोहि वत मे छन्दो य वसेसि ममन्तिके,
नहि एतादिसा कामा सुलभा होन्ति मानुसे ॥१७॥
सचे त्व न इच्छसे वत्थु मम कामेहि पूजितो,
मया त्व समनुञ्ञाता सोत्थि पस्साहि ञातके ॥१८॥

[मेरी यही इच्छा है कि मेरे पास ही रहे। मनुष्य-लोक मे इस प्रकार के काम-भोग सुलभ नही है ।।१७।। यदि तू मेरे-द्वारा काम-भोग की सामग्री से पूजित होता हुआ भी इन वस्तुओ की इच्छा नही करता, तो तुझे मेरी अनुज्ञा है, तू जाकर अपने सम्बन्धियो से भेट कर ।।१८।।]

ये दो गाथायें कह वह सोचने लगा, "यह मुझपर आश्रित रहकर सुखपूर्वक रहने की बात किसीसे नहीं कहेगा । मैं इसे सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली मणि दूंगा ।" उसने उसे वह देते हुए कहा—

इमं गहेत्वा मणि दिब्बं पसु पुत्ते च विन्दति,
अरोगो सुखितो होति गच्छेवादाय ब्राह्मण ॥१९॥

[इस मेरी मणि को धारण कर लेने से पशु तथा पुत्रों को प्राप्त करता है, निरोगी रहता है तथा सुखी रहता है । हे ब्राह्मण ! इसे लेकर जा ॥१९॥]

तब ब्राह्मण ने गाथा कही—

कुसलं पटिनन्दामि भूरिदत्त वचो तव,
पब्बजिस्सामि जिण्णोस्मि न कामे अभिपत्थये ॥२०॥

[हे भूरिदत्त ! तेरा कथन निर्दोष है । मैं उसका विरोध नहीं करता हूँ । किन्तु मैं अब प्रव्रजित होऊँगा । मैं बूढ़ा हो गया हूँ । मुझे काम-भोगों की इच्छा नहीं है ॥२०॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

ब्रह्मचरियस्स भंगो होति भोगेहि कारियं,
अविकम्पमानो एय्यासि बहुं दस्सामि ते धनं ॥२१॥

[ब्रह्मचारिय-व्रत का भङ्ग होने पर काम-भोग की सामग्री अपेक्षित होती है । ऐसा होने पर तू निस्संकोच चला आना । तुझे बहुत धन दूंगा ॥२१॥]

ब्राह्मण बोला—

कुसलं पटिनन्दामि भूरिदत्त वचो तव,
पुनपि आगमिस्सामि सचे अत्थो भविस्सति ॥२२॥

[हे भूरिदत्त ! मैं तेरे निर्दोष वचन का अभिनन्दन करता हूँ । आवश्यकता होने पर फिर भी चला आऊंगा ॥२२॥]

उसकी वहां रहने की अनिच्छा जान बोधिसत्व ने नाग-तरुणों को बुला ब्राह्मण को मनुष्य-लोक भिजवा दिया । इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इद वत्वा भूरिदत्तो पेसोसि चतुरो जने,
एथ गच्छथ उट्ठेथ खिप्प पापेथ ब्राह्मण ॥२३॥
तस्स त वचन सुत्वा उट्ठाय चतुरो जना,
पेसिता भूरिदत्तेन खिप्प पापेसु ब्राह्मण ॥२४॥

[यह कह भूरिदत्त ने चारो जनो को भेजा—आओ, जाओ, उठो और ब्राह्मण को जल्दी पहुचाओ ॥२३॥ उसका कहना सुन चारो जने उठे और भूरिदत्त द्वारा भेजे गये उन चारो जनो ने ब्राह्मण को (वाराणसी के रास्ते पर) पहुँचा दिया ॥२४॥]

ब्राह्मण ने भी "तात सोमदत्त ! यहाँ मृग को बीधा, यहाँ सूअर को बीधा" कहते हुए, रास्ते मे एक पुष्करिणी देखकर पुत्र से कहा—"तात सोमदत्त ! स्नान करेगे।"

"तात ! अच्छा" सोमदत्त का उत्तर था।

दोनो ने दिव्य वस्त्र तथा दिव्य गहने उतारे, उनकी गठडी बाधी और उसे पुष्करिणी-तट पर रख पानी में उतरे तथा स्नान किया। उस समय वे गहने-कपडे अन्तर्धान होकर नाग-भवन ही जा पहुचे। जो मटमैले चीथडे वे पहले पहने थे वे [illegible] उनके शरीर पर आ रहे। धनुष-बाण-शक्ति आदि शस्त्र भी पूर्ववत् हो गये। [illegible] 'तात ! तूने हमे नष्ट कर दिया' कह रोने लगा।

पिता ने उसे आश्वस्त किया, "चिन्ता मत कर। जब तक मृग है, जँगल मे मृगो का वध कर जीविका चलायेगे।" सोमदत्त की माताने उनके आगमन की बात सुनी तो वह अगवानी करके उन्हे घर ले गई और खाना-पीना दिया। ब्राह्मण खाकर सो रहा। ब्राह्मणी ने पुत्र से पूछा—"तात ! इतना समय कहाँ रहे ?"

"मा, भूरिदत्त नागराजा हमे नाग-भवन ले गया था। वहाँ मन नही लगा। इसलिये अब आये हैं।"

"कुछ रतन लाये ?"

"मा, नही लाये।"

"क्या उसने तुम्हें कुछ नही दिया ?"

"मा, भूरिदत्त ने पिताजी को सभी कामनाओ की पूर्ति करनेवाली मणि दी थी, किन्तु उन्होने ली नही।"

"क्यो नही ली ?"

"प्रव्रजित होने के इरादे से।"

उसे क्रोध आया, इतने समय तक बच्चो का भार मुझपर छोड, नाग-भवन में रह, अब प्रव्रजित होने की बात करता है। उसने धान-भूनने की कडछी उसकी पीठ पर मारी और उसे धमकाया, "दुष्ट ब्राह्मण ! प्रव्रजित होने के इरादे से मणि नही ली। तो अब बिना प्रव्रजित हुए क्यो आया ? शीघ्र घर से निकल।" वह बोला "क्रोध मत कर। जब तक जगल में मृग है, मै अपना, तेरा और बच्चों का पालन-पोषण करुगा।" वह अगले दिन पुत्र को साथ ले जगल गया और पहले की तरह से ही जीविका चलाने लगा।

वन प्रवेश काड समाप्त

उस समय दक्षिण महासमुद्र के प्रदेश मे, हिमालय में एक सिम्बलीवासी गरुड ने पखो की हवा से समुद्र के पानी को सुखा दिया और नाग-भवन में उतर एक नाग-राज को सिर से पकड लिया। उस समय गरुड नागो के पकडने की विधि नही जानते थे। यह उन्होने पण्डर-जातक[1] के समय जानी। वह उसे सिर से पकड, बिना पानी मे फिसले ही, उठाकर, लटकते हुए को ही लेकर हिमालय के ऊपर से गया।

उस समय काशी-राष्ट्रवासी एक ब्राह्मण ऋषियो के क्रम से प्रव्रजित हो, हिमालय- प्रदेश मे एक पर्णशाला बनाकर रहता था। उसकी चक्रमण-भूमि के सिरे पर न्यग्रोध का एक बडा पेड था। वह दिन में उसके नीचे रहता था। गरुड न्यग्रोध के ऊपर से नाग को लिये जा रहा था। नाग लटकते रहने के कारण, गरुड से मुक्त होने के लिये, पूछ से न्यग्रोध की शाखा को लिपट गया। गरुड को उसका पता नही लगा। वह महाबलशाली होने से आकाश मे उडता ही चला गया। न्यग्रोध वृक्ष जड से उखड गया। गरुड ने नाग को देखा और उसे सिम्बली वन ले जाकर चोच

---

१ पाण्डर जातक (५१८)

में उसका पेट फाड़ डाला और नाग-चर्वी खाकर उसकी लाश समुद्र में फेंक दी। न्यग्रोध-वृक्ष गिरा तो बहुत आवाज हुई। गरुड सोचने लगा कि यह किसकी आवाज है? नीचे देखने पर उसे न्यग्रोध वृक्ष दिखाई दिया। वह सोचने लगा कि मैंने यह कहाँ से उखाड़ लिया? उसे यथार्थ बात ज्ञात हुई कि यह तपस्वी की चन्क्रमण-भूमि के सिरे पर लगा हुआ न्यग्रोध-वृक्ष था और उसके लिये बहुत उपयोगी था। उसे विचार आया कि मैं उस तपस्वी से ही पूछकर इस बात का पता लगाऊंगा कि मुझसे पाप हुआ है अथवा नहीं? वह 'ब्रह्मचारी' का वेष बना उसके पास पहुचा। उस समय तपस्वी उस स्थान को बराबर कर रहा था।

गरुड-राज ने तपस्वी को नमस्कार किया और एक ओर बैठकर अजानकार की तरह पूछा, "भन्ते! यह किसका स्थान है?"

एक गरुड नागको खाने के लिये ले जा रहा था। नागने उससे छूटने के लिये न्यग्रोध-वृक्ष की शाखा को अपनी पूछ से लपेट लिया। गरुड बलवान होने से उड़कर चला गया। यह वृक्ष जड से उखड गया। यह उस उखड़े पेड की जगह है।"

'भन्ते! क्या उस गरुड ने पाप किया?"

"यदि वह नही जानता था, तो अजानकार को पाप नही लगता।"

"भन्ते! नाग के बारे में क्या है?"

"उसने भी इसे उखाडने के लिये नही पकडा था। उसने भी अपने छूटने के लिये ही पकडा था। इसलिये उसे भी पाप नही लगेगा।"

गरुड तपस्वी पर प्रसन्न हुआ और बोला, "भन्ते! मैं वह गरुड-राज हूँ। आपके शका-समाधान से सन्तुष्ट हुआ हूँ। आप वन में ही रहे। मै एक आलम्बायन मन्त्र जानता हूँ। वह बहुत मूल्यवान् मन्त्र हैं। मैं आपको अपना आचार्य्य मानकर वह मन्त्र देता हूँ। उसे स्वीकार करे।"

"मुझे मन्त्र नही चाहिये। तुम जाओ।"

उसने बार-बार आग्रहकर उसे राजी कर लिया और मन्त्र दे तथा औषधी बता चला गया।

उस समय वाराणसी में एक दरिद्र ब्राह्मण ने बहुत ऋण ले लिया था। जब ऋण-दाताओं ने बहुत हैरान किया तो उसने सोचा यहाँ रहने से तो वन में जाकर

मरना अच्छा है। वह निकल पडा और क्रमश उस आश्रम मे पहुच उसने तपस्वी को अपनी सेवा से प्रसन्न किया। तपस्वी ने सोचा, 'इस ब्राह्मण ने मेरा बडा उपकार किया है। गरुड-राज का दिया हुआ मन्त्र इसे दूगा" वह बोला, "ब्राह्मण! मैं आलम्बायन-मन्त्र जानता हूँ। वह तुझे देता हू। उसे ग्रहण कर।"

"भन्ते! मुझे मन्त्र नही चाहिये।"

उसने बार बार आग्रह कर, उसे राजी कर मन्त्र दे ही दिया। उस मन्त्र के अनुकूल ओषधियाँ और मन्त्र का उपचार आदि सब बता दिया।

ब्राह्मण ने सोचा कि अब मुझे जीविका का साधन मिल गया। उसने कुछ दिन रहकर बहाना किया कि मुझे वादी का कष्ट है और तपस्वी से विदा ले, प्रणाम कर, और क्षमा याचना कर जगल से निकला। वह क्रमश यमुना तट पर पहुच उस मन्त्र का पाठ करता हुआ, महा-मार्ग मे जा रहा था। उसी समय भूरिदत्त की हजार परिचारिकाये नाग-कुमारियाँ सब कामनाओ की पूर्ति करनेवाली मणि लेकर, नाग-भवन मे निकल, उसे यमुना तट पर, बालू के ढेर पर रख, उसके प्रकाश में सारी रात जल-क्रीडा करती रहकर, अरुणोदय होने पर अपने आपको सभी अलकारो से अलकृत कर, मणि-रतन को घेर सुशोभित हो बैठी थी। ब्राह्मण भी मन्त्र पाठ करता करता वहाँ आ पहुचा। उन्होने जैसे ही मन्त्र-शब्द सुना वैसे ही सोचा कि यह गरुड होगा। वे डर के मारे बिना मणि-रतन लिये ही पृथ्वी में प्रवेश कर नाग-भवन जा पहुँची।

ब्राह्मण ने मणि-रतन को देखा तो सोचा मेरे मन्त्र ने अभी फल दे दिया है। वह प्रसन्न हुआ और मणि-रतन को लेकर चल दिया। उस समय वह शिकारी ब्राह्मण सोमदत्त के साथ हिरण का शिकार करने के लिये जगल में प्रविष्ट हुआ था। उसने उस ब्राह्मण के हाथ में वह मणि-रतन देखकर पुत्र से कहा "क्या यह वही मणि नही है जो हमे भूरिदत्त ने दी थी?"

"हाँ, तात यह वही है।"

"तो इसके दोष कहकर, इस ब्राह्मण को ठगकर इससे यह मणि ले।"

"तात! पहले जब भूरिदत्त तुझे दे रहा था, तब तूने नही ली। अब यह ब्राह्मण तुझे ही ठग लेगा। चुप रह।"

"हो। तात ! तू इसका अथवा मेरा ठगा जाना देखेगा ?"

उसने आलम्बायन से बातचीत करते हुए की तरह कहा—

मणि पग्गय्ह मगल्य साधुचित्त मनोरम
सेलं व्यञ्जनसम्पन्नं को इमं मणिमज्झगा ॥२५॥

[इस सुन्दर, मनोरम, व्यञ्जन-युक्त मणि-शिला को कहाँ से प्राप्त किया है ? ॥२५॥]

तब आलम्बायन ने गाथा कही—

लोहितक्ख सहस्साहि समन्ता परिवारित,
अज्ज काल पद गच्छ अज्झगाह मणि इम ॥२६॥

[रक्त-वर्ण आँखो वाली हजारो नागनो से घिरी हुई इस मणि को मैंने आज ही प्रात काल महामार्ग पर जाते हुए प्राप्त किया ॥२६॥]

शिकारी-पुत्र ने उसे ठगने की नीयत से, मणि के दोष कह उसे स्वय लेने के इरादे से तीन गाथायें कही—

सूपचिण्णो अयं सेलो अच्चितो महितो सदा,
सुधारितो सुनिक्खित्तो सब्बत्थमभिसाधये ॥
उपचारविपन्नस्स निक्खेपे धारणाय वा
अल सेलो विनासाय परिचिण्णो अयोनिसो ॥
न इम अकुसल दिब्य मणि धारेतुमारहो
पटिपज्ज सत निक्ख देहि म रतन मम ॥२७-२९॥

[अच्छी प्रकार उपचार किये जाने पर, अच्छी प्रकार अर्चा किये जाने पर, अच्छी प्रकार ममत्व दिखाये जाने पर, अच्छी प्रकार धारण किये जाने पर और अच्छी प्रकार रखे जाने पर ही यह सभी अर्थों को सिद्ध करनेवाली है ॥२७॥ जो कोई इसके रखने वा धारण करने मे गलती करेगा, उस गलती करनेवाले के विनाश के लिये यह पर्य्याप्त है ॥२८॥ कोई अकुशल जन इस मणि को नही रख सकता। मुझसे यह सौ निकष ले और मुझे यह मणि (रत्न) दे दे ॥२९॥]

तब आलम्बायन ने गाथा कही—

न वा म्याय मणि केय्यो गोहि वा रतनेन वा
सेलो व्यञ्जनसम्पन्नो नेव केय्यो मणि मम ॥३०॥

[गौ अथवा रतन द्वारा कोई भी इस मणि को मुझसे क्रय नही कर सकता। मेरी यह मणि लक्षणो से युक्त है। इस मणि को कोई नही खरीद सकता ॥३०॥]

ब्राह्मण बोला—

नोचे तया मणि केय्यो गोहि वा रतनेन वा
अथ केन मणि केय्यो त मम अक्खाहि पुच्छितो ॥३१॥

[यदि तेरी इस मणि को कोई गौ अथवा रतन से नही खरीद सकता, तो मैं तुझसे पूछता हूँ और तू बता कि और किस वस्तु से तेरी मणि क्रय की जा सकती है ॥३१॥]

आलम्बायन बोला—

यो मे ससे महानाग तेजसि दुरतिक्कम,
तस्स दज्जं इम सेल जलन्तरिव तेजसा ॥३२॥

[जो दुर्दमनीय तेजस्वी महानाग को मेरे आधीन कर देगा, उसे मैं आग से प्रदीप्त जैसी यह मणि दे दूंगा ॥३२॥]

ब्राह्मण बोला—

को नु ब्राह्मण वण्णेन सुपण्णो पतत वरो,
नाग जिगिसमन्वेति अन्वेस भक्खमत्तनो ॥३३॥

[यह कौन है जो पक्षियो मे श्रेष्ठ गरुड ब्राह्मण रूप मे अपने भोजन नाग को खोजता फिरता है? ॥३३॥]

आलम्बायन बोला—

किनु तुय्ह बल अत्थि किं सिप्प विज्जते तव,
किस्मि वात्व परत्थद्धो उरग नापचायसि ॥३४॥

[तुझमे कौनसा ऐसा बल है, ऐसी कौन सी विद्या है अथवा तुझे किसका सहारा है, जो तू सर्प का आदर नही करता है? ॥३४॥]

उसने अपना बल प्रकाशित करते हुए कहा—

आरञ्ञकस्स इसिनो चिररत्ततपस्सिनो,
सुपण्णो कोसियस्सक्खा विसविज्ज अनुत्तर ॥३५॥
त भावितत्तञ्ञतर सम्मन्त पब्बन्तरे,
सक्कच्च तं उपट्ठासि रत्ति दिवमतन्दितो ॥३६॥
सो तदा परिचिण्णो मे वतवा ब्रह्मचरियवा,
दिब्ब पातुकरी मन्त कामसा भगवा मम ॥३७॥
त्याह मन्ते परत्थद्धो नाह भायामि भोगिन,
आचरियो विस घातान अलम्बानो ति म विदू ॥३८॥

[गरुड ने कोसिय-गोत्री आरण्यक दीर्घ-काल-तपस्वी ऋषि को श्रेष्ठ विष-विद्या बताई ॥३५॥ मैंने उस अभ्यासी, पर्वतो के बीच रहने वाले ऋषि की, रात-दिन आलस्य-रहित होकर सेवा की ॥३६॥ उस व्रती, ब्रह्मचारी भगवान् ने मेरी सेवा से प्रसन्न हो स्वेच्छा से मुझे दिव्य-मन्त्र दिया ॥३७॥ मै उन मन्त्रो का बल होने से नागो से नही डरता। मुझे विष-वैद्यो का आचार्य्य आलम्बन जान ॥३८॥]

यह सुन नेसाद ब्राह्मण ने सोचा, यह आलम्बायन है। जो इसे नाग दिखायेगा, उसे मणि-रतन देगा। इसे भूरिदत्त दिखाकर, उससे मणि लेंगे।

तब उसने पुत्र से मन्त्रणा करते हुए गाथा कही—

गण्हामसे मणि तात सोमदत्त विजानहि
मा दण्डेन सिरिं पत्त कामसा पजहिम्हसे ॥३९॥

[तात सोमदत्त! यह जान कि हम मणि लेंगे। दण्ड से प्राप्त (?) श्री को हम स्वेच्छा से न छोडे ॥३९॥]

सोमदत्त बोला—

सक निवेसन पत्तं सो त ब्राह्मण पूजयी,
एव कल्याणकारिस्स किं मोहा दूभिमिच्छसि ॥४०॥

[अपने घर आने पर उस ब्राह्मण ने तेरी पूजा की। मोह के कारण क्या इस प्रकार के कल्याणकारी के साथ द्रोह करना चाहता है? ॥४०॥]

सचे हि धनकामोसि भूरिदत्तो पदस्सति,
तमेव गन्त्वा याचस्सु बहु दस्सति ते धन ॥४१॥

[यदि धन की इच्छा है तो भूरिदत्त देगा। उसीसे जाकर मांगो, वह तुझे बहुत धन देगा ॥४१॥]

ब्राह्मण बोला—

हत्थगत पत्तगत निक्किण्ण खादितु वर,
मा नो सन्दिट्ठिको अत्थो सोमदत्त उपच्चगा ॥४२॥

[जो हाथ में हो, जो पात्र मे हो और जो सामने रखा हो उसका खाना ही अच्छा है। हे सोमदत्त ! हमारे प्राप्त अर्थ को न जाने दो ॥४२॥]

सोमदत्त बोला—

पच्चति निरये घोरे महिस्समवदीयति
मित्त दूभी हितच्चागी जीवरे चापि सुस्सरे ॥४३॥
सचे हि धनकामोसि भूरिदत्तो पदस्सति
मञ्ञे अत्तकत वर नचिर वेदयिस्सति ॥४४॥

[जो मित्र के साथ द्रोह करता है, जो अपने हितचिंतक का त्याग करता है वह जीते जी भी सूखता है और घोर नरक मे पकता है तथा उसको पृथ्वी निगल जाती है ॥४३॥ यदि तुझे धन की इच्छा है तो भूरिदत्त देगा। ऐसा लगता है कि अपने किये वैर का फल तू शीघ्र ही भोगेगा ॥४४॥]

ब्राह्मण बोला—

महायञ्ञं यजित्वान एव सुज्झन्ति ब्राह्मणा
महायञ्ञ यजिस्साम एव मोक्खाम पापका ॥४५॥

[ब्राह्मण महान् यज्ञ करके शुद्ध हो जाते हैं। मैं भी महान् यज्ञ करके पाप से मुक्त हो जाऊगा ॥४५॥]

सोमदत्त बोला—

हन्ददानि अपायामि नाह अज्ज तया सह,
पदम्पेक न गच्छेय्य एव किब्बिसकारिना ॥४६॥

[मै अब जाता हूँ। ऐसे पापी के साथ अब मै एक कदम भी और नही चलूगा ॥४६॥]

यह कह वह पण्डित-ब्रह्मचारी पिता को अपनी बात मनवा सकने में असमर्थ रहने के कारण, 'इस प्रकार के पापी के साथ न जाऊंगा' घोषणा से देवता को कपाकर, पिता के देखते ही देखते भागकर हिमालय में चला गया। वहाँ प्रव्रजित हो अभिञ्जा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-लाभी हो ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इद वत्वान पितर सोमदत्तो बहुस्सुतो,
उज्झापेत्वान भूतानि तम्हा ठाना अपक्कमि ॥४७॥

[पिता को यह कह बहुश्रुत सोमदत्त भूतो (देवताओ) को कपाता हुआ उस स्थान से चल दिया ॥४७॥]

नेसाद ब्राह्मण ने सोचा कि सोमदत्त अपना घर छोडकर कहाँ जायेगा ? उसने-आलम्बायन को थोडा असन्तुष्ट देख कहा, "आलम्बायन ! चिन्ता मत कर। मै तुझे भूरिदत्त दिखाऊगा।" वह उसे लेकर वहाँ पहुचा जहाँ नागराज उपोसथ कर्म करता था। वाम्बी पर फन फैलाये पडे नागराज को देख उसने थोडी ही दूर पर खडे हो, हाथ पसारकर दो गाथायें कही—

गण्हाहेन महानागं आहरेतं मणिं मम,
इन्दगोपकवण्णाभो यस्स लोहितको सिरो ॥४८॥
कप्पास पिचुरासीव एसो कायस्स दिस्सति,
वम्मिकग्गगतो सेति त त्व गण्हाहि ब्राह्मण ॥४९॥

[जिसका इन्द्र-गोप के समान लाल सिर है, उस महानाग को पकड लो और मुझे मणि दो ॥४८॥ यह रुई के फोहो की ढेर की तरह दिखाई देता है। यह बाम्बी पर पडा सोता है। हे ब्राह्मण ! तुम इसे ग्रहण करो ॥४९॥]

बोधिसत्व ने आखें खोली तो शिकारी को देखकर सोचा कि यह मेरे उपोसथ-व्रत में बाधा डालेगा, सोच इसे नाग-भवन ले जाकर महान् सम्पत्ति सौंपी। इसने मेरी दी हुई मणि लेने की इच्छा नही की। अब यह सपेरे को लेकर आया है। यदि मै इस मित्र-द्रोही के प्रति क्रोध करता हूं तो मेरा शील खण्डित होता है। मैंने पहले ही चार अङ्गो वाला व्रत धारण किया है। वह वैसा ही रहे। चाहे आलम्बायन मुझे काटकर पकाये चाहे काटो से काटे, मै इसके प्रति क्रोध नही करूगा। यदि मै

इसे देखूगा, तो मेरा उपोसथ-व्रत टूट जायेगा। उसने आँखे वन्द की और अधिष्ठान-पारमिता को आगे कर, फनके भीतर सिर दे निश्चिन्त पडा रहा।

नेसाद ब्राह्मण भी बोला—"आलम्बायन ! इस नाग को पकड और मुझे मणि दे। आलम्बायन नाग को देखने से ही प्रसन्न हुआ। उसने मणि की कुछ भी कदर न कर कहा, "ब्राह्मण ! ले।" उसने मणि उसके हाथ मे फेंक दी। वह उसके हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिरी। गिरते ही वह पृथ्वी मे घुस नाग-भवन ही पहुची। ब्राह्मण ने मणि-रतन से, भूरिदत्त की मैत्री से तथा पुत्र से —तीनो ने हाथ धोये। वह 'मैं' निराधार हो गया। मैंने पुत्र का कहना न माना' कहता हुआ घर गया।

आलम्बायन ने भी अपने शरीर पर दिव्य औषध मली, कुछ खाई और शरीर के अन्दर भी पहुचा वह दिव्य मन्त्र का जाप करता हुआ बोधिसत्व के पास पहुचा। उसने उसे पूछ से पकडा, खीचा और मुह को दृढता से पकडकर खोला। उसने उसे औषध खिलाकर उसके मुह में थूक दिया। शुचि-स्वभाव होने पर नागराज ने शील के खण्डन के डर से, बिना क्रोध के आँखे खोलकर बन्द तक नहीं की। उसने उसे औषधी से बेहोश किया। फिर पूछ से पकड, सिर नीचा कर, हिलाकर, गृहीत-स्थान छुडवाकर जमीन पर लम्बा करके लिटाया और तकिये को मलने की तरह हाथ से मलने लगा। हड्डियाँ चूर्ण-विचूर्ण सी हो गई। फिर पूछ से पकड धुस्से को पीटने की तरह पीटा। इस प्रकार का दुख अनुभव करते भी बोधिसत्व ने क्रोध नही किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथोसधेहि दिब्बेहि जप मन्तपदानि च
एव त असक्खि सट्ठु कत्वा परित्तमत्तनो ॥५०॥

[इस प्रकार दिव्य औषध तथा मन्त्र जाप से अपने आपको सुरक्षित करके वह उसे पकड सका ॥५०॥]

इस प्रकार उसने बोधिसत्व को दुर्बल बना, लताओ से टोकरी बना बोधिसत्व को उसमें डाला। शरीर बडा होने से वह उसमे नही आता था। तब उसे एडी की ठोकर मार, टोकरी में धकेल, टोकरी लेकर एक गाँव पहुचा और गाँव के बीच में उतार आवाज लगाई कि जो साँप का नाच देखना चाहे, वे आये। सारे ग्रामवासी

इकट्ठे हुए। उस समय आलम्बायन ने कहा—"महानाग। निकल।" बोधिसत्व ने सोचा, "आज मुझे ऐसा खेल दिखाना चाहिये कि परिषद सन्तुष्ट हो जाय। इस प्रकार आलम्बायन को बहुत धन मिल जायगा तो वह मुझे छोड देगा। जो जो यह मुझसे करायेगा, वह वह करूगा।"

तब उसने उसे टोकरी से निकालकर कहा—"बडा बन।" वह बडा बन गया। छोटा, गोल, चौडा, एक फनवाला, दो फनवाला, तीन फनवाला, पाँच-सात आठ-नो-दस-बीस-तीस-चालीस-पचास- फनवाला, सौ फन वाला, ऊचा, नीचा, साकार निराकार, आधा साकार-आधा निराकार, नीला पीला, लाल, सफैद तथा मजीठे रग का हो, ज्वाला निकाल, पानी तथा धुआँ निकाल। इन तरीको से भी, जैसे जैसे उसने कहा अपने रूप बनाकर उसने नाच दिखाया। यह देख कोई भी आँसू न रोक सका। आदमियो ने बहुत सा हिरण्य, सोना, वस्त्र तथा अलकार दिये। इस प्रकार उसी गाँव मे ही एक लाख मिले। यद्यपि उसने बोधिसत्व को पकडते समय सोचा था कि लाख मिलने पर इसे छोड दूगा, किन्तु अब उसके मन मे लोभ पैदा हो गया, वह सोचने लगा कि गाँव से इतना मिला है, नगर से कितना अधिक मिलेगा! उसने उसे नही छोडा। उसने उस गाँव मे परिवार को रखा ओर रतन की टोकरी बनवा, उसमे बोधिसत्व को डाला। फिर आराम की स्वारी मे बैठ, बडे ठाट-बाट के साथ निकल ग्राम-निगम आदि मे उसका खेल दिखाते हुए वह वाराणसी पहुचा। वह नागराज को मीठी-खील खाने को देता था। मेण्डक मारकर देता था। वह कुछ नही खाता था। उसे डर था यदि खाऊगा तो यह मुझे छोडेगा नही। उसके निराहार रहने पर भी उसने चारो द्वार-ग्रामो से आरम्भ करके जहा तहाँ महीना भर उससे तमाशा कराया। पूर्णिमा-उपोसथ के दिन उसने राजा को कहलवाया कि आज तुम्हे तमाशा दिखाऊगा। राजा ने मुनादी करा जनता इकट्ठा कर ली। राजाङ्गन मे मञ्चो पर मञ्च बन्ध गये।

क्रीडा-कांड समाप्त

जिस दिन आलम्बायन ने बोधिसत्व को पकडा उसी दिन बोधिसत्व की माता ने स्वप्न मे देखा कि एक लाल-आखो वाले काले आदमी ने तलवार से उसकी बाँह काट डाली है और उसमे से रक्त बह रहा है तथा वह उसे लिये जा रहा है। वह

भयभीत हो उठी और दाहिनी बाँह का स्पर्श करके उसने जाना कि यह स्वप्न था। उसके मन में हुआ कि मैंने कठोर बुरा स्वप्न देखा है। या तो मेरे चारों पुत्रों के लिये या धृतराष्ट्र राजा के लिये या मेरे ही लिये यह अच्छा नहीं होगा। किन्तु वह अधिकतर बोधिसत्व के ही बारे में सोचने लगी। क्यों? शेष तो अपने नाग-भवन में रहते थे। वह सदाचार के विचार से मनुष्य-लोक में जाकर उपोसथ-व्रत करता था। इसलिये वह उसी के बारे में अधिक चिन्ता करती थी कि मेरे पुत्र को कोई सपेरा वा गरुड न पकड ले। उसके बाद आधा महीना बीतने पर वह यह सोचकर दुखी हुई कि मेरा पुत्र आधे महीने से अधिक मुझसे पृथक् नहीं रह सकता था, निश्चय से उसे कोई खतरा हो गया होगा। महीना बीत जाने पर तो उसकी आँख से सदा ही आसू बहते रहते। हृदय सूख गया, आँखे फूल आई। वह बैठी-बैठी उसकी प्रतीक्षा ही करती रहती कि अब आता होगा, अब आता होगा।

महीना बीतने पर उसका बडा लडका सुदर्शन बहुत से अनुयाइयों के साथ माता-पिता के दर्शनार्थ आया। परिषद को बाहर छोड, महल पर चढ उसने माता को नमस्कार किया और एक ओर खडा हुआ। उसे भूरिदत्त की ही चिन्ता लगी थी। इसलिये उसने उससे कुछ बातचीत नहीं की। वह सोचने लगा, "पहले मेरे आगमन पर मेरी मा प्रसन्न होती थी। कुशल-समाचार पूछती थी। क्या कारण है कि आज वह दुखी है?" उसने उसे पूछा—

मम दिस्वान आयन्त सब्बकामसमिद्धिन
इन्द्रियानि अहट्ठानि साव जात मुख तव ॥५१॥
पदुम यथा हत्थगत पाणिना परिमद्दित,
साव जात मुख तुम्ह मम दिस्वान एदिस ॥५२॥

[सब कामनाओं के पूरी करनेवाले मुझे आया देखकर तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न नहीं हैं और चेहरा काला पड गया है ॥५१॥ जैसे हाथ में लिया हुआ कँवल हाथ से मल दिया जाय, मुझे इस प्रकार आया देख तेरा चेहरा वैसा ही काला पड गया है ॥५२॥]

उसके ऐसा कहने पर भी वह कुछ नहीं बोली। सुदर्शन सोचने लगा—किसीने गाली दी होगी वा उपहास किया होगा। उसने उसे पूछते हुए दूसरी गाथा कही—

कच्चि नु ते नाभिसयि कच्चि ते अत्थि वेदना,

येन साव मुख तुरह मम दिस्वान आगत ॥५३॥

[क्या तुझे किसीने कोई कष्ट दिया है ? क्या तुझे कोई पीडा है ? मुझे आया देखकर तू (क्यो) काली पड गई है ? ॥५३॥]

उसने उसे उत्तर दिया—

सुपिन तात अद्दक्खि इतो मास अधोगत,

दक्खिणं विय मे बाह छेत्वा रुहिरमक्खित,

पुरिसो आदाय पक्कामि ममं रोदन्तिया सति ॥५४॥

यतो त सुपिनद्दक्खि सुदस्सन विजानहि,

ततो दिवा वा रत्ति वा सुख मे न उपलब्भति ॥५५॥

[अब से एक महीना पहले तात ! मैंने एक स्वप्न देखा। ऐसा लगा कि मेरी दाहिनी बाँह को छेदकर, रक्त बहाते हुए और मेरे रोते हुए मुझे एक आदमी पकडकर ले जा रहा है ॥५४। हे सुदर्शन ! यह जान कि जब से वह स्वप्न देखा है तब से न मुझे दिन को चैन है ओर न रात को चैन है ॥५५॥]

इतना कह वह रोती हुई बोली—"तात ! मेरा छोटा भाई मेरा प्रिय-पुत्र नही दिखाई देता। उसे कोई न कोई खतरा हुआ होगा।" वह कहने लगी—

यं पुब्बे परिचारिंसु कञ्जा रुचिरविग्गहा,

हेमजालपटिच्छन्ना भूरिदत्तो न दिस्सति ॥५६॥

य पुब्बे परिचारिंसु नेत्तिसवरधारिनो

कणिकाराविय सम्फुल्ला भूरिदत्तो न दिस्सति ॥५७॥

हन्ददानि गमिस्साम भूरिदत्त निवेसन,

धम्मट्ठ सीलसम्पन्न पस्साम तव भातरं ॥५८॥

[स्वर्णजालाच्छादित सुन्दर शरीरधारिणी कन्यायें जिसकी पहले परिचर्य्या करती थीं, वह भूरिदत्त दिखाई नही देता ॥५६॥ कणिकार पुष्प की तरह पुष्पित, श्रेष्ठ खड्ग के धारण करनेवाले पहले जिसकी परिचर्य्या करते थे, वह भूरिदत्त अब दिखाई नही देता ॥५७॥ अब हम भूरिदत्त के निवास-स्थान को चले, और तेरे धर्म-स्थित सदाचारी भाई को देखे ॥५८॥]

इतना कह उसको और अपनी परिषद् को साथ ले वहा गई। भूरिदत्त की भार्य्याओ ने जब उसे वाम्बी पर नही देखा तो वे यह समझ कि मा के पास गया होगा, निश्चिन्त रहीं। लेकिन जब उन्होंने सुना कि सास पुत्र के न दिखाई देने के कारण चली आ रही है, तो वे अगवानी करके पहुची और उसके पाव मे गिर यह कहकर महाविलाप करने लगी कि 'आर्ये आज एक महीने से वह दिखाई नही देता।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तञ्च दिस्वान आयन्ति भूरिदत्तस्स मातर,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु भूरिदत्तस्स नारियो ॥५९॥
पुत्तंतेय्ये न जानाम इतो मास अधोगत,
मत वा यदि वा जीव भूरिदत्त यसस्सिन ॥६०॥

[भूरिदत्त की माता को आता देखकर भूरिदत्त की नारियाँ बाहे पीटकर विलाप करने लगी—हे आर्ये! एक महीने से हम तेरे पुत्र के बारे मे कुछ नही जानती, हम नही जानती कि यशस्वी भूरिदत्त मृत है वा जीवित है ॥५९-६०॥]

भूरिदत्त की मा अपनी पुत्र-वधुओ के साथ गलियो मे रो-पीटकर, उनके साथ उसके महल पर चढ, पुत्र की शैय्या देख रोती-पीटती हुई कहने लगी—

सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
चिर दुक्खेन झायिस्स भूरिदत्त अपस्सति ॥६१॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
तेन तेन पधाविस्स पियपुत्त अपस्सति ॥६२॥
कुररी हतछापाव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
चिर दुक्खेन झायिस्स भूरिदत्त अपस्सति ॥६३॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मि अनुदके,
चिर दुक्खेन झायिस्स भूरिदत्त अपस्सति ॥६४॥
कम्मारान यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि,
एव झायामि सोकेन भूरिदत्त अपस्सति ॥६५॥

[जिस प्रकार मृत-पुत्र चिडिया घोसले को शून्य देखकर (रोती है) उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ॥६१॥ जिस

प्रकार मृत-पुत्र चिडिया घोसले को शून्य देखकर (रोती है) उसी प्रकार मैं भी प्रिय-पुत्र को न देखने के कारण जहाँ तहाँ दौडती हूँ ।।६२।। जिस प्रकार मृत-सन्तान कुररी घोसले को सूना देखकर (दुखी होती है) उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ।।६३।। जिस प्रकार जल-रहित तालाब मे चकवी दुखी रहती है, उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ।।६४।। जैसे सुनारो की आग अन्दर से जलाती है, वाहर से नही, इसी प्रकार मै भूरिदत्त को न देखने से शोक से (अन्दर-अन्दर) जलती हूँ ।।६५।।]

इस प्रकार भूरिदत्त माता के विलाप करने के समय भूरिदत्त भवन मे समुद्र तल की तरह शोर हो उठा। कोई भी होश सभाले न रह सका। सारा भवन युगान्त-वायु से चालित शाल-वन के समान हो गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा —

सालाव सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ताव दारा च भूरिदत्त निवेसने ।।६६।।

[भूरिदत्त के भवन मे उसके स्त्री-पुत्र ऐसे पडे थे जैसे वायु से ताडित शाल-वृक्ष ।।६६।।]

अरिट्ठ और सुभग भाइयो ने माता-पिता की सेवा में जाते समय वह आवाज सुन भूरिदत्त-भवन मे प्रवेश कर माता को आश्वस्त किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इद सुत्वान निग्घोस भूरिदत्त निवेसने,
अरिट्ठो च सुभगो च उपधाविंसु अवन्तरा ।।६७।।
अम्म अस्सास मा सोचि एव धम्मा हि पाणिनो,
चवन्ति उपपज्जन्ति एसस्स परिणमिता ।।६८।।

[भूरिदत्त भवन मे यह शब्द सुनकर अरिट्ठ और सुभग अविलम्ब वहाँ गये ।।६७।। उन्होने आश्वासन दिया—मा, आश्वस्त हो। सोच मत कर। प्राणियो

का यह स्वभाव-धर्म ही है। यह मरते है, उत्पन्न होने है—यही इनकी परिणाम-शीलता है ॥६८॥]

समुद्र-कन्या बोली—

अहम्पि तात जानामि एव धम्मा हि पाणिनो,
सोकेन च परेतास्मि भूरिदत्त अपस्सति ॥६९॥
अज्ज चे मे इम रत्ति सुदस्सन विजानहि,
भूरिदत्त अपस्सन्ती मञ्ञे हेस्साम जिवित ॥७०॥

[तात! मै भी यह जानती हूँ कि यह प्राणियो का स्वभाव-धर्म है। किन्तु भूरिदत्त को न देखने के कारण मै शोक से अभिभूत हूँ ॥६९॥ हे सुदर्शन! यह जान ले कि यदि आज रात मुझे भूरि-दत्त देखना न मिला तो ऐसा लगता है कि मै प्राण ही छोड दूगी ॥७०॥]

पुत्र बोले—

अम्म अस्सास मा सोचि आनयिस्साम भातर,
दिसोदिस गमिस्साम भातुपरियेसनं चरं ॥७१॥
पब्बते गिरिदुग्गेसु गामेसु निगमेसु च,
ओरेन दसरत्तस्स भातर पस्स आगत ॥७२॥

[मा, सोच मत कर। हम भाई को लायेंगे। हम भाई को खोजने के लिये चारो दिशाओ मे जायेंगे ॥७१॥ हम पर्वतो में, गिरि-गुफाओं में, गाँवो मे तथा निगमों में खोजेंगे। तू दस दिन के भीतर ही भाई को आया हुआ देखेगी ॥७२॥]

तब सुदर्शन ने सोचा, "यदि तीनो एक ही दिशा में जायेंगे तो प्रपञ्च होगा। तीनो को तीन दिशाओ में जाना चाहिये। एक को देवलोक। एक को हिमाचल-प्रदेश में। एक को मनुष्य-लोक में। यदि काणा अरिट्ठ मनुष्य-लोक जायेगा तो जहा भूरिदत्त को देखेगा, उस गाँव या निगम को जला आयेगा। यह कठोर है। परुष स्वभाव का है। इसे वहाँ नही भेज सकता।" यह सब विचार कर वह बोला, "तात अरिट्ठ! तू देवलोक जा। यदि धर्मोपदेश सुनने के इच्छुक देवतागण भूरिदत्त को देव-लोक ले गये हो तो वहाँ से तू ले आ।" इस प्रकार उसने अरिट्ठ को देवलोक भेजा। सुभग को उसने हिमाचल प्रदेश मे भेजा, "तात! तू हिमाचल-प्रदेश मे जा,

पाचो महानदियो मे भूरिदत्त को देखकर आ।" स्वय मनुष्य-लोक मे जाने की इच्छा से विचार किया, "यदि मै ब्रह्मचारी के वेष मे जाऊगा तो लोग शक करेगे। मुझे तपस्वी के वेश मे जाना चाहिये। मनुष्यो को प्रव्रजित प्रिय लगते है, अच्छे लगते है।" उसने तपस्वी का भेष बनाया और माता को प्रणामकर निकल पडा। बोधिसत्व की एक विमाता-बहन थी। नाम था अर्ची-मुखी। उसका बोधिसत्व से अत्यन्त प्रेम था। उसने सुदर्शन को जाते देख सोचा, "भाई, बहुत कष्ट उठाता है। मै भी तेरे साथ आऊगी।"

"तू नही आ सकती। मै प्रव्रजित वेष मे जाऊगा।"

"मै छोटी मेण्डकी होकर तेरी जटाओ मे छिपकर जाऊगी।'

"तो आ।"

वह मेण्डक-बच्ची होकर उसकी जटाओ मे जा रमी। सुदर्शन ने सोचा कि मैं शुरू से ही खोजता जाऊगा। उसने बोधिसत्व की भार्य्याओ से उसका उपोसथ-व्रत का स्थान पूछा। वहाँ गया। वहाँ उसने जिस जगह आलम्बायन ने बोधिसत्व को देखा था उस जगह रक्त, और लताओ से जहाँ टोकरी बनाई गई थी वह स्थान देखा। उसे पता लगा कि भूरिदत्त को सँपेरा ले गया। शोक के मारे उसकी आँखो मे आसू आ गये। वह आलम्बायन के मार्ग से ही उस गाँव पहुचा जहाँ उसने पहले पहल बोधिसत्व का तमाशा दिखाया था। उसने लोगो से पूछा "क्या किसी सपेरे ने ऐसे साप का तमाशा दिखाया?"।

"हाँ, आलम्बायन ने अब से एक महीना हुआ तमाशा दिखाया।"

"उसे कुछ मिला?"

"हा यही एक लाख मिला।"

"अब वह कहाँ गया?"

"अमुक ग्राम।"

उसके बाद वह पूछते-पूछते राज-द्वार जा पहुचा।

उसी समय आलम्बायन भी अच्छी प्रकार नहाकर, लेपकर, रेशमी वस्त्र पहन, रतन की टोकरी लिवा राज-द्वार ही गया था। जनता इकट्ठी थी। राजा का आसन बिछा था। उसने अपने निवास-स्थान के भीतर खडे ही खडे कहलाया कि नागराज

का तमाशा दिखाया जाय, मै आता हूँ। आलम्बायन ने सुन्दर बिछावन पर रतन-टोकरी रखी और खोलकर इशारा किया कि महानागराज आ। उस समय सुदर्शन भी परिषद के आखीर में खडा था। बोधिसत्व ने सिर निकालकर उस सारी परिषद को देखा। नाग दो ही कारणो से परिषद् को देखते है, शत्रु गरुड को देखने के लिये अथवा अपने सम्बन्धियो को देखने के लिये।

वे गरुड को देखकर डर से नही नाचते। रिशतेदारो को देखकर लज्जा से नही नाचते। बोधिसत्व ने देखा तो उसे परिषद् के अन्त में खडा हुआ भाई दिखाई दिया। वह आँखो में आँसू भर, टोकरी से निकल भाई की ओर दौडा। जनता उसे आता देख डर के मारे पीछे हटी। केवल सुदर्शन ही खडा रहा। वह जाकर उसके पैरो मे सिर रखकर रोया। सुदर्शन भी रोया। बोधिसत्व रो चुकने पर टोकरी में चला गया। आलम्बायन ने सोचा कि इस नाग ने तपस्वी को डक मारा होगा। मै इसे आश्वस्त करूगा। वह पास जाकर बोला—

हत्था पमुत्तो उरगो पादे ते निपती भुसं,
कच्चि त नु डसी तात मा भायि सुखितोभव ॥७३॥

[साँप हाथ से छूटते ही तुम्हारे पाँव पर जा पडा। तात! कही तुम्हे डसा तो नही? डरे नही। सुखी रहे ॥७३॥]

सुदर्शन ने उसके साथ वार्तालाप करने की इच्छा से उत्तर दिया—

नेव मय्ह अय नागो अल दुक्खाय कायचि,
यावतत्थि अहिग्गाहा मया भीयो न विज्जति ॥७४॥

[यह नाग मुझे किसी भी प्रकार का दुख नही पहुचा सकता। जितने भी सँपेरे है, मुझसे बढकर कोई नही ॥७४॥]

आलम्बायन ने बिना यह जाने कि इसका अमुक नाम है क्रोधित हो कहा—

कोनु ब्राह्मणवण्णेन दत्तो परिसमागमा,
अव्हयन्तु सुयुद्धेन सुणातु परिसा मम ॥७५॥

[परिषद मेरी बात सुने—यह कौन मूर्ख है जो ब्राह्मण के वेष में मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है ॥७५॥]

उसे सुदर्शन ने गाथा द्वारा उत्तर दिया—

त्व म नागेन आलम्ब अह मण्डूक छापिया,
होतु नो अब्भुत तत्थ आसहस्सेहि पञ्चहि ॥७६॥

[तू मुझ साप से लड, मैं मेण्डकी की बच्ची लेकर लडूगा। हमारी तुम्हारी लडाई का तमाशा हो। उसमे पाँच हजार की शर्त रहे ॥७६॥]

आलम्बायन बोला—

अह हि वसुमा अड्ठो त्व दलिद्दोसि माणव,
कोनु ते पटिभोगत्थि उपजूतञ्च किं सिया ॥७७॥
उपजूतञ्च मे अस्स पटिभोगो च तादिसो,
होतु नो अब्भुत तत्थ आसहस्सेहि पञ्चहि ॥७८॥

[हे ब्रह्मचारी! मै तो सम्पत्तिशाली हूँ, धनाढ्य हूँ। तू दरिद्र है। तेरा कौन जिम्मेदार है और तेरा शर्त का धन कहाँ है? ॥७७॥ यदि तेरे पास मुझे देने के लिये शर्त का धन है और तेरा कोई जिम्मेवार भी है तो पाच हजार की शर्त रखकर मेरा तेरा मुकाबला हो ॥७८॥]

सुदर्शन ने जब उसकी बात सुनी कि पाँच हजार से मुकावला हो तो विना डरे राज-भवन पर चढ गया मामा-राजा के पास खडे हो गाथा कही—

सुणोहि मे महाराज वचन भद्दमत्थु ते,
पञ्चन्न मे सहस्सान पटिभोगोहि कित्तिमा ॥७९॥

[हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। मेरी बात सुने। हे कीर्तिमान! मेरी पाच हजार की जिम्मेवारी ले ॥७९॥]

राजा सोचने लगा, यह तपस्वी मुझ से अत्यधिक धन चाहता है। क्या कारण है? उसने गाथा कही—

पेत्तिक वा इण होति य वा होति सयं कतं,
किं त्व एव बहु मय्ह धनं याचसि ब्राह्मण ॥८०॥

[हे ब्राह्मण! या तो पिता का लिया हुआ ऋण होता है, या अपना लिया हुआ ऋण होता है। हे ब्राह्मण! तू मुझसे इतना धन क्यो चाहता है? ॥८०॥]

तब सुदर्शन ने दो गाथायें कही—

आलम्बानो हि नागेन मम अभिजिगिसति,
अहं मण्डूकछापिया डसयिस्सामि ब्राह्मण ॥८१॥
तं त्वं दट्ठु महाराज अज्ज रट्ठाभिवद्धन,
खत्तसंघ परिब्बूलहो निय्याहि अभिदस्सनं ॥८२॥

[आलम्बायन मुझे नाग की सहायता से जीतना चाहता है। मैं ब्राह्मण को मेण्डकी-बच्ची से डसवाऊगा ॥८१॥ हे राष्ट्र-भिवर्धन! हे महाराज! आप क्षत्रियों के संघ सहित यह मुकाबला देखने के लिये आयें ॥८२॥]

'तो चलें' कह राजा तपस्वी के साथ ही निकला। उसे देखा तो आलम्बायन ने सोचा, यह तपस्वी राजा को लिये आता है, यह राज-विश्वस्त होगा। उसे डर लगा। तब उसका अनुकरण करते हुए उसने गाथा कही—

नेव तं अतिमञ्ञामि सिप्पवादेन माणव,
अति मत्तोसि सिप्पेन उरगं नापचायसि ॥८३॥

[हे माणव! मैं अपने शिल्प-ज्ञान के कारण तेरा अपमान नही करता। किन्तु तू अपने शिल्प के अभिमान में नाग का आदर नही करता है ॥८३॥]

तब सुदर्शन ने दो गाथाये कही—

मयम्पि नातिमञ्ञाम सिप्पवादेन ब्राह्मण,
अविसेन च नागेन भुसं वञ्चयसे जनं ॥८४॥
एवं चेतं जनो जञ्ञा यथा जानामि तं अहं,
न त्वं लभसि आलम्ब सत्तुमुट्ठिं कुतो धनं ॥८५॥

[हम भी शिल्प के कारण ब्राह्मण का अपमान नही करते। लेकिन तू विष-रहित सर्प से जनता को बहुत ठगता है। यदि जैसे मैं तुझे जानता हूँ, उसी प्रकार लोग भी तुझे जान जायें तो हे आलम्ब! तुझे सत्तू की मुट्ठी भी नही मिलेगी, धन की तो बात ही क्या! ॥८४-८५॥]

तब आलम्बायन क्रोधित होकर बोला—

खराजिनो जटी दुम्मी दत्तो परिसमागतो,
सो त्वं एवं गतं नागं अविसो अतिमञ्ञसि ॥८६॥

आसज्ज खो न जञ्ञासि पुण्ण उग्गस्स तेजसा,
मञ्ञे त भस्म रासिंव खिप्पमेसो कोरस्सति ॥८७॥

[भद्दे मृग चर्मवाला, जटाओ वाला, मैला तथा मूर्ख तू सभा मे आकर ऐसे नाग को विप-रहित कहकर उसका अपमान करता है ॥८६॥ जब तू उस उग्र-तेज से पूर्ण नाग के पास पहुचेगा, तब तुझे पता लगेगा। मुझे लगता है कि वह तुझे शीघ्र ही राख की ढेर बना देगा ॥८७॥]

उसके साथ मजाक करते हुए सुदर्शन ने गाथा कही—

सिया विस सिलुत्तस्स देड्डभस्स सिलाभुनो,
नेव लोहितसीसस्स विस नागस्स विज्जति ॥८८॥

[यह तो सम्भव है कि गृह-सर्प विषैला हो, यह भी सम्भव है कि पानी का सॉप विपैला हो और यह भी सम्भव है कि हरे रग का सर्प विषैला हो, किन्तु यह रक्त-वर्ण-सिरवाला नाग तो विषैला नही है ॥८८॥]

तब आलम्बन ने उसे दो गाथाये कही—

सुतं मेत अरहत सञ्ञतानं तपस्सिन,
इध दानानि दत्वान सग्ग गच्छन्ति दायका,
जीवन्तो देहि दानानि यदि ते अत्थि दातवे ॥८९॥
अय नागो महिद्धिको तेजसी दुरतिक्कमो,
तेन त उसयिस्सामि सो त भस्म कोरिस्सति ॥९०॥

[मैंने यह अरहतो से सयत-पुरुषो से तथा तपस्वियो से सुना है कि यहाँ दान देने से दाता स्वर्ग को जाते है। यदि तुझे किसी को दान देना है तो जीते जी दान दे ले ॥८९॥ यह महाऋद्धिमान, दुर्दमनीय, तेजस्वी नाग है। मै इस नाग से तुझे डसाऊगा। यह तुझे भस्म कर देगा ॥९०॥]

सुदर्शन का उत्तर था—

मया पेत सुत सम्म सञ्ञतान तपस्सिन,
इध दानानि दत्वान सग्ग गच्छन्ति दायका,
त्वमेव देहि जीवन्तो यदि ते अत्थि दातवे ॥९१॥

अय अच्चीमुखी नाम पुण्णा उग्गस्स तेजसा,

ताय त डसयिस्सामि सा त भस्म कीरस्सति ॥९२॥

[मित्र ! मैंने भी यह सयत-पुरुषो से तथा तपस्वियो मे सुना है कि यहाँ दान देने से दाता स्वर्ग को जाते है। यदि किसी को दान देना है तो तू ही जीते जी दान दे दे ॥९१॥ यह उग्र तेज से भरी हुई है। नाम है अर्ची-मुख। मै इससे तुझे डसाऊगा और यह तुझे भस्म कर देगी ॥९२॥]

या धीता धतरट्ठस्स वेमाता भगिणी मम,

सा दिस्सतु अच्चिमुखी पुण्णा उग्गस्स तेजसा ॥९३॥

[जो धृतराष्ट्र की कन्या है तथा मेरी विमाता-बहन है, वह उग्र तेज से पूर्ण अर्चिमुखी प्रकट होवे ॥९३॥]

इतना कह उसने जनता के बीच मे ही हाथ फैलाया और बहन को आवाज दी—"हे अर्चिमुखी ! मेरी जटाओ मे से निकल हाथ पर प्रतिष्ठित हो।' उसने उसकी आवाज सुन जटा में रहते ही तीन बार मेण्डकी की आवाज की। फिर निकल कर उसके कधे पर बैठी और वहाँ से कूदकर उसकी हथेली पर विष की तीन बूदे गिरा फिर जटा मे जा छिपी।

सुदर्शन विष लिये खडा था। उसने तीन बार कहा—"यह जनपद नष्ट हो जायगा। यह जनपद नष्ट हो गया।" उसके उस शब्द ने बारह योजन की वाराणसी को ढक लिया। राजा ने पूछा—'जनपद क्यो नष्ट हो जायगा ?"

"महाराज ! मै कोई ऐसी जगह नही देखता जहाँ इस विष को गिरा सकूं।"

"तात ! यह पृथ्वी बहुत बडी है। पृथ्वी पर गिरा दे।"

उसने "महाराज ! नही गिरा सकता" कह निषेध करते हुए गाथाये कही—

छमाय चे निसिञ्चिस्स ब्रह्मदत्त विजानहि,

तिण लतानि ओसध्यो उस्सुस्सेय्यु असंसय ॥९४॥

उद्ध चे पातयिस्सामि ब्रह्मदत्त विजानहि

सत्तवस्सानय देवो न वस्से न हिम पते ॥९५॥

उदक चे निसिञ्चिस्स ब्रह्मदत्त विजानहि,

यावता ओदका पाणा मरेय्यु मच्छकच्छप ॥९६॥

[हे ब्रह्मदत्त! तू यह बात जान ले कि यदि मैं इसे पृथ्वी पर गिराऊ तो जितने तृण, लताये तथा औषधियाँ है, वे सब निश्चय से नष्ट हो जायेंगी ।।६४।। हे ब्रह्मदत्त! यह बात जान ले कि यदि मैं इसे ऊपर फेकूगा तो सौ वर्ष तक न देव बरसेगा और न हिमपात होगा ।।६५।। हे ब्रह्मदत्त! यह बात भी जान ले कि यदि मैं इसे पानी मे गिरा दू तो जितने भी मच्छ-कच्छप आदि जल के प्राणी हैं, वे सभी मर जायेंगे ।।६६।।]

तब राजा बोला—"तात! हम कुछ नही जानते। जैसे हमारा राष्ट्र नष्ट न हो सो उपाय तुम ही जानो।"

'तो महाराज! इसी जगह क्रम से तीन गढे खुदवाये।"

राजा ने खुदवाये। सुदर्शन ने बीच का गढा नाना प्रकार की दवाइयो से भरवाया। दूसरा गोबर से। तीसरा दिव्य ओषधियो से। तब बीच के गढे में विष की बूदे गिराई। उसी क्षण धुआँ देकर ज्वाला उठी। उसने जाकर गोबर वाले गढे को घर लिया। वहाँ से भी ज्वाला उठी और दूसरे दिव्य ओषधियो से भरे गढे की सभी ओषधियो को जलाकर बुझी। आलम्बायन उस गढे से थोडी ही दूर खडा था। उसे विष की गरमी छू गई। शरीर की चमडी उतर गई। उसे श्वेत-कुष्ठ हो गया। वह डर गया और तीन बार चिल्लाया कि नागराजाको छोडता हूँ। यह सुन बोधिसत्व रतन-टोकरी से निकल, सभी अलकारो से अलकृत अपना रूप बना देवराज शक्र की भान्ति खडा हुआ। सुदर्शन और अर्चिमुखी भी वैसे ही खडे हुए। तब सुदर्शन ने राजा से कहा—"महाराज! हमे पहचानते हैं कि हम किसके पुत्र है?"

"नही पहचानता हूँ।"

"हमे नही पहचानेगा। क्या याद है कि काशीराज की समुद्रजा नाम की कन्या धृतराष्ट्र को दी गई थी?"

"हाँ जानता हूँ। वह मेरी छोटी बहन है।"

'हम उसके पुत्र हैं। तू हमारा मामा है।"

यह सुन राजा ने उनका आलिङ्गन किया, सिर को चूमा, रोया और उन्हे प्रासाद पर चढा बडा आदर-सत्कार करके भूरिदत्त से कुशल-क्षेम पूछते हुए प्रश्न किया—

"तात ! तेरे सदृश उग्र-तेज को आलम्वायन ने कैसे पकड़ा ?"

उसने सब विस्तारपूर्वक वताया और फिर मामा को धर्मोपदेश दिया कि राजा को इस प्रकार राज्य करना चाहिये ।

तब सुदर्शन बोला—"मामा ! मेरी मा भूरिदत्त को बिना देखे कष्ट पाती है । हम वाहर विलम्ब नही कर सकते ।"

'अच्छा तात ! तुम जाओ । किन्तु मैं अपनी बहन को देखना चाहता हूं । कैसे देख सकूगा ।"

"मामा ! आर्य काशी-राजा कहाँ हैं ?"

"तात ! मेरी बहन के बिना (अकेले) न रह सकने के कारण राज्य छोड़, प्रव्रजित हो अमुक वन-खण्ड मे रहते हैं ।"

"मामा ! मेरी मा तुम्हे ओर आर्य को देखना चाहती है । तुम अमुक दिन आर्य के पास जाओ । हम मा को लेकर आर्य के आश्रम आयेगे । वहा तुम भी उसे देखोगे ।"

इस प्रकार वे मामा के साथ दिन पक्का करके राजभवन से उतरे । राजा भानजो को विदा कर, रोकर रुका । वे भी पृथ्वी मे प्रविष्ट हो नाग-भवन पहुचे ।

नगर-प्रवेश काण्ड समाप्त

वोधिसत्व के आने पर सारा नगर मिलकर रोने-पीटने लगा । वह भी महीने भर टोकरी में पडा रहने के कारण रोगी-शैय्या पर जा लेटा । उसके पास जानेवाले नागो की सीमा नही थी । उसे उनके साथ वातचीत करने मे कष्ट होता था । काणा अरिट्ठ देव लोक जाकर वहाँ वोधिसत्व को न पा पहले ही लौट आया था । यह समझ कि यह प्रचण्ड, कठोर स्वभाव का है और यह आनेवाले नागो को रोक सकेगा, उसे वोधिसत्व के लेटने की जगह द्वारपाल वना दिया ।

सुभग भी सारे हिमालय मे खोजकर, वहाँ से महासमुद्र तथा शेष नदिया देख यमुना को देखता चला आता था । नेसाद ब्राह्मण भी आलम्वायन को कोढी देख सोचने लगा, "यह भूरिदत्त को कष्ट देने के कारण कोढी हो गया । मैंने मणि के लोभ से अपने उस ऐसे उपकारी को आलम्वायन को दिखाया, मुझे उस पाप का फल मिले

मिलेगा। जब तक उसका फल मिलना आरम्भ नही होता तब तक यमुना जाकर पाप-प्रक्षालन-तीर्थ पर पाप-मोचन करूगा।" वह वहाँ पहुचा और यह कहता हुआ यमुना मे उतरा कि मैंने भूरिदत्त के प्रति मित्र-द्रोह कर्म किया, उस पाप का प्रक्षालन करता हूँ।

उसी समय सुभग वहाँ पहुचा। उसको वह बात सुनी तो उसने सोचा, "इस पाप। ने इतनी सम्पत्ति देने वाले मेरे भाई को केवल मणि के लोभ से आलम्बायन को दिखाया। इसे जीता नही छोड़ूगा। उसने उसके पाँवो को पूछ से लपेटा और खैंचकर पानी मे डुबा दिया। जब उसका सास रुकने लगा तब थोडा ढीला किया। उसने सिर उठाया। उसने फिर उसे खैंचकर, डुबाकर सास रुकने पर थोडा ढीला किया। उसने सिर उठाया। इस प्रकार उसने बार बार उसे खैंचा और डुबाया। उसमे बहुत क्लेश पाने पर नेसाद ब्राह्मण ने सिर उठाकर गाथा कही—

लोक्यं सजन्तं उदकं पयागस्मि पतिट्ठितं,
को म अज्झोहरी भूतो ओगाळ्हं यमुनं नदिं ॥९७॥

[प्रयाग मे पाप-नाशक जल से स्नान करते हुए मुझे किसने गहरी यमुना नदी मे खेंचा ? ॥९७॥]

सुभग ने उसे गाथा से उत्तर दिया—

यवेस लोकाधिपती यसस्सी
बाराणसिम्पकिरहरी समन्ततो,
तस्साह पुत्तो उरगुसभस्स
सुभगोतिम ब्राह्मण वेदयन्ति ॥९८॥

[जो यह यशस्वी लोकाधिपति है, जिसने चारो ओर से वाराणसी घेर रखी है, मैं उस सर्प-राज का पुत्र हूँ। हे ब्राह्मण! मुझे सुभग नाम से जानते है ॥९८॥]

'यह भूरिदत्त का भाई है, यह मुझे जीता नही छोडेगा। मैं इसकी और इसके माता पिता की प्रशसा कर, इसके चित्त को कुछ मृदु बना इससे अपनी प्राण-भिक्षा मागू' सोच ब्राह्मण ने गाथा कही—

सचेहि पुत्तो उरगुसभस्स
कसस्स रञ्ञो अमराधिपस्स,

मच्चेसु माता पन ते अतुल्या,
न तादिसो अरहति ब्राह्मणस्स
दासम्पि ओहातु महानुभावो ॥९९॥

[यदि तू अमर-पति कस राजा सर्प-राज का पुत्र है तो तेरी माता लोक में असमान है। तेरे जैसे महानुभाव के लिये ब्राह्मण के दास को भी डुबाना योग्य नहीं ॥९९॥]

तब सुभग ने 'दुष्ट ब्राह्मण ! तू सोचता है कि तू मुझे ठगकर जान बचा लेगा। मैं तुझे जीता न छोड़ूंगा' कहा और उसके पाप-कर्म को प्रकाशित किया—

रुक्ख निस्साय विज्झित्थो एणेय्य पातुमागत,
सो विद्धो दूरमसरा सरवेगेन सेखवा ॥१००॥
त त्व पतितमद्दक्खि अरञ्ञस्मि ब्रहावने,
समसकाजमादाय साय निग्रोधुपागमि ॥१०१॥
सुवसालिय सघुट्ठ पिंगिय सन्थतायुत,
को सिलाभिरुद रम्म धुव हरित सद्दल ॥१०२॥
तत्थ ते सो पातुरहु इद्धिया यससा जल,
महानुभावो भाता मे कञ्ञाहि परिवारितो ॥१०३॥
सो तेन परिचिण्णो त्व सब्बकामेहि तप्पितो,
अदूभस्स तुव दूभि त ते वेर इधागत ॥१०४॥
खिप्प गीव पसारेहि न ते दस्सामि जीवित,
भातु परिसर वेर छेदयिस्सामि ते सिर ॥१०५॥

[पानी पीने के लिये आये मृग को वृक्ष के नीचे खड़े होकर बींधा। बाण-वेग से वह बिंधा हुआ मृग शीघ्र दूर तक गया ॥१००॥ तूने उसे घोर जगल में गिरा देखा। वहाँ से उसे बँहगी में उठाकर शामको न्यग्रोध-वृक्ष पहुचा ॥१०१॥ तोते-मैना के स्वर से गुजायमान, पिङ्गल-वर्ण शाखाओ से घिरा हुआ, कोकिलो के स्वर से युक्त, तथा जहाँ नित्य हरियाली थी—वहाँ कन्याओ से घिरा हुआ, ऋद्धि तथा यश मे जाज्वल्यमान मेरा बडा भाई तुझे मिला ॥१०२-१०३॥ उसने तुझे अपने भवन ले जाकर तेरी सब कामनायें पूरी की। उस अद्रोही के साथ तूने द्रोह किया। अब तेरा वह वैर-कर्म तेरे सामने आ गया है ॥१०४॥ जल्दी से अपनी गरदन निकाल।

मै तुझे जीता नही छोड़ूंगा । भाई के साथ किया गया वैर पीछे-पीछे आया है। मै तेरा सिर काटूगा ॥१०५॥]

तब ब्राह्मण ने सोचा यह मुझे जीता नही छोड़ेगा । तो भी जैसे भी हो जीवित बने रहने के लिये प्रयत्न करना ही चाहिये । उसने गाथा कही—

अज्झापको याचयोगो आहुतग्गीच ब्राह्मणो,
एतेहि तीहि ठानेहि अवज्झो भवति ब्राह्मणो ॥१०६॥

[(वेद-) पाठी होने से, याज्ञिक होने से, तथा अग्नि-पूजक होने से ब्राह्मण अवध्य होता है ॥१०६॥]

यह सुन सुभग के मन मे सन्देह पैदा हो गया। उसने तै किया कि इसे नाग-भवन ले जाकर भाई से पूछकर जानूगा । उसने दो गाथाये कही—

य पुर धतरट्ठस्स ओगाळ्ह यमुन नदि,
जोतते सब्ब सोवण्ण गिरि आहच्च यामुन ॥१०७॥
तत्थ ते पुरिसब्यग्घा सोदरिया मम भातरो,
यथा ते तत्थ वक्खन्ति तथा हेस्सास ब्राह्मण ॥१०८॥

[यमुना नदी मे स्थित जो धृतराष्ट्र का नगर है, जहाँ यमुना से समीप ही सर्व स्वर्णमय गिरि सुशोभित है, वहाँ हे पुरुष-व्याघ्र ! मेरे सहोदर भाई रहते है। हे ब्राह्मण । जैसा वे कहेगे वैसा होगा ॥ १०७-१०८॥

यह कह उसे गर्दन से पकड, उठा, गाली देता हुआ और बे-इज्जती करता हुआ बोधिसत्व के महल के द्वार पर पहुचा।

सुभग-काण्ड समाप्त

इस प्रकार द्वारपाल बनकर बैठे काने अरिट्ठ ने जब उस तरह कष्ट दिये जाकर लाये गये ब्राह्मण को देखा तो उसका स्वागत करते हुए, कहा, "सुभग, इसे कष्ट मत दे । ब्राह्मण महाब्रह्मा के पुत्र होते है । यदि महाब्रह्मा जानेगा कि मेरे पुत्रो को पीडा देते है, तो क्रुद्ध हो हमारे सारे नाग-भवन को नष्ट कर देगा । लोक मे ब्राह्मण श्रेष्ठ होते है, महाप्रतापी होते हैं । तू उनका प्रताप नही जानता । मै जानता हू ।" काना अरिट्ठ ठीक पिछले जन्म मे एक याज्ञिक ब्राह्मण था । इसीसे ऐसा बोला ।

उसने ऐसा कहा और तब यज्ञ करने की और झुक, सुभग और नाग-परिषद को सम्बोधन कर बोला—"आओ, मैं यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों का गुण कहूंगा।" उसने यज्ञों का गुणानुवाद करते हुए कहा—

अनित्तरा इत्तरसम्पयुत्ता
यञ्ञा च वेदा च सुभोग लोके,
तदग्गरय्ह हि विनिन्दमानो
जहाति वित्तञ्च सतञ्च धम्म ॥१०९॥

[हे सुभग ! लोक में यज्ञ और वेद श्रेष्ठ हैं। उन यज्ञों तथा वेदों से युक्त ब्राह्मणो भी श्रेष्ठ हैं। इन अनिन्दनीयों की निन्दा करनेवाला धन और सत्पुरुषों के धर्म को छोडता है ॥१०९॥]

उसने यह इसलिये कहा कि यह यह न कह सके कि इसने भूरिदत्त के प्रति मित्र-द्रोह-कर्म किया है। उसने पूछ—'सुभग ! जानता है कि इस ससार को किसने बनाया है ?"

"नही जानता हू।"

"ब्राह्मणो के पितामह ब्रह्मा ने बनाया है" बताने के लिये यह गाथा कही—

अज्झेनमरिया पठविं जनिन्दा
वेस्सा कसिं परिचरिय च सुद्दा
उपागु पच्चेक यथा पदेस
कताहु एते वसिनाति आहु ॥११०॥

[उस महाब्रह्मा ने इन्हें बनाया और ब्राह्मणों के लिये अध्ययन, क्षत्रियों के लिये राज्य जीतना, वैश्यों के लिये कृषि तथा शूद्रों के लिये (तीनों वर्णों की) सेवा का विधान बनाया। ये नियमानुसार अपने अपने कर्म को प्राप्त हुए ॥११०॥]

'इस प्रकार ये ब्राह्मण महागुणवान् हैं। जो इनमें श्रद्धा रखकर दान देता है, उसका फिर अन्यत्र जन्म नही होता। वह देव-लोक ही जाता है' कह गाथा कही—

धाता विधाता वरुणो कुवेरो
सोमो यमो चन्दिमा वायु सुरियो,

एते हि यञ्ञ पुथुसो यजित्वा
अज्झायकान अथ सब्बकामे ॥१११॥
विकासितानि चापसतानि पञ्च
यो अज्जुनो बलवा भीमसेनो
सहस्सबाहु असमो पठव्या
सोपि तदा आदहि जातवेद ॥११२॥

[धाता-विधाता, वरुण, कुबेर, सोम, याम, चन्द्रिमा, वायु तथा सूर्य्य आदि ने बहुत से यज्ञ करके देव-गति प्राप्त की ॥१११॥ जिस सहस्र-बाहु, भीम-सेन, बलवान अर्जुन ने पाँच सौ धनुष चढाये उस पृथ्वी-भर मे अतुलनीय वीर ने भी अग्नि-पूजा की ॥११२॥]

उसने आगे भी ब्राह्मण-प्रशसा मे ही गाथा कही—

यो ब्राह्मणे भोजयि दीघरत्त
अन्नेन पाणेन यथानुभाव,
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो
सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११३॥

[जिसने प्रसन्न-चित्त हो, अनुमोद करते हुए यथा सामर्थ्य, दीर्घ-काल तक अन्न-पान से ब्राह्मण की सेवा की, हे सुभग ! वह देव-योनि मे उत्पन्न हुआ ॥११३॥]

ब्राह्मण अग्र-दक्षिणा देने योग्य है—इसीके समर्थन मे और भी गाथा कही—

महासन देवमनोमवण्णि
यो सप्पिना असक्खि जेतुमग्गि,
सो यञ्ञतन्त वरतो यजित्वा
दिब्ब गति मुचलिन्दज्झगच्छि ॥११४॥

[जो मुचलिन्द (राजा) श्रेष्ठ-वर्ण, महान् भक्षी अग्नि-देवता को घी से सन्तुष्ट कर सका, वह यज्ञ के विधान के अनुसार यज्ञ करके दिव्य-गति को प्राप्त हुआ ॥११४॥]

उसने यह भी गाथा कही—

महानुभावो वस्ससहस्सजीवी
यो पब्बजि दस्सनेय्यो उलारो,
हित्वा अपरियन्तरथ ससेन
राजा दुदीपोपि जगाम सग्ग ॥११५॥

[जो महाप्रतापी राजा हजार वर्ष तक जीता रहा, जिस उदार, दर्शनीय राजा ने सेनासहित असीमरथ को छोड़ प्रव्रज्या ग्रहण की, वह दुदीप राजा भी (यज्ञ करके स्वर्ग गया ॥११५॥)]

और भी उदाहरण देते हुए कहा—

सो सागरन्त सागरो विजित्वा
यूप सुभ सोण्णमय उलार,
उस्सेसि वेस्सानरमादहानो
सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११६॥
यस्सानुभावेन सुभोग गगा
पवत्तथ दधिसन्न समुद्द,
स लोमपादो परिचरियमग्गि
अगो सहस्सक्ख पुरज्झगच्छि ॥११७॥

[जिस सागर (सगर) राजा ने सागर पर्य्यन्त पृथ्वी जीती, उसने भी विश्वानर अग्नि की पूजा करते हुए बड़ा, स्वर्णमय यूप खड़ा किया। हे सुभोग! उसने देवगति प्राप्त की ॥११६॥ हे सुभग! जिस अङ्ग लोमपाद (राजा) के प्रताप से गङ्गा तथा समुद्र अस्तित्व मे आये, उसने भी अग्नि-परिचर्य्या कर इन्द्र-लोक को गमन किया ॥११७॥]

उसे यह पूर्व की बात कह, यह गाथा कही—

महिद्धिको देववरो यसस्सी
सेनापती तिदिवे वासवस्स,
स सोमयागेन मल विहन्त्वा
सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११८॥

[इन्द्र का महाप्रतापी, श्रेष्ठ-देव, यशस्वी सेनापति भी सोमयज्ञ के द्वारा अपने को निर्मल कर देव-गति को प्राप्त हुआ ॥११८॥]

ओर भी उदाहरण देते हुए कहा—

> अकासि यो लोकमिम परञ्च
> भागीरसिं हिमवन्तञ्च गिज्झं,
> यो इद्धिमा देववरो यसस्सी
> सोपि तदा अदही जातवेद ॥११९॥
> मालागिरि हिमवा योच गिज्झो
> सुदस्सनो निसभो काकनेरु,
> एतेच अञ्ञे च नगा महन्ता
> चित्या कता यञ्ञकरेहिमाहु ॥१२०॥

[जिसने इस लोक तथा परलोक की रचना की, गङ्गा और हिमालय तथा गृध्र (कूट) पर्वतों की रचना की, उस ऋद्धिमान, श्रेष्ठ-देव, यशस्वी महाब्रह्मा ने भी (लोकों की रचना करने से पहले) अग्नि की पूजा की ॥११९॥ कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय, गृध्र-कूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकनेरु आदि जितने पर्वत हैं वे सब याज्ञिकों के लिये चुनकर बनाये गये आसनों से ही बढकर पर्वत हो गये हैं ॥१२०॥]

फिर कहा—"सुभोग भाई! जानता है कि यह समुद्र किस कारण से लवण रस तथा अपेय हो गया है ?" "अरिट्ठ! नहीं जानता हूँ।" "तो तू ब्राह्मणों को मारना ही जानता है, ले सुन" कह अगली गाथा कही—

> अज्झायक मन्तगुणूपपन्नं,
> तपस्सिन याचयोगोतिचाहु,
> तीरे समुद्दस्सुदकं सजन्तं
> तं सागरज्झोहरि तेन पेय्यो ॥१२१॥

[यह सागर एक अध्यापक, वेद (मन्त्र) पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण को जब वह किनारे पर खड़ा अपने शरीर पर से पानी बहा रहा था, बहा ले गया। (उसी से क्रुद्ध हो, महाब्रह्मा ने शाप दे दिया, और यह समुद्र) लवण-रस तथा अपेय हो गया ॥१२१॥]

और भी कहा—

आयाग वत्थूनि पुथु पथव्या
स विज्जन्ति ब्राह्मणा वासवस्स,
पुरिम दिस पच्छिम दक्खिणुत्तर
सविज्जमाना जनयन्ति वेद ॥१२२॥

[पृथ्वी मे बहुत से ब्राह्मण देवेन्द्र शक्र के पुण्य-क्षेत्र हैं, वे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशा मे रहकर इन्द्र के मन मे प्रसन्नता पैदा करते हैं ॥१२२॥]

इस प्रकार अरिट्ठ ने चौदह गाथाओ से ब्राह्मणो की, यज्ञो की तथा वेदो की प्रशसा की। उसका यह कहना सुन, बोधिसत्व की रोगी सुश्रुषा के लिये आये हुए बहुत से नाग 'यह सत्य ही कहता है' मान उसके मिथ्या-विश्वासी से हो गये। बोधिसत्व ने रोगी-शैय्या पर पडे ही पडे वह सब सुना। नागो ने भी उसे कहा। बोधिसत्व ने सोचा, "यह अरिट्ठ मिथ्या-मत की प्रशसा कर रहा है। इसके मत का खण्डन कर जनता को सत्य-मतानुयायी बनाऊगा।" उसने उठकर स्नान किया और सब अलकारो से अलकृत हो धर्मासन पर बैठ, सारी नाग-परिषद को एकत्र कर, अरिट्ठ को बुलाकर कहा "अरिट्ठ! तू मिथ्या बात कहकर वेदो और यज्ञ की प्रशसा कर रहा है। वेद-विधि के अनुसार जो ब्राह्मण का यज्ञ करना है वह अनिष्टकर है, स्वर्ग ले जाने वाला नही है। अपने मत की असत्यता देख।" उसने यज्ञो का खण्डन करते हुए कहा—

कलि हि धीरान कट मगान
भवन्ति वेदज्झगता नरिट्ठ,
मरीचिधम्म असमेक्खितत्ता
मायागुणा नातिवहन्ति पञ्ज ॥१२३॥

वेदा न ताणाय भवन्ति रस्स
मित्तद्दुनो, भूनहुनो नरस्स,
न तायते परिचिण्णो च अग्गि
दोसन्तर, मच्च अनरियकम्म ॥१२४॥

सब्बे च मच्चा सधना सभोगा
आदीपित दारु तिणेन मिस्स,

और भी उदाहरण देते हुए कहा—

अकारि यो लोकमिम परञ्च
भागीरसिं हिमवन्तञ्च गिज्भ,
यो इद्धिमा देववरो यसस्सी
सोपि तदा अवही जातवेद ॥११९॥
मालागिरि हिमवा योच गिज्भो
सुदस्सनो निसभो काकनेरू,
एतेच अञ्ञे च नगा महन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहिमाहु ॥१२०॥

[जिसने इस लोक तथा परलोक की रचना की, गङ्गा और हिमालय तथा गृध्र (कूट) पर्वतों की रचना की, उस ऋद्धिमान, श्रेष्ठ-देव, यशस्वी महाब्रह्म ने भी (लोकों की रचना करने से पहले) अग्नि की पूजा की ॥११९॥ कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय, गृध्र-कूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकनेरू आदि जितने पर्वत हैं वे सब याज्ञिकों के लिये चुनकर बनाये गये आसनों से हैं। बढकर पर्वत हो गये हैं ॥१२०॥]

फिर कहा—"सुभोग भाई ! जानता हूँ कि यह समुद्र किस कारण से लवण रस तथा अपेय हो गया है ?" "अरिट्ठ ! नही जानता हूँ ।" "तो तू ब्राह्मणों को मारना ही जानता है, ले सुन" कह अगली गाथा कही—

अज्झायक मन्तगुणूपपन्न,
तपस्सिन याचयोगोतिचाहु,
तीरे समुद्दस्सुदक सजन्त
त सागरज्झोहरि तेन पेय्यो ॥१२१॥

[यह सागर एक अध्यापक, वेद (मन्त्र) पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण के जब वह किनारे पर खडा अपने शरीर पर से पानी वहा रहा था, वहा ले गया (उसी से क्रुद्ध हो, महाब्रह्मा ने शाप दे दिया, और यह समुद्र) लवण-रस तथा अपेय हो गया ॥१२१॥]

और भी कहा—

आयाग वत्थूनि पुथु पथव्या
स विज्जन्ति ब्राह्मणा वासवस्स,
पुरिम दिस पच्छिमं दक्खिणुत्तरं
सविज्जमाना जनयन्ति वेद ॥१२२॥

[पृथ्वी मे बहुत से ब्राह्मण देवेन्द्र शक्र के पुण्य-क्षेत्र हैं, वे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशा में रहकर इन्द्र के मन मे प्रसन्नता पैदा करते हैं ॥१२२॥]

इस प्रकार अरिट्ठ ने चौदह गाथाओ से ब्राह्मणो की, यज्ञो की तथा वेदो की प्रशसा की। उसका यह कहना सुन, बोधिसत्व की रोगी सुश्रुषा के लिये आये हुए बहुत से नाग 'यह सत्य ही कहता है' मान उसके मिथ्या-विश्वासी से हो गये। बोधिसत्व ने रोगी-शैय्या पर पडे ही पडे वह सब सुना। नागो ने भी उसे कहा। व बोधिसत्व ने सोचा, "यह अरिट्ठ मिथ्या-मत की प्रशसा कर रहा है। इसके मत का खण्डन कर जनता को सत्य-मतानुयायी बनाऊगा।" उसने उठकर स्नान किया और सब अलकारो से अलकृत हो धर्मासन पर बैठ, सारी नाग-परिषद को एकत्र कर, अरिट्ठ को बुलाकर कहा - "अरिट्ठ ! तू मिथ्या बात कहकर वेदो और यज्ञ की प्रशसा कर रहा है। वेद-विधि के अनुसार जो ब्राह्मण का यज्ञ करना है वह अनिष्टकर है, स्वर्ग ले जाने वाला नही है। अपने मत की असत्यता देख।" उसने यज्ञो का खण्डन करते हुए कहा—

कलि हि धीरान कट, मगान
भवन्ति वेदज्झगता, नरिट्ठ,
मरीचिधम्म असमेक्खितत्ता
मायागुणा, नातिवहन्ति पञ्ञ ॥१२३॥

वेदा न ताणाय भवन्तिरस्स
मित्तद्दुनो, भूतहुनो नरस्स,
न तायते परिचिण्णोच अग्गि
दोसन्तर मच्च अनरियकम्म ॥१२४॥

सब्बे च मच्चा सधना सभोगा
आदीपित दारु तिणेन मिस्स,

दह न तप्पे असमत्थतेजो
को त सुभिक्ख दिरसञ्ञ कुरिया ॥१२५॥

यथापि खीर विपरिणाम धम्म
दधि भवित्वा नवनीतम्पि होति,
एवम्पि अग्गी विपरिणामधम्मो
तेजो समोरोहति योगयुत्तो ॥१२६॥

न विस्सते अग्गिमनुप्पविट्ठो
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि,
नामन्थमानो अरणी नरेन
नाकम्मना जायति जातवेदो ॥१२७॥

सचेहि अग्गि अन्तरतो वसेय्य
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि,
सब्बानि सुस्सेय्यु वनानि लोके
सुक्खानि कट्ठानि च पज्जलेय्यु ॥१२८॥

करोति चे दारु तिणेन पुञ्ञ
भोज नरो धूमसिखि पतापव,
अगारिका लोणकरा च सूदा,
सरीरदाहापि करेय्यु पुञ्ञ ॥१२९॥

अथ चेहि एते न करोन्ति पुञ्ञ
अज्झेन मग्गि इध तप्पयित्वा,
न कोचि लोकस्मि करोति पुञ्ञ
भोज नरो धूमसिखि पतापव ॥१३०॥

कथ हि लोकापचितो समानो
अमनुञ्ञगन्ध बहुन्न अकन्त,
यदेव मच्चा परिवज्जयन्ति
तदप्पसत्थ दिरसञ्ञ भुञ्जे ॥१३१॥

सिखिं हि देवेसु वदन्तहेके
आप मिलक्खा पन देवमाहु

सब्बेव एते वितथ भणन्ति
अग्गि न देवञ्ञतरो न चापो ॥१३२॥

निरिन्द्रिय सन्त असञ्ञकाय
वेस्सानर कम्मकर पजान,
परिचरियमग्गि सुगति कथ वजे
पापानि कम्मानि पकुब्बमानो ॥१३३॥

सब्बाभिभूताहुध जीविकत्था
अग्गिस्स ब्रह्मा परिचारकोति
सब्बानु भावी च वसी किमत्थ
अनिम्मितो निम्मित वन्दितस्स ॥१३४॥

हस्स अनिज्झान खम अतच्छ
सक्कारहेतु पकिरिसु पुब्बे,
ते लाभसक्कारे अपातु भोन्ते
सन्थम्भिता जन्तुहि सन्तिधम्म ॥१३५॥

अज्झेनमरिया पठवि जनिन्दा
वेस्सा कसि परिचरियञ्च सुद्दा
उपागु पच्चेक यथा पदेस
कताहु एते वसिनाति आहु ॥१३६॥

एतञ्च सच्च वचन भवेय्य
यथा इद भासित ब्राह्मणेहि
नाखत्तियो जातु लभेथ रज्ज
नाब्राह्मणो मन्तपदानि सिक्खे
नाञ्ञत्र वेस्सेहि कसि करेय्य
सुद्दो न मुञ्चे परपेस्सिताय ॥१३७॥

यस्मा च एत वचनं अभूत
मुसाचिमे ओदरिया भणन्ति
तदप्पपञ्ञा अभिसद्दहन्ति
पस्सन्ति त पण्डिता अत्तभाव ॥१३८॥

खत्या न वेस्सा न बलिं हरन्ति
आदाय सत्थानि चरन्ति ब्राह्मणा
त तादिस संखुभित विभिन्न
कस्मा ब्रह्मा नुज्जुकरोति लोक ॥१३९॥

सचे हि सो इस्सरो सब्ब लोके
ब्रह्मा बहू भूतपती पजानं
मायां मुसावज्जमदेन चापि
लोकं अधम्मेन किमत्थकासि ॥१४०॥

सचे हि यो इस्सरो सब्ब लोके
ब्रह्मा बहू भूतपती पजान
अधम्मियो, भूतपती अरिट्ठ
धम्मे सति यो विदही अधम्म ॥१४१॥

कीटा पतगा उरगा च भेका
हन्त्वा किमि सुज्झति मक्खिकाच,
एते हि धम्मा अनरियरूपा
कम्बोजकाम, वितथा बहुन ॥१४२॥

[हे अरिट्ठ ! वेदाध्ययन धैर्यवान् पुरुषो का दुर्भाग्य है, और मूर्खो का सौभाग्य है। यह (वेदत्रय) मृगमरीचिका के समान है। सत्यासत्य का विवेक न करने से मूर्ख इन्हें सत्य मान लेते हैं। ये मायावी (वेद) प्रज्ञावान को धोखा नहीं दे सकते ॥१२३॥ मित्र-द्रोही और जीवनाशक (-भ्रूण-हत्यारे ?) को वेद नही बचा सकते। द्वेषी, अनार्यकर्मी आदमी को अग्नि-परिचर्य्या भी नही बचा सकती ॥१२४॥ यदि आदमी अपने सारे धन और सारे भोगो को लकडी और घास से मिलाकर जला डालें तो भी इस आग की तृप्ति नही होती। हेद्वि (?) रसज्ञ ! इस आग को कौन पर्य्याप्त भोजन दे सकता है ? ॥१२५॥ जिस प्रकार दूध परिवर्तनशील है, दही होकर मक्खन भी हो जाता है, उसी प्रकार अग्नि भी परिवर्तनशील है। वह दो अरणियो के संघर्ष से उत्पन्न हो जाती है ॥१२६॥ जब तक आग सूखी वा नई लकडी में ऊपर से न डाली गई हो, तब तक कही नही दिखाई देती। जब तक आदमी ने अरणियो को न रगडा हो तब भी नही दिखाई देती। जब तक

कोई ऐसा आदमी जिसके पास आग हो, आग पैदा करने का कर्म न करे तब तक आग पैदा नही होती ॥१२७॥ यदि नई या सूखी लकडी के अन्दर ही आग हो, तो ससार के सारे जगल सूख जाये और सूखी लकडी मे आग लग जाये ॥१२८॥ यदि आदमी प्रतापी आग को लकडी-घास खिलाने से 'पुण्य' करता हो, तो कोयले बनानेवाले, नमक बनानेवाले, भोजन बनाने वाले और श्मशान मे मृत-शरीर जलानेवाले, सभी 'पुण्य' ही करते है ॥१२९॥ यदि ये 'पुण्य' नही करते तो फिर ससार मे कोई भी आदमी वेद-मन्त्रो से आग को भोजन करानेवाला 'पुण्य' नही करता ॥१३०॥ हे द्विरसज्ञ! यह कैसे है कि जिसे तुम ससार मे 'पूज्य' कहते हो, वह ऐसी अप्रिय, असुन्दर वस्तुओ का भोजन करे, जिन्हे सामान्य प्राणी त्याग देते है ॥१३१॥ कुछ कहते है कि अग्नि 'देवता' है, कुछ म्लेच्छ (मिलक्ख?) कहते है कि 'पानी' देवता है। यह सभी अयथार्थ कहते है। न अग्नि 'देवता' है और न पानी 'देवता' है। ॥१३२॥ जो इन्द्रिय-रहित है, जो चेतना रहित है, जो लोगो का खाना पकाना आदि काम करती है, उस अग्नि की परिचर्य्या करने से कोई भी पापी किस प्रकार स्वर्ग जा सकता है? ॥१३३॥ अपनी जीविका चलाने के लिये (ब्राह्मणो ने पहले तो) कहा कि ब्रह्मा सबको अभिभूत करनेवाला है (तथा सारे लोक का निर्माता है) और फिर यह भी कहा कि ब्रह्मा भी 'अग्नि' की पूजा करता है। जब वह सर्व-श्रेष्ठ है और सब उसीके वश में है तो वह स्वय किसीके द्वारा अनिर्मित होता हुआ भी अपनी ही निर्मित अग्नि की क्यो पूजा करता है? ॥१३४॥ यह हसी का विषय है, यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य नही है, यह असत्य है। पूर्व समय मे (ब्राह्मणो ने) 'सत्कार-प्राप्ति के हेतु ही इन बातों का प्रचार किया है। जब उन्हे पर्य्याप्त लाभ-सत्कार न मिला तो उन्होने उस (कथन) में पशुओ को भी सम्मिलित करके (अर्थात् पशुबलि का प्रतिपादन कर) अपने शान्ति-धर्म को जड बना दिया ॥१३५॥ और यह जो कहा—उस महाब्रह्मा ने इन्हें बनाया और ब्राह्मणो के लिये अध्ययन, क्षत्रियो के लिये राज्य जीतना, वैश्यो के लिये कृषि तथा शूद्रो के लिये (तीनो वर्णो की) सेवा का विधान बनाया। ये नियमानुसार अपने-अपने कर्म को प्राप्त हुए ॥१३६॥ यदि इन ब्राह्मणो का यह कहना सत्य हो तो किसी अक्षत्रिय को कभी राज्य प्राप्त न हो, कोई अब्राह्मण कभी (वेद) मन्त्र न सीखे और वैश्यो

के अतिरिक्त कभी कोई खेती न करे और शूद्र कभी दूसरो की सेवा करने से मुक्त न हो ।।१३७।। इनका यह कथन ठीक नही है और पेट के लिये यह झूठ बोलते है। मूर्ख लोग इनके कहने का विश्वास कर लेते हैं, लेकिन जो पण्डित हैं वे स्वय देख लेते हैं कि यह कथन कितना सदोप है ।।१३८।। क्षत्रिय और वैश्य 'वलि' नही देते हैं और ब्राह्मण शस्त्र लिये घूमते हैं। इस प्रकार "गड-बड" लोक को ब्रह्मा क्यो नही ठीक करता है? ।।१३९।। यदि वह ब्रह्मा सब लोगो का "ईश्वर" है और सब प्राणियो का स्वामी है तो उसने लोक में यह माया, झूठ, दोष और मद क्यो पैदा किये हैं? ।।१४०।। यदि वह ब्रह्मा सब लोगो का "ईश्वर" है और सब प्राणियो का स्वामी है तो हे अरिट्ठ! वह स्वय अधार्मिक है, क्योंकि उसने "धर्म" के रहते "अधर्म" उत्पन्न किया ।।१४१।। कीट, पतग, साँप, मेण्डक तथा कीडे और मक्खी मारने मे प्राणी शुद्ध होते हैं। ये अनार्य-धर्म अधिकतया काम्बोजो में प्रचलित है ।।१४२।।]

इन्ही का मिथ्यापन स्पष्ट करते हुए आगे कहा—

सचे हि सो सुज्झति यो हनाति
हतो पि सो सग्गमुपेति ठान,
भोवादि भोवादिनमारभेय्यु
येवापि तेस अभिसद्दहेय्यु ।।१४३।।
नेव मिगा न प्पसू नोपि गावो
आयाचन्ति अत्तवधाय केचि,
विप्फन्दमान इध जीवकत्था
यञ्ञेसु पाणे पसुमाहरन्ति ।।१४४।।
यूपस्स ते पसुबन्धे च बाला
चित्तेहि वण्णेहि मुख नयन्ति,
अय ते यूपो कामदुहो परत्थ
भविस्सति सस्सतो सम्पराय ।।१४५।।
सचे च यूपे मणि सखमुत्त
धञ्ञ धन रजत जातरूप,
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि
सचे दुहे तिदिवे सब्बकामे;

तेविज्जसधा च पुथू यजेय्युं
न ब्राह्मणा कञ्चि त याजयेय्यु ॥१४६॥

कुतो च यूपे मणि सखमुत्त
धञ्ञ धनं रजत जातरूप,
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि
कुतो दुहे तिदिवे सब्बकामे ॥१४७॥

सठा च लुद्दा उपलद्धबाला
चित्तेहि वण्णेहि मुख नयन्ति,
आदाय अग्गि मम देहि वित्त
ततो सुखी होहिसि सब्बकामे ॥१४८॥

तमग्गिहुत्त सरण पविस्स
चित्रेहि वण्णेहि मुख नयन्ति
ओरोपयित्वा केसमस्सु नखञ्च
वेदेहि वित्त अतिगालयन्ति ॥१४९॥

काका उलूक च रहो लभित्वा
एक समान बहुका समेच्च,
अन्नानि भुत्वा कुहका कुहित्वा
मुण्ड कत्वा यञ्ञपथोस्सजन्ति ॥१५०॥

एव हि सो वञ्चितो ब्राह्मणेहि
एको समानो बहुही समेच्च
ते योगयोगेन विलुम्पमाना
दिट्ठ अदिट्ठेन धन हरन्ति ॥१५१॥

अकासिया राजूहि चानुसिट्ठा
तदस्स आदाय धन हरन्ति,
ते तादिसा चोरसमा असन्ता
वज्झा न हञ्ञन्ति अरिट्ठ लोके ॥१५२॥

इन्दस्स बाहार सिदक्खिणाति
यञ्ञेसु छिन्दन्ति पलासयट्ठिं

तं चेपि सच्च मघवा छिन्नबाहु
केनस्स इन्दो असुरे जिनाति ॥१५३॥

तञ्चेव तुच्छं मघवा समंगी
हन्ता अवज्झो परमो सदेवो
मन्ता इमे ब्राह्मणा तुच्छरूपा
सन्दिट्ठिका वञ्चना एस लोके ॥१५४॥

माला गिरि हिमवा यो च गिज्झो
सुदस्सनो निसभो काकनेरु,
एते च अञ्ञे च नगा महन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु ॥१५५॥

यथप्पकारानिहि इट्ठकानि
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु,
न पब्बता होन्ति तथप्पकारा
अञ्ञादिसा अचला तिट्ठसेला ॥१५६॥

न इट्ठका होन्ति सिला चिरेनपि
न तत्थ सञ्जायति अयो न लोहं
यञ्ञे च एतं परिवण्णयन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु ॥१५७॥

अज्झायकं मन्तगुणूपपन्नं
तपस्सिनं याचयोगोतिमाहु,
तीरे समुद्दस्सुदकं यजन्तं
तं सागरज्झोहरि तेनपेय्यो ॥१५८॥

परोसहस्सम्पि समन्तवेदे
मन्तूपपन्ने नदियो वहन्ति,
न तेन ब्यापन्नरसूदकान
कस्मा समुद्दो अतुलो अपेय्यो ॥१५९॥

ये केचि कूपा इध जीवलोके
लोणूदका कूपखणेहि खाता,

न ब्राह्मणज्ञोहरणेन तेसु
आपो अपेय्यो दिरसञ्ज राहु॥१६०॥

पुरे पुरत्था का कस्स भरिया
मनो मनुस्स अजनेसि पुब्बे,
तेनापि धम्मेन न कोचि हीनो
एवम्पि वो सग्ग विभाग माहु॥१६१॥

चण्डालपुत्तो पि अधिच्च वेदे
भासेय्य मन्ते कुसलो मुतीमा,
न तस्स मुद्धा विफलेय्य सत्तधा
मन्ता इमे अत्तवधाय कत्ता॥१६२॥

वाचाकता गिद्धिकता गहीता
दुम्मोचया कब्बपथानुपन्ना,
बालान चित्त विसमे निविट्ठ
तदप्पपञ्ञा अभिसद्दहन्ति॥१६३॥

सीहस्स व्यग्घस्स च दीपिनो च
न विज्जति पोरिसिय बलेन,
मनुस्सभावो च गवव पेक्खो
जाति हि तेस असमा समाना॥१६४॥

सचे च राजा पठवि विजित्वा
सजीव वा अस्सवो पारिसज्जो,
सयमेव सो सत्तुसघ विजेय्य
तस्स पजा निच्चसुखी भवेय्य॥१६५॥

खत्तियमन्ता च तयो च वेदा
अत्थेन एते समका भवन्ति,
तेसञ्च अत्थं अविनिच्छिनित्वा
न बुज्झति ओघपथव छन्न॥१६६॥

खत्तियमन्ता च तयो च वेदा
अत्थेन एते समका भवन्ति,

पुत्रो भी वेदो को पढकर उनका पाठ करता है तो उसका सिर सात टुकडे नही हो जाता है। ब्राह्मणो के ये मन्त्र उन्हे झूठा सिद्ध कर उन्ही का वध करते है ॥१६२॥ ये मन्त्र मिथ्या-चिंतन का परिणाम हैं। ये लोभी ब्राह्मणो द्वारा गृहीत हैं। ये (मछली के काटे के समान) निकलते नही। ये कवि-ब्राह्मणो के मुह से निकले है। इनसे मूर्खों का मन कुमार्ग मे जाता है। इनमे अल्प-प्रज्ञा लोग ही विश्वास करते हैं ॥१६३॥ इन ब्राह्मणो का शरीर-बल सिंह, व्याघ्र तथा चीते के समान नही है। ये मनुष्य है, किन्तु इन्हे बैल के समान समझना चाहिये, क्योकि इनकी जाति ही 'असम' है ॥१६४॥ यदि ब्राह्मणो के कथनानुसार ब्रह्मा ने ही क्षत्रियो का निर्माण किया हो तो राजा पृथ्वी को जीत ले और अपने अमात्यो तथा परिषद की सहायता के बिना स्वय ही शत्रुओ को जीत ले और उसकी प्रजा सुखपूर्वक रहे। (किन्तु ऐसा नही होता) ? ॥१६५॥ क्षत्रिय-मन्त्र (राजनीति शास्त्र ?) और तीनो वेद अर्थ की दृष्टि से यह समान ही हैं। उनका अर्थ बाढ से ढके हुए रास्ते की तरह स्पष्ट नही है ॥१६६॥ क्षत्रिय-मन्त्र और तीनो वेद अर्थ की दृष्टि से ये समान ही हैं। लाभ, अलाभ, यश, अयश—ये लोक-धर्म चारो वर्णो के लिये समान हैं ॥१६७॥ जिस प्रकार दूसरे गृहस्थ धन धान्या के लिये दुनिया मे नाना प्रकार के कर्म करते है, उसी प्रकार ब्राह्मण भी आज लोक मे नाना प्रकार के व्यवसाय करते है ॥१६८॥ ये (अन्य) गृहस्थो के ही समान है, नित्य काम-भोगो के लिये उत्सुक रहते है, ये पृथ्वी पर नाना प्रकार के कर्म करते है। हे द्विरसज्ञ ! ये अल्प-प्रज्ञ धर्म से दूर हैं ॥१६९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उनके मत का खण्डन कर अपने मत की प्रतिष्ठा की। उसकी धर्म-कथा सुन नाग-परिषद प्रसन्न हुई।

यज्ञ-भेद-वाद काण्ड समाप्त

बोधिसत्व ने नेषाद-ब्राह्मण को नाग भवन से निकलवा दिया। उसका मजाक तक नही उडाया गया। सागर ब्रह्मदत्त भी निश्चित दिन से पूर्व ही चतुरङ्गिनी सेना साथ ले पिता के रहने की जगह गया। बोधिसत्व ने भी मुनादी करा दी कि मामा और आर्य को देखने जाऊगा और बडे ठाट-बाट के साथ यमुना पारकर उसी आश्रम की ओर प्रस्थान किया। शेष भाई

और उसके माता-पिता पीछे-पीछे चले। उस समय सागर-ब्रह्मदत्त ने जब बोधिसत्व को बहुत से लोगों सहित आते देखा तो पहचान न सकने के कारण पिता से पूछा—

कस्स भेरी मुतिङ्गा च सङ्खा पणवदेण्डिमा,
पुरतो पटिपन्नानि हासयन्ता रथेसभं ॥१७०॥
कस्स कञ्चनपट्टेन पुथुना विज्जुवण्णिना,
युवा कलापसन्नद्धो को एति सिरिया जलं ॥१७१॥
ओक्कामुखे पहट्ठव खदिरगार सन्निभं,
मुखं चारुरिवाभाति को एति सिरिया जलं ॥१७२॥
कस्स जम्बोनदं छत्तं ससलाकं मनोरमं,
आदिच्चरंसावरणं को एति सिरिया जलं ॥१७३॥
कस्स अङ्कं परिग्गय्ह वाळबीजनिमुत्तमं,
चरते वरपञ्ञस्स मुद्धनि उपरूपरि ॥१७४॥
कस्स पेखुणहत्थानि विचित्रानि मुदुनिच,
तपञ्ञमणिदण्डानि चरन्ति उभतो मुखं ॥१७५॥
खदिरगारवण्णाभा ओक्कामुखे पहंसिता,
कस्सेते कुण्डला वग्गु सोभन्ति उभतो मुखं ॥१७६॥
कस्स वातेन छुपिता निद्धन्ता मुदुकालका
सोभयन्ति नलाटन्तं नभाविज्जुरिवुग्गता ॥१७७॥
कस्स एतानि अक्खीनि आयतानि पुथूनि च,
को सोभति विसालक्खो कस्सेतं उण्णजं मुखं ॥१७८॥
कस्सेते लपनजा सुद्धा सुद्ध सङ्खवरूपमा,
भासमानस्स सोभन्ति दन्ता कुप्पिलसादिसा ॥१७९॥
कस्स लाखारससमा हत्थपादा सुखेधिता,
को सो बिम्बोट्ठ सम्पन्नो दिवा सुरियोव भासति ॥१८०॥
हिमच्चये हेमवतो महासालोव पुप्फितो,
को सो ओदातपा वारो जयं इन्दोव सोभति ॥१८१॥
सुवण्णपिळकाकिण्णं मणि दण्ड विचित्रितं,
को सो परिसमोगय्ह ईसो खग्गव मुञ्चति ॥१८२॥

लाभो अलाभो अयसो यसो, च
सब्बे ते सब्बेस चतुन्न धम्मा ॥१६७॥
यथापि इब्भा धनधञ्ञहेतु
कम्मानि कारेन्ति पुथू पथव्या,
तेविज्जसघापि तथेव अज्ज
कम्मानि कारेन्ति पुथु पथव्या ॥१६८॥
इब्भेहि एते समका भवन्ति
निच्चुस्सुका कामगुणेसु युत्ता,
कम्मानि कारेन्ति पुथु पथव्या
तदप्पपञ्ञा दिरसञ्ञ राते ॥१६९॥

[यदि हत्या करानेवाला स्वर्ग जाता है और जिसकी हत्या होती है वह भी स्वर्ग जाता है, तो फिर ब्राह्मणों को ब्राह्मणो की हत्या करानी चाहिये और उन्हे उनका विश्वास करना चाहिये ॥१४३॥ न मृग, न पशु और न गौवे ही आत्म-बध की याचना करती है। जीविका के लिये ही यज्ञो मे तडपते हुए प्राणियो की हत्या की जाती है ॥१४४॥ वे मूर्ख विचित्र-विचित्र बाते बनाकर यजमान को ठगते है। कहते है—तूने 'यूप' के साथ पशुओ को बाधा है। यह यूप पर लोक मे तेरी सब कामनाये पूरी करनेवाला होगा ॥१४५॥ यदि 'यूपो' मे मणि, शङ्ख, मुक्ता हो, धान्य, धन, सोना-चान्दी हो, अथवा सूखे या नये काष्ठ में ही ये सब हो और स्वर्ग में सब कामनाओ की पूर्ति होती हो तो त्रिवेदज्ञ-ब्राह्मण पृथक होकर यज्ञ करे, वे दूसरे ब्राह्मणो से यज्ञ न कराये ॥१४६॥ कहाँ यूपो मे मणि, शङ्ख और मुक्ता रखा है! कहाँ धान्य, धन तथा चान्दी-सोना रखा है? कहाँ सूखे अथवा नये काठ में ही रखा है? और कहाँ पर-लोक मे सब कामनाओ की पूर्ति रखी है? ॥१४७॥ ये शठ, लोभी और मूर्ख ब्राह्मण सीधे-सादे लोगो को पाकर तरह-तरह की बातो से उन्हे ठगते हैं। कहते है—'तू आग ले और हमे धन दे। तू सुखी होगा ॥१४८॥ वे उन्हे अग्नि-शाला मे प्रविष्ट करा नाना प्रकार की बातो से ठगते है। उनकी दाढी, बाल और नख कटवाकर 'वेद' के नाम पर उनका बहुत धन ले लेते है ॥१४९॥ जिस प्रकार बहुत से कौवे एक अकेले उल्लू को अकेला पाकर (नोच डालते है), उसी प्रकार यह ब्राह्मण अन्न खाकर, यज्ञो की झूठ-मूठ प्रशसा करके,

(यजमान को) लूटकर, यज्ञ-मण्डप छोड देते हैं ।।१५०।। इसी प्रकार वह अकेला बहुत से एकत्र हुए ब्राह्मणो द्वारा ठगा जाता है। वे (ब्राह्मण) उसे नाना उपायो से ठगकर 'अदृष्ट' का लालच देकर उसका साक्षात धन लट लेते हैं ।।१५१।। जिस प्रकार राजाज्ञा से टैक्स लेनेवाले 'अकासी' नामक राज-कर्मचारी धन ले जाते हैं, उसी प्रकार ये (ब्राह्मण) भी धन ले जाते हैं। ये ऐसे असयमी हैं, चोरो के समान हैं, वध करने योग्य हैं,(किन्तु आश्चर्य है) लोक मे इन्हें मारा नही जाता ।।१५२।। फिर ये ब्राह्मण, 'यह इन्द्र की दाहिनी बाँह है' कहकर पलास की लकडी तोडते हैं। यदि यह बात सत्य है तो छिन्न-बाहु इन्द्र असुरो को किस प्रकार जीतता है ? ।।१५३।। यदि इनका उक्त कथन असत्य है और सदेव इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है, (दूसरो को) मारने वाला है, अवध्य है, तो इन ब्राह्मणो के मन्त्र निस्सार हैं। यह तो दुनियाँ में साक्षात ठगी है ।।१५४।। और यह जो कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय, गृध्रकूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकनेरू आदि जितने पर्वत है वे याज्ञिको के लिये चुनकर बनाये गये आसनो से ही बढकर पर्वत हो गये है ।।१५५।। जिस प्रकार की ईंटो से याज्ञिको द्वारा चिताये बनाई जाती है, उस प्रकार के पर्वत नही होते। स्थिर-शैल पर्वत दूसरी ही तरह के होते हैं ।।१५६।। चिरकाल मे भी ईंटे शिलाये नही बनती, अयस (ताबा) लोहा नही बनता। किन्तु यह यज्ञो की प्रशसा करनेवाले कहते हैं कि ये (पर्वत) याज्ञिको के लिये चुने गये आसनो से बने हैं ।।१५७।। फिर कहते हैं—यह सागर एक अध्यापक, वेद(-मन्त्र) पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण को जब वह किनारे पर खडा अपने शरीर पर से पानी बहा रहा था, बहा ले गया। (उसी से क्रुद्ध हो महाब्रह्मा ने शाप दे दिया और) यह समुद्र लवण-रस तथा अपेय हो गया ।।१५८।। सवेद, मन्त्रधारी हजारो ब्राह्मणो को नदियाँ बहा ले जाती हैं। उससे नदियों का पानी खारा नही होता। तो महान् समुद्र ही अपेय क्यों हो गया ? ।।१५९।। दुनिया मे कुए खननेवालों ने जितने खारे कुए खोदे हैं, हे द्विरसज्ञ ! यह नही कहा जाता कि ब्राह्मण को बहा ले जाने के कारण ही उनका पानी खारा है ।।१६०।। सृष्टि के आरम्भ में कौन किसकी भार्य्या थी ? उस अत्यन्त आरम्भिक काल मे मनुष्यो की मनोमय उत्पत्ति थी। इस बात का विचार करे तो भी कोई हीन नही है। ये विभाग अपने अपने कर्मानुसार ही हैं ।१६१।। यदि कोई बुद्धिमान चण्डाल-

पुत्रो भी वेदो को पढकर उनका पाठ करता है तो उसका सिर सात टुकडे नही हो जाता है। ब्राह्मणो के ये मन्त्र उन्हे झूठा सिद्ध कर उन्ही का वध करते है ॥१६२॥ ये मन्त्र मिथ्या-चिंतन का परिणाम हैं। ये लोभी ब्राह्मणो द्वारा गृहीत है। ये (मछली के काटे के समान) निकलते नही। ये कवि-ब्राह्मणो के मुह से निकले है। इनसे मूर्खों का मन कुमार्ग मे जाता है। इनमे अल्प-प्रज्ञा लोग ही विश्वास करते हैं ॥१६३॥ इन ब्राह्मणो का शरीर-बल सिंह, व्याघ्र तथा चीते के समान नही है। ये मनुष्य है, किन्तु इन्हे बैल के समान समझना चाहिये, क्योकि इनकी जाति ही 'असम' है ॥१६४॥ यदि ब्राह्मणो के कथनानुसार ब्रह्मा ने ही क्षत्रियो का निर्माण किया हो तो राजा पृथ्वी को जीत ले ओर अपने अमात्यो तथा परिषद की सहायता के बिना स्वय ही शत्रुओ को जीत ले और उसकी प्रजा सुखपूर्वक रहे। (किन्तु ऐसा नही होता) ? ॥१६५॥ क्षत्रिय-मन्त्र (राजनीति शास्त्र ?) और तीनो वेद अर्थ की दृष्टि से यह समान ही है। उनका अर्थ बाढ से ढके हुए रास्ते की तरह स्पष्ट नही है ॥१६६॥ क्षत्रिय-मन्त्र और तीनो वेद अर्थ की दृष्टि से ये समान ही है। लाभ, अलाभ, यश, अयश—ये लोक-धर्म चारो वर्णो के लिये समान है ॥१६७॥ जिस प्रकार दूसरे गृहस्थ धन धान्या के लिये दुनिया मे नाना प्रकार के कर्म करते है, उसी प्रकार ब्राह्मण भी आज लोक मे नाना प्रकार के व्यवसाय करते है ॥१६८॥ ये (अन्य) गृहस्थो के ही समान है, नित्य काम-भोगो के लिये उत्सुक रहते है, ये पृथ्वी पर नाना प्रकार के कर्म करते है। हे द्विरसज्ञ ! ये अल्प-प्रज्ञ धर्म से दूर है ॥१६९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उनके मत का खण्डन कर अपने मत की प्रतिष्ठा की। उसकी धर्म-कथा सुन नाग-परिषद प्रसन्न हुई।

यज्ञ-भेद-वाद-काण्ड समाप्त

बोधिसत्व ने नेषाद-ब्राह्मण को नाग भवन से निकलवा दिया। उसका मजाक तक नही उडाया गया। सागर ब्रह्मदत्त भी निश्चित दिन से पूर्व ही चतुरङ्गिनी सेना साथ ले पिता के रहने की जगह गया। बोधिसत्व ने भी मुनादी करा दी कि मामा और आर्य को देखने जाऊगा और बडे ठाट-बाट के साथ यमुना पारकर उसी आश्रम की ओर प्रस्थान किया। शेष भाई

और उसके माता-पिता पीछे-पीछे चले। उस समय सागर-ब्रह्मदत्त ने जब बोधिसत्व को बहुत से लोगों सहित आते देखा तो पहचान न सकने के कारण पिता से पूछा—

कस्स भेरी मुदिंगा च सङ्खा पणवदेण्डिमा,
पुरतो पटिपन्नानि हासयन्ता रथेसभं ॥१७०॥
कस्स कञ्चनपट्टेन पुथुना विज्जुवण्णिना,
युवा कलापसन्नद्धो को एति सिरिया जलं ॥१७१॥
ओक्कामुखे पहट्ठव खदिरगार सन्निभं,
मुखं चारुरिवाभाति को एति सिरिया जलं ॥१७२॥
कस्स जम्बोनदं छत्तं ससलाकं मनोरमं,
आदिच्चरंसावरणं को एति सिरिया जलं ॥१७३॥
कस्स अंकं परिग्गह्य वाळबीजनिमुत्तमं,
चरते वरपञ्ञस्स मुद्धनि उपरूपरि ॥१७४॥
कस्स पेखुणहत्थानि विचित्रानि मुदूनिच,
तपञ्जमणिदण्डानि चरन्ति उभतो मुखं ॥१७५॥
खदिरंगारवण्णाभा ओक्कामुखे पहंसिता,
कस्सेते कुण्डला वग्गु सोभन्ति उभतो मुखं ॥१७६॥
कस्स वातेन छुपिता निद्धन्ता मुदुकालका
सोभयन्ति नलाटन्तं नभाविज्जुरिवुग्गता ॥१७७॥
कस्स एतानि अक्खीनि आयतानि पुथूनि च,
को सोभति विसालक्खो कस्सेत उण्णजं मुखं ॥१७८॥
कस्सेते लपनजा सुद्धा सुद्धा सङ्खवरूपमा,
भासमानस्स सोभन्ति दन्ता कुप्पिलसादिसा ॥१७९॥
कस्स लाखारससमा हत्थपादा सुखेधिता,
को सो बिम्बोट्ठ सम्पन्नो दिवा सुरियोव भासति ॥१८०॥
हिमच्चये हेमवतो महासालोव पुप्फितो,
को सो ओदातपावारो जयं इन्दोव सोभति ॥१८१॥
सुवण्णपिळकाकिण्णं मणि दण्ड विचित्रितं,
को सो परिसमोगय्ह ईसो खग्गव मुञ्चति ॥१८२॥

सुवण्ण विकता चित्रा सुकता चित्रसिब्बना,
को सो ओमुञ्चते पादा नमो कत्वा महेसिनो ॥१८३॥

[ये राजा को प्रसन्न करनेवाले भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल और दण्डिम बाजे किसके आगे-आगे बजते चले आ रहे हैं ? ॥१७०॥ बिजली की तरह चमकनेवाले काचन-वर्ण पट्टे से किसका मुख-मण्डल चमक रहा है ? यह कलाप-बध कौन सा युवक श्री से सुशोभित चला आ रहा है ? ॥१७१॥ सुनार की अंगीठी में डाले हुए, खदिर के अङ्गारों के समान चमकते हुए सुन्दर मुख वाला यह कौन है जो श्री से सुशोभित चला आ रहा है ? ॥१७२॥ यह सुन्दर खम्भोवाला, सुनहरी छत्र किसके सिर पर झूल रहा है ? यह सूर्य्य की रश्मि-सदृश आवरणवाला कौन है जो श्री से सुशोभित चला आ रहा है ? ॥१७३॥ किस श्रेष्ठ-प्रज्ञा के सिरके ऊपर-ऊपर गोद मे लेकर चवरी झली जा रही है ? ॥१७४॥ किसके दोनो ओर विचित्र, मृदु हाथो मे मोर-पख हैं और किसके दोनो ओर स्वर्ण तथा मणि खचित दण्ड लिये चल रहे हैं ? ॥१७५॥ सुनार की अंगीठी मे डाले हुए खदिर के अङ्गारों की तरह प्रकाशमान ये सुन्दर कुण्डल किसके मुह के दोनो ओर शोभा दे रहे है ? ॥१७६॥ यह आकाश से उठी बिजली के समान, वायु-स्पर्श से हिलनेवाले, चिकने काले केश किसके मस्तक पर सुशोभित हैं ? ॥१७७॥ ये बडी-बडी, चौडी-चौडी किसकी आँखे हैं ? यह विशालाक्षी कौन है ? और यह शीशे के समान किसका मुह है ? ॥१७८॥ शुद्ध शङ्ख के समान साफ, मुह मे उत्पन्न होनेवाले, मण्डार की कली के समान, बोलने पर शोभा बढानेवाले ये किसके दान्त है ? ॥१७९॥ ये लाख के रसके समान लाल लाल, सुख में स्मृद्ध किसके हाथ-पाँव हैं ? यह कौन है जिसके होंठ बिम्ब के समान लाल हे और जो दिन मे सूर्य्य की तरह चमकता है ? ॥१८०॥ हिमालय में हिम-पात के बाद पुष्पित विशाल शाल वृक्ष की तरह यह श्वेत-वस्त्र धारण किये कौन आ रहा है जो विजयी इन्द्र के समान सुशोभित है ॥१८१॥ सोने की मूठवाली और मणियो से खचित तलवार को परिषद मे आकर स्वामी की तरह रखने वाला यह कौन है ? ॥१८२॥ यह जो महर्षि को प्रणाम करके स्वर्ण-खचित, सुकृत, चित्रित खडाओ को पाँव से उतारता है, यह कौन है ? ॥१८३॥]

इस प्रकार पुत्र सागर ब्रह्मदत्त के पूछने पर ऋद्धिमान, अभिज्ञा-लाभी तपस्वी ने 'तात ! ये घृतराष्ट्र राजा के पुत्र तेरे भानजे नाग हैं' कहते हुए गाथा कही—

घतरट्ठा हि ते नागा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
समुद्दजाय उप्पन्ना नागा एते महिद्धिका ॥१८४॥

[ये ऋद्धिमान यशस्वी धृतराष्ट्र के नाग हैं । ये महा ऋद्धिवान् नाग समुद्र-जा से उत्पन्न हुए हैं ॥१८४॥]

जिस समय वे इस प्रकार कह ही रहे थे नाग-परिषद् ने आकर तपस्वी के चरणो में प्रणाम किया और एक ओर बैठी । समुद्रजा भी पिता को नमस्कार कर, रोकर, नाग-परिषद् के साथ नाग-भवन ही गई । सागर-ब्रह्मदत्त वही कुछ दिन रहकर वाराणसी ही गया । समुद्रजा ने नाग-भवन मे ही शरीर छोडा । बोधिसत्व ने जीवन भर शील की रक्षा कर, उपोसथ-व्रत का पालन कर, आयु की समाप्ति पर, नाग-परिषद् सहित स्वर्ग-लाभ किया ।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्म-उपदेशना ला, 'उपासको ! इस प्रकार पुराने पण्डितो ने बुद्ध के उत्पन्न न हुए रहने पर भी, इस प्रकार की नाग-सम्पत्ति छोड उपोसथ-कर्म किया' कह जातक का मेल बैठाया । उस समय के माता-पिता महाराज-परिवार ही था । नेषाद-ब्राह्मण देवदत्त । सोमदत्त आनन्द । अर्ची-मुखी उत्पल वर्णा । सुदर्शन सारिपुत्र । सुभग मौद्गल्यायन । काणारिट्ठ सुनक्खत्ता भूरिदत्त तो मैं ही था ।

५४४. महानारद कश्यप जातक

"अहु राजा विदेहान..." यह शास्ता ने लट्ठिवन उद्यान में विहार करते समय उरुवेल काश्यप के दमन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता धर्म चक्र प्रवर्तन कर चुके थे। उरुवेल काश्यप आदि जटिलों का दमन कर चुके थे। वे मगध-नरेश को दिये वचन से मुक्त होने के लिये पूर्व के एक हजार जटिलों को लिये लट्ठि-वन उद्यान गये। उस समय मगध-नरेश बारह नियुत[1] परिषद् के साथ आये और दसबल (-धारी)-बुद्ध को प्रणाम करके बैठे। मगध-नरेश की परिषद में जो ब्राह्मण और गृहपति थे, उनके मन में वितर्क उत्पन्न हुआ—

"क्यों जी! उरुकाश्यप महाश्रमण के पास ब्रह्मचर्य-आचरण करता है, अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप के पास?"

तब भगवान् ने काश्यप के अपने पास प्रव्रजित होने की बात प्रकट करने के लिये यह गाथा कही—

> किमेव दिस्वा उरुवेलवासि
> पहासि अग्गिं किसको वदानो,
> पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं
> कथं पहीनं तव अग्गिहुत्तं ॥१॥

[हे उरुवेलवासि! हे तप कृष के समर्थक! तूने क्या देखकर (अग्नि-होत्र) करना छोड़ा? हे काश्यप! मैं तुझे यह बात पूछता हूँ, तेरा अग्नि-होत्र कैसे छूटा? ॥१॥]

स्थविर ने भी भगवान् का मतलब समझ उत्तर दिया—

> रूपे च सद्दे च अथो रसे च
> कामित्थियो चाभिवदन्ति यञ्ञा,

---

१ बारह लाख

एत मलति उपधीसु ञत्वा
तस्मा न यिट्ठे न हुते अरञ्जि ॥२॥

[कहते है कि यज्ञ से रूप, शब्द, रस तथा काम-भोग का साधन स्त्रियाँ प्राप्त होती है। इन उपाधियो को (चित्तका) मैल समझ लिया। इसलिये अब कामना से किये जाने वाले यज्ञ और अग्नि-होत्र मे मन को कुछ आनन्द नही मिलता ॥२॥]

यह गाथा कह उरुवेल काश्यप ने अपना शिष्य-भाव प्रकट करने के लिये तथागत के चरणो में सिर रखा और भन्ते! भगवान! आप मेरे शास्ता है। मै शिष्य हूँ' कहा। फिर एक ताड, दो ताड, तीन ताड सात ताड की ऊचाई तक आकाश में सात बार उठ, तथागत को प्रणाम कर वह एक ओर बैठा। इस आश्चर्य को देख जनता शास्ता की प्रशसा करने लगी—"ओह! बुद्धों का कितना प्रताप है! इस प्रकार के दृढ मन रखने वाले, अपने आपको अरहत समझनेवाले उरुवेल काश्यप के मत का खण्डन कर तथागत ने उसे वश मे कर लिया।" तथागत ने कहा—"इसमे कुछ आश्चर्य नही यदि मैने अब सर्वज्ञ होने पर इसका दमन किया है। पहले रागी होने की दशा मे भी जब मै नारद नाम का ब्रह्मा था, इसके मत को छिन्न-भिन्न कर, इसे विनम्र किया था।" इतना कह उस परिषद के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे विदेह राष्ट्र में मिथिला मे अङ्ग नामक राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उसकी रुजा नामकी कन्या थी, अभिरूप, सुन्दर, हजार कल्पो से प्रार्थना करती चली आई, महापुण्यवती, अग्रमहेषी की कोख से उत्पन्न। उसकी शेष सोलह हजार रानियाँ बाझ थी। उसकी लडकी प्रिया थी, मनको अच्छी लगनेवाली। वह उसके लिये नाना प्रकार के पुष्पो के पच्चीस टोकरे और सूक्ष्म वस्त्र रोज-रोज भेजता कि इनसे अपने आपको अलकृत करे। खाने-पीने की चीजो की तो सीमा नही थी। प्रति पक्ष दान देने के लिये हजार भेजता। उसके विजय, सुनाम और अलात नाम के तीन अमात्य थे। उसने चातुर्मासिक कौमुदी का उत्सव होने पर, नगर तथा अन्त पुर के देव-नगर की तरह अलकृत होने पर, अच्छी प्रकार

से स्नान कर, अनुलिप्त हो, सब अलकारो से अलकृत हो शाम का भोजन किया। फिर खुले झरोखे, महातल्ले पर, अमात्यो के बीच बैठे-बैठे, साफ आकाश से गुजरते हुए चन्द्र-मण्डल को देख अमात्यो से प्रश्न किया—"हे! चान्दनी रात्रि रमणीय है। आज किसकी सगति करे?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अहु राजा विदेहान अंगाति नाम खत्तियो
पहुत योग्गो धनिमा अनन्तबलपोरिसो ॥३॥
यो च पण्णरसिं रत्ति पुरिमे यामे अनागते,
चातुमस्स कोमुदिया अमच्चे सन्नि पातयि ॥४॥
पण्डिते सुतसम्पन्ने महितपुब्बे विचक्खणे,
विजयञ्च सुनामञ्च सेनापतिमलातकं ॥५॥
तमनुपुच्छ वेदेहो पच्चेक ब्रूथ सरुचिं,
चातुमस्सकोमुदज्ज जुण्ह व्यपगत तम,
कायज्ज रतिया रत्ति विहरेमु इम उतु ॥६॥

[विदेहो का अङ्ग नामका क्षत्रिय राजा था। बहुत हाथी-घोडे वाला, बहुत ऐश्वर्यवाला तथा अनन्त बल और पौरुष से युक्त ॥३॥ उसने अगली रात आने के पूर्व, चातुर्मास की चान्दनी पूर्णिमा को अमात्यो को इकट्ठा किया ॥४॥ (उसने) पण्डित, ज्ञानी, मुस्कराहट के साथ बोलनेवाले विजय, सुनाम, और सेनापति अलात को (इकट्ठा किया) ॥५॥ विदेह-नरेश ने उन सबसे पूछा कि अपनी अपनी रुचि के अनुसार उत्तर दो—"आज चातुर्मास की चाँदनी पूर्णिमा है। अन्धकार विलीन हो गया है। आज रात हम किसकी सगति करें? ॥६॥]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सेनापती रञ्ञो अलातो एतदब्रवि,
हट्ठ योग्ग बल सब्ब सेन सन्नाहयामसे ॥७॥
निय्याम देव युद्धाय अनन्तबलपोरिसा,
य ते वस न आयन्ति वस उपनयामसे,
एसा मय्ह सका दिट्ठि अजित ओजिनामसे ॥८॥

[तब सेनापति अलात यह बोला—सारी सेना सन्तुष्ट है, हाथी घोडे से युक्त है। हम उसे सन्नद्ध करे। हे देव ! अपने अनन्त बल-पौरुष को युद्ध के लिये ले चलें। जो तेरे वश मे नही आते हैं, उन्हे वश लायेंगे। मेरा अपना मत यह है कि जो प्रदेश अभी तक जीते नही गये है, हम उन्हे जीतेंगे ।।६-७।।]

अलातस्स वचो सुत्वा सुनामो एतदब्रवि,
सब्बे तुम्ह महाराज अमित्ता वसमागता ।।९।।
निक्खित्त सत्था पच्चत्था निवातमनुवत्तरे,
उत्तमो उस्सवो अज्ज न युद्ध मम रुच्चति ।।१०।।
अन्न पाणञ्च खज्जञ्च खिप्प अभिहरन्तु ते,
रमस्सु देव कामेहि नच्चगीते सुवादिते ।।११।।

[अलात की बात सुनकर सुनाम बोला, "हे महाराज ! तुम्हारे सभी शत्रु वशीभूत हो गये है। सभी अभिन्न शस्त्र छोड शान्त पडे है। आज उत्सव का उत्तम दिन है। मुझे युद्ध अच्छा नही लगता। तुम्हारे लिये अन्न-पान तथा खाद्य शीघ्र लाया जाय। हे देव ! आज आप नृत्य-गीतादि काम-भोगो का आनन्द लें ।।९-१०।।]

सुनामस्स वचो सुत्वा विजयो एतदब्रवि,
सब्बे कामा महाराज निच्च तवमुपट्ठिता ।।१२।।
न हेते दुल्लभा देव तव कामेहि मोदितु,
सदापि कामा लब्भन्ति नेत चित्तमत मम ।।१३।।
समण ब्राह्मण वापि उपासेमु बहुस्सुत,
यो नज्ज विनये कङ्ख अत्थधम्मविदू इसे ।।१४।।
विजयस्स वचो सुत्वा राजा अगातिमब्रवि,
यथा विजयो भणति मय्हम्पेतेव रुच्चति ।।१५।।
समण ब्राह्मणवापि उपासेमु बहुस्सुत,
योनस्स विनये कङ्ख अत्थधम्मविदू इसे ।।१६।।

[सुनाम की बात सुन विजय बोला—महाराज ! तुम्हारे लिये काम-भोग की सभी सामग्री तो सदा उपस्थित ही है। हे देव ! काम-भोगो मे मौज मनाना

आपके लिये दुर्लभ नहीं है। काम-भोग तो सदा ही प्राप्य है। इसलिये मेरा यह मत नहीं है। हम किसी ऐसे बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मण की सगति करे जो अर्थ-धर्म का जानकार हो और जो आज हमारे सन्देहों को दूर करे ॥१२-१४॥ विजय की बात सुनी तो राजा अङ्ग बोला—जैसे विजय कहता है, मुझे भी यही अच्छा लगता है ॥१५॥ हम किसी ऐसे बहु-श्रुत श्रमण-ब्राह्मण की सगति करे जो अर्थ-धर्म का जानकार हो और जो आज हमारे सन्देहो को दूर करे ॥१६॥]

सब्बव सन्ता करोथ मर्ति क उपासेमु पण्डित,
कोनज्ज विनये कख अत्थधम्मविदू इसे ॥१७॥
वेदेहस्स वचो सुत्वा अलातो एतदब्रवि,
अत्थाय मिगदायस्मि अचेलो धीरसम्मतो ॥१८॥
गुणो कस्सपगोत्ताय सुतो चित्रकथी गणी,
त देव पयिरुपासय सो नो कख विनेस्सति ॥१९॥
अलातस्स वचो सुत्वा राजा चोदेसि सारथि,
मिगदाय गमिस्साम युत्त यान इधानय ॥२०॥

[सभी इकट्ठे होकर विचार करो कि किस पण्डित की सगति करे। कौन अर्थ-धर्म का जानकार ऋषि आज मेरी शकाओ का समाधान करेगा ? ॥१७॥ विदेह-नरेश की बात सुनकर अलात बोला—मृगदाय मे धीर-वान् अचेल (-निर्वस्त्र) है। सुना है कि वह गुणी है। काश्यप-गोत्र का है। विचित्र-कथिक है। गण का नेता है। हे देव ! हम उसकी सगति करे। वह हमारी शकाओ का समाधान करेगा। अलात की बात सुनी तो राजा ने सारथी को प्रेरित किया—हम मृगदाय चलेंगे। रथ को जोडकर यहाँ लाओ ॥१८-२०॥]

तस्स यान अयोजेसु दन्त रूपिय पक्खर,
सुक्कमट्ठ परिवार पण्डर दोसिता मुख ॥२१॥
तत्रासु कुमुदा युत्ता चत्तारो सिन्धवा हया,
अनिलूपमसमुप्पाता सुदन्ता सोण्णमालिनो ॥२२॥
सत छत्त सेतरथो सेतस्सा सेतबीजनी,
वेदेहा सह मच्चेहि निय्य चन्दोव सोभथ ॥२३॥

तमनुयायु बहवो इन्दखग्गधरा बली,
अस्सपिट्ठिगता धीरा नरा नरवराधिप ॥२४॥
सो मुहुत्त व यायित्वा याना ओरुय्ह खत्तियो,
वदेहो सहमच्चेहि पत्ति गुणमुपागमि ॥२५॥
येपि तत्थ तदा आसु ब्राह्मनिब्भा समागता,
न ते अपनयी राजा अकट भूमिमागते ॥२६॥

[उसके लिये रथ जोता गया—दन्त-निर्मित, चान्दी के किनारेवाला, शुद्ध, चिकना, श्वेत तथा चन्द्रिका सदृश ॥२१॥ वहाँ चार कुमुद-वर्ण सैन्धव घोडे जुते थे, जो वेग मे वायु के समान थे, सुदान्त थे और जिनके गले में सुनहरी मालाये थी ॥२२॥ श्वेत-छत्र, श्वेत-रथ, श्वेत-अश्व तथा श्वेत-व्यजनी के साथ अमात्यो सहित विदेह राजा चन्द्रमा की तरह शोभा देता था ॥२३॥ बहुत से इन्द्रखड्गधारी, बलवान्, अश्वारोही आदमियो ने उस राजा का अनुगमन किया ॥२४॥ वह कुछ देर चलकर रथ से उतर, अमात्यो सहित विदेह राजा पैदल ही आजीवक के पास पहुचा ॥२५॥ वहाँ जो भी ब्राह्मण तथा गृहपति पहले से आये हुए थे, राजा ने उन को वहाँ से विदा नही किया ॥२६॥]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो मुदुकाभिसिया मुदुचित्तकलन्दके,
मुदुपच्चत्थते राजा एकमन्त उपाविसी ॥२७॥
निसज्ज राजा सम्मोदि कथ साराणिय ततो,
कच्चि यापनिय भन्ते वातानमविसग्गता ॥२८॥
कच्चि अकसिरा वुत्ति लब्भति पिण्डयापन,
अप्पाबाधो वसि कच्चि चक्खु न परिहायति ॥२९॥
त गुणो पटिसम्मोदि वेदेह विनये रत,
यापनीय महाराज सब्बमेत तदूभय ॥३०॥
कच्चि तुय्हम्पि वेदेहे पच्चन्ता न बलीयरे,
कच्चि अरोग योग्ग ते कच्चि वहति वाहन
कच्चि ते व्याधयो नत्थि सरीरस्सुपतापिका ॥३१॥

पटिसम्मोदितो राजा ततो पुच्छि अनन्तरा,
अत्थं धम्मञ्च आयञ्च धम्मकामो रथेसभो ॥३२॥
कथ धम्मं चरे मच्चो मातापितुसु कस्सप,
कथ चरे आचरिये पुत्तदारे कथ चरे ॥३३॥
कथ चरेय्य वद्धेसु कथ समण-ब्राह्मणे
कथञ्च बलकायस्मि कथ जानपदे चरे ॥३४॥
कथ धम्म चरित्वान पेच्च गच्छति सुग्गतिं।
कथञ्चेके अधम्मट्ठा पतन्ति निरय अधो ॥३५॥

[तव वह राजा कोमल गद्दे पर बिछे कोमल-आस्तरण और कोमल-चादर पर एक ओर बैठा ॥२७॥ उसने बैठकर आजीवक का कुशल-समाचार पूछा — "भन्ते ! सुख से तो हे ? शरीर मे वायु आदि की कोई बाधा तो नही है ? ॥२८॥ क्या भोजन बिना कठिनाई के मिल जाता है ? शरीर मे विशेष रोग तो नहीं है ? दृष्टि तो मन्द नही पड रही है ? ॥२९॥ तव आजीवक ने उस विनीत विदेह-नरेश का कुशल-क्षेम पूछते हुए उत्तर दिया—"महाराज ! भोजनादि की सब सुविधा है और शरीर भी ठीक है ॥३०॥ हे विदेह ! क्या तुम्हारे जनपद में भी विद्रोह तो नही होता है ? क्या तुम्हारे रथ की सवारी तुम्हे अस्वस्थ तो नही बनाती है ? क्या शरीर को कष्ट देनेवाला तुम्हे कोई रोग तो नही है ? ॥३१॥ इस प्रकार पूछे जाने पर, इसके बाद धर्म-कामी राजा ने अर्थ, धर्म तथा ज्ञान के विषय मे प्रश्न पूछा—हे काश्यप ! माता-पिता के प्रति आदमी क्या धर्माचरण करे ? आचार्यों के साथ कैसे बरते ? स्त्री-पुत्र के साथ कैसे बरते ? अपने बडो के साथ कैसे बरते ? श्रमण-ब्राह्मणो के साथ कैसे बरते ? सेना के साथ कैसा बरताव करे ? जनपद-वासियो के साथ कैसा व्यवहार करे ? किस तरह धर्माचरण करने से आदमी स्वर्ग लाभ करता है और किस तरह कुछ अधर्माचरण करनेवाले नीचे नरक में जाकर गिरते है ? ॥३२-३५॥]

इस प्रकार पूछे जाने पर उसने प्रश्नो का उत्तर न दे, चरते हुए बैल को ठूग मारने की तरह अथवा भात के बरतन में कूडा-करकट फेकने की तरह, 'महाराज ! 'सुन' कह अपने मिथ्या-मत का वर्णन किया ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

वेदेहस्स वचो सुत्वा कस्सपो एतदब्रवि,
सुणोहि मे महाराज सच्च अवितथ पद ॥३६॥
नत्थि धम्मस्स चिण्णस्स फल कल्याण पापक,
नत्थि देव परो लोको को ततोहि इधागतो ॥३७॥
नत्थि देव पितरोव कुतो माता कुतो पिता,
नत्थि आचरियो नाम अदन्त को दमेस्सति ॥३८॥
समतुल्यानि भूतानि नत्थि जेट्ठापचायिनी,
नत्थि बल वा विरिय वा कुतो उट्ठानपोरिस,
नियतानिहि भूतानि यथा गोटविसो तथा ॥३९॥
लद्धेय्य लभते मच्चो तत्थ दानफल कुतो,
नत्थि दानफल देव अवसो देव वीरियो ॥४०॥
बालेहि दान पञ्ञत्त पण्डितेहि पटिच्छित,
अवसा देन्ति धीरान बाला पण्डितमानिनो ॥४१॥

[वेदेह का कथन सुना तो काश्यप बोला—"महाराज ! यथार्थ सत्य बात सुनें ॥३६॥ धर्माचरण का कुछ अच्छा-बुरा फल नही होता । देव ! परलोक नही है । वहाँ से यहाँ कौन आया है ? ॥३७॥ देव ! पितर ही नही है, तो कहाँ की माता और कहाँ का पिता ? जब आचार्य्य ही नही है तो असयत को सयत कौन बनायेगा ? ॥३८॥ सभी प्राणी बराबर है । उनमे कोई छोटा-बडा नही है न कही कोई 'बल' है और न 'वीर्य्य' । तब पुरुष-पराक्रम कहाँ से होगा ? जिस प्रकार नौका का पिछला हिस्सा उसके पीछे-पीछे ही चलता है, उसी प्रकार प्राणियों को भी 'नियति' के पीछे पीछे ही चलना पडता है ॥३९॥ जो आदमी को मिलना होता है, वह मिलता है, उसमें दान-फल कहाँ से आया ? हे देव ! दान-फल नहीं है दान-देने-वाला मजबूरी से देता है ॥४०॥ मूर्खो ने दान देने की बात कही है । पण्डितो ने दान लेना स्वीकार किया है । अपने आपको पण्डित समझने वाले मूर्ख मजबूरी से धीर-पुरुषों को दान देते है ॥४१॥]

इस प्रकार दान की निष्फलता का वर्णन कर अब पाप का फलाभाव वर्णन किया ।

सत्तिमे सस्सता काया अच्छेज्जा अविकोपिनो,
तेजो पठविरापो च वायो सुखदुक्खञ्चिमे,
जीवे च सन्तिमे काया येस छेत्ता न विज्जति ॥४२॥
नत्थि हन्ता वा छेत्ता वा हञ्ञरेवापि कोचिन,
अन्तरेनेव कायान सत्थानि वीतिवत्तरे ॥४३॥
योपाय सिरमादाय परेस निसितासिना,
न सो छिन्दति ते काये तत्थ पापफल कुतो ॥४४॥
चल्लासीति महाकप्पे सब्बे सुज्झन्ति ससर,
अनागते तम्हि काले सञ्ञतोपि न सुज्झति ॥४५॥
चरित्वापि बहु भद्र नेव सुज्झन्ति नागते,
पापञ्चेपि बहु कत्वा त खण नातिवत्तरे ॥४६॥
अनुपुब्बेन नो सुद्धि कप्पान चुल्लसीतिया,
नियर्ति नातिवत्ताम वेलन्तमिव सागरो ॥४७॥

[अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, सुख, दुख और जीव—ये सात शास्वत है अछेद्य हैं, अविकोप्य हैं, इनको काट सकने वाला कोई नही है ॥४२॥ न कोई इनका न श करनेवाला है, न इन्हे काटनेवाला है और न कोई नाश किया जा सकने वाला है। शस्त्र इनके बीच में से ही घूमते रहते है ॥४३॥ जो तेज तलवार से दूसरो के सिर काटता है वह भी उन अग्नि, पृथ्वी आदि को नही काटता है, तो पाप-फल कहाँ से होगा ? ॥४४॥ चौरासी महाकल्पो तक ससार में ससरण करने से सभी शुद्ध हो जाते है। उस समय के आने से पूर्व सयत भी शुद्ध नही होता ॥४५॥ बहुत पुण्य कर्म करने पर भी वह समय आने से पूर्व शुद्धि नही होती। और बहुत पाप करके भी उस क्षण का उल्लघन नही होता ॥४६॥ चौरासी महाकल्पो के बीतने पर हमारी शुद्धि अनायास हो जाती है। हम 'नियति' को उसी प्रकार नही लाँघ सकते जैसे सागर अपने तट को ॥४७॥]

इस प्रकार उसने 'उच्छेदवाद' को अपनी सामर्थ्यानुसार अपना मत बना-कर पृथक करके कहा ।

कस्सपस्स वचो सुत्वा अलातो एतदब्रवि,
यथा भदन्तो भणति मय्हइम्पेतेव रुच्चति ॥४८॥

अहम्पि पुरिम जाति सरे ससरित त्तनो,
पिंगलो नामहृ आसि लुद्दो गोघातको पुरे ॥४९॥
बाराणसिय कीताय बहु पाप कत मया,
बहू मय्ह हता पाणा महिसा सूकरा अजा ॥५०॥
ततो चुतो इध जातो इद्धे सेनापतिकुले,
नत्थि नून फल पापे सोह न निरय गतो ॥५१॥

[काश्यप की बात सुनी तो अलात (मन्त्री) बोला—"जैसा भदन्त कहते है मुझे भी वही ठीक जचता है ॥४८॥ मुझे भी अपना पूर्व-जन्म स्मरण है। मै पहले पिङ्गल नामका गोघातक कसाई था ॥४९॥ मैने समृद्ध वाराणसी मे बहुत पाप कर्म किया। मैने भैसे, सूअर और बकरियाँ बहुत से प्राणियो का घात किया ॥५०॥ वहाँ से मरकर यहाँ समृद्ध सेनापति कुल मे जन्म हुआ। निश्चय से पाप कर्म का बुरा फल नही होता। मै नरकगामी नही ही हुआ ॥५१॥]

अत्थेत्थ बीजको नाम दासो आसि पळच्चरि,
उपोसथ उपवसन्तो गुणसन्तिकमुपागमि ॥५२॥
कस्सपस्स वचो सुत्वा अलातस्स च भासित,
पस्सन्तो मुहु उण्ह रुद अस्सूनि वत्तयि ॥५३॥

[इसी मिथिला नगरी मे बीजक नाम का एक दरिद्र दास था। वह उपोसथ-व्रत रखता था और वह उस 'मुनि' के पास आया ॥५२॥ उसने काश्यप का वचन और अलात का कहना सुना तो थोडी देर गर्म-सास लेकर आँखो से आँसू बहाने लगा ॥५३॥]

तमनुपुच्छि वेदेहो किमत्थ सम्म रोदसि,
किं ते सुत वा दिट्ठ वा किं मे वेदेसि वेदन ॥५४॥

[उसे विदेह-राज ने पूछा, "अरे! किसलिये रो रहा है? तूने क्या सुना है? अथवा क्या देखा है? और तू मुझसे अपनी क्या पीडा व्यक्त कर रहा है? ॥५४॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा बीजको एतदब्रुवि,
नत्थि मे वेदना दुक्खा महाराज सुणोहि मे ॥५५॥

अहम्मि पुरिम जातिं सरामि सुखमत्तनो,
साकेताह पुरे आसिं भावसेट्ठी गुणे रतो ॥५६॥
सम्मतो ब्राह्मणिब्भान सविभागरतो सुची,
न चापि पापक कम्म सरामि कतमत्तनो ॥५७॥
ततो चुताह वेदेह इध जातो दरित्थिया,
गब्भम्हि कुम्भ दासिया यतो जातो सुदुग्गतो ॥५८॥
एवम्पि दुग्गतो सन्तो समचरिय अधिट्ठितो,
उपड्ढभाग भत्तस्स ददामि यो मे इच्छति ॥५९॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं सदा उपवसामह,
न चापि भूते हिंसामि थेय्यञ्चापि विवज्जयिं ॥६०॥
सब्बमेव हि नूनेत सुचिण्ण भवति निप्फलं,
निरत्थ मञ्जिद सील अलातो यथ भासति ॥६१॥
कलिमेव नून गण्हामि असिप्पो धुत्तको यथा,
कट अलातो गण्हाति कितवा सिक्खितो यथा ॥६२॥
द्वार ताप्पतिपस्सामि येन गच्छामि सुग्गतिं,
तस्मा राज परोदामि सुत्वा कस्सप भासित ॥६३॥

[विदेह-राज की बात सुन बीजक इस प्रकार बोला—महाराज ! मेरी बात सुनें । मुझे किसी पीडा का दुख नही है ॥५५॥ मैं भी अपने पूर्वजन्म के सुख को याद करता हूँ । मैं पहले जन्म में साकेत मे रहता था । मेरा नाम भावसेट्ठी था और मैं गुणी था ॥५६॥ मैं ब्राह्मणो तथा गृहपतियो द्वारा सम्मानित था, दानी था, पवित्र जीवन व्यतीत करता था । मुझे स्मरण नही कि मैंने कभी कोई पाप-कर्म किया हो ॥५७॥ वहाँ मरकर मैं यहाँ इस पानी लानेवाली दासी के गर्भ से पैदा हुआ जिससे मेरी बहुत बुरी हालत हो गई ॥५८॥ इस दुरवस्था मे भी मैं समान व्यवहार का निश्चय कर जो चाहता है उसे अपना आधा भात दे देता हूँ ॥५९॥ मै चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को सदा उपोसथ-व्रत धारण करता हूँ । मैं प्राणियो की हत्या भी नही करता और चोरी भी नही करता ॥६०॥ यह समस्त सदाचार निष्फल ही है । मैं भी अलात जैसे कहता है वैसे यही समझता हूँ कि यह सब शील निरर्थक है ॥६१॥ जैसे अशिक्षित जुआरी पराजित हो जाता है, वैसे मैं पराजित हो

गया हूँ और जैसे शिक्षित जुआरी विजयी होता है, उसी प्रकार मै जीत गया हूँ ॥६२॥ मै सुगति को प्राप्त होने का द्वार नही देखता । इसीलिये काश्यप की बात सुनकर रोता हूँ ॥६३॥]

बीजकस्स वचो सुत्वा राजा अगातिमब्रवि,
नत्थि द्वार सुगतिया नियति कख बीजक ॥६४॥
सुख वा यदि वा दुक्ख नियतिया किर लब्भति,
ससारसुद्धि सब्बेस मा तुरित्थो अनागते ॥६५॥
अहम्पि पुब्बे कल्याणो ब्राह्मणिब्भेसु ब्यावटो,
वोहारमनुसासन्तो रतिहीनो तदन्तरा ॥६६॥

[पहले उन दोनो का और बाद में) बीजक का कहना सुनकर अङ्ग नरेश बोला—"बीजक! सुगति का दूसरा मार्ग नही है । नियति की प्रतीक्षा कर । ॥६४॥ यदि सुख या दु ख 'नियति' से ही मिलता है, तो भविष्य मे सभी की शुद्धि होगी ही । तू जल्द-बाजी मत कर ॥६५॥ मै भी आज तक ब्राह्मण तथा गृहपतियों के कृत्यो में ही सलग्न रहा और मुकद्दमों का फैसला करता रहा । इस बीच में मै काम-रति से विहीन रहा ॥६६॥]

इतना कह उसने विदा मागते हुए कहा—"भन्ते काश्यप! इतना समय हमने प्रमाद में ही बिता दिया । किन्तु अब हमें आचार्य्य मिल गया । अब से मै काम-भोगो में ही अनुरक्त रहूगा । अब से तुम्हारा धर्मोपदेश सुनना भी विलम्ब ही करेगा । आप रहे । हम चलेंगे ॥"

पुनापि भन्ते दक्खेयु सगति चे भविस्सति,
(यदि सयोग होगा तो फिर भी भेंट होगी ।)
इद वत्वान वेदेहो पच्चगा सनिवेसन ॥६७॥
(यह कह विदेह-नरेश अपने भवन चला गया ।)

राजा पहले गुण (मुनि) के पास गया और प्रणाम करके प्रश्न पूछा । जाते समय बिना प्रणाम किये ही गया । गुण (मुनि) के अवगुण के कारण उसे नमस्कार भी नही मिला । भोजनादि सत्कार क्या मिलता! राजा ने भी उस रात्रि के बीत-

अहम्मि पुरिम जातिं सरामि सुखमत्तनो,
साकेताहं पुरे आसिं भावसेट्ठी गुणे रतो ॥५६॥
सम्मतो ब्राह्मणिब्भान संविभागरतो सुची,
न चापि पापकं कम्मं सरामि कतमत्तनो ॥५७॥
ततो चुताहं वेदेह इध जातो दरित्थिया,
गब्भम्हि कुम्भ दासिया यतो जातो सुदुग्गतो ॥५८॥
एवम्पि दुग्गतो सन्तो समचरियं अधिट्ठितो,
उपड्ढभागं भत्तस्स ददामि यो मे इच्छति ॥५९॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं सदा उपवसामहं,
न चापि भूते हिंसामि थेय्यञ्चापि विवज्जयिं ॥६०॥
सब्बमेव हि नूनेतं सुचिण्णं भवति निप्फलं,
निरत्थं मञ्ञिदं सीलं अलातो यथ भासति ॥६१॥
कलिमेव नून गण्हामि असिप्पो धुत्तको यथा,
कटं अलातो गण्हाति कितवा सिक्खितो यथा ॥६२॥
द्वारं ताप्पतिपस्सामि येन गच्छामि सुग्गतिं,
तस्मा राज परोदामि सुत्वा कस्सप भासितं ॥६३॥

[विदेह-राज की बात सुन बीजक इस प्रकार बोला—महाराज ! मेरी बात सुनें। मुझे किसी पीड़ा का दुख नही है ॥५५॥ मैं भी अपने पूर्वजन्म के सुख को याद करता हूँ। मैं पहले जन्म में साकेत मे रहता था। मेरा नाम भावसेट्ठी था और मैं गुणी था ॥५६॥ मैं ब्राह्मणो तथा गृहपतियो द्वारा सम्मानित था, दानी था, पवित्र जीवन व्यतीत करता था। मुझे स्मरण नही कि मैंने कभी कोई पाप-कर्म किया हो ॥५७॥ वहाँ मरकर मैं यहाँ इस पानी लानेवाली दासी के गर्भ से पैदा हुआ जिससे मेरी बहुत बुरी हालत हो गई ॥५८॥ इस दुरवस्था मे भी मैं समान व्यवहार का निश्चय कर जो चाहता है उसे अपना आधा भात दे देता हूँ ॥५९॥ मैं चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को सदा उपोसथ-व्रत धारण करता हूँ। मैं प्राणियो की हत्या भी नही करता और चोरी भी नही करता ॥६०॥ यह समस्त सदाचार निष्फल ही है। मैं भी अलात जैसे कहता है वैसे यही समझता हूँ कि यह सब शील निरर्थक है ॥६१॥ जैसे अशिक्षित जुआरी पराजित हो जाता है, वैसे मैं पराजित हो

गया हूँ और जैसे शिक्षित जुआरी विजयी होता है, उसी प्रकार मैं जीत गया हूँ ॥६२॥ मैं सुगति को प्राप्त होने का द्वार नही देखता। इसीलिये काश्यप की वात सुनकर रोता हूँ ॥६३॥]

बीजकस्स वचो सुत्वा राजा अगातिमब्रवि,
नत्थि द्वार सुगतिया नियति कख बीजक ॥६४॥
सुख वा यदि वा दुक्ख नियतिया किर लब्भति,
ससारसुद्धि सब्बेस मा तुरित्थो अनागते ॥६५॥
अहम्पि पुब्बे कल्याणो ब्राह्मणिब्भेसु ब्यावटो,
वोहारमनुसासन्तो रतिहीनो तदन्तरा ॥६६॥

[पहले उन दोनो का और वाद में) बीजक का कहना सुनकर अङ्ग नरेश वोला—"बीजक! सुगति का दूसरा माग नही है। नियति की प्रतीक्षा कर। ॥६४॥ यदि सुख या दु ख 'नियति' से ही मिलता है, तो भविष्य में सभी की शुद्धि होगी ही। तू जल्द-बाजी मत कर ॥६५॥ मैं भी आज तक ब्राह्मण तथा गृहपतियों के कृत्यो में ही सलग्न रहा और मुकद्दमों का फैसला करता रहा। इस बीच मे मैं काम-रति से विहीन रहा ॥६६॥]

इतना कह उसने विदा मागते हुए कहा—"भन्ते काश्यप! इतना समय हमने प्रमाद में ही विता दिया। किन्तु अब हमें आचार्य्य मिल गया। अब से मैं काम-भोगों में ही अनुरक्त रहूँगा। अब से तुम्हारा धर्मोपदेश सुनना भी विलम्ब ही करेगा। आप रहें। हम चलेगे ॥"

पुनापि भन्ते दक्खेयु सगति चे भविस्सति,
(यदि सयोग होगा तो फिर भी भेंट होगी।)
इद वत्वान वेदेहो पच्चगा सनिवेसन ॥६७॥
(यह कह विदेह-नरेश अपने भवन चला गया।)

राजा पहले गुण (मुनि) के पास गया और प्रणाम करके प्रश्न पूछा। जाने समय विना प्रणाम किये ही गया। गुण (मुनि) के अवगुण के कारण उसे नमस्कार भी नही मिला। भोजनादि सत्कार क्या मिलता! राजा ने भी उस रात्रि के वीत

जाने पर अगले दिन अमात्यों को बुला आज्ञा दी—'मेरे लिये काम-भोग के साधन जुटाओ। अब से मैं काम-भोगों में ही अनुरक्त रहूँगा। मुझे और दूसरा कोई कार्य्य न कहा जाय। मुकद्दमों का फैसला अमुक करे।"

इतना कह राजा काम-भोगों में ही अनुरक्त हो गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो रत्त्या विवसने उपट्ठानम्हि अगति,
अमच्चे सन्निपातेत्वा इद वचनमब्रवि ॥६८॥
चन्दके मे विमानस्मि सदा कामे विधेन्तु मे,
मामुपगच्छु अत्थेसु गुय्हप्पाकासियेसु च ॥६९॥
विजयो च सुनामो च सेनापति अलातको,
एते अत्थे निसीदन्तु वोहार कुसला तयो ॥७०॥
इद वत्वान वेदेहो कामेव बहुमञ्ञथ,
न चापि ब्राह्मणिब्भेसु अत्थे किस्मिञ्चि व्यावटो ॥७१॥

[तब रात्रि के बीतने पर अपनी सेवा में आये हुए अमात्यों को इकट्ठा कर अङ्ग-नरेश यह बोला ॥६८॥ मेरे चन्दक प्रासाद में नित्य काम-भोगों की व्यवस्था रहे। प्रकट अथवा रहस्य कोई भी काम होने पर कोई भी मेरे पास न आये ॥६९॥ बीज, सुनाम और अलात सेनापति—ये तीनों न्याय करने में दक्ष हैं, यही न्याय किया करें ॥७०॥ इतना कह चुकने पर विदेह-नरेश काम भोगों को ही अत्यधिक महत्व देने लगा। वह ब्राह्मणों तथा गृहपतियों का कोई भी कार्य्य नहीं करता था ॥७१॥]

ततो द्वे सत्त रत्तस्स वेदेहस्सत्रजा पिया,
राजकञ्ञा रुजा नाम धाति मातरमब्रवि ॥७२॥
अलकरोथ म खिप्प सखियो च करोन्तु मे,
सुवे पण्णरसो दिबो गच्छे इस्सरसन्तिके ॥७३॥
तस्सा माल्य अभिहरिसु चन्दनञ्च महारह,
मणिसखमुत्तारतन नाना रत्ते च अम्बरे ॥७४॥
तञ्च सोवण्ण ये पीठे निसिन्न बहुकित्थियो,
परिकिरिय असोभिसु राज रुचिरवण्णिनि ॥७५॥

[उसके चौदह दिन बाद रुजा नामकी राजा की प्यारी कन्या ने दाइ को कहा ॥७२॥ मुझे शीघ्र अलकृत करो और मेरी सखियाँ भी करे। कल दिव्य पूर्णिमा है। मै राजा के पास जाऊगी ॥७३॥ उसके लिये मालाये लाई गई, बहुत मूल्यवान् चन्दन लाया गया। मणि, शङ्ख, मुक्ता तथा रतन लाये गये और नाना रग के वस्त्र (?) ॥७४॥ उस सोने के पीठे पर बैठी हुई सुन्दर रुजा (नामक कन्या) को बहुत सी स्त्रियो ने घेरकर अलकृत किया ॥७५॥]

साच सखीमज्झगता सब्बाभरणभूसिता,
सतेरता अब्भमिव चन्दक पाविसी रुजा ॥७६॥
उपसकमित्वा वेदेह वन्दित्वा विनयेरत,
सुवण्ण विकते पीठे एकमन्त उपाविसि ॥७७॥

[सभी अलकारो से विभूपित, सखियो सहित रुजा चन्दक प्रासाद मे बिजली की तरह प्रविष्ट हुई ॥७६॥ विदेह के पास पहुच ओर उस विनयी राजा को प्रणाम कर वह स्वर्ण-खचित पीढे पर एक ओर बैठी ॥७७॥]

तञ्च दिस्वान वेदेहो अच्छरानव सगम,
राज सखीमज्झगत इद वचनमब्रवी ॥७८॥
कच्चि रमसि पासादे अन्तोपोक्खरणिं पति,
कच्चि बहुविध खज्ज सदा अभिहरन्ति ते ॥७९॥
कच्चि बहुविध माल्य ओचिनित्वा कुमारियो,
घरके करोथ पच्चेक खिड्डारतिरता मुहु ॥८०॥
केन वा विकल तुय्ह खिप्प अभिहरन्तु ते,
मनो करस्सु कुड्डमुखी अपि चन्दसमम्हिपि ॥८१॥

[विदेह-नरेश ने जब वह अप्सराओं का समागम सा देखा और उन सखियो के बीच मे रुजा को देखा तो वह बोला ॥७८॥ क्या प्रासाद मे मन लगता है? क्या पुष्करिणी रुचति है? क्या तेरे लिये बहुत प्रकार की खाद्य-सामग्री लाई जाती है? ॥७९॥ क्या क्रीडा-रत कुमारियाँ नाना प्रकार के फूलो को लेकर प्रत्येक पृथक्-पृथक घर बनाती है? ॥८०॥ तू किस कारण से विकल है? वह शीघ्र दूर हो। हे कली के समान मुहवाली! जो इच्छा हो उसे व्यक्त कर, चाहे चन्द्रमा सदृश वस्तु भी हो ॥८१॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा पितरमब्रवि
सवमेतं महाराज लब्भतिस्सरसन्तिके ॥८२॥
सुवे पण्णरसो दिब्बो सहस्सं आहरन्तु मे,
यथादिन्नञ्च दस्सामि दान सब्बवणीसुहं ॥८३॥

[विदेह-नरेश का वचन सुनकर रुजा ने पिता को कहा—महाराज ! आपके पास से यह सब मिलता है ॥८२॥ कल दिव्य पूर्णिमा है, मेरे लिये हजार लाये जाये । जैसे दिया वैसे ही सब याचको को दान दूगी ॥८३॥]

रुजाय वचन सुत्वा राजा अगातिमब्रवी,
बहु विनासित वित्त निरत्थ अफल तया ॥८४॥
उपोसथ वस निच्च अन्नपाण न भुञ्जसि,
नियतेत अभुत्तब्ब नत्थि पुञ्ज अभुञ्जतो ॥८५॥

[रुजा की बात सुनी तो अङ्ग राजा बोला—"तूने बहुत सा धन निरर्थक नष्ट कर दिया ॥८४॥ तू नित्य उपोसथ-व्रत रखती है और खाना-पीना ग्रहण नहीं करती । तुझे 'नियति' के वश होकर ही भूखा रहना पडता है । न खाने मे कोई पुण्य नही है ॥८५॥]

बीजकोपि हि सुत्वान तदा कस्सपभासित,
पस्ससन्तो मुहु उण्हं रुद अस्सुनि वत्तयि ॥८६॥
याव रुजे जीवसि नो मा भत्तमपनामयि,
नत्थि भद्दे परोलोको किं निरत्थ विहञ्जसि ॥८७॥

[(और भी कहा —) उस समय काश्यप का भाषण सुनकर बीजक ने भी गर्म-सास ली ओर उसकी आँख से आसू बहने लगे ॥८६॥ हे रुजा ! जब तक तू जीती है, खाना मत छोड । भद्रे ! परलोक है ही नही, तू अपने आपको व्यर्थ क्यों कष्ट देती है ? ॥८७॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा रुचिरवण्णिनी,
नजान पुब्बापर धम्म पितर एतदब्रवी ॥८८॥
सुतमेव मे पुरे आसि सक्खि दिट्ठमिद मया,
बालूपसेवी यो होति बालोव समपज्जथ ॥८९॥

मूळहो हि मूलहमागम्म भीय्यो मोह निगच्छति,
पतिरूप अलातेन बीजकेन च मुय्हितु ।।९०।।

[विदेह-राजा की बात सुन सुन्दरवर्ण वाली रुजा ने पूर्वापर धर्म की जानकार होने के कारण पिता को यह कहा ।।८८।। पहले मैंने यह सुना ही था, किन्तु आज साक्षात देख लिया कि मूर्ख की सगति करनेवाला मूर्ख हो जाता है ।।८९।। मूढ की सगति करने से मूढ और भी अधिक मूढ हो जाता है । (इसलिये) अलात और बीजक का अधिक मूर्ख वन जाना उनके योग्य ही है ।।९०।।]

त्वञ्च देव सप्पञ्ञो धीरो अत्थस्स कोविदो,
कथ बालेहि सदिस हीन दिट्ठि उपागमि ।।९१।।
सचे हि ससारपथने सुज्झति
निरत्थियापब्बज्जा गुणस्स,
कीटोव अग्गि जलित अपापक
उपपज्जति मोमुहो नग्गभाव ।।९२।।
ससारसुद्धोति पुरे निविट्ठा
कम्म विदूसेन्ति बहू अजान,
पुब्बे कलि दुग्गहितोव अत्था
दुम्मोचया बलिसा अम्बुजोव ।।९३।।

[देव ! आप तो प्रज्ञावान्, हैं अर्थ के जानकार हैं । आपने मूर्खों के समान मिथ्या-मत कैसे ग्रहण कर लिया ।।९१।। यदि ससार मे अनायास ही शुद्धि हो जाती है तो गुण (मुनि) की प्रव्रज्या निरर्थक है । वह मूढ जलती आग मे पडनेवाले कीडे की तरह नग्न-भाव को प्राप्त होता है ।।९२।। ससार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है, पहले से ही इस धारणा वाले बहुत से अज्ञ जन कर्म-फल को दोष देते हैं । वे इस दुर्गृहीत अर्थ के कारण पहले ही पराजित रहते हैं । जिस प्रकार मछली के गले से काँटा निकलना कठिन है, उसी प्रकार इन लोगों का इस मिथ्या-मत से निकलना कठिन है ।।९३।।]

इससे आगे भी उदाहरण देते हुई बोली—

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा पितरमब्रवि
सवमेत महाराज लब्भतिस्सरसन्तिके ॥८२॥
सुवे पण्णरसो दिब्बो सहस्स आहरन्तु मे,
यथादिन्नञ्च दस्सामि दान सब्बवणीसुह ॥८३॥

[विदेह-नरेश का वचन सुनकर रुजा ने पिता को कहा—महाराज ! आपके पास से यह सब मिलता है ॥८२॥ कल दिव्य पूर्णिमा है, मेरे लिये हजार लाये जाये। जैसे दिया वैसे ही सब याचको को दान दूगी ॥८३॥]

रुजाय वचन सुत्वा राजा अगातिमब्रवी,
बहु विनासित वित्त निरत्थ अफल तया ॥८४॥
उपोसथ वस निच्च अन्नपाण न भुञ्जसि,
नियतेत अभुत्तब्ब नत्थि पुञ्ञ अभुञ्जतो ॥८५॥

[रुजा की बात सुनी तो अङ्ग राजा बोला—"तूने बहुत सा धन निरर्थक नष्ट कर दिया ॥८४॥ तू नित्य उपोसथ-व्रत रखती है और खाना-पीना ग्रहण नहीं करती। तुझे 'नियति' के वश होकर ही भूखा रहना पडता है। न खाने मे कोई पुण्य नही है ॥८५॥]

बीजकोपि हि सुत्वान तदा कस्सपभासित,
पस्ससन्तो मुहु उण्ह रुद अस्सुनि वत्तयि ॥८६॥
याव रुजे जीवसि नो मा भत्तमपनामयि,
नत्थि भद्दे परोलोको किं निरत्थ विहञ्ञसि ॥८७॥

[(और भी कहा —) उस समय काश्यप का भाषण सुनकर बीजक ने भी गर्म-सास ली और उसकी आँख से आसू बहने लगे ॥८६॥ हे रुजा ! जब तक तू जीती है, खाना मत छोड। भद्रे ! परलोक है ही नही, तू अपने आपको व्यर्थ क्यो कष्ट देती है ? ॥८७॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा रुचिरवण्णिनी,
नजानं पुब्बापर धम्म पितर एतदब्रवी ॥८८॥
सुतमेव मे पुरे आसि सक्खि दिट्ठमिद मया,
बालूपसेवी यो होति बालोव समपज्जथ ॥८९॥

मूळ्हो हि मूलहमागम्म भीय्यो मोह निगच्छति,
पतिरूप अलातेन बीजकेन च मुय्हितु ॥९०॥

[विदेह-राजा की बात सुन सुन्दरवर्ण वाली रुजा ने पूर्वापर धर्म की जानकार होने के कारण पिता को यह कहा ॥८८॥ पहले मैंने यह सुना ही था, किन्तु आज साक्षात देख लिया कि मूर्ख की सगति करनेवाला मूर्ख हो जाता है ॥८९॥ मूढ की सगति करने से मूढ और भी अधिक मूढ हो जाता है। (इसलिये) अलात और बीजक का अधिक मूर्ख बन जाना उनके योग्य ही है ॥९०॥]

त्वञ्च देव सप्पञ्ञो धीरो अत्थस्स कोविदो,
कथ बालेहि सदिस हीन दिट्ठि उपागमि ॥९१॥
सचे हि ससारपथने सुज्झति
निरत्थियापबज्जा गुणस्स,
कीटोव अग्गि जलित अपापक
उपपज्जति मोमुहो नग्गभाव ॥९२॥
ससारसुद्धीति पुरे निविट्ठा
कम्म विदूसेन्ति बहू अजान,
पुब्बे कलि दुग्गहितोव अत्था
दुम्मोचया बलिसा अम्बुजोव ॥९३॥

[देव! आप तो प्रज्ञावान्, हैं अर्थ के जानकार हैं। आपने मूर्खों के समान मिथ्या-मत कैसे ग्रहण कर लिया ॥९१॥ यदि ससार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है तो गुण (मुनि) की प्रव्रज्या निरर्थक है। वह मूढ जलती आग में पडनेवाले कीडे की तरह नग्न-भाव को प्राप्त होता है ॥९२॥ ससार मे अनायास ही शुद्धि हो जाती है, पहले से ही इस धारणा वाले बहुत से अज्ञ जन कर्म-फल को दोष देते हैं। वे इस दुर्गृहीत अर्थ के कारण पहले ही पराजित रहते हैं। जिस प्रकार मछली के गले से काँटा निकलना कठिन है, उसी प्रकार इन लोगों का इस मिथ्या-मत से निकलना कठिन है ॥९३॥]

इससे आगे भी उदाहरण देती हुई बोली—

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा पितरमब्रवि
सवमेत महाराज लब्भतिस्सरसन्तिके ॥८२॥
सुवे पण्णरसो दिब्बो सहस्स आहरन्तु मे,
यथादिन्नञ्च दस्सामि दानं सब्बवणीसुह ॥८३॥

[विदेह-नरेश का वचन सुनकर रुजा ने पिता को कहा—महाराज ! आपके पास से यह सब मिलता है ॥८२॥ कल दिव्य पूर्णिमा है, मेरे लिये हजार लाये जाये। जैसे दिया वैसे ही सब याचको को दान दूगी ॥८३॥]

रुजाय वचन सुत्वा राजा अगातिमब्रवो,
बहु विनासित वित्त निरत्थ अफल तया ॥८४॥
उपोसथ वस निच्च अन्नपाण न भुञ्जसि,
नियतेत अभुत्तब्ब नत्थि पुञ्ञ अभुञ्जतो ॥८५॥

[रुजा की बात सुनी तो अङ्ग राजा बोला—"तूने बहुत सा धन निरर्थक नष्ट कर दिया ॥८४॥ तू नित्य उपोसथ-व्रत रखती है और खाना-पीना ग्रहण नही करती। तुझे 'नियति' के वश होकर ही भूखा रहना पडता है। न खाने मे कोई पुण्य नही है ॥८५॥]

बीजकोपि हि सुत्वान तदा कस्सपभासित,
पस्ससन्तो मुहु उण्ह रुद अस्सुनि वत्तयि ॥८६॥
याव रुजे जीवसि नो मा भत्तमपनामयि,
नत्थि भद्दे परोलोको कि निरत्थ विहञ्जसि ॥८७॥

[(और भी कहा —) उस समय काश्यप का भाषण सुनकर बीजक ने भी गर्म-सास ली और उसकी आँख से आसू बहने लगे ॥८६॥ हे रुजा ! जब तक तू जीती है, खाना मत छोड। भद्रे ! परलोक है ही नही, तू अपने आपको व्यर्थ क्यों कष्ट देती है ? ॥८७॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा रुचिरवण्णिनी,
नजान पुब्बापर धम्म पितर एतदब्रवी ॥८८॥
सुतमेव मे पुरे आसि सक्खि दिट्ठमिद मया,
बालूपसेवी यो होति बालोव समपज्जथ ॥८९॥

मूळ्हो हि मूळ्हमागम्म भीय्यो मोह निगच्छति,
पतिरूप अलातेन बीजकेन च मुय्हितु ॥९०॥

[विदेह-राजा की बात सुन सुन्दरवर्ण वाली रुजा ने पूर्वापर धर्म की जानकार होने के कारण पिता को यह कहा ॥८८॥ पहले मैंने यह सुना ही था, किन्तु आज साक्षात देख लिया कि मूर्ख की संगति करनेवाला मूर्ख हो जाता है ॥८९॥ मूढ की संगति करने से मूढ और भी अधिक मूढ हो जाता है। (इसलिये) अलात और बीजक का अधिक मूर्ख बन जाना उनके योग्य ही है ॥९०॥]

त्वञ्च देव सप्पञ्ञो धीरो अत्थस्स कोविदो,
कथं बालेहि सदिस हीनं दिट्ठि उपागमि ॥९१॥
सचे हि संसारपथेन सुज्झति
निरत्थियापब्बज्जा गुणस्स,
कीटोव अग्गि जलितं अपापक
उपपज्जति मोमुहो नग्गभाव ॥९२॥
संसारसुद्धीति पुरे निविट्ठा
कम्म विदूसेन्ति बहू अजान,
पुब्बे कलि दुग्गहितोव अत्था
दुम्मोचया बलिसा अम्बुजोव ॥९३॥

[देव ! आप तो प्रज्ञावान्, हैं अर्थ के जानकार है। आपने मूर्खो के समान मिथ्या-मत कैसे ग्रहण कर लिया ॥९१॥ यदि संसार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है तो गुण (मुनि) की प्रव्रज्या निरर्थक है। वह मूढ जलती आग में पड़नेवाले कीड़े की तरह नग्न-भाव को प्राप्त होता है ॥९२॥ संसार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है, पहले से ही इस धारणा वाले बहुत से अज्ञ जन कर्म-फल को दोष देते हैं। वे इस दुर्गृहीत अर्थ के कारण पहले ही पराजित रहते हैं। जिस प्रकार मछली के गले से काँटा निकलना कठिन है, उसी प्रकार इन लोगों का इस मिथ्या-मत से निकलना कठिन है ॥९३॥]

इससे आगे भी उदाहरण देती हुई बोली—

उपम ते करिस्सामि महाराज तवत्थिया,
उपमायपिधेकच्चे अत्थ जानन्ति पण्डिता ॥९४॥
वाणिजान यथा नावा अप्पभाणभरा गरु,
अतिभार समादाय अण्णवे अवसीदति ॥९५॥
एवमेव नरो पाप थोकथो कम्पि आचिन,
अतिभार सभादाय निरये अवसीदति ॥९६॥
न ताव भारो परिपूरो अलातस्स महीपति,
आचिनाति च त पाप येन गच्छति दुग्गति ॥९७॥
पुब्बेवस्स कत पुञ्ञ अलातस्स महीपति,
तस्सेस देव निस्सन्दो यञ्वेसा लभते सुख ॥९८॥
खीयतेवस्स त पुञ्ञ तथाहि अगुणे रतो,
उजुमग्ग अपाहाय कुम्मग्गमनुधावति ॥९९॥
तुला यथा पग्गहिता ओहिते तुलमण्डले,
उन्नमेति तुलासीस भारे ओरोपिते सति ॥१००॥
एवमेव नरो पुञ्ञ थोकथोकाम्पि आचिन,
सग्गातिमानो दासोव बीजको सातवे रतो ॥१०१॥

[महाराज ! तुम्हारे हित के लिये मैं उपमा देती हूं । कुछ पण्डित उपमा से भी बात समझ लेते हैं ॥९४॥ जिस प्रकार अति-भारवाली व्योपारियो की नौका अति भारी होने से समुद्र में डूब जाती है ॥९५॥ उसी प्रकार आदमी थोडा-थोडा पाप-कर्म करता हुआ भी अति-भार हो जाने से नरक मे जा गिरता है ॥९६॥ राजन् ! अभी अलात का पाप-भार पूरा नही हुआ । वह उस पाप का सग्रह कर रहा है, जिससे आदमी दुर्गति को प्राप्त होता है ॥९७॥ राजन् ! यह अलात का पहले का किया हुआ पुण्य-कर्म ही है जिसके कारण वह सुख भोग रहा है ॥९८॥ उसका वह पुण्य क्षीण हो रहा है । इसीसे वह अवगुण-सेवी हो गया है । वह सुमार्ग को छोड कुमार्ग पर दौडा जा रहा है ॥९९॥ जिस प्रकार तराजू के पलडे में भारके रख देने पर तराजू की डण्डी झुक जाती है, इसी प्रकार आदमी थोडा-थोडा भी पुण्य सचय करता है और वह स्वर्ग की कामना करनेवाले 'बीजक' दास की तरह कुशल-कर्म में लगा रहता है ॥१००-१०१॥]

और भी कहा—

यञ्चज्ज बीजको दासो दुक्ख पस्सति अत्तनि,
पुब्बे तस्स कत पाप तमेसो पटिसेवति ॥१०२॥
खीयते वस्स त पाप तथाहि विनये रतो,
कस्सपञ्च समापज्ज माहेवुप्पथमागम ॥१०३॥

[यह जो बीजक दास दुक्ख का अनुभव करता है, यह उसका पहले का किया हुआ पाप-कर्म है जिसे वह भोगता है ॥१०२॥ उसका वह पाप-कर्म क्षीण होता जाता है। इसीसे वह सदाचार-रत है। हे पिता! आप काश्यप की सगति के कारण कुमार्ग-गामी न बने ॥१०३॥]

अब उसे कुसगति का दोप और सत्सगति का गुण बताया—

य य हि राज भजति सत वा यदि वा असं,
सीलवन्त विसील वा वस तस्सेव गच्छति ॥१०४॥
यादिस कुरुते मित्त यादिसञ्चुपसेवति,
सोपि तादिसको होति सहवासो हि तादिसो ॥१०५॥
सेवमानो सेवमानं सम्फुट्ठो सम्फुस पर,
सरो दिद्धो कलाप व अलित्तमुपलिम्पति,
उपलेपभया धीरो नेव पापसखा सिया ॥१०६॥
पूतिमच्छ कुसग्गेन यो नरो उपनय्हति,
कुसापि पूतिवायन्ति एव बालूपसेवना ॥१०७॥
तगरञ्च पलासेन यो नरो उपनय्हति,
पत्तापि सुरभि वायन्ति एव धीरूपसेवना ॥१०८॥
तस्मा फल पुटस्सेव ञत्वा सम्पाकमत्तनो
असन्ते नोपसेवेय्य सन्तो सेवेय्य पण्डितो,
असन्तो निरय नेन्ति सन्तो पापेन्ति सुग्गति ॥१०९॥

[राजन्! आदमी जैसी भी सगति करता है चाहे अच्छी हो चाहे बुरी हो, चाहे सदाचारी की हो, चाहे दुराचारी की, आदमी उसी के वशीभूत हो जाता है ॥१०४॥ जैसे लोगो से भी मित्रता करता है, जैसी भी सगत करता है, वह आदमी

भी वैसा ही हो जाता है, क्योंकि उसकी सगति भी वैसी ही है ॥१०५॥ जिससे स्पर्श होता है वह दूसरे स्पर्श करनेवाले को, और जिसकी सगति की जाती है वह दूसरे सगति करने वाले को ऐसे ही लबेड देता है जैसे जहर में बुझा हुआ तीर तूणीर के दूसरे तीरो को। लिव्बडने के डर से बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि पापी की सगत न करे ॥१०६॥ जो आदमी कुशा के सिरे से भी सडी हुई मछली को ले जाता है, तो कुशा भी बदबूदार हो जाती है। यही हाल मूर्खो की सगति का है ॥१०७॥ जो आदमी तगर की सुगन्धि को पलास से ले जाता है, पलास के पत्ते भी सुगन्धित हो जाते है ॥१०८॥ इसलिये यह जानकर कि मै भी पलाश के डूने की तरह पाण्डित्य को प्राप्त हो सकता हूं, बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि वह असत्पुरुषो की सगति न करे, सत्पुरुपो की सगति करे। असत्पुरुपो की सगति नरक ले जाती है, सत्पुरुषो की सगति स्वर्ग ले जाती है ॥१०९॥]

इस प्रकार राज-कन्या ने छ गाथाओ से पिता को धर्मोपदेश दे, पूर्व मे आत्मा-नुभूत दु ख का वर्णन करते हुए कहा—

अहम्पि जातियो सत्त सरे ससरितत्तनो,
अनागतापि सत्तेव या गमिस्स इतो चुता ॥११०॥

या मे सा सत्तमी जाति अहु पुब्बे जनाधिप,
कम्मारपुत्तो मगधेसु अहु राजगहे पुरे ॥१११॥

पाप सहाये आगम्म बहु पाप कत मया,
परदारस्स हेठेन्तो चरिम्ह अमरा विया ॥११२॥
त कम्म निहित अट्ठा भस्मच्छन्नोव पावको,
अथ अञ्ञेहि कम्मेहि अजायिं वेसभूमियं ॥११३॥

कोसम्बियं, सेट्ठिकुले इद्धेफीते महद्धने,
एकपुत्तो महाराज निच्च सक्कतपूजितो ॥११४॥

तत्थ मित्त असेविस्स सहाय सातवे रत,
पण्डित सुत सम्पन्न सो म अत्थे निवेसयि ॥११५॥

चातुद्दसिं पञ्चदसिं बहु रत्तिमुपावसिं,
त कम्म निहित अट्ठा निधीव उदकन्तिके ॥११६॥

अथ पापान कम्मान यमेत मगधे कत,
फल परियागत पच्छा भुत्वा दुट्ठविस यथा ॥११७॥

ततो चुताह वेदेह रोरुवे निरये चिर,
सकम्मना अपच्चिस्स त सरे न सुख लभे ॥११८॥

बहुवस्सगणे तत्थ खेपयित्वा बहु दुख,
भेण्णाकटे अहुराज छकलो उद्धितप्फलो ॥११९॥

[मुझे भी अपने सात जन्म याद हैं और वे सात जन्म भी याद हैं, जहाँ जहाँ यहाँ से मरकर जन्म ग्रहण करूँगी ॥११०॥ हे जनाधिप ! वह जो मेरा सातवाँ जन्म था, उस जन्म में मैंने मगध मे राजगृह मे सुनार होकर जन्म ग्रहण किया ॥१११॥ बुरी सगति के कारण मैंने बहुत पाप किये । मै देवताओ की तरह पर स्त्री-गमन करता रहा ॥११२॥ मेरा वह कर्म राख से ढकी आग की तरह ढका पडा रहा । एक दूसरे कर्म के फलस्वरूप मेरा जन्म 'वस' देश मे हुआ ॥११३॥ मै कोसम्बी मे स्मृद्ध, महाधनवान् सेठ के कुल मे पैदा हुआ । महाराज ! मै अकेला पुत्र था । मेरा नित्य आदर होता था, पूजा होती थी ॥११४॥ वहाँ एक पडित, ज्ञानी, शुभ कर्मी मित्र की सगति की । उसने मुझे सदर्थ मे लगाया ॥११५॥ मैंने बहुतसी चतुर्दशियाँ और पूर्णिमाओ को उपोसथ-व्रत किया । मेरा वह कर्म पानी मे दबे हुए खजाने की तरह छिपा था ॥११६॥ जो पाप-कर्म मैंने मगध मे किये थे उनका फल मेरे पीछे आया जैसे खाये हुए खराब-विष का फल ॥११७॥ हे विदेह-नरेश ! वहाँ से च्युत होकर मै अपने कर्म के फलस्वरुप रौरव नरक मे पैदा हुई और वहाँ चिरकाल तक रही, उसकी यादकर मुझे सुख नही होता ॥११८॥ बहुत वर्षों तक वहाँ बहुत दु ख सहन करने के बाद मै हे राजन् ! भेण्णाकट मे भारवाही बकरा हुआ ॥११९॥]

इस अर्थ को प्रकट करती हुई गाथा कहने लगी—

सातपुत्ता मया वूळ्हा पिट्ठिया च रथेन च,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमणस्स मे ॥१२०॥

[मैंने अमात्यों के पुत्रो को पीठ पर और गाडी में जुतकर ढोया । यह सब मेरे उसी पर-स्त्री-गमन का फल है ॥१२०॥]

वहाँ से च्युत होकर जगल में बन्दर की जून में जन्म ग्रहण किया। पैदा होने के दिन ही यूथ-पति (सरदार) को दिखाया गया। उसने 'मेरे पुत्र को लाओ' कहा और वह चिल्लाता ही रहा तथा उसने दान्त से अण्डकोप-उखाड दिये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए कहा—

ततो चुताहं वेदेह कपि आसिं ब्रहावने,
निलिच्छतफलोयेव यूथपेन पगाब्भिना,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्समे॥१२१॥

[हे विदेह-नरेश! वहाँ से च्युत होकर मै महावन में कपि होकर पैदा हुआ। प्रगल्भ यूथपति ने मेरे अण्ड-कोष ही उखाड डाले। यह परस्त्री-गमन का ही फल था॥१२१॥]

इससे आगे दूसरे जन्मो को भी प्रकट किया—

ततो चुताहं वेदेह दसण्णेसु पसू अहुं,
निलिच्छितो जवे भद्रो योग्ग मूलहं चिर मया,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्स मे॥१२२॥
ततो चुताहं वेदेह वज्जीसु कुलमागमा,
नेवित्थी न पुमा आसिं मनुस्सत्ते सुदुल्लभे,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्स मे॥१२३॥
ततो चुताहं वेदेह अजायिं नन्दने वने,
भवने तावतिंसाहं अच्छरा कामवण्णिनी॥१२४॥
विचित्तवत्थाभरणा आमुत्तमणिकुण्डला,
कुसला नच्चगीतस्स सक्कस्स परिचारिका॥१२५॥
तत्थ ठिताहं वेदेह सरामि जातियो इमा,
अनागतेपि सत्तेव या गमिस्सं इतो चुता॥१२६॥
परियागत त कुसलं य मे कोसम्बियं कत,
देवेचेव मनुस्से च सन्धाविस्सं इतोचुता॥१२७॥
सत्त जच्चो महाराज निच्च सक्कतपूजिता,
थीभावापि न मुच्चिस्सं छट्ठो निगतियो इमा॥१२८॥
सतमी च गती देव देवपुत्तो महिद्धिको,
पुमदेवी भविस्सामि देवकायस्मिमुत्तमो॥१२९॥

अज्जापि सन्तानमय माल गन्थेन्ति नन्दने,
देवपुत्तो जवो नाम यो मे माल पटिच्छति ॥१३०॥
मुहुत्तो विय सो दिब्बो इमानि वस्सानि सोळस,
रत्तिन्दिवो च सो दिब्बो मानुसि सरदो सत ॥१३१॥
इति कम्मानि अन्वेन्ति असखेय्यापि जातियो,
कल्याण यदि वा पाप नहि कम्म पनस्सति ॥१३२॥

[वहाँ से च्युत होकर दशार्णव देश मे मे बैल होकर पैदा हुई। मेरे अण्ड-कोप नष्ट कर दिये गये। मै चलने मे अच्छा था। मैंने चिरकाल तक भार ढोया। यह मुझे परस्त्री-गमन का ही फल मिला ॥१२२॥ हे विदेह-नरेश! वहाँ से च्युत होकर मैंने वज्जी जनपद में एक कुल मे जन्म ग्रहण किया। उस दुर्लभ मनुष्य-योनि को पाकर भी न मै स्त्री था न पुरुष था अर्थात् नपुसक था। यह मेरे परस्त्री-गमन का ही परिणाम था ॥१२३॥ हे विदेह-नरेश! वहाँ से च्युत होकर मैंने नन्दन-वन मे जन्म ग्रहण किया—त्रयोत्रिंश भवन में, अप्सरा हुई, यथेच्छ रूप धारण कर सकने वाली, विचित्र वस्त्रों तथा आभूपणों वाली, मोतियों तथा मणिकुण्डलो वाली, नृत्य-गीत कर्म में कुशल, और शक्र की सेविका ॥१२४-१२५॥ मै उस जन्म में स्थित थी, हे विदेह-नरेश! मुझे उन सात जन्मो का स्मरण था और मै उन सात जन्मो को भी जानती थी जिन्हे वहाँ से च्युत होकर ग्रहण करनेवाली थी ॥१२६॥ मैंने कोसम्बी में जो कुशल-कर्म किया था अब उसकी फल देने की बारी थी। मैंने जाना कि यहाँ से च्युत होकर मैं देव-योनि तथा मनुष्य-योनि को प्राप्त होऊगी ॥१२७॥ महाराज! इन सातों जन्मों मे मै नित्य शक्र द्वारा पूजित रही। इन छ जन्मो मे मैं स्त्रीत्व से मुक्त नही हुई ॥१२८॥ हे देव! मेरा सातवाँ जन्म प्रतापी देव-पुत्र का होगा। मै देव-योनि मे पुरुष-देवता होकर उत्पन्न होऊगी ॥१२९॥ आज से ही नन्दन वन मे क्रमिक-माला गूथी जा रही है। जव नामका देव-पुत्र मुझे माला देगा ॥१३०॥ ये सोलह वर्ष दिव्य-लोक का मुहूर्त-भर हैं और दिव्य-लोक का रात दिन मनुष्य-लोक के सौ वर्ष है ॥१३१॥ इस प्रकार असख्य जन्मो तक भी मनुष्यो के कर्म प्राणी का पीछा करते हैं। अच्छा अथवा बुरा किया गया कर्म नष्ट नही होता ॥१३२॥)

इससे आगे धर्मोपदेश देते हुए कहा—

यो इच्छे पुरिसो होतु जाति जाति पुनप्पुन,
परदार विवज्जेय्य धोतपादोव कद्दम ॥१३३॥

[जो चाहे कि उसे बार-बार पुरुष का ही जन्म मिले उसे परस्त्री-गमन से वैसे ही दूर रहना चाहिये जैसे पाँव-धुला आदमी कीचड़ से ॥१३३॥]

या इच्छे पुरिसो होतु जाति जाति पुनप्पुन,
सामिक अपचायेय्य इन्द व परिचारिका ॥१३४॥

[जो (स्त्री) चाहे कि उसे बार बार पुरुष का ही जन्म मिले वह स्वामी की वैसे ही सेवा करे जैसे इन्द्र की सेविका (इन्द्र की सेवा करती है) ॥१३४॥]

यो इच्छे दिब्ब भोगञ्च दिब्ब आयु यस सुखं
पापानि परिवज्जेत्वा तिविध धम्ममाचरे ॥१३५॥
कायेन वाचा मनसा अप्पमत्तो विचक्खणो,
अत्तनो होति अत्थाय इत्थी वा यदि वा पुमा ॥१३६॥

[जो कोई दिव्य- भोग, दिव्य-आयु, यश तथा सुख की इच्छा करे उसे चाहिये कि पापो से दूर रहकर त्रिविध कर्म करे ॥१३५॥ जो अप्रमादी, बुद्धिमान, शरीर, मन और वाणी से पुण्य-कर्म करता है वह स्त्री हो अथवा पुरुष अपना हित करता है ॥१३६॥]

ये केचिमे मनुजा जीव लोके
यसस्सिनो सब्बसमन्तभोगा,
असंसय तेहि पुरे सुचिण्ण
कम्मस्सकासे पुथुसब्बसत्ता ॥१३७॥

[जीव लोक में जितने भी यशस्वी तथा ऐश्वर्यवान् प्राणी है, उन्होने निश्चय मे पूर्व-जन्म मे अच्छे कर्म किये है । सभी प्राणी कर्म के ही आधीन है ॥१३७॥]

इधानुचिन्तेसि सयम्पि देव,
कुतो निदाना ते इमा जनिन्द,
या ते इमा अच्छरा सन्निकासा
अलंकता कञ्चनजालछन्ना ॥१३८॥

[हे देव ! आप भी सोचें कि आपको जो ये अलङ्कृत, स्वर्ण जाल से आच्छन्न अप्सरायें घेरे हुए हैं ये आपके किस कर्म का परिणाम हैं ? ॥१३८॥]

इस प्रकार उसने पिता को अनुशासित किया। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इच्चेव पितरं कञ्ञा रुजा तोसेसि अगतिं,
मूळ्हस्स मग्गमाचिक्खि धम्ममक्खासि सुब्बता॥१३९॥

[इस प्रकार रुजा नामकी राज-कन्या ने अङ्ग नामक पिता को सन्तुष्ट किया। उस सुव्रता ने मूढ राजा को रास्ता दिखाया और धर्म का उपदेश दिया ॥१३९॥]

इस प्रकार वह पूर्वाह्न समय से आरम्भ कर रात भर पिता को उपदेश देती रही—"देव ! उस नग्न मिथ्य-मत वाले का मत न ग्रहण करें। 'यह लोक भी है, परलोक भी है, भले-बुरे कर्म का फल भी है,' कहने वाले मेरे समान कल्याण-मित्र का कहना ग्रहण करें। अतीर्थ में मत उछलें।" ऐसा होने पर भी वह पिता को मिथ्या-दर्शन से मुक्त नही कर सकी। वह केवल उसकी मीठी-बोली सुनकर सन्तुष्ट हुआ। माता-पिता को प्रिय सन्तान का बोलना मीठा लगता है। लेकिन उससे वे अपने मिथ्या-मत को नही छोड देते हैं। सारे नगर मे हल्ला हो गया कि राज-कन्या रुजा पिता को धर्मोपदेश दे मिथ्या-मत मे मुक्त कर रही है। जनता सन्तुष्ट हुई कि राजकन्या पिता को मिथ्या-दर्शन से मुक्त कर नगरवासियो का कल्याण करेगी। पिता को समझाने में असमर्थ होने पर भी उसने प्रयत्न ढीला न कर निश्चय किया कि मै जैसे भी होगा पिता का कल्याण करूगी। उसने सिर पर हाथ जोड दसो दिशाओ को नमस्कार करते हुए प्रार्थना की—"इस लोक में लोक-सरक्षक धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण हैं, लोकपाल देवता हैं, महाब्रह्मा हैं। वे आकर अपने बल से मेरे पिता को मिथ्या-मत से मुक्त करें। इसके कोई गुण न रहने पर भी, मेरे गुण मेरे बल, मेरे सत्य के कारण आकर इसकी मिथ्या-दृष्टि दूर कर सारे ससार का कल्याण करें।"

उस समय बोधिसत्व नारद नामक महाब्रह्मा थे। बोधिसत्व अपनी मैत्री-भावना के कारण, करुणा के कारण, उदाराशयता के कारण यह देखने के लिये कि कौन से प्राणी अच्छी तरह रह रहे हैं और कौन से अच्छी तरह नही रह रहे हैं,

समय समय पर मसार की ओर देखते हैं। उस दिन देखा कि राज-कन्या अपने पिता को मिथ्या-दृष्टि से छुडाने के लिये लोक-मरक्षक देवताओ को नमस्कार कर रही है। उन्होने सोचा—"मुझे छोड दूसरा कोई नही है जो इस राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त कर सके। आज मेरे लिये यह योग्य है कि मै राजकन्या का मग्रह और परि-जन-सहित राजा का कल्याण करके आऊ।" फिर सोचा, "किस वेप मे जाना योग्य है?" उसे ध्यान आया कि मनुष्यो को प्रव्रजित प्रिय लगते है, वे उनका आदर करते है तथा उन्हे उनका कहना प्रिय लगता है। इसलिये उसने तै किया कि प्रव्रजित वेप मे ही जाऊगा। तब उसने सुन्दर, स्वर्ण-वर्ण मनुष्य-रूप वनाया, सुन्दर जटाये वाधी, जटाओ के अन्दर सुनहरी-सुई लगाई, अन्दर लाल वस्त्र और ऊपर लाल रग का वल्कल-वसन पहन, सोने के तारे जडा हुआ, रजतमय अजिन-चर्म कधे पर रख, मोतियो के छीके पर सुनहरी भिक्षा-पात्र ले, तीन जगहो पर टेहडी, सुरानैहरी वैहगी कन्धे पर रख, मोतियो के छीके पर ही मूगे का कमण्डल रखा। इसी ऋषि-वेप से वह आकाश मे चमकते हुए चन्द्रमा के समान, आकाश-मार्ग से आ, अलकृत चन्द्र महाप्रासाद के तल्ले पर प्रविष्ट हो, राज के सामने आकाश मे खडा हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथ आगमा ब्रह्मलोका नारदो मानुसिं पज,
जम्बुदीपं अवेक्खन्तो अद्दा राजनमगतिं॥१४०॥
ततो पतिट्ठा पासादे वेदेहस्स पुरत्थतो,
तञ्च दिस्वा अनुप्पत्त रुजा इसिमवन्दथ॥१४१॥

[ब्रह्मलोक से नारद मुनि ने जम्बुद्वीप की ओर देखते हुए जब अङ्ग नामक नरेश को देखा तो वह ब्रह्म-लोक से मनुष्य-लोक आया ॥१४०॥ वह विदेह-नरेश के सम्मुख प्रासाद मे प्रतिष्ठित हुआ। उसे आया देख, रुजा ने उस ऋषि को नमस्कार किया ॥१४१॥]

राजा ने भी उसे देखा तो वह ब्रह्म-तेज के प्रभाव से अपने आसन पर बैठा न रह सका। वह नीचे उतर आया और जमीन पर खडे होकर उसने आगमन-स्थान तथा नाम और गोत्र पूछा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथासनम्हा ओरुह्य राजा व्यम्हितमानसो,
नारद परिपुच्छन्तो इद वचनमब्रवी ॥१४२॥
कुतो नु आगच्छसि देववण्णी
ओभासय सर्वारं चन्दिमाव,
अक्खाहि मे पुच्छितो नामगोत्त,
कथ त जानन्ति मनुस्स लोके ॥१४३॥

[भयभीत राजा आसन से उतरा और नारद मुनि मे प्रश्न करते हुए उसने कहा—"हे देव-वणे! आपका आगमन कहाँ से हुआ है? आप चन्द्रमा की भान्ति रात्रि को प्रकाशित करते हुए आये हैं? मेरे पूछने पर नाम-गोत्र कहे। आपको मनुष्य लोक मे कैसे जानते है ॥१४२-१४३॥]

उसने 'यह राजा परलोक को अस्वीकार करता है, इसे परलोक की बात कहूगा' सोच कहा—

अह हि देवतो इदानि एमि,
ओभासय सर्वारं चन्दिमाव,
अक्खाहि ते पुच्छितो नामगोत्त
जानन्ति म नारदो कस्सपो च ॥१४४॥

[मै चन्द्रमा के रात्रि को प्रकाशित करने की तरह इस समय देवलोक से आ रहा हूँ। मैं पूछे जाने पर तुझे नाम-गोत्र बताता हूँ। मुझे नारद और काश्यप करके जानते है ॥१४४॥]

राजा ने सोचा, परलोक की बात पीछे भी पूछ लूगा। पहले इससे ऋद्धि की बात पूछूं। यह सोच गाथा कही—

अच्छरियरूप वत यादिसञ्च
वेभासय गच्छसि तिट्ठसी च,
पुच्छामि त नारद एतमत्थ
अथ केन वण्णेन तवायमिद्धि ॥१४५॥

[जैसा तुम्हारा आश्चर्य्यंकर रूप है और जैसे तुम आकाश में स्थित होते हो

तथा आकाश-मार्ग से जाते हो, हे नारद ! मैं यह बात पूछता हूँ कि तुम्हारी यह ऋद्धि किस प्रकार की है ? ॥१४५॥]

नारद ने उत्तर दिया—

सच्चञ्च धम्मो च दमो च चागो,
गुणा ममेते पकता पुराणा,
तेहेव धम्मेहि सुसेवितेहि
मनोजवो येन काम गमोस्मि ॥१४६॥

[सत्य, धर्म, सयम तथा त्याग—ये मेरे स्वाभाविक पुराने गुण है । इन्ही धर्मों का अच्छी तरह पालन करने से मै जहाँ चाहता हूँ वहाँ मनोवेग से चला जाता हूँ ॥१४६॥]

उसके ऐसा कहने पर भी दृढ मिथ्या-दृष्टि के कारण तथा परलोक मे श्रद्धा न रखने के कारण उसने 'क्या पुण्य कर्मो का फल होता है ?' पूछते हुए गाथा कही—

अच्छरियमाचिक्खसि पुञ्ञसिद्धि,
सचे हि एते त्व यथा वदेसि,
पुच्छामि त नारद एतमत्थ,
पुट्ठो च मे साधु वियाकरोहि ॥१४७॥

[यह जो तू पुण्य से सिद्धि की बात करता है, यह तो बडे आश्चर्य की बात है । यदि ये ऐसे ही हैं जैसे तू कहता है तो हे नारद ! मै तुझे यह बात पूछता हूँ । मेरे पूछने पर तू उत्तर दे ॥१४७॥]

नारद ने कहा—

पुच्छस्सु मे राज तवेस अत्थो
य ससय कुरुसे भूमिपाल
अह तं निस्ससयत गमेमि
नयेहि ञायेहि च हेतुभि च ॥१४८॥

[हे राजन् ! जो भी सन्देह हो वह पूछे, मैं तुम्हे सकारण-बात से, ज्ञान से और हेतु से समझाऊगा ॥१४८॥]

राजा बोला—

पुच्छामि त नारद एतमत्थ
पुट्ठो च मे नारद मा मुसा भण,
अत्थि नु देवा पितरो नु अत्थि
लोको परो अत्थि जनो यमाहु ॥१४९॥

[हे नारद ! मैं तुझे यह बात पूछता हूँ। मेरे पूछने पर झूठ न कहना। यह जो लोक कहते है कि देव हैं, पितर हैं, पर-लोक है, तो क्या ये सचमुच है ? ॥१४९॥)

नारद ने कहा—

अत्थेव देवा पितरो च अत्थि
लोको परो अत्थि जनो यमाहु,
कामेसु गिद्धा च नरा पमूळ्हा
लोक पर न विदू मोहयुत्ता ॥१५०॥

[देवता भी है ओर पितर भी हैं ओर जिसे लोग परलोक कहते हैं, वह भी है। काम-भोगों मे आसक्त मूर्ख-जन मोह मे ग्रसित होने के कारण नही जानते कि पर-लोक है ॥१५०॥]

यह सुन राजा ने मजाक करते हुए गाथा कही—

अत्थीति चे नारद सद्दहासि
निवेसन परलोके मतान,
इधेव मे पञ्चसतानि देहि
दस्सामि ते परलोके सहस्स ॥१५१॥

[हे नारद ! यदि यह विश्वास है कि मृत जन परलोक मे रहते हैं तो मुझे यही पाच सौ दे। मैं तुझे परलोक में हजार दूगा ॥१५१॥]

बोधिसत्व ने परिषद के बीच में ही उसकी निन्दा करते हुए गाथायें कही—

दज्जेमु खो पञ्चसतानि भोतो
जञ्ञामु चे सीलवन्त वदञ्ञु,
लुद्द त भोन्त निरये वसन्त,
को चोदये परलोके सहस्स ॥१५२॥
इधेव यो होति अधम्मसील्नो
पापाचारो अलसो लुद्दकम्मो,

न पण्डिता तस्मि इण ददन्ति,
न हि आगमो होति तथाविधम्हा ॥१५३॥
दक्खञ्च पोस मनुजा विदित्वा
उट्ठाहक सोलवन्त वदञ्ञु,
सयमेव भोगेहि निमन्तयन्ति
कम्म करित्वा पुनमाहरेसि ॥१५४॥

[हम आपको पाच सौ दे दें, यदि हम जानें कि आप सदाचारी हैं, उदार हैं। जब क्रूर-स्वभाव आप लोभी नरक में रहते होंगे तो वहाँ परलोक मे हजार का तकाजा कौन करेगा? ॥१५२॥ जो आदमी अधार्मिक होता है, दुराचारी होता है, आलसी होता है, क्रूर होता है तो पण्डितजन ऐसे आदमी को इस ससार में भी कर्ज नही देते हैं, क्योकि ऐसे आदमी से कर्ज नही लौटता है ॥१५३॥ जिसे आदमी दक्ष समझते हैं, उत्साही समझते हैं, सदाचारी समझते हैं, उदार समझते हैं उसे स्वय ही आवश्यक चीजें लेने का निमन्त्रण देते हैं और कहते हैं कि काम करके पीछे ये लौटा देना ॥१५४॥]

इस प्रकार उससे डाटे जाने पर राजा हत-प्रभ हो गया जनता ने प्रसन्न हो सारे नगर मे हल्ला कर दिया, 'देव-ऋषि महा प्रतापी है। आज राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त करेगा।" बोधिसत्व के प्रताप से उस सात योजन की मिथिला नगरी में एक आदमी भी ऐसा नही रहा जिसने उसका धर्मोपदेश न सुना हो। तब बोधिसत्व ने सोचा, "इस राजा ने मिथ्या-दृष्टि को बडी दृढता से पकड रखा है। इसे नरक का भय दिखा, इसकी मिथ्या-दृष्टि छुडा, फिर देव-लोक की बात कह आश्वस्त करूगा।" यह सोच, "महाराज! यदि मिथ्या-मत का त्याग नही करेंगे तो अनन्त-दुख के घर नरक मे जायेंगे" कह नरक-कथा स्थापित की—

इतो गतो दक्खसि तत्थ राज
काकोळसघेहि पि कड्ढमान,
त खज्जमान निरये वसन्त
काकेहि गिज्झेहि च सेनकेहि,
सञ्छिन्न गत्त रुहिर सवन्त
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१५५॥

[हे राजन् ! यहाँ से परलोक जाने पर तू देखेगा कि तुझे कौवों की मण्डली नोच रही है। कौओ, गीधों तथा चीलों द्वारा नोचे जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक मे रहते समय तुझसे हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१५५॥]

इस प्रकार कोकाळ नरक का बखान कर 'यदि कोकाळ नरक मे नही जायेगा तो लोकन्तर नरक मे जायेगा' वह उस नरक का वर्णन करने के लिये गाथा कही—

अन्धन्तम तत्थ न चन्द सुरिया
निरयो सदा तुमुलो घोररूपो,
सा नेव रत्ति न दिवा पञ्ञायति
तथा विधे को विचरे धनत्थिको ॥१५६॥

[वहाँ घुप अन्धेरा है। वहाँ चान्द-सूर्य्य नही हैं। उस नरक मे निरन्तर अन्धेरा ही अन्धेरा रहता है। वहाँ न रात दिखाई देती है, न दिन दिखाई देता है। उस प्रकार के नरक मे अपना ऋण लेने के लिये कौन जायेगा ? ॥१५६॥]

इस लोकन्तर नरक का भी विस्तारपूर्वक वर्णन कर 'महाराज ! मिथ्या-दृष्टि का त्याग न कर सकने वाले न केवल यहीं किन्तु और भी दु ख भोगते हैं' कह ये गाथाये कही—

सबलो च सामो च दुवे सुपाना
पवद्धकाया बलिनो महन्ता,
खादन्ति दन्तेहि अयोमयेहि
इतो पनुण्ण परलोकपत्त ॥१५७॥

[यहाँ से परलोक जाने पर चितकबरे और काले रग के, बडे बडे, बलवान् दो कुत्ते अपने लोहमय दान्तो से खाते हैं ॥१५७॥]

त खज्जमान निरये वसन्त
लुद्देहि वाळेहि अघम्मिगेहि च,
सञ्छिन्नगत्त रुहिर सवन्त
को चोदये परलोके सहस्स ॥१५८॥

[रौद्र, दुष्ट कुत्तों द्वारा खाये जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक मे रहते समय हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१५८॥]

उसूहि सत्तीहि सुनिम्सिताहि
हनन्ति विज्झन्ति च पच्चमित्ता,
काळपकाळा निरयम्हि घोरे
पुब्बे नर दुक्कतकम्मकारिं ॥१५९॥

[कालूपकाल नाम के अमित्र नरक-पाल घोर नरक में दुराचारी मनुष्य को तीरों से तथा तेज शक्ति से मारते हैं तथा बीघते हैं ॥१५९॥]

त हञ्ञमान निरये वजन्तं
कुच्छिस्मिं पस्सस्मिं विफालितुदर,
सञ्छिन्नगत्त रुहिर सवन्त
को चोदये परलोके सहस्स ॥१६०॥

[इस प्रकार मारे जाते समय, नरक मे इधर से उधर भागते समय, कोख तथा बगल के चीर दिये जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक मे हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६०॥]

सत्ती उसू तोमर भेण्डिवाला
विविधा वुध वस्सति तत्थ देवो,
पतन्ति अगारमिवच्चिमन्तो
सिलासनी वस्सति लुद्दकम्मे ॥१६१॥

[वहाँ नरक में देव वाणो की, भालो की, भेण्डिकी तथा अन्य नाना प्रकार के शस्त्रो की वर्षा करते हैं । जो रौद्र-कर्म करनेवाला है उस पर जलते हुए अङ्गार गिरते हैं और शिलाओं की बिजली पडती है ॥१६१॥]

उण्हो च वातो निरयम्हि दुस्सहो
न तम्हि सुख लब्भति इत्तरम्पि,
त त विधावन्तमलेनमातुर
को चोदये परलोके सहस्स ॥१६२॥

[नरक मे असहनीय गर्म हवा चलती है । वहाँ तनिक भी सुख नहीं है । (नरक मे) जहाँ तहा दौडनेवाले से, अशरण से और दुखी से कौन हजार का तकाजा करेगा ॥१६२॥]

सन्धावमान त रथेसु युत्त
सजोतिभूत पठवि कमन्त,
पतोदलट्ठीहि सुचोदियन्त
को चोदये परलोके सहस्स ॥१६३॥

[जलती हुई जमीन पर चलनेवाले रथों मे जुतकर दौडते हुए से, चाबुक मे पीटे जाते हुए से, परलोक मे कौन हजार का तकाजा करेगा ? ॥१६३॥]

तमारुहन्त खुरसञ्चित गिरिं
विभिसन पज्जलित भयानक,
सञ्छिन्नगत्त रुहिर सवन्त
को चोदये पर लोके सहस्स ॥१६४॥

[महा भयानक, प्रज्वलित, खुर-चिह्नित, गिरि पर चढते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त वहते समय, परलोक मे हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६५॥]

तमारुहन्त पब्बतसन्निकास
अगाररासिं जलित भयानक
सन्दट्ठगत्त कपण रुदन्त
को चोदये परलोके सहस्स ॥१६५॥

[भयानक, ज्वलित, अङ्गारो के ढेरवाले पर्वत के पास की भूमि पर चढते समय, जलते हुए शरीर को लेकर दुखी हो रोते समय, परलोक मे हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६४॥]

अब्भकूटसमा उच्चा कण्टकापचिता दुमा,
अयोमयेहि तिक्खेहि नरलोहितपायिहि ॥१६६॥
तमारुहन्ति नारियो नरा च परदारगु
चोदिता सत्तिहत्थेहि यमनिद्देसकारिहि ॥१६७॥

[बादलों के शिखर के समान ऊचे, आदमी का रक्त पीने वाले, लोहे के तेज काण्टो से युक्त पेड हैं । स्त्रियाँ तथा पर-स्त्री गमन करने वाले पुरुषो को उन पर चढना होता है और उन्हे यमके आदेश मे शस्त्रधारी यमराज सेवक चढने के लिये मजबूर करते हैं ॥१६६-१६७॥)

तमारुहन्त निरय सिम्बलि रुहिरमक्खित,
विदड्ठकाय वितच आतुर गाळहवेदन
पस्ससन्त मुहु उण्ह पुब्बकम्मापराधिक,
दुमग्गविटपग्गहत को त याचेय्य त धन ॥१६८॥

[नरक मे लहु माखे हुए सिम्बली-वृक्ष पर चढते हुए से, बदन जलने वाले से, त्वचा रहित से, दुखी से, तीव्र वेदना अनुभव करनेवाले से, बार बार अपने पूर्व जन्म के महान अपराध को देखने वाले से, वृक्ष की शाखा को पकडने वाले तुझसे कौन धन की याचना करेगा ॥१६८॥]

अब्भकूटसमा उच्चा असिपत्ताचिता दुमा,
अयोमयेहि तिक्खेहि नरलोहित पायिहि ॥१६९॥
तमानुपत्त असिपत्तपादप
असीहि तिक्खेहि च छिज्जमाम,
सञ्छिन्नगत्त रुहिर सवन्त
को चोदये परलोके सहस्स ॥१७०॥

[बादलो के शिखर के समान ऊंचे, आदमी का रक्त पीने वाले, तलवार की धार सदृश, लोहे के तेज पत्रो मे युक्त पेड हैं ॥१६९॥ उस असि-पत्र वृक्ष को प्राप्त हो, तेज तलवार से काटे जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त वहते समय परलोक में कौन हजार का तकाजा करेगा ? ॥१७०॥]

ततो निक्खन्तमन्त त असिपत्त निरया दुमा,
सम्पतित वेतरणि को त याचेय्य त धन ॥१७१॥

[उस असि-पत्र-वृक्ष वाले नरक मे निकलकर वेतरणि नदी को पहुचे हुए तुझमे कौन धन की याचना करेगा ? ॥१७१॥]

खरा खारोदिका तत्ता दुग्गा वेतरणी नदी,
अयो पोक्खर सञ्छन्ना तिक्ख पत्तेहि सन्दति ॥१७२॥

[खारी, खारे जलवाली, गर्म, कठिनाई से पार की जा सकने वाली वेतरणी नदी है । यह लोहे के पुष्कर-पत्तो से ढकी हुई होने के कारण तीक्ष्ण-पत्रो से युक्त होकर वहती है ॥१७२॥]

तत्य सुञ्छिन्नगत्त त वुह्यन्त रुहिरमक्खित,
वेतरञ्ञे अनालम्बे को याचेय्य त धन॥१७३॥

[वहाँ क्षत-विक्षत शरीरवाले, रक्त से माखे हुए तुझसे निराश्रित अवस्था में वैतरणी में बहते समय कौन धन मांगेगा ? ॥१७३॥]

बोधिसत्व की यह नरक-कथा सुनी तो राजा डरा और बोधिसत्व की ही शरण खोजता हुआ बोला—

वेधामि रुक्खो विय छिज्जमानो
दिस न जानामि पमूळ्ह सञ्ञी,
भयसानुतप्पामि महा च मे भय
सुत्वान गाथा तव भासिता इसे॥१७४॥
आदित्ते वारिमज्झव
दिप वोघेरिवण्णवे,
अन्धकारेव पज्जोतो
त्व नोसि सरण इसे॥१७५॥
अत्थञ्च धम्मञ्चनुसास म इसे
अतीतमद्धा अपराधित मया,
आचिक्ख मे नारद सुद्धिमग्ग
यथा अह नो निरये पतेय्य॥१७६॥

[हे ऋषि ! तेरी कही हुई गाथाये सुनकर मै कटे वृक्ष की तरह काँप रहा हूँ। मै बेहोश हो गया हूँ। मुझे दिशाये नही सूझती है। मै भय से अनुतप्त हूँ। मुझे बहुत डर लग रहा है॥१७४॥ जिस प्रकार आग लगने पर पानी का मध्य, समुद्र मे बाढ आने पर द्वीप अथवा अन्धेरे में प्रकाश, उसी प्रकार तू मुझे शरण में ले ॥१७५॥ हे ऋषि ! मुझे धर्म की अनुशासना कर, मैंने पूर्व समय में बहुत पाप किया है। हे नारद ! मुझे शुद्ध होने का मार्ग बता जिससे मै नरक मे न पडू ॥१७६॥]

बोधिसत्व ने उसे शुद्धि-मार्ग का उपदेश देते हुए ठीक रास्ते जाने वाले पुराने राजाओ का उदाहरण दिया—

यथा अहू धतरट्ठो
वेस्सामित्तो अट्ठको यामतग्गी,

उसिन्नकोचापि　सिवी　च　राजा
परिचारका　　　समणब्राह्मणान ॥१७७॥
एतेचञ्ञे च राजानो ये सक्कविसय गता
अधम्म परिवज्जेत्वा धम्म　चर महीपति ॥१७८॥
अन्नहत्था च ते व्यम्हे घोसयन्तु पुरे तव,
को छातो को च तसितो को माल को विलेपन,
नाना रत्तान वत्थान को नग्गो　परिदहेस्सति ॥१७९॥
को पन्थे छत्तमादेति पादुका च मुदू सुभा,
इति सायञ्च पातो च घोसयन्तु　पुरे तव ॥१८०॥
जिण्ण पोस गवास्सञ्च मास्सु युञ्जि यथा पुरे,
परिहारञ्च　दज्जासि अधिकारकतो बलि ॥१८१॥

[जैसे धृतराष्ट्र हुआ, विश्वामित्र हुआ, अट्टक हुआ, जमदग्नि हुआ, उशीनर हुआ, शिवी हुआ,—सभी श्रमण-ब्राह्मणो के सेवक हुए ॥१७७॥ ये और दूसरे राजा जो शक्रत्व को प्राप्त हुए, उन्ही की तरह हे राजन् ! आप भी अधर्म का त्याग कर धर्माचरण करे ॥१७८॥ तेरे नगर मे और तेरे महल मे लोग हाथ मे अन्न लिये ये घोषणाये करते हुए घूमें—कौन भूखा है ? कौन प्यासा है ? किसे माला चाहिये ? किसे लेप चाहिये ? कौन नगा नाना-वर्ण के वस्त्र धारण करेगा ? कौन मार्ग में छत्र धारण करना चाहेगा ? किसे अच्छी, मृदु पादुकाओ की आवश्यकता है ? इस प्रकार की घोषणाये प्रात -साय होनी चाहिये ॥१७९-१८०॥ जो बूढे आदमी हो अथवा बूढे बैल हो उन्हे पहले की तरह काम पर मत लगा। उन्हे जो-जो मिलता रहा है वह पूर्ववत् मिलना चाहिये। क्योकि शरीर मे सामर्थ्य रहते समय उन्होने यह अधिकार प्राप्त किया है ॥१८१॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को दान-कथा तथा सदाचार का उपदेश दे सोचा कि यह राजा रथ के साथ अपनी उपमा दिये जाने से सन्तुष्ट होगा, इसलिये इसे सब कामनाओ की पूर्ति करनेवाले रथ की उपमा देकर धर्मोपदेश दूगा। उन्होने कहा—

कायो ते रथसञ्ञातो　मनोसारथिको लहु,
अविहिसा　सारितक्खो　सविभागपटिच्छदो ॥१८२॥

पादसयम नेमियो हत्थसञ्ञम पक्खरो,
कुच्छिसञ्ञमनब्भन्तो वाचासञ्ञम कूजनो ॥१८३॥
सच्चवाक्यसमत्तगो अपेसुञ्ञसुसञ्ञतो,
गिरासखिलनेलगो मितमाणीसिलेसितो ॥१८४॥
सद्धा लोभ सुसखारो निवातञ्जलिकुब्बरो,
अत्थद्धतान तीसाखो सीलसवरनन्धनो ॥१८५॥
अक्कोधनमनुग्घातो धम्मपण्डर छत्तको,
बाहुसच्चमपालम्बो ठितचित्तमुपाधियो ॥१८६॥
कालञ्ञुता चित्तसारो वेसारज्जतिदण्डको,
निवातवुत्ति योत्तको अनतिमान युगो लहु ॥१८७॥
अलीनचित्तसन्थारो वद्धसे वीरजोहतो,
सतिपतोदो धीरस्स धिति योगो च रस्मियो ॥१८८॥
पतोदन्तपथत्वेति समदन्तेहि वाहिभि,
इच्छा लोभो च कुम्मग्गो उजुमग्गो च सञ्ञमो ॥१८९॥
रूपे सद्दे रसे गन्धे वाहनस्स पधावतो,
पञ्ञा आकोटनो राज तत्थ अत्ताव सारथि ॥१९०॥
सचे एतेन यानेन समचरियादळ्हाधिति,
सब्बकामदुहो राज न जातु निरय वजे ॥१९१॥

[तेरा शरीर रथ के सामन है, मन, हलका-मन सारथि के समान ह , अविहिंसा श्रेष्ठ अक्ष हो और दान देना (रथ का) परदा हो ॥१८२॥ पाँव का सयम नेमि हो, हाथ का सयम किनारा हो, पेट का सयम तेल हो, और वाणी का सयम (रथ का) स्थापन हो ॥१८३॥ सत्य-वाणी रूपी (रथो के) अङ्गो की सम्पूर्णता हो, चुगली का अभाव रूपी चिकनापन हो, निर्दोषवाणी रूपी निर्दोपता हो, अल्पभाषण रूपी जोड हो ॥१८४॥ श्रद्धा तथा अलोभ रूपी अलकारो मे अलकृत हो, विनम्रता रूपी वाँस से युक्त हो, कोमलता रूपी थोडे झुके हुए वाँस से युक्त हो और शील-सयम रूपी रस्सी से बँधा हो ॥१८५॥ अक्रोध-रूपी स्थिरता से युक्त हो, धर्म रूपी श्वेत-छत्र से युक्त हो, बहुश्रुत भाव रूपी पहियो के रोकने के यन्त्र से युक्त ह , स्थिरचित्त भाव रूपी ऊपर के वस्त्र से युक्त हो ॥१८६॥ काल-ज्ञान रूपी चित्त के सारभाव से युक्त हो, वैशारद्य रूपी त्रिदण्डों से युक्त हो,

शान्त-भाव रूपी जोत से युक्त हो, अभिमान के अभाव रूपी हलके जुए से युक्त हो ।।१८७।। चेतनता युक्त चित्त रूपी आस्तरण वाला हो, (ज्ञान-) वृद्ध आदि पुरुषों का सेवा भाव रूपी धूल-नाशक हो, धैर्यवान् की स्मृति रूपी हाँकने की पैणी हो, और धृति-योगरूपी रश्मियाँ हो ।।१८८।। शिक्षित घोडो की भान्ति सयत मन सुमार्ग पर जाता है । इच्छा तथा लोभ कुमार्ग है और सयम सुमार्ग है ।।१८९।। हे राजन् ! रूप, शब्द, रस तथा गन्ध के पीछे दौडने वाले रथ को रोकने वाली प्रज्ञा है और अपना-आप ही रथ का सारथी है ।।१९०।। यदि इस (शरीर रूपी) रथ से सम्यक् आचरण किया जाय और धृति दृढ रखी जाय तो यह रथ सभी कामनाओ का पूर्ण करने वाला होने से, निश्चय से नरक नही जाता ।।१९१।।]

इस प्रकार उसे धर्मोपदेश दे, मिथ्या-दृष्टि दूरकर, शील मे प्रतिष्ठित कर, 'अबसे कुसगति छोड, भलि सगति मे रहना, नित्य अप्रमादी होकर रहना' उपदेश दे, राज-कन्या के गुण कह, राज-परिषद तथा राज-रनिवास को उपदेश दे, बडे प्रताप से उनके देखते ही देखते बोधिसत्व ने ब्रह्म-लोक की यात्रा की ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी मैंने मिथ्या-दृष्टि का जाल छेद उरुवेल काश्यप का दमन किया ही था' कह जातक का मेल बैठाया और अन्त मे य गाथाये कही—

> अलातो देवदत्तोसि सुनामो आसि भद्दजि,
> विजयो सारिपुत्तोसि मोग्गल्लानोसि बीजको ।।१९२।।
> सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो गुणो आसि अचेलको,
> आनन्दो च रुजा आसि या राजान पसादयि ।।१९३।।
> उरुवेल कस्सपो राजा पापदिट्ठि तदा अहु,
> महाब्रह्मा बोधिसत्तो एव धारेथ जातक ।।१९४।।

[अलात देवदत्त था, सुनाम भद्दजि था, विजय सारिपुत्र था, मोग्गल्लान बीजक था ।।१९२।। सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र था, गुण अचेलक था, आनन्द रुजा था जिसने राजा को प्रसन्न किया ।।१९३।। उरुवेल काश्यप उस समय राजा था जिस की मिथ्या-दृष्टि हो गई थी और महाब्रह्मा तो बोधिसत्व ही था—इस प्रकार यह जातक समझनी चाहिये ।।१९४।।]

५४५. विधुर जातक

"पण्डुकिसियासि दुब्बला " यह कथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो, शास्ता महा प्रज्ञावान् है, विस्तृत प्रज्ञावाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञावाले हैं, शीघ्र प्रज्ञावाले हैं, तीक्ष्ण प्रज्ञावाले हैं, उनकी प्रज्ञा बींधनेवाली है, दूसरे के मत का खण्डन करने वाले हैं, वे अपने प्रज्ञाबल से क्षत्रिय पण्डितों आदि द्वारा लाये गये सूक्ष्म प्रश्नों का समाधान कर उन्हें विनम्र बना, (त्रि) शरण तथा (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, निर्वाण की ओर जानेवाले मार्ग पर आरूढ कर देते हैं।' शास्ता ने आकर पूछा — 'भिक्षुओ, अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ, इसमें क्या आश्चर्य है यदि तथागत पर बुद्धत्व को प्राप्त कर, दूसरों के मत का खण्डन कर, क्षत्रिय आदि को विनीत बनाते हैं, पूर्व-समय में जब अभी बोधि-ज्ञान की खोज में ही लगे थे तब भी तथागत प्रज्ञावान् और दूसरो के मतों का मन्थन करने वाले ही थे। मैंने विधुर-कुमार होने के समय भी साठ योजन ऊंचे काले पर्वत के शिखर पर रहने वाले पुण्णक नाम यक्ष सेनापति को ज्ञान-बल से जीत, विनम्र बना अपने प्राणों की रक्षा की।" कहा। फिर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कुरु राष्ट्र में इन्द्र-प्रस्थ नगर में धनञ्जय नामका कौरव्य राज्य करता था। विधुर-पण्डित नाम का उसका अमात्य था, अर्थ-धर्मानुशासक। वह मधुर-भाषी था, महान धार्मिक वक्ता। उसने सारे जम्बुद्वीप के राजाओ को अपने धार्मिक उपदेश से उसी प्रकार लुभा रखा था जैसे हस्तिकान्त वीणा के मधुर-स्वर से हाथी मुग्ध रहते हैं। वह उन्हें अपने राज्यों तक में जाने नहीं देता था। वह बुद्ध-लीला से जनता को धर्मोपदेश देता हुआ बड़ी शान से उस नगर में रहता था।

वाराणसी में ही उसके चार गृहस्थ ब्राह्मण मित्रों ने काम-भोगों में दोष देख, हिमालय में प्रवेश कर, ऋषि प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर अभिज्ञा तथा समापत्तियां

प्राप्त कर वन-फूल खाते हुए चिरकाल तक वहीं रहे ।,फिर नमक-खटाई खाने के लिये, चारिका करते हुए अङ्ग राष्ट्र के काळ चम्पा नगर में पहुच, राजोद्यान में रह, अगले दिन नगर में भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया । वहाँ चार गृहस्थ मित्र उनकी चर्य्या पर प्रसन्न हुए उन्होंने उनके भिक्षा-पात्र लिये और एक-एक को अपने अपने घर ले जा प्रणीत भोजन कराया और उन्हे प्रतिज्ञा-बद्ध कर उद्यान में ही रखा । चारो तपस्वी चारो गृहस्थो के घर भोजन कर चुकने पर दिन में विश्राम करने के लिये चार भिन्न-भिन्न स्थानो पर जाते । एक त्रयोत्रिंश भवन एक नाग-भवन, एक गरुड भवन, और एक कोरव्य राजा के मृगोद्यान जाता ।

उनमें से जो देवलोक जाकर दिन गुजारता वह शक्र का ऐश्वर्य्य देख अपने सेवक से उसी का बखान करता । जो नाग-भवन जाकर दिन गुजारता वह नाग-राज की सम्पत्ति देख अपने सेवक से उसी का वर्णन करता, जो गरुड-भवन जाकर दिन गुजारता वह गरुड-राज की विभूति देख अपने सेवक से उसी का वर्णन करता । जो कोरव्य के उद्यान में दिन गुजारता वह धनजय-राज की श्री-शोभा देख, अपने सेवक से उसी की महिमा गाता । उन चारो जनो ने उस उस देव-स्थान की कामना की । दानादि पुण्य कर, आयु की समाप्ति पर एक शक्र होकर पैदा हुआ, एक पुत्र द्वारा सहित नाग-भवन में पैदा हुआ, एक सिम्बलीदह विमान में गरुड-राज होकर पैदा हुआ । एक धनजय राजा की पट-रानी की कोख से पैदा हुआ । वे भी तपस्वी ब्रह्म-लोक में पैदा हुए ।

कोरव्य-कुमार बडा होने पर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ और धर्मानुसार राज्य करने लगा । हाँ, उसे जुए में आनन्द आता था । वह विधुर पण्डित के उपदेशानुसार चल दान देता, शील की रक्षा करता और उपोसथ-व्रत रखता । एक दिन जब उसने उपोसथ-व्रत रखा था, एकान्त-सेवन की इच्छा से उद्यान में आया और सुन्दर-स्थान पर बैठकर श्रमण-धर्म करने लगा । शक्र ने भी उपोसथ-व्रत रखा था । उसने भी 'देव-लोक विघ्न होता है' सोच, उसी उद्यान में पहुच, सुन्दर स्थान पर बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया । वरुण नाग-राज ने भी उपोसथ-व्रत रखा और 'नाग-भवन में विघ्न होता है' समझ, वही पहुच एक सुन्दर जगह बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया । गरुड-राज ने भी उपोसथ-व्रत रखा और 'गरुड-भवन में विघ्न होता है' समझ, वही पहुच एक जगह बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया ।

वे चारो जने शाम को अपने-अपने स्थान मे निकले और मङ्गल पुष्करिणी के किनारे इकट्ठे हुए। वे परस्पर एक दूसरे को देखते हुए पूर्व-स्नेह के कारण एक-चित्त तथा प्रमुदित मन हुए और परस्पर मैत्री-भाव स्थापित कर मधुरता के साथ एक दूसरे का कुशल-क्षेम पूछने लगे। शक्र मङ्गल-शिला पर बैठा। दूसरे भी अपने अपने योग्य स्थान पर बैठे। शक्र ने प्रश्न किया—"हम चारो जने राजा हैं। किन्तु हममे से किसका शील बडा है?" वरुण नागराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे तीनो जनो के शील मे मेरा शील बडा है। इसका कारण क्या है? यह गरुड-राज हमारे जाति के उत्पन्न और अनुत्पन्न सभी का शत्रु है। मैं अपने ऐसे जीवन-नाशक शत्रु को देखकर भी क्रोध नहीं करता हूं। इस कारण से मेरा शील बडा है—

यो कोपनेय्ये न करोति कोप
न कुज्झति सप्पुरिसो कदाचि,
कुद्धोपि यो नाविकरोति कोप
त वे नर समण आहु लोके ॥१॥

[जो क्रोध के भाजन पर भी क्रोध नही करता है, जिस सत्पुरुष को कभी क्रोध नही आता और जो क्रुद्ध होने पर भी क्रोध प्रकट नही करता, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥१॥]

'मुझमें ये गुण हैं, इसलिए मेरा ही शील बडा है।' यह सुन गरुड-राज ने सोचा, 'यह नाग मेरा अग्र-भोजन है। मैं इस प्रकार के अग्र-भोजन को देखते हुए भी और भूख को सहन करके खाने के लिये पाप नही करता हूँ। इसलिये मेरा शील ही बडा है।' वह बोला—

ऊनूदरो यो सहते जिघच्छ
दन्तो तपस्सी मितपाण भोजनो,
आहारहेतु न करोति पाप
त वे नर समण आहु लोके ॥२॥

[जो दबे पेट वाला भूख सह लेता है, जो सयत, तपस्वी, सीमित भोजन करने वाला भोजन के लिये पाप नही करता है, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥२॥]

तब शक्र देवेन्द्र ने 'मैं नाना प्रकार की सुखद देव-लोक सम्पत्ति को छोडकर शील की रक्षा करने के लिये मनुष्य-लोक में आया हूं, इसलिये मेरा शील बडा है' कह गाथा कही—

खिड्ड रति विप्पजहेत्व सब्ब
न चालिक भासति किञ्चि लोके,
विभूसनट्ठाना विरतो मेथुनस्मा
तं वे नर समण आहु लोके॥३॥

[सब क्रीडा-रति छोडकर जो दुनिया में कुछ भी झूठ नहीं बोलता और जो भूषणादि से तथा मैथुन से दूर रहता है, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥३॥]

यह सुन धनञ्जय-राज ने 'मैं आज महान परिग्रह सोलह हजार नर्तकी स्त्रियों से भरे रनिवास को छोडकर उद्यान में श्रमण-धर्म करता हूं, इसलिये मेरा शील बडा है' कह यह गाथा कही—

परिग्गह लोभधम्मञ्च सब्ब
ये व परिञ्ञाय परिच्चजन्ति,
दन्त ठितत्त अभय निरास
त वे नर समण आहु लोके॥४॥

[सभी परिग्रह तथा लोभ-धर्म को जो जानकर छोड देते हैं, जो सयत है, स्थिर हैं, ममत्व रहित हैं, आसक्ति-रहित हैं, ऐसे आदमियो को ही लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥४॥]

इस प्रकार उन सबने अपने अपने शील की बडाई कर चुकने के अनन्तर धनञ्जय से पूछा—"महाराज ! क्या आपके पास कोई पण्डित है जो इस सन्देह की निवृत्ति करे ?"

'हाँ, महाराजाओ ! मेरा अर्थ-धर्मानुशासक अनूपम विधुर पण्डित है । वह हमारे सन्देह को मिटा देगा । उसके पास चले ।"

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया । तब सभी उद्यान से निकल धर्म-सभा मे जा, (उसे) सजवा, बोधिसत्व को श्रेष्ठ आसन के बीच मे बिठा, कुशल-क्षेम

पूछ, एक ओर बैठे और कहा—"पण्डित ! हमारे मन में सन्देह उत्पन्न हो गया है, उसे दूर कर।" उन्होंने गाथा कही—

पुच्छाम कत्तार अनोमपञ्ञ
गाथासु नो विग्गहो अत्थि जातो,
छिन्दज्ज कङ्खं विचिकिच्छितानि
तदज्ज कङ्खं वितरेमु सब्बे ॥५॥

[हम तुझ (कर्तव्य बोध) करानेवाले, महाप्रज्ञ से पूछते हैं। हमारी गाथाओं में विरोध पैदा हो गया है। हमारे सन्देह को, हमारे शक को मिटा ताकि हम सब सन्देह के पार हो ॥५॥]

पण्डित ने उनकी बात सुनी तो 'महाराज ! मैं आप लोगों की शील-सम्बन्धी गाथाओं के बारे मे कैसे जानूगा कि कौन सुकथित है और कौन दुकथित है ?' कह, यह गाथा कही—

ये पण्डिता अत्थदसा भवन्ति
भासन्ति ते योनिसो तत्थ काले,
कथन्नु गाथान अभासितान
अत्थं नयेय्यु कुसला जनिन्द ॥६॥

[जो अर्थ-दर्शी पण्डित होते हैं, वे समय पर विचार कर बोलते हैं। हे जनिन्द ! पण्डित-जन भी बिना बताई गई गाथाओं के बारे मे कैसे कह सकते हैं ? ॥६॥]

फिर पूछा—

कथं हवे भासति नागराजा
कथं पन गरुळो वेनतेय्यो
गन्धब्बराजा पन किं वदेति
कथं पन कुरुन राजसेट्ठो ॥७॥

[नागराज क्या कहता है ? गरुड क्या कहता है ? गन्धर्व राज क्या कहता है और कौरव राज-श्रेष्ठ क्या कहता है ? ॥७॥]

उसे उन्होंने यह गाथा कही—

खन्ति हवे भासति नागराजा
अप्पाहारं गरुळो वेनतेय्यो,

गन्धब्बराजा रतिविप्पहान
अकिञ्चन कुरुन राजसेट्ठ॥८॥

[नागराज 'शान्ति' की बात करता है, गरुड अल्पाहार की महिमा गाता है, गन्धर्व-राज रति-त्याग की और कौरव राज-श्रेष्ठ अकिञ्चन होने की ॥८॥]

उनकी बात सुन बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

सब्बानि एतानि सुभासितानि
न हेत्थ दुब्भासितमत्थि किञ्चि,
यस्मिञ्च एतानि पतिट्ठितानि
ऊराव नाभ्या सुसमोहितानि
चतुब्भि धम्मेहि समगिभूत
त वे नर समण आहु लोके॥९॥

[ये सभी सुभाषित है। इनमे दुर्भाषित कोई नही। जिस प्रकार चक्र की नाभि में उसके डण्डे सुप्रतिष्ठित रहते है, उसी प्रकार जिस व्यक्ति मे ये चारों बाते है अर्थात् जो आदमी इन चारो बातों से युक्त है, उसे लोक में 'श्रमण' कहते है ॥९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चारो के शील को बराबर ठहराया। यह सुन चारो जने उस पर प्रसन्न हुए और उसकी प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

तुवञ्नु सेट्ठो त्वमनुत्तरोसि
त्व धम्मगु धम्मविदू सुमेधो
पञ्ञाय पञ्ह'समधिग्गहेत्वा
अच्छेच्छि धीरो विचिकिच्छितानि
अच्छेच्छि कख विचिकिच्छितानि
चुन्दो यथा नागदन्त खरेन॥१०॥

[तू श्रेष्ठ है। तू अनूपम है। तू धर्मज्ञ है। तू धर्म का जानकार है। तू मेधावी है। तूने प्रज्ञा से प्रश्नो को ग्रहण कर हमारे सन्देह को उसी प्रकार काट दिया जैसे चुन्द (दन्तकार) ने आरी से हाथी के दान्त को ॥१०॥]

इस प्रकार वे चारों जने उसके शका-समाधान से सतुष्ट हुए। शक्र ने उसकी दिव्य-वस्त्र से पूजा की। गरुड ने स्वर्ण-माला से, नागराज वरुण ने मणि से और धनञ्जय-राज ने हजार गौवों आदि से। उन्होने कहा—

नीलुप्प लाम विमल अनग्घ
वत्थ इम धूमसमानवण्ण
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते धम्मपूजाय धीर ॥११॥

[नीलोत्पल जैसी चमकवाला, निर्मल, मूल्यवान, धूम्र के समान वर्ण वाला यह वस्त्र हे धीर पुरुष ! मै तेरे शका-समाधान से सन्तुप्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥११॥]

सुवण्णमाल सतपतफुल्लं
सकेसर रतनसहस्समण्डित
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते धम्मपूजाय धीर ॥१२॥

[स्वर्ण-माला जिसमे, कवल लगे है, जो केशर-सहित है, और जिसमे हजार रतन जडे है, हे धीर पुरुष !, मै तेरे शका-समाधान से सन्तुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप मे देता हूँ ॥१२॥]

मणि अनग्घ रुचिर पभस्सर
कण्ठावसत्त मणिभूसित मे,
पञ्हस्स ... ॥१३॥

[मूल्यवान, सुन्दर, चमकदार मणि है, यह कण्ठ से उतारी गई है, यह मेरा भूषण है, हे धीर पुरुष ! मै तेरे शका समाधान से सतुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥ ॥१३॥]

गव सहस्स उसभञ्च नाग
आजञ्ञ युत्तेच रथे दस इमे
पञ्हस्स ... .. ॥१४॥

(हजार गौवे, बैल, सभी हाथी और श्रेष्ठ घोडे जुते ये दस रथ, हे धीर-पुरुष ! मै तेरे शका-समाधान से सतुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप मे देता हूँ ॥१४॥]

शक्रादि बोधिसत्व की पूजा कर अपने-अपने घर चले गये ।

चतु-उपोसथ काण्ड समाप्त ।

उनमे मे नागराज की भार्य्या का नाम विमला देवी था। उसने जब उसके गले मे मणि नही देखी तो प्रश्न किया—

"देव! आपकी मणि कहाँ है?"

"भद्रे! चन्द्र-ब्राह्मण पुत्र विधुर पण्डित की धर्म-कथा सुन, श्रद्धावान हो, मैंने उस मणि से उसकी पूजा की। न केवल मैंने ही पूजा की। शक्र ने भी उसकी दिव्य-वस्त्रो से पूजा की। गरुड़-राज ने स्वर्ण-माला मे और धनञ्जय-राज ने हजार गौओ आदि से।"

"देव! वह धार्मिक-वक्ता है!"

"भद्रे! क्या कहती है! जम्बु द्वीप मे बुद्धोत्पाद का सा समय है। सारे जम्बु द्वीप के एक सौ राजा उसकी मधुर वाणी से ऐसे बधे हुए है जैसे हस्ति-कान्त वीणा के स्वर से बँधे हुए मस्त हाथी। वे अपने राज्यो को भी नही जाते है। वह ऐसा मधुरभाषी है।"

उसने विधुर-पण्डित का गुण सुना तो उसके मन मे उसका धार्मिक-भाषण सुनने की इच्छा हुई। उसने सोचा—"यदि मै कहूँगी देव! मै उसका धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, उसे यहाँ लाये, तो यह उसे नही लायेगा। मै 'दोहद' उत्पन्न हुआ है, कहकर रोगी होने का बहाना करूगी।" उसने वैसा ही किया और सेविकाओं को सकेत कर जाकर लेट रही।

नागराजा ने सेवा मे आने के समय जब विमला को नही देखा तो सेविकाओ से पूछा—

"विमला कहाँ है?"

"देव! रोगिणी है।"

वह उसके पास गया ओर शैय्या के किनारे बैठ उसका शरीर मलते हुए उसने पहली गाथा कही—

पण्डुकिसियासि दुब्बला
वण्णरूप न तवेदिस पुरे,
विमले अक्खाहि पुच्छिता
कीदिसी तुय्ह सरीरवेदना॥१॥

[तू पाण्डु-वर्ण हो रही है, तू दुर्बल हो गई है। तेरा रंग-रूप पहले ऐसा नही था। हे विमला! मैं तुझे पूछता हूं—तू कह। तुझे क्या शरीर-कष्ट है? ॥१॥]

उसने दूसरी गाथा द्वारा उसे उत्तर दिया—

धम्मो मनुजेसु मानिन
दोहळो नाम जनिन्द वुच्चति,
धम्माहट नागकुञ्जर
विधुरस्स हदयाभिपत्थये ॥२॥

[मनुष्य-योनि में स्त्रियों का यह स्वभाव है कि हे जनेन्द्र! उन्हे 'दोहद' उत्पन्न होता है। हे नाग-श्रेष्ठ! मै धर्मानुसार लाये गये विधुर-पण्डित का हृदय चाहती हूँ ॥२॥]

यह सुन नागराजा ने तीसरी गाथा कही—

चन्द खो त्वं दोहळायसि
सुरियं वा अथवापि मालुतं,
दुल्लभे हि विधुरस्स दस्सने
को विधुर इधमानयिस्सति ॥३॥

[तेरे मन में 'चन्द्रमा' के लिये 'दोहद' उत्पन्न हुआ है अथवा सूर्य्य के लिये, अथवा वायु के लिये। जब विधुर का दर्शन ही दुर्लभ है, तो विधुर को यहाँ कौन लायेगा? ॥३॥]

उसने उसकी बात सुनी तो बोली—"नही मिलने से मेरा यहीं मरना निश्चित है।" उसने अपनी पीठ फेर ली और वस्त्र के कोने से मुह पोंछ पड रही।

नागराजा अपने भवन में लौटा तो शैय्या पर पडा-पडा यह समझकर कि विमला विधुर-पडित का हृदय-मास चाहती है और यदि हृदय-मास नही मिलेगा तो वह जीती नही रहेगी, सोचने लगा—"उसका हृदय-मास कैसे प्राप्त करू?" उसकी इरन्दति नामकी नाग-कन्या थी। वह सभी अलकारो से अलकृत हो बडी सजधज के साथ सेवा मे आई और पिता को नमस्कार कर एक ओर खडी हो गई। जब उसने उसकी विकृत शकल देखी, तो 'तात! आप बहुत दुखी है। क्या कारण है?' पूछते हुए उसने गाथा कही—

किन्नु तात तुव सन्धायसि
पदुम हत्थगतव ते मुख,
किं दुम्मनरूपोसि इस्सर
मा त्वं सोचि अमित्ततापना ॥४॥

[हे तात ! आप क्या चिन्ता कर रहे हैं। आपका चेहरा हाथ में लिये म्लान कमल के समान है। हे राजन् ! आप का रूप विकृत क्यों है? हे शत्रुओं को ताप देनेवाले ! आप क्या सोच रहे हैं? ॥४॥]

लडकी का कहना सुना तो नाग-राज ने उसे प्रत्युत्तर देते हुए कहा—

माता हि तव इरन्दति
विधुरस्स हदय धनीयति
दुल्लभो हि विधुरस्स दस्सने
को विधुर इधमानयिस्सति ॥५॥

[हे इरन्दति ! तेरी माता विधुर के हृदय की इच्छा करती है। विधुर का दर्शन ही दुर्लभ है। विधुर को कौन यहाँ लायेगा? ॥५॥]

वह बोला, "अम्म ! मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं विधुर को ला सकूँ। तू माता को जीवन दे। किसी ऐसे 'पति' की तलाश कर जो विधुर को ला सके।" उसने उसे प्रेरित करते हुए आधी गाथा कही—

भत्तुपरियेसन चर,
यो विधुर इधमानयिस्सति।

[ऐसे पति की खोज कर जो विधुर को यहाँ ला सके ॥]

राग के वश में होने से उसने लडकी को न कहने योग्य बात भी कही।

पितुनो च सा सुत्वान वाक्य,
रत्ति निक्खम्म अवस्सुतिञ्चरि ॥६॥

[पिता की बात सुन वह रात को ही निकल 'पति' की खोज में विचरने लगी ॥६॥]

विचरते हुए उसने हिमालय में जो वर्ण-गन्ध-रस सम्पन्न पुष्प थे उन्हें लिया और सारे पर्वत को अनर्घ मणि की तरह सजाकर, ऊपर पुष्पों का आसन बना, सुन्दर प्रकार से नाचते हुए, मधुर-गीत गाते हुए सातवी गाथा कही—

के गन्धब्बे च रक्खसे
नागे किम्पुरिसे च मानुसे,
के पण्डिते सब्बकामदे
दीघरत्त भत्ता मे भविस्सति ॥७॥

[गन्धर्वों, राक्षसो, किम्पुरुषों तथा मनुष्यों में कौन ऐसा पण्डित है जो मेरी सब कामनाओं को पूरा कर दे। चिरकाल तक मेरा स्वामी बने ? ॥७॥]

उस समय कुबेर (=वैश्रवण) महाराज का पुण्णक नामका भानजा जो यक्ष सेनापति था, तीन गव्यूति मनोमय-सिन्धु पारकर काळ पर्वत के ऊपर से मनो शिलातल पर होनेवाले यक्ष-सम्मेलन में जा रहा था। उसने उसका गाना सुना। क्योंकि उसने अपने पहले के जन्म मे उस स्त्री से सम्बन्ध किया था, इसलिये उसका स्वर उसकी चमड़ी आदि पारकर हड्डी तक जा पहुंचा। आसक्त हो जाने के कारण वह रुका और उसने सिन्धु पर बैठे ही बैठे कहा—"भद्रे! मैं अपनी प्रज्ञा से न्याय से, शान्ति से विधुर का हृदय ला सकता हूँ। चिन्ता मत कर।"

उसने उसे आश्वस्त करते हुए आठवी गाथा कही।—

अस्सास हेस्सामि ते पति
भत्ता हेस्सामि अनिन्द लोचने,
पञ्ञा हि मम तथा विज्जा
अस्सास हेस्ससि भरिया मम ॥८॥

[आश्वस्त रह। मैं तेरा पति बनूगा। हे अनिन्दित-लोचन! मैं तेरा स्वामी बनूगा। मेरी प्रज्ञा ही ऐसी है। विश्वस्त रह, तू मेरी भार्या बनेगी ॥८॥]

अथ न अब्रवासि इरन्दती
पुब्बपथानुगतेन चेतसा,
एहि गच्छाम पितु ममन्तिके
एसोव ते एतमत्थ पवक्खति ॥९॥

[तब पूर्व-जन्म की अनुभूति के कारण इरन्दति ने उसे कहा—"आ, मेरे पिता के पास चलें। वही तुझे इस विषय में कहेगा ॥९॥]

अलङ्कता सुवसना मालिनी चन्दनुस्सदा,
यक्ख हत्थे गहेत्वान पितुसन्तिकमुपागमि ॥१०॥

[अलंकृत, सुवस्त्र तथा मालायें पहने हुए, चन्दन-धारिणी वह यक्ष को हाथ से पकड़ पिता के पास ले गई ॥१०॥]

पुण्णक यक्ष भी लौट पड़ा और नागराज के पास पहुंच उसने इरन्दति को पत्नि-रूप में चाहते हुए गाथा कही—

नागवर वचो सुणोहि मे
पतिरूपं पटिपज्ज सुङ्कियं,
पत्थेमि अहं इरन्दतिं
ताय समङ्गि करोहि मे तुवं ॥११॥
सतं हत्थी सतं अस्सा सतं अस्सतरी रथा,
सतं वळभियो पुण्णा नाना रतनस्स केवला,
ते नाग पटिपज्जस्सु धीतरं देहि इरन्दतिं ॥१२॥

[हे नाग-श्रेष्ठ! मेरी बात सुन। मुझसे स्त्री का योग्य मूल्य ले। मैं इरन्दति को चाहता हूं। तू उसे मेरी संगिनी कर दे ॥११॥ सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ खच्चरें, और नाना रत्नों के भरे सौ छतवाले रथ ले ले और मुझे अपनी लड़की इरन्दति दे दे ॥१२॥]

नागराज ने उत्तर दिया—

याव आमन्तये ञाती मित्ते च सुहद जनं,
अनामन्तकतं कम्मं तं पच्छामनुतप्पति ॥१३॥

[जब तक मैं अपने रिश्तेदारों, मित्रों तथा सुहृदजनों को न पूछ लूं, तब तक प्रतीक्षा करो। सम्बन्धियों को बिना निमन्त्रण दिये यदि कोई कार्य्य किया जाता है तो पीछे पछताना पड़ता है ॥१३॥]

ततो सो वरुणो नागो पविसित्वा निवेसनं,
भरियं आमन्तयित्वान इदं वचनमब्रवि ॥१४॥
अयं सो पुण्णको यक्खो याचती मं इरन्दतिं
बहुना वित्तलाभेन तस्स देम पियं ममं ॥१५॥

[तब वह वरुण नाग घर में गया और अपनी भार्य्या को सम्बोधित कर यह बात कही। ॥१४॥ यह पूर्ण यक्ष मुझसे इरन्दति मांगता है। इससे बहुत सा धन लेकर हम इसे अपनी प्रिय कन्या दे दें? ॥१५॥]

विमला बोली—

न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्हं इरन्दती,
स चे हि वो हदयं पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेय्य,
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा
नाञ्ञ धन उत्तरि पत्थयाम ॥१६॥

[हमने धन से अथवा सम्पत्ति से इरन्दति को प्राप्त नही किया है। यदि वह न्याय से, शान्ति से पण्डित के हृदय को यहाँ ला सके तो इस धन से उसे कुमारी प्राप्त हो सकती है। इससे अधिक हम और कोई धन नही चाहते ॥१६॥]

ततो सो वरुणो नागो निक्खमित्वा निवेसनं,
पुण्णकामन्तमित्वात इद वचनमब्रवि ॥१७॥
न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्ह इरन्दती
सचे तुव हदय पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेसि
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा
नाञ्ञ धन उत्तरि पत्थयाम ॥१८॥

[तब वह वरुण नाग घर में से निकला और उसने पुण्णक को बुलाकर यह बात कही ॥१७॥ हमे इरन्दति न धन से मिली है और न सम्पत्ति से। यदि तू बिना जोर-जबर्दस्ती किये पण्डित का हृदय यहाँ ला सके तो तुझे इतने धन से कुमारी मिल जायगी। हम इससे अधिक ओर धन नही चाहते ॥१८॥]

पुण्णक बोला—

य पण्डितोत्येके वदन्ति लोके
तमेव बालोति पुनाहु अञ्ञे,
अक्खाहि मे विप्पवदन्ति एत्थ
क पण्डित नाग तुव वदेसि ॥१९॥

[लोक में जिसे कुछ लोग 'पण्डित' कहते हैं, उसे ही दूसरे 'मूर्ख' कहते हैं। हे नाग! मुझे बता कि तू किसे 'पण्डित' कहता है? ॥१९॥]

[अलङ्कृत, सुवस्त्र तथा मालायें पहने हुए, चन्दन-धारिणी वह यक्ष को हाथ से पकड़ पिता के पास ले गई ॥१०॥]

पुण्णक यक्ष भी लौट पड़ा और नागराज के पास पहुंच उसने इरन्दति को पति-रूप में चाहते हुए गाथा कही।—

नागवर वचो सुणोहि मे
पतिरूपं पटिपज्ज सुंकिय,
पत्थेमि अहं इरन्दति
ताय समगि करोहि मे तुव ॥११॥
सतं हत्थी सतं अस्सा सतं अस्सतरी रथा,
सतं वळभियो पुण्णा नाना रतनस्स केवला,
ते नाग पटिपज्जस्सु धीतरं देहि इरन्दति ॥१२॥

[हे नाग-श्रेष्ठ ! मेरी बात सुन । मुझसे स्त्री का योग्य मूल्य ले । मैं इरन्दति को चाहता हूँ । तू उसे मेरी संगिनी कर दे ॥११॥ सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ खच्चरे, और नाना रत्नों के भरे सौ छतवाले रथ ले ले और मुझे अपनी लड़की इरन्दति दे दे ॥१२॥]

नागराज ने उत्तर दिया—

याव आमन्तये ञाती मित्ते च सुहद जनं,
अनामन्तकतं कम्मं तं पच्छामनुतप्पति ॥१३॥

[जब तक मैं अपने रिश्तेदारों, मित्रों तथा सुहृदजनों को न पूछ लूं, तब तक प्रतीक्षा करो । सम्बन्धियों को बिना निमन्त्रण दिये यदि कोई कार्य्य किया जाता है तो पीछे पछताना पड़ता है ॥१३॥]

ततो सो वरुणो नागो पविसित्वा निवेसनं,
भरियं आमन्तयित्वान इदं वचनमब्रवि ॥१४॥
अयं सो पुण्णको यक्खो याचती मं इरन्दति
बहुना वित्तलाभेन तस्स देम पियं ममं ॥१५॥

[तब वह वरुण नाग घर में गया और अपनी भार्य्या को सम्बोधित कर यह बात कही ॥१४॥ यह पूर्ण यक्ष मुझसे इरन्दति मांगता है । इससे बहुत सा धन लेकर हम इसे अपनी प्रिय कन्या दे दें ? ॥१५॥]

विमला बोली—

न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्ह इरन्दती,
स चे हि वो हदय पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेय्य,
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा
नाञ्ञ धन उत्तरि पत्थयाम ॥१६॥

[हमने धन से अथवा सम्पत्ति से इरन्दति को प्राप्त नही किया है। यदि वह न्याय से, शान्ति से पण्डित के हृदय को यहाँ ला सके तो इस धन से उसे कुमारी प्राप्त हो सकती है। इससे अधिक हम और कोई धन नही चाहते ॥१६॥]

ततो सो वरुणो नागो निक्खमित्वा निवेसनं,
पुण्णकामन्तमित्वान इद वचनमब्रवि ॥१७॥
न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्ह इरन्दती
सचे तुव हदय पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेसि
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा
नाञ्ञ धन उत्तरि पत्थयाम ॥१८॥

[तब वह वरुण नाग घर में से निकला और उसने पुण्णक को बुलाकर यह बात कही ॥१७॥ हमें इरन्दति न धन से मिली है और न सम्पत्ति से। यदि तू बिना जोर-जबर्दस्ती किये पण्डित का हृदय यहाँ ला सके तो तुझे इतने धन से कुमारी मिल जायगी। हम इससे अधिक और धन नही चाहते ॥१८॥]

पुण्णक बोला—

य पण्डितोत्येके वदन्ति लोके
तमेव बालोति पुनाहु अञ्ञे,
अक्खाहि मे विप्पवदन्ति एत्थ
क पण्डित नाग तुव वदेसि ॥१९॥

[लोक मे जिसे कुछ लोग 'पण्डित' कहते हैं, उसे ही दूसरे 'मूर्ख' कहते हैं। हे नाग! मुझे बता कि तू किसे 'पण्डित' कहता है? ॥१६॥]

नागराजा बोला—

कोरव्यराजस्स धनञ्जयस्स
यदि ते सुतो विधुरो नाम कत्ता,
आनेहि त पण्डित धम्मलद्धा
इरन्दती पद्धचरा ते होतु ॥२०॥

[यदि तूने कोरव्य-राज धनञ्जय का विधुर नामक कर्ता सुना हो तो उस पण्डित को विना जबर्दस्ती किये ले आ । इरन्दति तेरी चरण-दासी होगी ॥२०॥]

इदञ्च सुत्वा वरुणस्स वाक्य
उट्ठाय यक्खो परमप्पतीतो,
तत्थेव सन्तो पुरिस असंसि
आनेहि आजञ्ञमिधेव युत्त ॥२१॥

[वरुण की यह बात सुनी तो परप्रसन्न होकर यक्ष उठा और उसने वहीं अपने आदमी को आज्ञा दी कि श्रेष्ठ अश्व को यहीं ले आओ ॥२१॥]

जातरूपमया कण्णा काचम्हमया खुरा,
जम्बोनदस्स पाकस्स सुवण्णस्स उरच्छदो ॥२२॥

[स्वर्णमय कान, स्फटिकमय खुर और लाल जम्बोनद स्वर्ण का छाती का आवरण ॥२२॥]

वह पुरुप उसी समय उस घोडे को ले आया । पुण्णक उस पर चढ़ा और आकाश-मार्ग से कुबेर के पास जाकर नाग-भवन की प्रशसा कर वह बात कही । उसी के प्रकाशनार्थ यह कहा गया है—

देव वाहवह यान
अस्समारुय्ह पुण्णको,
अलकतो कप्पितकेसमस्सु
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥२३॥
स पुण्णको कामवेगेन गिद्धो
इरन्दति नागकञ्ञ जिगिंस,
गन्त्वान त भूतपति यसस्सि
इच्चब्रवी वेस्सवण कुबेर ॥२४॥

भोगवती नाम मन्दिरे
वासा हिरञ्‍ञवतीति वुच्चति,
नगरे निम्मिते कञ्चनमये
मण्डलस्स उरगस्स निट्ठित ॥२५॥

अट्टालका ओट्ठगीवियो
लोहितकस्स मसारगल्लिनो,
पासादेत्थ सिलामया
सोवण्णा रतनेन छादिता ॥२६॥

अम्बा तिलका च जम्बुयो
सत्तपण्णा मुचलिन्दकेतका,
पियका उद्दालका सह
उपरि भद्दका सिन्धुवारका ॥२७॥

चम्पेय्यका नाग मालिका
भगिणीमाला अथमेत्थ कोलिया,
एते दुमा परिनामिता
सोभयन्ति उरगस्समन्दिर ॥२८॥

खज्जुरेत्थ सिलामया
सोवण्णधुवपुरिफला,
बहू यत्थ वसतोपपातिको
नागराजा वरुणो महिद्धिको ॥२९॥

तस्स कोमारिका भरिया
विमला कञ्चनवेल्लिविग्गहा,
काला तरुणाव उग्गता
पुचिमन्दत्थनी चारुदस्सना ॥३०॥

लाखारसरत्त सुच्छवी
कणिकारोव निवातपुप्फितो,
तिदिवोकचराव अच्छरा
विज्जुतब्भघनाव निस्सटा ॥३१॥

सा दोहलिनी सुचिम्भिता
विधुरस्स हृदय धनीयति,
त तेस ददामि इस्सर
तेन ते देन्ति इरन्दति मम ॥३२॥

[देवताओ को ले जाने वाले यान अश्व पर चढकर, अलकृत, ठीक-ठाक किया हुआ पूर्णक आकाश-मार्ग से गया ॥२३॥ काम-वेग के वशीभूत हुआ हुआ वह पूर्णक, नाग-कन्या इरन्दति की कामना से यशस्वी वैश्रवण कुबेर राजा के पास गया और बोला॥२४॥ भोगवती नामके भवन मे 'वासा' तथा 'हिरण्य-वती' कहलाने वाला स्थान है। वह स्वर्ण-मय नगर मे फनवाले नाग का सम्पूर्ण बना हुआ स्थान है ॥२५॥ उसकी अट्टालिकायें ओष्ठ तथा ग्रीवा के आकार की (?) रक्तवर्ण मणि तथा स्फटिक की बनी हे। यहाँ के प्रासाद शिलामय है, जो स्वर्ण नामक रत्न से ढके है ॥२६॥ आम्र, तिलक, जामुन, शतपर्ण, मुचलिन्द, केतक, पियक, उद्दालक, उपरि-भद्रक, सिन्धुवारक, चम्पक, नाग, भगिणी माला तथा कोलिय—ये इतने प्रकार के वृक्ष परस्पर एक दूसरे से सटे हुए, नागराज के भवन की शोभा बढाते है ॥२७-२८॥ वहाँ खज्जु पेड है जो इन्द्र नीलमणिमय है और जो नित्य स्वर्ण-वर्ण पुष्पो से पुष्पित रहते है। वहाँ वरुण नागराज रहता है, जो महा प्रतापवान् है और जो बिना माता-पिता के उत्पन्न है ॥२९॥ उसकी विमला नामकी भार्य्या है जिसका शरीर स्वर्ण-राशी के समान है, जो काललता की तरह ऊची हे, जिसके स्तन निबोली के समान है और जो देखने मे बडी सुन्दर है ॥३०॥ उसकी चमडी लाख-रस के सदृश रक्त-वर्ण है, वह वायु-रहित स्थान मे पुष्पित कर्णिकर के समान है, वह त्रयोत्रिंश (तीस) भवन मे विचरने वाली अप्सरा है और वह घने बादलो मे से निकली बिजली के समान है ॥३१॥ उस पवित्र-वसना (?) को इस समय 'दोहद' उत्पन्न हुआ है। वह विधुर के हृदय को चाहती है। हे राजन्! मै वह उन्हे दूँगा। इससे वे मुझे 'इर-न्दति' दे देगे ॥३२॥]

वैश्रवण की आज्ञा के बिना जाने का साहस न करने के कारण उसकी आज्ञा लेने के लिये ही इतनी गाथाये कहीं। उसकी बात की ओर वैश्रवण का ध्यान नही था। वह विमान के बारे मे दो देव-पुत्रो का झगडा निपटा रहा था। पुण्णक ने जब जाना कि उसकी बात सुनी नही गई है तो वह छन भर ही पुत्र के पास रहा। वैश्र-वण ने मुकद्दमे का निर्णय कर चुकने पर जो हारा था उसे तो नही उठाया, दूसरे को

कहा 'तू जा' अपने विमान मे रह। जैसे ही उसके मुँह से 'तू जा' निकला, पुण्णक ने कुछ देव-पुत्रो को साक्षी बना लिया कि आप सब जान ले कि मेरे मामाने मुझे भेजा है। तब वह उक्त प्रकार से ही घोडा मगवा चढकर चल दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको भूतपति यसस्सि
आमन्तय वेस्सवण कुवेर
तत्थेव सन्तो पुरिस असंसि
आनेहि आजञ्ञमिधेव युत्त ॥३३॥
जातरूपमया कण्णा काचम्ममया खुरा,
जम्बोनदस्स पाकस्स सुवणस्स उरच्छदो ॥३४॥
देववाहवह यान
अस्समारुय्ह पुण्णको
अलकतो कप्पितकेसमस्सु
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥३५॥

[उस पूर्णक ने यशस्वी राजा कुबेर को सम्बोधन किया और वही रहते आदमी को आज्ञा दी कि श्रेष्ठ घोडे को यही ले आये ॥३३॥ अर्थ ऊपर आ गया है ॥३४-३५॥]

उसने आकाश-मार्ग से जाते समय ही सोचा, "विधुर पण्डित के बहुत लोग है। मैं उसे पकड नही सकता हूँ। हाँ धनञ्जय कोरव्य को जुए का शौक है। उसे जुए में जीतकर विधुर को लूँगा। इसके घर मे बहुत से रतन है। यह कम कीमत की चीज की शर्त लगाकर जुआ न खेलेगा। मुझे बहुत मूल्यवान् रतन ले चलना चाहिये। दूसरे रतन राजा नही लेगा। राजगृह नगर के समीप वैपुल्य पर्वत के भीतर चक्रवर्ती राजा के योग्य बडा ही तेजस्वी मणि-रतन है। उसे ले जाकर उससे राजा को लुभाकर, राजा को जीतूंगा।" उसने वैसा ही किया।

इस अर्थ को प्रकट करने के लिये शास्ता ने कहा—

सो आगमा राजगह सुरम्म
अगस्स रञ्जो नगर दुरायुत,
पहूतभक्ख बहुवन्नपाण
मसक्कसार विय वासवस्स ॥३६॥

मयूरकोञ्चागणसम्पघुट्ठ
दिजाभिघुट्ठ दिजसघसेवित,
नाना सकुन्ताभिरूप सुभगण
पुप्फाभिकिण्ण हिमवच पब्बत ॥३७॥
स पुण्णको वेपुल्लमाभिरुच्छि
सिलुच्चय किम्पुरिसानुचिण्ण,
अन्वेसमानो मणिरतन उलार
तमद्दसा पब्बतकूटमज्झे ॥३८॥

[वह अङ्ग नरेश के रमणीक दुर्जय राजगृह नगर में आया। बहुत खाद्य सामग्री वाला तथा बहुत अन्न-पान वाला वह नगर के इन्द्र के मसक्कसार भवन सदृश था ॥३६॥ मयूर-क्रौञ्च आदि पक्षियों से तथा अन्य पक्षियों से घिरा हुआ, नाना प्रकार के पक्षियों की गूंज गुंजारित, सुन्दर अ.ङ्गनवाला तथा हिमालय पर्वत की तरह पुष्पों से आच्छादित ॥३७॥ वह पुण्णक ऊँची शिलाओं वाले, किम्पुरुषों द्वारा रचित वैपुल्य-पर्वत के ऊपर चढा। जब मैं उस अनर्घ मणि-रतन को खोज रहा था, मैंने उसे पर्वत के शिखर के बीच देखा ॥३८॥]

दिस्वा मणिं पभस्सर जातिवन्त
धनाहर मणिरतन उलार
दद्दल्लमान यससा यसस्सिन
ओभासति विज्जुरिवन्तलिक्खे ॥३९॥
तमग्गही वेलुरिय महग्घ
मनोहर नाम महानुभाव,
आजञ्ञमारुय्ह अनोमवण्णो
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥४०॥

[श्रेष्ठ मणि को देख, जो चमकदार थी, जो धन लाने वाली थी, जो बड़ी मणि थी, जो यशस्वियों के यश से चमक रही थी और जो बिजली की भान्ति प्रकाशित थी ॥३९॥ उसने उस महामूल्यवान् मनोहर मणि को ग्रहण किया और वह श्रेष्ठ वर्ण वाला श्रेष्ठ घोड़े पर चढ आकाश-मार्ग से चला गया ॥४०॥]

सो आगमा नगर इन्दपत्त
ओरुय्ह चागञ्छि सभ कुरुन,
समागमे एकसत समग्गे
अव्हेत्थ यक्खो अविकम्पमानो ॥४१॥

[वह इन्द्रप्रस्थ नगर आया ओर घोडे मे उतर कुरुओ की सभा मे पहुँचा । वह पुण्णक एक सौ राजाओ की सभा में स्थिर भाव से खडा हुआ ॥४१॥]

कोनिप रञ्ञ वरमाभिजेति
कमाभिजेय्याम वर धनेन,
कमनुत्तर रतनवर जिनाम
कोवापि नो जेति वर धनेन ॥४२॥

[राजाओ मे से कोन हमसे श्रेष्ठ (धन) जीतेगा ? अथवा हम किसे धन से जीतेंगे ? हम किस श्रेष्ठ धन को जीतेंगे ? अथवा कौन हमे श्रेष्ठ धन से जीतेगा ? ॥४२॥]

इस प्रकार उसके चारो पद कोरव्य पर ही घटते थे । राजा ने सोचा, इससे पहले मुझे इस प्रकार वीर बनकर बोलनेवाला दिखाई नही दिया । यह कौन है ? उसने पूछते हुए गाथा कही—

कुहिं नु रट्ठे तव जातभूमि
न कोरव्यस्सेव वचो तवेद,
अभिभोसि नो वण्णनिभाय सब्बे
अक्खाहि मे नामञ्च बन्धवे च ॥४३॥

[राष्ट्र में तेरी जन्म-भूमि कहाँ है ? यह तेरी वाणी कुरु-देशवासी की वाणी नही है । तू अपनी प्रभा से सबको अभिभूत कर रहा है । अपना नाम और बान्धव बता ॥४३॥]

यह सुन उसने सोचा, "यह राजा मेरा नाम पूछता है । 'पुण्णक' नाम दासो का होता है । यदि मै कहूँगा कि मै 'पुण्णक' हूँ तो यह मेरी परवाह नही करेगा, सोचेगा कि यह दास है, प्रगल्भ होने से इस प्रकार बोलता है । मै इसे पूर्व-जन्म से पहले का नाम कहूँगा ।" यह सोच गाथा कही—

मयूरकोञ्चागणसम्पघुट्ठ
दिजाभिघुट्ठ दिजसघसेवित,
नाना सकुणाभिरूप सुभगण
पुप्फाभिकिण्ण हिमवच पब्बत ॥३७॥
स पुण्णको वेपुल्लमाभिरुच्छि
सिलुच्चय किम्पुरिसानुचिण्ण,
अन्वेसमानो मणिरतन उलार
तमद्दसा पब्बतकूटमज्झे ॥३८॥

[वह अङ्ग नरेश के रमणीक दुर्जय राजगृह नगर में आया। बहुत खाद्य सामग्री वाला तथा बहुत अन्न-पान वाला वह नगर के इन्द्र के मसक्कसार भवन सदृश था ॥३६॥ मयूर-कौञ्च आदि पक्षियों से तथा अन्य पक्षियों से घिरा हुआ, नाना प्रकार के पक्षियों की गूज गुजारित, सुन्दर अ.ङ्गनवाला तथा हिमालय पर्वत की तरह पुष्पों से आच्छादित ॥३७॥ वह पुण्णक ऊँची शिलाओं वाले, किम्पुरुषों द्वारा रचित वैपुल्य-पर्वत के ऊपर चढा। जब मैं उस अनर्घ मणि-रतन को खोज रहा था, मैंने उसे पर्वत के शिखर के बीच देखा ॥३८॥]

दिस्वा मणि पभस्सर जातिवन्त
मनोहर मणिरतन उलार
दद्दल्लमान यससा यसस्सिन
ओभासति विज्जुरिवन्तलिक्खे ॥३९॥
तमग्गही वेलुरिय महग्घ
मनोहर नाम महानुभाव,
आजञ्ञमारुय्ह अनोमवण्णो
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥४०॥

[श्रेष्ठ मणि को देख, जो चमकदार थी, जो मन लाने वाली थी, जो बड़ी मणि थी, जो यशस्वियों के यश से चमक रही थी और जो बिजली की भान्ति प्रकाशित थी ॥३९॥ उसने उस महामूल्यवान् मनोहर मणि को ग्रहण किया और वह श्रेष्ठ वर्ण वाला श्रेष्ठ घोड़े पर चढ आकाश-मार्ग से चला गया ॥४०॥]

सो आगमा नगर इन्दपत्त
ओरुय्ह चागच्छि सभं कुरुन,
समागमे एकसत समग्गे
अव्हेत्थ यक्खो अविकम्पमानो ॥४१॥

[वह इन्द्रप्रस्थ नगर आया और घोड़े से उतर कुरुओं की सभा में पहुँचा। वह पुण्णक एक सौ राजाओं की सभा में स्थिर भाव से खड़ा हुआ ॥४१॥]

कोनिध रञ्ञ वरमाभिजेति
कमाभिजेय्याम वर धनेन,
कमनुत्तर रतनवर जिनाम
कोवापि नो जेति वर धनेन ॥४२॥

[राजाओं में से कौन हमसे श्रेष्ठ (धन) जीतेगा ? अथवा हम किसे धन से जीतेंगे ? हम किस श्रेष्ठ धन को जीतेंगे ? अथवा कौन हमें श्रेष्ठ धन से जीतेगा ? ॥४२॥]

इस प्रकार उसके चारों पद कौरव्य पर ही घटते थे। राजा ने सोचा, इससे पहले मुझे इस प्रकार वीर बनकर बोलनेवाला दिखाई नहीं दिया। यह कौन है ? उसने पूछते हुए गाथा कही।—

कुहिं नु रट्ठे तव जातभूमि
न कोरव्यस्सेव वचो तवेद,
अभिभोसि नो वण्णनिभाय सब्बे
अक्खाहि मे नामञ्च बन्धवे च ॥४३॥

[राष्ट्र में तेरी जन्म-भूमि कहाँ है ? यह तेरी वाणी कुरु-देशवासी की वाणी नहीं है। तू अपनी प्रभा से सबको अभिभूत कर रहा है। अपना नाम और बान्धव बता ॥४३॥]

यह सुन उसने सोचा, "यह राजा मेरा नाम पूछता है। 'पुण्णक' नाम दासों का होता है। यदि मैं कहूँगा कि मैं 'पुण्णक' हूँ तो यह मेरी परवाह नहीं करेगा, सोचेगा कि यह दास है, प्रगल्भ होने से इस प्रकार बोलता है। मैं इसे पूर्व-जन्म से पहले का नाम कहूँगा।" यह सोच गाथा कही—

कच्चायनो माणवकोस्मि राज
अनूननामो इतिमव्हयन्ति,
अगेसु मे आतयो बन्धवा च
अक्खेन देवस्मि इधानुपत्तो ॥४४॥

[हे राजन् ! मैं कच्चायन माणवक हूँ। मुझे अन्यून (अर्थात् पूर्ण) नाम कहते हैं। अङ्ग जनपद में मेरे रिश्तेदार तथा बान्धव हैं। हे देव ! मैं यहाँ जुआ खेलने आया हूँ ॥४४॥]

तब राजा ने उसे पूछा, "माणव ! जीत लेने पर तू क्या देगा ? तेरे पास क्या है ?" उसने गाथा कही—

किं माणवस्स रतनानि अत्थि
ये त जिनन्तो हरे अक्खधुत्तो
बहूनि रञ्ञो रतनानि अत्थि
ते त्वं दलिद्दो कथमव्हयेसि ॥४५॥

[हे माणवक ! तेरे पास कौन से रतन हैं जिन्हें जीतने पर जुआरी तुझसे ले जा सके। राजा के तो बहुत से रतन हैं। तू दरिद्र राजा को कैसे जुए में ललकारता है ? ॥४५॥]

तब पुण्णक बोला—

मनोहरो नाम मणी ममाय
धनाहरो मणिरतन उलार,
इमञ्च आजञ्ञ अमित्ततापन
एत मे जेत्वा हरे अक्खधुत्तो ॥४६॥

[मेरे पास यह मनको हरण करनेवाली मणि है। यह धन को लानेवाली बड़ी मणि है। इस मणि को तथा शत्रुओं को अनुतप्त करने वाले इस श्रेष्ठ घोड़े को जुआरी मुझे जीतकर ले जा सकता है ॥४६॥]

यह सुन राजा ने गाथा कही—

एको मणि माणव किं करिस्सति
आजानियेको पन किं करिस्सति,

बहूनि रञ्ञो मणिरतनानि अत्थि
आजानिया वातजवा अनप्पका॥४७॥

[हे माणवक ! यह एक मणि क्या करेगी ? और यह एक श्रेष्ठ घोडा भी क्या करेगा ? राजा के पास बहुत से रतन हैं और हवा से बात करनेवाले बहुत से घोड़े भी हैं ।।४७।।]

दोहद् काण्ड समाप्त

उसने राजा की बात सुनी तो कहा—"महाराज ! यह क्या कहते हैं ? एक घोडा हजार घोडो के मुकाबले पर भी रखा जा सकता है । एक मणि भी हजार मणियो के मुकाबले पर । सभी घोडे समान नही होते । इस घोडे का वेग देखें ।" यह कह घोडे पर चढ उसे चार-दीवारी पर दौडाया । सात योजन का नगर ऐसा हो गया मानो घोडो की गरदनो से घिरा हुआ हो । आगे घोडा ही दिखाई नही दिया । यक्ष भी दिखाई नही दिया । पेट पर बधे हुए कपडे से ही सारा का सारा घिरा दिखाई देने लगा । उसने घोडे से उतरकर पूछा—

"महाराज ! घोडे का वेग देखा ?"

"हाँ, देखा ।"

"महाराज, अब देखें" कह उसने घोडे को नगर-उद्यान में पानी पर दौडाया । वह बिना खुरो को भिगोये कूद गया । उसने उसे कवल के फूलों मे घुमाया । फिर ताली बजाकर हाथ फैलाया । घोडा आकर हाथ की हथेली पर खडा हो गया । तब कहा—"महाराज ! ऐसे अश्व-रतन की कीमत है न ?"

"माणवक ! है ।"

"महाराज ! अश्व-रतन रहे । अब मणि-रतन की महिमा देखें" कहते हुए गाथायें कही—

इदञ्च मे मणिरतन पस्स त्व दिपदुत्तम,
इत्थीन विग्गहाचेत्थ पुरिसानञ्च विग्गहा॥४८॥
मिगान विग्गहा चेत्थ सकुणानञ्च विग्गहा
नागराजे सुपण्णे च मणिम्हि पस्स निम्मित॥४९॥

[हे नरोत्तम ! इस मणि-रतन को देखें । यहाँ स्त्रियों की शकल, पुरुषो की

शकल, जानवरों की शकल, पक्षियों की शकल, नागराजा-गण तथा गरुडों की शकल देखे। इस मणि मे सबकी शकलें बनी हुई हैं ।।४८-४९।।]

और भी—

हत्थानीक रथानीक अस्से पत्तिधजानि च,
चतुरंगिनि इम सेन मणिम्हि पस्स निम्मित ।।५०।।
हत्यारूहे अनीकट्ठे रथिके पत्तिकारिके,
बलग्गानि वियूलहानि मणिम्हि पस्स निम्मित ।।५१।।
पुर उद्दापसम्पन्न बहुपकारतोरण,
सिंघाटकेसु भूमियो मणिम्हि पस्स निम्मित ।।५२।।
एसिका परिखायो च पलिख अग्गलानिच,
अट्टालके च द्वारे च मणिम्हि पस्स निम्मित ।।५३।।

[हाथियों की सेना, रथों की सेना, घोडे, पैदल और ध्वजाये—इस प्रकार की मणि में बनी हुई चतुरङ्गिनी सेना को देखे ।।५०।। हस्ति-सवार सेनानी, रथ-सवार, पैदल तथा पक्तिवद्ध सेनायें—ये सब मणि में बनी देखे ।।५१।। चारदीवारी वाला नगर, ऊँची चारदीवारी वाले दरवाजे, और चौरस्तो पर रमणीय भूमि—ये सब मणि में निर्मित देखे ।।५२।। स्तम्भ, खाइयाँ, दरवाजो मे के डण्डे तथा दरवाजे, अट्टालिकाये तथा द्वार—ये सब मणि मे बने देखे ।।५३।।]

पस्स तोरणमग्गेसु नाना दिजगणा बहू,
हसा कोञ्चा मयूरा च चक्कवाका च कुक्कुहा ।।५४।।
कुणालका बहुचित्रा सिखण्डी जीवजीवका,
नानादिजगणाकिण्ण मणिम्हि पस्स निम्मित ।।५५।।

[तोरणो के सिरो पर देखे, नाना प्रकार के बहुत से पक्षी। हस, क्रौञ्च, मयूर, चक्रवाक और मुर्गे (?) ।।५४।। अत्यन्त चित्रित कोयल, मोर, जीव जीवक तथा नाना प्रकार के पक्षियो का समूह—ये सब मणि में बना देखे ।।५५।।]

पस्स नगर सुपाकार अब्भुत लोमहसन,
समुस्सितधज रम्म सुवण्णवालुकसन्थतं ।।५६।।
पस्स त्व पण्णसालायो विभत्ता भागसोमिता,
निवेसने निवेसेच सन्धिब्यूहे पथद्धियो ।।५७।।

[अच्छी प्रकारों से युक्त, अद्भुत, लोम-हर्षक, रमणीय नगर को देखे, जहाँ पताकाये लहरा रही हैं और जहाँ स्वर्ण बालू बिछी है ॥५६॥ विभागवार विभक्त दुकानो को देखे, घरो ओर घरो की वस्तुओं को देखे तथा बाजारो और गलियो को देखें ॥५७॥]

पाणागारे च सोण्डे च सुणा ओदनिया घरा,
वेसोच गणिकायो च मणिम्हि पस्स निम्मित ॥५८॥
मालाकारे च रजके गन्धिके अथ दुस्सिके,
सुवण्णकारे मणिकारे मणिम्हि पस्स निम्मित ॥५९॥
आलारिये च सूदेच नटनट्टक गायने,
पाणिस्सरे कुम्भथूनिके मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६०॥

[पानागार, शराबी, कुत्ते, पाचनगृह, वैश्याये तथा गणिकायें—ये सब मणि में बनी देखें ॥५८॥ माली, धोबी, गान्धी, कपडे बेचनेवाले, स्वर्णकार तथा मनियारे—ये सब मणि मे बने देखे ॥५९॥ रसोइये, नट, नर्तक, गायक, ताली बजाकर गाने वाले तथा घडे, बजाने वाले—ये सब मणि में बने देख ॥६०॥]

पस्स भेरी मुतिगा च सखा पणवदेण्डिमा,
सब्बञ्च तालावचर मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६१॥
सम्मतालञ्च वोणञ्च नच्चगोत सुवादित,
तुरियतालित सघुट्ठ मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६२॥
लधिका मुट्ठिका चेत्थ मायाकाराच सोभिया,
वेतालिके च जल्ले च मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६३॥

[भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, दौंडी तथा अन्य सभी सगीत वाद्य—ये सब मणिमें बने देखें ॥६१॥ मजीरा, वीणा नृत्यगीत, सुवाद्य, नाना प्रकार के बाजो का आरम्भ, होना ओर साथ बजना—ये सब मणि मे बने देखें ॥६२॥ कूदनेवाले, पहलवान जादूगर, नगर के शोभा रूप, वैतालिक तथा नाई—ये सब मणि मे बने देखे ॥६३॥]

समज्जा चेत्थ वत्तन्ति आकिण्णा नरनारिहि,
मञ्चातिमञ्चे भूमियो मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६४॥

[नरनारियोसे घिरे हुए यहाँ तमाशे हैं और मञ्चके ऊपर बन्धे भिन्न भिन्न तल्ले है—ये सब यहाँ मणि मे बने देखें ॥६४॥]

पस्स मल्ले समज्जस्मि पोठेन्ते दिगुण भुज,
निहते निहतमाने च मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६५॥

[तमाशे मे अपनी भुजाओ को थापी देते हुए मल्लो को देखो और हारे हुए मल्लो को—ये सब यहाँ मणि मे बने देखे ॥६५॥]

पस्स पब्बतपादेसु नानामिगगणा बहू
सोहव्यग्घवराहा च अच्छकोकतरच्छयो ॥६६॥
पलसता च गवजा च महिसा रोहिता रुरु
एणेय्या च वराहा च गणिनो निकसूकरा ॥६७॥
कदलिमिगा बहु चित्रा बिलारा ससकण्णका,
नाना मिगगणाकिण्ण मणिम्हि पस्स निम्मित ॥६८॥

[पर्वतो की तलहटी में नाना प्रकार के जानवरो को देखे—सिंह, व्याघ्र, सूअर, भालू और लकडबग्घे ॥६६॥ गेंडे, (नील-) गाय (?), भैंस, वराह, रुरु, रोहित, गणि तथा निकसूकर नामक मृग-जातियाँ ॥६७॥ नाना प्रकार के चित्त कदली-मृग, जगली बिल्ले, तथा कानवाले खरगोश तथा नाना प्रकार के इकट्ठे हुए मृग—ये सब मणि मे बने हुए देखे ॥६८॥]

नज्जायो सुपतित्थायो सोण्णवालुकसन्थता,
अच्छा सवन्ति अम्बूनि मच्छगुम्बनिसेविता ॥६९॥
कुम्भोला मकरा चेत्थ सुसुमारा च कच्छपा,
पाठोना पावुसा मच्छा वलजा मुञ्ज रोहिता ॥७०॥

[सुन्दर तीर्थों वाली नदियाँ, सुनहरी बालुका आस्तरण, मच्छो के समूह को लिये हुए स्वेच्छ जल बहाती है ॥६९॥ मगर-मच्छ, मकर, मगर-मच्छ (?) कछुवे, पाठीन, पावु, (मछलियाँ) और मुञ्ज तथा रोहित (मछलियाँ) ॥७०॥]

नाना दुमगणाकिण्णा नानादिजगणायुता
वेलुरियफलक रोदायो मणिम्हि पस्स निम्मित ॥७१॥

[नाना प्रकार के वृक्षो तथा पक्षियो से घिरी हुई और बिल्लौर के पाषाण से टकराकर आवाज निकालती हुई नदियाँ—ये सब मणिमे बनी देखे ॥७१॥]

पस्सेत्थ पोक्खरणियो सुविभत्ता चतुद्दिसा,
नानादिजगणाकिण्णा पुथुलोमनिसेविता ॥७२॥
समन्तुदकसम्पन्नं महिं सागरकुण्डलं
उपेतं वनराजेहि मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७३॥

[चारो ओर विभक्त पुष्करिणियां देखें, जहाँ नाना प्रकार के पक्षी तथा बहुत प्रकार की मछलियां हैं ॥७२॥ चारो ओर से पानी से घिरी हुई, सागर-कुण्डलिनी पृथ्वी है जो वनों की पंक्ति से युक्त है ॥७३॥]

पुरतो विदेहे पस्स गोयानिये च पच्छतो
कुरुयो जम्बुदीपञ्च मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७४॥
पस्स चन्दञ्च सुरियञ्च ओभासेन्ते चतुद्दिसा
सिनेरुं अनुपरियन्ते मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७५॥
सिनेरुं हिमवन्तञ्च सागरञ्च महिद्धिकं,
चत्तारोच महाराजे मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७६॥
आरामे वनगुम्बे च पाटिये च सिलुच्चये,
रम्मे किम्पुरिसाकिण्णे मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७७॥
फारुसकं चित्तलतं मिस्सकं नन्दनं वनं,
वेजयन्तञ्च पासादं मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७८॥
सुधम्मं तावतिंसञ्च पारिच्छत्तञ्च पुप्फितं
एरावणं नागराजं मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७९॥
पस्सेत्थ देवकञ्ञायो नभा विज्जुरिवुग्गता,
नन्दने विचरन्तियो मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥८०॥
पस्सेत्थ देवकञ्ञायो देवपुत्तपलोभिनी,
देवपुत्ते चरमाने मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥८१॥

[आगे पूर्व-विदेह, पीछे अपरगोयान द्वीप, कुरु-द्वीप तथा जम्बुद्वीप—ये सब मणि में बने देखें ॥७४॥ चारो ओर चमकने वाले तथा सिनेरु (पर्वत) तक पहुंचे हुए चान्द और सूर्य को देखें ॥७५॥ सिनेरु (पर्वत) महाप्रतापवान् समुद्र तथा चारो महाराजा—ये सब मणि में बने देखें ॥७६॥ आराम तथा ऊँची शिलाओं और फैले पत्थरों वाले सुन्दर वन, जहाँ किन्नर रहते हैं—ये सब मणि में बने देखें

॥७७॥ फारुसक, चित्तलता, मिश्रक, नन्दनवन तथा वेजयन्त प्रासाद—ये सब मणि मे बने देखे॥७८॥ सुधर्म, त्रयोत्रिंश, सुपुष्पित पारिछत्र, एरावण नागराज—ये सब मणि मे बने देखे ॥७९॥ आकाश में बिजली के समान यहाँ नन्दन वन मे विचरती हुई देव-कन्याओ को देखे—ये सब मणि मे बनी देखें ॥८०॥ देव-पुत्रों को लुभानेवाली देव-कन्यायें देखे तथा विचरने वाले देव-पुत्र—ये सब मणि में बने देखें ॥८१॥]

परोसहस्स पासादे वेलुरिय फलकत्थते,
पज्जलन्तेन वण्णेन मणिम्हि पस्स निम्मित ॥८२॥
तावतिंसे च यामे च तुसिते चापि निम्मिते,
परनिम्मिताभिरतिनो मणिम्हि पस्स निम्मित ॥८३॥
पस्सेत्थ पोक्खरणियो विप्पसन्नोदिका सुची
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च ॥८४॥

[बिल्लौर के फर्शवाले हजार से अधिक प्रासाद जो वर्ण से प्रज्वलित हैं—ये सब मणि मे बने देखे ॥८२॥ त्रयोत्रिंश, याम, तुषित, निर्मित, तथा परनिर्मित—ये सब आनन्द-दायक (देव-लोक) मणि मे बने देखे ॥८३॥ यहाँ पवित्र, स्वच्छ जलवाली पुष्करिणियाँ देखे, जो मन्दालक तथा पद्म और उत्पल से आच्छादित हैं ॥८४॥]

दसेत्थ राजियो सेता दस नीला मनोरमा,
छ पिंगला पण्णरसा हलिद्दा च चतुद्दसा ॥८५॥
वीसति तत्थ सोवण्णा वीसति रजतामया,
इन्दगोपकवण्णाभा ताव दिस्सन्ति तिंसति ॥८६॥
दसेत्थ कालियो छच मञ्जेट्ठा पण्ण वीसति,
मिस्सा बन्धुक पुप्फेहि नीलुप्पल विचित्तिता ॥८७॥
एव सब्बंगसम्पन्न अच्चिमन्त पभस्सर,
ओधिसुंक महाराज पस्स त्व दिपदुत्तम ॥८८॥

[इस मणि मे दस श्वेत धारियाँ है, दस सुन्दर नील-वर्ण, इक्कीस-धारियाँ पिङ्गल-वर्ण हैं और चौदह हलदी के वर्ण की ॥८५॥ बीस स्वर्णमय हैं, बीस रजतमय और तीस इन्द्र-धनुष के वर्ण की हैं। ॥८६॥ सोलह काली लकीरे, पच्चीस मजीठे

वर्ण की हैं। ये वन्धुक तथा नीलोत्पल पुष्पों से मिश्रत तथा चित्रित हैं ॥८७॥ इस प्रकार हे नरोत्तम! हे महाराज! आप इस सर्वांग सम्पूर्ण, तेजस्वी, प्रकाशमान (जुए की) शर्त को देखें ॥८८॥]

मणि-काण्ड समाप्त

यह कह पूर्णक ने कहा—"महाराज! मैं जुए में जीतने पर यह मणि-रतन दूंगा। तुम क्या दोगे?"

"तात! मेरा शरीर और छत्र छोडकर शेष सब कुछ बाजी पर लगे।"

"देव! तो देर न करें। मैं दूर से आया हूँ। द्यूत-मण्डल तैयार करायें।"

राजा ने अमात्यों को आज्ञा दी। उन्होंने शीघ्र ही द्यूत-शाला तैयार करा राजा के लिये श्रेष्ठ-वस्त्र (?) का आसन, शेष राजाओं के लिये भी आसन बिछवा तथा पूर्णक के लिये भी योग्य आसन की व्यवस्था कर राजा को समय की सूचना दी।

तब पूर्णक ने राजा को गाथा में सम्बोधित किया—

उपागत राज उपेहि लक्ख
नेतादिस मणिरतन तवत्थि,
धम्मेन जिय्याम असाहसेन
जितो च नो खिप्पमवाकरोहि ॥८९॥

[राजन् द्यूत-शाला तैय्यार है। जुए की शर्त के स्थान पर आओ। तुम्हारे पास ऐसा मणि-रतन नहीं है। हम धर्म से जीतेंगे, जबर्दस्ती नहीं। जीत लिये जाने पर आप तुरन्त बता दें ॥८९॥]

तब राजा ने कहा—"माणवक! तू मुझे राजा समझकर मत डर। हमारी जीत-हार धर्मानुसार ही होगी, जबर्दस्ती नहीं।" यह सुन माणवक ने राजाओं को साक्षी बनाते हुए कि हमारी जय-पराजय धर्मानुसार ही होगी, गाथा कही—

पञ्चाल पच्चुग्गत सूरसेन
मच्छा च मद्दा सहकेककेहि,
पस्सन्तु नो ते असठेन युद्ध
न नो सभाय न करोति किञ्चि ॥९०॥

[प्रसिद्ध पञ्चाल-राज, शूरसेन, मत्स्य, मद्र तथा केकक के राजागण अशठ भाव से होनेवाला हमारा युद्ध देखें। सभा में किसी को साक्षी बनाया ही जाता है ॥९०॥]

तब सौ राजाओ सहित राजाने पुण्णक को साथ ले द्यूत-शाला में प्रवेश किया। सभी योग्य आसनों पर बैठे। चान्दी के फलक पर सोने के पासे रखे गये। पुण्णक शीघ्र ही बोला—"महाराज! पासों मे भाग्यवान् पासे मालिक, सावट, बहुल, शान्ति-भद्र आदि चौबीस गिने गये हैं। उनमें से आप अपने मन का भाग्यवान् पासा ले।" राजा ने अच्छा कहा और 'बहुल' लिये। पुण्णक ने 'सावट'। तब राजा बोला —"तो तात माणवक! पासा फेंक।" "महाराज! पहले मेरा फेंकना अच्छा नही लगता। आप फेंकें।" राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसके तीसरे पूर्व-जन्म की उसकी माता ही उसका 'आरक्षक-देवता' थी। उसके प्रताप से राजा जुए में जीतता था। वह पास ही खडी थी। राजा ने देवता को स्मरण कर, द्यूत-गान गा, हाथ बढाकर पासो को आकाश मे फेंका। पुण्णक के प्रताप से पासे राजा को हराते हुए गिरते। राजा जुए में कुशल था। जब उसने देखा कि पासे उसे ही हराते हुए गिर रहे हैं तो उसने उन्हे वहीं ऊपर ही रोककर फिर ऊपर फेंका। दूसरी बार भी अपने विरुद्ध पडते देखकर फिर वैसा ही किया। तब पुण्णक ने सोचा—"यह राजा मेरे जैसे यक्ष के साथ जुआ खेलते समय गिरते पासो को हाथ से पकड लेता है, क्या कारण है?" उसने उसके आरक्षक-देवता का प्रताप जाना, तो आँखे खोल-कर उसे क्रोध की सी नजर से देखा। वह डर के मारे भागी और चक्रवाल के ऊपर पहुँच कांपती हुई खड़ी हुई। राजा ने तीसरी बार भी पासे फेंके। यह जान लेने पर भी कि पासे उसके विरुद्ध पड रहे हैं वह पुण्णक के प्रताप के कारण हाथ बढाकर उन्हे रोक न सका। वे राजा के विरुद्ध गिरे। तब पुण्णक ने पासे फेंके। वे उसे जिताते हुए नीचे गिरे। यह जान कि राजा हार गया है, उसने ताली बजाई और जोर-जोर से तीन बार चिल्लाया—"मैंने जीत लिया, मैंने जीत लिया।" यह बात सारे जम्बुद्वीप में फैल गई। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> ते पाविसुं अक्खमदेन मत्ता
> राजा कुरून पुण्णको चापि यक्खो
> राजा कलिं विचिनं अग्गहेसि
> कटमग्गही पुण्णको नाम यक्खो ॥९१॥
> ते तत्थ जूते उभयो समागते
> रञ्ञ सकासे सखिनञ्च मज्झे,

अजेसि यक्खो नरविरियसेट्ठ
तत्थप्पनादो तुमुलो बभूव ॥९२॥

[जुए के मद से मत्त वे दोनो द्यूत-शालामे गये—कुरुओ का राजा तथा पुण्णक यक्ष। राजा ने चुनकर हारने की गोटी ग्रहण की और पुण्णक यक्ष न जीतने की गोटी ली ॥९१॥ वे दोनो द्यूत-शाला मे आकर राजाओ तथा सखियो के बीच में जुआ खेलने लगे। उस यक्ष ने उस नर-वीर्य्य श्रेष्ठ राजा को जीत लिया। इसकी बड़ी घोषणा हुई ॥९२॥]

राजा पराजित होने से असन्तुष्ट हुआ। उसे आश्वस्त करते हुए पुण्णक ने गाथा कही—

जयो महाराज पराजयो च
आयूहत अञ्ञतरस्स होति,
जनिन्द जिनोसि वर धनेन
जितो च मे खिप्पमवाकरोहि ॥९३॥

[महाराज! दो युद्ध करते है तो एक की जय और एक की पराजय होती ही है। हे जनेन्द्र! मैंने श्रेष्ठ धन जीत लिया। अब तू मुझे शीघ्र जय दे ॥९३॥]

राजा ने उसे "ले" कहते हुए गाथा कही—

हत्थी गवास्सा मणिकुण्डला च
यञ्चापि मय्ह रतन पथव्या,
गण्हाहि कच्चान वर धनान
आदाय येनिच्छसि तेन गच्छ ॥९४॥

[हाथी, बैल, घोड़े, मणि-कुण्डल और भी जो पृथ्वी में मेरा रतन है। हे कात्यायन! धनों मे जो श्रेष्ठ है वह ले और लेकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जा ॥९४॥]

पुण्णक बोला—

हत्थी गवास्सा मणिकुण्डला च
यञ्चापि तुय्ह रतन पथव्या,
तेस वरो विधुरो नाम कत्ता
सो मे जितो त मे अवाकरोहि ॥९५॥

[हाथी, बैल, घोड़े, मणि-कुण्डल और जो भी पृथ्वी मे तेरे रतन हैं, उन सब से श्रेष्ठ विधुर नामक कर्ता है। मैंने उसे जीत लिया है। वह मुझे दे ॥९५॥]

राजा बोला—

अत्ता च मे सो सरण,गती च
दीपो च लेणो च परायणो च,
असन्तुलेय्यो मम सो धनेन
पाणेन मे सदिसो एस कत्ता ॥९६॥

[वह मेरा अपना-आप है, वही मेरा शरण-स्थान है, वही मेरी गति है, वही मेरा द्वीप है, वही मेरा आश्रय-स्थान है, उसी के मै आश्रय हूँ। उसकी मै किसी धन से तुलना नही कर सकता। यह 'कर्ता' मेरे प्राण के समान है ॥९६॥]

पुण्णक बोला—

चिर विवादो मम तुम्हञ्चस्स
कामञ्च पुच्छाम तमेव गन्त्वा,
एसोव नो विवरतु एतमत्थ
य वक्खति होतु यथा उभिन्न ॥९७॥

[मेरा और तुम्हारा विवाद दीर्घ-काल से है। हम चलकर उसी से पूछे। वही हमे यह अर्थ स्पष्ट करेगा। जो कुछ वह कहेगा वही दोनो मानेगे ॥९७॥]

राजा बोला—

अद्धा हि सच्च भणसि न च माणव साहस,
तमेव गन्त्वा पुच्छाम तेन तुस्सामुभो जना ॥९८॥

[हे माणव! तू निश्चय मे सच्ची बात कहता है। यह जबर्दस्ती की बात नही है। उसी से चलकर पूछेंगे। उससे दोनो जन सन्तुष्ट होगे ॥९८॥]

यह कह राजा एक सौ राजाओ तथा माणवक को साथ ले प्रसन्न-मन से शीघ्र ही धर्म-सभा पहुँचा। पण्डित आसन से उठ राजा को नमस्कार कर एक ओर खड़ा हुआ। तब पुण्णक ने महासत्व को सम्बोधित कर कहा—"पण्डित! तू धर्म मे स्थित है। तू प्राण बचाने के लिये भी झूठ नही बोलता, यह तेरी कीर्ति लोक-प्रसिद्ध है। मै आज तेरे धर्म-स्थित होने की परीक्षा करूँगा। उसने गाथा कही—

सच्च नु देवा विदहू कुरून
धम्मे ठित विधुर नाम मच्च,
दासोसि रञ्ञो उदवासि जाति
विधुरोसि सखा कतमासि लोके ॥९९॥

[क्या देवता यह सत्य ही कहते है कि कुरु देश मे विधुर नाम का एक मनुष्य धर्म पर स्थित है ? यह जो लोक मे 'विधुर' सज्ञा है, वह क्या है ? क्या 'विधुर' राजा का दास है वा सम्बन्धी है ? ॥९९॥]

तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मुझसे इस प्रकार पूछता है। मै इसे 'राजा का जाति' भी कह सकता हूँ, 'राजा से श्रेष्ठ' भी कह सकता हूँ, 'राजा से कोई सम्बन्ध नही' भी कह सकता हूँ। लेकिन इस ससार मे सत्य के समान आधार नही है। सत्य ही बोलना चाहिये।" यह सोच उत्तर दिया—"माणवक! न मै राजा का रिशतेदार हूँ, न श्रेष्ठ हूँ, मै चार प्रकार के दासो मे ही एक प्रकार का हूँ।" यह प्रकट करने के लिये गाथा कही—

आमाय दासापि भवन्ति हेके
धनेन कीतापि भवन्ति दासा,
सयम्पि हेके उपयन्ति दासा
भयापणुन्नापि भवन्ति दासा ॥१००॥
एते नरान चतुरोव दासा
अद्धाहि योनितो अहम्पि जातो,
भवो च रञ्ञो अभवो च रञ्ञो
दासाहं देवस्स परम्पि गन्तवा
धम्मेन म माणव तुय्ह दज्जा ॥१०१॥

[दासी के पेट से जन्म ग्रहण करने से भी कुछ लोग 'दास' होते है। धन से खरीदे जाकर भी 'दास' होते है। कुछ स्वय ही 'दास' हो जाते है और भय से मजबूर होकर भी 'दास' हो जाते है ॥१००॥ आदमियो के ये चार प्रकार के 'दास' होते है। निश्चय से मै भी 'दास' योनि मे उपन्न हुआ हूँ। चाहे राजा की वृद्धि हो, चाहे अवृद्धि हो (मै झूठ नही बोल सकता)। दूर भी जाकर मै देव का दास ही रहूँगा। हे माणवक! राजा मुझे तुझे धर्मानुसार दे सकता है ॥१०१॥]

यह सुन पुण्णक ने प्रसन्न हो फिर ताली बजा गाथा कही—

अथ दुतीयो विजयो ममज्ज
पुट्ठो हि कत्ता विवरित्थ पञ्हं,
अधम्मरूपो वत राजसेट्ठो
सुभासित नानुजानासि मय्ह ॥१०२॥

[यह मेरी आज दूसरी विजय है। 'कर्ता' ने प्रश्न का समाधान कर दिया। किन्तु यह राज-श्रेष्ठ अधार्मिक है। यह मुझे (अभी भी) विधुर पण्डित को नही सौंपता ॥१०२॥]

यह सुना तो राजा को बोधिसत्व पर क्रोध आया—'यह मेरे जैसे ऐश्वर्य-दाता की ओर न देख अभी देखे माणवक की ओर झुकता है।' वह बोला—"यदि यह अपने को दास' कहता है तो ले जाओ।" उसने गाथा कही—

एव चे नो सो विवरेत्थ पञ्हं
दासो हमस्मि न च खोस्मि आति,
गण्हाहि कच्चान वर धनान
आदाय येन इच्छसि तेन गच्छ ॥१०३॥

[यदि यह इसी प्रकार प्रश्न का समाधान करता है और कहता है कि यह सम्बन्धी नहीं है, दास है, तो हे कच्चान यह जो धनो में श्रेष्ठ है इसे जहाँ इच्छा हो वहाँ लेकर जा ॥१०३॥]

अक्ष-कांड समाप्त

यह कह राजा ने सोचा—'माणवक पण्डित को लेकर जहाँ चाहेगा, जायगा। उसके चले जाने के बाद मेरे लिये मधुर-धर्मकथा दुर्लभ होगी। मैं इसे इसके स्थान पर स्थापित कर इससे गृहस्थी के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछूँ।' वह उससे बोला—पण्डित! तुम्हारे चले जाने पर मेरे लिये मधुर धर्म-कथा दुर्लभ हो जायगी। अलकृत धर्मासन पर बैठ अपने स्थान से मुझे गृहस्थी के प्रश्न का उत्तर दे।' उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और अलकृत धर्मासन पर बैठ, राजा के प्रश्न पूछने पर जो समाधान किया वह समाधान तथा प्रश्न इस प्रस प्रकार है—

विधुर वसमानस्स गहट्ठस्स सक घर,
खेमा वुत्ति कथ अस्स कथ नु अस्स सगहो ॥१०४॥

अब्यापज्झ कथ अस्स सच्चवादो च माणवो,
अस्मा लोका पर लोक कथ पेच्च न सोचति ॥१०५॥

[हे विधुर ! अपने घर मे रहनेवाले गृहस्थ का कल्याण कैसे होता है ? वह (चार) सग्रह (-वस्तुओ) को कैसे प्राप्त होता है ? ॥१०४॥ वह कैसे दुःख-रहित होता है, वह कैसे सत्यवादी होता है, और वह क्या करने से इस लोक से पर-लोक जाने पर नही सोचता है ? ॥१०५॥]

त तत्थ गतिमा धितिमा मतिमा अत्थदस्सिमा,
सखाता सब्बधम्मान विधुरो एतदब्रुवि ॥१०६॥

[उस गतिमान्, धृतिमान, मतिमान्, सब धर्मो के ज्ञाता, अर्थ-दर्शी, विधुर ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥१०६॥]

न साधारणदारस्स न भुञ्जे सादुमेकतो,
न सेवे लोकायतिक नेत पञ्ञाय वड्ढन ॥१०७॥
सीलवा वत्तसम्पन्नो अप्पमत्तो विचक्खणो,
निवातवुत्ति अत्थद्धो सूरतो सखिलो मुदु ॥१०८॥
सगहेता च मित्तान सविभागी विधानवा,
तप्पेय्य अन्नपानेन सदा समणब्राह्मणे ॥१०९॥
धम्मकामो सुताधारो भवेय्य परिपुच्छको,
सक्कच्च पोयरुपासेय्य सीलवन्ते बहुस्सुते ॥११०॥
घरमावसमानस्स गहट्ठस्स सक घर,
खेमा वुत्ति सिया एव एव नु अस्स सगहो ॥१११॥
अब्यापज्झो सिया एव सच्चवादी च माणवो,
अस्मा लोका पर लोक एव पेच्च न सोचति ॥११२॥

[पराई स्त्रियों के साथ अपनी स्त्री का सा व्यवहार न करे, स्वादिष्ट चीज अकेला न खाये, लोकायतवादी (-भौतिकवादी) की सगति न करे। इससे प्रज्ञा की वृद्धि नही होती ॥१०७॥ सदाचारी, गृहस्थों के काम अथवा सरकारी काम करनेवाला, अप्रमादी, बुद्धिमान, विनम्र, मात्सर्य्य-रहित, सयत, प्रेम-भरी मधुर वाणी बोलने वाला हो ॥१०८॥ मित्रो का सग्रह करने वाला, दान-शील, उस उस कार्य्य के समय का जानकार और सदा अन्न-पान से श्रमण-ब्राह्मणो की सेवा करने

वाला हो ॥१०६॥ धर्म की कामना करने वाला हो, श्रुत (-ज्ञान) का आधार हो, प्रश्न पूछनेवाला हो और सदाचारी बहुश्रुत लोगो की अच्छी तरह उपासना करने वाला हो ॥११०॥ अपने घर मे रहनेवाले गृहस्थ का इस प्रकार कल्याण होता है, और इस प्रकार (चार वस्तुओ का) सग्रह होता है ॥१११॥ इस प्रकार आदमी सुखी होता है और इसी प्रकार सत्यवादी होता है। इस लोक से परलोक जाने पर फिर नही सोचता है ॥११२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को गृहस्थी सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दे, धर्मासन से उतर, राजा को नमस्कार किया। राजा ने भी उसका बहुत सत्कार किया और भी राजाओ के साथ अपने राज-भवन ही चला गया।

घरवास-प्रश्न समाप्त

बोधिसत्व रुका। तब पुण्णक बोला—

एहिदानि गमिस्साम दिन्नो नो इस्सरेन मे,
नमेवत्थ पटि् पज्ज एस धम्मो सनन्तनो॥११३॥

[आओ अब चले। तुम्हे राजा ने मुझे दे दिया है। अब मेरा ही कहना कर, यही परम्परागत धर्म है ॥११३॥]

विधुर पण्डित बोला—

जानामि माणव तयाहमस्मि
दिन्नो हमस्मि तव इस्सरेन,
तीहञ्च त वासयेमु अगारे
येनद्धुना अनुसासेमु पुत्ते॥११४॥

[हे माणवक! मै जानता हूँ कि तूने मुझे प्राप्त किया है। राजा ने मुझे तुझे दिया है। हम तीन दिन तुझे यहाँ घर मे रखे, जिस समय मे मै अपने स्त्री-बच्चों को समझा लूं ॥११४॥]

यह सुना तो पुण्णक ने सोचा, "पण्डित ने ठीक कहा है। इसने मेरा बहुत उपकार किया है। सप्ताह या आधा महीना भी कहे तो भी प्रतीक्षा करना ही योग्य है।" वह बोला—

त मे तथा होतु वसेमु तीह
कुरुत भव अज्ज घरेसु किच्च,
अनुसासत पुत्तदारे भवज्ज
यथा तयि पच्छा सुखी भवेय्य ॥११५॥

[यह ऐसा ही हो। हम तीन दिन रहे। आप घर का काम करे। आप स्त्री-वच्चो को जो कहना-सुनना हो कहे, जिससे आपके (चले जाने) पर वे सुखी रहे ॥११६॥)

इतना कह पुण्णक बोधिसत्व के साथ ही उसके घर गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

साधूति वत्वान पहूतकामो
पक्कामि यक्खो विधुरेन सद्धिं,
त कुञ्जराजञ्जहयानुचिण्ण
पावेक्खि अन्तो पुरमरियसेट्ठो ॥११६॥

['अच्छा' कहकर वह महाऐश्वर्यशाली यक्ष विधुर के साथ (उसके) घर गया। उस आर्य-श्रेष्ठ ने हाथी तथा श्रेष्ठ घोडो से युक्त अन्त पुर देखा ॥११६॥]

तीन ऋतुओ के लिये बोधिसत्व के तीन प्रासाद थे— एक का नाम था क्रोञ्च-प्रासाद, दूसरे का मयूर-प्रासाद और तीसरा प्रिय-केत नाम। उसके सम्बन्ध में ये गाथाये है—

कोञ्च मयूरञ्च पियञ्च केतं
उपागमी तत्थ सुरम्मरूप
पहूतभक्ख बहु अन्नपाण
मसक्कसार विय वासवस्स ॥११७॥

[वह क्रौञ्च, मयूर और प्रिय-केत प्रासादो मे (से जहाँ वह उस समय रहता था) पहुचा, जो सुन्दर था जहाँ खाना-पीना बहुत था और जो इन्द्र के मसक्कसार के समान था ॥११७॥]

वहाँ पहुच, उसने अलकृत प्रासाद के सातवें तल्ले पर शयनागार और आँगन सजवाकर शैय्या बिछवाकर, सब खाने-पीने की व्यवस्था कर, देव-कन्याओ के समान पाँच सौ स्त्रियों को उसकी चरण-सेविका बना और उसे निश्चिन्त होकर रहने के

लिये कह, अपने वास-स्थान को गया। उसके जाने पर उन स्त्रियो ने नाना प्रकार के वाजे आदि ले पुण्णक की परिचर्य्या मे नृत्यादि किये।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

तत्थ नच्चन्ति गायन्ति
अव्हयन्ति वरा वर
अच्छरा विय देवेसु
नारियो समलकता ॥११८॥

[जिस प्रकार अप्सराये देव-लोक मे नाचती-गाती है, उसी प्रकार समलकृत नारियाँ एक से एक बढकर नाच-गान करने लगी ॥११८॥]

समगि कत्वा पमदाहि यक्ख
अन्नेन पाणेन च धम्मपालो,
अत्थत्थमेवानुविचिन्तयन्तो
पावेक्खि भरियाय तदा सकासे ॥११९॥

[यक्ष के पास स्त्रियो को छोड और (उसके) खान-पान की व्यवस्था कर सत्यार्थ का ही विचार करता हुआ वह धर्म-पालक अपनी भार्य्या के पास गया ॥११६॥]

त चन्दनगन्धरसानुलित्त
सुवण्ण जम्बोनद निनक्ख सादिस,
भरिय च एहि सुणोहि भोति
पुत्तानि आमन्तय तम्बनेत्ते ॥१२०॥

[उसने उस जम्बुनद स्वर्ण सदृश, चन्दन की सुगन्धि से सुगन्धित भार्य्या को बुलाकर कहा कि हे भगवति! आ सुन और हे रक्त नेत्रे! पुत्रो को भी बुला ले ॥१२०॥]

सुत्वान वाक्य पतिनो अनुज्जा
सुनिस वच तम्बनखी सुनेत्त,
आमन्तय वम्मधरानि चेते
पुत्तानि इन्दीवर पुप्फसामे ॥१२१॥

[उस अनुज्जा नामवाला ताम्र-नेत्रा ने पति की वात सुन अपनी सुनेत्र लडकी को वुलाया—हे चेते ! हे इन्दीवर पुष्प के समान ! आभूपणधारी पुत्रो को बुला ॥१२१॥]

उसने 'अच्छा' कहा और प्रासाद मे घूमकर सूचना दी —"पिता उपदेश देने के लिये सब को वुलाते है ।" उसने यह कहकर कि 'यही उनका अन्तिम दर्शन है' उसके सभी सुहृदो को तथा पुत्र-पुत्रियो को इकट्ठा कर लिया । धर्मपाल-कुमार यह सुनते ही रो पडा और अपने छोटे भाई को साथ लिये पिता के पास पहुचा । पण्डित ने उन्हे देखा तो वह होश सभाले नही रह सका । उसने अश्रु-पूर्ण नेत्रो से आलिगन किया, सिर चूमा, ज्येष्ठ लडके को थोडी देर छाती से लगा, उतारकर शयनागार से निकला और आगन मे आसन पर बैठ हजारो पुत्रो को उपदेश दिया ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ते आगते मुद्धनि धम्मपालो
चुम्बित्वा पुत्ते अविकम्पमानो,
आमन्तयित्वा च अवोच वाक्य
दिन्नाह रञ्जा इध माणवस्स ॥१२२॥
तस्सज्जह अत्तसुखी विधेय्यो
आदाय येनिच्छति तेन गच्छति,
अहञ्च वो सासितु आगतोस्मि
कथ अह अपरित्ताय गच्छे ॥१२३॥
सचे वो राजा कुरुक्खेत्तवासी
जनसन्धो पुच्छेय्य पहूतकामो,
किमाभिजानाथ पुरे पुराण
किं वो पिता अनुसासे पुरत्था ॥१२४॥
समासना होथ मथाव सब्बे
कोनिध रञ्ञो अब्भतिको मनुस्सो,
तमञ्जलिं करिय वदेथ एव
माहेव देव नहि एस धम्मो,
वियग्घराजस्स निहीनजच्चो
समासनो देव कथा भवेय्य ॥१२५॥

[उनके आने पर धर्म पालने उन्हे सिर पर चूमा ओर उन्हे सम्वोधित कर दृढता-पूर्वक कहा—राजा ने मुझे इस माणवक को दे दिया ।।१२२।। मै आज तो आत्म-सुखी हूँ, किन्तु इसके वाद माणवक की आज्ञा मे रहना होगा । वह जहाँ चाहेगा, मुझे ले जायेगा । मै तुम्हे कहने-सुनने के लिये आया हूँ । मै विना तुम्हारा त्राण किये कैसे जा सकता हूँ ।।१२३।। यदि कुरुक्षेत्रवासी, जन-सन्ध, ऐश्वर्यवान राजा पूछे—'तुम पुरानी वात क्या जानते हो?" तुम्हारे पिता ने क्या सिखाया है?" और कहे 'तुम सव मेरे साथ वैठो । तुमसे अधिक राजा का कौन प्रिय है? तो तुम उसे हाथ जोडकर कहना, देव ! ऐसा नही । यह धर्म नही है । हे देव ! व्याघ्र-राज और हीन जन्मा (गीदड) कैसे वरावर हो सकते हैं? ।।१२४-१२५।।]

उसका यह कथन सुन, लडके-लडकी, सम्वन्धी, सुहृद और सारी दास-परिषद सभी अपने ऊपर कावू न रख सकने के कारण जोर से रो पडे । वोधिसत्व ने उन्हे शान्त किया ।

पेक्खण-कांड समाप्त

तव उसने उन रिशतेदारो के पास जा और उन्हे चुप देख कहा—"तात चिन्ता न करो । सभी सस्कार अनित्य है । ऐश्वर्य के अन्त मे विपत्ति आती है । तो भी मै तुम्हे ऐश्वर्य देनेवाली 'राज्य-सेवा' की बात कहता हूँ । इसे एकाग्र-चित्त होकर सुनो ।" उसने 'बुद्ध-लीला' से राज-कुल मे वसने का वर्णन किया ।

यो च मित्ते अमच्चे च ञातयो सुहद जने,
अलीनमनसकप्पो विधुरो एतदब्रवी ।।१२६।।
एथय्यो राजवसति निसीदित्वा सुणोथ मे,
यथा राजकुल पत्तो यस पोसो निगच्छति ।।१२७।।

[सत्य-सकल्प विधुर के जितने भी मित्र थे, अमात्य थे, रिशतेदार थे, सुहृदजन थे उन सवको यह कहा ।।१२६।। यहाँ आओ, और वैठ कर मुझसे राज-कुल मे वसने की वात सुनो कि राजकुल मे किस प्रकार रहने से आदमी ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ।।१२७।।]

नहि राजकुल पत्तो अञ्ञातो लभते यस,
नासूरो नपि दुम्मेधो नप्पमत्तो कुदाचन ।।१२८।।

[राजकुल मे न तो कभी किसी अप्रसिद्ध आदमी को ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, न किसी अशूर को, और न कभी किसी दुर्बुद्धि को और न कभी किसी प्रमादी को ॥१२८॥]

यदास्स सील पञ्ञञ्च सोचेय्यञ्चाधिगच्छति,
अथ विस्ससते त्यम्हि गुय्हञ्चस्स न रक्खति॥१२९॥

[जब आदमी के शील, प्रज्ञा तथा सखी-भाव की राजा को जानकारी होती है तो वह उसका विश्वास करता है और कोई रहस्य की बात भी छिपाकर नही रखता ॥१२९॥]

तुला यथा पग्गहिता समदण्डा सुधारिता,
अज्झिट्ठो न विकम्पेय्य स राजवसति वसे॥१३०॥
तुला यथा पग्गहिता समदण्डा सुधारिता,
सब्बानि अभिसम्भोन्तो स राजवसति वसे॥१३१॥

[जो आदमी राजा के कुछ आज्ञा देने पर अच्छी प्रकार पकड़ी हुई तराजु की तरह बिना हिले डुले स्थिर रह सके, वही आदमी राजकुल मे वसे ॥१३०॥ जो आदमी सभी राज्य-कृत्य कर सके और अच्छी प्रकार पकड़ी गई तराजू की तरह स्थिर रह सके वही राजकुल में वसे ॥१३१॥]

दिवा वा यदि वा रत्ति राजकिच्चेसु पण्डितो,
अज्झिट्ठो न विकम्पेय्य स राजवसति वसे॥१३२॥
दिवा वा यदि वा रत्ति राजकिच्चेसु पण्डितो,
सब्बानि अभिसम्भोन्तो स राजवसति वसे॥१३३॥
यो चस्स सुकतो मग्गो रञ्ञो सुप्पटियादितो,
न तेन वुत्तो गच्छेय्य स राजवसति वसे॥१३४॥

[चाहे दिन हो चाहे रात हो जो पण्डित राज-कार्य होने पर उसे स्थिर-भाव से कर सके वही राजकुल में रहे ॥१३२॥ चाहे दिन हो और चाहे रात हो जो पण्डित राज-कार्य होने पर सभी कार्य्यों को कर सके वही राज-कुल में वास करे ॥१३३॥ जो राजा के अपने चलने का तैय्यार किया गया मार्ग हो राजा के कहने पर भी जो उस मार्ग पर न चले, वह राज-कुल में वास करे ॥१३४॥]

न रञ्ञो समकं भुञ्जे कामभोगे कुदाचनं,
सब्बत्थ पच्छतो गच्छे स राजवसतिं वसे ॥१३५॥
न रञ्ञो सदिसं वत्थं न मालं न विलेपनं,
आकप्पं सरकुत्तिं वा न रञ्ञो सदिसमाचरे,
अञ्ञं करेय्य आकप्पं, स राजवसतिं वसे ॥१३६॥

[जो राजा की बराबरी के काम-भोगों का उपभोग न करे, सदैव राजा के पीछे पीछे ही चले—वही राज-कुल में वास करे ॥१३५॥ जो न राजा के समान वस्त्र पहने, न माला और विलेपन धारण करे, न वैसी पोशाक पहने, न वैसा स्वर ही निकाले और जो दूसरा ही व्यवहार रक्खे—वही राज-कुल में वास करे ॥१३६॥]

कीळे राजा अमच्चेहि भरियाहि परिवारितो,
नामच्चो राजभरियासु भावं कुब्बेथ पण्डितो ॥१३७॥
अनुद्धतो अचपलो निपको संवुतिन्द्रियो,
मनो पणिधिसम्पन्नो स राजवसतिं वसे ॥१३८॥

[भले ही राजा अमात्यों की भार्य्याओं से क्रीडा करता रहे, किन्तु पण्डित अमात्य को चाहिये कि वह रानियों के प्रति अपना भाव संयत रखे ॥१३७॥ उद्धत न हो, चपल न हो, बुद्धिमान हो, संयत हो और शान्त मन वाला हो—वही राजकुल में वास करे ॥१३८॥]

नास्स भरियाहि कीळेय्य न मन्तेय्य रहोगतो,
नास्स कोसा धनं गण्हे स राजवसतिं वसे ॥१३९॥
न निद्दं बहु मञ्ञे न मदाय सुरं पिवे,
नास्स दाये मिगं हञ्ञे स राजवसतिं वसे ॥१४०॥
नास्स पीठं न पल्लङ्कं न कोच्छं न नागं रथं,
सम्मतोम्हीति आरूहे स राजवसतिं वसे ॥१४१॥
नातिदूरे भवे रञ्ञो नाच्चासन्ने विचक्खणो,
सम्मुखञ्चस्स तिट्ठेय्य सन्दिस्सन्तो सभत्तुनो ॥१४२॥
न वे राजा सखा होति न राजा होति मेथुनो,
खिप्पं कुज्झन्ति राजानो सूकेनक्खीव घट्टितं ॥१४३॥
न पूजितो मञ्ञमानो मेधावी पण्डितो नरो,
फरुसं पतिमन्तेय्य राजानं परिसं गतं ॥१४४॥

[जो राजा की रानियों के साथ न खेले और न उनसे एकान्त में बात-चीत करे और न उसके कोष से धन चुराये—वही राज-कुल में वास करे ॥१३९॥ जो न बहुत सोये, न नशे के लिये सुरापान करे और न राजा के जंगल में हिरणों का शिकार करे—वही राजकुल में वास करे ॥१४०॥ जो न उसके पीढ़े पर, न पलग पर, न कोच (कोच्छ) पर बैठे और न उसके हाथी पर अथवा उसके रथ पर अपने आपको आदृत्त समझकर चढ़े—वही राज-कुल में वास करे ॥१४१॥ पण्डित आदमी को चाहिये कि न राजा से बहुत दूर रहे और न उसके बहुत समीप रहे, इतनी दूर रहे जहाँ से राजा की बात सुन सके और उसे दिखाई देता रहे ॥१४२॥ राजा न सखा होता है और न वह जोड़ी-दार होता है। जैसे आँख में सलाई लग जाने से वह क्षुब्ध हो जाती है उसी प्रकार राजा भी शीघ्र क्षुब्ध हो जाता है ॥१४३॥ मेधावी, पण्डित आदमी को चाहिये कि अपने आपको "पूजित" मानकर राज-सभा में कठोरवाणी का व्यवहार न करे ॥१४४॥]

लद्धद्वारो लभे द्वार नेव राजुसु विस्ससे,
अग्गीव यतो तिट्ठेय्य स राजवसतिं वसे ॥१४५॥
पुत्त वा भातर त वा सम्पग्गण्हाति खत्तियो,
गामेहि निगमेहि वा रट्ठे जनपदेहि वा,
तुण्हीभूतो उपेक्खेय्य न भणे छेकपापक ॥१४६॥

[जाने का अवकाश मिलने पर जाये। राजाओं का विश्वास न करे। जो अग्नि की तरह अप्रमादी रहे—वही राज-कुल में वास करे ॥१४५॥ जब राजा ग्राम, निगम, राष्ट्र, जनपद की बात कर पुत्र या अपने भाई की बात करे, उस समय चुप रहकर देखना चाहिये। भला बुरा-कुछ नही बोलना चाहिये ॥१४६॥]

हत्थारूहे अनीकट्ठे रथिके पत्तिकारके
तेस कम्माव दानेन राजा वड्ढेति वेतन,
न तेस अन्तरा गच्छे स राजवसति वसे ॥१४७॥
चापावूनूदरो धीरो वसोवापि पकम्पियो,
पटिलोम न वत्तेय्य स राजवसति वसे ॥१४८॥
चापोवूनूदरो अस्स मच्छोवस्स अजिव्हवा,
अप्पासी निपको सूरो स राजवसति वसे ॥१४९॥

[हाथी-सवार, रथ-सवार और पैदल जितने भी सैनिक हैं, राजा उनके काम के अनुसार उनका वेतन बढ़ाता है। जो आदमी बीच में बाधक न हो वही राजकुल में बसे ॥१४७॥ जो धनुष की तरह छोटे पेट वाला हो, बाँस की तरह झुक सकने वाला हो और जो प्रतिकूल व्यवहार न करे वही राज-कुल में वास करे ॥१४८॥ जिसका पेट धनुष की तरह छोटा हो और जो मछली की तरह जिह्वा-रहित हो (अर्थात् मितभाषी हो) और जो अल्पाहारी हो वही बुद्धिमान शूर पुरुष राज-कुल में वास करे ॥१४९॥]

न बाळ्ह इत्थि गच्छेय्य सम्पस्स तेजसखय,
कास सास दर बल्य खीणमेधो निगच्छति ॥१५०॥
नातिवेलं पभासेय्य न तुण्ही सब्बदा सिया,
अविकिण्ण मित वाच पत्तेकाले उदीरये ॥१५१॥
अक्कोधनो असघट्टो सच्चो सण्हो अपेसुणो,
सम्फ गिर न भासेय्य स राजवसति वसे ॥१५२॥

[अपनी तेजस्विता को क्षय का कारण जान पुरुष को चाहिये कि वह बार बार स्त्री के पास न जाय। ऐसा करनेवाला मूर्ख खाँसी, दमा, शरीर-पीड़ा तथा दुर्बलता को प्राप्त होता है ॥१५०॥ न बहुत देर तक बोले और न सदैव चुप ही रहे। उचित समय पर सीमित नपी-तुली वाणी बोले ॥१५१॥ जो अक्रोधी हो, झगड़ालू न हो, सत्यवादी हो, प्रियवादी हो, चुगलखोर न हो और व्यर्थ न बोले वही राज-कुल में वास करे ॥१५२॥]

माता पेत्ति भरो अस्स कुले जेट्ठापचायको,
हिरि ओत्तप्प सम्पन्नो स राजवसति वसे ॥१५३॥
विनीतो सिप्पवा दन्तो कतत्तो नियतो मुदू,
अप्पमत्तो सुचि दक्खो स राजवसति वसे ॥१५४॥
निवातवुत्ति वद्धेसु सप्पतिस्सो सगारवो,
सूरतो सुखसम्भासो स राजवसति वसे ॥१५५॥
आरका परिवज्जेय्य सहितुं पहित जन,
भत्तारञ्ञेवुदिक्खेय्य अनञ्ञस्स च राजिनो ॥१५६॥

[माता-पिता की सेवा करनेवाला हो, कुल में बड़े का आदर करनेवाला हो और लज्जा-भय युक्त हो वही राज-कुल में वास करे ॥१५३॥ जो विनीत हो,

विद्वान हो, सयत हो, अभ्यासी हो, स्थिर हो, मृदु हो, अप्रमादी हो, पवित्र हो और दक्ष हो वही राज-कुल मे वास करे ।।१५४।। बडो के प्रति विनम्र हो, गौरव-भाव युक्त हो, दयावान् हो और जिससे भाषण करने मे सुख मिलता है। वही राज-कुल मे वास करे ।।१५५।। गुप्त बात जानने आदि के लिये भेजे गये अन्य राज-पुरुषो से दूर ही दूर रहे, अपने स्वामी की ही ओर देखे, दूसरे किसी राजा की ओर नहीं ।।१५६।।]

समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्च पयिरुपासेय्य स राजवसति वसे ।।१५७।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्च अनुवासेय्य स राजवसति वसे ।।१५८।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
तप्पेय्य अन्नपाणेन स राजवसति वसे ।।१५९।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
आसज्ज पञ्ञे सेवेथ आकङ्ख बुद्धिमत्तनो ।।१६०।।

[शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो की भली प्रकार सगति करनेवाला, उनका अनुकरण करनेवाला, उनकी अन्न-पान से सेवा करने वाला ही राज-कुल में वास करे ।।१५७-१५९।। जो अपनी उन्नति चाहता हो वह शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो के पास जाकर प्रज्ञावानो की सगति करे ।।१६०।।]

दिन्नपुब्ब न हापेय्य दान समणब्राह्मणे,
न च किञ्चि निवारेय्य दानकाले वणिब्बके ।।१६१।।
पञ्ञवा बुद्धिसम्पन्नो विधानविधि कोविदो
कालञ्ञू समयञ्ञू च स राजवसति वसे ।।१६२।।
उट्ठाता कम्मधेय्येसु अप्पमत्तो विचक्खणो,
सुसविहित कम्मन्तो स राजवसति वसे ।।१६३।।

[श्रमण-ब्राह्मणो को जो परम्परागत दान दिया जाता रहा हो उसे बन्द न करे और दान देने के समय आये हुए किसी याचक को न रोके ।।१६१।। जो प्रज्ञावान् है, जो बुद्धि-युक्त है, जो नाना प्रकार के नियमो से परिचित है जो काल और समय का जानकार है वही राज-कुल मे वास करे ।।१६२।। जो अपने कर्तव्यो के प्रति उत्साही

[हाथी-सवार, रथ-सवार और पैदल जितने भी सैनिक हैं, राजा उनके काम के अनुसार उनका वेतन बढ़ाता है। जो आदमी बीच में बाधक न हो वही राजकुल में बसे ।।१४७।। जो धनुष की तरह छोटे पेट वाला हो, बाँस की तरह झुक सकने वाला हो और जो प्रतिकूल व्यवहार न करे वही राज-कुल में वास करे ।।१४८।। जिसका पेट धनुष की तरह छोटा हो और जो मछली की तरह जिह्वा-रहित हो (अर्थात् मितभाषी हो) और जो अल्पाहारी हो वही बुद्धिमान शूर पुरुष राज-कुल में वास करे ।।१४९।।]

न बाळ्ह इत्थि गच्छेय्य सम्पस्सं तेजसङ्खयं,
कासं सासं दरं बल्यं खीणमेधो निगच्छति ।।१५०।।
नातिवेलं पभासेय्य न तुण्ही सब्बदा सिया,
अविकिण्णं मितं वाचं पत्तेकाले उदीरये ।।१५१।।
अक्कोधनो असङ्घट्टो सच्चो सण्हो अपेसुणो,
सम्फं गिरं न भासेय्य स राजवसतिं वसे ।।१५२।।

[अपनी तेजस्विता को क्षय का कारण जान पुरुष को चाहिये कि वह बार बार स्त्री के पास न जाय। ऐसा करनेवाला मूर्ख खाँसी, दमा, शरीर-पीड़ा तथा दुर्बलता को प्राप्त होता है ।।१५०।। न बहुत देर तक बोले और न सदैव चुप ही रहे। उचित समय पर सीमित नपी-तुली वाणी बोले ।।१५१।। जो अक्रोधी हो, झगड़ालू न हो, सत्यवादी हो, प्रियवादी हो, चुगलखोर न हो और व्यर्थ न बोले वही राज-कुल में वास करे ।।१५२।।]

मातापेत्तिभरो अस्स कुले जेट्ठापचायको,
हिरिओत्तप्पसम्पन्नो स राजवसतिं वसे ।।१५३।।
विनीतो सिप्पवा दन्तो कतत्तो नियतो मुदु,
अप्पमत्तो सुचि दक्खो स राजवसतिं वसे ।।१५४।।
निवातवुत्ति वद्धेसु सप्पतिस्सो सगारवो,
सूरतो सुखसम्भासो स राजवसतिं वसे ।।१५५।।
आरका परिवज्जेय्य सहितुं पहितं जनं,
भत्तारञ्ञेवुदिक्खेय्य अनञ्ञस्स च राजिनो ।।१५६।।

[माता-पिता की सेवा करनेवाला हो, कुल में बड़े का आदर करनेवाला हो और लज्जा-भय युक्त हो वही राज-कुल में वास करे ।।१५३।। जो विनीत हो,

विद्वान हो, सयत हो, अभ्यासी हो, स्थिर हो, मृदु हो, अप्रमादी हो, पवित्र हो और दक्ष हो वही राज-कुल मे वास करे ।।१५४।। बडो के प्रति विनम्र हो, गौरव-भाव युक्त हो, दयावान् हो और जिससे भाषण करने मे सुख मिलता है। वही राज-कुल मे वास करे ।।१५५।। गुप्त बात जानने आदि के लिये भेजे गये अन्य राज-पुरुषों से दूर ही दूर रहे, अपने स्वामी की हो ओर देखे, दूसरे किसी राजा की ओर नहीं ।।१५६।।]

समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्च पयिरुपासेय्य स राजवसति वसे ।।१५७।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्च अनुवासेय्य स राजवसति वसे ।।१५८।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
तप्पेय्य अन्नपाणेन स राजवसति वसे ।।१५९।।
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
आसज्ज पञ्ञे सेवेथ आकङ्ख बुद्धिमत्तनो ।।१६०।।

[शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो की भली प्रकार सगति करनेवाला, उनका अनुकरण करनेवाला, उनकी अन्न-पान से सेवा करने वाला ही राज-कुल मे वास करे ।।१५७-१५९।। जो अपनी उन्नति चाहता हो वह शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो के पास जाकर प्रज्ञावानो की सगति करे ।।१६०।।]

दिन्नपुब्ब न हापेय्य दान समणब्राह्मणे,
न च किञ्चि निवारेय्य दानकाले वणिब्बके ।।१६१।।
पञ्ञवा बुद्धिसम्पन्नो विधानविधि कोविदो
कालञ्ञू समयञ्ञू च स राजवसति वसे ।।१६२।।
उट्ठाता कम्मधेय्येसु अप्पमत्तो विचक्खणो,
सुसविहित कम्मन्तो स राजवसति वसे ।।१६३।।

[श्रमण-ब्राह्मणो को जो परम्परागत दान दिया जाता रहा हो उसे बन्द न करे और दान देने के समय आये हुए किसी याचक को न रोके ।।१६१।। जो प्रज्ञावान् है, जो बुद्धि-युक्त है, जो नाना प्रकार के नियमो से परिचित है जो काल और समय का जानकार है वही राज-कुल में वास करे ।।१६२।। जो अपने कर्तव्यो के प्रति उत्साही

हों, जो अप्रमादी हो, जो बुद्धिमान हो और जिसने अपने कामों को व्यवस्थित कर रखा हो वही राज-कुल मे वसे ।।१६३।।]

बल साल पसुं खेत्त गन्ताचस्स अभिक्खण,
मित धञ्ञ निधापेय्य मितञ्च पाचये घरे ।।१६४।।
पुत्त वा भातरं स वा सोलेसु असमाहित,
अनगवा हि ते बाला यथा पेता तथेव ते
चोळञ्च नेस पिण्डञ्च आसीनान व दापये ।।१६५।।
दासे कम्मकरे पेस्से सीलेसु सुसमाहिते,
दक्खे उट्ठानसम्पन्ने अधिपच्चस्मि ठापये ।।१६६।।

[सेना, शाला, पशु-स्थान तथा खेत को बार-बार जाकर देखनेवाला हो । नापकर घर मे धान्य रखे और नापकर पकाये ।।१६४।। चाहे पुत्र हो और चाहे भाई हो यदि वह शीलवान् न हो तो वह सम्बन्धी नहीं है । वह प्रेत के ही समान है । उन्हे जैठे बिठाओ को ही भोजन तथा वस्त्र दे दे अर्थात् उन्हे किसी पद पर प्रतिष्ठित न करे ।।१६५।। चाहे दास हो, चाहे श्रमिक हो, चाहे सन्देसा ले जानेवाले दूत हो, यदि वे दक्ष हो, उत्साही हो तो उन्हे ही किसी पद पर प्रतिष्ठित करे ।।१६६।।]

सीलवा च अलोलो च अनुरत्तोचस्स राजिनो,
आवी रहो हितो तस्स स राजवसति वसे ।।१६७।।
छन्दञ्ञू राजिनो अस्स चित्तट्ठोचस्स राजिनो,
असकुम्भकवत्तिस्स स राजवसति वसे ।।१६८।।
उच्छादये च नहापये घोवे पादे अघोसिर,
आहतोपि न कुप्पेय्य स राजवसति वसे ।।१६९।।

[जो सदाचारी हो, निर्लोभी हो, अपने राजा के प्रति अनुरक्त हो, तथा प्रकट और अप्रकट रूप में सदा ही उसका हितचिन्तक हो, वह राज-कुल मे वास करे ।।१६७।। जो राजा की इच्छा से परिचित हो, जिसके वश मे राजा की इच्छा हो, जो उसके अनुकूल बरतने वाला हो, वही राज कुल में वास करे ।।१६८।। मालिश करे, नहलाय, सिर नीचा करके पैर धोये और आहत होने पर क्रोध न करे, वही राजकुल में वास करे ।।१६९।।]

कुम्भम्पि पञ्जलिं कुरिया वायस वा पदक्खिण,
किमेव सब्बकामान दातार धीरमुत्तम ॥१७०॥
यो देति सयन वत्थ यान आवसथ घर
पज्जुन्नोरिव भूतानि भोगेहिमभिवस्सति ॥१७१॥
एसय्यो राजवसति वत्तमानो यथा नरो
आराधयति राजानं पूज लभति भत्तुसू ॥१७२॥

[जब कुछ न देनेवाले पानीके घडो को भी हाथ जोडा जाता है और कौवे की भी प्रदक्षिणा की जाती है, तो फिर जो सभी इच्छाओ की पूर्ति करने वाला श्रेष्ठ दाता है उसे क्यों नही ? ॥१७०॥ जिस प्रकार बादल प्राणियो पर भोग्य-वस्तुओ की वर्षा करता है, उसी प्रकार जो शयनासन, वस्त्र, दान, निवास-स्थान तथा घर देता है, उसे क्यो नही ? ॥१७१॥ आर्यो ! यह वह राज-कुल-वास है जिसका मैंने वर्णन किया है और जिसके अनुसार रहनेवाला आदमी राजा को प्रसन्न करता है और राजा से पूजा प्राप्त करता है ॥१७२॥]

राज-कुल-निवास काण्ड समाप्त

इस प्रकार पुत्र स्त्री मित्र आदि को उपदेश देते हुए ही तीन दिन समाप्त हो गये। जब उसने जाना कि तीन दिन पूरे हो गये तो वह 'कल प्रात काल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, राजा को देख, माणवक के साथ जाऊगा' सोच सम्बन्धियो के साथ राज-महल में गया और राजा को प्रणाम कर, एक ओर खडे हो, उस कहने योग्य बात कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

एव समनुसासित्वा ञातिसघ विचक्खणो,
परिकिण्णो सुहदेहि राजानमुपसकमि ॥१७३॥
वन्दित्वा सिरसा पादे कत्वा च न पदक्खिण,
विधुरो अवच राजान पग्गहेत्वान अञ्जलिं ॥१७४॥
अय म मानवो नेति कत्तुकामो यथामति,
ञातीनत्थ पवक्खामि त सुणोहि अरिन्दम ॥१७५॥
पुत्ते च मे उदिक्खेसि यञ्च मञ्ञ घरे धन,
यथा पेच्च न हायेथ ञातिसंघो मयी गते ॥१७६॥

यथेव खलती भुम्या भुमियाव पतिट्ठति,
एवमेत खलित मय्हं एव पस्सामि अच्चय ॥१७७॥

[इस प्रकार वह बुद्धिमान (विधुर) रिशतेदारो तथा सम्बन्धियो को समझाकर मित्रो के साथ राजा के पास पहुचा ॥१७३॥ सिर से पैरो मे नमस्कार कर, प्रदक्षिणा कर और हाथ जोडकर विधुर राजा से बोला ॥१७४॥ ये माणवक मुझे जो इसकी इच्छा हो उस काम के लिये ले जा रहा है। हे राजन्! मै अपने सम्बन्धियो के हित की बात कहता हूँ, वह सुने ॥१७५॥ मेरे पुत्रो की ओर तथा तेरा और अन्य राजाओ का दिया हुआ जो धन है उसकी ओर देखना ताकि मेरे जाने पर जाति-सघ की अवस्था न विगडे ॥१७६॥ जैसे आदमी भूमि पर फिसलता है लेकिन फिर भूमि पर ही प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार मेरा भी फिसलना हुआ है। मै अपना दोष स्वीकार करता हूँ ॥१७७॥]

यह सुन राजा ने कहा, "पण्डित! तेरा जाना मुझे अच्छा नही लगता। तू मत जा। मुझे तो यह अच्छा लगता है कि माणवक को न्याय से ही वुलाकर, मारकर छिपा दे।" यह प्रकट करते हुए गाथा कही—

सक्का न गन्तुं इति मय्ह होति
भात्वा वधित्वा इध कातियान
इधेव होहि इति मय्ह रुच्चति
मा त्व अगा उत्तमभूरि पञ्ञ ॥१७८॥

[मेरे मन में तो यही होता है कि तू नही जा सकता। यहीं राज-भवन मे ही उसे पीठकर मार डाले—यह मुझे अच्छा लगता है। हे बहुप्रज्ञ! तू मत जा ॥१७८॥]

यह सुन बोधिसत्व ने कहा, 'देव! तुम्हारा इस प्रकार का विचार अनुचित है।' वह बोला—

माहेव धम्मेसु मन पणीदहि
अत्थे च धम्मे च युत्तो भवस्सु,
धिरत्थु कम्म अकुसल अनरिय
यं कत्वा पच्छा निरय वजेय्य ॥१७९॥
नेवेस धम्मो न पुनेत किच्च
अयिरो हि दासस्स जनिन्द इस्सरो,

घातेतु झापेतु अथोपि हन्तु
न च मय्हकोधत्थि वजामि वाह॥१८०॥

[आप अपने चित्त को अधर्म मे मत जानें दे। आप अर्थ और धर्म मे युक्त हों। ऐसे अकुशल अकर्म-कर्म को धिक्कार है जिसे करके आदर्मा बाद मे नरक जाये।१७९। न यह धर्म ही है और न यह कृत्य है। हे राजन्! आप 'दास' के मालिक हैं। इसलिये आप मारना, जलाना, जान से मार डालना सब कर सकते हैं। मेरे मन मे क्रोध नहीं है। मै जाता हूँ।।१८०।।]

यह कह बोधिसत्व ने राजा को नमस्कार किया। फिर राजा की रानियों और उसकी परिषद को उपदेश दे दिया। वे अपने आप पर काबू न रख सकी, और विलाप करने लगी। उन्हे उसी दशा मे छोडकर वह राज-भवन से निकल आया। सारे नगर वासी राजाङ्गन मे ही इकट्ठे हो गये, "पण्डित माणवक के साथ जा रहा है। आओ उसे देखे।" उसने उन्हे भी उपदेश दिया, "चिन्ता मत करो। सभी संस्कार अनित्य है। दानादि के प्रति अप्रमादी रहो।" फिर रुककर अपने घर ही की ओर गया। उसी समय पिता की अगवानी करने के इरादे से भाइयो सहित धर्मपालकुमार ने घर के द्वार पर ही पिता से भेंट की। बोधिसत्व उसे देख शोक को न सह सका। उसने उसे गले से लगाया और छाती से चिपटाकर ही घर में प्रवेश किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

जेट्ठपुत्त उपगुय्ह विनेय्य हदये दर,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि पाविसी सो महाघर॥१८१॥

[अपने ज्येष्ठ पुत्र को गले लगा, हृदय की आग शान्त कर, अश्रुपूर्ण नेत्रो से उसने घर में प्रवेश किया।।१८१।।]

उसके घर मे हजार लडके, हजार लडकियाँ, हजार पत्नियाँ और सात सौ वर्ण-दासियाँ थी। उनके और शेष दास, कमकर, सम्बन्धी मित्र आदि के कारण सारा घर ऐसा हो गया मानो युगान्त-वात के प्रहार से शालवन के सारे शाल-वृक्ष गिरते जा रहे हो।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

साला च सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ता च दारा च विधुरस्स निवेसने॥१८२॥
इत्थी सहस्स भरियान दासी सत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु विधुरस्स निवेसने॥१८३॥

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ॥१८४॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु विधुरस्स निवेसने ॥१८५॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ॥१८६॥
इत्थी सहस्सान भरियानं दासीसत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु कस्मा नो विजहेस्ससि ॥१८७॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु कस्मा नो विजहेस्ससि ॥१८८॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ॥१८९॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ॥१९०॥

[विधुर के घर मे उसके स्त्री-पुत्र ऐसे पडे हं जैसे हवा से ताडित शाल वृक्ष ॥१८२॥ हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगीं ॥१८३॥ अन्त पुर के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगे ॥१८४॥ हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार और पैदल विधुर के घर मे बाहें पकडकर रोने लगे ॥१८५॥ जनपद तथा निगम के आये हुए लोग विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगे ॥१८६॥ हजार पत्निया और सात सौ दासियाँ हाथ पकडकर रोने लगी कि हमे क्यो छोडे जा रहा है ? ॥१८७॥ अन्त पुर के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण हाथ पकडकर रोने लगें कि हमे क्यो छोडे जा रहा है ? ॥१८८॥ हाथी-सवार सैनिक, रथ-सवार और पैदल हाथ पकड कर रोने लगे कि हमे क्यो छोडे जा रहा है ? ॥१८९॥ जनपद तथा निगम के आये हुए लोग बाहे पकडकर रोने लगे कि हमें क्यो छोडे जा रहा है ? ॥१९०॥]

बोधिसत्व उस सारी जनता को आश्वस्त कर, शेष कृत्य समाप्त कर घर के लोगो को उपदेश दे, जो जो कहने योग्य है वह सब कुछ कह पुण्णक के पास पहुँचा और उसे सूचित किया कि सारे कार्य्य समाप्त हो गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

कत्वा घरेसु किच्चानि अनुसासित्वा सकजनं,
मित्तामच्चे च भच्चे च पुत्तदारे च बन्धवे ॥१९१॥
कम्मन्त सविधेत्वान आचिक्खित्वा घरे धन,
निधिञ्च इणदानञ्च पुण्णक एतदब्रवि ॥१९२॥
अवसि तुव मय्हतीह अगारे
कतानि किच्चानि घरेसु मय्हं
अनुसासिता पुत्तदारा मया च
करोम कच्चान यथा मतिं ते ॥१९३॥

[घर के कार्य्य समाप्तकर और मित्र-अमात्य, नौकर, स्त्री पुत्र तथा अपने बन्धुओ को अनुशासित कर, खेती-बाडी सदृश कार्य्यो की व्यवस्था कर, घर के धन का पता दे, खजाना तथा ऋण लेने की बात बता वह पुण्णक को इस प्रकार बोला—॥१९१-१९२॥ "तू मेरे घर तीन दिन रहा। मैंने घर के कृत्य कर लिये। मैंने अपने स्त्री-पुत्र को जो कहना था कह लिया। अब मैं तेरी इच्छा के अनुसार करूँगा ॥१९३॥]

पुण्णक बोला—

सचे हि कत्ते अनुसासिता ते
पुत्ता च दारा च अनुजीविनो च,
हन्देहिदानि तरमानरूपो
दीघो हि अद्धापि अयं पुरत्था ॥१९४॥
असम्भीतोव गण्हाति आजानीयस्स वाळधिं,
इदं पच्छिमकं तुय्हं जीवलोकस्स दस्सनं ॥१९५॥

[हे कर्ते! यदि तू अपने पुत्र-दारा को समझा-बुझा चुका तो शीघ्रता से आ। आगे का रास्ता भी लम्बा है ॥१९४॥ निर्भय होकर श्रेष्ठ घोड़े की पूँछ पकड़। अब तू अन्तिम बार जीव-लोक के दर्शन कर रहा है ॥१९५॥]

उसे बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

सोहं किस्सनुभायिस्स यस्स मे नत्थि दुक्कटं,
कायेन वाचा मनसा येन गच्छेय्य दुग्गतिं ॥१९६॥

[जब मैंने शरीर, वाणी अथवा मन से कोई ऐसा दुष्कर्म नही किया जिससे दुर्गति को प्राप्त होऊ तो मैं किस (बात) से डरूँ ? ॥१६६॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने सिंह-नाद कर निर्भय केशरी की तरह भय रहित हो दृढ-सकल्प किया कि यह वस्त्र बिना मेरी इच्छा के मुझसे न छूटे। फिर उस वस्त्र को दृढता पूर्वक पहन और घोडे की पूँछ को हटा उसे दोनो हाथो से जोर से पकड तथा दोनो पावो को घोडे की जाघो मे लपेटकर कहा—"माणवक! मैंने मूँछ पकड ली है। अब जैसे इच्छा हो वैसे जा।" तब पुण्णक ने मनोमय सिन्धवघोडे को इशारा किया। वह पडित को लेकर आकाश में कूदा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सो अस्सराजा विधुर वहन्तो
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे,
सारवासु सेलेसु असज्जमानो
काळागिरिं खिप्पमुपागमासि ॥१९७॥

[वह अश्व-राज विधुर को लिये आकाश मे, अन्तरिक्ष मे गया। बिना किसी शाखा और शैल मे टकराये वह शीघ्रता से काला गिरि पर्वत को प्राप्त हुआ ॥१९७॥]

इस प्रकार जब पुण्णक बोधिसत्व को ले गया तो पण्डित (बोधिसत्व) के पुत्रादि पुण्णक के निवास-स्थान पर गये। जब उन्होने उसे वहाँ नही देखा तो प्रपात से गिरे की तरह इधर उधर लोटते हुए जोर जोर से विलाप करने लगे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इत्थिसहस्स भरियान दासी सत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु यक्खो ब्राह्मणवण्णेन विधुर आदाय गच्छति ॥१९८॥

[हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ हाथ पकडकर रोने लगी कि ब्राह्मण-वेषधारी यक्ष विधुर को लिये जा रहा है ॥१९८॥]

समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु यक्खो ब्राह्मणवण्णेन विधुर आदाय गच्छति ॥१९९॥

[जनपद तथा निगम के लोग बाहे पकडकर रोने लगे कि ब्राह्मण वेषधारी यक्ष विधुर को लिये जा रहा है ॥१९९॥]

इत्थिसहस्स भरियान दासी सत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं पण्डितो सो कुहिं गतो ॥२००॥

[हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ हाथ पकडकर रोने लगीं कि पण्डित कहाँ गया ? ॥२००॥]

समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं पण्डितो सो कुहिं गतो ॥२०१॥

[जनपद तथा निगम के लोग बाहे पकडकर रोने लगे कि पण्डित कहाँ गया ? ॥२०१॥]

यह देख कि बोधिसत्व को आकाश-मार्ग से लिये जा रहा है और यह बात सुन वे सब रोये-पीटे। फिर सारे नगर-वासियो के साथ रोते-पीटते वे राज-द्वार पहुँचे। राजा ने रोने-पीटने की बहुत आवाज सुनी तो खिडकी खोलकर पूछा, "क्यो रोते हो ?" लोगो ने उत्तर दिया, "देव ! वह माणवक ब्राह्मण नही था। वह ब्राह्मण-वेष में यक्ष था जो आकर पण्डित को ले गया। उसके बिना हमारा जीना नही है। यदि आज से सातवें दिन के अन्दर नही आता है तो सौ हजार गाडियाँ लकडी इकट्ठी कर सभी आग में प्रवेश करेगे।' यह बात कहते हुए यह बात कही—

सचे सो सत्तरत्तेन पण्डितो नागमिस्सति,
सब्बे अग्गिं पवेक्खाम नत्थत्थो जीवितेन नो ॥२०२॥

[यदि सात दिन के अन्दर वह पण्डित नही आया तो हम सब आग में प्रवेश कर जायेंगे। हमारे जीने का कोई अर्थ नही है ॥२०२॥]

सम्यक सम्बुद्ध के निर्वाण के समय भी 'हम आग में प्रविष्ट हो मरेगें' कहने वाले नही थे। ओह बोधिसत्व कितनी अच्छी तरह नगर में रहा था !

राजा ने उनकी बात सुन उन्हें धीरज दिया—"मधुरभाषी पण्डित माणवक को धर्मकथा से प्रलुब्ध कर, अपने चरणो में गिराता, शीघ्र ही आँखो के आसुओं को सुखाता हुआ और हसाता हुआ आयेगा। चिन्ता न करो।" उसने गाथा कही—

पण्डितो च वियत्तोच विभावीच विचक्खणो,
खिप्प मोचेस्सतत्तान मा भोथ आगमिस्सति ॥२०३॥

[वह पण्डित है, विचारवान् है, विवेकवान् है तथा दक्ष है। डरो मत। वह शीघ्र ही अपने आपको छुडाकर आयेगा ॥२०३॥]

पुण्णक ने भी वोधिसत्व को नाल।गिरि के ऊपर रखा और सोचने लगा, "जव तक यह जीवित है। तव तक मेरी उन्नति नही। इसे मार, हृदय-मास ले, नाग-भवन जा, विमला को दे, इरन्दति ले देव-लोक जाऊगा।"

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सो तत्थ गन्त्वान विचिन्तयन्तो
उच्चावचा चेतनका भवन्ति,
इमस्स जीवेन नहत्थि किञ्चि
हन्त्वानिम हदय आदियिस्स ॥२०४॥

[वह वहाँ जाकर सोचने लगा तो उसे ऊचे-नीचे विचार सूझने लगे। उसने सोचा कि इसके जीवित रहने से मुझे कुछ लाभ नही है। इसे मारकर इसका हृदय ले जाऊगा ॥२०४॥]

तव फिर सोचा, "मै इसे हाथ से न मारकर भैरव-रूप दिखाकर जान से मार डालूँगा।" उसने भैरव राक्षस का रूपधारण किया और जाकर आते हुए उसे गिरा अपने वीच मे कर खाने का सा ढँग वनाया। वोधिसत्व को रोमाच तक नही हुआ। तव सिंह का रूप धारण किया और मस्त महाहाथी का रूप धारण कर दाढ से और दान्तो से चीर डालने का सा ढँग वनाया। वह वैसे भी नही डरा। तव दोणी जितने वडे साँप की शकल वनाते फुकारते हुए आकर उसका सारा शरीर लपेट सिर पर फन धारण किया। उसे सकोच तक नही हुआ। तव उसने पर्वतपर खडे होकर गिराकर चूर्ण-विचूर्ण कर डालने के विचार से जोर की हवा चलाई। उससे उसके वाल का सिरा तक नही हिला। तव उसने उसे वही पर्वत पर रख पर्वत को उसी प्रकार इधर उधर हिलाया जैसे हाथी खज्जुरी (?) वृक्ष को। ऐसा करने पर भी वह उसे जहाँ वह था उससे वाल भर भी नही हटा सका।

तव उसने सोचा कि भयानक आवाज से डराकर इसका हृदय फाड इसे मार डालूँगा। वह पर्वत के भीतर घुसा और उसने पृथ्वी तथा आकाश को एक करते हुए जोर की आवाज की। उससे भी उसे तनिक भय उत्पन्न नही हुआ। वोधिसत्व जानते थे कि यक्ष, सिंह, हाथी तथा नाग-राज के रूप मे आनेवाला भी माणवक ही है, अन्य कोई नही, और हवा, वर्षा तथा पर्वत को हिलाने वाला भी माणवक ही

है अन्य कोई नही, और पर्वत के अन्दर घुसकर जोर की आवाज करनेवाला भी माणवक ही है, अन्य कोई नही है। तब यक्ष ने सोचा। मैं इसे बाह्य उपायो द्वारा नही मार सकता हूँ। अपने हाथ से ही इसे मारूँगा। उसने बोधिसत्व को पर्वत-शिखर पर रखा और पर्वत के नीचे जा मणि मे पीला धागा डालने की तरह निनाद करते हुए, पर्वत के भीतर से ऊपर आ, बोधिसत्व को मजबूती से पकड, उल्टाकर उसे निराधार आकाश मे फेंक दिया। इसीसे कहा गया है—

सो तत्थ गन्त्वा पब्बतमन्तरस्मि
अन्तो पविसित्वा पदुट्ठचित्तो,
असवुतस्मि जगतिप्पदेसे
अधोसिर धारयि कातियानो ॥२०५॥

[वह द्वेषी वहाँ पर्वत के नीचे गया और उसके अन्दर घुसकर उस कात्यायन ने विघुर को निराधार आकाश मे सिर नीचा करके लटका दिया ॥२०५॥]

सो लम्बमानो नरके पपाते
महब्भये लोमहसे विदुग्गे
असन्तस कुरुन कत्तसेट्ठो
इच्चब्रवी पुण्णक नाम यक्ख ॥२०६॥
अरियावकासोसि अनरियरूपो
असञ्ञतो सञ्ञतसन्निकासो,
अच्चाहित कम्म करोसि लुद्द
भावे च ते कुसल नत्थि किञ्चि ॥२०७॥
यं म पपातस्मि पपातुमिच्छसि
को नु तवत्थो मरणेन मय्ह,
अमानुसस्सेव ते अज्ज वण्णो
आचिक्ख मे त्व कतमासि देवता ॥२०८॥

[वह कुरुओ का श्रेष्ठ-कर्ता जब भयानक, रोमहर्षक, कष्टप्रद, नरक-सदृश प्रपात में लटक रहा था तो उसने विना भय-भीत हुए पुण्णक नामके यक्ष को यह कहा ॥२०६॥ तेरा रूप तो आर्य-समान है, किन्तु तू अनार्य-रूप है, तू असयत है, किन्तु तेरा ढग सयत का है। तू अत्यन्त अहितकर रौद्र-कर्म करता है। तेरे चित्त मे कुछ भी कुशल नही है ॥२०७॥ जो तू मुझे प्रपात मे गिराना चाहता है, मेरे मरने से

तेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? आज तेरा कर्म अमनुष्य का है। मुझे बता कि तू कौन-सा यक्ष है ? ।।२०८।।]

पुण्णक ने उत्तर दिया—

यदि ते सुतो पुण्णको नाम यक्खो
रञ्ञो कुवेरस्स हि सो सजीवो,
भुमिन्धरो वरुणो नाम नागो
ब्रहा सुची वण्णबलूपपन्नो ।। २०४।।
तस्सानुज धीतर कामयामि
इरन्दति नाम सा नागकञ्ञा,
तस्सा सुमज्झाय पियाय हेतु
पतारयिं तुय्ह वधाय धीर ।।१०।।

[यदि तू ने राजा कुबेर के मन्त्री पुण्णक यक्ष का नाम सुना हो तो वह मैं हूँ। जो महान्, पवित्र, वर्ण-बल से युक्त वर्ण नाम का नाग भूमि-पति है, मैं उस नाग की इरन्दति नाम की कन्या को चाहता हूँ। उस प्रिय, मध्यमाकार की कन्या के लिये ही हे धीर-पुरुष मैंने तुम्हारे वध का निश्चय किया है ।।२०९-२१०।।]

यह बात सुनी तो बोधिसत्व ने सोचा, 'यह लोक नासमझी से ही नष्ट होता है। जो नाग-कन्या को चाहता है उसे मेरे मारने से क्या लाभ ? मैं यथार्थ बात जानूंगा।' उसने गाथा कही—

माहेव त्वं यक्ख अहोसि मूळ्हो
नट्ठा बहू दुग्गहितेन लोका,
किं ते सुमज्झाय पियाय किच्चं
मरणेन मे इध सुणोम सब्बं ।। २११।।

[हे यक्ष ! तू मूर्ख मत बन। नासमझी से अनेक लोक नष्ट हो गये। मैं जरा सारी बात तो सुनूं कि मेरे मरने से तेरी प्रिया, मध्यमाकारा का क्या कृत्य होता है ? ।।२११।।]

तब पुण्णक ने उत्तर दिया—

महानुभावस्स महोरगस्स
धीतुकामो ञातिभतोहमस्मि,

तं याचमान ससुरो अवोच
यथा म अञ्जिसु सुकामनीत ॥२१२।
दज्जेमु खो ते सुतनु सुनेत्त,
सुचिम्हित चन्दनलित्तगत्त
सचे तुव हृदय पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेसि,
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा,
नाञ्ञ धन उत्तरि पत्थयाम ॥२१३॥
एव न मूळ्होस्मि सुणोहि कत्ते
न चापि मे दुग्गहितत्थि किञ्चि,
हृदयेन ते धम्मलद्धेन नागा
इरन्दतिं नागकञ्ञ ददन्ति ॥२१४॥
तस्मा अह तुय्ह वधाय युत्तो
एव ममत्थो मरणेन तुय्ह,
इधेव त नरके पातयित्वा,
हन्त्वान त हृदय आदियिस्स ॥२१५॥

[महाप्रतापी नागराज की कन्या की इच्छा करनेवाला मै सम्बन्धी-पोषक (?) हूँ। उसकी याचना करनेवाले भली भान्ति कामना के वशीभूत हुए, मुझे मेरे (भावी-) श्वसुर ने कहा, "हम तुझे वह सुन्दर शरीरवाली, सुन्दर नेत्रोवाली, प्रिय मुस्कानवाली तथा चन्दन-लिप्त गात वाली दे देंगे, यदि तू न्याय से पण्डित का हृदय यहाँ ले आयेगा। इसी धन से कुमारी मिल सकती है। इसके अतिरिक्त हम और धन नही खोजते ॥२१२, २१३॥ हे कर्ता! इस प्रकार न मैं मूर्ख हूँ और न मैंने किसी बात में नासमझी की है। यदि न्याय से तेरा हृदय मिल जाय तो उसीसे नाग इरन्दति नामक नाग-कन्या देते हैं ॥२१४॥ इसलिये मै तेरा वध करने में लगा हूँ। यह तेरे मरने से मेरा लाभ है। मै तुझे यही इस नरक-सदृश प्रपात में गिराकर और तुझे मारकर तेरा हृदय ले जाऊँगा ॥२१५॥]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने सोचा, "विमला को मेरे हृदय की आवश्यकता नही है। वरुण ने धर्मोपदेश सुन, मणि से पूजाकर, वहाँ जाकर मेरे धर्मोपदेश की प्रशसा की होगी। उससे विमला के मन में मेरी धर्म-कथा के प्रति 'दोहद' उत्पन्न

हो गया होगा। वरुण ने ठीक से न समझ पुण्णक को आज्ञा दी होगी। इस प्रकार यह अपनी बेसमझी के कारण मुझे मारने के लिये इतना दु:ख दे रहा है। स्थान-उत्पत्ति-कारण को समझने मे समर्थ मेरा पाण्डित्य इसके मुझे मार डालने पर क्या करेगा? उसने सोचा कि मैं इसे यह कहकर अपने प्राण बचाऊ कि 'मैं सत्पुरुष-धर्म जानता हूँ। जब तक मैं नही मरता हूँ तब तक मुझे पर्वत के शिखर पर बिठाकर अच्छी तरह सत्पुरुष-धर्म सुन। पीछे जो इच्छा हो सो करना।' उसने सिर नीचा किये लटके हुए ही गाथा कही—

खिप्प मम उद्धर कातियान
हृदयेन मे यदि ते अत्थि किच्च,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव ते पातुकरोमि अज्ज ॥२१६॥

[हे कात्यायन! यदि तुझे मेरा हृदय चाहिये तो मुझे जल्दी से सीधा कर। मैं आज जितने भी सत्पुरुषो के धर्म हैं वे सब तेरे सामने स्पष्ट करता हूँ ॥२१६॥]

यह सुन पुण्णक ने सोचा, यह पण्डित जो उपदेश देगा वह इससे पूर्व देव-मनुष्यो द्वारा अकथित धर्म होगा। इसे शीघ्र ही उठा, इससे सत्पुरुषो का धर्म सुनूँगा। उसने बोधिसत्व को उठाकर पर्वत-शिखर पर बिठाया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सपुण्णको कुरुन कत्तसेट्ठ
नगमुद्धनि खिप्प पतिट्ठपेत्वा,
अस्सत्थमासीन समेक्खियान
परिपुच्छि कत्तार अनोमपञ्ञ ॥२१७॥
समुद्धटो मेसि तुव पपाता
हृदयेन ते अज्ज ममत्थि किच्च,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव मे पातुकरोहि अज्ज ॥२१८॥

[सपुण्णक ने कुरुओ के श्रेष्ठकर्ता (विधुर) को शीघ्र ही पर्वत शिखर पर बिठाया। फिर जब उसे आश्वस्थ हुआ बैठा देखा तो उस बुद्धिमान से पूछा—"तुझे मैंने प्रपात से उठा लिया है। आज मुझे तेरे हृदय की आवश्यकता है। जितने भी सत्पुरुषो के धर्म हैं वे आज मुझे सब स्पष्ट कहो" ॥२१७-२१८॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

समुद्धटो त्यास्मि अह पपाता
हृदयेन मे यदि ते अत्थि किच्च,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव ते पातुकरोमि अज्ज ॥२१९॥

[तूने प्रपात से मुझे उठा लिया है। यदि तुझे मेरे हृदय की आवश्यकता है तो जितने भी सत्पुरुष के धर्म है, वे मै आज सभी तुझे स्पष्ट करता हूँ ॥२१९॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—"शरीर मैला है। मै स्नान कर लूं।" 'यक्ष ने 'अच्छा' कहा और स्नान करने के लिये पानी लाकर दिया और स्नान कर चुकने पर बोधिसत्व को दिव्य-वस्त्र तथा दिव्य सुगन्धित-मालादि लाकर दिये। जब वह अलकृत होकर सजधज गया तब उसे दिव्य भोजन दिया। भोजन कर चुकने पर बोधिसत्व ने काकागिरि-शिखर को अलकृत करवा, आसन बिछवा, अलकृत आसन पर बैठ, बुद्ध-लीला से सत्पुरुषो का धर्म सुनाते हुए गाथा कही—

यातानुयायी च भवाहि माणव
अद्दञ्च पाणिं परिवज्जयस्सु,
मा चस्सु मित्तेसु कदाचि दूभी
मा च वस असतीन निगच्छे ॥२२०॥

[माणवक! चलनेवाले का अनुगमन करनेवाला हो, गीले तिनके को मत जला, कभी मित्र-द्रोह मत कर और असतियो के वशी-भूत न हो।॥२२०॥]

सक्षेप में कहे हुए चारो सत्पुरुष-धर्म समझ न सकने के कारण यक्ष ने विस्तार-पूर्वक प्रश्न किया—

कथन्नु यातं अनुयायी होति
अद्दञ्च पाणिं दहते कथ सो
असती च का को पन मित्तदुब्भो
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थ ॥२२१॥

[चलनेवाला का अनुगमन करनेवाला कैसे होता है, गीले तिनके को कैसे जलाता है असती कौन है और मित्र-द्रोही कौन है—पूछे जाने पर मुझे ये बातें बताये ॥२२१॥]

बोधिसत्व ने समझाया—

असन्थुत नोपि च दिट्ठपुब्ब
यो आसनेनापि निमन्तयेय्य
तस्सेव अत्थ पुरिसो करेय्य
यातानुयायीति तमाहु पण्डिता ॥२२२॥

[जिसे न कभी देखा हो और जिसके न कभी साथ रहा हो, ऐसा पुरुष यदि बुला-कर आसन पर बिठाये तो आदमी को चाहिये कि उसका हित करे। ऐसा करने वाले को पण्डितजन 'जानेवाले के पीछे 'जानेवाला' कहते हैं ॥२२२॥]

यस्सेकरत्तिम्पि घरे वसेय्य
यत्थन्नपाण पुरिसो लभेथ,
न तस्स पापं मनसापि चेतये
अदुब्भपाणिं दहते मित्तदुब्भो ॥२२३॥

[जिस घर में एक रात भी रहे और जहाँ आदमी को अन्न-पान मिले, उसका आदमी मन से भी कभी बुरा न सोचे। मित्र-द्रोही अद्रोही को जलाता है ॥२२३॥]

यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा
न तस्स साख भञ्जेय्य मित्तदुब्भोहि पापको ॥२२४॥

[जिस पेड की शाखा में बैठे या सोये, उसकी शाखा न तोडे। मित्र-द्रोह करना पाप है ॥२२४॥]

पुण्णम्पि चेत पठविं धनेन
दज्जित्थिया पुरिसो सम्मताय
लद्धा खण अतिमञ्ञेय्य तम्पि
तासं वस असतीन न गच्छे ॥२२५॥

[यदि धन से लदी हुई सारी पृथ्वी भी आदमी स्त्री के बारे में विश्वस्त होकर उसे दे दे तो भी वह समय आने पर उसके साथ भी विश्वासघात करती है। इसलिये इन असतियों के वशीभूत न हो ॥२२५॥]

एवं खो यातं अनुयायी होति
अहञ्च पाणिं दहते पुनेव,

असतो च सा सो पन मित्तदुब्भो
सो धम्मियो होति जहस्सु अधम्म ॥२२६॥

[इस प्रकार जानेवाले का अनुगमन करनेवाला होता है, फिर इस प्रकार गीले तिनके को जलाता है, वह असती होती है और वह मित्र-द्रोही होता है । ऐसा करनेवाला अधार्मिक होता है । अधर्म छोडना चाहिये ॥२२६॥]

सत्पुरुष धर्म-काण्ड समाप्त

इस प्रकार बोधिसत्व ने यक्ष को चारो सत्पुरुष-धर्म बुद्ध-लीला से बताये । यह सुनते ही पुण्णक समझ गया कि चारो तरह से पण्डित अपने जीवन की ही याचना करता है। इसने पहले तो मेरे जैसे आदमी का जिसके साथ कभी पहले रहना नही हुआ सत्कार किया । मै इसके घर मे तीन दिन बडे आनन्द से रहा । मै यह पाप-कर्म स्त्री के लिये ही कर रहा हूँ । हर तरह से मै ही मित्र-द्रोही हूँ । यदि पण्डित के साथ बुराई करता हूँ तो मे सत्पुरुष-धर्म के अनुसार आचरण नही करता हूँ । मुझे नाग-कन्या से क्या ? इन्द्रप्रस्थ वासियो के अश्रुपूर्ण-मुखो को प्रफुल्लित करता हुआ मै इसे जल्दी से ले जाकर धर्म-सभा मे ही उतार दूँ । यह सोच उसने कहा—

अवसिं अह तुम्ह तीह अगारे
अन्नेन पाणेन उपट्ठितोस्मि,
मित्तो ममासि विसज्जामह त
काम घर उत्तमपञ्ञ गच्छ ॥२२७॥
अपि हायतु नागकुलस्स अत्थो
अलम्पि मे नागकञ्ञाय होतु,
सो त्व सकेनेव सुभासितेन
मुत्तोसि मे अज्ज वधाय पञ्ञा ॥२२८॥

[मै तीन दिन तेरे घर रहा । तूने अन्न-पान से मेरी सेवा की । तू मेरा मित्र है । मै तुझे छोडता हूँ । हे श्रेष्ठ-प्रज्ञ ! तू अपनी इच्छानुसार घर लौट जा ॥२२७॥ नाग-कुल की बात पूरी न हो । नाग-कन्या की ओर से मेरी उपेक्षा है । हे प्रज्ञावान् ! तू अपने सुभाषित के कारण ही आज मुझसे मुक्त हो गया ॥२२८॥]

बोधिसत्व बोला, "माणवक ! तू मुझे अभी अपने घर न भेज। नाग-भवन ही ले चल।" यह कहते हुए गाथा कही—

हन्द तुव यक्ख ममम्पि नेहि
ससुरन्नु ते अत्थ मयी चरस्सु
मयम्पि नागाधिपती विमान
दक्खेमु नागस्स अदिट्ठपुब्ब ॥२२९॥

[हे यक्ष ! तू मुझे भी ले चल। ससुर का हित मुझसे करा। हम भी नागाधिपति को और उसके अभी तक न देखे विमान को देखें ॥२२९॥]

पुण्णक बोला—

य चे नरस्स अहिताय अस्स
न त पञ्ञो अरहति दस्सनाय,
अथ केन वण्णेन अमित्त गाम
तुवमिच्छसि उत्तमपञ्ञ गन्तु ॥२३०॥

[जो नर का बुरा करने वाला हो, बुद्धिमान आदमी के लिये उसका देखना उचित नहीं है। हे उत्तम-प्रज्ञ ! तू किस कारण से अपने शत्रु के निवासस्थान जाना चाहता है ॥२३०॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अद्धा पजानामि अहम्पि एत
न त पञ्ञो अरहति दस्सनाय,
पापञ्च मे नत्थि कत कुहिञ्चि
तस्मा न सङ्के मरणागमाय ॥२३१॥

[मैं भी यह निश्चय से जानता हूँ कि प्रज्ञावान् को उसका दर्शन योग्य नहीं। किन्तु क्योंकि मैंने कहीं भी कोई पाप-कर्म नहीं किया है। इसलिये मुझे मरने से डर नहीं है ॥२३१॥)

"देवराज ! मैंने तेरे जैसे कठोर-हृदय को धर्मोपदेश से प्रभावित कर मृदु बना लिया। अभी कहता है कि 'मुझे नाग-कन्या नहीं चाहिये। अपने घर जा। नाग-राज को कोमल बनाने में मुझे क्या कठिनाई होगी ! मुझे वहाँ ले ही चल।' यह सुन सुपण्णक ने उसके कहने को 'अच्छा' कह स्वीकार किया—

हन्द च ठान अतुलानुभाव
मया सहा दक्खिसि एहि कत्ते,
यत्यच्छति नच्चगीतेहि नागो
राजा यथा वेस्सवणो नळिञ्ज ॥२३२॥
त नागकञ्ञाचरित गणेन
निकीळित निच्चमहो च रत्ति,
पहूतमाल्य बहुपुप्फछन्न
ओभासति विज्जुरिवन्तलिक्खे ॥२३३॥
अन्नेन पाणेन उपेतरूप
नच्चेहि गीतेहि च वादितेहि,
परिपूर कञ्ञाहि अलकताहि
उपसोहति वत्थपिळन्धनेन ॥२३४॥

[कर्ते ! आ ! मेरे साथ महाप्रभावशाली स्थान को देखेगा, जहाँ राजा वैश्रवण नाग नृत्य-गीतके मध्य अपनी नलिनी नामकी राजधानी में रहता है ॥२३२॥ वहाँ रात दिन नाग-कन्याओ की सामूहिक नृत्य-गीत की क्रीडा, जिसमें मलाओ और पुष्पो की प्रचुरता रहती है, उसी प्रकार सुशोभित होती है जैसे आकाश में बिजली ॥२३३॥ अन्न-पान से युक्त, नृत्य, गीत तथा बाजो से युक्त, अलकृत कन्याओ से भरपूर तथा वस्त्रो और अलकारो से युक्त वह राजा शोभा देता है ॥२३४॥]

सो पुण्णको कुरून कत्तसेट्ठ
निसीदयो पच्छतो आसनस्मि,
आदाय कत्तार अनोमपञ्ञ
उपानयी भवन नागरञ्ञो ॥२३५॥
पत्वान ठान अतुलानुभाव
अट्ठासि कत्ता पच्छतो पुण्णकस्स,
सामग्गिपेक्खो पन नागराजा
पुब्बेव जामातरमज्झभासथ ॥२३६॥

[उस पुण्णक ने कुरुओ के कर्ता-श्रेष्ठ को पीछे आसन पर बिठाया और उस महाप्रज्ञ कर्ता को वह नागराज के भवन ले आया ॥२३५॥ उस महाप्रतापी स्थान

पर पहुँचकर कर्ता पुण्णकके पीछे खड़ा हुआ। एकता के इच्छुक नागराजा ने ही पहल जामाता को सम्बोधित किया ॥२३६॥]

नागराजा बोला—

यन्नु तुव अगमा मच्चलोक
अन्वेसमानो हृदय पण्डितस्स,
कच्चि समिद्धेन इधानुपत्तो
आदाय कत्तार अनोमपञ्ज ॥२३७॥

[क्या तू पण्डित के हृदय को खोजता हुआ मर्त्य-लोक पहुँचा। क्या तू महा-प्रज्ञा कर्त्ता को साथ लेकर अर्थ सिद्ध करके यहाँ आया? ॥२३७॥]

पुण्णक बोला—

अय हि सो आगतो य त्वमिच्छसि
धम्मेन लद्धो मम धम्मपालो,
त पस्सथ सम्मुखा भासमान
सुखो हवे सप्पुरिसेहि सगमो ॥२३८॥

[जिसकी तू इच्छा करता था, वह यह आ गया है। इस धर्मपाल को मैंने धर्म से प्राप्त किया है। इसे सामने बातचीत करता हुआ देखें। सत्पुरुषों की सगति सुखकर होती है ॥२३८॥]

कालागिरि काण्ड समाप्त

नागराजा ने बोधिसत्व को देख गाथा कही—

अदिट्ठपुब्ब दिस्वान मच्चो मच्चुभयट्टितो,
ब्यम्हितो नाभिवादेति नयिद पञ्जवतामिव ॥२३९॥

[भय के कारण अदृष्ट-पूर्व मनुष्य को जो तू अभिवादन नहीं करता यह बुद्धि-मानो के योग्य नहीं है ॥२३९॥]

इस प्रकार की आज्ञा रखनेवाले नागराज को बोधिसत्व ने बिना यह कहे कि तू मेरा वन्दनीय नहीं है, अपने ज्ञान से तथा उपाय से मै 'वध्य' होने के कारण तुझे नमस्कार नही करता हूँ कह दो गाथाये कही—

न चम्हि ब्यम्हितो नाग न च मच्चु भयट्टितो,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झवा नाभिवादये ॥२४०॥

कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे,
य नरो हन्तुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२४१॥

[हे नाग ! मैं मृत्यु से भय-भीत नही हूँ। किन्तु जो 'वध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४०॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कैसे कोई नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेगा—यह कर्म तो ठीक नही बैठता ॥२४१॥]

यह सुन नागराज ने बोधिसत्व की प्रशसा करते हुए दो गाथाये कही—

एवमेत यथा ब्रूसि सच्च भाससि पण्डित,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झ वा नभिवादये ॥२४२॥
कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे
य नरो हन्तुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२४३॥

[हे पण्डित ! जैसा तू सत्य कहता है वैसा ही है। जो 'वध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४२॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कोई कैसे नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेगा—यह कर्म तो ठीक नही बैठता ॥२४३॥]

अब बोधिसत्व ने नागराज का कुशल-क्षेम पूछते हुए बातचीत की —

असस्सत सस्सत नो तवयिद
इद्धिजुती बलविरियूपपत्ति,
पुच्छामि त नागराजेतमत्थ
कथ नु ते लद्धमिद विमान ॥२४४॥
अधिच्च लद्ध परिणामज ते
सय कत उदाहु देवेहि-दिन्न,
अक्खाहि मे नागराजेतमत्थ
यथेव ते लद्धमिद विमान ॥२४५॥

[हे नागराज ! तेरी ऋद्धि, द्युति, बल, वीर्य्य—उपपत्ति सभी अशाश्वत है, शाश्वत नही। हे नागराज ! मै पूछता हूँ कि तुझे यह विमान कैसे प्राप्त हुआ ? ॥२१२॥ यह तुझे यूँ ही मिल गया है अथवा ऋतु-परिवर्तन होने से मिला है, स्वय

पर पहुँचकर कर्ता पुण्णकके पीछे खड़ा हुआ। एकता के इच्छुक नागराजा ने ही पहल जामाता को सम्बोधित किया ॥२३६॥]

नागराजा बोला—

यन्नु तुव अगमा मच्चलोक
अन्वेसमानो हृदय पण्डितस्स,
कच्चि समिद्धेन इधानुपत्तो
आदाय कत्तार अनोमपञ्ञ ॥२३७॥

[क्या तू पण्डित के हृदय को खोजता हुआ मर्त्य-लोक पहुँचा। क्या तू महा-प्रज्ञा कर्त्ता को साथ लेकर अर्थ सिद्ध करके यहाँ आया? ॥२३७॥]

पुण्णक बोला—

अय हि सो आगतो य त्वमिच्छसि
धम्मेन लद्धो मम धम्मपालो,
त पस्सथ सम्मुखा भासमान
सुखो हवे सप्पुरिसेहि सगमो ॥२३८॥

[जिसकी तू इच्छा करता था, वह यह आ गया है। इस धर्मपाल को मैंने धर्म से प्राप्त किया है। इसे सामने बातचीत करता हुआ देखें। सत्पुरुषों की संगति सुखकर होती है ॥२३८॥]

काळागिरि काण्ड समाप्त

नागराजा ने बोधिसत्व को देख गाथा कही—

अदिट्ठपुब्ब दिस्वान मच्चो मच्चुभयट्टितो,
ब्यम्हितो नाभिवादेति नयिद पञ्ञवतामिव ॥२३९॥

[भय के कारण अदृष्ट-पूर्व मनुष्य को जो तू अभिवादन नहीं करता यह बुद्धि-मानो के योग्य नहीं है ॥२३९॥]

इस प्रकार की आशा रखनेवाले नागराज को बोधिसत्व ने बिना यह कहे कि तू मेरा वन्दनीय नहीं है, अपने ज्ञान से तथा उपाय से मैं 'वध्य' होने के कारण तुझे नमस्कार नहीं करता हूँ कह दो गाथायें कहीं—

न चम्हि ब्यम्हितो नाग न च मच्चु भयट्टितो,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झवा नाभिवादये ॥२४०॥

कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे,
य नरो हन्तुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२४१॥

[हे नाग ! मै मृत्यु से भय-भीत नही हूँ। किन्तु जो 'वध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४०॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कैसे कोई नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेग।—यह कर्म तो ठीक नही बैठता ॥२४१॥]

यह सुन नागराज ने बोधिसत्व की प्रशसा करते हुए दो गाथाये कही—

एवमेत यथा ब्रूसि सच्च भाससि पण्डित,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झ वा नभिवादये ॥२४२॥
कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे
य नरो हन्तुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२४३॥

[हे पण्डित ! जैसा तू सत्य कहता है वैसा ही है। जो 'वध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४२॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कोई कैसे नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेगा—यह कर्म तो ठीक नही बैठता ॥२४३॥]

अब बोधिसत्व ने नागराज का कुशल-क्षेम पूछते हुए बातचीत की —

असस्सत सस्सत नो तवयिद
इद्धिजुती बलविरियूपपत्ति,
पुच्छामि त नागराजेतमत्थ
कथ नु ते लद्धमिद विमान ॥२४४॥
अधिच्च लद्ध परिणामज ते
सय कत उदाहु देवेहि दिन्न,
अक्खाहि मे नागराजेतमत्थ
यथेव ते लद्धमिद विमान ॥२४५॥

[हे नागराज ! तेरी ऋद्धि, द्युति, बल, वीर्य्य—उपपत्ति सभी अशाश्वत है, शाश्वत नही। हे नागराज ! मै पूछता हूँ कि तुझे यह विमान कैसे प्राप्त हुआ ? ॥२१२॥ यह तुझे यूँ ही मिल गया है अथवा ऋतु-परिवर्तन होने से मिला है, स्वय

वनाया है अथवा देवताओ ने दिया है। हे नागराज! मुझे यह वता कि तुझे यह विमान कैसे मिला है? ॥२४५॥]

नाधिच्च लद्ध न परिणामज मे
न सय कत नपि देवेहि दिन्न,
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि
पुञ्ञेहि मे लद्धमिद विमान ॥२४६॥

[न यूँ ही मिला है, न ऋतु-परिवर्तन का परिणाम है, न स्वय वनाया है और न देवताओ ने दिया है। अपने ही निष्पाप पुण्य-कर्मो के फलस्वरूप यह मुझे मिला है। ॥२४६॥]

वोधिसत्व ने पूछा—

किं ते वत किं ते ब्रह्मचरिय
किस्स सुचिण्णस्स अय विपाको,
इद्धि जुति बलविरियुपपत्ति
इदञ्च ते नाग महाविमान ॥२४७॥

[तेरा क्या व्रत है? तेरा क्या ब्रह्मचर्य्य है? यह तेरे किस शुभ-कर्म का परिणाम है—यह जो ऋद्धि है, द्युति है, वल है, वीर्य्य की उत्पत्ति है और हे नाग! यह जो तेरा महान् विमान है? ॥२४७॥]

नागराज बोला—

अहञ्च भरियाच मनुस्सलोके
सद्धा उभो दानपती अहुम्हा,
ओपानभूत मे घर तदासि
सन्तप्पिता समणब्राह्मणा च ॥२४८॥
मालञ्च गन्धञ्च विलेपनञ्च
पदीपियं सेय्यमुपस्सयञ्च,
अच्छादन सयन अन्नपाण
सक्कच्च दानानि अदम्ह तत्थ ॥२४९॥
त मे वत त पन ब्रह्मचरिय
तस्स सुचिण्णस्स अय विपाको

इद्धिजुती बलविरियुपपत्ति
इदञ्च मे धीर महाविमान ॥२५०॥

[मैं और भार्य्या, हम दोनो मनुष्य-लोक में श्रद्धावान तथा दानी थे। मेरा घर उस समय 'प्याओ' के समान था। सभी श्रमण-ब्राह्मण सर्तापित थे ॥२४८॥ हमने उस समय माला, गन्ध, विलेप, प्रदीप, शैय्या, उपाश्रय, ओढना, बिस्तर तथा अन्न-पान—सभी वस्तुये आदरपूर्वक दान दी ॥२४९॥ हे धीर-पुरुष! यही मेरा व्रत है, यही मेरा ब्रह्मचर्य्य है और यह उस पुण्य-कर्म का ही फल है जो कि यह ऋद्धि है, यह द्युति है, यह बल है, यह वीर्य्य की उत्पत्ति है और यह जो विमान है ॥२५०॥]

बोधिसत्व—

एव चे ते लद्धमिद विमान
जानासि पुञ्ञान फलुपपत्ति,
तस्मा हि धम्म चर अप्पमत्तो
यथा विमान पुनमावसेसि ॥२५१॥

[यदि तूने इस तरह से यह विमान प्राप्त किया है तो तू पुण्य-कर्मो के फल की बात जानता है। इसलिये अप्रमादी होकर धर्माचरण कर जिससे यह विमान फिर भी मिले ॥२५१॥]

नागराजा—

नयिध सन्ति समणा ब्राह्मणा वा
येमन्नपाणानि ददेमु कत्ते,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थ
यथा विमान पुनमावसेम ॥२५२॥

[हे कर्ते! यहाँ श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जिन्हें हम अन्न-पान दे सके। मेरे पूछने पर मुझे वह विधि बता जिससे मुझे फिर भी विमान प्राप्त हो सके ॥२५२॥]

बोधिसत्व—

भोगी च ते सन्ति इधूपपन्ना
पुत्ता च दारा अनुजीविनो च,
तेसु तुव वचसा कम्मना च
असम्पदुट्ठोव भवाहि निच्च ॥२५३॥

एव तुव नाग असम्पदोसं
अनुपालय वच्चसा कम्मना च,
ठत्वा इध यावतायु विमाने
उद्ध इतो गच्छसि देवलोक ।।२५४।।

[हे नाग ! यहाँ तेरे साथ तेरे पुत्र, स्त्री तथा अन्य आश्रित हैं । तू उन सबके प्रति सदैव वाणी और कर्म से मैत्री-युक्त चित्तवाला हो ।।२५३।। हे नाग ! इस प्रकार तू वाणी और कर्म से मैत्री-भावना का पालन करने मे यहाँ आयु भर रहकर, यहाँ से देव-लोक को जायेगा ।।२५४।।]

नागराज ने बोधिसत्व की धर्मकथा सुनी तो सोचा कि पण्डित के साथ बाहर बहुत विलम्ब नही किया जा सकता । इसे विमला को दिखाकर, सुभाषित सुनवाकर, उसका 'दोहद' शान्त करा और राजा को सतुष्ट कर, पण्डित को वापिस भेजना ही योग्य है । उसने गाथा कही—

अद्धा हि सो सोचति राजसेट्ठो
तया विना यस्स तुव सजीवो,
दुक्खूपनीतोपि तया समेच्च
विन्देय्य पोसो सुखमातुरोपि ।।२५५।।

[निश्चय से वह राज-श्रेष्ठ चिन्ता करता होगा जिसका कि तू अमात्य है । तेरे साथ दुखी, रोगी मनुष्य भी सुख का अनुभव करेगा ।।२५५।।]

यह सुन बोधिसत्व ने नाग की स्तुति करते हुए दूसरी गाथा कही—

अद्धा सत भाससि नाग धम्म
अनुत्तर अत्थपद सुचिण्ण,
एतादिसोयासु हि आपदासु
पञ्ञायते मदिसान विसेसो ।।२५६।।

[हे नाग ! तू निश्चय से धर्म की बात कह रहा है, सर्वश्रेष्ठ, सार्थक तथा कुशल-धर्म की । ऐसी विपत्तियाँ आने पर ही मेरे जैसो की विशेषता दिखाई देती है ।।२५६।।]

यह सुन नागराजा ने और भी अधिक प्रसन्न हो गाथा कही—

अक्खहि नो ताय मुधा नु लद्धो
अक्खेहि नो ताय अजेसि जूते,
धम्मेन लद्धो इति तायमाह
कथ तुव हत्थमिमस्समागतो ॥२५७॥

[हमें बता कि क्या तू मुफ्त में मिला है, अथवा तुझे जुए में जीता है। पुण्णक का कहना है कि इसने तुझे धर्म से पाया। तू किस तरह इसके हाथ आया? ॥२५७॥]

बोधिसत्व—

योमिस्सरो तत्थ अहोसि राजा
तमयमक्खेहि अजेसि जूते,
सो मं जितो राजा इमस्स दासि
धम्मेन लद्धोस्मि असाहसेन ॥२५८॥

[जो वहाँ का स्वामी राजा था, उसे इसने जुए में जीत लिया। मैं जीता गया। राजा ने मुझे इसे दे दिया। मैं धर्मानुसार बिना जबर्दस्ती के प्राप्त किया गया हूँ ॥२५८॥]

महोरगो अत्तमनो उदग्गो
सुत्वान धीरस्स सुभासितानि,
हत्थे गहेत्वान अनोमपञ्ञ
पावेक्खि भरियाय तदा सकासे ॥२५९॥
येन त्व विमले पण्डु येन भत्तं न रुच्चति,
न च मेतादिसो वण्णो अपमेसो तमोनुदो ॥२६०॥
यस्स ते हदयेनत्थो आगताय पभकरो,
तस्स वाक्य निसामेहि दुल्लभ दस्सन पुन ॥२६१॥

[धीर-पुरुष के वचन सुन महानाग बहुत प्रसन्न हुआ और उस महाप्रज्ञावान् का हाथ पकड़ उसे भार्य्या के पास ले गया ॥२५९॥ हे विमला! जिसके लिये तू पीली पड़ गई है, जिसके कारण तुझे भोजन नहीं रुचता, वह (तेरे अन्धकार को दूर करनेवाला यह है। ऐसा (सुन्दर) वर्ण किसी (और) का नहीं है ॥२६०॥ तुझे जिसके हृदय की आवश्यकता थी वह प्रभापुञ्ज आ गया है। उसकी वाणी सुन। फिर दर्शन दुर्लभ है ॥२६१॥]

दिस्वान त विमला भूरि पञ्ञ
दसगुलिं पञ्जलिं पग्गहेत्वा
हट्ठेन भावेन पतीतरूपा
इच्चब्रवी कुरुन कत्तसेट्ठ ॥२६२॥

[उस प्रज्ञावान को विमला ने देखा तो प्रसन्न हो दोनो हाथ जोड कुरुओ के उस श्रेष्ठ कर्ता को यूँ कहने लगी ॥२६२॥]

अदिट्ठपुब्ब दिस्वान मच्चो मच्चुभयट्टितो,
व्यम्हितो नाभिवादेति न इद पञ्ञवतामिव ॥२६३॥
विधुर—न चम्हि व्यम्हितो नागि न च मच्चु भयट्टितो,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झ वा नाभिवादये ॥२६४॥
कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे,
य नरो हन्तुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२६५॥
नाग-भार्य्या—एवमेत यथा ब्रुसि सच्च भाससि पण्डित
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झ वा नाभिवादये ॥२६६॥
कथ नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे
यं नरो हातुमिच्छेय्य त कम्म न उपपज्जति ॥२६७॥
विधुर—असस्सत सस्सत नो तवयिद
इद्धिजूती बलविरियूपपत्ति,
पुच्छामि तं नाग कञ्ञेतमत्थ
कथन्नु ते लद्धमिद विमान ॥२६८॥
अधिच्च लद्ध परिणामज ते
सयं कत उदाहु देवेहि दिन्न,
अक्खाहि मे नागकञ्ञेतमत्थ
यथेव ते लद्धमिद विमान ॥२६९॥
नाग-भार्य्या—नाधिच्च लद्ध न परिणामज मे
न सय कत न पि देवेहि दिन्नं,
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि
पुञ्ञेहि मे लद्धमिद विमान ॥२७०॥

विधुर—कि ते वत कि पन ब्रह्मचरियं
किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,
इद्धी जुती बलविरियूपपत्ति
इदञ्च ते नागि महाविमानं ॥२७१॥

नाग-भार्य्या—अहञ्च खो सामिको चापि मय्हं
सद्धा उभो दानपति अहुम्हा,
ओपानभूतं मे घरं तदासि
सन्तप्पिता समणब्राह्मणा च ॥२७२॥
मालञ्च गन्धञ्च विलेपनञ्च
पदीपियं सेय्यमुपस्सयञ्च,
अच्छादनं सयनमथन्नपानं
सक्कच्च दानानि अदम्ह तत्थ ॥२७३॥
तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं
तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,
इद्धि जुती बलविरियूपपत्ति
इदञ्च मे धीर महाविमानं ॥२७४॥

विधुर—एवञ्च ते लद्धमिदं विमानं
जानासि पुञ्ञानं फलूपपत्तिं,
तस्माहि धम्मं चर अप्पमत्ता
यथा विमानं पुनमावसेसि ॥२७५॥

नाग-भार्य्या—नयिध सन्ति समणा ब्राह्मणा वा
येसन्नपानानि ददेमु कत्ते,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं
यथा विमानं पुनमावसेम ॥२७६॥

विधुर—भोगी हिते सन्ति इधूपपन्ना
पुत्ता च दारा[1] अनुजीविनो च
तेसु तुवं वचसा कम्मना च
असम्पदुट्ठा च भवाहि निच्चं ॥२७७॥

---

[1] 'दारा' के स्थान पर 'सामी' अपेक्षित है।

एव तुव नागि असम्पदोस
अनुपालय वचसा कम्मना च,
ठत्वा इध यावतायु विमाने
उद्ध इतो गच्छसि देव लोक ॥२७८॥

नाग-भार्य्या—अद्धा हि सो सोचति राजसेट्ठो
तया विना यस्स तुव सजीवो,
दुक्खूपनीतोपि तया समेच्च
विन्देय्य पोसो सुखमातुरोपि ॥२७९॥

विधुर—अद्धा सत भाससि नागि धम्म
अनुत्तर अत्थपद सुचिण्ण,
एतादिसियासु हि आपदासु,
पञ्जायते मादिसानं विसेसो ॥२८०॥

नाग-भार्य्या—अक्खेहि नो ताय मुधानुलद्धो
अक्खेहि नो तायमजेसि जूते
धम्मेन लद्धो इति तायमाह
कथ तुव हत्थमिमस्समागतो ॥२८१॥

विधुर—यो मिस्सरो तत्थ अहोसि राजा
तमयमक्खेहि अजेसि जूते,
सो म जितो राजा इमस्सदासि
धम्मेन लद्धोस्मि असाहसेन ॥२८२॥

[इन गाथाओ के अर्थ के लिये देखे गाथा स० २०७ से २२६ तक]

यदेव वरुणो नागो पञ्ह पुच्छित्थ पण्डित,
तदेव नागकञ्आपि पञ्ह पुच्छित्थ पण्डितं ॥२८३॥

[जो प्रश्न वरुण नाग ने पण्डित से पूछे, वही प्रश्न नाग-कन्या ने भी पण्डित से पूछे ॥२८३॥]

यथेव वरुण नाग धीरो तोसेसि पुच्छितो,
तथेव नागकञ्आम्पि धीरो तोसोसि पुच्छितो ॥२८४॥

[जिस प्रकार धीर-पुरुष ने नाग को सन्तुष्ट किया। उसी प्रकार धीर-पुरुष न नाग-कन्या को भी सन्तुष्ट किया ॥२८४॥]

इस प्रकार सन्तुष्ट होने पर—

उभोपि ते अत्तमने विदित्वा
महोरग नागकञ्ञञ्च धीरो
अच्छम्भी अभीतो अलोमहट्ठो
इच्चब्रवी वरुण नागराज ॥२८५॥
मा रोधयि नाग अयाहमस्मि
येन तव अत्थो इद सरीर,
हदयेन मसेन करोति किच्च
सय करिस्सामि यथामति ते ॥२८६॥

[धीर (-पुरुष) ने नागराज तथा नाग-कन्या दोनो को सतुष्ट जाना तो उसने भय-रहित हो नाग-राज वरुण को यह कहा ॥२८५॥ हे नाग! सकोच मत कर। यह मै हूँ। मेरे शरीर से जो भी काम लेना हो ले, यदि हृदय-माँस चाहिये तो ले। यदि (तू मुझे न मार सके) तो तेरी इच्छा के अनुसार जैसा तू कहे वैसा मै स्वय करूँ ॥२८६॥)

नागराज बोला—

पञ्ञा हवे हदय पण्डितान
तेत्यम्ह पञ्ञाय मय सुतुट्ठा
अनूननामो लभतज्ज दार
अज्जेव त कुरयो पापयातु ॥२८७॥

[पण्डितो की प्रज्ञा ही उनका हृदय है। हम तेरी प्रज्ञा से सन्तुष्ट है। पुण्णक को उसकी भार्य्या मिले। और आज ही तू कुरु देश चला जाय ॥२८७॥]

यह कह वरुण ने अरुन्दति पुण्णक को दी। वह उसे प्राप्त कर प्रसन्न-मन से बोधिसत्व से बातचीत करने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको अत्तमनो उदग्गो
इरन्दति नागकञ्ञ लभित्वा
हट्ठेन भावेन पतीत रूपो
इच्चब्रवी कुरुन कत्तसेट्ठ ॥२८८॥

भीरयाय म त्व अकरी समगि
अहञ्च ते विधुर करोमि किच्च,
इमञ्च ते मणिरतन ददामि
अज्जेव त कुरुयो पापयामि ॥२८९॥

[इरन्दति नाग-कन्या को प्राप्त कर, प्रसन्न-चित्त पुण्णक प्रसन्नतापूर्वक कुरुओं के श्रेष्ठ-कर्ता (विधुर) से बोला ॥२८८॥ हे विधुर! तूने भार्य्या के साथ मुझे मिलाया है, मैं भी तेरा उपकार करता हूँ। मैं तुझे यह मणि-रत्न देता हूँ और आज ही तुझे कुरु-देश पहुँचा देता हूँ ॥२८९॥]

तब बोधिसत्व ने उसकी प्रशसा करते हुए दूसरी गाथा कही—

अजेय्यमेसा तव होतु मेत्ति
भरियाय कच्चान पियाय सद्धि,
आनन्दी वित्तो सुमनो पतीतो
दत्वा मणि म च नयिन्द पत्त ॥२९०॥

[हे कात्यायन! भार्य्या के साथ तेरी मैत्री अजेय हो। तू पहले से भी सुमन, प्रसन्न-चित्त है। तू मुझे मणि दे और इन्द्रप्रस्थ ले चल ॥२९०॥]

स पुण्णको कुरुन कत्तसेट्ठ
निसीदयि पुरतो आसनस्मि
आदाय कत्तार अनोमपञ्ञ
उपानयी नगरे इन्द पत्त ॥२९१॥
मनो मनुस्सस्स यथापि गच्छे
ततोपि सखिप्पतर अहोसि,
स पुण्णको कुरुन कत्तसेट्ठ
उपानयी नगर इन्दपत्त ॥२९२॥

[पुण्णक ने कुरुओ के श्रेष्ठकर्ता को आगे आसन पर बिठाया और उस महाप्रज्ञावान् को इन्द्रप्रस्थ नगर ले आया ॥२९१॥ जितनी देर मे आदमी का मन कही पहुँचे उससे भी थोडी देर में पुण्णक कुरुओ के श्रेष्ठकर्ता को इन्द्र-प्रस्थ नगर ले आया ॥२९२॥]

तब पुण्णक ने कहा—

एतिन्दप्‌त्त नगर पदिस्सति
रम्मानि च अम्ववनानि भागसो,
अहञ्च भरियाय समगि भूतो
तुव च पत्तोसि सक निकेत ॥२९३॥

[यह इन्द्र-प्रस्थ नगर दिखाई देता है। बटे हुए सुन्दर आम्रवन हैं। मैं भार्य्या के साथ एक हो गया हूँ। तू भी अपने घर पहुँच गया है ॥२९३॥]

उस दिन बहुत प्रात काल राजा ने स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था। राजा के महल के द्वार पर एक पेड था, जिसका प्रज्ञारूपी स्कन्ध था, जिसकी सदाचार रूपी शाखायें-प्रशाखायें थीं, जिसके पाँच गोरस रूपी फल थे और जिसे अलकृत हाथी-घोडे ढके थे। जनता सत्कार कर हाथ जोड नमस्कार करती। लाल वस्त्र पहने, लाल फूल कान मे पहने, हाथ में शस्त्र लिये एक काला पुरुप आया और जनता के रोते रहते ही उसने उस पेड को जड से काटा और लेकर चला गया। फिर ले आया और उसके स्वाभाविक स्थान पर लगा गया।

उस स्वप्न के बारे मे विचार करने पर राजा को लगा कि विधुर पण्डित के अतिरिक्त दूसरा कोई 'महान् वृक्ष' नही है, जनता के रोते रहते जड काटकर ले जानेवाला पुरुप, पण्डित को ले जानेवाले माणवक के अतिरिक्त दूसरा नही है, और फिर उस वृक्ष को लाकर उसके स्वाभाविक स्थान पर रखने वाले का अर्थ है कि वही माणवक कल ही पण्डित को लाकर धर्मसभा के द्वार पर करके जायेगा। उसे निश्चय हो गया कि आज हम पण्डित को देखेंगे। उसने प्रसन्न हो सारे नगर को अलकृत करा, धर्मसभा को सज्जित करा, अलकृत रत्न-मण्डप मे धर्मासन बिछवा, सौ राजाओ, अमात्यो, नगरवासियो तथा जनपदवासियो को आश्वस्त किया—"तुम चिन्ता मत करो। आज तुम पण्डित को देखोगे।" वह धर्मसभा में बैठ पण्डित के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। पुण्णक ने भी पण्डित को उतारा और धर्म-सभा द्वार पर परिपद के मध्य में खड़ा किया। तब आज्ञा ले इरन्दति सहित अपने देवनगर को ही चला गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको कुरुन कत्तसेट्ठ
ओरोपिय धम्मसभाय मज्झे,

आजञ्ञमारुय्ह अनोमवण्णो
पक्कामि वेहासयमन्त लिक्खे ॥२९४॥
त दिस्वा राजा परमप्पतीतो
उट्ठाय बाहाहि पलिस्सजित्वा
अविकम्पय धम्म सभाय मज्झे,
निसीदयी पमुख आसनस्मि ॥२९५॥

[उस पुण्णक ने कुरुओ के श्रेष्ठकर्ता को धर्मसभा के बीच उतारा और वह उत्तम-वर्णी श्रेष्ठ घोडे पर चढ आकाश मार्ग से अन्तरिक्ष मे चला गया ॥२९४॥ यह देख राजा अति प्रसन्न हुआ। उसने उसे व.हों से आलिंगन कर, स्थिर भाव से, सभा के बीच प्रमुख आसन पर विठाया ॥२९५॥]

राजा ने उससे बातचीत करते हुए और बडी मिठास के साथ उसका कुशल-क्षेम पूछते हुए गाथा कही—

त्व नो विनेतासि रथव नद्ध
नन्दन्ति त कुरयो दस्सनेन,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थ
कथ पमोक्खो अहु माणवस्स ॥२९६॥

[जिस प्रकार सारथी जुते रथ को चलाता है, उसी प्रकार तू हमें चलानेवाला है। कुरु के लोग तुझे देख प्रसन्न हैं। मेरे पूछने पर तू मुझे यह वता कि माणवक के हाथ से तू कैसे मुक्त हुआ ?, ॥२९६॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

य माणवोत्याभिवदी जनिन्द
न सो मनुस्सो नरविरियसेट्ठ
यदि ते सुतो पुण्णको नाम यक्खो
रञ्ञो कुवेरस्स हि सो सजीवो ॥२९७॥
भुमिन्धरो वरुणो नाम नागो
ब्रहा सुची वण्णबलूपपन्नो,
तस्सानुज धीतर कामयानो
इरन्दती नाम सा नागकञ्ञा ॥२९८॥

तस्सा सुमज्झाय पियाय हेतु
पतारयित्थ मरणाय मय्हं,
सोचेव भरियाय समग्गि भूतो
अहञ्चनुञ्ञातो मणी च लद्धो ॥२९९॥

[हे राजन् ! जिसने अपने आपको 'माणवक' कहा, हे नरवीर्य्य श्रेष्ठ ! वह मनुष्य नहीं था। यदि तूने 'पुण्णक' यक्ष का नाम सुना हो तो वह वही राजा कुबेर का अमात्य था ॥२९७॥ भूमि को धारण करने वाला 'वरुण' नामका नाग है—महान्, पवित्र तथा वर्ण और बल से युक्त। उस पुण्णक ने उस वरुण की इरन्दती नामकी नाग-कन्या की कामना की ॥२९८॥ उस मध्य आकार की प्रिय नाग-कन्या को प्राप्त करने के लिये ही उसने मेरे मारने का प्रयत्न किया। उसका अपनी भार्य्या से मेल हो गया और उसने मुझे मुक्त कर दिया तथा मणि दी ॥२९९॥]

तब राजा ने अपना प्रात काल देखा स्वप्न नगरवासियो को सुनाने की इच्छा से 'नगरवासियो ! आज मेरा देखा स्वप्न सुनो' कह गाथाये कही—

रुक्खो हि मय्हं पद्वारेसु जातो
पञ्ञाक्खन्धो सीलमयस्स साखा,
अत्थे च धम्मे च ठितो निपाको
गवप्फलो हत्थिगवस्स छन्नो ॥३००॥
नच्चगीत तुरियाभिनादिते
उच्छिज्जसेन पुरिसो अहासि,
सो नो अयं आगतो सन्निकेत
रुक्खस्सिमस्सापचिति करोथ ॥३०१॥
ये केचि वित्ता मम पच्चयेन
सब्बेव ते पातुकरोन्तु अज्ज,
तिब्बानि कत्वान उपायनानि
रुक्खस्सिमस्सापचिति करोथ ॥३०२॥
ये केचि बद्धा मम अत्थि रट्ठे
सब्बेव ते बन्धना मोचयन्तु,
यथेवयं बन्धनस्मा पमुत्तो
इमे च ते मुञ्चरे बन्धनस्मा ॥३०३॥

उन्नगला मास मिम करोन्तु
भत्तोदन ब्राह्मणा भक्खयन्तु
अमज्जपा मज्जरहो पिपन्तु
पुण्णाहि थालाहि पलिस्सु ताहि ॥३०४॥
महापथ निच्च समव्हयन्तु
तिब्बञ्च रक्ख विदहन्तु रट्ठे,
यथञ्ञमञ्ञ न विहेठयेय्युं
रुक्खस्सिमस्सापचितिं करोथ ॥३०५॥

[मेरे दरवाजे पर वृक्ष उगा, जिसका स्कन्ध प्रज्ञा का तथा शाखाये शील की। वह अर्थ तथा धर्म मे स्थिर रहकर वढा है। पाँच प्रकार के उसके गोरस-फल हैं और वह हाथी, बैल तथा घोडों से आच्छन्न हैं ॥३००॥ नृत्य, गीत और बाजा के बजते रहने पर ही एक पुरुष इसे उखाडकर ले गया। वह अब फिर हमारे पास आ गया। इस वृक्ष की पूजा करो ॥३०१॥ जो भी मेरे निमित्त से सतोष को प्राप्त हुए हो, वे सब आज अपनी प्रसन्नता व्यक्त करे। बडे बडे उपाय करके इस वृक्ष की पूजा करे ॥३०२॥ जो भी मेरे राष्ट्र में कैद हैं, वे सभी बन्धन से मुक्त हो। जिस प्रकार यह बन्धन से मुक्त हुआ है उसी प्रकार वे भी बन्धन से मुक्त हो ॥३०३॥ इस महीने भर खेती न हो, ब्राह्मण पलाव खाये। मद्य पायी एकान्त में खूब भरे होने के कारण चूते हुए थालो से मद्य पियें ॥३०४॥)बडे बाजार मे इच्छुको को वेश्याएँ नित्य बुलाये। राष्ट्र में कडी व्यवस्था हो ताकि कोई एक दूसरे को कष्ट न दे सके। इस वृक्ष की पूजा करो ॥३०५॥]

ऐसा कहने पर—

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥३०६॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयु ॥३०७॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥३०८॥
बहुज्जनो पसन्नोसि दिस्वा पण्डितमागते।
पण्डितम्हि अनुप्पत्ते चेलुक्खेपो अवत्तथ ॥३०९॥

[रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण सभी पण्डित के लिये बहुत-सा अन्न-पान ले आये ।।३०६।। हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार और पैदल सभी पण्डित के लिये बहुत-सा अन्न-पान ले आये ।।३०७।। जनपद के लोग और निगमों के लोग आये और सभी पण्डित के लिये बहुत सा अन्न-पान ले आये ।।३०८।। पण्डित को आया देख बहुत लोग प्रसन्न हुए और पण्डित के आने पर वस्त्र उछाले गये। ।।३०९।।]

बोधिसत्व ने बुद्ध का ही कार्य्य करते हुए की तरह जनता को धर्मोपदेश दिया तथा राजा का अनुशासन किया। वह आयु-भर जीते रहकर स्वर्गगामी हुए। उसके उपदेश के अनुसार चल राजा से आरम्भ करके सभी कुरु-देश वासी दानादि पुण्य-कर्म कर आयु की समाप्ति पर स्वर्ग-गामी हुए।

'शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी पहले भी तथागत प्रज्ञा से युक्त थे और उपाय कुशल थे कह जातक का मेल बैठाया। उस समय पण्डित के माता-पिता महाराज-कुल थे। ज्येष्ठ-भार्य्या राहुल माता। ज्येष्ठ-पुत्र राहुल। वरुण नाग-राज सारिपुत्र। गरुडराज मौद्गल्यायन, शक्र अनुरुद्ध। धनञ्जय राजा आनन्द। पुण्णक छन्न था। परिषद बुद्ध-परिषद् थी। विधुर पण्डित तो मैं ही था।

५४६. महा उम्मग्ग जातक

"पञ्चालो सब्बसेनाय" "यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षु धर्म-सभा में तथागत की प्रज्ञा-पारमिता की प्रशंसा करते हुए कहने लगे, "आयुष्मानो! तथागत महाप्रज्ञावान् हैं, विस्तृत-प्रज्ञावाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञावाले हैं, शीघ्र प्रज्ञावाले हैं, तीक्ष्ण प्रज्ञावाले हैं, उनकी प्रज्ञा बींधनेवाली है, दूसरे के मत का खण्डन करने वाली है। उन्होंने अपने प्रज्ञा-बल से ही कूटदन्त आदि

ब्राह्मणों का, सहिय आदि परिव्राजकों का, अङ्गुलिमाल आदि चोरों का, आलवक आदि यक्षों का, शक्र आदि देवताओं का, बक आदि ब्रह्माओं का दमन कर उन्हें विनम्र बनाया। उन्होंने बहुत से लोगों को प्रव्रजित कर महाफल में प्रतिष्ठित किया। आयुष्मानो! शास्ता ऐसे महा प्रज्ञावान् हैं।' वे इस प्रकार बैठे शास्ता का गुण-गान कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा "भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर, "भिक्षुओ, न केवल अभी तथागत प्रज्ञावान् है। पूर्व समय में ज्ञान के परिपक्व न हुए रहने पर भी, बुद्धत्व-प्राप्ति के लिये प्रयत्न-शील रहने की अवस्था में भी प्रज्ञावान् ही थे।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मिथिला में वेदेह नाम के राजा के राज्य करने के समय उसके अर्थधर्मानुशासक चार पण्डित थे—सेनक, पुक्कुस, काविन्द तथा देविन्द।

तब राजा ने बोधिसत्व के गर्भ में आने के दिन प्रात काल ऐसा स्वप्न देखा। राजाङ्गण के चारों कोनों में चार अग्नि-स्कन्ध। वे बड़ी चारदीवारी जितने ऊँचे उठकर जल रहे थे। उनके बीच में जुगनू के समान अग्नि पैदा हुई। वह उसी क्षण चारों अग्नि-स्कन्धों को लाघकर ब्रह्मलोक तक जा पहुँची और सारे चक्रवाल को प्रकाशित कर दिया। जमीन पर पड़ा सरसों का दाना तक दिखाई देता था। देव-ताओं सहित सारे लोक माला गन्धादि से पूजते थे। जनता आग में ही घूमती थी। किन्तु किसी का रुआ भी गर्म नहीं होता था।

यह स्वप्न देखा तो राजा को डर लगा। वह सोचने लगा, कि क्या होगा और इस चिन्ता में ही उसने बैठे बैठे दिन चढ़ा दिया। चारों पण्डितों ने प्रात काल ही आकर पूछा—"देव! क्या सुखपूर्वक सोये?" वह बोला—"आचार्यो! मेरे लिये सुख कहाँ है? मैंने ऐसा स्वप्न देखा है।" सेनक पण्डित बोला—"महाराज! डरें नहीं। यह मङ्गल-स्वप्न है। तुम्हारी उन्नति ही होगी।" पूछा—'ऐसा क्यों कहते हो?" बोला—"महाराज! हम चारों पण्डितों को निष्प्रभ कर दूसरा पाँचवा पण्डित पैदा होगा। हम चारों जने चारों अग्नि-स्कन्ध के समान हैं। बीच में उत्पन्न अग्नि-स्कन्ध के समान पाँचवा पण्डित होगा। देवताओं सहित लोक में वह सबसे निराला होगा।"

"अब वह कहाँ है?"

"महाराज ! या तो उसने आज गर्भ में प्रवेश किया होगा, अथवा माता के गर्भ से बाहर आया होगा।"

ये सारी बातें अपने विद्या-बल से उसने ऐसे बताई, मानो दिव्य-दृष्टि से देखकर कह रहा हो।

इसके बाद राजा ने यह बात याद रक्खी। मिथिला के चारों द्वारों पर प्राचीन यवमज्झक, दक्खिण यवमज्झक और उत्तर यव मज्झक (आदि) चार निगम थे। उनमें से प्राचीन यव मज्झक में श्रीवर्धन नामका सेठ था। उसकी सुमनादेवी नाम की भार्य्या थी। बोधिसत्व ने उसी दिन, जिस समय राजा ने स्वप्न देखा था, त्रयोत्रिंश भवन से च्युत हो उसकी कोख में प्रवेश किया। और भी हजार देव-पुत्रों ने त्रयोत्रिंश-भवन से च्युत हो उसी गाव में सेठ-अनुसेठों के कुलों में प्रवेश किया।

सुमना देवी ने दस महीने के बीतने पर स्वर्ण-वर्ण पुत्र को जन्म दिया। उस समय शक्र ने मनुष्य-लोक की ओर देखते हुए जाना कि बोधिसत्व ने माता की कोख से जन्म ग्रहण किया है। उसने सोचा कि इस बुद्धाङ्कुर को देवताओं सहित सारे लोक में प्रकट करना उचित है। वह बोधिसत्व के माता की कोख से निकलने के समय अदृश्य रूप में आया और उसके हाथ पर एक जड़ी बूटी रखकर अपने स्थान को ही चला गया। बोधिसत्व ने उसे मुट्ठी में दबा लिया। उसके माँ की कोख से बाहर आने पर माँ को थोड़ा भी दुःख नहीं हुआ। जल-पात्र से जल बाहर आने की तरह सुख-पूर्वक ही बाहर आया।

माता ने उसके हाथ में जड़ी देखी तो पूछा, "तात ! क्या मिला है ?" "अम्मा औषध है" कहकर वह दिव्यौषध माता के हाथ पर रख दी, और कहा, "माँ, यह औषध लेकर किसी भी रोग के रोगी को दे।" उसने प्रसन्न हो श्रीवर्धन सेठ से यह बात कही। उसके सिर में सात वर्ष से दर्द था। वह प्रसन्न हुआ और सोचने लगा, यह माता के गर्भ से बाहर आने के समय ही औषध लेकर आया है। पैदाइश के समय ही माँ से बातचीत करता है। इस प्रकार के पुण्यवान् द्वारा दी गई औषध बहुत प्रभाव वाली होगी। उसने वह जड़ी ली और पत्थर पर रगड़कर थोड़ी माथे पर लगा ली। सात वर्ष का सिर दर्द कमल के पत्ते से पानी के उड़ जाने की तरह जाता रहा।

उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि औषध बड़े प्रताप वाली है। बोधिसत्व के औषध लेकर आने की बात सभी जगह प्रकट हो गई। सभी प्रकार के रोगी सेठ के घर पहुँच औषधिया माँगने लगे। सभी को पत्थर पर घिस, थोड़ी ले, पानी में घोल दी

जातीं'। दिव्य-ओषधि के शरीर पर लगाते ही सारी बीमारी शान्त हो जाती। वे सुखी मनुष्य ओषधि का गुण-गान करते जाते कि श्री वर्धन के घर में की ओषधि बड़ी गुणकारक है।

बोधिसत्व के नाम ग्रहण के दिन महासेठ ने सोचा, मेरे पुत्र के लिये दादा (आदि की परम्परा) का नाम नहीं चाहिये। यह औषध-नामक ही हो। उसने उसका महोषधकुमार ही नाम रखा। उसके मन में हुआ, मेरा पुत्र महा प्रज्ञावान् है। वह अकेला ही नहीं उत्पन्न हुआ होगा। इसके साथ और भी बच्चे पैदा हुए होंगे। उसने तलाश कराई तो पता लगा कि हजार बच्चे पैदा हुए। उसने सभी को कुमार-अलंकार भिजवाये तथा दाइयां भिजवाईं। 'ये मेरे पुत्र के सेवक होंगे' सोच उसने बोधिसत्व के ही साथ उनका भी मङ्गल-उत्सव कराया। बच्चों को अलंकृत कर बीच-बीच में बोधिसत्व की सेवा में लाया जाता। उनके साथ खेलते हुए बोधिसत्व बढ़कर सात वर्ष की आयु होने पर स्वर्ण-प्रतिमा के समान सुन्दर हो गया। गांव के बीच उनके साथ खेलते समय कभी-कभी हाथी आदि के आ जाने से उनका क्रीडा-मण्डल टूट जाता। हवा-धूप के समय बच्चों को कष्ट होता। एक दिन जब वह खेल रहे थे अकाल-मेघ उठ आया। यह देख हाथी के से बलवाला बोधिसत्व भागकर एक शाला में चला गया। दूसरे लड़के भी पीछे दौड़े तो आपस में लड़खड़ाकर उन्होंने अपने घुटने आदि फुड़वा लिये।

बोधिसत्व ने सोचा, यहां क्रीडा-भवन बनना चाहिये। तब कष्ट न होगा। उसने लड़कों से कहा—"हम यहां, हवा, धूप और वर्षा के समय खड़े होने, बैठने और लेटने योग्य एक शाला बनायेंगे। एक एक कार्षापण लाओ।" उन हजार लड़कों ने वैसा किया। बोधिसत्व ने बड़े बढ़ई को बुलवाया और हजार देकर कहा, "यहां शाला बनाओ।" उसने 'अच्छा' कह हजार लिये और भूमि को बराबर करवा, खूंटे गड़वाये और धागा खींचा। वह बोधिसत्व के मन की बात नहीं समझा। बोधिसत्व ने उसे धागा खींचने की विधि बताते हुए कहा—"इस प्रकार धागा न खींचकर अच्छी तरह खींचो।"

"स्वामी! मैंने अपने शिल्प के अनुसार धागा खींचा। और दूसरी तरह नहीं जानता।"

"जब तू इतना भी नहीं जानता तो हमारे मन के अनुसार शाला कैसे बनायेगा? धागा ला। मैं तुझे खींचकर बताऊंगा।"

उसने धागा मंगवाकर स्वय खीचा। ऐसा हुआ जैसे विश्व-कर्मा ने धागा खीचा हो। तब बढई से पूछा—

"ऐसे धागा खीच सकेगा ?"

"स्वामी ! नही खीच सकूगा।"

"मेरे विचार के अनुसार बना सकेगा ?"

"स्वामी ! सकूगा।'

बोधिसत्व ने उस शाला मे बाहर की ओर मुँह करके ये सभी स्थान बनाने के लिये कहा, जैसे एक हिस्से में अनाथो के रहने की जगह, एक हिस्से मे अनाथ स्त्रियो का प्रसूतिका-गृह, एक हिस्से मे आगन्तुक श्रमण-ब्राह्मणो का निवास-स्थान, एक हिस्से मे शेप आगन्तुक मनुष्यो का तथा एक हिस्से में आगन्तुक व्योपारियो के लिये सामान रखने की जगह। उसने वहीं क्रीडा-भवन, वहीं न्यायालय तथा वही धर्म-सभा का स्थान बनवाया। शाला के कुछ ही दिन मे बनकर समाप्त होने पर उसने चित्रकारो को बुलवा, स्वय विचारकर रमणीय चित्र बनवाये। शाला इन्द्र की सुधर्मा सभा के (भवन के) समान हो गई। तब यह सोच कि इतने से ही शाला की शोभा नही है, पुष्करिणी भी बनवानी चाहिये, उसने पुष्करिणी खुदवाई और कारीगर को बुलवाकर अपनी ही योजना के अनुसार बनवाई देकर, हजार जगह टेढी और सौ तीर्थोवाली पुष्करिणी बनवाई। पाँच प्रकार के कमलो से आच्छादित वह पुष्करिणी नन्दन-वन के समान शोभा देती थी। उसके किनारे नाना प्रकार के फूलों और फलो वाले पेड लगवाकर नन्दनवन सदृश उद्यान लगवाया। उसी शाला के निमित्त धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण ओर आगन्तुक मुसाफिरो आदि के लिये दान-परम्परा चालू की।

उसकी वह करनी सर्वत्र ज्ञात हो गई। बहुत मनुष्य आने लगे। बोधिसत्व शाला मे बैठ आनेवालेलोको उचित-अनुचित योग्य अयोग्य समझाता। झगडो का निर्णय देता। बुद्ध के समय जैसा समय हो गया। उस समय विदेह राजाको याद आया कि सात वर्ष पहले चारो पण्डितो ने कहा था कि हमे परास्त कर पाँचवा पण्डित होगा। वह सोचने लगा कि वह इस समय कहा होगा ? उसने चारो द्वारो से चारो पण्डितो को भेजा कि उसके निवासस्थान का पता लगाये। शेप द्वारो से गये पण्डितो को बोधिसत्व दिखाई नही दिया। पूर्व-द्वार की ओर से जो पण्डित निकला था उसने शाला आदि को देखकर सोचा कि इस शाला को बनानेवाला अथवा बनवाने

वाला कोई पण्डित होगा। उसने मनुष्यो से पूछा—"यह शाला किस बढई ने बनाई है?" मनुष्यो ने उत्तर दिया "यह शाला बढई ने अपनी बुद्धि से नही बनाई। यह श्रीवर्धन सेठ के महौषध पण्डित नाम के पुत्र के विचारानुसार बनाई गई है।"

"पण्डित कितने वर्ष का है?"

"पूरे सात वर्ष का है।"

अमात्य ने राजा के स्वप्न देखने के दिन से गिनती करके देखा कि राजा के स्वप्न से मेल बैठता है। उसने राजा के पास दूत भेजा—"देव! प्राचीन यवमज्झक ग्राम में श्रीवर्धन सेठ के सात वर्ष का महौषध पण्डित नामका पुत्र ने ऐसी शाला बनवाई है, ऐसी पुष्करिणी बनवाई है और ऐसा उद्यान बनवाया है। इस पण्डित को लेकर आऊँ अथवा न आऊँ?"

राजा ने सुना तो प्रसन्न हुआ। उसने सेनक पण्डित को बुलवा और वह बात बताकर पूछा—"सेनक! क्या पण्डित को मगवायें?" उसने ईर्षा के वशीभूत हो उत्तर दिया—"महाराज! शाला आदि बनवाने मात्र से ही पण्डित नही होता। जो कोई यह सब बनवाता है, यह बडी बात नही है।" उसने उसकी बात सुनी तो सोचा, इसमें कुछ न कुछ बात होगी ही, और चुप हो रहा। उसने दूत को अमात्य के पास वापिस भेजा कि वही रहकर पण्डित की परीक्षा करे। यह परीक्षा-विधि की गाथा है—

> मंसं गोणो गण्ठि सुत्त पुत्तो गोणरथेन च,
> दण्डो सीस अहीचेव कुक्कुटो मणि विजायन,
> ओदन वालुकञ्चापि तलाकुय्यान गद्रभो मणि॥१॥

मास की बात। एक दिन जब बोधिसत्व क्रीडा-मण्डल में जा रहा था एक बाज कसाई के तख्ते पर से माँस का टुकडा ले आकाश मे उड गया। यह देख लडके मास का टुकडा छुडाने के लिये बाज के पीछे भागे। बाज भी जहाँ-तहाँ भागने लगा। वे ऊपर देख देख उसके पीछे भागते भागते पत्थरो आदि पर लडखडा कर कष्ट पा रहे थे। पण्डित ने कहा—"उसे छुडाऊ?" "स्वामी! छुडायें।" "तो देखो।" उसने बिना ऊपर देखे ही, वायु-वेग से दौड, बाज की छाया पर पहुँच, जोर की आवाज की। उसके प्रताप से वह आवाज बाज की कोख को बीधकर बाहर आई जैसी हुई। उसने डर के मारे मास छोड दिया। बोधिसत्व को जब यह पता लगा कि बाज ने माँस छोड दिया तो छाया की ओर ही देखते हुए उसे जमीन पर गिरने न देकर

आकाश में ही रोक लिया। यह आश्चर्य देख जनता ने तालियाँ पीटते हुए बहुत हल्ला मचाया। अमात्य ने यह समाचार जान राजा के पास संदेशा भेजा—"पण्डित ने इस उपाय से माँस का टुकडा छुडाया। देव! यह बात जानें!" राजा ने यह बात सुनकर सेवक से पूछा—"सेवक! क्या पण्डित को मंगवायें?" वह सोचने लगा—"उसके यहाँ आने पर तो हम निष्प्रभ हो जायेंगे। राजा यह भी नही जानेगा कि हम हैं भी वा नहीं? उसे आने नहीं देना चाहिये।" उसने ईर्षावश कहा—"महाराज! इतने से कोई पण्डित नहीं होता। यह तो मामूली बात है।" राजा ने उपेक्षा-भाव से वापिस संदेस भिजवाया कि वही उसकी परीक्षा ली जाय।

बैल की बात। प्राचीन यव-मझक ग्रामवासी एक आदमी 'वर्षा होने पर हल चलाऊंगा' सोच एक दूसरे गाँव से बैल खरीद लाया। रात भर घर में रख अगले दिन चरने के लिये घास के मैदान में ले गया। बैल की पीठ पर बैठे बैठे जब वह थक गया तो उतरकर एक पेड़ की छाया में जा बैठा। उसे बैठे बैठे नीद आ गई। उसी समय एक चोर बैलों को ले भागा। उसकी आँख खुली तो उसने बैलों को नहीं देखा। इधर-उधर ढूंढने पर उसे बैल लेकर भागनेवाला चोर दिखाई दिया। उसने भागकर उसे पकडा और पूछा—"मेरे बैलों को कहाँ लिये जा रहा है?" "अपने बैलों को जहाँ मेरी इच्छा है, वहाँ ले जाता हूँ।" उनका विवाद सुन लोग इकट्ठे हो गये। उनके शाला-द्वार के पास से गुजरते समय उनकी आवाज सुन पण्डित ने उन्हें बुलवाया और उनका व्यवहार देखकर ही यह जान लिया कि यह चोर है और यह मालिक है। जानते हुए भी पूछा—"क्यों झगडते हो?" बैलों के मालिक ने कहा—"मैं इन्हें अमुक गाँव से अमुक आदमी से खरीदकर लाया और घर में रख-कर घास के मैदान में ले गया। वहाँ मेरा प्रमाद देख यह बैलों को लेकर भागा। मैंने इधर-उधर ढूंढते हुए इसे देख भागकर पकडा, अमुक गाँव के लोग जानते हैं कि मैंने इन्हें खरीदा है।" चोर बोला—"ये मेरे घर पैदा हुए हैं। यह झूठ बोलता है।" तब पण्डित ने पूछा—"मैं तुम्हारा न्याय करूंगा। तुम मेरे फैसले को स्वीकार करोगे?" "स्वीकार करेंगे।"

पण्डित ने सोचा कि जनता को भी विश्वास कराना चाहिये, इसलिये उसने पहले चोर से प्रश्न किया—

"तूने इन बैलों को क्या खिलाया, क्या पिलाया?"

"यवागु पिलाया, तिल के लड्डू ओर उडद खिलाये ।"

तब बैलो के मालिक से पूछा। उसका उत्तर था—

"स्वामी! मुझ गरीब के पास यवागु आदि कहाँ? घास खिलाया है।"

पण्डित ने जनता का ध्यान उनके इस कथन की ओर आकर्षित किया और राई के पत्ते मगवा, ऊखल मे कुटवा, बैलो को पिलाये। बैलो ने तिनके ही बाहर किये। पण्डित ने जनता को कहा, यह देखे ओर चोर से प्रश्न किया—

"तू चोर है अथवा नही है?"

"चोर हूँ।"

"तो अब से ऐसा काम न करना।"

किन्तु बोधिसत्व के आदमियो ने उसे ले जाकर मुक्को और ठोकरो से मार-पीटकर दुर्बल कर दिया। तब पण्डित ने उसे बुलाकर उपदेश दिया—"इसी जन्म मे तुझे यह फल मिला है। परलोक मे तो बहुत दु ख भोगेगा। अब से यह काम छोड दे।"

उसने उसे पाच शील दिये। अमात्य ने राजा को ज्यो का त्यो वह समाचार भिजवाया। राजा ने सेनक से पूछा। बोला—"महाराज! बैलो का मुकद्दमा कोई भी फैसला कर सकता है। अभी प्रतीक्षा करे।" राजा ने उपेक्षवान् हो, फिर वैसा ही सदेश भिजवाया। (इसी प्रकार सभी विषयो मे जानना चाहिये। अब इससे आगे घटना मात्र का वर्णन करेगे।)

कण्ठी की बात। एक गरीब स्त्री नाना रगो के धागो को गठियाकर बनी सूत की कण्ठी को गले से उतार, कपडे के ऊपर रख, पण्डित द्वारा बनवाई पुष्करिणी मे स्नान करने के लिये उतरी। एक दूसरी तरुण स्त्री ने उसे देखा तो उसके मन मे लोभ आ गया। उसने इसे उठाया ओर बोली—"अम्मा! यह बहुत ही सुन्दर है। कितने मे बनी है? मै भी अपने लिये ऐसा बनाऊँगी। इसे जरा गर्दन मे पहनकर इसका माप लू?" उस सरल स्त्री ने जवाब दिया—"पहन ले।" वह उसे पहनकर चल दी। दूसरी ने देखा तो जल्दी से निकली और वस्त्र पहन, दौडकर उसके कपडे पकड लिये—'मेरी कण्ठी लेकर कहा भागी जा रही है?" दूसरी ने उत्तर दिया—"मैने तेरी कण्ठी नही ली। मेरी गरदन मे मेरी कण्ठी है।" यह सुन जनता इकट्ठी हो गई। लडको के साथ खेलते हुए पण्डित ने झगडते हुए शाला-द्वार से जाते हुए उनकी आवाज सुनी। पूछा—"यह क्या आवाज है?" उसे दोनो के झग-

डने की बात मालूम हुई। उसने उन्हें बुलवाया और उनके आकार से ही जान लिया कि उनमे से कौन सी चोरिणी है और कौन सी अचोरिणी। तो भी उसने उनसे झगडे की बात पूछकर प्रश्न किया कि क्या मेरे फैसले को स्वीकार करोगी ? उनका उत्तर था—"स्वामी ! हाँ।" तब उसने पहले चोरिणी से पूछा—"तू जब यह कण्ठी पहनती है ? तो कौन सी सुगन्धि लगाती है ?" "मैं नित्य सर्व-सहारक सुगन्धि लगाती हूँ।" सर्व-सहारक गन्ध कहते है सभी सुगन्धियो को मिलाकर बनाई सुगन्धि को। तब दूसरी से प्रश्न किया। उसका उत्तर था—"मुझ गरीब के पास कहाँ सर्व सहारक सुगन्धि। मै नित्य राई के फूलो की सुगन्धि का ही लेप करती हूँ।" पण्डित ने पानी की थाली मगवाई और उस कण्ठी को उसमें डलवा दिया और फिर गन्धी को बुलाकर कहा—"इस थाली को सूघकर पता लगा कि अमुक गन्ध है।" उसने सूघकर पता लगाया कि यह राई के फूलो की गन्ध है और एकव निपान (?) मे आई यह गाथा कही—

सब्बसहारको नत्थि सुद्ध कगु पवायति,
अलीकं भासतय धुत्ती सच्चमाहु महल्लिका ॥२॥

[सर्व सहारक नही है। शुद्ध राई है। यह धूर्ती झूठ बोलती है। बुढिया सच कहती है ॥२॥]

बोधिसत्व ने जनता को यह बात जताकर उसे पूछा—"तू चोरिणी है अथवा नहीं है।" इस प्रकार उसने उससे चोरिणी होना स्वीकार करवाया। तब से बोधिसत्व का पाण्डित्य सारी जनता मे प्रसिद्ध हो गया।

सूत की बात। कपास के खेत की रखवाली करनेवाली एक स्त्री ने खेत की रखवाली करते समय ही, वहीसे साफ कपास ले, बारीक सूत कात, गोला बनाकर अपने पल्ले में रखा। फिर गाव आते समय पण्डित की बनवाई पुष्करिणी में नहाने के लिये वस्त्र के ऊपर सूत का गोला रख नहाने के लिये उतरी। दूसरी स्त्री ने उसे देखा तो उसके मन मे लोभ आ गया। उसने उसे लिया और "अम्मा ! तूने अच्छा सूत काता है, कह आश्चर्य प्रकट करते हुए उसे पल्ले मे डालकर चल दी। इससे आगे की कथा पूर्ववत् ही कही जानी चाहिये। पण्डित ने चोरिणी से पूछा—"तूने गोला बनाते समय अन्दर क्या रखा था ? "स्वामी ! बिनौला।" उसने दूसरी से पूछा—"स्वामी ! तिम्बरू का बीज।" उसने दोनो के कथन की ओर जनता का ध्यान आकर्पित किया और सूत के गोले को उधेड, तिम्बरू का बीज देख उससे

उसका चोरिणी होना स्वीकार कराया। जनता ने प्रसन्न हो हजारो साधुकार दिये कि मुकद्दमे का ठीक निर्णय हुआ।

पुत्र की बात। एक स्त्री पुत्र को लेकर मुँह धोने के लिये पण्डित की पुष्करिणी पर पहुँची। उसने पुत्र को नहलाया और अपने वस्त्र पर बिठा, मुह धोकर स्नान करने के लिये उतरी। उसी समय एक यक्षिणी उस बच्चे को देख खाने की इच्छा से स्त्री का वेष बना वहाँ पहुची और पूछा—"सखी! बच्चा सुन्दर है। यह तेरा बच्चा है?" "अम्मा! हाँ।" "मै इसे दूध पिलाऊँ?" "पिला", कहने पर उसे ले, थोडी देर खिलाकर, लेकर भागने लगी। दूसरी ने यह देखा तो दौडकर उसे पकडा—"मेरे पुत्र को कहाँ ले जाती है?" यक्षिणी बोली—"तेरा पुत्र कहा से आया? यह मेरा पुत्र है।" वे दोनो झगडती हुई शाला के सामने से जा रही थी। पण्डित ने झगडा सुना तो उन्हे बुलाकर पूछा—"यह क्या है?" उसे झगडे का कारण मालूम हुआ। उसने आखो के न झपकने से और उनके लाल होने से यक्षिणी को यक्षिणी जान लिया। तो भी पूछा—"मेरे फैसले को स्वीकार करोगी?" "हा स्वीकार करेगी" कहने पर उसने लकीर खीची और बच्चे को लकीर के बीच लिटाकर यक्षिणी को हाथ और मा को पाव पकडाकर कहा—"दोनो खीचो। जो खीच-कर ले जायगी, उसी का पुत्र।" उन दोनो ने खीचा। बच्चा खीचे जाने पर तकलीफ के मारे चिल्ला पडा। माँ को ऐसा हुआ जैसे कि उसका हृदय फट गया हो। वह बच्चे को छोड एक ओर खडी हो रोने लगी। पण्डित ने लोगो से पूछा—"बच्चे के प्रति माता का हृदय कोमल होता है अथवा अमाता का?" "पण्डित! माता का हृदय।" "अब क्या जो यह बच्चे को लेकर खडी है वह माता है अथवा जिसने बच्चे को छोड दिया है, वह माता है?" "पण्डित! जिसने बच्चे को छोड दिया।" "इस बच्चे को चुरानेवाली को तुम पहचानते हो?" "पण्डित! हम नहीं पहचानते है।" "यह यक्षिणी है, इसने बच्चे को खाने के लिये लिया था।" पण्डित! यह तुमने कैसे जाना?" "इसकी आखे नही झपकती, इसकी आखो लाल है, इसकी छाया नही है, यह सकोच-रहित है और यह निर्दय है।" "तब उससे पूछा—"तू कौन है?'

"स्वामी! मै यक्षिणी हूँ।"

"अन्ध बाले! पहले भी पाप करके यक्षिणी हुई। अब फिर भी पाप कर रही है। ओह! तू कितनी मूर्ख है।"

इस प्रकार उसे पाच शीलो मे प्रतिष्ठित कर प्रेरित किया। बच्चे की मा, 'स्वामी! चिरकाल तक जीयें' कह पण्डित की स्तुति कर पुत्र को लेकर गई।

गोलरथ की बात। गोल से और रथ मे। कुबडा होने से गोल और काला होने से काल, इस प्रकार गोलकाल नामका एक आदमी था। उसने सात वर्ष घर मे काम करके भार्य्या प्राप्त की। वह नाम मे दीर्घ-ताड नाम की थी। एक दिन उसने उसे बुलाकर कहा—"भद्रे! पूए पका। माता-पिता को देखने जायेंगे।" उसने तीन बार मना किया—"तुझे माता पिता मे क्या?" उसके मना करने पर भी उसने उसे तीन बार कह, पूए पकवा, पाथेय और भेंट ली और उसे साथ ले रास्ते पर निकल पडा। रास्ते मे एक छिछली नदी दिखाई दी। वे दोनो जने पानी से डरनेवाले थे। इसलिये उस नदी को पार करने की हिम्मत न कर किनारे पर ही खडे रहे। तब दीर्घ-पीठ नामका एक मनुष्य नदी के तट पर घूमता-घूमता वहाँ आ पहुचा। उन्होने उसे देख पूछा—"मित्र! यह नदी गहरी है अथवा छिछली?" यह समझ कि ये पानी से डरनेवाले हैं उसने उत्तर दिया—"बहुत गहरी। प्रचण्ड मच्छोवाली।" "मित्र! तू कैसे जायेगा?" "यहा के मगर-मच्छो का हमसे परिचय है। इस-लिये हमें कष्ट नही देते।" वे बोले—"तो हमे भी ले चल।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उन्होने उसे खाद्य-भोज्य सामग्री दी। खाना खा चुकने पर उसने पूछा—"मित्र! पहले किसे ले चलू?"

"अपनी सखी को ले जा। मुझे पीछे ले चलना।"

उसने 'अच्छा' कहा और उसे कन्धे पर बिठाया तथा सारा पाथेय और भेंट भी लेकर नदी मे उतरा। थोडी दूर चलकर वह उकडूँ बैठा और उसी तरह उस पार चला गया। गोलकाल किनारे पर खडा ही खडा सोचने लगा—'कितनी गहरी है यह नदी! इतने लम्बे आदमी का भी यह हाल है। मेरे लिये तो असह्य होगी।' दूसरे ने भी नदी के बीच पहुचने पर कहा, "भद्रे! मैं तेरा पालन-पोषण करूगा। वस्त्र, अलकार, दास-दासी से घिरी रहेगी। यह बौना तेरे लिये क्या कर सकेगा? मेरा कहना मान।" उसने उसकी बात सुनी तो अपने स्वामी का ममत्व छोड उसी समय उसमे आसक्त हो उसकी बात मान ली और बोली—'स्वामी। यदि मुझे नही छोडोगे तो तुम्हारा कहना करूगी।" दूसरे तटपर पहुच वे दोनो ही गोलकाल को छोड, 'पडा रह तू यहीं' कह, उसके देखते हुए ही खाते-पीते चले गये। उसने देखा तो सोचा "मालूम होता है, ये दोनों मिलकर मुझे छोडकर भागे जा रहे हैं।

वह इधर-उधर भागा, थोड़ा नदी में उतरा और भय के मारे रुका। फिर उसे क्रोध आया। उसने सोचा—चाहे जीऊ, चाहे मरू और नदी में उतर पड़ा। तब नदी को छिछली पा, वह उस पार गया ओर जल्दी से भाग कर उसे जा पकड़ा और पूछा—"रे दुष्ट! मेरी भार्य्या को कहा लिये जा रहा है?" दूसरे ने भी उसे गरदन से पकड़ धक्का देते हुए कहा—"अरे दुष्ट बौने! यह तेरी भार्य्या कहाँ से आई? यह मेरी भार्य्या है।" उसने दीर्घ-ताड को हाथ से पकड़ा और बोला, "ठहर कहाँ जाती है। सात वर्ष तक घर में काम करके प्राप्त की हुई तू मेरी भार्य्या है।" वह उसके साथ झगड़ते हुए शाला के पास आ पहुँचा। जनता इकट्ठी हो गई। बोधिसत्व ने 'यह क्या हल्ला है?' पूछ, उन दोनों जनों को बुला, उनका उत्तर-प्रत्युत्तर सुन पूछा, "मेरा निर्णय स्वीकार करोगे?" "स्वीकार करेंगे" कहने पर पहले दीर्घ-पीठ को बुलवाकर पूछा—"तेरा क्या नाम है?"

"स्वामी! मेरा नाम दीर्घ-पीठ है।"

"तेरी भार्य्या का क्या नाम है?"

उसे उसका नाम मालूम नही था। इसलिये उसने दूसरा नाम बताया। "तेरे माता-पिता का क्या नाम है?"

"अमुक नाम।"

"तेरी भार्य्या के माता-पिता का क्या नाम है?"

उसे उनका नाम मालूम नही था, इसलिये दूसरा नाम बताया। उसने उसके कथन की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया और उसे दूर भेज दूसरे को बुलवा पूर्व-प्रकार से ही सभी के नाम पूछे। उसने ठीक-ठीक जानने के कारण ठीक-ठीक बता दिये। उसे भी दूर भेज, दीर्घ-ताड को बुलाकर पूछा—

"तेरा क्या नाम है?"

"स्वामी! मेरा नाम दीर्घ-ताड है।"

"तेरे स्वामी का क्या नाम है?"

उसने न जानने के कारण कुछ और बता दिया। पूछा—'तेरे माता-पिता का क्या नाम है?" उसने ठीक-ठीक बता दिया। "तेरे स्वामी के माता-पिता का क्या नाम है?" उसने बकवास करते हुए कुछ दूसरे ही नाम बताये। पण्डित ने शेष दोनों को बुलवा जनता से पूछा—'इसका कहना दीर्घ-पीठ के कहने से मेल खाता है अथवा गोलकाल के कथन के साथ?"

"पण्डित ! गोलकाल के कथन के साथ ।"

यह इसका स्वामी है, दूसरा चोर है, कह, उसे पूछ कर उसका चोर होना मनवाया ।

रथ की बात । एक आदमी रथ में बैठकर मुँह धोने के लिये निकला । उस समय शक्र ने विचार करते हुए सकल्प किया कि बुद्धाङ्कुर महौषध पण्डित के प्रज्ञा-प्रताप को प्रकट करूँगा । उसने आदमी का रूप बनाया और रथ का पिछला हिस्सा पकड दौडने लगा । रथ में बैठे आदमी ने पूछा, "तात ! क्यों आया है ?" "तुम्हारी सेवा करने के लिये" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और रथ से उतर शारीरिक-कृत्य करने के लिये गया । उसी समय शक्र ने रथ मे बैठ उसे जोर से हाक दिया । रथ का मालिक शारीरिक-कृत्य समाप्त कर आया तो उसने शक्र को रथ लिये जाता देखा । उसने जल्दी से जा उसे टोका—"रुक रुक । मेरा रथ कहाँ लिये जा रहा है ?"

"तेरा रथ दूसरा होगा । यह तो मेरा रथ है ।'

वह उसके झगडते हुए शाला द्वार पर आ पहुँचा । पण्डित ने 'यह क्या है ?' जानने के लिये उसे बुलवाया । उसे आते देख, उसकी निर्भयता से तथा उसकी आँखों मे पलक न होने से वह जान गया कि यह 'शक्र' है और यह रथ-स्वामी है । ऐसा होने पर उसने झगडे का कारण पूछकर प्रश्न किया—"मेरे निर्णय को स्वीकार करोगे ?" 'हा स्वीकार करेंगे" कहने पर कहा—"मै रथ को हाकता हूँ । तुम दोनों रथ को पीछे से पकडकर आओ । जो रथ का स्वामी होगा, वह रथ नही छोडेगा, दूसरा छोडेगा ।" यह कह उसने अपने आदमी को आज्ञा दी कि रथ हाँको । उसने वैसा ही किया । दोनों जने पीछे से रथ को पकडे चले । रथ का मालिक थोडी दूर जाकर, दौड न सकने के कारण, रथ को छोड खडा हो गया । शक्र रथ के साथ दौडता ही चला गया । पण्डित ने रथ रुकवा आदमियों को कहा—"यह आदमी थोडी दूर जाकर रथ को छोड खडा हो गया । लेकिन यह रथ के साथ दौडता हुआ रथ के साथ ही रुका । इसके शरीर मे पसीने की बूँद भी नहा है । न साँस ही चढा है । यह निर्भय है । इसकी पलकें भी नहीं है । यह देवेन्द्र शक्र है ।" तब उसने उसे पूछा—

"क्या तू देव-राजा है ?"

"हा ।"

"किसलिये आया ?"

"पण्डित। तेरी ही प्रज्ञा को प्रसिद्ध करने के लिये।"

"तो फिर ऐसा न करना।"

शक्र ने शक्र-प्रताप दिखाया और फिर आकाश मे स्थित हो पण्डित की स्तुति की कि मुकद्दमे का ठीक निर्णय किया और अपने निवास-स्थान को चला गया।

तब उस अमात्य ने स्वय ही राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! पण्डित ने इस प्रकार रथ के झगडे का निर्णय किया। उसने शक्र को भी पराजित कर दिया। आप पुरुष-विशेष का परिचय क्यो नही प्राप्त करते ?" राजा ने सेनक से पूछा—"क्यो सेनक पडित को मगवाये ?" महाराज इतने मे ही पण्डित नही होते। अभी सवर करे। परीक्षा करके जानेगे।"

सात बाल-प्रश्न समाप्त

दण्ड की बात। एक दिन पण्डित की परीक्षा लेने के लिये खदिर की लकडी मगवाई और उसमे से बालिश्त भर काट कर लकडी खरादनेवाले से अच्छी तरह खरदवाकर प्राचीन यवमज्झक गाव भेजी।—"यवाज्झगामवासी पण्डित है। इस लकडी की जड और सिरे का पता लगाये। यदि नही बता सकेंगे तो हजार दण्ड देना होगा।" ग्रामवासी इकट्ठे हुए। जब उन्होने देखा कि वे पता नही लगा सकते तो उन्होने सेठ को कहा—"शायद महोषध पण्डित जान सके। उसे बुलाकर पूछे।" सेठ ने पण्डित को क्रीडा-मण्डल मे से बुलवाया और वह बात बताकर पूछा—"तात। हम नही जान सके। तू बता सकेगा ?" यह बात सुनी तो पण्डित ने सोचा—"राजा को इसके सिरे या जड से काम नही है। मेरी परीक्षा लेने के लिये ही भेजा होगा।" 'यह सोच कहा—तात लाये। बताऊँगा।' उसने यद्यपि हाथ मे लेते ही जान लिया कि यह सिरा है और यह जड है, तो भी जनता को विश्वास दिलाने के लिये पानी की थाली मगवाई। फिर खदिर की लकडी को बीच मे सूत से बाँधकर, सूत का सिरा हाथ मे ले खदिर की लकडी को पानी की सतह पर रखा। जड भारी होने से जल मे पहले डूबी। तब जनता से पूछा—"वृक्ष की जड भारी होती है या सिरा ?" "पण्डित! जड।" "तो इसका पहले डूबा सिरा देखो, यही जड है।" इस प्रज्ञा से उसने जड और सिरा बता दिया। ग्रामवासियो ने भी राजा को कहला भेजा—'यह सिरा है और यह जड है?' राजा ने सुना तो प्रसन्न हुआ और पुछवाया—

"इसका पता किसने लगाया ?' उत्तर मिला—"श्रीवधन सेठ के पुत्र महोपध पण्डित ने।" तब राजा ने सेनक से पूछा—"क्या उसे मगवाये ?" 'देव! सबर करे। दूसरे ढँग से भी परीक्षा लेंगे।"

सिर की बात। एक दिन एक स्त्री का और दूसरा पुरुष का सिर मगवाकर दो सिर भेजे गये—पता लगाओ कि कौन सा स्त्री का सिर है और कौन सा पुरुष का? पता न लगा सकने पर हज़ार दण्ड। ग्रामवासियो को पता नही लगा। उन्होने बोधिसत्व से पूछा। उसे देखते ही पता लग गया। पुरुष के सिर की सीवन (?) सीधी होती है और स्त्री के सिर की सीवन टेढ़ी घूमकर जाती है। इस ज्ञान से उसने बता दिया कि यह स्त्री का सिर है और यह पुरुष का सिर है। ग्रामवासियो ने राजा को कहला भेजा। शेष कथा पूर्ववत्।

सर्प की बात। एक दिन साप और सर्पिनी भिजवाई। बताये कि कौन सा साप है और कौन सी सर्पिनी। ग्रामवासियो ने पण्डित से पूछा। उसने देखते ही जान लिया। साप की पूछ मोटी होती है, सर्पिनी की पतली। साप का सिर मोटा होता है, सर्पिनी की लम्बी। साप की आखे बडी बडी होती है, सर्पिनी की छोटी और साप का स्वस्तिक (?) बधा हुआ होता है, सर्पिनी का बिखरा हुआ। उसने इस ज्ञान से यह सर्प है और यह सर्पिनी है, बता दिया। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही।

मुर्गे की बात। एक दिन आज्ञा आई की प्राचीनयवमज्झक ग्रामवासी हमारे पास एक बैल भेजे जो सर्वथा श्वेत हो, जिसके पैरो मे सीग हो और जिसके सिर पर कूबड हो और जो नियम से तीन बार आवाज लगाता हो। यदि नही भेजेंगे तो हजार का दण्ड। जान न सकने के कारण पण्डित से पूछा गया। उसने उत्तर दिया—"राजा सर्वश्वेत मुर्गा मगवा रहा है। इसके पाव मे नाखून होते हैं, इसलिये वह पाव मे सीगवाला कहलाता है, सिर पर कलगी होने से वह सिर पर कूबडवाला कहलाता है और तीन बार बाग देने से तीन बार नियम मे आवाज लगाने वाला कहलाता है। इसलिये ऐसा मुर्गा भेजो।" उन्होने भेज दिया।

मणी की बात। शक्र द्वारा कुश नरेश को दिया गया मणि-स्कन्ध आठ जगहो से टेढा था। उसका धागा पुराना हो गया था। कोई भी पुराने सूत को निकालकर नया न पुरो सकता था। एक दिन आज्ञा आई—"इस मणि में से पुराना धागा निकालकर नया पिरोये।" ग्रामवासी न पुराना निकाल सके और न नया पिरो सके। असमय होने पर पण्डित से कहा। उसका उत्तर था—"चिन्ता न करो। उसने 'मधु-

वन्दु लाओ' कहकर मधु-विन्दु मगवाया। फिर मणि के दोनो किनारो के छेदो पर थोडा-थोडा मधु लगा, कम्बल का धागा बाट, सिरे पर मधु लगा, थोडा सा सिरा छेद मे घुमा, चींटियो के निकलने की जगह ले जाकर रखा। चींटिया मधु-गन्ध से खिचकर बिल से बाहर निकलीं, मणि का पुराना धागा खाती हुई गईं। उन्होने कम्बल के धागे का सिरा लिया और उसे खीचती हुई दूसरे सिरे मे निकली। पण्डित ने जब जाना कि धागा पिरोया गया तो उसने मणि गाव वालो को दी कि राजा को दे दें। उन्होंने राजा के पास भेज दी। राजा ने धागा डालने का उपाय सुना तो प्रसन्न हुआ।

जनने की बात। एक दिन, राजा के मङ्गल वृषभ को बहुत महीनो तक खिला-कर, महोदर करके, उसके सींग धोकर और उनमे तेल लगा, हल्दी से स्नान करा, प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासियो के पास भेजा—"तुम लोग पण्डित हो। राजा के इस मङ्गल-वृषभ का गर्भ ठहर गया है। इसको जनवाकर बछडे सहित भेजो। न भेज सकने पर हजार का दण्ड।" ग्रामवासियो ने पण्डित से पूछा—'यह तो कर नही सकते। क्या करे?" उसने सोचा यह प्रत्युत्तर देने की बात होगी और लोगो से पूछा—'क्या आपको कोई ऐसा आदमी मिल सकता है जो चतुर हो और राजा के साथ बातचीत कर सके?"

"पण्डित! यह भारी बात नही है।"

"तो उसे बुलवाओ।" उन्होने उसे बुलवाया। बोधिसत्व ने कहा, "हे आदमी! यहा आ। अपने बालो को पीठपर बखेरकर, नाना प्रकार का विलाप करता हुआ राज द्वार पर जा। औरों के पूछने पर बिना कुछ कहे रोते रहना। जब राजा बुला कर विलाप का कारण पूछे तो कहना, "देव! मेरा पिता जन नही सक रहा है। आज सातवा दिन है। मुझे अपनी शरण मे लें और ऐसा उपाय बताये जिससे वह जन सके।" जब राजा कहे कि क्या बकवास कर रहा है, यह कहीं हो सकता है कि पुरुष जनें, तो कहना—"देव! यदि यह सत्य है तो प्राचीनयवग्रामवासी लोग कैसे बैल को जनायेंगे?" उसने अच्छा कह स्वीकार किया और वैसा ही किया। राजा ने पूछा—"यह प्रत्युत्तर किसने सोचा?" जब सुना कि महोषध पण्डित ने तो राजा प्रसन्न हुआ।

भात की बात। फिर एक दिन पण्डित की परीक्षा लेने के लिये आज्ञा हुई—प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासी हमारे पास आठ अङ्गो से परिपूर्ण आम्ल-भात पकवा

कर भेजे। आठ अङ्ग ये हैं—न चावल हो, न पानी डाला जाय, न ऊखली में कूटे जाये, न चुल्हे पर पकाये जाये, न आग से पकाये जायें, न लकड़ी से पकाये जाये, न स्त्री द्वारा पकाये जायें, न पुरुष द्वारा पकाये जाये और न रास्ते से लाये जाये। न भेजने पर हजार का दण्ड। ग्रामवासियों ने यह बात न समझ सकने के कारण पण्डित से पूछी। उसने कहा—'चिन्ता न करो। "चावल नहीं' का मतलब है कि (चावल की) कणिया हो, 'पानी नहीं' का मतलब है, बरफ लो, 'उखल नहीं' का मतलब है, दूसरा मिट्टी का बरतन लो, 'चूल्हा नहीं' का मतलब ठूठ खुदवाकर, 'आग नहीं' का मतलब है स्वाभाविक आग छोड अरणी-अग्नि मगवाकर, 'लकडी नहीं' का मतलब है पत्ते मगवाकर अम्ल भात पकवाकर, नये बरतन मे डाल, मुहर लगा, 'न स्त्री और न पुरुष से' का मतलब है कि हिजडे से उठवाकर, और 'न रास्ते से' का मतलब है कि महा-मार्ग छोडकर पग-डण्डी से राजा के पास भेजो।" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने पूछा—"यह प्रश्न किसने जाना ?" "महोषध पण्डित ने" सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

बालू की बात। फिर एक दिन पण्डित की ही परीक्षा लेने के लिए ग्रामवासियों के पास आज्ञा भिजवाई—राजा डोले मे झूलना चाहता है। राजकुल की पुरानी बालू की रस्सी सड गई। बालू की एक रस्सी बाटकर भेज दे। न भेज सकने पर हजार दण्ड। न जानने के कारण उन्होंने पण्डित से पूछा। पण्डित ने सोचा—यह भी प्रति-प्रश्न पूछने की ही बात होनी चाहिये। उसने ग्रामवासियों को आश्वस्त कर, बातचीत करने में कुशल दो तीन आदमियों को बुलाकर कहा—"जाओ, राजा से कहो, देव ! गाव के लोग नहीं जानते कि वह रस्सी कितनी पतली अथवा मोटी है। पुरानी बालू की रस्सी से बालिश्त भर अथवा चार अङ्गुल भर रस्सी का टुकडा भेज दें। उसे देख उसी के अदाज से रस्सी बाटेंगे। यदि राजा कहे कि हमारे घर मे बालू की रस्सी कभी नहीं हुई है तो कहना कि महाराज ! यदि वह नहीं बन सकती तो प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासी कैसे बालू की रस्सी बटेंगे ?" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने सुना तो पूछा—यह प्रति-प्रश्न किसने सोचा ? जब पता लगा कि पण्डित ने, तो राजा प्रसन्न हुआ।

तालाब की बात। फिर एक दिन ग्रामवासियों को आज्ञा हुई—राजा जल-क्रीडा करना चाहता है। पाच प्रकार के पद्मो से आच्छादित नई पुष्करिणी भेजें। न भेजने से हजार का दण्ड। उन्होंने पण्डित से कहा। उसने यह सोच कि यह भी

प्रति-प्रश्न पूछने की ही बात होगी, बात चीत करने में कुशल कुछ आदमियों को बुलवाकर कहा—"तुम आओ और पानी में खेल, आखे लाल कर, गीले केश, गीले वस्त्र, कीचड मला बदन करके और हाथ में रस्सी, डण्डा तथा ढेले लेकर राज-द्वार पर जाओ। फिर राज-द्वार पर पहुँचने की सूचना राजा तक भिजवाओ। अनुज्ञा होने पर अन्दर जाकर कहना, "महाराज! आपने प्राचीन यवमज्झक वासियों को पुष्करिणी भेजने के लिये कहा। इसलिये हम आपके योग्य बडी सी पुष्करिणी लेकर आये। किन्तु वह अरण्यवासिनी होने से नगर देखने से, चार दीवारी, खाई तथा अट्टालिकादि देखने से डर के मारे रस्सी तुडा कर, भागकर आरण्य में ही चली गई। हम ढेलो तथा डले आदि से मारकर उसे रोक नही सके। अपनी आरण्य से लाई हुई पुरानी पुष्करिणी दे। उसके साथ जोतकर उसे लावेंगे। यदि राजा कहे कि न हमने कभी आरण्य से कोई पुष्करिणी मगवाई और न किसी पुष्करिणी को जोतकर लाने के लिये पुष्करिणी भेजी, तो कहना, तब यवमज्झकग्रामवासी कैसे पुष्करिणी भेजेंगे।" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने जब सुना कि यह बात पण्डित ने ही समझी तो वह प्रसन्न हुआ।

उद्यान की बात। फिर एक दिन आज्ञा गई— हमारी उद्यान-क्रीडा की इच्छा है। हमारा उद्यान पुराना है। यवमज्झक ग्रामवासी सुपुष्पित वृक्षो से आछन्न नया उद्यान भेजे। पण्डित ने यह समझ कि प्रति-प्रश्न का ही विषय है, लोगों को आश्वस्त कर, आदमियों को भेज पहली तरह ही कहलाया।

तब राजा ने सन्तुष्ट हो सेनक को पूछा—"पण्डित को मगवाये?" उसने (अभी भी) लाभ के प्रति ईर्ष्या के कारण कहा—"इतने से पण्डित नहीं होता। और प्रतीक्षा करे।" उसकी बात सुन राजा सोचने लगा—"महोपध पण्डित ने बाल-प्रश्नो से मेरा मन जीत लिया, और इस प्रकार की गूढ परीक्षाओ तथा प्रति-प्रश्नो में तो इसकी व्याख्या वुद्ध के समान है। सेनक ऐसे पण्डित को आने नही देता। मुझे सेनक पण्डित से क्या। उसे लाता हूँ।" वह बडे ठाट-बाट से गाव की ओर चल दिया। जब वह मङ्गल-अश्व पर चढा जा रहा था घोडे का पाव फटी भूमि के अन्दर जाकर टूट गया। राजा वही से नगर को वापिस लौट आया। तब सेनक ने आकर पूछा—"महाराज! पण्डित को लाने यवमज्झक गाव गये?"

"पण्डित। हा।"

"महाराज! आप मुझे अपना अहित-चिन्तक समझते हैं। 'अभी सबर करें'

कहने पर भी अति जल्दी करके गये। पहली बार ही मङ्गल घोडे का पाव टूट गया।" उसकी बात सुनी तो राजा चुप हो रहा। फिर एक दिन उसने सेनक से विचार किया —"सेनक। क्या महौषध पण्डित को ले आये ?" तो देव ! स्वय न जाकर दूत को भेजे और कहलाये कि हम तेरे पास आ रहे थे। हमारे घोडे का पाव टूट गया। चाहे खच्चर भेजो चाहे श्रेष्ठतर भेजो। यदि खच्चर को भेजेगा तो स्वय आयेगा और यदि श्रेष्ठतर को भेजेगा तो पिता को भेजेगा। यह भी हमारा एक प्रश्न हो जायेगा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा कहकर दूत भेजा।

पण्डित ने दूत की बात सुनी तो सोचा—राजा मुझे और पिता को देखना चाहता है। वह पिता के पास गया और प्रणाम करके कहने लगा— तात ! राजा आप को और मुझे देखना चाहता है। आप पहले हजार सेठो के साथ लेकर जाइये। और जाते समय खाली हाथ न जा नये घी से भरा चन्दन-पात्र लेकर जाये। राजा आपका कुशल-क्षेम पूछ कहेगा कि अपने योग्य आसन देख बैठ जाओ। आप वैसा आसन देख बैठ जाना। आपके बैठने के समय ही मै आ जाऊँगा। राजा मेरा भी कुशल-क्षेम पूछ कहेगा—'पण्डित अपने अनुरूप आसन देख बैठ।' तब मै आपकी ओर देखूँगा। आप उस सकेत को समझ आसन से उठकर कहना—"महौषध पण्डित इस आसन पर बैठ।" आज एक प्रश्न पूरा होगा।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और जैसे बताया तदनुसार ही जाकर राजा को सूचना भिजवाई कि वह द्वार पर खडा है। अन्दर आने की आज्ञा हुई तो अन्दर जाकर राजा को नमस्कार कर एक ओर बैठा। राजा ने उसका कुशल-पूछ प्रश्न किया—"गृहपति ! तेरा पुत्र महौषध पण्डित कहा है ?" 'देव ! पीछे आ रहा है।" राजा ने 'आ रहा है' सुना तो प्रसन्न हो बोला, "अपना उचित आसन जानकर बैठो।" वह अपना उचित आसन जान एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने सजधज कर, हजार लडको को साथ ले 'अलकृत रथ मे बैठ' नगर मे प्रवेश किया। जाते-जाते खाई के बाहर एक गधा देख अपने शक्तिशाली साथियो को आज्ञा दी —"इस गधे का पीछा कर, पकड, बिना बोलने दिये मुँह बाँध एक कपडे मे लपेट, कंधे पर लेकर आओ।" उन्होने वैसा ही किया। बोधिसत्व ने भी बडे ठाट-बाट से नगर मे प्रवेश किया। जनता का मन बोधिसत्व को देखने और उसकी

प्रशसा करने से न भरता था। लोग कहते—"यह श्रीवर्धन सेठ का पुत्र है महौषध पण्डित। पैदा होते समय यह हाथ मे औषध लेकर पैदा हुआ। इसने परीक्षा के लिये पूछे गये इतने प्रश्नोके प्रति-प्रश्न जाने।" उसने राज-द्वार पर पहुँच अपने आगमन की सूचना भिजवाई। राजा सुनते ही बडा प्रसन्न हुआ। बोला—"मेरा पुत्र महौषध पण्डित शीघ्र आये।" हजार लडको के सहित वह महल पर चढ आया और राजा को प्रणाम करके एक ओर खडा हुआ।

राजा उसे देखते ही प्रसन्न हुआ और बडी मिठास से कुशल-क्षेम पूछ बोला—"पण्डित ! अपना योग्य आसन जान उस पर बैठ।" उसने पिता की ओर देखा। पिता देखने के इशारे को समझ उठा और बोला—"पण्डित ! इस आसन पर बैठ।" वह उस पर बैठा। उसे वहाँ बैठा देखते ही सेवक, प्रक्कुस, कामिन्द, देविन्द तथा दूसरे अन्धे-मूर्खो ने ताली बजा जोर से हसते हुए मजाक किया—"इस अन्धे मूर्ख को पण्डित कहते है। यह पिता को आसन से उठा कर स्वय बैठता है। उसे पण्डित कहना अयोग्य है।" राजा का भी चेहरा उतर गया।

बोधिसत्व ने पूछा—"महाराज ! क्या, मन खराब हो गया ?" "हाँ पण्डित ! मन खराब हो गया। तेरे बारे मे जो सुना था वही अच्छा था, दर्शन तो खराब रहा।"

"किस कारण से ?" "पिता को उठाकर आसन पर बैठने के कारण से।"

"महाराज ! क्या आप सभी जगह पिता को पुत्र से श्रेष्ठ मानते है ?"

"पण्डित ! हाँ।"

"महाराज ! क्या आपने हमारे पास आज्ञा नही भेजी थी कि खच्चर भेजो अथवा उस से श्रेष्ठतर ?" पूछते हुए उसने उठकर उन लडको की ओर देखा और कहा जो गधा तुमने पकडा है, उसे ले आओ। उसे मगवाकर और राजा के चरणो मे लिटवाकर पूछा—

"महाराज ! इस गधे का क्या मूल्य है।"

"यदि उपयोगी हो तो आठ कार्षापण।"

"इसके सम्बन्ध से श्रेष्ठ घोडी की कोख से पैदा हुए खच्चर की क्या कीमत होती है ?"

"पण्डित ! अमूल्य।"

"देव ! ऐसा क्यो कहते है ? क्या अभी आपने नही कहा कि सभी जगह पुत्र

की अपेक्षा पिता ही श्रेष्ठतर होता है ? यदि यह सत्य है तो आपके मत के अनुसार खच्चर से गधा ही श्रेष्ठ है। क्या महाराज ! आपके पण्डित इतनी बात भी न जानकर ताली बजाकर हसते है ! ओह ! आपके पण्डितो की प्रज्ञा ! ये कहाँ मिले है ?" इस प्रकार उसने चारो पण्डितो का मजाक कर एक-निपात की इस ग था मे राजा को सम्बोधित किया—

हसि तुव एव मञ्ञेसि सेय्यो
पुत्तेन पिताति राजसेट्ठ,
हन्दस्सतरस्स ते अय
अस्सतरस्स हि गद्रभो पिता ॥३॥

[हे राज श्रेष्ठ ! यदि आपकी यह मान्यता है कि हर अवस्था मे पिता से पुत्र ही श्रेष्ठ होता है तो खच्चर से यह गधा ही श्रेष्ठ है क्योकि खच्चर का पिता गधा ही है ॥ ३ ॥]

यह कह निवेदन किया—"महाराज ! यदि पुत्र से पिता श्रेष्ठ है तो अपने हित-साधन के लिये पिता को लेले और यदि पिता से पुत्र-श्रेष्ठ है तो मुझे लेले।"

राजा आनन्दित हुआ। सारी राज्य-परिषद ने यह कहते हुए कि पण्डित ने प्रश्न का ठीक समाधान किया है, साधुकार दिया। लोगो ने अगुलियाँ चटखाई और हजारो कपडे उछाले। चारो पण्डितो के चेहरे उतर गये। माता-पिता के उपकारो का जानकर बोधिसत्व के समान दूसरा नही है। उसने ऐसा क्यो किया ? पिता का अपमान करने के लिये नही। राजा ने 'खच्चर भेजो अथवा श्रेष्ठतर' कहलाया था, उसके प्रश्न का समाधान करने के लिये, अपना पाण्डित्य प्रकट करने के लिये और चारो पण्डितो को निष्प्रभ करने के लिये ही ऐसा किया था।

गद्रभ-प्रश्न समाप्त

राजा ने प्रसन्न हो सुगन्धित जल से भरी सोने की झारी ली और सेठ के हाथ पर पानी गिराकर कहा—"प्राचीनयवमज्झ ग्राम राजा द्वारा दिया गया मान कर उसका उपभोग करे।" और आज्ञा दी कि शेष सेठ इस सेठ के ही सेवक हो। फिर बोधिसत्व की माता के लिये सभी गहने भेजे। राजा गद्रभ-प्रश्न से इतना प्रभावित था कि बोधिसत्व को पुत्र बना लेने की इच्छा से उसने सेठ से कहा—"गृहपति ! इस महोपध पण्डित को मुझे पुत्र बनाकर सौंप दो।"

"देव ! यह अभी बच्चा है। अभी भी इसके मुह से दूध की गन्ध आती है। बड़े होने पर आप के पास आ जायगा।"

राजा ने उसे चले जाने के लिये प्रेरित किया। कहा—"गृहपति ! अब से तू इसके प्रति अपना ममत्व छोड दे। आज से यह मेरा पुत्र हुआ। मै अपने पुत्र का पोषण कर सकूगा।"

उसने राजा को प्रणाम किया, पण्डित का आलिगन किया, उसे छाती से लगा उसका सिर चूमा और उसे उपदेश दिया। उसने भी पिता को प्रणाम कर विदा किया और कहा—"तात ! चिन्ता न करे।"

राजा ने पण्डित से पूछा—"तात ! भात महल के अन्दर खाया करेगा? अथवा बाहर?" उसने यह सोच कि मेरे साथी बहुत हैं, मुझे भोजन बाहर ही करना चाहिये, उत्तर दिया कि मै भोजन बाहर किया करूगा। राजा ने उसे योग्य घर दिलवा दिया, हजारो-लडको के साथ उसके लिये भी खर्च दिलवाया और अन्य सभी सामान दिलवाये। इसके बाद से वह राजा की सेवा में रहने लगा। राजा भी उसकी परीक्षा लेने के लिये उत्सुक था ही।

उस समय नगर के दक्षिण द्वार के समीप पुष्करिणी के किनारे एक ताड के पेड पर कौवे के घोसले मे मणि रतन था। उसकी छाया पुष्करिणी मे दिखाई देती थी। राजा को सूचना दी गई कि पुष्करिणी मे मणि है। उसने सेनक को बुलाकर पूछा—"पुष्करिणी मे मणि दिखाई देती है। उसे कैसे निकलवाये?" उत्तर दिया—"पानी निकलवाकर निकालनी चाहिये।" राजाने उसे ही यह कार्य्य सौंपा—"तो ऐसा ही कराओ।" उसने बहुत से आदमी इकट्ठे कराये, पानी और कीचड निकलवाया, किन्तु जमीन उखडवाने पर भी मणि नही दिखाई दी। पुष्करिणी के भरने पर फिर मणि की छाया दिखाई दी। उसने दुबारा भी वैसा ही किया। किन्तु मणि दिखाई नही दी।

तब राजा ने पण्डित को बुलवाकर पूछा—'पुष्करिणी मे एक मणि दिखाई देती है। सेनक ने पानी और कीचड निकलवाया तथा जमीन भी उखडवाई। तो भी मणि नही दिखाई दी। पुष्करिणी के भरने पर फिर मणि दिखाई देती है। क्या तू मणि निकलवा सकेगा?" "महाराज ! यह कुछ बडी बात नही है? आये मै दिखाऊँगा।" राजा प्रसन्न हुआ कि आज पण्डित का ज्ञान-बल देखूंगा। लोगो से घिरा हुआ वह पुष्करिणी के किनारे पहुचा।

बोधिसत्व ने किनारे खडे हो, मणि को देखते ही जान लिया कि यह मणि पुष्करिणी मे नही होगी, यह मणि ताड के वृक्ष पर होगी, और इसलिये कहा—

"देव ! पुष्करिणी मे मणि नही है।"

"क्या पानी मे दिखाई नही देती ?"

उसने पानी की थाली मगवाई और कहा—

"देव ! देखे न केवल पुष्करिणी मे ही मणि दिखाई देती है, किन्तु इस पानी की थाली म भ। दिखाई देती है ?"

"पण्डित ! तो मणि कहाँ होनी चाहिये ?"

"देव ! पुष्करिणी मे भी छाया ही दिखाई देती है, मणि नही। मणि तो इस ताड-वृक्ष पर कौए के घोसले मे है। आदमी को चढा कर उतरवाये"

राजा ने वैसा करके मणि मगवा ली। पण्डित ने वह ले राजा के हाथ पर रखी। जनता साधुकार देती हुई तथा सेनक का मजाक उडाती हुई बोधिसत्व की प्रशसा करने लगी—मणि रत्न को ताड के वृक्ष पर छोड सेनक ने बलवान पुरुषो से पुष्करिणी फुडवाई। पण्डित हो तो महोषध सदृश होना चाहिये। राजा ने भी उसे अपने गले की मोतियो की माला दी और हजार लडको को भी मोतियो की लडियाँ दिलवाई। अनुयायियो सहित बोधिसत्व के लिये बिना रोक-टोक सेवा मे आने का नियम बना दिया।

उन्नीस-प्रश्न समाप्त

फिर एक दिन राजा पण्डित के साथ उद्यान गया। उस समय तोरण के सिरे पर एक गिरगिट रहता था। उसने राजा को आते देखा तो उतर कर जमीन पर लेट रहा। राजा ने उसकी करनी देख पण्डित से पूछा—"पण्डित ! यह गिरगिट क्या करता है ?"

'महाराज ! आपकी सेवा में है।" "यदि ऐसा है तो हमारी सेवा निष्फल न हो, इसे भोग्य-वस्तुएँ दिलवाओ।"

"देव ! इसे अन्य भोग्य-वस्तुओ की अपेक्षा नही, इसके लिये भोजन ही पर्य्याप्त है।"

'यह क्या खाता है ?"

"देव ! मॉस।"

"इसे कितना माँस मिलना चाहिये ?"

"देव, कौडी के मूल्य भर।"

राजा ने एक आदमी को आज्ञा दी—"राजा से जो मिले वह कौडी भर के मूल्य का होना योग्य नही, इसे नियम से आधे-मासे के मूल्य का माँस लाकर दिया जाय।" उसने 'अच्छा' कहा और तब से वह ऐसा ही करने लगा। एक दिन जब उसे उपोसथ-दिवस होने के कारण मॉस न मिला तो उसी आधे-मासे को बीध, धागा डाल उसके गले मे पहना दिया। इससे उसके मन मे अभिमान पैदा हो गया। उसी दिन राजा फिर उद्यान गया। उसने राजा को आते देखा तो धन के कारण उत्पन्न हुए अभिमान के वशीभूत हो तोरण से नीचे न उतर वही पडा सिर हिलाता हुआ राजा से अपने धनकी तुलना करता हुआ सोचने लगा—"हे विदेह! तेरे पास अधिक धन है अथवा मेरे पास ?" राजा ने उसकी करतूत देख पूछा—"पण्डित! और दिनो की तरह आज यह नही उतरता ?" "क्या कारण है ?" उसने पहली गाथा कही—

नायं पुरे उन्नमति तोरणग्गे ककण्टको,
महोसध विजानाहि केन थद्धो ककण्टको ।।४।।

[यह गिरगिट आज की तरह पहले तोरण पर ही लटका नहीं रहता था। हे महोसध! यह जान कि यह गिरगिट आज जड क्यो हो गया है? ।।४।।]

पण्डित ने यह जानकर कि उपोसथ के कारण राजपुरुष को मास न मिला होगा, उसने गले मे आधा-मासा बाध दिया होगा, और उसीसे अभिमान हो गया होगा, यह गाथा कही—

अलद्धपुब्ब लद्धान अड्ढमासं ककण्टको,
अतिमञ्ञति राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं ।।५।।

[आज तक कभी न मिला आधा-मासा मिलने से गिरगिट मिथिलेश विदेह राजा की अवहेलना कर रहा है ।।५।।]

राजा ने उस आदमी को बुलवाकर पूछा। उसने यथार्थ बात कह दी। बिना किसीसे पूछे सर्वज्ञ बुद्ध की तरह पण्डित ने गिरगिट का भाव समझ लिया, सोच राजा बहुत प्रसन्न हुआ और पण्डित को चारो-द्वारो पर मिलनेवाला शुल्क (-टैक्स) दिलवाया। राजा ने गिरगिट पर क्रोधित हो उसका भोजन बन्द कर देना चाहा। पण्डित ने उसे रोका—यह अनुचित है।

ककण्टक-प्रश्न समाप्त

मिथिला मे पिङ्गुत्तर नामका एक माणवक था। उसने तक्षशिला पहुच, प्रसिद्ध आचार्य्य के पास शिल्प सीखते हुए शीघ्र ही सीख लिया। उसने आचार्य्य को निमन्त्रण दे जाने की आज्ञा माँगी। उस कुल की यह परम्परा थी कि यदि आयु-प्राप्त लडकी होती तो वह प्रधानशिष्य को दी जाती थी। उस आचार्य्य की एक लडकी थी। सुन्दर, देवप्सराओं सदृश। उसने उसे कहा—"तात! तुझे लडकी देता हूं। उसे लेकर जा।" वह तरुण अभागा था, मनहूस। कुमारी महा-पुण्यवान् थी। उसने उसे देखा तो वह अच्छी न लगी। अरुचिकर होते हुए भी उसने आचार्य्य की बात रखने के लिये उसे स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ने उसे लडकी दे दी। रात के समय अलङ्कृत शयनागार मे जब वह शैय्या पर लेटा था और वह शैय्या पर आई तो यह घबराकर शैय्या से उतर जमीन पर जा लेटा। वह भी उतरकर उसके पास गई। वह उठकर फिर शैय्या पर जा लेटा वह भी फिर शैय्या पर आई। वह फिर शय्या से उतर आया। मनहूस का लक्ष्मी के साथ मेल नही ही बैठता। कुमारी शैय्या पर ही लेटी। वह जमीन पर ही सोया। इस प्रकार एक सप्ताह बिता उसे ले आचार्य्य को प्रणाम कर निकला। रास्ते मे बात-चीत तक नही की। अरुचि से ही दोनो मिथिला आ पहुँचे। नगर से थोडी ही दूर पर फलों से लदा गूलर का एक पेड था। पिङ्गुत्तर ने देखा तो उसे भूख लगी। उसने पेडपर चढ गूलर खाये। उसने भी भूख के कारण पेड के पास जाकर कहा—"मेरे लिये भी फल गिरा।" उत्तर दिया—"क्या तेरे हाथ-पाव नही है। स्वय चढकर खा।" उसने पेडपर चढकर गूलर खाये। उसने उसे ऊपर चढा जाना तो वह स्वय शीघ्रता से उतरा और पेड को काँटो से घेरकर यह कहता हुआ भाग गया कि मुझे मनहूस से छुट्टी मिली। वह उतर न सकने के कारण वही बैठ रही।

उद्यान-क्रीडा समाप्त कर जब राजा शाम के समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर में प्रवेश कर रहा था तो उसे वहा बैठे देख उस पर आसक्त हो गया। उसने पुछवाया कि उसका मालिक है अथवा नही? उसने उत्तर दिया—"कुल से प्रदत्त मेरा स्वामी है, किन्तु वह मुझे यहा बिठाकर छोडकर भाग गया है।" अमात्य ने आकर यह बात राजा से कही। 'बिना मालिक की चीज राजा की होती है' सोच राजा ने इसे उतरवाया, हाथी पर बिठाया और घर लाकर, अभिषेक कर पटरानी बना लिया। वह उसकी प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली। उदुम्बर वृक्ष पर दिखाई पडने से वह उदुम्बरादेवी नाम से ही प्रसिद्ध हुई।

एक दिन राजा के उद्यान जाने के लिये द्वार ग्राम-वासी लोग रास्ता ठीक कर रहे थे। पिङ्गुत्तर भी मजदूरी करता हुआ, काछ बाँधे, कुदाल से रास्ता काट रहा था। अभी रास्ता पूरा तैय्यार नही हुआ था तभी राजा उदुम्बरा देवी के साथ रथ मे बैठ निकला। उदुम्बरा देवी ने भी उस मनहूस को रास्ता छीलते देखा तो यह सोच हसी कि यह मनहस इस प्रकार की लक्ष्मी को सहन न कर सका। राजा ने उसे हसते देखा तो क्रोधित हो पूछा—"क्यो हसी ?" "देव ! यह रास्ता छीलने वाला आदमी मेरा पहले का पति है। यह मुझे उदम्बर पेड पर चढा काटो से घेरकर चला गया था। मै इसे देख और यह सोच कि यह इस प्रकार की लक्ष्मी को न सह सका, हसी।" राजा ने तलवार उठाई—'तू झूठ बोलती हे। और किसी को देखकर हसी होगी। तुझे मारुगा।" वह भयभीत हो बोली—"देव ! अपने पण्डितो से पूछ लो।" राजा ने सेनक से पूछा—'तू इसके कहने का विश्वास करता है ?" उत्तर मिला—"देव ! नही। इस प्रकार की स्त्री को कौन छोडकर जायेगा ?' उसने उसकी बात सुनी तो और भी भयभीत हुई। तब राजा ने यह सोच कि सेनक क्या जानता है, पण्डित को पुछता हूँ, गाथा कही—

इत्थी सिया रूपवती सा च सीलवती सिया,
पुरिसो त न इच्छेय्य सद्दहासि महोसध ॥६॥

[स्त्री सुन्दर भी हो और सदाचारिणी भी हो और तब भी आदमी उसकी इच्छा न करे—हे महोषध ! क्या यह बात विश्वसनीय है ? ॥६॥]

यह सुन पण्डित ने गाथा कही—

सद्दहामि महाराज पुरिसो दुब्भगो सिया,
सिरी च कालकण्णी च न समेन्ति कुदाचन ॥७॥

[महाराज ! मैं इसमे विश्वास करता हूँ कि आदमी अभागा हो सकता है। लक्ष्मी और मनहूस का कभी मेल नही बैठता ॥७॥]

राजा ने उसकी बात सुनी तो उस कारण से उसने क्रोध नही किया। उसका हृदय शान्त हो गया। राजा ने प्रसन्न हो एक लाख पण्डित को भेंट किये। कहा—"पण्डित ! यदि तू यहाँ न होता तो मैं मूर्ख सेनक के कहने में आकर इस प्रकार के स्त्री-रत्न को गँवा बैठता। अब तेरे ही कारण मुझे यह मिली है।" तब देवी ने भी राजा को नमस्कार कर कहा—"देव ! पण्डित के ही कारण मेरी जान बची है। मुझे वरदान दे कि मैं इसे अपना छोटा भाई बना सकूँ।"

'अच्छा देवि ! मैं तुझे यह वर देता हूँ । ले ले ।"

"देव ! आज से मैं बिना अपने छोटे भाई को दिये कोई मिठाई नही खाऊँगी ।
मुझे वर दे कि अबमे मैं समय-असमय कभी भी दरवाजा खुलवाकर इसे मिठाई
भिजवा सकूँ ।"

"अच्छा भद्रे ! यह भी वरदान ले ।"

श्री कालकण्णी-प्रश्न समाप्त

एक और दिन जलपान कर चुकने के बाद दूर तक टहलते हुए राजा ने एक
मेढे और एक कुत्ते को मैत्री-पूर्वक रहते देखा । वह मेढा हस्ति-शाला मे हाथियो
के सामने डाली हुई अछूती घास खाता था । हथवानो ने उसे पीटकर निकाल दिया ।
जब वह चिल्लाता हुआ भागा जा रहा था एक ने दौडकर उसकी पीठ में एक डण्डा
दे मारा । झुकी कमर ले, वेदना मे पीडित हो वह जाकर राज-भवन की बडी दीवार
के सहारे पीठ के बल पड रहा ।

उसी दिन राजा के रसोई-घर मे हड्डी-चर्मादि खाकर बढे हुए कुत्ते ने जब रसो-
इया भात पकाकर बाहर खडा पसीना सुखा रहा था, मत्स्य-मास की गन्ध न सह सकने
के कारण, रसोई-घर मे घुस, ढक्कन गिरा, मास खा लिया । बरतन की आवाज
सुनी तो रसोइये ने अन्दर घुस, कुत्ते को देखा और द्वार बन्द कर उसे ढेलो तथा डण्डे
आदि से मारा । खाया माँस वही छोड वह चिल्लाता हुआ भागा । रसोइये ने भी
उसे बाहर भागा जान, पीछा करके, उसकी पीठ पर सीधा डण्डा दे मारा । वह
भी पीठ झुका, एक पाव उठा, जहा मेढा था वही जा रहा । तब मेढे ने पूछा—"मित्र !
मित्र ! तू पीठ झुकाये आ रहा है । क्या तुझे वायु-रोग है ?" कुत्ते ने भी पूछा—
"तू भी पीठ झुकाये पडा है । क्या तेरे शरीर को भी वायु कष्ट देता है ?" उसने
अपना समाचार कहा । तब मेढे ने पूछा—'क्या फिर भी रसोई-घर मे जा
सकेगा ? "नही जा सकूँगा । गया तो जान नही बचेगी । क्या तू हस्ति-शाला
मे जा सकेगा ?"

'मै भी वहाँ नही जा सकता । गया तो मेरी भी जान नही बचेगी ।

वे सोचने लगे कि अब हम कैसे जीयें ? मेढे ने कहा, "यदि हम मिलकर रह सकें
तो एक उपाय है ।" "तो बता ।" "मित्र ! आज से तू हस्ति-शाला जाया कर ।
हथवान तुझ पर यह शका न करेंगे कि यह घास खाता है । तू मेरे लिये घास ले आया

कर। मैं भी रसोई-घर में जाऊंगा। रसोइया मुझपर भी यह शंका न करेगा कि यह मांस खानेवाला है, मैं तेरे लिये मांस लाऊँगा।" उन दोनों ने यह स्वीकार किया कि हां यह उपाय है। कुत्ता हस्ति-शाला जाता और घास की मुट्ठी मुँह मे ले आकर बड़ी दीवार के सहारे रख देता। दूसरा भी रसोई-घर पहुँचता और मुह भर मांस का टुकड़ा लाकर वहीं रख देता। कुत्ता मांस खाता और मेढा घास। इस उपाय से वे मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक बड़ी दीवार के सहारे रहने लगे। राजा ने उनका मित्र-धर्म देखा तो सोचने लगा—"इससे पहले ऐसी बात नहीं देखी। अब देखता हूँ कि ये शत्रु होकर मित्रतापूर्वक रह रहे हैं। यह बात लेकर प्रश्न बनाकर पण्डितो से पूछूँगा। जो इस प्रश्न का उत्तर न दे सकेंगे उन्हें राष्ट्र से निकाल दूंगा। जो उत्तर बता देगा, यह समझ कि ऐसा कोई और पण्डित नहीं है, उसका सत्कार करूंगा। आज तो असमय हो गया है। कल सेवामे आने पर पूछूंगा।" अगले दिन जब पण्डित आकर उसकी सेवा में बैठे तो उसने प्रश्न पूछते हुए यह गाथा कही—

येस न कदाचि भूतपुब्ब
सक्खि सत्तपदम्पि इयस्मिं लोके,
जाता अमित्ता दुवे सहाया
पटिसन्धाय चरन्ति किस्स हेतु ॥८॥

[इस दुनिया में जो कभी मैत्री-पूर्वक सात कदम भी नहीं चले वे शत्रु आपस में मित्र हो गये। ये किस कारण से मिलकर रहते है? ॥८॥]

यह कह फिर यह कहा—

यदि मे अज्ज पातरासकाले
पञ्हं न सक्कुणेथ वत्तुमेतं,
पब्बाजयिस्सामि वो सब्बे
नहि मत्थो दुप्पञ्ञजातिकेहि ॥९॥

[यदि आज मेरे जलपान के समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर न दे सके तो सभी को भगाऊंगा। मुझे मूर्खों की अपेक्षा नहीं है ॥९॥]

सेनक सबसे पहले आसन पर बैठा था, पण्डित सबसे अन्त के आसन पर। उसने उस प्रश्न पर विचार करते हुए तत्त्व की बात खोजते हुए सोचा यह राजा स्वयं तो जड़-बुद्धि है। यह अपनी बुद्धि से सोचकर तो यह प्रश्न नहीं पैदा कर सकता।

इसने कुछ न कुछ देखा होगा। एक दिन का अवकाश मिले तो इस प्रश्न का समाधान करूगा। सेनक किसी उपाय से आजका दिन अवकाश माग ले। शेष चारों जने भी अन्धेरे घर मे प्रविष्ट हुए सदृश ही थे। उन्हे कुछ नही दिखाई देता था। सेनक ने यह जानने के लिये कि बोधिसत्व का क्या हाल है बोधिसत्व की ओर देखा। उसने भी उसकी ओर देखा। सेनक देखने के ढंग से ही उसका भाव समझ गया कि पण्डित को भी नही सूझ रहा है, इसलिये एक दिन का अवकाश चाहता है। उसने सोचा, "इसका मनोरथ पूरा करूँगा।" विश्वस्त ढग से उसने राजा के साथ जोर की हसी हसते हुए पूछा—"महाराज। प्रश्न का उत्तर न दे सकने पर क्या हम सभी को देश-निकाला दे देंगे। विचार करे, यह भी एक प्रश्न है। ऐसी बात नही है कि हम इस प्रश्न का उत्तर न दे सकते हो लेकिन यह जरा गूढ-प्रश्न है। इसे हम जनता के बीच नही कह सकते। एकान्त मे विचारकर पीछे आपको ही कहेंगे। हमें अवकाश दे।" उसने बोधिसत्व का ख्यालकर दो गाथाये कही—

महाजनसमागम्हि घोरे
जनकोलाहल समागम्हि जाते,
विक्खित्तमना अनेकचित्ता
पञ्ह न सक्कुणोम वत्तुमेत॥१०॥
एकग्गचित्ता एकमेका
रहसिगता अत्थ निचिन्तयित्वा,
पविवेके सम्मसित्वान धीरा
अथ वक्खन्ति जनिन्द अत्थमेत॥११॥

[जनता की बडी भीड में, लोगो का बडा हल्ला होने पर, मन नाना ओर जाने के कारण भी प्रश्न का उत्तर नही दे सकते॥१०॥ एकाग्र-चित्त हो एकान्त मे इसके अर्थ पर विचार कर हे जनिन्द! पण्डितजन इसका अर्थ कहेंगे॥११॥]

राजा उसकी बात सुन अप्रसन्न हुआ तो भी उसने कहा—"अच्छा, सोचकर कहना।" किन्तु उसने साथ ही धमकाया—"न कह सकने पर राष्ट्र से निकाल दूगा।" चारों पण्डित प्रासाद से उतरे। सेनक ने दूसरों से कहा—"तात! राजा ने सूक्ष्म प्रश्न पूछा है। न कह सकने पर बडा खतरा है। तुम अपनी तबियत मे मेल खानेवाला भोजन खाकर अच्छी तरह विचार करना।" वे अपने अपने घर गये।

पण्डित भी उठकर उदुम्बरा देवी के पास पहुचा और पूछा,—"देवी ! आज या कल राजा अधिक देर तक कहा रहा ?" "तात ! देर तक द्वार-खिडकी मे से देखता हुआ चन्क्रमण करता रहा ।" तब बोधिसत्व ने सोचा, राजाने इसी ओर से कुछ देखा होगा । वहा जा, बाहर नजर डालते हुए निश्चित रूप से समझ लिया कि मेढे ओर कुत्ते की करनी देखकर ही राजा के मन मे प्रश्न पैदा हुआ होगा । यह निश्चयकर वह अपने निवास स्थान पर गया । शेष तीन जने भी बिना कुछ देखे, चिन्ता करते हुए सेनक के पास पहुँचे । उसने उन्हे पूछा—"प्रश्न का समाधान सूझा ?" "आचार्य । नही सूझा ।" यदि ऐसा है तो राजा निकाल बाहर करेगा ? क्या करोगे ?" "आपको सूझा ?" "नही मुझे भी नही सूझता है ।" "जब आपको भी नही सूझता तो हमे क्या सूझेगा ? राजा के पास तो हम सिहनाद कर आये कि सोचकर कहेगे । उत्तर न दे सकने पर राजा क्रोध करेगा, क्या करे ?"

'हमे इस प्रश्न का उत्तर नही सूझ सकता । पण्डित ने सौ गुणा करके सोचा होगा । आओ उसके पास चले ।"

वे चारो बोधिसत्व के गृह-द्वार पर पहुचे । अपने आगमन की सूचना भिजवाई । अन्दर जा कुशल समाचार पूछ एक ओर खडे हुए ओर बोधिसत्व से पूछा—"पण्डित ! क्या तूने प्रश्न का उत्तर सोचा ?" 'मै नही सोचूँगा तो और कौन सोचेगा । हाँ, सोच लिया है ।"

"तो हमे भी बता ।"

बोधिसत्व ने सोचा, यदि मै इन्हे नही बताऊँगा तो राजा उन्हे तो निकाल बाहर करेगा ओर मेरी सात रत्नो से पूजा करेगा । ये मूर्ख नष्ट न हो, इसलिये इन्हे भी बता देता हूँ । उसमे चारो जनो को नीचे आसन पर बिठाया, हाथ जुडवाये और राजा की देखी बात बिना बताये कहा—"जब राजा पूछे तो ऐसा कहना ।" उसने चारो के लिये पालि ही मे चार गाथाये बना, उन्हे सिखा, बिदा किया । वे दूसरे दिन राजा की सेवा में पहुँच बिछे आसन पर बैठे । राजा ने सेनक से पूछा—सेनक ! तुझे प्रश्न का उत्तर सूझा ?

"महाराज ! मुझे नही सूझेगा तो और किसे सूझेगा ?"

'तो कहो ।"

"देव ! सुने ।"

उसने जैसे याद की थी, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

उग्गपुत्त राजपुत्तियान
उरब्भमस पिय मनाप
न ते सुनखस्स अदेन्ति मस
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१२॥

[अमात्य पुत्रों तथा राज-पुत्रो को भेड का मास अच्छा लगता है। वे कुत्ते को मांस नही देते। इसीलिये मेढे और कुत्ते की दोस्ती हो गई ॥१२॥]

गाथा कहकर भी सेनक उसका अर्थ नही जानता था। राजा को बात का पता होने से वह समझता था। इसलिये यह समझ कि सेनक जानता है, उसने सोचा कि मै पुक्कस को पूछूंगा। तब उसने पुक्कस से प्रश्न किया। पुक्कस बोला—"क्या मै ही अपण्डित हू?" उसने भी जैसे याद की, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

चम्म विहनन्ति एककस्स
अस्स पिट्ठत्थरणसुखस्स हेतु,
न त सुनखस्स अत्थरन्ति
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१३॥

[भेढे के चमडे को घोडे की पीठ पर सुखासन के लिये बिछाते हैं। कुत्ते के लिये नही बिछाया जाता। इसीलिये मेढे और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१३॥]

इसका भी अर्थ अज्ञात ही था। लेकिन राजा को बात मालूम होने से उसने समझा इसे भी मालूम है। तब उसने कविन्द से प्रश्न किया उसने भी गाथा कही—

आवेल्लित सिंगिको हि मेण्डो
न सुनखस्स विसाणानि अत्थि,
तिणभक्खो मसभोजनो च
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१४॥

[मेढे के सीग लिपटे हं और कुत्ते के सीग नही होते। एक घासाहारी है दूसरा मांसाहारी। इसीलिये भेढे और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१४॥]

राजा ने यह समझ कि इसने भी जान लिया देविन्द से प्रश्न किया। उसने भी जैसे याद की थी, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

तिणमासि पलासमासि मेण्डो,
न सुनखो तिणमासि नो पलास

उग्गपुत्त राजपुत्तियान
उरब्भमस पिय मनाप
न ते सुनखस्स अदेन्ति मस
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१२॥

[अमात्य पुत्रों तथा राज-पुत्रों को भेड का मांस अच्छा लगता है। वे कुत्ते को मांस नहीं देते। इसीलिये मेढे और कुत्ते की दोस्ती हो गई ॥१२॥]

गाथा कहकर भी सेनक उसका अर्थ नहीं जानता था। राजा को बात का पता होने से वह समझता था। इसलिये यह समझ कि सेनक जानता है, उसने सोचा कि मैं पुक्कस को पूछूंगा। तब उसने पुक्कस से प्रश्न किया। पुक्कस बोला—"क्या मैं ही अपण्डित हूं ?" उसने भी जैसे याद की, वैसे ही, गाथा कह सुनाई—

चम्म विहनन्ति एककस्स
अस्स पिट्ठत्थरणसुखस्स हेतु,
न त सुनखस्स अत्थरन्ति
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१३॥

[मेढे के चमडे को घोडे की पीठ पर सुखासन के लिये बिछाते हैं। कुत्ते के लिये नहीं बिछाया जाता। इसीलिये मेढे और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१३॥]

इसका भी अर्थ अज्ञात ही था। लेकिन राजा को बात मालूम होने से उसने समझा इसे भी मालूम है। तब उसने कविन्द से प्रश्न किया उसने भी गाथा कही—

आवेल्लित सिंगिको हि मेण्डो
न सुनखस्स विसाणानि अत्थि,
तिणभक्खो मसभोजनो च
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१४॥

[मेढे के सींग लिपटे हैं और कुत्ते के सींग नहीं होते। एक घासाहारी है दूसरा मांसाहारी। इसीलिये मेढे और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१४॥]

राजा ने यह समझ कि इसने भी जान लिया देविन्द से प्रश्न किया। उसने भी जैसे याद की थी, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

तिणमासि पलासमासि मेण्डो,
न सुनखो तिणमासि नो पलास

गण्हेय्य सुणो सस विळार
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१५॥

[मेंढा घास खाता है, पत्ते खाता है। कुत्ता न घास खाता है, न पत्ते खाता है। कुत्ता खरगोश तथा बिल्ली को पकडता है। इसीलिये मेढे और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१५॥]

तब राजा ने पण्डित से पूछा—"तात! तू यह प्रश्न जानता है?"

"महाराज! अवीचि (नाक) से भवाग्र तक मेरे अतिरिक्त और कौन इस प्रश्न को जानेगा?"

"तो कहो।'

"महाराज सुनें" कह यह प्रकट करते हुए कि उसकी कहानी का उसे पता है बोधिसत्व ने ये दो गाथायें कही—

अड्ढपादो चतुप्पदस्स
मेण्डो अट्ठनखो अदिस्समानो,
छादियं आहरति अयं इमस्स
मसं आहरति अयं अमुस्स ॥१६॥
पासादगतो विदेहसेट्ठो
वीतिहारं अञ्ञमञ्ञभोजनानं,
अद्दक्खि किर सक्खि तं जनिन्द
भोभुक्कस्स च पुण्णमुखस्स चेतं ॥१७॥

[चार पाँव तथा आठ अदृश्य नखो वाला मेढा चतुष्पद के लिये। यह इसके लिये घास लाता है और वह उसके लिये मांस लाता है ॥१६॥ प्रासादारूढ श्रेष्ठ विदेह नरेश ने परस्पर एक दूसरे का भोजन लाना—कुत्ते का और मेढे का—देखा। हे जनिन्द्र! विदेह-नरेश ने साक्षी होकर देखा ॥१७॥]

राजा को यह पता नही लगा कि औरो ने बोधिसत्व से ही ज्ञान प्राप्त किया। यह समझ कि पाचों जनो ने अपनी अपनी प्रज्ञा से ही बात का पता लगाया, वह प्रसन्न हुआ और यह गाथा कही—

लाभा वत मे अनप्परूपा
यस्स मे एदिसा पण्डिता कुलम्हि,

गम्भीरगत निपुणमत्थ
पटिविज्झन्ति सुभासितेन धीर॥१८॥

[यह मेरे लिये बडा भारी लाभ है कि मेरे कुल मे ऐसे धीर पण्डित हैं जो गम्भीर से गम्भीर विषय को भी जानकर सुभाषित करके कहते हैं ॥१८॥]

उन पर सन्तुष्ट होने से उस सन्तोष की अभिव्यक्ति होनी चाहिये, सोच गाथा कही—

अस्सतरो रथञ्च एकमेक
फीत गामवरञ्च एकमेक,
सब्ब नो दम्मि पण्डितान
परम पतीतमनो सुभासितेन॥१९॥

[एक एक खच्चर और रथ, एक एक स्मृद्ध गाव, मै यह सब पण्डितो के सुभाषित से प्रसन्न होकर उन्हे देता हूं ॥१९॥]

द्वादश निपात में मेण्डक-प्रश्न समाप्त

उदुम्बरा देवी ने जब जाना कि औरो ने पण्डित से ही जानकर प्रश्न का उत्तर दिया और राजा ने मूग तथा माशे की दाल मे कुछ भी अन्तर न करने की तरह पाचों का समान ही सत्कार किया तो वह सोचने लगी कि क्या मेरे छोटे भाई का विशेष सत्कार नही होना चाहिये ? वह राजा के पास गई और पूछा—"देव ! उस प्रश्न का उत्तर किसने दिया !" "भद्रे ? पाचो पण्डितो ने।" "देव ! चारो जनो ने वह प्रश्न किससे पूछकर जाना ?" "भद्रे ! नही जानता हूँ।" "महाराज ! वे क्या जानते हैं, वे मूर्ख नष्ट न हों, इसलिये पण्डित ने ही उन्हे उस प्रश्न का उत्तर सिखाया। आपने सभी का समान आदर किया। यह अनुचित है। पण्डित का विशेष होना चाहिये। पण्डित से ही दूसरों ने जाना, यह बात पण्डित ने प्रकट नही होने दी। जान राजा प्रसन्न हुआ और पण्डित का अतिरिक्त-सत्कार करने की इच्छा से सोचने लगा—'अच्छा ! अपने पुत्र से एक प्रश्न पूछकर उत्तर देने पर बहुत सत्कार करूँगा।" उसने प्रश्न का विचार करते हुए श्रीमन्द प्रश्न सोचा। एक दिन जब पाँचों पण्डित सेवा में आकर सुखपूर्वक बैठे थे, राजा बोला—"सेनक ! प्रश्न पूछता हूँ।" "देव ! पूछे।" राजा ने श्रीमन्द प्रश्न की पहली गाथा कही—

पञ्ञायुपेत सिरिया विहीन
यसस्सिनञ्चापि अपेतपञ्ञ,

पुच्छामि त सेनक एतमत्थ
कमेत्थ सेय्यो कुसला वदन्ति ॥२०॥

[एक आदमी प्रज्ञावान् हो किन्तु लक्ष्मीपति न हो, दूसरा यशस्वी हो किन्तु प्रज्ञारहित हो। हे सेनक! मै तुझसे यह प्रश्न पूछता हूँ कि कुशल लोग किसे अधिक अच्छा कहते हैं? ॥२०॥]

यह प्रश्न सेनक का परपरागत प्रश्न था। इसलिये उसने तुरन्त उत्तर दिया—

धीरा च बाला च हवे जनिन्द
सिप्पूपपन्ना च असिप्पिनो च,
सुजातिमन्तोपि अजातिमस्स
यसस्सिनो पेस्सकरा भवन्ति,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥२१॥

[हे राजन्! धैर्यवान्, मूर्ख, शिल्प के जानकार, शिल्प के अजानकार सभी श्रेष्ठ जातिवाले भी (हीन-) जन्मा धनी आदमी के नौकर हो जाते है। यह बात देखकर भी मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् तुच्छ है, श्रीमान् ही श्रेष्ठ है ॥२१॥]

राजा ने उसकी बात सुनी तो शेष तीनो को नछ सघपू मे नये बनकर बैठे महोषध पण्डित से प्रश्न किया—

तवम्पि पुच्छामि अनोमपञ्ञ
महोसध केवलधम्मदस्सी,
बाल यसस्सि पण्डित अप्पभोग
कमेत्थ सेय्यो कुसला वदन्ति ॥२२॥

[हे बहुप्रज्ञ! हे केवलधर्मदर्शी महोषध पण्डित! मै तुझे भी पूछता हूँ कि मूर्ख श्रीमान और अल्प-धनी पण्डित में से चतुर लोग किसे श्रेष्ठ कहते हैं? ॥२२॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—महाराज! सुनें।

पापानि कम्मानि करोति बालो
इधमेव सेय्यो इतिमञ्ञमानो,
इध लोकदास्सी परलोक अदस्सी
उभयत्थ बालो कलिमग्गहेसि;

एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२३॥

[यही जो कुछ है श्रेयस्कर है समझने वाला मूर्ख पाप-कर्म करता है। इस लोक को ही देखनेवाला और परलोक को न देखनेवाला मूर्ख दोनों जगह पाप का भागी होता है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२३॥]

यह सुन राजा ने सेनक से पूछा— पण्डित तो कहता है कि प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ होता है। "महाराज ! महोषध बच्चा है। अभी भी उसके मुँह से दूध की गन्ध आती है। यह क्या जानता है।" उसने यह गाथा कही—

न सिप्पमेत विददाति भोग
न बन्धवा न सरीरावकासो,
पस्सेळमूग सुखमेधमान
सिरी हि न भजते गोरिमन्दं,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥२४॥

[न तो शिल्प (-विद्या से ही धन प्राप्त होता है, न बन्धुओ से और न शरीर-प्रभा से। इस महामूर्ख को सुख भोगते हुए देखो। लक्ष्मी इस गोरिमन्द[1] के पास ही वास करती है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मीपति-ही श्रेष्ठ है ॥२४॥]

यह सुन राजा बोला—"महोषध पण्डित ! यह क्या कह रहा है !" पण्डित का उत्तर था—"देव ! सेनक क्या जानता है ! जैसे भात पकाने की जगह कौआ, अथवा दही पीने के लिये तैयार कुत्ता हो, वैसे ही यह केवल धन ही देखता है। इसे सिर पर पडनेवाला महामुग्दर नहीं दिखाई देता। देव ! सुनें।" उसने यह गाथा कही—

लद्धा सुखं मज्जति अप्पपञ्ञो
दुक्खेन फुट्ठोपि पमोहमेति,

---

1 सेठ-विशेष का नाम।

आगन्तुना सुखदुक्खेन फुट्ठो
पवेधति वारिचरोव घम्मे;
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२५॥

[मूर्ख आदमी थोडा सुख मिलने पर प्रमाद करता है, और दुखका स्पर्श होने पर भी मूढ हो जाता है। आगन्तुक सुख-दुःख का स्पर्श होने से वैसे ही तडपता है जैसे धूप मे पडी हुई मछली। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२५॥]

यह सुन राजा बोला—"आचार्य ! यह कैसी बात है ?" "देव ! यह क्या जानता है। मनुष्यो की बात रहने दो। आरण्य मे उगे पेड भी फलो से लदे हो तो सभी पक्षी उनके पास जाते हैं" कह सेनक ने गाथा कही—

दुम यथा सादुफल अरञ्ञे
समन्ततो समभिचरन्ति पक्खी,
एवम्पि अड्ढ सधन सभोगं
बहुज्जनो भजति अत्थहेतु,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥२६॥

जिस प्रकार जगल में स्वादिष्ट फलो वाले पेड को पक्षी चारो ओर से घेर रहते हैं, उसी प्रकार धनवान, सम्पत्तिशाली आदमी को अर्थ की इच्छा से बहुत लोग घेरे रहते है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान की अपेक्षा लक्ष्मीपति ही श्रेष्ठ है ॥२६॥]

यह सुन राजा बोला—"तात ! यह कैसी बात है ?" "यह महोदर क्या जानता है ? देव ! सुनें" कह पण्डित ने यह गाथा कही—

न साधु बलवा बालो साहसा विन्दते धन,
कन्दन्तमेव दुम्मेध कड्ढन्ति निरये भुस
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२७॥

[मूर्ख बलवान् अच्छा नही। वह जोर-जबर्दस्ती करके दूसरो के धन का भोग करता है। उस मूर्ख को भी नरक मे रोते-पीटते हुए ही खीचकर ले जाते हैं। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ।।२७।।]

राजा के यह कहने पर कि सेनक! यह क्या बात है, सेनक ने फिर यह गाथा कही—

या काचि नज्जो गङ्गमभिस्सवन्ति
सब्बाव ता नामगोत्त जहन्ति,
गगा समुद्द पटिपज्जमाना
न खायते इद्धिपरो हि लोको,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमभाव सेय्यो ।।२८।।

[जितनी भी नदिया समुद्र मे जाकर मिलती हैं, वे सभी अपना नाम-गोत्र छोड देती हैं। फिर गङ्गा भी समुद्र मे जाकर विलीन हो जाती है। दुनिया ऋद्धिवान् की ही ओर झुकती है। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मीपति ही श्रेष्ठ है ।।२८।।]

फिर राजा ने कहा—"पण्डित! यह क्या है?" "महाराज! सुने" कह उसने ये दो गाथायें कही—

यमेनमक्खा उदधि महन्त
सवन्ति नज्जो सब्बकाल असख,
सो सागरो निच्चमुळारवेगो
वेल न अच्चेति महासमुद्दो ।।२९।।
एवम्पि बालस्स पजप्पितानि
पञ्ञं न अच्चेति सिरी कदाचि,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ।।३०।।

[यह जो महान् समुद्र की बात कही कि उसमें सभी नदिया नाम-रूप खोकर मिल जाती है। तो वह वेगवान महासमुद्र कभी भी अपनी सीमा का उल्लघन नही करता। इसी प्रकार मूर्ख का बकवास है। लक्ष्मी कभी भी प्रज्ञा से नही बढ सकती।

यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२९-३०॥]

यह सुन राजा बोला—"सेनक ! क्या बात है ?" "देव ! सुने" कह उसने यह गाथा कही—

असञ्ञतो चेपि परेसमत्थं
भणाति सन्थानगतो यसस्सी,
तस्सेव त रूहति ञातिमज्झे
सिरिहीन कारयते न पञ्ञा,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरियाव सेय्यो ॥३१॥

[न्यायाधीश के पद पर बैठा हुआ दुराचारी श्रीमान् भी यदि स्वामी को अस्वामी और अस्वामी को स्वामी बना देता है तो जाति-वालों में उसका वह निर्णय ह। पक्का हो जाता है। यह कार्य्य लक्ष्मी ही कराती है, प्रज्ञा नहीं, यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३१॥]

फिर जब राजा ने कहा, "तात ! यह क्या बात है ?" "तो देव ! सुने। मूर्ख सेनक क्या जानता है ?" कह यह गाथा कही—

परस्सवा अत्तनोवापि हेतु
बालो मुसा भासति अप्पपञ्ञो,
सो निन्दितो होति सभाय मज्झे
पेच्चम्पि सो दुग्गतिगामि होति,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३२॥

[दूसरे के लिये या अपने ही लिये यदि अल्प-प्रज्ञ मूर्ख झूठ बोलता है तो वह सभा में निन्दित ही होता है और परलोक में भी दुर्गति को प्राप्त होता है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३२॥]

तब सेनक ने गाथा कही—

अत्थम्पि चे भासति भूरिपञ्ञो
अनाळ्हियो अप्पधनो दळिद्दो,

न तस्स त रूहति जाति मज्झे
सिरी च पञ्ञावतो न होति
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३३॥

[यदि अल्प-धनी, अलक्ष्मी-पति, दरिद्र किन्तु प्रज्ञावान व्यक्ति यथार्थ की बात भी बोलता है तो भी उसकी बात जातिवाले में प्रामाणिक नहीं ठहरती। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३३॥]

फिर राजा के "तात! क्या बात है?" कहने पर "सेनक क्या जानता है, इस लोक की ओर ही देखता है, पर लोक की ओर नहीं" कह पण्डित ने यह गाथा कही।—

परस्स वा अत्तनो चापि हेतु
न भासति अलीक भूरिपञ्ञो,
सो पूजितो होति सभाय मज्झे
पेच्चञ्च सो सुग्गतिगामि होति,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यस्ससि बालो ॥३४॥

[दूसरे के लिये अथवा अपने लिये ही प्रज्ञावान् आदमी झूठ नहीं बोलता। वह सभा के बीच पूजित होता है और परलोक में भी वह सुगति को प्राप्त होता है॥ यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३४॥]

तब सेनक ने गाथा कही—

हत्थी गवस्सा मणिकुण्डला च
नरियो च इद्धेसु कुलेसु जाता
सब्बाव ता उपभोगा भवन्ति
इद्धस्स पोसस्स अनिद्धिमन्तो
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३५॥

[हाथी, गौवें, घोडे, मणि, कुण्डल तथा नारियां—ये सभी धनी कुल में होती हैं। सभी ऐश्वर्य्यहीन प्राणी ऐश्वर्य्यवान की भोग्य वस्तु बनते हैं। यह भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३५॥]

तब पण्डित ने 'यह क्या जानता है' कह, एक बात लाते हुए यह गाथा कही—

असविहितकम्मन्त बाल दुम्मन्तमन्तिन,
सिरी जहति दुम्मेध जिण्णव उरगो तच
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३६॥

[जिसका कर्मान्त व्यवस्थित नहीं है, जिसके सलाहकार मूर्ख हैं, जो स्वय मूर्ख है उसे लक्ष्मी उसी प्रकार छोडकर चली जाती है जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुल को। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३६॥]

जब राजा ने फिर कहा, "यह कैसी बात है ?" तो "देव ! यह बच्चा क्या जानता है। सुने" कह और यह सोच कि मैं पण्डित को अप्रतिभ करूगा यह गाथा कही—

पञ्च पण्डिता मय भदन्ते
सब्बे पञ्जलिका उपट्ठिता
त्व नो अभिभूय्य इस्सरोसि,
सक्को भूतपतीव देव राजा;
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३७॥

[हम पाचो पण्डित भदन्त के सामने हाथ जोडे खडे हैं। तू हम सब के ऊपर हमारा 'ईश्वर' है, जैसे भूतपति देवेन्द्र शक्र। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३७॥]

यह सुना तो राजा सोचने लगा कि सेनक ने ठीक बात कही है। क्या मेरा पुत्र इसके मत का खण्डन कर दूसरी बात कह सकेगा ? यही सोचते हुए उसने कहा— "पण्डित ! कैसी बात है ?" सेनक ने ऐसी बात कही कि बोधिसत्व के अतिरिक्त

दूसरा कोई उसका खण्डन नही कर सकता था। इसलिए बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से उसके मत का खण्डन करते हुए 'महाराज ! सुने' कह यह गाथा कही—

दासोव पञ्ञस्स यसस्सि बालो
अत्थेसु जातेसु तथा विधेसु
य पण्डितो निपुण सविधेति
सम्मोहमापज्जति तत्थ बालो,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञेव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३८॥

[वैसा अवसर आने पर यशस्वी मूर्ख प्रज्ञावान् का दास ही होता है। जिस बात को पण्डित ठीक से समझ लेता है, उस विषय में मूर्ख मूढता को प्राप्त हो जाता है। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३८॥]

जब बोधिसत्व ने इस प्रकार प्रज्ञा का प्रताप प्रदर्शित किया तो राजा बोला— "सेनक ! यदि सामर्थ्य हो तो उत्तर दे।" उसे ऐसा हुआ जैसे कोठे मे रखा हुआ धन खो गया हो। वह अप्रतिभ हो, सिर नीचा किये बैठकर सोचने लगा। यदि वह कोई और बात कहता तो हजार गाथाओ से भी यह जातक समाप्त न होता। जिस समय वह अप्रतिभ हो बैठा था, बडी बाढ लाने की तरह, बोधिसत्व ने प्रज्ञा ही की और भी प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

अद्धा हि पञ्ञाव सत पसत्था
कन्ता सिरी भोगरता, मनुस्सा,
ञाणञ्च बुद्धानमतुल्यरूप
पञ्ञं न अच्चेति सिरी कदाचि ॥३९॥

[निश्चय से सत्पुरुषो ने प्रज्ञा की ही प्रशसा की है। भोगो में रत मनुष्यो को ही लक्ष्मी प्रिय है। ज्ञान-वृद्धो का ज्ञान ही अतुलनीय है। लक्ष्मी कभी प्रज्ञा से पार नही पा सकती ॥३९॥]

यह सुन राजा बोधिसत्व की व्याख्या से प्रसन्न हुआ। उसने बादलो की वर्षा के समान धन से बोधिसत्व की पूजा करते हुए गाथा कही—

[हाथी, गौवें, घोडे, मणि, कुण्डल तथा नारियां—ये सभी धनी कुल मे होतीं हैं। सभी ऐश्वर्य्यहीन प्राणी ऐश्वर्य्यवान की भोग्य वस्तु बनते हैं। यह भी देखकर मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३५॥]

तब पण्डित ने 'यह क्या जानता है' कह, एक बात लाते हुए यह गाथा कही—

असविहितकम्मन्त बाल दुम्मन्तमन्तिन,
सिरी जहाति दुम्मेध जिण्णव उरगो तच
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३६॥

[जिसका कर्मान्त व्यवस्थित नही है, जिसके सलाहकार मूर्ख हैं, जो स्वय मूर्ख है उसे लक्ष्मी उसी प्रकार छोडकर चली जाती है जैसे सर्प अपनी पुरानी केचुल को। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३६॥]

जब राजा ने फिर कहा, "यह कैसी बात है ?" तो "देव ! यह बच्चा क्या जानता है। सुनें" कह और यह सोच कि मै पण्डित को अप्रतिभ करूगा यह गाथा कही—

पञ्च पण्डिता मय भदन्ते
सब्बे पञ्जलिका उपट्ठिता
त्व नो अभिभूय्य इस्सरोसि,
सक्को भूतपतीव देव राजा;
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३७॥

[हम पाचो पण्डित भदन्त के सामने हाथ जोडे खडे हैं। तू हम सब के ऊपर हमारा 'ईश्वर' है, जैसे भूतपति देवेन्द्र शक्र। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३७॥]

यह सुना तो राजा सोचने लगा कि सेनक ने ठीक बात कही है। क्या मेरा पुत्र इसके मत का खण्डन कर दूसरी बात कह सकेगा ? यही सोचते हुए उसने कहा—"पण्डित ! कैसी बात है ?" सेनक ने ऐसी बात कही कि बोधिसत्व के अतिरिक्त

दूसरा कोई उसका खण्डन नही कर सकता था। इसलिए बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से उसके मत का खण्डन करते हुए 'महाराज! सुने' कह यह गाथा कही—

दासोव पञ्ञस्स यसस्सि बालो
अत्थेसु जातेसु तथा विधेसु
य पण्डितो निपुण सविधेति
सम्मोहमापज्जति तत्थ बालो,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञेव सेय्यो न यसस्सि बालो॥३८॥

[वैसा अवसर आने पर यशस्वी मूर्ख प्रज्ञावान् का दास ही होता है। जिस बात को पण्डित ठीक से समझ लेता है, उस विषय मे मूर्ख मूढता को प्राप्त हो जाता है। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है॥३८॥]

जब बोधिसत्व ने इस प्रकार प्रज्ञा का प्रताप प्रदर्शित किया तो राजा बोला—"सेनक! यदि सामर्थ्य हो तो उत्तर दे।" उसे ऐसा हुआ जैसे कोठे मे रखा हुआ धन खो गया हो। वह अप्रतिभ हो, सिर नीचा किये बैठकर सोचने लगा। यदि वह कोई और बात कहता तो हजार गाथाओ से भी यह जातक समाप्त न होता। जिस समय वह अप्रतिभ हो बैठा था, बडी बाढ लाने की तरह, बोधिसत्व ने प्रज्ञा ही की और भी प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

अद्धा हि पञ्ञाव सत पसत्था
कन्ता सिरी भोगरता, मनुस्सा,
ञाणञ्च बुद्धानमतुल्यरूप
पञ्ञा न अच्चेति सिरी कदाचि॥३९॥

[निश्चय से सत्पुरुषो ने प्रज्ञा की ही प्रशसा की है। भोगो में रत मनुष्यो को ही लक्ष्मी प्रिय है। ज्ञान-वृद्धो का ज्ञान ही अतुलनीय है। लक्ष्मी कभी प्रज्ञा से पार नही पा सकती॥३९॥]

यह सुन राजा बोधिसत्व की व्याख्या से प्रसन्न हुआ। उसने बादलो की वर्षा के समान धन से बोधिसत्व की पूजा करते हुए गाथा कही—

[हाथी, गौवे, घोडे, मणि, कुण्डल तथा नारिया—ये सभी धनी कुल मे होती है। सभी ऐश्वर्य्यहीन प्राणी ऐश्वर्य्यवान की भोग्य वस्तु बनते हैं। यह भी देखकर मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३५॥]

तब पण्डित ने 'यह क्या जानता है' कह, एक बात लाते हुए यह गाथा कही—

असविहितकम्मन्त बाल दुम्मन्तमन्तिन,
सिरी जहति दुम्मेध जिण्णव उरगो तच
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३६॥

[जिसका कर्मान्त व्यवस्थित नही है, जिसके सलाहकार मूर्ख हं, जो स्वय मूर्ख है उसे लक्ष्मी उसी प्रकार छोडकर चली जाती है जैसे सर्प अपनी पुरानी केचुल को। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३६॥]

जब राजा ने फिर कहा, "यह कैसी बात है ?" तो "देव ! यह बच्चा क्या जानता है। सुने" कह और यह सोच कि मैं पण्डित को अप्रतिभ करूगा यह गाथा कही—

पञ्च पण्डिता मय भदन्ते
सब्बे पञ्जलिका उपट्ठिता
त्वं नो अभिभुय्य इस्सरोसि,
सक्को भूतपतीव देव राजा;
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३७॥

[हम पाचो पण्डित भदन्त के सामने हाथ जोडे खडे है। तू हम सब के ऊपर हमारा 'ईश्वर' है, जैसे भूतपति देवेन्द्र शक्र। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३७॥]

यह सुना तो राजा सोचने लगा कि सेनक ने ठीक बात कही है। क्या मेरा पुत्र इसके मत का खण्डन कर दूसरी बात कह सकेगा ? यही सोचते हुए उसने कहा—"पण्डित ! कैसी बात है ?" सेनक ने ऐसी बात कही कि बोधिसत्व के अतिरिक्त

दूसरा कोई उसका खण्डन नही कर सकता था । इसलिए बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से उसके मत का खण्डन करते हुए 'महाराज ! सुने' कह यह गाथा कही—

दासोव पञ्ञस्स यसस्सि बालो
अत्थेसु जातेसु तथा विधेसु
य पण्डितो निपुण सविधेति
सम्मोहमापज्जति तत्थ बालो,
एतम्पि दिस्वान अह वदामि
पञ्ञेव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३८॥

[वैसा अवसर आने पर यशस्वी मूर्ख प्रज्ञावान् का दास ही होता है । जिस बात को पण्डित ठीक से समझ लेता है, उस विषय मे मूर्ख मूढता को प्राप्त हो जाता है । यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३८॥]

जब बोधिसत्व ने इस प्रकार प्रज्ञा का प्रताप प्रदर्शित किया तो राजा बोला— "सेनक ! यदि सामर्थ्य हो तो उत्तर दे ।" उसे ऐसा हुआ जैसे कोठे मे रखा हुआ धन खो गया हो । वह अप्रतिभ हो, सिर नीचा किये बैठकर सोचने लगा । यदि वह कोई और बात कहता तो हजार गाथाओ से भी यह जातक समाप्त न होता । जिस समय वह अप्रतिभ हो बैठा था, बडी बाढ लाने की तरह, बोधिसत्व ने प्रज्ञा ही की और भी प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

अद्धा हि पञ्ञाव सत पसत्था
कन्ता सिरी भोगरता, मनुस्सा,
ञाणञ्च बुद्धानमतुल्यरूप
पञ्ञ न अच्चेति सिरी कदाचि ॥३९॥

[निश्चय से सत्पुरुषो ने प्रज्ञा की ही प्रशसा की है । भोगो में रत मनुष्यो को ही लक्ष्मी प्रिय है । ज्ञान-वृद्धो का ज्ञान ही अतुलनीय है । लक्ष्मी कभी प्रज्ञा से पार नही पा सकती ॥३९॥]

यह सुन राजा बोधिसत्व की व्याख्या से प्रसन्न हुआ । उसने बादलो की वर्षा के समान धन से बोधिसत्व की पूजा करते हुए गाथा कही—

य त अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो
महोसध केवलधम्मदस्सि
गवं सहस्स उसभञ्च नाग
आजञ्ञयुत्ते च रथे दस इमे,
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते गामवरानि सोळस ।।४०।।

[जो जो कुछ पूछा वह सब तूने बताया ।हे महोषध ! तू ही केवल धर्मदर्शी है। मैं तेरे प्रश्नो के समाधान से सन्तुष्ट होकर हजार गौवे, बैल, हाथी, श्रेष्ठ घोडे जुते ये दस रथ और सोलह श्रेष्ठ गाव देता हूँ ।।४०।।]

बीसवें निपात मे श्रीमन्द प्रश्न समाप्त

इसके बाद से बोधिसत्व का ऐश्वर्य्य बहुत वढ गया। इन सब बातो का उदुम्बर देवी ही विचार करती थी। उसकी सोलह वर्ष की आयु होने पर वह सोचने लगी—"मेरा छोटा भाई अव छोटा नही रहा। इसका ऐश्वर्य्य भी बहुत वढ गया। इसका विवाह करना योग्य है।" उसने यह बात राजासे कही। राजा ने यह बात सुनी तो प्रसन्न हुआ और बोला—"अच्छा ! तू उसे जना दे।" उसने उसे जानकारी कराई। जब उसने स्वीकार किया तो पूछा—"तो तात ! कुमारी ले आये।" "शायद इनकी लाई हुई मेरे मन को न भाये, मैं स्वय ही खोजूगा" सोच बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"देवी ! कुछ दिन राजा को कुछ नही कहना। मै लडकी स्वय खोजकर अपनी रुचि की बात तुम्हे बता दूगा।"

"तात ! ऐसा ही कर।"

उसने देवी को नमस्कार किया और अपने घर पहुँच मित्रो को सकेत कर, भेष बदल, धुनिये का सामान ले, अकेला ही उत्तर-द्वार से निकल उत्तर-यव-मज्झ गाव गया।

उस समय वहा का पुराना सेठ-कुल दरिद्र हो गया था। उस कुल की अमरा देवी नाम की कन्या सुन्दरी थी, सभी लक्षणो से युक्त थी और पुण्यवती थी। वह उस दिन प्रात काल ही पतली खिचडी पका, पिता के खेत पर ले जाने की इच्छा से घर से निकल उस रास्ते पर चली। बोधिसत्व ने उसे आते देख, सोचा—"यह स्त्री लक्षणो से युक्त है। यदि अविवाहिता हो तो मेरी चरण-सेविका होने के योग्य

है।" उसने भी उसे देखते ही सोचा—"यदि ऐसे पुरुष के घर मे होऊँ तो मै कुटुम्ब को पाल सकती हूँ।" बोधिसत्व ने सोचा—"मै नही जानता कि यह विवाहित है अथवा अविवाहित ? हस्त-मुद्रा से मै प्रश्न करता हूँ। यदि पण्डिता होगी तो समझ जायेगी।" उसने दूर ही खडे रह मुट्ठी बाधी। उसने यह समझ कि यह मेरे विवाहित होने अथवा न होने की बात पूछता है, हाथ खोल दिया। वह समझ गया और समीप जाकर पूछा—"भद्रे ! तेरा क्या नाम है ?"

"स्वामी ! मेरा नाम वह है जो भूत, भविष्यत् अथवा वर्तमान मे नही है।"

"भद्रे ! लोक मे 'अमर' कोई नही है। तेरा नाम अमरा होगा।"

"स्वामी ! हा।"

"भद्रे ! खिचडी किसके लिए ले जा रही है ?'

"स्वामी ! पूर्व-देवता के लिए।"

"भद्रे ! माता-पिता ही पूर्व-देवता है। मालूम होता है तू पिता के लिये ले जा रही है ?"

"स्वामी ! ऐसा ही है।"

"तेरा पिता क्या करता है ?"

"एक के दो करता है।"

"एक के दो करने का मतलब होता है हल चलाना। मालूम होता है खेती करता है।"

"स्वामी ! हाँ।"

"तेरा पिता किस जगह हल चलाता है ?"

"जहाँ एक बार जाकर नही लौटते।"

"एक बार जाकर नही लौटने की जगह श्मशान है। भद्रे ! लगता है श्मशान के पास हल चलाता है।"

"स्वामी ! हाँ।"

"भद्रे ! क्या आज ही आयेगी ?"

"यदि आयेगा तो नही आऊँगी, नही आयेगा तो आऊँगी।"

"भद्रे ! मालूम होता है तेरा पिता नदी के तीर पर हल चलाता है। पानी के आने पर नही आयेगी, आने पर आयेगी।"

"स्वामी ! हाँ।"

इतनी बातचीत करके देवी ने पूछा—

"स्वामी! यवागू पियेगे?"

बोधिसत्व ने सोचा, निषेध करना अमङ्गल होगा। बोला—"भद्रे! पिऊँगा।"

उसने यवागू का घडा उतारा। बोधिसत्व ने सोचा यदि बिना हाथ धोये और बिना हाथ धोने के लिए पानी दिये यवागू देगी तो इसे यही छोड चला जाऊँगा। उसने थाली में पानी लिया और उसे हाथ धोने को जल दे, खाली थाली हाथ में न दे, जमीन पर रख, घडे को हिलाकर उसे यवागू से भर दिया।

उसमे चावल कम (उबले?) थे। बोधिसत्व ने कहा—"भद्रे! खिचडी बहुत गाढी है?" "स्वामी! पानी नही मिला।"

"मालूम होता है खेतो को भी पानी नही मिला होगा?"

"स्वामी! हाँ।" उसने पिता के लिये यवागू रख बोधिसत्व को दिया। उसने पिया, मुँह धोया और बोला—"भद्रे! मै तुम्हारे घर जाऊँगा। मुझे मार्ग बता।" उसने 'अच्छा' कह मार्ग बताते हुए एक-निपात की यह गाथा कही—

येन सत्तु बिळगाच
द्विगुणपलासो च पुप्फितो,
येनादामि तेन वदामि
येन नादामि न तेन वदामि;
एस मग्गो यवमज्झकस्स
एत छन्नपथ विजानहि ॥४१॥

[जहाँ सत्तू और काजी (की दुकान) है और जहाँ पलास दुगना पुष्पित है, उससे दक्षिण (बाई ओर नही) ओर—यही यवमञ्झक का रास्ता है। इस ढके हुए रास्ते को पहचान ॥४१॥]

छन्नपथ प्रश्न समाप्त

वह उसके बताये रास्ते से ही घर पहुँचा। वहाँ अमरा देवी की मा ने देखते ही आसन दिया और पूछा—"स्वामी यवागू तैय्यार करूँ?" "मा! मेरी छोटी बहन अमरा देवी ने मुझे यवागू दिया है।" वह समझ गई कि मेरी लडकी के लिये आया होगा। बोधिसत्व ने यह जानते हुए भी कि ये दरिद्र है पूछा—"मा! मै दर्जी हूँ। कुछ सीने को है?" "स्वामी है। किन्तु मूल्य नही है।" "मा! मूल्य की अपेक्षा

नही है। ला सिऊँगा।" उसने पुराने वस्त्र लाकर दिये। जो जो वस्त्र वह लाती बोधिसत्व उन्हें समाप्त करते जाते। पुण्यवानो की करनी सफल होती है। उसने कहा—"मा! गली मे बराबर वालो को सूचना दे दो।" उसने सारे गाव मे सूचना दे दी। बोधिसत्व ने सिलाई का काम कर एक ही दिन मे हजार पैदा कर लिये। बुढिया ने भी उसके लिये प्रात काल का भात पकाया और दिया। फिर पूछा—"तात! शाम को कितना पकाऊँ?" "मा! जितने इस घर मे खाने वाले है उनके प्रमाण से।" उसने अनेक प्रकार के सूप-व्यञ्जन तथा बहुत सा भात पकाया। अमरा देवी भी शाम को सिर पर लकडियो का ढेर और गोद मे पत्ते लिये जगल से लौटी। उसने दरवाजे के सामने लकडिया फेंकी और पिछले द्वार से घर मे प्रवेश किया। पिता और अधिक सन्ध्या होने पर घर लौटा। बोधिसत्व ने नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसो से युक्त भोजन किया। अमरा देवी ने माता पिता के खा चुकने पर स्वय खाया और फिर माता-पिता के पाव धोने के बाद बोधिसत्व के पाव धोये। वह उसकी जाँच करते हुए कुछ दिन वही रहा।

उसकी परीक्षा लेने के लिये बोधिसत्व ने एक दिन कहा—"भद्रे! आधी नाली भर धान लेकर, उससे मुझे खिचडी, पूवे और भात पका कर दें"। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वे धान कूट चूरे चावलो से यवागु, बीच के चावलो से भात और कणियो से पूए पकाकर, उनके अनुरूप व्यञ्जन तैयार कर बोधिसत्व को व्यञ्जन सहित यवागू दिया। मुख मे रखते ही सारे मुँह को स्वाद का पता लग गया। उसने उसकी परीक्षा लेने के लिये ही 'भद्रे! यदि पकाना नही जानती तो मेरे धान क्यो बिगाडे' कह थूक के साथ यवागू भी जमीन पर गिरा दिया। उसने बिना क्रोधित हुए 'स्वामी! यदि यवागू ठीक नही बना तो पूए खायें' कह पूए दिये। उसने उसके साथ भी वैसा ही किया। भात के साथ भी वैसा ही बरताव कर क्रुद्ध की भान्ति कहा—"यदि तू पकाना नही जानती तो मेरे तण्डुल क्यो बिगाडे? अब तीनो को एक साथ मिला सिर से ले कर सारे शरीर पर पोत और दरवाजे पर बैठ।" उसने बिना क्रुद्ध हुए 'स्वामी! अच्छा' कहा और वैसा ही किया। उसने उसकी विनम्रता का परिचय पा कहा—"भद्रे! आ।" वह एक बार कहने से ही चली आई।

बोधिसत्व आते समय पान की थैली मे एक वस्त्र के साथ हजार रख लाये थे। उन्होने वह वस्त्र निकाल उसके हाथ मे रखकर कहा—"भद्रे! अपनी सहेलियो के साथ स्नान कर, यह वस्त्र पहन कर आ।" उसने वैसा ही किया।

पण्डित ने पैदा किया हुआ तथा लाया हुआ सारा धन उसके माता-पिता को दिया और उन्हें निश्चिन्त कर उसे साथ ले नगर पहुचा। वहाँ उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने उसे द्वारपाल के घर बिठाया। फिर द्वार-पाल की भार्य्या को कह अपने निवासस्थान पर गया और वहा जाकर आदमियो को बुलाकर हजार देकर भेजा—"मै अमुक घर मे स्त्री को रख कर आया हूँ। यह हजार ले जाकर उसकी परीक्षा करो।" उन्होने वैसा ही किया। उसने अस्वीकार कर दिये। बोली—"ये मेरे स्वामी के पाव की धूलि के भी समान नही है।" उन्होने जाकर पण्डित से कहा। इसके बाद भी उसने तीन बार आदमी भेजे। चौथी बार कहा—"तो उसे हाथ से पकड खीच कर लाओ।" उन्होने वैसा ही किया। बडे ऐश्वर्य्य के बीच बैठे होने के कारण उसने बोधिसत्व को नही पहचाना। देखा तो वह हँसी और रोई। उसने दोनो बातो का कारण पूछा। वह बोली—"स्वामी! मैने तुम्हारी सम्पत्ति देख सोचा कि यह सम्पत्ति यू ही नही मिली होगी। पूर्व-जन्म मे किये गये कुशल-कर्म के फलस्वरूप मिली होगी। ओह! पुण्यो का फल! यही सोच कर हँसी। और रोयी इसलिए कि अब यह पराई वस्तु पर हाथ साफ करने जा रहा है, इसलिए नरक जायेगा। तेरे प्रति करुणा होने से रोयी"। उसने उसकी परीक्षा कर उसकी शुद्धता जान ली और लोगो को कहा—"जाओ इसे वही ले जाओ।" फिर दूसरे दिन धुनिये का ही वेप बना, जाकर उसके साथ रात बिताई। फिर अगले दिन प्रात काल ही राज-कुल मे प्रविष्ट हो उदुम्बरा देवी को सूचना दी।

उसने राजा को कह, अमरा देवी को सब अलकारो से अलकृत कर, बडे भारी रथ मे बिठवा, बडे ठाट-बाट से बोधिसत्व के घर मगवा मगल-कार्य किया। राजा ने बोधिसत्व के लिये हजार की भेट भेजी। द्वारपालो से लेकर सभी नागरिको ने भेटें भेजी। अमरा देवी ने राजा की भेजी हुई भेट के दो हिस्से कर एक हिस्सा राजा को भेजा। इसी तरह सारे नगरवासियो को भेट भेज उसने नागरिको का दिल जीत लिया। इसके बाद से बोधिसत्व उसके साथ एक होकर रहते हुए राजा के अर्थ और धर्म के अनुशासक बने रहे।

अमरा देवी की खोज समाप्त

एक दिन जब शेप तीन जने उसके पास आए हुए थे सेनक ने कहा—"भो! उस गृहपति-पुत्र महोषध से ही पार नही पा सकते। अब वह अपनी अपेक्षा भी चतुर एक भार्य्या ले आया है। क्या कहकर उसके और राजा के बीच मे भेद पैदा करे?"

"आचार्य्य ! हम क्या जाने ? आप ही जानते है ।" "अच्छा, चिन्ता न करो । उपाय है । मै राजा की चूडा-मणि चुरा ले आऊँगा । पक्कुस तू स्वर्ण माला ले आना । काविन्द तू कम्बल ले आना और देविन्द ! तू स्वर्ण-पादुका ले आना ।" वे चारो जने ढग से वे चीजें ले आये ।

तब बिना पता लगने दिये ये चीजे महोपध पण्डित के घर भेजने का निश्चय किया । सेनक ने मणि को तक्र के घडे मे डाल दासी के हाथ भेजा और उसे कहा—"यदि कोई और यह तक्र का घडा ले तो उसे न देकर यदि महोपध पण्डित के घर मे कोई तक्र ले तो उसे घडे समेत ही देकर आना ।" वह पण्डित के गृह-द्वार पर पहुँच इधर उधर घूमती हुई आवाज लगाती थी—"तक्र ले लो ।" द्वार पर खडी हुई अमरा देवी ने उसकी करतूत देखी तो सोचा कि कोई खास बात होगी । यह अन्यत्र क्यो नही जाती है । उसने इशारे से सभी दासियो को घर मे जाने को कह स्वय उस दासी को आवाज दी—"अरी आ । तक्र लेंगे ।" जब वह आई तो उसने दासियो को आवाज दी । उन्हें न आता देख उसने उसी दासी को कहा—"जा दासियो को बुलाकर ला ।" फिर घडे मे हाथ डालकर मणि देख ली । जब वह लौटी तो पूछा—

"तू किसके पास है ?"

"मै सेनक पण्डित की दासी हूँ ।"

तब उसका और उसकी मा का नाम पूछकर कहा—"तो तक्र दे" वह बोली—"आप लेती है तो आपसे मै मूल्य लेकर क्या करूँगी ? घडे के साथ ही ले लें ।"

"तो जा ।"

उसे विदा कर उसने अपने पास लिख रखा कि सेनकाचार्य्य ने अमुक दासी की अमुक पुत्री के हाथ राजा की चूडा-मणि भेंट-स्वरुप भेजी ।

कुक्कुस ने चमेली के फूलो को चगेर मे रखकर स्वर्ण-माला भिजवाई । काविन्द ने पत्तो की टोकरी मे कम्बल रखकर भिजवाया । देविन्द ने जौ की मुट्ठी के अन्दर लपेट कर स्वर्ण-पादुका भिजवाई । उसने वे सभी चीजे ली, कागज पर नाम आदि चढा, बोधिसत्व को सूचित कर रख ली । वे चारो जने भी राजकुल पहुँचे और पूछा—"देव ! क्या आप चूडामणि नही धारण करते ?" राजा बोला—"लाओ । पहनूगा" मणि नही दिखाई दी । शेप चीजे भी नही दिखाई

दी। चारो बोले—"देव! आपका आभरण महोपध पण्डित के घर मे है। वह स्वय उन्हे धारण करता है। महाराज! वह तुम्हारा शत्रु है।" इस प्रकार उन्होने राजा का मन खट्टा कर दिया।

उसके दूतो ने पण्डित को सूचना दी। उसने सोचा कि राजा से भेट करके पता लगाऊँगा, इसलिए राजा की सेवा मे पहुँचा। राजा ने क्रोध के मारे कहा—"मै नही जानता कि यहा आकर क्या करेगा?" उसने उसे अपने पास आने नही दिया। पण्डित ने राजा को क्रुद्ध जाना तो वह अपने निवास-स्थान को ही लौट गया। राजाज्ञा हुई—"उसे पकडो।" पण्डित को जब अपने दूतो से पता लगा तो उसने चल देने का निश्चय किया। उसने अमरा देवी को सकेत किया और भेष वदल कर नगर से निकल दक्षिणयव मज्झक गाव पहुच एक कुम्हार के घर मे कुम्हार का काम करने लग गया।

सारे नगर मे हल्ला हो गया कि पण्डित भाग गया। सेनक आदि चारो जनो ने कहना आरम्भ किया—"चिन्ता न करो। क्या हम अपण्डित है।" उन्होने बिना एक दूसरे को सूचना दिये अमरा देवी के पास भेट भेजी। उसने चारो द्वारा भिजवाई भेट ले ली और कहला भेजा कि अमुक अमुक समय आये। आने पर उसने उनका सिर मुण्डवाया और गूह के कुए मे फिकवा उन्हे बहुत कष्ट दिया। फिर राजा को सूचना दे, उनके साथ चारो रत्न लिवा राज-भवन पहुँची। वहा राजा को प्रणाम कर खडी हुई और बोली—"देव! महोषध पण्डित चोर नही है। चोर ये है। इनमे सेनक मणि-चोर है। पुक्कुस स्वर्ण-माला चोर है। काविन्द कम्बल चोर है और देविन्द स्वर्ण पादुका चोर। अमुक महीने, अमुक दिन, अमुक दासी की अमुक दासी-कन्या के हाथ इन्होने ये भेटे भेजी। ये पत्र देखे। अपनी चीजे ले और चारो चोरो को सभालें।" इस प्रकार उन चारो जनो को महा विपत्ति में डाल, राजा को नमस्कार कर घर गई। राजा ने बोधिसत्व के भाग जाने की आशका से और दूसरे पण्डित मन्त्री न होने के कारण उन्हे कुछ नही कहा। केवल इतना ही कहा—"नहा कर अपने अपने घर जाओ।"

चारों रत्न-चोर समाप्त

उस समय छत्र में रहने वाली देवी को जब बोधिसत्व की धर्म-देशना सुननी नही मिली तो उसने उसका कारण जान पण्डित को लाने का उपाय करने की बात सोची। उसने रात के समय छत्र की गोलाई के विवर (?) मे खडे होकर चौथे-

निपात मे देवता-प्रश्न मे आये हुए चारो प्रश्न पूछे। राजा ने उनका उत्तर न जानने के कारण 'दूसरे पण्डितो से पूछूँगा" कह एक दिन की मोहलत मागी। फिर उसने पण्डितो को आने के लिए कहला भेजा। वे बोले—'सिर मुण्डा होने के कारण हमे बाजार से गुजरते लज्जा आती है।' राजा ने सिर ढकने के लिए चार वस्त्र भिजवाये—'इन्हे सिर पर रख आये।' उन्हे सिर के लिए पट्टे मिले तो वे आकर बिछे आसनो पर बैठे। राजा ने पूछा—सेनक! आज रात छत्र मे रहने वाली देवी ने आकर मुझसे चार प्रश्न पूछे। मैने न जानने के कारण कहा है कि मै पण्डितो से पूछूँगा। अब मुझे इन प्रश्नो के उत्तर कहे—

"हन्ति हत्थोहि पादेहि मुखञ्च परिसुम्भति
सवे राजपियो होति क तेन अभिपस्ससि ॥४२॥

[हाथ-पाव से पीटता है, मुह को भी पीटता है। हे राजन्! वह प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है? ॥४२॥]

सेनक 'क्या मारता है, क्या मारता है' कहकर प्रलाप करता रहा। उसे न यह सिरा दिखाई दिया और न वह सिरा। शेष भी प्रतिहत हो गये। राजा को अफसोस हुआ। रात को फिर देवी ने पूछा—"प्रश्नो का उत्तर ज्ञात हुआ?" राजा बोला—"चारो पण्डितो से पूछा, वे भी नही जानते?" देवी बोली—"वे क्या जानेंगे! महोपध को छोड और कोई इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकता। यदि उसे बुलवा कर इन प्रश्नो का समाधान नही करायेगा तो मै इस जलते हुए हथौडे से तेरा सिर फोड दूगी।" इस प्रकार राजा को डराकर उसने यह भी कहा—"महाराज आग की आवश्यकता होने पर जुगनू को जलाना और दूध की आवश्यकता होने पर (किसी जानवर के) सीग को दूहना उचित नही।" यह कह पाचवें निपात के इन खद्योत-प्रश्नो का वर्णन किया—

कोनु सन्तम्हि पज्जोते अग्गिपरियेसन चर,
अद्दक्खि रत्ति खज्जोत जातवेदं असञ्ञथ ॥४३॥
स्वास्स गोमयचुण्णानि अभिमत्थ तिणानि च,
विपरीताय सञ्ञाय नासक्खि सज्जले तवे ॥४४॥
एवम्पि अनुपायेन अत्थ न लभते मगो,
विसाणतो गव दोह यत्थ खीर न विन्दति ॥४५॥

दी। चारो बोले—"देव ! आपका आभरण महोपध पण्डित के घर मे है। वह स्वय उन्हे धारण करता है। महाराज ! वह तुम्हारा शत्रु है।" इस प्रकार उन्होने राजा का मन खट्टा कर दिया।

उसके दूतो ने पण्डित को सूचना दी। उसने सोचा कि राजा से भेट करके पता लगाऊँगा, इसलिए राजा की सेवा मे पहुँचा। राजा ने क्रोध के मारे कहा—"मैं नही जानता कि यहा आकर क्या करेगा ?" उसने उसे अपने पास आने नही दिया। पण्डित ने राजा को क्रुद्ध जाना तो वह अपने निवास-स्थान को ही लौट गया। राजाज्ञा हुई—"उसे पकडो।" पण्डित को जब अपने दूतो से पता लगा तो उसने चल देने का निश्चय किया। उसने अमरा देवी को सकेत किया और भेष बदल कर नगर से निकल दक्षिणयव मज्झक गाव पहुच एक कुम्हार के घर मे कुम्हार का काम करने लग गया।

सारे नगर मे हल्ला हो गया कि पण्डित भाग गया। सेनक आदि चारो जनो ने कहना आरम्भ किया—"चिन्ता न करो। क्या हम अपण्डित है।" उन्होने बिना एक दूसरे को सूचना दिये अमरा देवी के पास भेट भेजी। उसने चारो द्वारा भिजवाई भेट ले ली और कहला भेजा कि अमुक अमुक समय आये। आने पर उसने उनका सिर मुन्डवाया और गूह के कुए मे फिकवा उन्हें बहुत कष्ट दिया। फिर राजा को सूचना दे, उनके साथ चारो रत्न लिवा राज-भवन पहुँची। वहा राजा को प्रणाम कर खडी हुई और बोली—"देव ! महोषध पण्डित चोर नही है। चोर ये हैं। इनमे सेनक मणि-चोर है। पुक्कुस स्वर्ण-माला चोर है। काविन्द कम्बल चोर है और देविन्द स्वर्ण पादुका चोर। अमुक महीने, अमुक दिन, अमुक दासी की अमुक दासी-कन्या के हाथ इन्होने ये भेटें भेजी। ये पत्र देखे। अपनी चीजें ले और चारो चोरो को सभाले।" इस प्रकार उन चारो जनो को महा विपत्ति में डाल, राजा को नमस्कार कर घर गई। राजा ने बोधिसत्व के भाग जाने की आशका से और दूसरे पण्डित मन्त्री न होने के कारण उन्हें कुछ नही कहा। केवल इतना ही कहा—"नहा कर अपने अपने घर जाओ।"

चारों रत्न-चोर समाप्त

उस समय छत्र मे रहने वाली देवी को जब बोधिसत्व की धर्म-देशना सुननी नही मिली तो उसने उसका कारण जान पण्डित को लाने का उपाय करने की बात सोची। उसने रात के समय छत्र की गोलाई के विवर (?) मे खडे होकर चौथे-

निपात में देवता-प्रश्न मे आये हुए चारो प्रश्न पूछे। राजा ने उनका उत्तर न जानने के कारण 'दूसरे पण्डितो से पूछूँगा" कह एक दिन की मोहलत मागी। फिर उसने पण्डितो को आने के लिए कहला भेजा। वे बोले—'सिर मुण्डा होने के कारण हमें बाजार से गुजरते लज्जा आती है।' राजा ने सिर ढकने के लिए चार वस्त्र भिजवाये—'इन्हें सिर पर रख आये।' उन्हें सिर के लिए पट्टे मिले तो वे आकर बिछे आसनो पर बैठे। राजा ने पूछा—सेनक! आज रात छत्र मे रहने वाली देवी ने आकर मुझसे चार प्रश्न पूछे। मैंने न जानने के कारण कहा है कि मैं पण्डितो से पूछूँगा। अब मुझे इन प्रश्नो के उत्तर कहे—

"हन्ति हत्थेहि पादेहि मुखञ्च परिसुम्भति
स वे राजपियो होति क तेन अभिपस्ससि ॥४२॥

[हाथ-पाव से पीटता है, मुह को भी पीटता है। हे राजन्! वह प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है? ॥४२॥]

सेनक 'क्या मारता है, क्या मारता है' कहकर प्रलाप करता रहा। उसे न यह सिरा दिखाई दिया और न वह सिरा। शेष भी प्रतिहत हो गये। राजा को अफसोस हुआ। रात को फिर देवी ने पूछा—"प्रश्नो का उत्तर ज्ञात हुआ?" राजा बोला—"चारो पण्डितो से पूछा, वे भी नही जानते?" देवी बोली—"वे क्या जानेंगे! महोपध को छोड और कोई इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकता। यदि उसे बुलवा कर इन प्रश्नो का समाधान नही करायेगा तो मैं इस जलते हुए हथौडे से तेरा सिर फोड दूगी।" इस प्रकार राजा को डराकर उसने यह भी कहा—"महाराज आग की आवश्यकता होने पर जुगनू को जलाना और दूध की आवश्यकता होने पर (किसी जानवर के) सीग को दूहना उचित नही।" यह कह पाचवे निपात के इन खद्योत-प्रश्नो का वर्णन किया—

कोनु सन्तम्हि पज्जोते अग्गिपरियेसन चर,
अद्दक्खि रत्ति खज्जोत जातवेद अमञ्ञथ ॥४३॥
स्वास्स गोमयचुण्णानि अभिमत्थ तिणानि च,
विपरीताय सञ्ञाय नासक्खि सज्जलेतवे ॥४४॥
एवम्पि अनुपायेन अत्थ न लभते मगो,
विसाणतो गवं दोह यत्थ खीर न विन्दति ॥४५॥

विविधेहि उपायेहि अत्थं पप्पोन्ति माणवा,
निग्गहेन अमित्तान मित्तान पग्गहेन च ॥४६॥
सेणिमोक्खोपलाभेन वल्लभान नयेन च,
जगंति जगतीपाला आवसन्ति वसुधर ॥४७॥

[आग (की आवश्यकता) होने पर कोई आग खोजने निकला। उसने रात को जुगनू देखे और उन्हें आग मान उन पर गोबर का चूर्ण और तिनके रखे। अपनी बेसमझी के कारण वह आग नही पैदा कर सका। इसी प्रकार उल्टे उपाय से मूर्ख आदमी का काम नही बनता जैसे गौ के दूध-रहित सीग को दोहने से दूध नही निकलता। नाना उपायो से आदमी की अर्थ-सिद्धि होती है—शत्रुओ का निग्रह करने से और मित्रो को बढावा देने से। राजा लोग श्रेणी के मुखियो तथा प्रिय अमात्यो के व्यवहार से वसुन्धरा पर स्वामित्व करते है ॥४३-४७॥]

खद्योतपनक प्रश्न समाप्त

मृत्यु से भयभीत राजा ने फिर एक दिन चारो अमात्यो को बुलवाया और आज्ञा दी—"तात! तुम चारो, चार रथो मे बैठ, चारो नगर-द्वारो से निकल कर जाओ और जहा कही भी मेरे पुत्र महोपध पण्डित को देखो, वही से सत्कार करके शीघ्र लाओ।" उनमे से तीन जनो ने पण्डित को नही देखा। किन्तु जो दक्षिण द्वार से निकला था उसने देखा कि बोधिसत्व मिट्टी लाया है और आचार्य्य का चाक घुमाकर, मिट्टी पुते शरीर से, घास पर बैठा, मुट्ठी-मुट्ठी बाधकर अल्प-सूप वाले जौ-भात को खा रहा है। उसने ऐसा क्यो किया? उसने यही सोचकर ऐसा किया कि राजा पण्डित है। उसे सन्देह हो गया है कि महोपध पण्डित राज्य लेगा। जब वह सुनेगा कि कुम्हार का काम करके जीविका चला रहा है तो वह सन्देह रहित हो जायेगा। उसने जब जाना कि अमात्य उसके पास आया है तो सोचा कि मेरा ऐश्वर्य्यं फिर पूर्ववत् हो जायेगा और मै अमरा देवी के हाथ से तैयार किया गया नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ही करूँगा। उसके हाथ मे जो भोजन का कौर था, उसे छोड जाकर उसने मुह धो लिया। उसी क्षण वह आ पहुँचा। वह सेनक के पक्ष का ही था। उसने बोधिसत्व को ठेस पहुचाते हुए 'पण्डित! आचार्य्य सेनक का कहना ही कल्याणकारी है। तेरे ऐश्वर्य्यं की हानि होने पर तेरी वैसी प्रज्ञा से कुछ सहारा नही मिला। अब मिट्टी पुते शरीर से, पास के आसन पर बैठा ऐसा भोजन कर रहा है' कह दसवे निपात के भूरि-प्रश्न मे आई हुई यह पहली गाथा कही—

सच्च किरत्वम्पि भूरिपञ्ञो
या तादिसी सिरि घिती मुतीच,
न तायते भाववसूपनीत
यो यवक भुञ्जसि अप्पसूप ॥४८॥

[आचार्य्य सेनक ने सत्य ही कहा था। हे महाप्रज्ञ! तेरा वैसा ऐश्वर्य्य, श्री, घृति और वुद्धि भी अभाग्य के समय सहायक नही होती। यहा अल्प-सूप जौ खा रहा है ॥४८॥]

तव उसे वोधिसत्व ने 'मूर्ख! मै अपने प्रज्ञावल से अपने उस ऐश्वर्य्य को पुन प्राप्त करने की इच्छा से ऐसा करता हूँ' कह ये दो गाथाये कही—

सुख दुक्खेन परिपाचयन्तो
कालाकाल विचिन छन्दछन्नो,
अत्थस्स द्वारानि अवापुरन्तो
तेनाह तुस्सामि यवोदनेन ॥४९॥
कालञ्च ञत्वा अभिजीहनाम
मन्तेहि अत्थ परिपाचयित्वा,
विजम्हिस्स सीहविजम्हितानि
तायिद्धिया दक्खसि म पुनरपि ॥५०॥

[दुख द्वारा सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करता हुआ, समय असमय का विचार कर स्वेच्छा से छिपा हुआ, अपने ऐश्वर्य्य का द्वार पुन खोलने की कामना से मै जौ के भोजन से सतुष्ट होता हूँ ॥४९॥ प्रयत्न करने का उचित समय जानकर अपने ज्ञान-बल से उद्देश्य की पूर्ति कर सिंह के जुम्हाई लेने की तरह जुम्हाई लूगा। तू फिर भी मुझे उस ऋद्धि से युक्त देखेगा ॥५०॥]

तव उसे अमात्य ने कहा—"पण्डित! छत्र में रहने वाले देवता ने राजा से प्रश्न पूछा। राजा ने चारो पण्डितो से प्रश्न किया। एक भी प्रश्न का उत्तर न दे सका। इसलिए राजा ने मुझे तेरे पास भेजा है।"

"ऐसा होने पर भी तू प्रज्ञा का प्रताप नही देखता है। ऐसे समय ऐश्वर्य्य सहायक नही होता, प्रज्ञावान का ही सहारा होता है" कह बोधिसत्व ने प्रज्ञा का बखान किया। तब अमात्य ने 'पण्डित जहा दिखाई दे, वही से नहला कर, कपडे पहना

कर लाओ' राजाज्ञा होने के कारण, राजा के दिए हुए हजार और दुशाले का जोडा बोधिसत्व के हाथ में रखा। कुम्भकार डरा कि मै ने महोषध-पण्डित से नौकर का काम लिया। बोधिसत्व ने उसे 'आचार्य! डरें नही। तुम्हारा हम पर बहुत उपकार हैं' कह, उसे निश्चिन्त कर, हजार दिये और मिट्टी पुते शरीर से ही रथ में बैठ नगर में प्रवेश किया।

अमात्य ने राजा को सूचना भेजी। राजा ने पूछा—"तात! तूने पण्डित को कहा देखा?" "देव! दक्षिणयव मज्झक ग्राम में कुम्हार का काम करके जीवन यापन कर रहा था। यह कहने पर कि आपने बुलाया है, बिना स्नान किये ही, मिट्टी पुते शरीर से ही चला आया है।" राजा ने सोचा,"यदि मेरा शत्रु होता तो ऐश्वर्य्य-शाली ढग से रहता। यह मेरा शत्रु नही है।" उसने कहलाया, "मेरे पुत्र को कहो कि अपने घर जाकर, नहाकर, अलकृत होकर, जैसे मैंने कहा है वैसे ही होकर आये।" यह बात सुन पण्डित ने वैसा ही किया और आया। प्रविष्ट होने की आज्ञा होने पर राजा को प्रणाम कर एक ओर खडा हुआ। राजा ने उससे कुशल-क्षेम पूछ, पण्डित की परीक्षा करते हुए यह गाथा कही—

सुखी हि एके न करोन्ति पाप
अवण्णससग्गभया पुनेके,
पहू समानो विपुलत्थचिन्ती
किं कारणा में न करोसि दुक्ख ॥५१॥

[कुछ लोग सुख मे सतोष पाय मान नही करते, कुछ लोग निन्दा के भय से पाप नही करते। तू सामर्थ्यवान् और नाना प्रकार से विचारवान् है, तूने मुझे क्यो दुखी नही किया? ॥५१॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न पण्डिता अत्तसुखस्स
पापानि कम्मानि समाचरन्ति,
दुक्खेन फुट्ठा खलितत्तापि सन्ता
छदा च दोसा न जहन्ति ॥५२॥

[आत्म-सुख के लिए पण्डित पाप-कर्म नही करते। दुखी होने पर और ऐश्वर्य्य-विहीन हो जाने पर इच्छा तथा द्वेष के वशी-भूत हो धर्म नही छोडते हैं ॥५२॥]

फिर राजा ने उसकी परीक्षा लेने के लिए 'क्षत्रिय-माया' की वात करते हुए यह गाथा कही—

येन केनचि वण्णेन मुदुना दारुणेन वा,
उद्धरे दीनमत्तान पच्छा धम्म समाचरे ॥५३॥

[मृदु अथवा कठोर किसी उपाय से भी हो पहले अपनी दीनता दूर करे। पीछे धर्माचरण करे ॥५३॥]

तब बोधिसत्व ने वृक्ष की उपमा देते हुए यह गाथा कही—

यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा,
न तस्स साख भञ्जेय्य मित्तदुभो हि पापको ॥५४॥

[जिस पेड की शाखा मे बैठे वा लेटे, उस शाखा को न तोडे। मित्र-द्रोह पाप-कर्म है ॥५४॥]

इतना कह 'महाराज! यदि जिस पेड के नीचे आदमी लेटा या बैठा हो उसकी शाखा तोडने से भी मित्र-द्रोह होता है तो आपने तो मेरे पिता को महान् ऐश्वर्य्य पर प्रतिष्ठित किया और मुझ पर भी महान् कृपा की तो तुम्हारे प्रति यदि मैं दुर्व्यवहार करूँ तो मै कैसे मित्र-द्रोही नही होऊँगा' कह हर प्रकार से अपना अमित्र-द्रोही-भाव प्रकट किया। फिर राजा को दोष देते हुए कहा—

यस्सा हि धम्म मनुजो विजञ्ञा
येचस्स कङ्ख विनयन्ति सन्तो,
त हिस्स दीपञ्च परायणञ्च
न तेन मित्त जरयेथ पञ्ञो ॥५५॥

[आदमी जिससे 'धर्म' जाने और जो उसकी सन्देह निवृत्ति करें वे ही उसके शरण-स्थान होते हैं। बुद्धिमान् आदमी को चाहिए कि उससे मैत्री बनाये रखे ॥५५॥]

अब उसे उपदेश देते हुए ये दो गाथाये कही—

अलसो गिही कामभोगी न साधु
असञ्ञतो पब्बजितो न साधु
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो त न साधु ॥५६॥

निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
निसम्म कारिनो राज यसो किंत्तिच वड्ढति ॥५७॥

[कामभोगी आलसी गृहस्थ अच्छा नही। असयमी प्रव्रजित अच्छा नही। अविचारपूर्वक कार्य्य करने वाला राजा नही। जो पण्डित क्रोधी हो वह अच्छा नही ॥५६॥ क्षत्रिय को चाहिए कि विचार पूर्वक काम करे। राजा को चाहिए कि विना विचारे काम न करे। हे राजन! विचारपूर्वक कार्य्य करने वाले का ऐश्वर्य्य और कीर्ति वढती है ॥५७॥]

भूरि-प्रश्न समाप्त

ऐसा कहने पर राजा ने वोधिसत्व को उठाये हुए श्वेत-छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बिठाकर स्वय नीचे आसन पर वैठ कहा—"पण्डित! श्वेत-छत्र में रहने वाली देवी ने मुझे चार प्रश्न पूछे। मैंने वे प्रश्न पण्डितो से पूछे। चारो पण्डित नही वता सके। तात! प्रश्नो का उत्तर दे।"

"महाराज! चाहे छत्र मे रहने वाली देवी हो, चाहे चातुर्महाराज आदि देवता हो, जिस किसी का भी पूछा हुआ प्रश्न हो उत्तर दूगा। महाराज! देवता का पूछा हुआ प्रश्न कहें।"

राजा ने जैसे देवी से पूछा था, उसी प्रकार कहते हुए पहली गाथा कही—

हन्ति हत्थेहि पादेहि मुखञ्च परिसुम्भति
स वे राज पियो होति क तेनमभिपस्ससि ॥५८॥

[हाथ-पाँव से पीटता है, मुँह को भी पीटता है। हे राजन! वह प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है? ॥५८॥]

गाथा सुनते ही वोधिसत्व को आकाश में चन्द्रमा के प्रकट होने के समान उसका अर्थ प्रकट हो गया। वोधिसत्व ने कहा—"महाराज! सुनें। जव मा की गोद में लेटा हुआ वच्चा प्रसन्नतापूर्वक खेलता हुआ माता को हाथ-पाव से पीटता है, केसो को नोचता है, मुँह पर मुक्के मारता है, तव मा 'अरे चोर-पुत्र! ऐसे क्यो मारता है' आदि प्रिय-वचन कहती हुई, प्रेम के आधिक्य से, उसका आलिंगन कर स्तनो के बीच मे लिटा चूमती है। ऐसे समय वह वच्चा उसका प्रियतर होता है, उसी प्रकार पिता का।"

इस प्रकार आकाश में सूर्य्य उगाने की तरह स्पष्ट करके प्रश्नोत्तर दिया।

यह देख छत्र की गोलाई के विवर में से देवी ने निकल, आधा शरीर बाहर प्रकट कर मधुर-स्वर से साधुकार दिया—"प्रश्नोत्तर ठीक दिया गया।" फिर दिव्य पुष्प-गन्ध से रतन-चङ्गेर भर बोधिसत्व की पूजा की और अन्तर्धान हो गई। राजा ने भी पुष्पादि से बोधिसत्व की पूजा की। फिर दूसरे प्रश्न की बात कर बोधिसत्व के 'महाराज! पूछें' कहने पर दूसरी गाथा कही—

> अक्कोसति यथाकाम आगमञ्चस्स न इच्छति,
> स वे राज पियो होति क तेनमभिपस्ससि ॥५९॥

[यथेच्छ गाली देती है और उसके आगमन तक की इच्छा नही करती। राजन! वही प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है?॥५९॥]

तब बोधिसत्व ने समझाया—"महाराज! सात आठ वर्ष की आयु हो जाने पर जब बच्चा सदेश ले जाने योग्य हो जाता है तो माता उसे कहती है—"खेत पर जा। दुकान पर जा।" वह कहता है—"यदि यह खाने को देगी, तो जाऊँगा।" माता 'हन्त! पुत्र' कह खाने को देती है। वह खा चुकने पर बोलता है, 'मा! तू तो ठण्डी छाया में बैठती है, मै बाहर काम करने जाऊँ' और हाथ मुँह बनाकर नही जाता है। मा गुस्सा होकर दण्डा ले उसका पीछा करती है—"तू मेरे पास से खा कर अब खेत मे कुछ भी नही करना चाहता है!" वह जल्दी से भाग जाता है। वह उसे नही पकड सकती, तो कहती है—"अरे दरिद्र! जा। चोर तेरे टुकडे टुकडे कर दें।" इस प्रकार यथेच्छ गालिया देती है। जो मुँह मे कहती है, उससे प्रतीत होता है कि वह उसका लौट कर आना तनिक भी पसन्द नही करती। वह दिन भर खेलता रहकर शाम को घर आने का साहस न कर सम्बन्धियो के घर चला जाता है। माता भी उसके आने की प्रतीक्षा करती है। जब उसे आता नही देखती तो सोचती है कि शायद वह आने मे डरता है। वह शोकाकुल हो आखो में आसू भर सम्बन्धियो के घर खोजती है। वहा पुत्र को देख, उसका आलिंगन करती है, चूमती है और दोनो हाथो से जोर से पकड प्रेम से विह्वल हो कहती है—"पुत्र! मेरे कहने का भी ख्याल करता है!" 'इस प्रकार महाराज! क्रोध के समय मा को पुत्र और भी प्रिय हो उठता है' कह दूसरे प्रश्न का भी समाधान किया। देवी ने उसी प्रकार पूजा की। राजा ने भी पूजा कर तीसरे प्रश्न की बात कह "महाराज! पूछें" कहने पर यह गाथा कही—

अब्बखाति अभूतेन अलिकेनमभिसारये,
स वे राज पियो होति क तेनमभिपस्ससि ॥६० ॥

[झूठी बात कही जाती है, झूठा दोपारोपण किया जाता है। राजन ! वही प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है ? ॥६०॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! जब लोगो का सकोच कर एकान्त मे पति-पत्नि मिलते है तब परस्पर खेलते हुए वे एक दूसरे पर मिथ्यारोप करते है, 'तेरा मुझसे प्रेम नही है, तेरा हृदय अन्यत्र है।' तब वे परस्पर और भी अधिक प्रेम करते है। महाराज ! इसी प्रकार इस प्रश्न का समाधान समझे।"

देवता ने वैसे ही पूजा की। राजा ने भी पूजाकर अगले प्रश्न की बात कर 'महाराज ! पूछें' कहने पर चौथी गाथा कही—

हर अन्नञ्च पानञ्च वत्थसेनासनानि च,
अञ्ञादत्थुहरा सन्ता ते वे राज पिया होन्ति क तेनमभिपस्ससि ॥६१॥

[अन्न, पान, वस्त्र तथा शयनासन लेजाते हैं। वे निश्चय से ले-जाते हैं। राजन् ! वे प्रिय होते हैं। तू ऐसा किसे देखता है ? ॥६१॥]

तब बोधिसत्व ने समाधान किया—महाराज ! यह प्रश्न धार्मिक श्रमण-ब्राह्मणो से सम्बन्ध रखता है। श्रद्धावान् कुल के लोग इस लोक तथा पर-लोक मे श्रद्धावान् हो देते है, देने की इच्छा करते है। वैसे लोगो से श्रमण-ब्राह्मण जब याचना करते है और जो मिलता है उसे ले जाते है, खा लेते है तो वे उन्हें खाते-ले जाते देख उनसे और भी प्रेम करते है कि हमारे ही पास से अन्नादि ग्रहण करते है। इस प्रकार वे निश्चय से याचना करने वाले तथा ले जाने वाले प्रिय होते है।

इस प्रश्न का उत्तर देने पर तो देवता ने वैसे ही पूजा की और साधुकार दे सात रत्नो से भरी रत्न-चङ्गेर, बोधिसत्व के चरणो में अर्पण की—"पण्डित ! लो" राजा ने भी प्रसन्न हो उसे सेनापति बना दिया। इसके बाद से बोधिसत्व का ऐश्वर्य्य बहुत हो गया।

देवता प्रश्न समाप्त

चारो जने फिर चिन्ता करने लगे—"अब क्या करे ! गृहपति-पुत्र का ऐश्वर्य्य तो और बढ गया ?" सेनक बोला—"अच्छा रहो। मुझे उपाय सूझ गया है। हम गृहपति-पुत्र के पास जाकर कहेंगे कि रहस्य की बात किसे कहनी चाहिए ?

वह कहेगा किसी को नही। तव राजा को यह कहकर कि देव ! गृहपति पुत्र तुम्हारा शत्रु हो गया है, राजा को उससे फोड़ देंगे।" यह सोच वे चारो जने पण्डित के घर गये और कुशल क्षेम पूछ कहा—"पण्डित ! हम प्रश्न पूछना चाहते है।" "पूछो" कहने पर, सेनक ने प्रश्न किया—

"पण्डित ! आदमी को कहाँ प्रतिष्ठित होना चाहिए?"

"सत्य में।"

"सत्य मे प्रतिष्ठित हो क्या करना चाहिए?"

"धन पैदा करना चाहिए।"

"धन पैदा करके क्या करना चाहिए?"

"मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।"

"मन्त्र ग्रहण करके क्या करना चाहिए।"

"अपना रहस्य दूसरे को नही कहना चाहिए।"

वे 'पण्डित ! अच्छा' कह प्रसन्न हुए और सोचा कि अव गृहपति-पुत्र को पराजित करेंगे। वे राजा के पास पहुचे और कहने लगे कि महाराज ! गृहपति-पुत्र तुम्हारा शत्रु हो गया है।"

"मै तुम्हारा विश्वास नही करता। वह मेरा शत्रु नही होगा।"

"महाराज ! यदि विश्वास नही करते हैं तो पण्डित से ही पूछें कि पण्डित अपना रहस्य किसे वताना चाहिए? यदि शत्रु नही होगा तो कहेगा कि अमुक को बताना चाहिए, यदि शत्रु होगा तो कहेगा किसी को नही वताना चाहिए। मनोरथ पूरा होने पर ही वताना चाहिए। तव हमारी बात पर विश्वास कर सन्देह-रहित होना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और एक दिन जब सभी आकर बैठे थे तो बीसवें निपात के पञ्च-पण्डित-प्रश्न की पहली गाथा कही—

पञ्च पण्डिता समागता
पञ्हो मे पटिभाति त सुणाथ,
निन्दियमत्थ पससिय वा
कस्सेवाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६२॥

[पाचो पण्डित इकट्ठे हुए हो। जो प्रश्न मुझे सूझा है वह सुनो। चाहे निन्दनीय हो, चाहे प्रशसनीय हो, गुह्य-बात किस पर प्रकट करनी चाहिए? ॥६२॥]

ऐसा कहने पर सेनक ने राजा को भी अपने ही मे सम्मिलित करने के विचार से यह गाथा कही—

त्व नो आविकरोहि भूमिपाल
भत्ता भारसहो तुवं वदेत,
तव छन्दञ्च रुचिञ्च सम्मसित्वा,
अथ वक्खन्ति जनिन्द पञ्च धीरा ॥६३॥

(हे भूमिपाल! पहले आप ही इस बात को कहे। आप ही हमारे स्वामी है। आप ही हमारा भार वहन करने वाले हैं। आपकी इच्छा और रुचि का विचार करने के बाद हे राजन्! पाञ्च पण्डित भी कहेंगे ॥६३॥]

राजा ने रागाभिभूत होने के कारण यह गाथा कही—

या सीलवती अनञ्ञधेय्या
भत्तुच्छन्द वसानुगा मनापा,
निन्दियमत्थ पससिय वा
भरियायाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६४॥

[जो शीलवती हो, पतिव्रता हो, पति की इच्छा के अनुरूप चलने वाली हो तथा प्रिया हो, ऐसी भार्य्या को निन्दित हो अथवा प्रशसित हो, गुह्य बात प्रकट करे ॥६४॥]

तब सेनक सन्तुष्ट हुआ कि मैने राजा को भी अपने बीच में शामिल कर लिया। उसने अपनी बात स्पष्ट करते हुए गाथा कही—

यो किच्छगतस्स आतुरस्स
सरण होति गती परायणञ्च,
निन्दियमत्थ पससियं वा
सखिनोवाविकरेय्य गुह्यमत्थ ॥६५॥

[जो दरिद्र, दुखी का शरण-स्थान होता है, गति होता है और आधार होता है, ऐसे सखा को निन्दित हो चाहे प्रशसित हो सभी रहस्य बताना चाहिए ॥६५॥]

तब राजा ने पुक्कस से पूछा—"हे पुक्कस! तुझे कैसे दिखाई देता है? रहस्य किसे बताना चाहिए?" उसने यह गाथा कही—

जेठ्ठो अय मज्झिमो कणिट्ठो
सो चे सीलसमाहितो ठितत्तो,
निन्दियमत्थ पससिय वा
भातुवाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६६॥

[ज्येष्ठ हो, बराबर का हो अथवा छोटा भाई हो, यदि वह सयत और स्थिर हो तो उसे निन्दित हो अथवा प्रशसित हो सभी प्रकार का रहस्य बताना चाहिये ॥६६॥]

तब राजा ने कामिन्द से पूछा। उसने यह गाथा कही—

यो वे हदयस्स पद्धगु
अनुजातो पितर अनोमपञ्ञो,
निन्दियमत्थ पससिय वा
पुत्तस्साविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६७॥

[जो आज्ञाकारी हो, जो वश परम्परा चलाने वाला हो और जो प्रज्ञावान हो ऐसे पुत्र को निन्दित अथवा प्रशसित गुह्य बात बता देनी चाहिए ॥६७॥]

तब राजा ने देविन्द से पूछा। वह यह गाथा बोला—

माता दिपदा जनिन्द सेट्ठ
यो त पोसेति छन्दसा पियेन,
निन्दियमत्थ पससिय वा
मातुयाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६८॥

[हे द्विपदो मे श्रेष्ठ जनेन्द्र! जो माता इच्छा और प्रेम से पोषण करती है, उसे निन्दित या प्रशसित कैसी भी गूढ बात हो बताये ॥६८॥]

उन्हे पूछने के बाद राजा ने पण्डित से पूछा—पण्डित! तुझे कैसे दिखाई देता है? उसने यह गाथा कही—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्म,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्नत्थो यथासुख भणेय्य॥६९॥

ऐसा कहने पर सेनक ने राजा को भी अपने ही में सम्मिलित करने के विचार से यह गाथा कही—

त्व नो आविकरोहि भूमिपाल
भत्ता भारसहो तुव वदेत,
तव छन्दञ्च रुचिञ्च सम्मसित्वा,
अथ वक्खन्ति जनिन्द पञ्च धीरा ॥६३॥

(हे भूमिपाल! पहले आप ही इस बात को कहे। आप ही हमारे स्वामी है। आप ही हमारा भार वहन करने वाले है। आपकी इच्छा और रुचि का विचार करने के बाद हे राजन्! पाञ्च पण्डित भी कहेंगे ॥६३॥]

राजा ने रागाभिभूत होने के कारण यह गाथा कही—

या सीलवती अनञ्ञवेय्या
भत्तुच्छन्द वसानुगा मनापा,
निन्दियमत्थ पसंसियं वा
भरियायाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६४॥

[जो शीलवती हो, पतिव्रता हो, पति की इच्छा के अनुरूप चलने वाली हो तथा प्रिया हो, ऐसी भार्य्या को निन्दित हो अथवा प्रशसित हो, गुह्य बात प्रकट करे ॥६४॥]

तब सेनक सन्तुष्ट हुआ कि मैंने राजा को भी अपने बीच मे शामिल कर लिया। उसने अपनी बात स्पष्ट करते हुए गाथा कही—

यो किच्छगतस्स आतुरस्स
सरण होति गती परायणञ्च,
निन्दियमत्थ पससिय वा
सखिनोवाविकरेय्य गुह्यमत्थ ॥६५॥

[जो दरिद्र, दुखी का शरण-स्थान होता है, गति होता है और आधार होता है, ऐसे सखा को निन्दित हो चाहे प्रशसित हो सभी रहस्य बताना चाहिए ॥६५॥]

तब राजा ने पुक्कस से पूछा—"हे पुक्कस! तुझे कैसे दिखाई देता है? रहस्य किसे बताना चाहिए?" उसने यह गाथा कही—

जेट्ठो अथ मज्झिमो कणिट्ठो
सो चे सीलसमाहितो ठितत्तो,
निन्दियमत्थ पससिय वा
भातुवाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६६॥

[ज्येष्ठ हो, बराबर का हो अथवा छोटा भाई हो, यदि वह सयत और स्थिर हो तो उसे निन्दित हो अथवा प्रशसित हो सभी प्रकार का रहस्य बताना चाहिये ॥६६॥]

तब राजा ने काविन्द से पूछा। उसने यह गाथा कही—

यो वे हृदयस्स पद्धगु
अनुजातो पितर अनोमपञ्ञो,
निन्दियमत्थ पससिय वा
पुत्तस्साविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६७॥

[जो आज्ञाकारी हो, जो वश परम्परा चलाने वाला हो और जो प्रज्ञावान हो ऐसे पुत्र को निन्दित अथवा प्रशसित गुह्य बात बता देनी चाहिए ॥६७॥]

तब राजा ने देविन्द से पूछा। वह यह गाथा बोला—

माता द्विपदा जनिन्द सेट्ठ
यो त पोसेति छन्दसा पियेन,
निन्दियमत्थ पससिय वा
मातुयाविकरेय्य गुय्हमत्थ ॥६८॥

[हे द्विपदो में श्रेष्ठ जनेन्द्र! जो माता इच्छा और प्रेम से पोषण करती है, उसे निन्दित या प्रशसित कैसी भी गूढ बात हो बताये ॥६८॥]

उन्हें पूछने के बाद राजा ने पण्डित से पूछा—पण्डित! तुझे कैसे दिखाई देता है? उसने यह गाथा कही—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्म,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्नत्थो यथासुख भणेय्य ॥६९॥

[गुप्त बात का गुप्त रहना ही अच्छा है। गुप्त बात का प्रकट होना अच्छा नही। धीर पुरुष को चाहिए कि जब तक काम न बन जाय तब तक गूढ बात को मन मे रखे। जब काम पूरा हो जाये तब सुखपूर्वक मुँह खोले ॥६६॥]

पण्डित के ऐसा कहने से राजा असन्तुष्ट हो गया। तब सेनक और राजा परस्पर एक दूसरे का मुह देखने लगे। बोधिसत्व ने उनकी करतूत देखते ही समझ लिया कि इन चारो जनो ने पहले ही राजा का मन खट्टा कर दिया होगा। और अब परीक्षा लेने के लिये यह प्रश्न पूछा गया होगा। उनकी बातचीत होते होते ही सूर्य्यास्त हो गया। दीपक जल गये। पण्डित ने सोचा, "राजाओ के काम महत्वपूर्ण होते हैं। न मालूम क्या काम हो? शीघ्र ही विदा होना चाहिये।" फिर आसन से उठ, राजा को नमस्कार कर बाहर जाते हुए सोचने लगा और निश्चय किया—'इनमें से एक का कहना है कि गुप्त बात मित्र को बता देनी चाहिये। एक का कहना है भाई को, एक का कहना है पुत्र को और एक का कहना है कि मा को बता देनी चाहिये। इन्होने ऐसा किया ही होगा। मै सोचता हूँ जैसा देखा है वैसी ही बात यह कह रहे हैं। अच्छा, आज ही इसका पता लगाऊँगा।"

वे चारो जने और दिन राजकुल से निकल राज-भवन के द्वार पर चावलो की एक ढेरी पर बैठ करणीय-कामो का विचार कर घर जाते थे। पण्डित ने सोचा —"मै ढेरी के नीचे छिपकर इनका रहस्य जान सकता हूँ।" उसने वह ढेरी उठवाई और उसके नीचे बिछावन बिछवा ढेरी के नीचे प्रवेश कर अपने आदमियो को इशारा किया—'तुम चारो पण्डितो के बातचीत कर चले जाने पर आकर मुझे ले जाना।" वे 'अच्छा' कह चले गये।

सेनक ने भी राजा से कहा—"महाराज! आप हमारा विश्वास नही करते थे। अब कैसा है?" उसने फोडने वालो के कहने का विश्वास कर, बिना विचारे ही भयभीत हो पूछा—"सेनक पण्डित! अब क्या करे?" "महाराज! बिना देर किये, बिना किसी को पता लगने दिये गृहपति-पुत्र को मरवा डालना उचित है।" "सेनक! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा मेरा हितचिन्तक नही है। तुम्ही अपने विश्वस्त आदमी ले, दरवाजे मे खडे हो, गृहपति-पुत्र के प्रात काल सेवा मे आते समय ही तलवार से सिर काट डालो।" यह कह उसने अपनी तलवार दी।

उन्होने 'अच्छा देव! न डरे। हम उसे मार डालेंगे' कह निकले और जाकर धान के ढेर पर यह कहते हुए बैठे कि हमने शत्रु को ले लिया। तब सेनक बोला

"भो ! गृहपति पुत्र पर कौन हाथ उठायेगा ?" दूसरो ने उसी को मार दिया—"आचार्य ! आप ही ।" तब सेनक ने पूछा—"तुमने कहा कि गुप्त बात अमुक-अमुक पर प्रकट करनी चाहिये, तुमने ऐसा किया वा देखा वा सुना ?" "आचार्य ! यह बात रहे । तुमने जो कहा कि गुप्त बात मित्र पर प्रकट करनी चाहिये, सो यह कैसे ?" "इससे क्या ?" "आचार्य ! बतायें ।" "यदि राजा इस रहस्य को जान जायेगा तो मेरी जान नही बचेगी ।" "आचार्य ! डरे नही । यहाँ आपका रहस्य प्रकट करने वाला कोई नही है । आचार्य ! बतायें ।" उसने नाखुन से ढेरी को कुरेदते हुए पूछा—"इसके नीचे गृहपति-पुत्र तो नही है ?" "आचार्य ! गृहपति-पुत्र अपने ऐश्वर्य्य के कारण ऐसी जगह नही घुसता । अब वह मस्त पडा होगा । आप कहें ।"

सेनक ने अपना रहस्य प्रकट करते हुए कहा—"इसी नगर मे अमुक नाम की वेश्या को जानते हो ?" 'आचार्य ! हा ।' 'अब वह दिखाई देती है ?' 'आचार्य ! नही ।' 'मैंने शालवन उद्यान मे उसके साथ पुरुष-कर्म किया । फिर उसके गहनो के लोभ से उसे मार डाला । फिर उसी के कपडे मे गठरी बाध, लाकर, अपने घर मे अमुक तल्ले पर, अमुक कमरे मे, अमुक खूटी पर लटका दिये । मै उन्हें व्यवहार मे लाने का साहस नही कर सकता । उसके पुराने इतिहास का ख्याल है । राज्य के विरुद्ध इतना बडा अपराध करके भी मैंने एक मित्र को बताया । उसने किसी से नही कहा । इसी कारण से मैंने कहा कि मित्र को रहस्य बता देना चाहिये ।' पण्डित ने अच्छी तरह से उसके 'रहस्य' को मन मे बिठा लिया ।

पुक्कुस ने भी अपना 'रहस्य' बताया—"मेरी जाघ मे कोढ है । मेरा छोटा भाई प्रात काल ही बिना किसी को पता लगने दिये, उसे धो, उस पर दवाई लगा उसे रुई से बाध देता है । राजा के मन में मेरे प्रति कोमल भाव है । वह मुझे बुला कर कि पुक्कुस आ, प्राय मेरी जाघ मे ही सिर रख सोता है । यदि जान जाये तो मार ही डाले । इस बात को मेरे छोटे भाई के अतिरिक्त कोई दूसरा जानने वाला नही । इसी से मैंने कहा कि रहस्य की बात भाई पर प्रकट करनी चाहिये ।"

काविन्द ने भी अपना रहस्य बताया—"कृष्ण-पक्ष के उपोसथ दिन नरदेव नामका यक्ष मेरे सिर आता है । उस समय मै पगले कुत्ते की तरह चिल्लाता हूँ । मैंने यह बात पुत्र को बताई । वह यह जानकर कि मेरे सिर यक्ष आ गया है, मुझे घर में बाध लिटा देता है और दरवाजा बन्द कर मेरी आवाज को ढकने के लिए

दरवाजे पर नाच-गाना कराता है। इसी कारण मैंने कहा कि रहस्य की बात पुत्र को बतानी चाहिये।"

तब तीनो ने देविन्द से पूछा। उसने अपना रहस्य खोला—"जिस समय मैं (राज की) मणि रगड कर चमका रहा था, तो मैंने शक्र की कुश-राज को दी हुई श्री-वाली मङ्गल-मणि चुरा ली और माता को दे दी। वह बिना किसी को पता लगने दिये राज-कुल जाने के समय मुझे वह मणि देती है। मैं उस मणि से 'श्री' को आगे कर राज-भवन में जाता हूँ। राजा तुमसे बातचीत न कर, पहले मुझसे बातचीत करता है। प्रति दिन आठ, सोलह, बत्तीस या चौसठ कार्पापण मुझे खर्च के लिये देता है। यदि राजा यह जान ले कि इसके पास 'मणि' छिपी रहती है तो मेरी जान न बचे। इसीलिए मैंने कहा कि रहस्य की बात माता को कह देनी चाहिये।"

बोधिसत्व पर सभी का रहस्य प्रकट हो गया। उन लोगो ने अपना पेट फाड कर अन्न को बाहर निकालने की तरह परस्पर एक दूसरे पर अपना अपना रहस्य प्रकट किया और यह कहते हुए आसन से उठकर चले गये कि प्रमाद न करके प्रात काल ही चले आना। गृहपति-पुत्र की हत्या करेंगे। उनके चले जाने पर लोग आये और ढेरी को उठा बोधिसत्व को ले गये। उसने स्नान कर, अलकृत हो, सुन्दर भोजन किया और यह सोच कि आज मेरी बहन उदुम्बरा देवी मुझे कोई सदेश भेजेगी दरवाजे पर एक आदमी को प्रतीक्षा करने के लिए बैठाया और कहा—"राजभवन से आने वाले को शीघ्र मुझ तक पहुँचाना।" यह कह शय्या पर जा लेटा।

उस समय शय्या पर लेटे राजा के मन मे भी महोपध पण्डित के गुण सोचने से शोक पैदा हो गया—"वह सात वर्ष तक मेरी सेवा मे रहा। उसने कभी कुछ मेरा बुरा नही किया। यदि पण्डित न होता तो 'देवता-प्रश्न' के समय मेरी जान ही न बचती। मैंने बहुत अनुचित काम किया कि वैरी-शत्रुओ का विश्वास कर उन्हें तलवार दी कि ऐसे अनूपम पण्डित को मार डालो। अब मैं कल उसे नही देख सकूगा।" उसके शरीर से पसीना बहने लगा। शोकाकुल होने के कारण उसके चित्त की शान्ति जाती रही। उदुम्बरा देवी उसके साथ उसी शय्या पर थी। उसे यह बात मालूम हुई तो उसने 'क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है अथवा देव के शोक का कोई दूसरा कारण है?' पूछते हुए यह गाथा कही—

किन्नु त्व विमनो राजसेट्ठ
दिपदिन्द वचन सुणोम नेत,

किं चिन्त्यमानो दुम्मनोसि
नून देव अपराधो अत्थिमय्हं ॥७०॥

[हे राज श्रेष्ठ ! तुम्हारा मन क्यो खराब हो गया है ? हे द्विपदेन्द्र ! तुम्हारा बोल क्यो सुनाई नही देता ? हे देव ! आप किस बात से चिन्तित है ? हे देव ! मेरा क्या अपराध है ? ॥७०॥]

तब राजा ने गाथा कही—

पञ्ञो वज्झो महोसधोति
आणत्तो मे वधाय भूरिपञ्ञो,
त चिन्तयन्तो दुम्मनोस्मि
नहि देवि अपराधो अत्थि तुय्हं ॥७१॥

[हे देवी ! तेरा तो कोई अपराध नही है । मैने प्रज्ञावान्, महान्-प्रज्ञ महोषध पण्डित का वध करने की आज्ञा दे दी है, यही सोचकर मै दुखी हूँ ॥७१॥]

यह बात सुनते ही उसके मन मे बोधिसत्व के बारे मे पर्वत जितना बडा शोक पैदा हुआ । उसने सोचा—"एक उपाय से राजा को आश्वासन दे, राजा के सो जाने पर अपने छोटे भाई को सदेसा भेजूगी ।" वह बोली—'महाराज ! आपने ही उस गृहपति-पुत्र को ऐश्वर्य्य दिया और आपने ही उसे सेनापति बनाया । क्या अब वह आपका ही शत्रु हो गया ? शत्रु छोटा नही ही होता । उसे (रास्ते से) हटाना ही चाहिये । आप चिन्ता न करे ।' उसका शोक हलका हो जाने से उसे नीद आ गई ।

देवी उठी । कमरे मे गई । जाकर पत्र लिखा—'महोषध ! चारो पण्डितो ने फूट डाल दी है । राजा ने क्रोधित हो कल दरवाजे पर तेरे वध की आज्ञा दे दी है । कल राज-कुल मत आना । आना तो नगर को हस्तगत करके तैयारी करके आना ।' फिर उसे लड्डू के अन्दर रख कर,लड्डू को धागेसे बाध, नये बरतनमे रख,सुगन्धित कर, मोहर लगा सेवक स्त्री को दिया—"यह लड्डू ले जाकर मेरे छोटे भाई को दे ।" उसने वैसा किया । यह प्रश्न नही पूछा जाना चाहिये कि वह रात को कैसे निकली ? राजा ने पहले ही देवी को वर दिया था । इसीलिए उसे किसी ने नही रोका । बोधिसत्व ने भेट ले विदा किया । उसने जाकर सूचना दी—"दे आई ।" उस समय देवी जाकर राजा के साथ लेट रही । बोधिसत्व ने भी लड्डू फोडा, चिट्ठी पढी, बात जानी और जो कुछ करना है उसका विचार कर शय्या पर लेट रहा ।

शेष चारो जन प्रात काल ही हाथ मे तलवार लिये दरवाजे पर आ खडे हुए। जब उन्हे पण्डित न दिखाई दिया तो दुखी हो राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"पण्डितो ! क्या गृहपति पुत्र मारा गया ?"

"देव ! दिखाई नही दिया।"

बोधिसत्व भी सूर्य्योदय होते ही नगर को अपने वश मे कर, जहाँ तहाँ सैनिक नियुक्त कर, लोगो को साथ लिये, रथ पर चढ बडी भीड के साथ राज-द्वार पर पहुँचे। राजा खिडकी खोले खडा देख रहा था। बोधिसत्व ने रथ से उतर उसे प्रणाम किया। राजा ने सोचा—'यदि यह मेरा शत्रु होता तो मुझे नमस्कार न करता।' उसे बुलवा कर राजा शय्या पर बैठा। बोधिसत्व भी जाकर एक ओर बैठा। चारो पण्डित भी वही बैठे। राजा ने सर्वथा अजानकार की भाति कहा—"तात ! कल के गये तुम इस समय आये। क्या मुझे इसी प्रकार छोड दोगे ?"

उसने यह गाथा कही—

अभिदोसगतो इदानि एसि
किं सुत्वा किमासकते मनो ते,
को ते किमवोच भूरिपञ्ञ
इङ्घ त वचन सुणोम ब्रूहि मेत ॥७२॥

[कल रात का गया हुआ अब आया है। क्या बात सुनने से तेरे मन मे क्या शका पैदा हो गई है ? हे महाप्रज्ञ ! तुझे किसने क्या कहा है ? हम तेरी बात सुनें। हमे बता ॥७२॥]

बोधिसत्व ने 'महाराज ! आपने चारो पण्डितो के कहने पर विश्वास कर मेरे वध की आज्ञा दी, इसी से नही आया' दोषारोपण करते हुए गाथा कही—

पञ्ञो बज्झो महोसधोति
यदि ते मन्तयित जनिन्द दोस
भरियाय रहोगतो असंसि
गुय्हं पातुकत सुत ममेत ॥७३॥

[क्योकि आपने रात के समय कहा कि प्रज्ञावान् महोषध पण्डित वध्य है और आपने अपनी भार्य्या पर एकान्त मे यह रहस्य प्रकट किया, वह मैंने सुन लिया ॥७३॥]

राजा ने यह सुनते ही क्रोध से देवी की ओर देखा—'इसी ने उसी समय सदेस भिजवाया होगा।' बोधिसत्व को पता लगा तो राजा को सम्बोधित करके कहा—'देव! क्या देवी पर क्रोध कर रहे हैं? मै भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब जानता हूँ। देव! मान लो कि तुम्हारा रहस्य तो मुझे देवी ने बता दिया हो, आचार्य सेनक तथा पुक्कुसादि का रहस्य मुझे किसने बता दिया? मै इनका भी रहस्य जानता ही हूँ।" उसने सेनक का रहस्य बताते हुए यह गाथा कही—

य सालवनस्मि सेनको
पापकम्म अकासि असब्भिरूप
सखिनोव रहो गतो असंसि
गुय्ह पातुकत सुत ममेत ॥७४॥

[सेनक ने शालवन मे जो असभ्य पाप-कर्म किया, वह इसने एकान्त मे अपने मित्र को बताया। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैने सुन लिया ॥७४॥]

राजा ने सेनक की ओर देखकर पूछा—"क्या यह सत्य है?" बोला—"देव! सत्य है।" राजा ने उसे कारागार मे डालने की आज्ञा दी। पण्डित ने पुक्कुस का रहस्य प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

पुक्कुस पुरिसस्स ते जनिन्द
उप्पन्नो रोगो अराजयुत्तो
भातुञ्च रहोगतो असंसि,
गुय्ह पातुकत सुत ममेत ॥७५॥

[देव! पुक्कुस के शरीर मे कुष्ट रोग उत्पन्न हुआ है। इसने एकान्त मे अपने भाई को बताया। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैने सुन लिया ॥७५॥]

राजा ने उसकी ओर भी देखकर पूछा—"क्या यह सत्य है?" देव! हाँ" कहने पर उसे भी कारागार मे भिजवा दिया। पण्डित ने काविन्द का भी रहस्य प्रकट करते हुए कहा—

आबाधोय असब्भिरूपो
काविन्दो नरदेवेन फुट्ठो,
पुतस्स रहोगतो असंसि
गुय्ह पातुकत सुत ममेत ॥७६॥

[यह काविन्द नरदेव नामक यक्ष की आवाधा से युक्त है। इसने एकान्त में पुत्र को वताया। उसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने।सुन लिया ॥७६॥]

राजा ने उससे भी पूछा— काविन्द ! क्या सत्य है ? 'हा सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार मे डलवाया। पण्डित ने देविन्द का रहस्य प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

अट्ट वक मणिरतन उळार
सक्को ते अददा पितामहस्स
देविन्दस्स गत तदज्ज हत्थ
मातुञ्च रहोगतो असंसि
गुय्ह पातुकत सुत ममेति ॥७७॥

[शक्र ने जो मणिरतन तुम्हारे पितामह को दिया था वह आज देविन्द के पास है। यह बात इसने एकान्त मे मा को वताई। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने सुन लिया ॥७७॥]

राजा ने उससे भी 'क्या यह सत्य है ?' पूछ और उसके 'सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार मे भेज दिया। इस प्रकार 'बोधिसत्व का वध करेंगे' कहने वाले सभी कारागार में चले गये। बोधिसत्व ने भी 'इसी कारण से मैं कहता था कि अपना रहस्य दूसरे पर नही प्रकट करना चाहिये। प्रकट करने वाले 'महाविनाश को प्राप्त हुए' कह आगे धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कही—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्म,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्न त्थो यथासुखं भणेय्य ॥७८॥

[देखो—गाथा स० ६९।]

न गुय्हमत्थ विवरेय्य
रक्खेय्य नं यथानिधि,
नहि पातुकतो साधु
गुय्हो अत्थो पजानता ॥७९॥

[रहस्य को प्रकट न करे। उसकी खजाने की तरह रक्षा करे। बुद्धिमान् आदमी द्वारा रहस्य प्रकट होना अच्छा नही ॥७६॥]

किया　गुय्हं　　न ससेय्य
अमित्तस्स　　च　　पण्डितो,
योचामिसेन　　　　सहीरो
हदयत्थेनो च यो　नरो ॥८०॥

[पण्डित आदमी को चाहिये कि न तो स्त्री पर रहस्य प्रकट करे, न शत्रु पर रहस्य प्रकट करे, न भौतिक चीजे देने वाले पर प्रकट करे और न ऐसे आदमी पर प्रकट करे जो मन की वात पता लगाना चाहता हो ॥८०॥]

गुय्हमत्थमसम्बुद्ध
सम्बोधयति यो नरो
मन्तभेदभया　तस्स
दासभूतो तितिक्खति ॥८१॥

[जो आदमी अज्ञात रहस्य की वात किसी को वता देता है, तब उसके प्रकट न हो जाने के भय से उस आदमी को दूसरे के दास की तरह (कष्ट) सहन करना पडता है ॥८१॥]

यावन्तो　　पुरिसस्सत्थं
गुय्हं जानन्ति मन्तिन,
तावन्तो　तस्स उब्बेगा
तस्मा गुय्हं न विस्सजे ॥८२॥

[जितने लोग पुरुष के गुह्य-अर्थ को जानते है, उतना ही उसका उद्वेग होता है। इसलिए रहस्य प्रकट नही करना चाहिये ॥८२॥]

विविच्च　भासेय्य　दिवा रहस्स
रत्तिं　गिरं　नातिवेल　पमुञ्चे
उपस्सुतिका　हि सुणन्ति मन्त
तस्मा मन्तो खिप्पमुपेति भेद ॥८३॥

[यह काविन्द नरदेव नामक यक्ष की आवाधा से युक्त है। इसने एकान्त में पुत्र को बताया। उसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने।सुन लिया ।।७६।।]

राजा ने उससे भी पूछा— काविन्द ! क्या सत्य है ? 'हा सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार मे डलवाया। पण्डित ने देविन्द का रहस्य प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

अट्ठ वक मणिरतन उळार
सक्को ते अददा पितामहस्स
देविन्दस्स गत तदज्ज हत्थ
मातुच्च रहोगतो असंसि
गुय्ह पातुकत सुत ममेति ।।७७।।

[शक्र ने जो मणिरतन तुम्हारे पितामह को दिया था वह आज देविन्द के पास है। यह वात इसने एकान्त मे मा को बताई। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने सुन लिया ।।७७।।]

राजा ने उससे भी 'क्या यह सत्य है ?' पूछ और उसके 'सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार मे भेज दिया। इस प्रकार 'बोधिसत्व का बध करेंगे' कहने वाले सभी कारागार मे चले गये। बोधिसत्व ने भी 'इसी कारण से मैं कहता था कि अपना रहस्य दूसरे पर नही प्रकट करना चाहिये। प्रकट करने वाले 'महाविनाश को प्राप्त हुए' कह आगे धर्मोपदेश देते हुए ये गाथाये कही—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्म,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्न रथो यथासुख भणेय्य ।।७८।।

[देखो—गाथा स० ६९।]

न गुय्हमत्थ विवरेय्य
रक्खेय्य न यथानिधि,
नहि पातुकतो साधु
गुय्हो अत्थो पजानता ।।७९।।

[रहस्य को प्रकट न करे। उसकी खजाने की तरह रक्षा करे। बुद्धिमान् आदमी द्वारा रहस्य प्रकट होना अच्छा नही ।।७९।।]

किया गुय्हं न ससेय्य
अमित्तस्स च पण्डितो,
योचामिसेन सहीरो
हृदयत्थेनो च यो नरो ।।८०।।

[पण्डित आदमी को चाहिये कि न तो स्त्री पर रहस्य प्रकट करे, न शत्रु पर रहस्य प्रकट करे, न भौतिक चीज़े देने वाले पर प्रकट करे और न ऐसे आदमी पर प्रकट करे जो मन की वात पता लगाना चाहता हो ।।८०।।]

गुय्हमत्थमसम्बुद्धं
सम्बोधयति यो नरो
मन्तभेदभया तस्स
दासभूतो तितिक्खति ।।८१।।

[जो आदमी अज्ञात रहस्य की बात किसी को बता देता है, तब उसके प्रकट न हो जाने के भय से उस आदमी को दूसरे के दास की तरह (कष्ट) सहन करना पडता है ।।८१।।]

यावन्तो पुरिसस्सत्थ
गुय्हं जानन्ति मन्तिन,
तावन्तो तस्स उब्बेगा
तस्मा गुय्हं न विस्सजे ।।८२।।

[जितने लोग पुरुष के गुह्य-अर्थ को जानते है, उतना ही उसका उद्वेग होता है। इसलिए रहस्य प्रकट नही करना चाहिये ।।८२।।]

विविच्च भासेय्य दिवा रहस्सं
रत्तिं गिरं नातिवेलं पमुञ्चे
उपस्सुतिका हि सुणन्ति मन्तं
तस्मा मन्तो खिप्पमुपेति भेदं ।।८३।।

[दिन मे रहस्य-मन्त्रणा करनी हो तो खुली जगह पर मन्त्रणा करे। रात मे असमय तक मुह न खोलता रहे। सुनने वाले मन्त्रणा सुन लेते है। इससे मन्त्रणा शीघ्र ही प्रकट हो जाती है ।।८३।।]

राजा ने बोधिसत्व की बात सुनी तो क्रोधित हो आज्ञा दी—"यह स्वय राज्य-वैरी होकर, पण्डित को मेरा वैरी बनाते है। जाओ इन्हे नगर से निकाल कर या तो सूली पर चढा दो या सिर काट डालो।" जब हाथ पीछे बाधकर उन्हे ले जाया जा रहा था और प्रत्येक चौराहे पर खडे करके सौ-सौ कोडे लगाये जा रहे थे तो बोधि-सत्व ने राजा से प्रार्थना की—"देव! यह आपके पुराने अमात्य है। इनका अपराध क्षमा कर दे।" राजा ने 'अच्छा' कह उन्हे बुलवाया और उसी का दास बनाकर सौप दिया। उसने उन्हे पूर्ववत् ही स्वतन्त्र कर दिया। तब राजा ने देश से निकल जाने की आज्ञा दी—"तो मेरी सीमा मे न बसे।" पण्डित ने 'देव! इन अन्धे मूर्खों का अपराध क्षमा करें' कह उन्हे क्षमा करवा उनके पूर्व-पद उन्हे दिलवाये।

राजा पण्डित से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—अपने शत्रुओ के प्रति भी इसकी ऐसी मैत्री है, दूसरो के प्रति कैसी होगी। उसके बाद से वे पण्डित दात-हीन सापो की तरह विनम्र हो गये और कुछ नही बोल सके।

पञ्च पण्डित प्रश्न समाप्त

इसके बाद से पण्डित ने राजा के अर्थ धर्मानुशासक का कार्य्य किया। उसने सोचा—"मै राजा के श्वेत-छत्र राज्य का ही विचार करता हूँ। मुझे अप्रमादी होना चाहिये।" उसने नगर में बडी चारदीवारी बनवाई। वैसे ही छोटी चारदीवारी के मीनार। अन्दर के मीनार। पानी की खाई। कीचड की खाई। सूखी खाई। इस प्रकार तीन खाइया बनवाई। नगर मे पुराने घरो की मरम्मत कराई। बडी-बडी पुष्करिणिया खुदवा कर उनमें पानी भरवाया। नगर मे सब कोठे धान्य से भरवाये। हिमवन्तप्रदेश से विश्वस्त तपस्वियो के हाथो जल-कवल के बीज मगवाये। पानी की नालिया साफ करा शहर के बाहर भी मरम्मत कराई। क्यो? भावी खतरे को रोकने के लिए। फिर उसने जहाँ तहाँ से आये हुए व्यापारियो से पूछा—'कहाँ से आये?' 'अमुक अमुक स्थान से।' 'तुम्हारे राजा को क्या प्रिय है?' 'अमुक वस्तु।' उसने उन उनका सम्मान करवा अपने एक सौ योधाओ को बुलवा कर कहा—"मित्रो! मेरी दी हुई भेंटो को लेकर एक सौ राजधानियो में जाओ और वहाँ अपनी रुचि के अनुसार उन उन राजाओ को भेटकर, उनकी सेवा मे रहते हुए उनके कार्यों

तथा उनकी मन्त्रणाओ की रिपोर्ट मुझे भेजो। मै तुम्हारे स्त्री-बच्चो का पोपण करूँगा।" उसने किसी को कुण्डल, किसी को स्वर्ण-पादुका, किसी को खड्ग और किसी को स्वर्ण मालायें दी जिनमे अक्षर खुदे थे। उसने सकल्प किया कि जब मेरा काम पडे तभी ये अक्षर प्रकट हो। उन्होने वहाँ वहाँ जा उन राजाओ को भेंट दे कर कहा—"आपकी सेवा मे रहने के लिये आये है।" पूछा—"कहाँ से?" आने की जगह छोड दूसरे दूसरे स्थानो के ही नाम बताये। जब उन्होने 'अच्छा' कह उन्हे स्वीकार कर लिया तो वे उनके विश्वस्त बन गये।

एकबल राष्ट्र मे सङ्खपाल नाम का राजा आयुध तैयार करवा रहा था और सेना एकत्र कर रहा था। उसके पास जिस आदमी को रखा था उसने सदेस भिजवाया—"यहाँ का यह समाचार है। कह नही सकता कि (यह राजा) क्या करेगा! किसी को भेजकर स्वय यथार्थ बात का पता लगवा ले।" बोधिसत्व ने तोते के बच्चे को बुलाकर कहा—"सौम्य! एकबल राष्ट्र मे पहुँच और यह पता लगा कि सङ्खपाल राजा यह करने जा रहा है, सारे जम्बुद्वीप मे विचर मेरे लिये समाचार ला।" उसने उसे शहद-खील खिलाई, शरबत पिलाये, हजार बार पके हुए तेल से परो को चुपडा, पूर्व की खिडकी मे खडे हो उडाया। उसने वहाँ पहुँच, उस आदमी से उस राजा का यथार्थ समाचार जाना और जम्बुद्वीप घूमते हुए कम्पिल राष्ट्र के उत्तर पञ्चाल नगर मे पहुँचा।

उस समय वहाँ चूळनी ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। केवट नाम का ब्राह्मण उसका अर्थधर्मानुशासक था—पण्डित, चतुर। वह प्रात काल उठा तो दीपक के प्रकाश में अलकृत शयनागार मे बहुत सा ऐश्वर्य्य देख सोचने लगा—'यह मेरा ऐश्वर्य्य कहाँ से आया? और कही से नही, चूळनी ब्रह्मदत्त के पास से ही। इस प्रकार के ऐश्वर्य्य के दायक राजा को सारे जम्बुद्वीप मे अग्र नरेश बनाना चाहिए। मै अग्र पुरोहित हो जाऊँगा।"

वह प्रात काल ही राजा के पास पहुँचा और पूछा—"सुखपूर्वक सोये?" फिर कहा—"देव! मन्त्रणा करनी है।" "आचार्य! कहें।" "देव! नगर के भीतर एकान्त नही हो सकता। उद्यान मे चले।" "आचार्य! अच्छा" कह राजा उसके साथ उद्यान गया। उसने सेना को बाहर छोडा, पहरा बिठाया, ब्राह्मण के साथ उद्यान मे घुसा और मङ्गल-शिला पर विराजमान हुआ। तोते के बच्चे ने यह क्रिया देखी तो सोचा—"यहाँ पण्डित को बताने योग्य कोई बात अवश्य होगी।

सुनूगा।" वह उद्यान मे घुसा और मङ्गल शाल वृक्ष के पत्तो मे छिप कर बैठा। राजा बोला—"आचार्य्य ! बोले।" "महाराज ! अपने कान इधर करे। चारो कानो मे ही मन्त्रणा होगी। यदि महाराज ! मेरे कथनानुसार चलें तो मै आपको सारे जम्बुद्वीप का राजा बना दू।"

'वह महान् तृष्णा के आधीन था। उसने उसकी बात सुनी तो प्रसन्न हुआ और बोला—"आचार्य्य ! कहे। आपका कहना करूँगा।" "देव ! हम सेना इकट्ठी कर पहले छोटे नगर को घेरेंगे। मै छोटे-द्वार से नगर मे जाकर राजा से कहूँगा—'महाराज, आपको युद्ध करने की आवश्यकता नही है। केवल हमारी अधीनता स्वीकार कर ले। आपका राज्य आपका ही रहेगा। युद्ध करेंगे तो हमारी सेना बहुत अधिक होने के कारण निश्चय से पराजित होगे। यदि मेरा कहना मानेंगे तो आपको साथी बना लेगे, नही तो युद्ध करके आपको जान से मार डाल, सेना ले, दूसरा नगर और फिर दूसरा नगर, इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप का राज्य ले लेगे।' इस तरह एक सौ राजाओ को अपने नगर ला, उद्यान मे पीने का मण्डप तनवा, वहाँ बैठे राजाओ को विष-मिश्रित सुरा पिला, उन सभी को जान से मार एक सौ राजधानियो का राज्य हस्तगत कर लेगे। इस प्रकार आप सारे जम्बुद्वीप के राजा बन जाएगे।'

वह बोला—"आचार्य्य ! अच्छा। ऐसा ही करेंगे।" "महाराज ! यह चार कानो द्वारा ही सुनी गई मन्त्रणा है। इसे कोई दूसरा नही जान सकता। इसलिए देरी न कर शीघ्र निकलें।" राजा ने प्रसन्न हो, 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

तोते के बच्चे ने यह बातचीत सुनी तो इसकी समाप्ति पर कोई लटकती हुई वस्तु उतारने की तरह केवट्ट के शरीर पर बीठ गिरा दी। जब वह 'यह क्या है' कहकर आश्चर्य से मुँह खोल ऊपर की ओर देखने लगा तो और उसके मुँह में गिरा दी। फिर 'किरि किरि' आवाज करता हुआ शाखा से उडा और कहता गया—'केवट्ट तू समझता है कि तेरी मन्त्रणा चार ही कानो तक सीमित है। अभी छ कानो तक पहुँच गई। आगे आठ कानो तक पहुँच सैकडो कानो तक जा पहुँचेगी।" लोग कहते रह गये कि पकडो पकडो। वह वायु-वेग से मिथिला पहुच, पण्डित के निवास-स्थान पर जा पहुँचा। उसकी यह मर्यादा थी कि यदि कही से लाई हुई सूचना केवल पण्डित को ही सुनानी होती थी तो उसी के कन्धे पर उतरता था, यदि अमरा देवी के भी सुनने योग्य होती, तो गोद मे उतरता था और यदि जनता के भी

सुनने योग्य होती तो जमीन पर उतरता। वह पण्डित के कधे पर आकर बैठा। इस सकेत से जनता समझ गई कि रहस्य की वात होगी। लोग चले गये। पण्डित उसे ऊपर के तल्ले पर ले गया और पूछा—"तात! तूने क्या देखा या सुना?"

उसने उत्तर दिया—"देव! मै सारे जम्वुद्वीप मे और किसी भी नरेश से भय नही देखता। किन्तु उत्तर-पञ्चाल-नगर मे चूळनी ब्रह्मदत्त का केवट्ट नाम का पुरोहित है। उसने राजा को उद्यान मे ले जाकर चार कानो की मन्त्रणा की। मै शाखाओ के वीच बैठ, उसके मुंह मे वीठ गिरा कर आया हूँ।" इस प्रकार जो कुछ उसने देखा-सुना था, वह सव पण्डित को कह सुनाया। राजा ने पूछा—"उनका निश्चय हो गया?" उत्तर दिया—"हाँ हो गया?"

पण्डित ने उसका योग्य सत्कार करवा, उसे सोने के पिंजरे मे कोमल बिछौने पर लिटवा सोचा, "केवट्ट नही जानता कि मै महोषध हूँ। अब मै उसकी योजना पूरी होने न दूगा।" उसने नगर मे से दरिद्र कुलो को लेकर उन्हे वाहर वसाया, और राष्ट्र जनपद तथा द्वार पर के ग्रामो से स्मृद्ध वडे वडे कुलो को मगवा कर नगर में बसाया। बहुत सा धन-धान्य इकट्ठा कर लिया।

चूळनी ब्रह्मदत्त ने भी केवट्ट के कहने के अनुसार सेना सहित जाकर एक नगर घेर लिया। केवट्ट ने जैसे ऊपर कहा गया है वहाँ जा उस राजा को समझा अपने साथ मिला लिया। फिर कहा—"देव! सेना एकत्र कर दूसरे राजा को घेरे।' इस प्रकार चूळनी ब्रह्मदत्त ने केवट्ट के उपदेशानुसार चल वेदेह राजाओ के अतिरिक्त शेष जम्बुद्वीप के सारे राजा अपने आधीन कर लिये। बोधिसत्व के नियुक्त पुरुष सूचनायें भेजते—"ब्रह्मदत्त ने आज इतने नगर ले लिये, आज इतने नगर ले लिये। अप्रमादी रहे।" वह भी उन्हे कहला भेजता—"मै यहाँ होश्यार हूँ। तुम वहा बिना घवराये अप्रमादी होकर रहो।"

सात वर्ष, सात महीने और सात दिन में ब्रह्मदत्त ने विदेह राज्य के अतिरिक्त शेष सारे जम्वुद्वीप पर अधिकार कर केवट्ट से कहा—"आचार्य! मिथिला में विदेह राज्य को ले।" "महाराज महोषध पण्डित के रहने के नगर को न ले सकेंगे। वह ऐसा ही प्रज्ञावान् तथा उपाय कुशल है।" इस प्रकार उसने चन्द्र मण्डल पर आक्रमण करते हुए की तरह उसके गुण कहे। वह स्वय भी उपाय-कुशल था। इसलिये उसने राजा को ढग से ही समझा दिया, "देव! मिथिला राज्य छोटा-सा है। हमारे लिये सारे जम्बुद्वीप का राज्य बहुत है। हमें इस एक राज्य से क्या?"

शेष राजा भी कहते थे—"हम मिथिला राज्य लेकर ही जय-पान पियेंगे।" केवट्ट ने उन्हे भी मना किया—"विदेह-राज्य लेकर क्या करेंगे। वह राज्य हमारा ही है। रुको।' इस प्रकार उसने उन्हे भी ढग से ही समझाया। उसकी बात सुन वे रुक गये। बोधिसत्व के आदमियो ने सूचना भिजवाई —'सौ राजाओ के साथ ब्रह्मदत्त मिथिला आता आता ही रुक कर वापिस अपने नगर चला गया।' उसने भी कहला भेजा—"इसके आगे वह क्या क्या करता है इसकी खबर रखो।"

ब्रह्मदत्त ने भी केवट्ट के साथ मन्त्रणा की कि अब क्या करे? उत्तर दिया—"हम विजय-पान पियेंगे।" उसने सेवको को आज्ञा दी—"उद्यान को अलकृत कर हजार चाटियो मे शराब रखो। नाना प्रकार के मत्स्य-मास आदि भी लाओ।" यह समाचार भी पण्डित के आदमियो ने उस तक पहुँचा दिया। वे यह नही जानते थे कि विप मिला कर मार डालने की नीयत है। किन्तु तोते के बच्चे से सुने रहने के कारण बोधिसत्व को पता था। उसने अपने आदमियो को कहलाया कि सुरा-पान के दिन का ठीक ठीक पता लगा कर सूचित करो। उन्होने वैसा ही किया। यह सुन पण्डित ने सोचा—"मेरे जैसे पण्डित के रहते इतने राजाओ का मरना उचित नही है। मै उनका आधार बनूँगा।" उसने अपने साथ ही जनमे हजार योधाओ को बुलवाया और उन्हे यह सिखा-पढाकर भेजा—"मित्रो! चूळनी ब्रह्मदत्त उद्यान अलकृत करा, सौ राजाओ के साथ सुरा पीना चाहता है। तुम वहाँ पहुँच कर जब राजाओ के आसन बिछ गये हो और कोई भी न बैठा हो तो यह कहकर कि चूळनी ब्रह्मदत्त राजा के आसन के बाद का आसन हमारे राजा का आसन है उस पर अधिकार कर लेना। यदि उसके आदमी पूछे कि तुम किसके आदमी हो तो उत्तर देना—"विदेह-राज के।" वे यह कहकर कि सात दिन, सात महीने और सात वर्ष तक तुम्हारे साथ युद्ध करके राज्य लेते समय एक दिन भी यह नही देखा कि यह कौन सा राज्य है, जाओ अन्तिम आसन ले लो, तुम्हारे साथ झगडा करेंगे। तुम झगडा वढा देना और कहना कि ब्रह्मदत्त को छोड और कोई भी हमारे राजा से वढकर नही है। और फिर कहना—'हमारे राजा के लिये आसन तक भी नही है। अब हम न सुरा पीने देगें और न मत्स्य-माँस खाने देंगे।" इस प्रकार हल्ला करते हुए, शोर मचाते हुए उन्हें आवाज से ही डरा, एक बडा से डण्डा ले सभी चाटिया फोड, मत्स्य-मास को बखेर खाने योग्य न रहने देना। फिर वेग से सेना मे घुस, देव-नगर में घुसे असुरो की तरह हलचल मचा कहना—'हम मिथिला नगर के महोपध पण्डित के आदमी

है। यदि पकड सको तो पकडो।' इस प्रकार अपने चल देने की सूचना देकर यहाँ चले आना।"

उन्होने 'अच्छा' कह उसका कहना स्वीकार किया और पाच आयुधो से सज्जित हो निकले और वहाँ पहुँचे। वहाँ नन्दनवन की तरह अलकृत उद्यान में प्रवेश कर, श्वेत-छत्र के नीचे लगे सौ राज-सिहासनो का ऐश्वर्य्य देख, जैसे जैसे बोधिसत्व ने बताया था उसी प्रकार सब कुछ कर, जनता मे खलबली मचा, मिथिला की ओर लौटे।

राज-पुरुषो ने भी उन राजाओ को वह समाचार दिया। ब्रह्मदत्त को क्रोध आया—इस प्रकार के विष-योग को बिगाड दिया। राजा भी क्रोधित हुए—हमे विजय-पान नही करने दिया। सेना भी क्रोधित हुई—हमे मुफ्त मे शराब नही पीने दी। ब्रह्मदत्त ने राजाओ को बुलाकर कहा—"आओ मिथिला चलकर, विदेह राज का सिर तलवार से काट, पैरो मे रोद कर, बैठ कर विजय-पान करेगे। सेना तैयार कराओ।" फिर एकान्त मे केवट्ट को भी वह वृत्तान्त सुनाकर कहा—"हम इस प्रकार की मन्त्रणा मे बाधा डालने वाले शत्रु को पकडेगे। सौ राजाओ की अट्ठारह अक्षौहिणी सेना के साथ उस नगर चलेंगे। आचार्य! आये।"

ब्राह्मण ने अपने पाण्डित्य के कारण सोचा—"महोपध पण्डित को नही जीत सकते। हमे भी लज्जित होना पडेगा। राजा को रोकूँगा।" वह बोला—"महाराज! यह विदेह राजा की शक्ति नही है। यह महोपध पण्डित का सविधान है। उसका बडा प्रताप है। वह मिथिला की रक्षा करता है। जिस प्रकार सिंह द्वारा रक्षित गुफा नही ली जा सकती, उसी प्रकार हम उसे भी नही ले सकते। यह हमारे लिये केवल लज्जा का ही कारण होगा। वहाँ न जाये।" राजा क्षत्रिय-मान तथा ऐश्वर्य्य-मद से मत्त था। बोला—"वह क्या करेगा?" और सौ राजाओ तथा उनकी अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ निकल पडा।

केवट्ट ने भी जब देखा कि वह अपनी बात नही मनवा सकता तो राजा का विरोध मोल लेना अनुचित मान वह भी साथ हो लिया। उन योधाओ ने भी एक ही रात में मिथिला वापिस आ अपनी करनी पण्डित को सुनाई। पहले भेजे गये नियुक्त पुरुषो ने भी समाचार भेजा—"चूळनी ब्रह्मदत्त विदेह राजा को पकडने के लिये सौ राजाओ के साथ चला आ रहा है। पण्डित अप्रमादी हो।" नियमपूर्वक यह भी सूचना मिलती ही थी कि आज अमुक स्थान पर और आज अमुक नगर

पहुँच रहे है।" यह सुन बोधिसत्व और भी अप्रमादी हो गया। विदेह राजा के कानो तक भी यह बात पहुच गई कि ब्रह्मदत्त यह नगर लेने आ रहा है।

तब ब्रह्मदत्त ने रात्रि के पहले पहर मे ही लाखो मशालो के साथ आकर नगर घेर लिया। फिर उसे हाथियो की चारदीवारी से, रथो की चारदीवारी से, घोडो की चारदीवारी से घेर जहाँ तहाँ लगातार सेना खडी की। आदमी खडे आवाजे लगा रहे थे, ताली बजा रहे थे, हल्ला कर रहे थे, नाच रहे थे और गर्ज रहे थे। प्रदीपो तथा अलकारो की चमक से सात योजन की सारी की सारी मिथिला प्रकाशित हो गई। हाथी, घोडे, रथ, पैदल और बाजो आदि की आवाज से पृथ्वी फटती सी जान पडी। चारो पण्डितो ने हलचल की आवाज सुनी तो अजानकार होने से राजा के पास पहुँचे और बोले—"महाराज! बडा हल्ला-गुल्ला है। पता नही क्या है? पता लगाना चाहिये।" यह सुन राजा ने 'ब्रह्मदत्त आ पहुँचा होगा' सोच खिडकी खोली तो उसके आने की बात पक्की निकली। वह उठा कि अब हमारी जान नही बचेगी। वह हम सभी को जान से मार डायेगा। वह उनके साथ बैठकर बातचीत करने लगा।

किन्तु जब बोधिसत्व ने उसके आने की बात सुनी तो सिह के समान बिना भयभीत हुए सारे नगर के सरक्षण की व्यवस्था की। फिर राजा को आश्वस्त करने के लिये राज-भवन पर चढ, प्रणाम कर एक ओर खडा हुआ। राजा ने उसे देखा तो वह आश्वस्त हुआ। उसने सोचा, मेरे पुत्र महोषध पण्डित के अतिरिक्त दूसरा कोई भी मुझे इस दु ख से नही छुडा सकता। उसके साथ बात-चीत करते हुए राजा ने कहा—

पञ्चालो सब्बसेनाय ब्रह्मदत्तो समागतो
साय पञ्चालिया सेना अप्पमेय्या महोसध ॥८४॥
पिट्ठिमती पत्ति मती सब्बसगामकोविदा,
ओहारिणी सद्दवती भेरिसखप्पबोधना ॥८५॥
लोहविज्जालकाराभा धजिनी वामरोहिणी,
सिप्पियेहि सुसम्पन्ना सूरेहि सुप्पतिट्ठिता ॥८६॥
दसेत्थ पण्डिता आहु भूरिपञ्जा रहोगमा,
माता एकादसी रञ्जो पञ्चालिय पसासति ॥८७॥

अयेत्येकसत खत्या अनुयुत्ता यस स्सिनो,
अच्छिन्नरट्ठा व्यथिता पञ्चालिन वसगता ॥८८॥
य वदा तक्करा रञ्ञो अकामा पिय भाणिनो,
पञ्चालमनुयायन्ति अकामा वसिनो गता ॥८९॥
ताय सेनाय मिथिला तिसन्धि परिवारिता,
राजवानी विदेहान समन्ता परिखञ्जति ॥९०॥
उद्ध तारक जाताव समन्ता परिवारिता,
महोसव विजानाहि कथ मोक्खो भविस्सति ॥९१॥

[पञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त सभी सेनाओ के साथ आया है। हे महोपध! यह पञ्चालीय सेना असीम है ॥८४॥ पीठ पर भार ढोने वाले, पैदल चलने वाले, सभी योधा है। वे चुपके से दूसरो का सिर काट लेने वाले है, (दस प्रकार के) झण्डो से युक्त है और भेरी-शङ्ख आदि की आवाज सुन जाग्रत हो जाते है ॥८५॥ युद्ध-विद्या तथा अलकारो से प्रकाशित है, ध्वजाये है, हाथी घोडे है, शिल्पियो से युक्त है तथा शूरवीरो से प्रतिष्ठित है ॥८६॥ कहते है कि इस सेना मे दस प्रज्ञावान् पण्डित है जो एकान्त मे मन्त्रणा करते है और राजा की माता ग्यारहवी है जो पञ्चाली सेना का अनुशासन करती है ॥८७॥ यहाँ एक सौ अनुयुक्त, यशस्वी, क्षत्रिय है, जिनके राष्ट्र छीन लिये गये है, जो व्यथित है और जो पञ्चाली के वशीभूत है ॥८८॥ जो कहे वह राजा के लिये करने वाले, अनिच्छापूर्वक प्रियभाषी बने हुए वे पञ्चाल के वशीभूत होने के कारण उसका अनुगमन करते है ॥८९॥ उन सेनाओ द्वारा मिथिला-नगरी तीन सन्धियो में घेर ली गई है। ऐसा लगता है कि विदेह की राजधानी चारो ओर से खनी जा रही है ॥९०॥ आकाश के तारो के समान इसने चारो ओर से घेर लिया है। हे महोषध! अब तू जान कि मोक्ष किस प्रकार होगा ॥९१॥]

राजा की यह बात सुनी तो बोधिसत्व ने सोचा—'यह राजा मरने से अत्यन्त भयभीत है। रोगी को वैद्य को शरण चाहिये, भूखे को भोजन चाहिये, प्यासे को पानी चाहिये, इसका भी मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा शरण-दाता नही। इसकी घबराहट दूर करता हू।' तब बोधिसत्व ने मनोशिलातल पर बैठे हुए सिंह की तरह गर्जना की—"महाराज! डरें नही। राज्य सुख अनुभव करें। मैं इस अट्ठारह अक्षौहिणी सेना को डण्डे से कौओ को उडाने की तरह अथवा कमान से बन्दरो को भगाने की

तरह ऐसा भगाऊँगा कि इन्हें अपनी धोती तक की सुध न रहेगी। उसने यह गाथा कही—

पादे देव पसारेहि भुञ्जकामे रमस्सु च,
हित्वा पञ्चालिय सेन ब्रह्मदत्तो पलायति ॥९२॥

[देव ! पाँव पसार कर सोयें। काम भोगो मे रमण करें। ब्रह्मदत्त पञ्चालिय सना को छोडकर भाग जायेगा ॥९२॥]

पण्डित ने राजा को आश्वस्त कर, निकल कर नगर मे उत्सव-भेरी बजवाई। उसने नागरिको को भी आश्वस्त किया—"तुम चिन्ता न करो। सप्ताह भर तक माला-गन्ध-विलेपन तथा पान-भोजन आदि तैयार कर उत्सव-क्रीडा करो। वहाँ लोग इच्छानुसार पान करे, नाचे, बजायें, चिल्लाये तथा ताली बजाये। इसका खर्च मेरे सिर रहे। मै महोपध पण्डित हूँ। मेरा प्रभाव देखो।" लोगो ने वैसा ही किया। गाने-बजाने का शब्द नगर के वाहर के लोग मुनते थे। छोटे द्वार से लोग अन्दर आते थे। शत्रु को छोड औरो को देखदेखकर आने देते। इससे आना-जाना बन्द नही होता था। जो नगर म आते वे लोगो को उत्सव मनाते देखते।

चूळनी ब्रह्मदत्त ने भी नगर में हल्ला सुन अमात्यो से कहा—"हम अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ नगर घेरे पडे हैं। नगर निवासियो को डर, भय कुछ नही है। वे आनन्द मना रहे हैं। वे प्रसन्नता के मारे तालियाँ बजा रहे हैं, आवाजे लगा रहे हैं, शोर मिचा रहे हैं और गा रहे है। यह क्या है?" उसके नियुक्त गुप्तचरो ने उसे झूठी सूचना दी—"देव ! हम एक काम से छोटे दरवाजे से नगर में गये। वहाँ हमने लोगो को उत्सव मनाते देख पूछा—"भो ! सारे जम्बुद्वीप के राजा तुम्हारा नगर घेरे खडे हैं। तुम अति प्रमादी हो। यह क्या है?" उनका उत्तर था—"बचपन मे हमारे राजा की एक इच्छा थी। सारे जम्बुद्वीप के राजाओ के नगर को घेर लेने पर उत्सव करेंगे। आज उसकी इच्छा पूरी हो गई है। इसलिये उत्सव-भेरी बजवा स्वय ऊँचे तल्ले पर बैठ सुरा पान करता है।"

राजा ने उनकी बात सुनी तो उसे क्रोध आया। उसने अपनी सेनाके एक अङ्ग को आज्ञा दी—"नगर पर जहाँ तहाँ से आक्रमण करके, खाई तोडकर, चारदीवारी लाँघ, द्वार की अट्टारियाँ उजाडते हुए, नगर मे घुस, गाडी मे मिट्टी के वरतन लाद कर लाने की तरह लोगो के सिर लाओ और विदेह राजा का सिर लाओ।" यह सुन शूर योधा नाना प्रकार के आयुध लेकर द्वार के पास पहुँचे। पण्डित के आदमियो

ने उवला कीचड और पत्थर आदि फेंके। वे घवराकर लौट आये।'चारदीवारी तोडने के लिये खाई लाघ जाने पर भी अटारियो के बीच मे खडे-खडे वाण, शस्ति, तोमर आदि से महा विनाश को प्राप्त होते। पण्डित के योद्धा ब्रह्मदत्त के योधाओ को हाथो की नकले वनाकर नाना प्रकार से गालिया देते और डराते। वे शराव के वरतन और मत्स मास की सीखे आगे वढाते—"तुम्हे नही मिलता होगा। थोडा पीओ, खाओ।" फिर अपने ही खा जाते। वे चारदीवारी के ऊपर घूमते। दूसरे कुछ न कर सकते। तव वे चूळनी ब्रह्मदत्त के पास गये और वोले—"देव ! ऋद्धिमानो के अतिरिक्त और कोई पार नही जा सकता।"

चार-पाँच दिन रहकर भी राजा ने जव देखा कि जो (राज्य) लिया जाना चाहिये, वह नही लिया जा सकता तो आचार्य्य से कहा—"हम नगर नही ले सकते। एक भी वहाँ तक नही पहुच सकता। क्या करना चाहिये ?" "महाराज ! चिन्ता न करे। पानी नगर से वाहर होता है। पानी का क्षय होने पर (राज्य) लेंगे। आदमी जव पानी के कष्ट से पीडित होगे तो द्वार खोलेंगे।" उसने स्वीकार किया—"हाँ यह उपाय है।" तव से नगर मे पानी न जाने देते। पण्डित के नियुक्त आदमियो नें यह वात पत्र मे लिख उसे (सर) कण्डे में वाघ खवर भेजी। उसने भी पहले ही आज्ञा दे रखी थी—"जो जो सरकण्डे मे कागज देखे, वह वह ले आये।' एक पुरुष ने उसे देख पण्डित को दिखाया।

उसने यह समाचार सुना तो वोला—"वे मेरा महोपध पण्डित होना नही जानते।" तव उसने साठ हाथ का वाँस बीच में से फाडकर साफ कराया और फिर एक साथ जोड ऊपर से चमडे से वधवा दिया। उसके ऊपर मिट्टी पुतवा दी। फिर हिमालय से ऋद्धि-प्राप्त तपस्वियो द्वारा आये गये कर्दम-कुमुद बीजो को पुष्करिणी के तट पर गारे में वोवा दिया और ऊपर वाँस रखकर पानी से भरवा दिया। एक रात में ही वढकर फूल वाँस से वाहर रतन-मात्र ऊँचा हो निकला। उसने उसे तुडवाकर अपने आदमियो को दिया—"इसे ब्रह्मदत्त को दो।" उन्होने कुमुद की नाल को लपेटा और यह कहकर फेक दिया कि ब्रह्मदत्त के पाद-सेवक भूख से न मरें। यह लें। कँवल को धारण करे और नाल को पेट भर खायें। वह पण्डित के द्वारा नियुक्त पुरुषो मे से ही एक के सेवक के हाथ लगा। वह उसे राजा के पास ले गया—"देव ! इस पुष्प की नाल देखे। हमने इससे पहले इतनी वडी नाल नही

तरह ऐसा भगाऊँगा कि इन्हें अपनी धोती तक की सुध न रहेगी। उसने यह गाथा कही—

पावे देव पसारेहि भुञ्जकामे रमस्सु च,
हित्वा पञ्चालिय सेन ब्रह्मदत्तो पलायति ॥९२॥

[देव! पाँव पसार कर सोये। काम भोगो मे रमण करे। ब्रह्मदत्त पञ्चालिय सना को छोडकर भाग जायेगा ॥९२॥]

पण्डित ने राजा को आश्वस्त कर, निकल कर नगर मे उत्सव-भेरी बजवाई। उसने नागरिको को भी आश्वस्त किया—"तुम चिन्ता न करो। सप्ताह भर तक माला-गन्ध-विलेपन तथा पान-भोजन आदि तैयार कर उत्सव-क्रीडा करो। वहाँ लोग इच्छानुसार पान करे, नाचे, बजाये, चिल्लाये तथा ताली बजाये। इसका खर्च मेरे सिर रहे। मै महोषध पण्डित हूँ। मेरा प्रभाव देखो।" लोगो ने वैसा ही किया। गाने-बजाने का शब्द नगर के बाहर के लोग सुनते थे। छोटे द्वार से लोग अन्दर आते थे। शत्रु को छोड औरो को देखदेखकर आने देते। इससे आना-जाना बन्द नही होता था। जो नगर म आते वे लोगो को उत्सव मनाते देखते।

चूळनी ब्रह्मदत्त ने भी नगर में हल्ला सुन अमात्यो से कहा—"हम अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ नगर घेरे पडे है। नगर निवासियो को डर, भय कुछ नही है। वे आनन्द मना रहे है। वे प्रसन्नता के मारे तालियाँ बजा रहे है, आवाजे लगा रहे है, शोर मिचा रहे है और गा रहे है। यह क्या है?" उसके नियुक्त गुप्तचरो ने उसे झूठी सूचना दी—"देव! हम एक काम से छोटे दरवाजे से नगर मे गये। वहाँ हमने लोगो को उत्सव मनाते देख पूछा—"भो! सारे जम्बुद्वीप के राजा तुम्हारा नगर घेरे खडे है। तुम अति प्रमादी हो। यह क्या है?" उनका उत्तर था—"बचपन मे हमारे राजा की एक इच्छा थी। सारे जम्बुद्वीप के राजाओ के नगर को घेर लेने पर उत्सव करेगे। आज उसकी इच्छा पूरी हो गई है। इसलिये उत्सव-भेरी बजवा स्वय ऊँचे तल्ले पर बैठ सुरा पान करता है।"

राजा ने उनकी बात सुनी तो उसे क्रोध आया। उसने अपनी सेनाके एक अङ्ग को आज्ञा दी—"नगर पर जहाँ तहाँ से आक्रमण करके, खाई तोडकर, चारदीवारी लाँघ, द्वार की अट्टारियाँ उजाडते हुए, नगर मे घुस, गाडी मे मिट्टी के बरतन लाद कर लाने की तरह लोगो के सिर लाओ और विदेह राजा का सिर लाओ।" यह सुन शूर योधा नाना प्रकार के आयुध लेकर द्वार के पास पहुँचे। पण्डित के आदमियो

ने उवला कीचड और पत्थर आदि फेंके। वे घवराकर लौट आये।'चारदीवारी तोडने के लिये खाई लाघ जाने पर भी अटारियो के बीच मे खडे-खडे वाण, शस्त्रि, तोमर आदि से महा विनाश को प्राप्त होते। पण्डित के योद्धा ब्रह्मदत्त के योधाओ को हाथो की नकले वनाकर नाना प्रकार से गालिया देते और डराते। वे शराव के वरतन और मत्स मास की सीखें आगे वढाते—"तुम्हें नही मिलता होगा। थोडा पीओ, खाओ।" फिर अपने ही खा जाते। वे चारदीवारी के ऊपर घूमते। दूसरे कुछ न कर सकते। तव वे चूळनी ब्रह्मदत्त के पास गये और वोले—"देव! ऋद्धिमानो के अतिरिक्त और कोई पार नही जा सकता।"

चार-पाँच दिन रहकर भी राजा ने जव देखा कि जो (राज्य) लिया जाना चाहिये, वह नही लिया जा सकता तो आचार्य्य से कहा—"हम नगर नही ले सकते। एक भी वहाँ तक नही पहुच सकता। क्या करना चाहिये?" "महाराज! चिन्ता न करें। पानी नगर से वाहर होता है। पानी का क्षय होने पर (राज्य) लेंगे। आदमी जव पानी के कष्ट से पीडित होगे तो द्वार खोलेंगे।" उसने स्वीकार किया—"हाँ यह उपाय है।" तव से नगर में पानी न जाने देते। पण्डित के नियुक्त आदमियो ने यह वात पत्र मे लिख उसे (सर) कण्डे मे वाघ खवर भेजी। उसने भी पहले ही आज्ञा दे रखी थी—"जो जो सरकण्डे में कागज देखे, वह वह ले आये।' एक पुरुप ने उसे देख पण्डित को दिखाया।

उसने यह समाचार सुना तो बोला—"वे मेरा महोपध पण्डित होना नही जानते।" तव उसने साठ हाथ का वाँस बीच मे से फाडकर साफ कराया और फिर एक साथ जोड ऊपर से चमडे से बघवा दिया। उसके ऊपर मिट्टी पुतवा दी। फिर हिमालय से ऋद्धि-प्राप्त तपस्वियो द्वारा आये गये कर्दम-कुमुद वीजो को पुष्करिणी के तट पर गारे में बोवा दिया और ऊपर वाँस रखकर पानी से भरवा दिया। एक रात में ही वढकर फूल बाँस से वाहर रतन-मात्र ऊँचा हो निकला। उसने उसे तुडवाकर अपने आदमियो को दिया—"इसे ब्रह्मदत्त को दो।" उन्होंने कुमुद की नाल को लपेटा और यह कहकर फेंक दिया कि ब्रह्मदत्त के पाद-सेवक भूख से न मरें। यह लें। कँवल को धारण करें और नाल को पेट भर खाये। वह पण्डित के द्वारा नियुक्त पुरुपो मे से ही एक के सेवक के हाथ लगा। वह उसे राजा के पास ले गया—"देव! इस पुष्प की नाल देखें। हमने इससे पहले इतनी बडी नाल नही

देखी।" राजा बोला—"इसे मापो।" पण्डित के आदमियो ने साठ हाथ की नाल को अस्सी हाथ की नाल करके नापा। तव राजा ने पूछा—"यह कहाँ पैदा हुआ?" एक ने झूठा उत्तर दिया—"देव! एक दिन प्यास लगने पर सुरा पीने के लिये छोटे-द्वार से मै नगर मे जा घुसा। वहाँ मैने नागरिको के खेलने की वडी-वडी पुष्करिणिया देखी। जनता नौका मे वैठकर फूल तोडती है। यह तो किनारे पर उगा हुआ फूल है। गहराई मे उगा हुआ फूल तो सौ हाथ का होगा।"

यह सुन राजा ने केवट्ट से कहा—"आचार्य्य! इस नगर को पानी का त्रास देकर आधीन नही किया जा सकता। अपनी मन्त्रणा को वापिस ले।" "देव! तो धान्य का अभाव करके आधीन करेंगे। धान्य नगर से वाहर होता है।" "आचार्य्य! ऐसा हो" पण्डित को पूर्वोक्त प्रकार से ही जव जानकारी हुई तो कहा—"केवट्ट ब्राह्मण मेरे पण्डित्य को नही जानता!" उसने चारदीवारी के ऊपर गारा विछवा धान रोप दिये। बोधिसत्वो के अभिप्राय पूरे होते है। धान एक ही रात में उगकर चारदीवारी के ऊपर दिखाई देने लग गये। यह भी देख ब्रह्मदत्त ने पूछा—"अरे! यह क्या चारदीवारी के ऊपर हरा हरा दिखाई दे रहा है?" पण्डित के नियुक्त आदमियो ने राजा के मुँह से वात छीन लेने की तरह तुरन्त उत्तर दिया—"देव! गृहपति-पुत्र महोषध ने भावी भय का ख्याल कर राष्ट्र से धान्य इकट्ठा करवा कोठे भरवा लिये हैं। शेष धान्य चारदीवारी के पास डलवा दिया है। धूप मे सूखते हुए धानो पर वर्षा पडने से वे वही उग आये। मै भी एक दिन किसी काम से छोटे-द्वार से घुसा। चारदीवारी के पास पडे धान से धान की मुट्ठी ले, उसे गली मे छोड दिया। लोग मजाक करने लगे—"मालूम होता है भूखा है। धान को पल्ले मे वाध, घर ले जाकर पका खा।"

राजा ने यह वात सुनी तो केवट्ट से कहा—"आचार्य्य! धान्य का अभाव करके भी इस नगर को आधीन नही किया जा सकता। यह भी ठीक उपाय नही है।" "तो देव! लकडी का अभाव होने पर आधीन करेंगे। लकडी नगर से वाहर ही ` ^ है।" ""आचार्य्य! ऐसा ही हो।" पण्डित ने पूर्वोक्त-विधि से ही इस वात त। मालूम कर जैसे चारदीवारी के ऊपर से धान दिखाई देता था, उतना ही लकडी का ढेर लगवा दिया। आदमी ब्रह्मदत्त के आदमियो का मजाक उडाते—भूख लगी है, यवागु पका कर पियो।" वे बडी बडी लकडिया फेंकते। राजा ने भी प्रश्न किया—"चारदीवारी के ऊपर से लकडिया दिखाई देती

है। यह क्या है?" "गृहपति-पुत्र ने भावी भय देखकर लकडिया मगवाई है और उन्हें घरो के पिछवाडे रखवा दिया है। अतिरिक्त लकडिया चारदीवारी के पास रखवाई है।" राजा नियुक्त आदमियो के ही मत का हो गया। वह केवट्ट से बोला—"आचार्य्य! लकडी का अभाव पैदा करके भी हम इस नगर को आधीन नही कर सकते। इस उपाय को भी वापिस लो।"

"महाराज! चिन्ता न करे। दूसरा उपाय है।"

"आचार्य्य! यह कौन-सा उपाय है। मुझे तुम्हारे उपायो का अन्त नही दिखाई देता। हम विदेह-राज को अपने आधीन नही कर सकते। अपने नगर को वापिस चले।"

"यह हमारे लिये लज्जा की बात होगी कि चूळनी-ब्रह्मदत्त सौ राजाओ को साथ लेकर भी विदेह-राज को आधीन नही कर सका। केवल महोपध ही पण्डित नही है। मैं भी पण्डित हूँ। हम एक 'तिकडम' करेंगे।"

"आचार्य्य! क्या तिकडम करेंगे।"

"हम धर्म-युद्ध करेंगे।"

"यह धर्म-युद्ध क्या है?"

"महाराज! सेना युद्ध नही करेगी। दोनो राजाओ के दोनो पण्डित एक जगह मिलेंगे। उनमें से जो नमस्कार करेगा, उसकी हार मानी जायगी। महोपध यह मन्त्र नही जानता है। मै बडा हूँ। वह छोटा है। वह मुझे देखकर नमस्कार करेगा। तब विदेह हार जायेगा। हम विदेह-राज को हराकर अपने घर जायेंगे। इस तरह से हम लज्जित नही होगे। यह धर्म-युद्ध है।"

पण्डित को जब इस बात का भी पता लगा तो उसने सोचा—"मेरा नाम पण्डित नही, यदि मै केवट्ट से हार जाऊ।"

ब्रह्मदत्त ने भी 'आचार्य्य! यह उपाय सुन्दर है' कह एक पत्र लिखवा छोटे-द्वार से विदेह-राज के पास भेजा—'कल धर्म-युद्ध होगा। दोनो पण्डितो की धर्मानुसार न्याय पूर्वक जय-पराजय होगी। जो धर्म-युद्ध नही करेगा वह भी पराजित ही समझा जायेगा।" यह सुन विदेह-राज ने पण्डित को बुलवा वह बात कही। पण्डित का उत्तर था—"देव! अच्छा है। कहला भेजे कि कल प्रात काल ही पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार रहेगा, धर्म-युद्ध-मण्डल मे आये।" यह सुन राजा ने जो राज-दूत आया था उसीको पत्र दिलवा दिया। पण्डित ने अगले

देखी ।" राजा बोला—"इसे मापो ।" पण्डित के आदमियो ने साठ हाथ की नाल को अस्सी हाथ की नाल करके नापा । तब राजा ने पूछा—"यह कहाँ पैदा हुआ ?" एक ने झूठा उत्तर दिया—"देव ! एक दिन प्यास लगने पर सुरा पीने के लिये छोटे-द्वार से मैं नगर मे जा घुसा । वहाँ मैंने नागरिको के खेलने की बडी-बडी पुष्करिणिया देखी । जनता नौका मे बैठकर फूल तोडती है । यह तो किनारे पर उगा हुआ फूल है । गहराई मे उगा हुआ फूल तो सौ हाथ का होगा ।"

यह सुन राजा ने केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! इस नगर को पानी का त्रास देकर आधीन नही किया जा सकता । अपनी मन्त्रणा को वापिस ले ।" "देव ! तो धान्य का अभाव करके आधीन करेंगे । धान्य नगर से बाहर होता है ।" "आचार्य्य ! ऐसा हो" पण्डित को पूर्वोक्त प्रकार से ही जब जानकारी हुई तो कहा—"केवट्ट ब्राह्मण मेरे पण्डित्य को नही जानता !" उसने चारदीवारी के ऊपर गारा बिछवा धान रोप दिये । बोधिसत्वो के अभिप्राय पूरे होते हैं । धान एक ही रात मे उगकर चारदीवारी के ऊपर दिखाई देने लग गये । यह भी देख ब्रह्मदत्त ने पूछा—"अरे ! यह क्या चारदीवारी के ऊपर हरा हरा दिखाई दे रहा है ?" पण्डित के नियुक्त आदमियो ने राजा के मुँह से बात छीन लेने की तरह तुरन्त उत्तर दिया—"देव ! गृहपति-पुत्र महोषध ने भावी भय का ख्याल कर राष्ट्र से धान्य इकट्ठा करवा कोठे भरवा लिये हैं । शेष धान्य चारदीवारी के पास डलवा दिया है । धूप मे सूखते हुए धानो पर वर्षा पडने से वे वही उग आये । मैं भी एक दिन किसी काम से छोटे-द्वार से घुसा । चारदीवारी के पास पडे धान से धान की मुट्ठी ले, उसे गली मे छोड दिया । लोग मजाक करने लगे—"मालूम होता है भखा है । धान को पल्ले मे बाध, घर ले जाकर पका खा ।"

राजा ने यह बात सुनी तो केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! धान्य का अभाव करके भी इस नगर को आधीन नही किया जा सकता । यह भी ठीक उपाय नही है ।" "तो देव ! लकडी का अभाव होने पर आधीन करेंगे । लकडी नगर से बाहर ही होती है ।" ""आचार्य्य ! ऐसा ही हो ।" पण्डित ने पूर्वोक्त-विधि से ही इस बात का पता मालूम कर जैसे चारदीवारी के ऊपर से धान दिखाई देता था, उतना ही ऊँचा लकडी का ढेर लगवा दिया । आदमी ब्रह्मदत्त के आदमियो का मजाक उडाते—"यदि भूख लगी है, यवागु पका कर पियो ।" वे बडी बडी लकडिया फेकते ।

राजा ने भी प्रश्न किया—"चारदीवारी के ऊपर से लकडिया दिखाई देती

है। यह क्या है ?" "गृहपति-पुत्र ने भावी भय देखकर लकडिया मगवाई है और उन्हे घरो के पिछवाडे रखवा दिया है। अतिरिक्त लकडिया चारदीवारी के पास रखवाई है।" राजा नियुक्त आदमियो के ही मत का हो गया। वह केवट्ट से बोला—"आचार्य्य! लकडी का अभाव पैदा करके भी हम इस नगर को आधीन नही कर सकते। इस उपाय को भी वापिस लो।"

"महाराज! चिन्ता न करे। दूसरा उपाय है।"

"आचार्य्य! यह कौन-सा उपाय है। मुझे तुम्हारे उपायो का अन्त नही दिखाई देता। हम विदेह-राज को अपने आधीन नही कर सकते। अपने नगर को वापिस चलें।"

"यह हमारे लिये लज्जा की बात होगी कि चूळनी-ब्रह्मदत्त सौ राजाओ को साथ लेकर भी विदेह-राज को आधीन नही कर सका। केवल महोषध ही पण्डित नही है। मैं भी पण्डित हूँ। हम एक 'तिकडम' करेंगे।"

"आचार्य्य! क्या तिकडम करेंगे।"

"हम धर्म-युद्ध करेंगे।"

"यह धर्म-युद्ध क्या है ?"

"महाराज! सेना युद्ध नही करेगी। दोनो राजाओ के दोनो पण्डित एक जगह मिलेंगे। उनमें से जो नमस्कार करेगा, उसकी हार मानी जायगी। महोषध यह मन्त्र नही जानता है। मै बडा हूँ। वह छोटा है। वह मुझे देखकर नमस्कार करेगा। तब विदेह हार जायेगा। हम विदेह-राज को हराकर अपने घर जायेंगे। इस तरह से हम लज्जित नही होगे। यह धर्म-युद्ध है।"

पण्डित को जब इस बात का भी पता लगा तो उसने सोचा—"मेरा नाम पण्डित नही, यदि मैं केवट्ट से हार जाऊ।"

ब्रह्मदत्त ने भी 'आचार्य्य! यह उपाय सुन्दर है' कह एक पत्र लिखवा छोटे-द्वार से विदेह-राज के पास भेजा—'कल धर्म-युद्ध होगा। दोनो पण्डितो की धर्मानुसार न्याय पूर्वक जय-पराजय होगी। जो धर्म-युद्ध नही करेगा वह भी पराजित ही समझा जायेगा।" यह सुन विदेह-राज ने पण्डित को बुलवा वह बात कही। पण्डित का उत्तर था—"देव! अच्छा है। कहला भेजे कि कल प्रात काल ही पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार रहेगा, धर्म-युद्ध-मण्डल में आये।" यह सुन राजा ने जो राज-दूत आया था उसीको पत्र दिलवा दिया। पण्डित ने अगले

देखी।" राजा बोला—"इसे मापो।" पण्डित के आदमियो ने साठ हाथ की नाल को अस्सी हाथ की नाल करके नापा। तब राजा ने पूछा—"यह कहाँ पैदा हुआ ?" एक ने झूठा उत्तर दिया—"देव ! एक दिन प्यास लगने पर सुरा पीने के लिये छोटे-द्वार से मैं नगर मे जा घुसा। वहाँ मैंने नागरिको के खेलने की बडी-बडी पुष्करिणिया देखी। जनता नौका मे बैठकर फूल तोडती है। यह तो किनारे पर उगा हुआ फूल है। गहराई मे उगा हुआ फूल तो सौ हाथ का होगा।"

यह सुन राजा ने केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! इस नगर को पानी का त्रास देकर आधीन नही किया जा सकता। अपनी मन्त्रणा को वापिस ले।" "देव ! तो धान्य का अभाव करके आधीन करेंगे। धान्य नगर से बाहर होता है।" "आचार्य्य ! ऐसा हो" पण्डित को पूर्वोक्त प्रकार से ही जब जानकारी हुई तो कहा—"केवट्ट ब्राह्मण मेरे पण्डित्य को नही जानता !" उसने चारदीवारी के ऊपर गारा बिछवा धान रोप दिये। बोधिसत्वो के अभिप्राय पूरे होते है। धान एक ही रात में उगकर चारदीवारी के ऊपर दिखाई देने लग गये। यह भी देख ब्रह्मदत्त ने पूछा—"अरे ! यह क्या चारदीवारी के ऊपर हरा हरा दिखाई दे रहा है ?" पण्डित के नियुक्त आदमियो ने राजा के मुँह से बात छीन लेने की तरह तुरन्त उत्तर दिया—"देव ! गृहपति-पुत्र महोषध ने भावी भय का ख्याल कर राष्ट्र से धान्य इकट्ठा करवा कोठे भरवा लिये है। शेष धान्य चारदीवारी के पास डलवा दिया है। धूप मे सूखते हुए धानो पर वर्षा पडने से वे वही उग आये। मैं भी एक दिन किसी काम से छोटे-द्वार से घुसा। चारदीवारी के पास पडे धान से धान की मुट्ठी ले, उसे गली में छोड दिया। लोग मजाक करने लगे—"मालूम होता है भूखा है। धान को पल्ले मे बाध, घर ले जाकर पका खा।"

राजा ने यह बात सुनी तो केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! धान्य का अभाव करके भी इस नगर को आधीन नही किया जा सकता। यह भी ठीक उपाय नही है।" "तो देव ! लकडी का अभाव होने पर आधीन करेंगे। लकडी नगर से बाहर ही होती है।" "आचार्य्य ! ऐसा ही हो।" पण्डित ने पूर्वोक्त-विधि से ही इस बात का पता मालूम कर जैसे चारदीवारी के ऊपर से धान दिखाई देता था, उतना ही ऊँचा लकडी का ढेर लगवा दिया। आदमी ब्रह्मदत्त के आदमियो का मजाक उडाते— "यदि भूख लगी है, यवागु पका कर पियो।" वे बडी बडी लकडिया फेकते।

राजा ने भी प्रश्न किया—"चारदीवारी के ऊपर से लकडिया दिखाई देती

है। यह क्या है ?" "गृहपति-पुत्र ने भावी भय देखकर लकडिया मगवाई है और उन्हें घरो के पिछवाडे रखवा दिया है। अतिरिक्त लकडिया चारदीवारी के पास रखवाई है।" राजा नियुक्त आदमियो के ही मत का हो गया। वह केवट्ट से बोला—"आचार्य्य! लकडी का अभाव पैदा करके भी हम इस नगर को आधीन नही कर सकते। इस उपाय को भी वापिस लो।"

"महाराज! चिन्ता न करें। दूसरा उपाय है।"

"आचार्य्य! यह कौन-सा उपाय है। मुझे तुम्हारे उपायो का अन्त नही दिखाई देता। हम विदेह-राज को अपने आधीन नही कर सकते। अपने नगर को वापिस चले।"

"यह हमारे लिये लज्जा की बात होगी कि चूळनी-ब्रह्मदत्त सौ राजाओ को साथ लेकर भी विदेह-राज को आधीन नही कर सका। केवल महोषध ही पण्डित नही है। मै भी पण्डित हूँ। हम एक 'तिकडम' करेंगे।"

"आचार्य्य! क्या तिकडम करेंगे।"

"हम धर्म-युद्ध करेगे।"

"यह धर्म-युद्ध क्या है ?"

"महाराज! सेना युद्ध नही करेगी। दोनो राजाओ के दोनो पण्डित एक जगह मिलेंगे। उनमे से जो नमस्कार करेगा, उसकी हार मानी जायगी। महोषध यह मन्त्र नही जानता है। मै बडा हूँ। वह छोटा है। वह मुझे देखकर नमस्कार करेगा। तब विदेह हार जायेगा। हम विदेह-राज को हराकर अपने घर जायेंगे। इस तरह से हम लज्जित नही होगे। यह धर्म-युद्ध है।"

पण्डित को जब इस बात का भी पता लगा तो उसने सोचा—"मेरा नाम पण्डित नही, यदि मै केवट्ट से हार जाऊ।"

ब्रह्मदत्त ने भी 'आचार्य्य! यह उपाय सुन्दर है' कह एक पत्र लिखवा छोटे-द्वार से विदेह-राज के पास भेजा—'कल धर्म-युद्ध होगा। दोनो पण्डितो की धर्मानुसार न्याय पूर्वक जय-पराजय होगी। जो धर्म-युद्ध नही करेगा वह भी पराजित ही समझा जायेगा।" यह सुन विदेह-राज ने पण्डित को बुलवा वह बात कही। पण्डित का उत्तर था—"देव! अच्छा है। कहला भेजे कि कल प्रात काल ही पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार रहेगा, धर्म-युद्ध-मण्डल में आये।" यह सुन राजा ने जो राज-दूत आया था उसीको पत्र दिलवा दिया। पण्डित ने अगले

दिन केवट्ट को ही पराजित करने के लिये पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार कराया। उन सब आदमियो ने भी 'कौन जाने, क्या हो' सोच पण्डित की रक्षा करने के लिये केवट्ट को घेर लिया। वे सौ राजा भी धर्म-युद्ध-मण्डल पहुँचे और खडे होकर पूर्व दिशा की ओर देखने लगे। उसी प्रकार केवट्ट ब्राह्मण भी। किन्तु बोधिसत्व ने प्रात काल ही सुगन्धित जल से स्नान किया, लाख के मूल्य का काशी का वस्त्र पहना, सभी अलकारो से अलकृत हुआ और नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ग्रहण किया। तदनन्तर उसने राज-द्वार पर पहुँच, राजा के यह कहने पर 'मेरा पुत्र आवे' राज-द्वार मे प्रविष्ट हो राजा को प्रणाम किया और एक ओर खडा हुआ। राजा ने पूछा—"तात महोपध! क्या बात है?" "मै धर्म-युद्ध-मण्डल जाता हूँ।" "मुझे क्या करना चाहिये?" "देव! मै केवट्ट ब्राह्मण को मणि से ठगना चाहता हूँ। आठ स्थानो पर टेढा मणि-रत्न मिलना चाहिये।" "तात! ले जा।"

वह उसे ले, राजा को प्रणाम कर, (महल से) उतरा। फिर साथ जन्मे हजार योधाओ को साथ ले, नौवे हजार कार्षापण मूल्य के श्वेत घोडे जुते रथ मे चढकर प्रात काल का जलपान करने के समय द्वार के पास पहुँचा। केवट्ट भी खडा उसके आगमन की प्रतिक्षा कर रहा था कि अब आता है, अब आता है। देखते रहने से, लगता था, जैसे उसकी गरदन लम्बी हो गई है। सूर्य्य की गरमी के कारण उसका पसीना छट रहा था। बहुत से अनुयायियो के साथ होने के कारण समुद्र की तरह फैलते हुए, केशरीसिंह की तरह भय-रहित, रोमाञ्चरहित बोधिसत्व ने भी दरवाजा खुलवाया और नगर से निकल, रथ पर चढ, सिंह की तरह जाग्रत हो चला। सौ राजाओ ने जब उसकी रूप-शोभा देखी तो जाना कि यही श्रीवर्धन सेठ का पुत्र महोषध पण्डित है, जिसके समान प्रज्ञावान् सारे जम्बुद्वीप में दूसरा कोई नही है। वे हजार बार चिल्लाये। वह भी देवताओ मे घिरे इन्द्र की भाँति, अनूपम श्री वैभव के साथ, हाथ मे वह मणिरत्न लिये केवट्ट की ओर बढा।

केवट्ट ने उसे देखा तो अपने आप को सभाले न रख सका। वह उसकी अगवानी करता हुआ बोला—"महोषध! हम दोनो पण्डित है। हम तुम्हारे पास इतने समय से रह रहे है, तुमने भेंट तक नही भेजी? ऐसा क्यो किया?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"पण्डित! तुम्हारे योग्य भेट खोजता रहा। आज यह मणिरत्न मिला है। ले। इस प्रकार का दूसरा मणिरत्न नही है।" उसने उसके हाथ में चमकते हुए मणिरत्न को देख सोचा, 'यह देना चाहता होगा।' इसलिये हाथ पसार दिये

और बोला—'दे।' बोधिसत्व ने 'लें' कह फैले हुए हाथ के सिरे पर गिरा दिया। ब्राह्मण भारी मणिरत्न को उगलियो पर सभाल न सका। वह छूटकर बोधिसत्व के पैरो में जा रहा। लोभ के वशीभूत हो ब्राह्मण उसे लेने के लिये उस के पैरों की ओर झुका।

बोधिसत्व ने उसे उठने नही दिया। एक हाथ से कन्धा और दूसरे से पीठ पकड, मुँह से तो यह कहते हुए कि 'आचार्य्य ! उठे, आचार्य्य ! उठें। मै छोटा हूँ। तुम्हारे नाती के समान हूँ। मुझे प्रणाम न करें' किन्तु हाथ से उसे इधर-उधर कर उसका मुँह और माथा जमीन से रगड खून निकाल दिया। फिर 'अन्धे मूर्ख तू मुझसे प्रणाम की आशा करता था' कह गरदन से पकड फेंक दिया। वह (उसभ मात्र) दूरी पर गिरा और उठकर भाग गया। मणिरत्न बोधिसत्व के आदमियो ने ही उठा लिया। बोधिसत्व की यह आवाज कि 'उठो उठो, मुझे प्रणाम मत करो' सारी परिषद में छा गई। उसकी परिषद ने भी एक ही बार हल्ला कर दिया कि केवट्ट ब्राह्मण ने पण्डित के चरणो की वन्दना की। ब्रह्मदत्त से लेकर सभी राजाओ ने केवट्ट को बोधिसत्व के चरणो में झुका ही देखा था। 'हमारे पण्डित ने महोषध की वन्दना की है। अब वह हमें जीता नही छोडेगा' सोच वे अपने अपने घोडो पर चढ उत्तर पञ्चाल की ओर भागने लगे। उन्हे भागते देख, बोधिसत्व के आदमियो ने फिर हल्ला किया—ब्रह्मदत्त अपने सौ राजाओ सहित भाग रहा है। ये सुन वे राजागण मृत्युभय के मारे और भी तेजी से भागे। उन्होने सेना छिन्न-भिन्न कर दी। बोधिसत्व की परिषद ने भी शोर मिचाते हुए, हल्ला करते हुए अच्छी तरह से लडाई की।

सेना से घिरा हुआ बोधिसत्व नगर को ही लौट आया। ब्रह्मदत्त की सेना तीन योजन जा पहुँची। केवट्ट घोडे पर चढा और माथे पर से रक्त पोछता हुआ सेना तक पहुँच, घोडे की पीठ पर बैठा ही बैठा कहने लगा—"भागो मत। मैंने गृहपति-पुत्र की वन्दना नही की है। रुको, रुको।" सेना बिना रुके, बिना उसकी बात सुने, उसे गालिया देते हुए और उसका मजाक उडाते हुए चलती रही—"पापी ! दुष्ट-ब्राह्मण ! 'धर्म-युद्ध करूँगा' कहकर, जाकर उसे नमस्कार किया जो तेरा नाती भी होने के योग्य नही। तेरे लिये कुछ भी अकरणीय नही है।" वह जल्दी से गया और सेना तक पहुँच, बोला—"अरे ! मेरे कहने का विश्वास करो। मैंने उसे नमस्कार नही किया। उसने मणि से मुझे ठगा है।" इस प्रकार उसने सभी राजाओ को नाना प्रकार से विश्वास दिलाया और अपनी बात का विश्वास दिला उस छितराई हुई

दिन केवट्ट को ही पराजित करने के लिये पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार कराया। उन सब आदमियो ने भी 'कौन जाने, क्या हो' सोच पण्डित की रक्षा करने के लिये केवट्ट को घेर लिया। वे सौ राजा भी धर्म-युद्ध-मण्डल पहुँचे और खडे होकर पूर्व दिशा की ओर देखने लगे। उसी प्रकार केवट्ट ब्राह्मण भी। किन्तु बोधिसत्व ने प्रात काल ही सुगन्धित जल से स्नान किया, लाख के मूल्य का काशी का वस्त्र पहना, सभी अलकारो से अलकृत हुआ और नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ग्रहण किया। तदनन्तर उसने राज-द्वार पर पहुँच, राजा के यह कहने पर 'मेरा पुत्र आवे' राज-द्वार मे प्रविष्ट हो राजा को प्रणाम किया और एक ओर खडा हुआ। राजा ने पूछा—"तात महोषध ! क्या बात है ?" "मै धर्म-युद्ध-मण्डल जाता हूँ।" "मुझे क्या करना चाहिये ?" "देव ! मै केवट्ट ब्राह्मण को मणि से ठगना चाहता हूँ। आठ स्थानो पर टेढा मणि-रत्न मिलना चाहिये।" "तात ! ले जा।"

वह उसे ले, राजा को प्रणाम कर, (महल से) उतरा। फिर साथ जन्मे हजार योधाओ को साथ ले, नौवे हजार कार्षापण मूल्य के श्वेत घोडे जुते रथ में चढकर प्रात काल का जलपान करने के समय द्वार के पास पहुँचा। केवट्ट भी खडा उसके आगमन की प्रतिक्षा कर रहा था कि अब आता है, अब आता है। देखते रहने से, लगता था, जैसे उसकी गरदन लम्बी हो गई है। सूर्य्य की गरमी के कारण उसका पसीना छट रहा था। बहुत से अनुयायियो के साथ होने के कारण समुद्र की तरह फैलते हुए, केशरीसिह की तरह भय-रहित, रोमाञ्चरहित बोधिसत्व ने भी दरवाजा खुलवाया और नगर से निकल, रथ पर चढ, सिंह की तरह जाग्रत हो चला। सौ राजाओ ने जब उसकी रूप-शोभा देखी तो जाना कि यही श्रीवर्धन सेठ का पुत्र महोषध पण्डित है, जिसके समान प्रज्ञावान् सारे जम्बुद्वीप मे दूसरा कोई नही है। वे हजार बार चिल्लाये। वह भी देवताओ मे घिरे इन्द्र की भाँति, अनूपम श्री वैभव के साथ, हाथ मे वह मणिरत्न लिये केवट्ट की ओर बढा।

केवट्ट ने उसे देखा तो अपने आप को सभाले न रख सका। वह उसकी अगवानी करता हुआ बोला—"महोषध ! हम दोनो पण्डित है। हम तुम्हारे पास इतने समय से रह रहे है, तुमने भेंट तक नही भेजी ? ऐसा क्यो किया ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"पण्डित ! तुम्हारे योग्य भेट खोजता रहा। आज यह मणिरत्न मिला है। ले। इस प्रकार का दूसरा मणिरत्न नही है।" उसने उसके हाथ में चमकते हुए मणिरत्न को देख सोचा, 'यह देना चाहता होगा।' इसलिये हाथ पसार दिये

और बोला—'दे।' बोधिसत्व ने 'ले' कह फैले हुए हाथ के सिरे पर गिरा दिया। ब्राह्मण भारी मणिरत्न को उगलियो पर सभाल न सका। वह छूटकर बोधिसत्व के पैरो मे जा रहा। लोभ के वशीभूत हो ब्राह्मण उसे लेने के लिये उस के पैरों की ओर झुका।

बोधिसत्व ने उसे उठने नही दिया। एक हाथ से कन्धा और दूसरे से पीठ पकड, मुँह से तो यह कहते हुए कि 'आचार्य्य! उठे, आचार्य्य! उठे। मै छोटा हूँ। तुम्हारे नाती के समान हूँ। मुझे प्रणाम न करें' किन्तु हाथ से उसे इधर-उधर कर उसका मुँह और माथा जमीन से रगड खून निकाल दिया। फिर 'अन्धे मूर्ख तू मुझसे प्रणाम की आशा करता था' कह गरदन से पकड फेक दिया। वह (उसभ मात्र) दूरी पर गिरा और उठकर भाग गया। मणिरत्न बोधिसत्व के आदमियो ने ही उठा लिया। बोधिसत्व की यह आवाज कि 'उठो उठो, मुझे प्रणाम मत करो' सारी परिपद मे छा गई। उसकी परिषद ने भी एक ही बार हल्ला कर दिया कि केवट्ट ब्राह्मण ने पण्डित के चरणो की वन्दना की। ब्रह्मदत्त से लेकर सभी राजाओ ने केवट्ट को बोधिसत्व के चरणो मे झुका ही देखा था। 'हमारे पण्डित ने महोषध की वन्दना की है। अब वह हमे जीता नही छोडेगा' सोच वे अपने अपने घोडो पर चढ उत्तर पञ्चाल की ओर भागने लगे। उन्हे भागते देख, बोधिसत्व के आदमियो ने फिर हल्ला किया—ब्रह्मदत्त अपने सौ राजाओ सहित भाग रहा है। ये सुन वे राजागण मृत्युभय के मारे और भी तेजी से भागे। उन्होने सेना छिन्न-भिन्न कर दी। बोधिसत्व की परिपद ने भी शोर मिचाते हुए, हल्ला करते हुए अच्छी तरह से लडाई की।

सेना से घिरा हुआ बोधिसत्व नगर को ही लौट आया। ब्रह्मदत्त की सेना तीन योजन जा पहुँची। केवट्ट घोडे पर चढा और माथे पर से रक्त पोछता हुआ सेना तक पहुँच, घोडे की पीठ पर बैठा ही बैठा कहने लगा—"भागो मत। मैने गृहपति-पुत्र की वन्दना नही की है। रुको, रुको।" सेना बिना रुके, बिना उसकी बात सुने, उसे गालिया देते हुए और उसका मजाक उडाते हुए चलती रही—"पापी! दुष्ट-ब्राह्मण! 'धर्म-युद्ध करूँगा' कहकर, जाकर उसे नमस्कार किया जो तेरा नाती भी होने के योग्य नही। तेरे लिये कुछ भी अकरणीय नही है।" वह जल्दी से गया और सेना तक पहुँच, बोला—"अरे! मेरे कहने का विश्वास करो। मैने उसे नमस्कार नही किया। उसने मणि से मुझे ठगा है।" इस प्रकार उसने सभी राजाओ को नाना प्रकार से विश्वास दिलाया और अपनी बात का विश्वास दिला उस छितराई हुई

सेना को विश्वास दिलाया। वह इतनी बडी सेना थी। यदि वे लोग वालू की एक एक मुट्ठी अथवा एक एक ढेला भी फेकते तो खाई भर कर चारदीवारी से भी ऊपर ढेर पहुँच जाता। किन्तु वोधिसत्व के सकल्प पूरे होते है। किसी एक ने भी वालू या पत्थर नगर की ओर नही फेका। सभी रुककर अपनी छावनी मे ही लौट आये। राजा ने केवट्ट से पूछा—"आचार्य्य! क्या करे?" "देव! किसी को भी छोटे-द्वार से न निकलने देकर आना-जाना रोक देगे। मनुष्यो को जब बाहर निकलना नही मिलेगा तो घबराकर द्वार खोल देंगे। हम शत्रुओ को काबू कर लेगे।"

वोधिसत्व को पूर्वोक्त प्रकार से ही जब पता लगा तो सोचा कि यदि ये चिर-काल तक यहाँ रहे तो सुख नही ही होगा। इन्हे चतुराई से भगाना ही चाहिये। मैं इन्हे मन्त्रणा द्वारा भगाऊँगा। उसने किसी मन्त्रणा-कुशल अमात्य की खोज करते हुए अनुकेवट्ट को देखा और बुलाकर कहा—"आचार्य्य! आपको हमारा एक कार्य्य करना होगा।" "पण्डित! क्या करूँ?" "आप चारदीवारी के ऊपर खडे हो, हमारे मनुष्यो की असावधानी के समय बीच बीच मे ब्रह्मदत्त के मनुष्यो को पूए, मत्स्य-मासादि फेंक दिया करे और कहें, "अरे! यह और यह खाओ। घबराओ मत। और कुछ दिन टिके रहने का प्रयत्न करो। नगर के लोग पिंजरे मे कैद मुर्गो की तरह है। घबरा कर शीघ्र ही द्वार खोल देंगे। तुम विदेह-राज को तथा दुष्ट गृहपति-पुत्र को पकड लेना।' तब हमारे आदमी यह बात सुन तुम्हे गालिया देंगे और डरायेंगे। और फिर ब्रह्मदत्त के मनुष्यो की नजर के सामने ही तुम्हे हाथ-पाँव से पकड, बास की चपटियो से पीटने का ढग बनायेंगे। फिर सिर की पाचो चोटिया पकड उनमे ईटो की सुर्खी बखेर देगे और गले मे लाल कणेर की माला डाल, कुछ पीट-पाट कर, पीठ मे मार की लकीरे उठा देगे। फिर चारदीवारी पर चढा, टोकरी मे फेंक, रस्से से दूसरी ओर उतार देगे और कहेगे, "भेद खोल देने वाले चोर जा।" वे तुझे ब्रह्मदत्त के आदमियो को सौप देगे। वे तुझे राजा के पास ले जायेंगे। राजा पूछेगा—"तेरा क्या अपराध है?" उसे ऐसा कहना—'महाराज! पहले मै बहुत ऐश्वर्य्यवान् था। गृहपति पुत्र ने राजा को यह कह कर कि 'यह भेद बता देने वाला है', मेरा सब ऐश्वर्य्य नष्ट कर दिया। 'मै अपने यश को नष्ट करने वाले गृहपति-पुत्र का सिर कटवाऊँगा' सोच तुम्हारे मनुष्यो को घबराया देख उन्हें खाना-पीना देता था। इतनी बात से पुराना वैर याद कर उसने मेरी यह हालत करा दी। महाराज! आपके आदमी यह सब हाल जानते

है।' इस तरह उसे नाना प्रकार से विश्वास दिलाकर कहना, 'महाराज! मेरे आ मिलने के बाद से अब आप चिन्ता न करे। अब विदेह-राज और गृहपति-पुत्र की जान नही बच सकती। मैं जानता हूँ कि इस नगर की चारदीवारी किस जगह पर मजबूत है, और किस जगह पर दुर्बल है, और यह भी जानता हूँ कि खाई मे किस जगह पर मगर-मच्छ आदि हैं और किस जगह पर नही हैं? मैं शीघ्र ही नगर पर अधिकार करा दूगा।' तब वह राजा तुम्हारा विश्वास कर सत्कार करेगा। तुम्हे सेना-सवारी सौप देगा। तब उसकी सेना को भयानक मगर-मच्छो की जगह पर ही उतारना। उसकी सेना मगरो के डर के मारे नही उतरेगी। तब कहना—'देव! तुम्हारी सेना को गृह-पति-पुत्र ने फोड लिया है। आचार्य्य सहित सारे राजाओ मे एक भी ऐसा नही है, जिसने रिश्वत न ली हो। ये केवल तुम्हारे इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। यदि मेरा विश्वास नही है तो सभी राजाओ को आज्ञा दे कि अलकृत होकर आपके पास आये। तब उन सब के पास गृहपति-पुत्र द्वारा अपना नाम लिखकर दिये गये वस्त्र, अलकार, खड्ग आदि देखकर विश्वास करें।' वह वैसा कर और वे चीजे देख विश्वास करके भय के मार उन राजाओ को विदाकर देगा और तुमसे ही पूछेगा—'पण्डित! अब क्या करें?' उसे तुम ऐसा कहना—'महाराज! गृहपति पुत्र बहुत मायावी है। यदि और कुछ दिन यहा रहे तो सारी सेना को अपने हाथ मे करके आपको पकड लेगा। बिना विलम्ब किये आज ही आधी रात के बाद घोडे पर बैठ भाग चलें। दूसरे के हाथ मे पड कर हमारा मरना न हो। वह तुम्हारा कहना मान वैसा करेगा। तुम उसके भागने के समय रुककर अपने आदमियो को सूचना देना।"

यह सुन अनुकेवट्ट ब्राह्मण बोला—"अच्छा पण्डित! तेरा कहना करुँगा।" "तो कुछ प्राहार सहने होगे।" "पण्डित! मेरे जीवन और हाथ पैरो को सुरक्षित रहने देकर शेष जो चाहे कर।" उसने उसके घर के मनुष्यो का सत्कार करवा, पूर्वोक्त प्रकार से ही अनुकेवट्ट की दुर्दशा कर, रस्सी से उतार, ब्रह्मदत्त के आदमियो को ही दिलवाया।

राजा ने उसकी परीक्षा कर, उसका विश्वास कर लिया और उसका सत्कार कर उसे सेना सौप दी। उसने भी सेना को भयानक मगर-मच्छो की जगह ही उतारा। मगर-मच्छो द्वारा खाये जाने से, अटारी पर बैठे आदमियो द्वारा बाण, शक्ति तथा तोमर की वर्षा से बीधे जाने के कारण आदमी विनाश को प्राप्त हुए। अब वे भय

के मारे आगे नही बढते थे। अनुकेवट्ट राजा के पास पहुँचा और बोला—"महाराज ! तुम्हारी ओर से लडने वाला नही है। सभी ने रिश्वत ले रखी है। यदि मेरा विश्वास न हो तो राजाओ को बुलवा कर उनके पहने वस्त्रादि पर बने अक्षरो को देखें।" राजा ने वैसा ही किया। जब उसने सभी के वस्त्रो पर अक्षर देखे तो उसे विश्वास हो गया कि सभी ने रिश्वत ली है। उसने पूछा—"आचार्य्य ! अब क्या करना उचित है?" "देव ! और कुछ करणीय नही है। यदि देर करेंगे तो गृहपति-पुत्र पकड लेगा। महाराज ! आचार्य्य केवट्ट भी केवल माथे पर जख्म करके घूमता है। उसने भी रिश्वत ली है। उसने मणिरतन लेकर आपके तीन योजन चले जाने पर भी विश्वास दिलाकर फिर रोक लिया। यह भी फूट डालने वाला ही है। मुझे उसका एक रात भी यहाँ रहना अच्छा नही लगता। आज ही आधी रात के बाद भाग जाना योग्य है। मेरे अतिरिक्त यहाँ आपका और कोई मित्र नही है।"

"आचार्य्य ! तो फिर आप ही मेरा घोडा तैयार कर सवारी की व्यवस्था कर दे।"

ब्राह्मण को जब पता लगा कि अब यह निश्चय से भाग जायेगा तो उसने उसे आश्वस्त किया—"महाराज ! डरे नही।" फिर स्वय बाहर निकल नियुक्त आदमियो को सावधान किया—"आज राजा भागेगा। सोना नही।" उसने राजा के घोडे पर ऐसे ढग से इतनी अच्छी काठी कसी कि जिसमे वह खूब भाग सके। फिर आधीरात के बाद राजा को सूचना दी—"देव ! घोडा कस दिया गया है। अब आप समय जाने।" राजा घोडे पर चढ भाग गया। अनुकेवट्ट भी घोडे पर चढ उसके साथ थोडी दूर जा रुक गया। ठीक से काठी कसा हुआ घोडा खीचे जाने पर भी राजा को लेकर भाग गया।

अनुकेवट्ट ने सेना मे घुस हल्ला कर दिया कि चूळनी-ब्रह्मदत्त भागा जा रहा है। नियुक्त आदमियो ने भी अपने आदमियो के साथ मिल कर शोर मचाया। शेष राजाओ ने जब यह सुना तो सोचा कि महोषध पण्डित दरवाजा खोल बाहर आया होगा। अब वह हमे जीवित नही रहने देगा। यह सोच, डर के मारे वे अपना माल असबाब सभी कुछ छोडकर भाग खडे हुए। मनुष्यो ने अच्छी तरह शोर मचाया कि राजा लोग भागे जा रहे है। शेष लोगो ने जब यह सुना तो उन्होने दरवाजे की अटारियो पर से हल्ला मचाया और तालिया बजाई। उस समय जैसे पृथ्वी फट गई हो, अथवा समुद्र क्षुब्ध हो उठा हो, सारा नगर अन्दर-बाहर एक

शब्द से गूज गया। अट्ठारह अक्षौहिणी आदमी यह समझ कि महोषध ने राजा ब्रह्मदत्त के साथ सभी राजाओ को पकड लिया है, मृत्यु से डर कर, निराश्रित हो धोती तक छोड छोडकर भाग गये। छावनी खाली हो गई। चुळनी ब्रह्मदत्त सौ राजाओ को ले अपने नगर ही लौट आया।

अगले दिन प्रात काल ही नगर-द्वार खोलकर सेना नगर से वाहर निकली और महान् लूट मची देखकर बोधिसत्व को सूचना दी और पूछा—"पण्डित ! क्या करे ?" उसने उत्तर दिया—"इनका छोडा हुआ धन हमारा है। सभी राजाओ का सारा धन अपने राजा को दो। सेठो का और केवट्ट ब्राह्मण का धन हमारे यहाँ ले आओ। शेप धन नगरवासी ले जाये।" मूल्यवान् सामान ढोने मे ही आधा महीना गुजर गया। शेप सामान लाने मे चार महीने लगे। बोधिसत्व ने अनुकेवट्ट को वहुत ऐश्वर्य्य दिया। उस समय से मिथिला वासी बहुत धनी हो गये। उन राजाओ के साथ उत्तर पाञ्चाल मे रहते हुए ब्रह्मदत्र को भी एक वर्ष बीत गया।

एक दिन केवट्ट शीशे मे मुँह देख रहा था। उसे माथे का जख्म दिखाई दिया। 'यह गृहपति-पुत्र की करतूत है। उसने मुझे इतने राजाओ के बीच लज्जित किया' सोच वह क्रोधित हुआ और सोचने लगा—"मै कब उससे बदला ले सकूगा।" उसे सूझा—"एक उपाय है। हमारे राजा की लडकी का नाम है पञ्चाल-चण्डी। उसका रूप सुन्दर है। अप्सराओ के समान। उसे 'विदेह-राज को देंगे' कहकर उसे काम-भोग का लोभ दे, काटे फँसी मछली के समान महोषध पण्डित के साथ उसे यहाँ बुला, दोनो जनो को मार जय-पान करेंगे।" यह निश्चय कर वह राजा के पास पहुँचा और बोला—"देव ! एक मन्त्रणा है।" "आचार्य्य ! तुम्हारी मन्त्रणा के फलस्वरूप हम अपने वस्त्र तक से विहीन हो गये। अब और क्या करोगे ? चुप रहो।" "महाराज ! इस उपाय के समान दूसरा उपाय नही है।" "तो कहो।" "महाराज ! हम दो ही जने रहे।" "ऐसा ही हो।' तब ब्राह्मण उसे प्रासाद के ऊपर के तल्ले पर ले गया और बोला—"महाराज ! विदेह-राज को काम-भोग का लोभ दे, यहा ला, गृहपति-पुत्र के साथ मार डालेंगे।" "आचार्य्य ! उपाय तो सुन्दर है। किन्तु उसे लोभ देकर कैसे लायेंगे ?" "महाराज ! आपकी लडकी पञ्चाल चण्डी उत्तम रूप वाली है। उसके सौन्दर्य तथा चातुर्य्य के सम्बन्ध मे कवियो से गीत लिखवा कर उन काव्यो को मिथिला में गवायेंगे कि यदि विदेह-राज को इस प्रकार का स्त्री-रत्न प्राप्य नही है तो उसके राज्य से क्या लाभ ? जब पता लगेगा कि वह

उसकी प्रशसा सुनने से उस पर आसक्त हो गया है तो मै जाकर दिन निश्चित कर आऊँगा। मेरे दिन निश्चित करके लौट आने पर वह काँटे फँसी मछली के समान गृहपति-पुत्र को साथ लेकर आयेगा। तब हम उन्हे मार डालेगे।"

राजा ने उसकी बात मान ली—"आचार्य्य! यह उपाय सुन्दर है। ऐसा ही करेगे।" उस मन्त्रणा को चूळनी ब्रह्मदत्त के शयनागार मे रहने वाली मैना ने प्रत्यक्ष कर लिया। राजा ने चतुर कवियो को बुलाकर बहुत सा धन दिया और उन्हे लडकी दिखाकर कहा—"तात! इसके सौन्दर्य्य के सम्बन्ध मे काव्य रचना करो।" उन्होने बहुत सुन्दर गीत बना राजा को सुनाये। राजा ने बहुत धन दिया। कवियो से नाटक करने वालो ने सीखकर उन गीतो को (रास) लीलाओ मे गाया। इस प्रकार वे गीत फैल गये। जब वे गीत मनुष्यो मे फैल गये तो राजा ने गवैय्यो को बुलाकर कहा—"तात! तुम लोग बडे-बडे पक्षियो को लेकर रात को पेड पर चढ कर वहाँ बैठ जाओ। फिर बहुत प्रात काल उनकी गर्दन मे कासे की पत्तिया बाँध उन्हे उडा कर उतरो।" उसने ऐसा इसलिये करवाया ताकि लोग समझे कि पञ्चाल राज की कन्या की शरीर-शोभा का वर्णन देवता तक करते है। राजा ने फिर उन कवियो को बुलवाकर कहा—"तात! अब तुम ऐसे गीत बनाओ जिनमे मिथिला-नरेश के वैभव का और इस कुमारी के सौन्दर्य्य का वर्णन हो और उनका आशय हो कि इस प्रकार की कुमारी मिथिला-नरेश के अतिरिक्त समस्त जम्बुद्वीप मे और किसी के भी योग्य नही है।" उन्होने ऐसा कर राजा को सूचना दी। राजा ने उन्हें धन देकर भेजा—"तात! मिथिला मे इसी ढग से गाओ।" उन्होने उन्हे गाया और क्रमश मिथिला जाकर लीला में भी गाया। उन गीतो को सुन जनता ने हजारो तालिया बजाई और उन्हे बहुत धन दिया। रात को वे वृक्षो पर चढकर भी गाते और पक्षियो की गरदन मे कासे की पत्तिया बाँध कर उतर आते। आकाश मे कासे के बजने की आवाज सुन सारे नगर मे एक हल्ला हो गया कि पञ्चाल-राज की कन्या के सौन्दर्य्य की प्रशसा देवता तक करते है।

राजा ने सुना तो कवियो को बुला अपने घर पर मजलिस लगवाई और यह जान सन्तुष्ट हुआ कि इस प्रकार की सुन्दर कन्या को चूळनी राजा मुझे देना चाहता है। उसने प्रसन्न हो उन्हें बहुत धन दिया। उन्होने भी आकर ब्रह्मदत्त को सूचना दी। तब केवट्ट बोला—"महाराज! अब मै दिन तै करने जाता हूँ।" "आचार्य्य! अच्छा। कुछ चाहिये?" "कुछ भेंट," "ले जायें" कहकर भेट दिलवाई।

भेंट ले वह बडे ठाट-बाट से विदेह राष्ट्र पहुँचा। उसका आना सुन नगर मे हल्ला हो गया—'चूळनी राजा तथा विदेह-राजा मैत्री स्थापित करेंगे। चूळनी अपनी लडकी विदेह-नरेश को देगा। केवट्ट दिन निश्चय करने आ रहा है।' विदेह राजा ने भी सुना। बोधिसत्व ने भी। किन्तु बोधिसत्व के मन मे हुआ—'उसका आगमन मुझे अच्छा नही लगता। मै यथार्थ बात जानूगा।' उसने चूळनी के पास नियुक्त अपने आदमियो के पास सन्देश भेजा—इस मन्त्रणा की यथार्थ जानकारी भेजो। उनका उत्तर आया—"हमे भी इसका यथार्थ पता नही। राजा और केवट्ट ने शयनागार मे बैठकर मन्त्रणा की है। हाँ, राजा के शयनागार मे मैना रहती है, वह इस मन्त्रणा को जानती होगी।"

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—'यह नगर जो कि ऐसे ढग से सुविभक्त करके बनाया गया है कि किसी शत्रु को मौका न मिल सके, मै केवट्ट को देखने न दूँगा।' उसने नगर-द्वार से राजभवन तक और राजभवन से अपने घर तक दोनो ओर चटाइयो से घेर और ऊपर से भी चटाइयो से ढक रास्ता बनवाया। उसे चित्रित करवाया। पृथ्वी पर फूल बिखेरे गये, पूर्ण घट रखवाये गये, केले बधवाये गये तथा उन पर झण्डिया बँधवाई गई। केवट्ट ने उस नगर में प्रवेश किया तो उसे सुविभक्त नगर देखना नही मिला। उसने सोचा कि राजा ने मेरे लिये मार्ग सजवाया है। वह यह नही समझ सका कि यह नगर को ढकने के लिये किया गया है। वह गया और राजा को देख भेंट दी तथा कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा। फिर राजा द्वारा सत्कृत होने पर उसने अपने आने का उद्देश्य कह दो गाथाये कही—

राजा सन्थवकामो ते रतनानि पवेच्छति,
आगच्छन्तु ततो दूता मञ्जुका पियभाणिनो ॥९३॥
भासन्तु मुदुका वाचा या वाचा पटिनन्दिता,
पञ्चाला च विदेहा च उभो एका भवन्तु ते ॥९४॥

[राजा तेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, इसलिये उसने तेरे पास रत्न भेजे है। अब वहाँ से (और यहा) प्रिय भाषी दूतो का आना जाना हो। वे आनन्दित करने वाली कोमल वाणी बोलें। पञ्चाल और विदेह के लोग दोनो एक हो ॥९३-९४॥]

इतना कहकर केवट्ट आगे बोला—"महाराज! हमारा राजा दूसरे महामात्य को भेजने का विचार कर रहा था। फिर उसने मुझे ही भेजा कि दूसरा कोई ठीक से

सदेश न पहुँचा सकेगा।" उसने कहा—'आचार्य्य! तुम राजा को अच्छी तरह समझा कर ले आओ।' 'महाराज! चलें। सुन्दर कुमारी मिलेगी और हमारे राजा के साथ मैत्री स्थापित होगी।' उसकी बात सुनते ही वह प्रसन्न हुआ। उसे आसक्ति हो गई कि सुन्दर कुमारी पाऊँगा। बोला—"आचार्य्य! तुम्हारा और महोषध पण्डित का धर्म-युद्ध मे विवाद हो गया था। जाये मेरे पुत्र से मिले। दोनो पण्डित परस्पर एक दूसरे से क्षमा माँग, मन्त्रणा कर के यहाँ आये।"

यह सुन केवट्ट पण्डित से भेंट करने के लिये गया। बोधिसत्त्व ने भी उस दिन प्रात काल ही थोडा घी पीकर जुलाब ले लिया। सोचा—उस पापी क साथ मेरी बातचीत ही न हो। उसका घर भी घने गीले गोबर से लीपा गया। खम्भो पर तेल मला गया। उसके लेटने का एक पीढा छोड, शेष सारे मञ्च-पीढे हटा दिये गये। उसने मनुष्यो को सकेत कर दिया—"जब ब्राह्मण बातचीत करने लगे तो कहना, 'ब्राह्मण, पण्डित के साथ बातचीत न करे आज उन्होने घी पिया है' और मै भी जब मुँह खोलने लगू तब भी कहना, 'देव, आज घी पिया है, मत बोले।' यह सोच बोधिसत्व लाल-वस्त्र पहन सातवे तल्ले पर निवार की चारपाई पर लेटा। केवट्ट ने भी उसकी ड्योढी मे खडे होकर पूछा—"पण्डित कहाँ है?" आदमी बोले, "ब्राह्मण! जोर से न बोल। यदि आना चाहता है तो चुपचाप आ। आज पण्डित ने घी पिया है। हल्ला करना मना है।" शेष कमरो में भी उसे इसी प्रकार कहा गया। वह सात दरवाजे लाघकर पण्डित के पास पहुँचा। पण्डित ने बोलने जैसा ढग किया। आदमियो ने उसे भी रोक दिया—'देव! मुँह न खोले। तेज घी पिया है। इस दुष्ट ब्राह्मण से बातचीत करने से क्या प्रयोजन।" इस प्रकार उसे पण्डित के पास पहुँचने पर न बैठने की जगह मिली और न आश्रय से खडे होने की ही जगह मिली। वह गीला गोबर लाधकर खडा हुआ।

उसे देख एक आदमी ने आँख मारी, एक ने भौं ऊपर उठाई और एक कपाल खुजलाने लगा। वह उनकी क्रिया देख, हत-बुद्धि हो गया। बोला—"पण्डित! मै जाता हूँ।' तब एक आदमी ने कहा—'अरे दुष्ट ब्राह्मण! तुझे कहा कि आवाज मत निकाल। फिर बोलता है। तेरी हड्डिया तोड दूँगा।' वह भयभीत हुआ और रुककर देखने लगा। तब तक एक ने पीठ मे बास की खपची लगा दी। दूसरे ने गरदन से पकड कर धकेल दिया। तीसरे ने पीठ पर थप्पा मारा। वह शेर के मुँह से मुक्त मृग की तरह भयभीत हुआ राजभवन पहुँचा। राजा भी सोचने लगा—'आज

मेरा पुत्र इस समाचार को सुनकर प्रसन्न होगा। दोनो पण्डितो की महान् धर्म-चर्चा होनी चाहिये। आज दोनो परस्पर क्षमा-याचना करेगे। यह मेरे लिये बहुत ही अच्छा है।' उसने केवट्ट को देख पण्डित के साथ हुई भेंट का समाचार जानने के लिये पूछा—

कथन्नु केवट्ट महोसधेन
समागमो आसि तदिङ्घ ब्रूहि,
कच्चि ते पटिनिज्झन्तो
कच्चि तुट्ठो महोसधो ॥९५॥

[हे केवट्ट! यहाँ बता कि महोषध से मुलाकात कैसी रही? क्या तुम्हारी क्षमा-याचना हो गई? क्या महोषध सन्तुष्ट हुआ? ॥९५॥]

ऐसा पूछने पर केवट्ट बोला—"महाराज! आप उसे पण्डित समझ कर लिये फिरते है। उससे बढकर तो कोई असत्पुरुष नही है।" उसने गाथा कही।

अनरियरूपो पुरिसो जनिन्द
असम्मोदको थद्धो असब्भिरूपो,
यथा मूगोव बधिरोव
न किञ्चत्थ अभासथ ॥९६॥

[हे राजन! वह तो अनार्य पुरुष है, सीधी बात न करने वाला है, कठोर है और असभ्य है। उसने तो गूगे-बहरे के समान मुझसे कुछ बातचीत ही नही की ॥९६॥]

राजा ने उसकी बात का न समर्थन किया और न खण्डन किया। उसको तथा उसके साथ आये हुओ को खर्चा दिलवा और उनके रहने की व्यवस्था कर कहा—'आचार्य्य! जायें। विश्राम करे।' इस प्रकार उसे विदाकर सोचने लगा—'मेरा पुत्र पण्डित है। मधुर व्यवहार करने में कुशल है। इसके साथ न कुशल-क्षेम की बात की और न प्रसन्नता प्रकट की। उसने कुछ न कुछ भावी-भय देखा होगा।' यह सोच स्वय ही गाथा कही—

अद्धा इदं मन्तपदं सुदुद्दसं
अत्थो सुद्धो नरविरियेन दिट्ठो,
तथा हि कायो मम सम्पवेधति
हित्वा सयं को परहत्थमेस्सति ॥९७॥

[निश्चय से यह मन्त्रणा दूसरे द्वारा अच्छी तरह जान ली गई है। वीर-आदमी ने यथार्थ बात जान ली। मेरा शरीर कापता है। है। अपने देश को छोडकर कौन दूसरे के हस्तगत हो ॥९७॥]

मेरे पुत्र ने ब्राह्मण के आगमन के दोष को पहचान लिया होगा। यह मैत्री करने के लिए नही आया। यह मुझे काम-भोग का प्रलोभन दे, नगर ले जाकर पकडने के लिये है—"यह भावी-भय उस पण्डित ने देख लिया होगा। इस प्रकार मन मे विचार करता हुआ जब वह डरा हुआ बैठा था, तो उस समय चारो पण्डित आये। उसने सेनक से पूछा—"सेनक! पञ्चाल नगर जा कर चूळनी राज की कन्या ले आना क्या तुझे अच्छा लगता है?" उत्तर दिया—'महाराज! आई लक्ष्मी को भगाना योग्य नही। यदि आप वहा जाकर उसे अङ्गीकार करेंगे, तो चूळनी *ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त सारे जम्बुद्वीप मे कोई भी आपकी समानता करने वाला नही* रहेगा। किसलिये? ज्येष्ठ-नरेश की लडकी ले लेने के कारण। 'शेप सारे राजा तो मेरे (अधीन) आदमी है, केवल एक वेदेह ही मेरे समान है' सोच सारे जम्बुद्वीप में सुन्दर कन्या वह आपको देना चाहता है। उसका कहना करे। आपके कारण हमे भी वस्त्र अलकार प्राप्त होगे।" राजा ने शेष पण्डितो से भी प्रश्न किया। उन्होने भी उसी प्रकार उत्तर दिया। जब वह उनके साथ बातचीत कर ही रहा था, केवट्ट ब्राह्मण अपने निवासस्थान से निकल 'राजा की अनुमति लेकर जाऊगा' सोच आया और बोला—"महाराज! हम विलम्ब नही कर सकते। हम जायेगे।" राजा ने सत्कार कर उसे विदा किया।

बोधिसत्व को जब पता लगा कि वह चला गया तो स्नान कर, अलकृत हो, राजा की सेवा मे आ, नमस्कार कर एक ओर खडे हुए। राजा सोचने लगा—'मेरा पुत्र महोषध पण्डित महामन्त्री है, मन्त्रणा मे पारङ्गत होने के कारण वह भूत, भविष्य, वर्तमान वाते जानता है। पण्डित यह जानता है कि हमे वहा जाना चाहिये अथवा नहीं जाना चाहिये? राग मे अनुरक्त और मोह मे मूढ होने के कारण अपने प्रथम सकल्प पर स्थिर न रह उससे पूछते हुए उसने गाथा कही—

छन्न हि एकोव मती समेति
ये पण्डिता उत्तमभूरिपत्ता,
यान अयान अथवापि ठान
महोसध त्वम्पि मति करोहि ॥९८॥

[हे महोपध ! हम छ प्रज्ञावानो का एक ही विचार है। आप भी अपना विचार कहे कि वहा जाना योग्य है ? न जाना योग्य है ? अथवा यही रहना योग्य है ? ॥९८॥]

यह सुन पण्डित ने सोचा—'यह राजा कामुकता मे बहुत आसक्त है। अपने अन्धेपन के कारण, अपनी मूर्खता के कारण इनका कहना मानता है। इसे जाने के दोप बता, रोकूगा।' उसने चार गाथाये कही—

जानासि खो राज महानुभावो
महब्बलो चूलनी ब्रह्मदत्तो,
राजा च त इच्छति कारणत्थ
मिग यथा ओकचरेन लुद्दो ॥९९॥

यथापि मच्छो बलिस वक मसेन छादित,
आमगिद्धो न जानाति मच्छो मरणमत्तनो ॥१००॥
एवमेव तुव राज चूळनीयस्स धीतर,
काम गिद्धो न जानासि मच्छोव मरणमत्तनो ॥१०१॥
सचे गच्छसि पञ्चाल खिप्पमत्त जहिस्ससि,
मिगं यथानुपथ व महन्त भयमेस्सति ॥१०२॥

[राजन् ! आप जानते है कि चूळनी ब्रह्मदत्त महाबलशाली, महाप्रतापी राजा है। वह राजा आपको मतलब से ही वहा बुलाना चाहता है, जैसे शिकारी पालतू मृगी से लुभा कर मृग को ॥९९॥ जैसे मास का लोभी मच्छ मास से ढके हुए काटे को नही जानता है और मरण को प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी चूळनी की कन्या के वशीभूत हो अपनी मृत्यु को नही पहचानता है ॥१००-१०१॥ यदि पञ्चाल जायेगा तो शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे गाव में आया हुआ मृग बडे भय को प्राप्त होता है, तू भी बडे भय को प्राप्त होगा ॥१०२॥]

अति-निन्दा करने से राजा को क्रोध आ गया। सोचने लगा—"यह मुझे अपने दास की तरह समझता है। यह समझता ही नही कि मै 'राजा' हूँ। श्रेष्ठ-राजा ने मेरे पास लडकी देने का समाचार भेजा है सुनकर एक भी मङ्गल-बात मुह से नही निकालता है। मेरे बारे मे कहता है कि यह मूर्ख मृग की तरह, काटा निगल जाने

वाले मच्छ की तरह (मनुष्य—) पथ पर आये हुए मृग की तरह मरण को प्राप्त होगा।
उसने क्रोध के वशीभूत हो दूसरी गाथा कही—

मयमेव बालम्हसे एळमूगा
ये उत्तमत्थानि तयी लपिम्ह,
किमेव त्व नँगलकोटि वद्धो
अत्थानि जानासि यथापि अञ्ञे ॥१०३॥

[हम ही महामूर्ख है जो ऐसी उत्तम बातो के बारे मे तेरे साथ वार्तालाप करते है। हे हलके सिरे को पकड कर बडे हुए बच्चे! तू इन बातो को दूसरो के समान कहाँ समझता है ॥१०३॥]

इस प्रकार उसे अपशब्द कह और उसका मजाक उडा और यह सोच कि यह गृहपति-पुत्र मेरे मङ्गल-कृत्य मे बाधक होता है, उसे निकलवाने के लिये गाथा कही—

इम गले गहेत्वान नासेथ विजिता मम,
यो मे रतनलाभस्स अन्तरायाय भासति ॥१०४॥

[यह मेरे (स्त्री) रत्न लाभ मे विघ्न डालने की बात करता है, इसे गरदन पकड कर मेरे देश से निकाल दो ॥१०४॥]

राजा क्रोधित है, जान बोधिसत्व ने सोचा, 'यदि कोई राजा की बात मान मेरा गला या हाथ पकड ले तो फिर यह मेरे लिये जीवन भर लज्जित रहने के लिये पर्य्याप्त होगा। इसलिये स्वय ही निकलूँगा।' उसने राजा को प्रणाम किया और अपने घर चला गया। राजा भी केवल क्रोधाभिभूत होने के कारण ही ऐसा बोला। बोधिसत्व के प्रति आदर होने से उसने किसी को ऐसा करने के लिये नही कहा। बोधिसत्व ने सोचा—'यह राजा मूर्ख है। अपना भला-बुरा नही जानता। कामुकता के वशीभूत हो 'उसकी लडकी अवश्य ही लूँगा' सोच, भावी-भय न जानने के कारण, जाने से महाविनाश को प्राप्त होगा। मुझे उसके कहने का ख्याल नही करना चाहिये। यह मेरा बडा उपकारी है। इसने मुझे बहुत ऐश्वर्य दिया है। मुझे इसका सहायक होना चाहिये। 'पहले तोते के बच्चे को भेज, यथार्थ बातजान, पीछे स्वय जाऊँगा' सोच उसने तोते के बच्चे को भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च सो अपक्कम्म वेदेहस्स उपन्तिका,
अथ आमन्तयी दूत माढर सुव पण्डित ॥१०५॥

एहि सम्म हरीपक्ख वेय्यावच्च करोहि मे,
अत्थि पञ्चाल राजस्स साळिका सयन पालिका ॥१०६॥
त पत्थरेन पुच्छस्सु सा हि सब्बस्स कोविदा,
सा तेस सब्ब जानाति रञ्ञो च कोसियस्सच ॥१०७॥
आमोति सो पटिस्सुत्वा माढरो सुव पण्डितो,
अगमासि हरीपक्खो साळिकाय उपन्तिक ॥१०८॥
ततोवखोसो गन्त्वान माढरो सुवपण्डितो
अय आमन्तयी सुघर साळिक मञ्जुभाणिक ॥१०९॥
कच्चि ते सुघरे खमनीय कच्चि वेस्से अनामय,
कच्चि ते मधुना लाजा लब्भते सुघरे तव ॥११०॥
कुसलञ्चेव ये सम्म अथो सम्म अनामय
अथो मे मधुना लाजा लब्भते सुव पण्डित ॥१११॥
कुतो नु सम्म आगम्म कस्स वा पहितो तुव
न च मेसि इतो पुब्बे दिट्ठो वा यदि वा सुतो ॥११२॥

[तब वेदेह के पास से जाकर उसने माढर नामक पण्डित-तोते दूत को बुलाया ॥ १०५॥ मित्र हरित-पक्ष ! आ मेरा काम कर। पञ्चाल राज के शयनागार मे एक मैना रहती है। उससे एकान्त मे पूछना। वह सब कुछ जानती है। वह उस राजा और केवट्ट ब्राह्मण की सब बातचीत जानती है ॥१०६-१०७॥ उस माढर तोते-पण्डित ने 'हाँ' यह वचन दिया और वह हरित-पक्ष उस मैना के पास जा पहूँचा ॥ १०८॥ उस माढर तोते-पण्डित ने वहाँ पहुँच उस सुघर-वासिनी, मधुरभाषिणी मैना को सबोधित किया ॥१०९॥ हे सुघरवासिनी ! तू सकुशल तो है ? हे वैश्य-वधु ! तू स्वस्थ तो है ? हे सुघरवासिनी ! क्या तुझे मधु और खील मिलती है ? ॥११०॥ मित्र ! मै सकुशल हूँ और हे मित्र ! मै स्वस्थ हू। और हे तोते-पण्डित ! मुझे मधुके साथ खील मिलती है ॥१११॥ मित्र ! तू कहाँ से आया है ? अथवा तुझे किसने भेजा है ? इससे पूर्व मैने तुझे देखा-सुना नही ॥११२॥]

उसकी बात सुन उसने सोचा—यदि मै कहूँगा कि मै मिथिला से आया हू तो यह मर जायेगी किन्तु मेरा विश्वास नही करेगी। मै सिवि राष्ट्र के अरिट्ठपुर नगर होता हुआ आया हू। इसलिये 'सिवि राजा द्वारा भेजा गया' बन, वहा से आया हूँ, यह मिथ्या बात कह दूँ। वह बोला—

अहोसिं सिविराजस्स पासादे सयनपालको
ततो सो धम्मिको राजा बद्धे मोचेसि बन्धना ॥११३॥

[मै सिविराज के प्रसाद मे उसके शयनागार में था। उस धार्मिक राजा ने मुझे बन्धन से मुक्त कर दिया ॥११३॥]

तब उस मैना ने उसके अपने लिये सोने की तशतरी मे रखी हुई मधु मिश्रित खील और मधुर जल देकर पूछा—"मित्र ! आप दूर से आये हैं ? किस उद्देश्य से आये हैं ?" उसने उसकी बात सुन 'रहस्य' पता लगाने की इच्छा से झूठा उत्तर दिया—

तस्स मेक दुतियासि साळिका मञ्जुभाणिका,
त तत्थ अवधी सेनो पेक्खतो सुघरे मम ॥११४॥

[मेरी एक प्रिय-भापिणी भार्य्या मैना थी। हे सुघरवासिनी उसे मेरे देखते-देखते बाज ने मार डाला ॥११४॥]

उसने उसे पूछा—"तेरी भार्य्या को बाज ने कैसे मार डाला ?" उसने उत्तर दिया—"भद्रे, सुन। एक दिन हमारे राजा ने जल-क्रीडा के लिये जाते समय मुझे भी बुलाया। मै भार्य्या सहित उसके साथ गया, खेला और सन्ध्या समय उसीके साथ लौट आया। फिर राजा के साथ ही प्रासाद पर चढ शरीर सुखाने के लिये, हम दोनो झरोखे से निकल मीनार के गर्भ मे बैठे। उसी क्षण एक बाज ने मीनार से निकल कर हम पर झपटा मारा। मैं मृत्यु के भय से तुरन्त भागा। वह उस समय गर्भिणी थी। इसलिये वह जल्दी से न भाग सकी। वह उसे मेरी नजर के सामने ही मार कर ले गया। मुझे शोक से रोता देख हमारे राजा ने पूछा—"क्यो रोता है ?", "अच्छा सौम्य मत रो। दूसरी भार्य्या खोज ले।" "देव ! दूसरी आचार विहीन दुश्शील भार्य्या के लाने से क्या लाभ ! अकेले ही विचरना अच्छा है।"

तब राजा ने मुझे यह कहकर यहाँ भेजा है—"सौम्य ! मै एक सदाचारिणी मैना को देखता हूँ। वह तेरी भार्य्या जैसी ही है। चूळनीराज के शयनागार मे रहने वाली मैना ऐसी ही है। तू वहाँ जाकर उसका मन जान, उसे राजी कर, यदि वह अच्छी लगे तो हमें आकर बता। मै या देवी वहाँ जाकर बडे ठाट-बाट से उसे ले आयगे।" मै इसीलिये आया हूँ, कह, गाथा कही—

तस्सा कामा हि सम्पत्तो आगतोस्मि तवन्तिके,
सचे करेय्यासि ओकास उभयोव वसामसे ॥११५॥

[उसी इच्छा से प्रसन्न होकर मैं तेरे पास आया हूँ। यदि तू अनुज्ञा करे तो हम इकट्ठे रहे ॥११५॥]

वह उसकी बात सुन प्रसन्न हुई। किन्तु मन की बात छिपाकर अनिच्छा प्रकट करती हुई सी बोली—

सुवो च सुवि कामेय्य साळिको पन साळिक,
सुवस्स साळिकाय च सवासो होति कीदिसो ॥११६॥

[तोता तोती को चाहे और मैना (पु) मैना (स्त्री०) को चाहे, यह तो स्वाभाविक है। किन्तु तोता और मैना का सहवास कैसा होगा ? ॥११६॥]

यह बात सुनी तो तोते ने सोचा—'यह इन्कार नही करती है। केवल नखरा ही करती है। यह निश्चय से मुझे चाहेगी। मै इसे नाना प्रकार की उपमाओ से विश्वास दिलाऊँगा' उसने गाथा कही—

य य कामी कामयति अपि चण्डालिकामपि,
सब्बेहि विदसो होति नत्थि कामे असादिसो ॥११७॥

[कामुक जिस जिसकी भी कामना करता है, भले ही वह चण्डालिनी हो, सभी सदृश ही होती है। काम-भोग में कही कुछ असादृश्य नही है ॥११७॥]

यह कह मनुष्यो मे नाना जातियो का परस्पर सवास दिखाने के लिये बाद की गाथा कही—

अत्थि जम्बावती नाम माता सिब्बिस्स राजिनो,
सा भरिया वासुदेवस्स कण्हस्स महेसी सिया ॥११८॥

[सिवि राजा की माता जम्बावती नाम की (चण्डालिनी) है। वह कृष्णायन (गोत्र) के (दस भाइयो में बडे भाई) वासुदेव की प्रिय भार्य्या हुई ॥११८॥]

यह उदाहरण देकर उसने दिखाया कि इस प्रकार के क्षत्रिय ने भी चण्डालिनी से सहवास किया। हम जानवरो के बारे मे क्या कहना ? परस्पर सवास का अच्छा लगना ही निर्णायक है। और भी उदाहरण देकर कहा—

रथावती किम्पुरिसी सापि वच्छ अकामयि,
मनुस्सो मिगिया सद्धि नत्थि कामे असादिसो ॥११९॥

[रथावती किन्नरी ने भी वच्छ तपस्वी की कामना की। मनुष्य ने मृगी के साथ भी सवास किया। काम-भोग मे असादृश्य नही है ॥११६॥]

उसकी बात सुनकर वह बोली—"स्वामी! चित्त सदैव एक जैसा नही रहता। मुझे प्रिय के वियोग से डर लगता है। तोता पण्डित था। स्त्री-माया मे कुशल था। उसने उसकी परीक्षा लेते हुए फिर गाथा कही—

हन्द खोह गमिस्सामि साळिके मञ्जुभाणिके,
पच्चक्खानु पद हेत अतिमञ्जसि नूनम ॥१२०॥

[हे प्रियभाषिणी मैना! मै जाता हूँ। तेरा यह इनकार ही है। 'यह मुझ चाहता है' समझ तू बहुत मान कर रही है ॥१२०॥]

ज्यो ही उसने सुना कि 'जाता हूँ', उसका हृदय टूट गया। उसे देखते ही मानो उसके मन मे काम-वासना की जलन पैदा हो गई थी। उसने डेढ गाथा कही—

न सिरी तरमानस्स माढर सुव पण्डित,
इधेव ताव अच्छस्सु याव राजान दक्खसि
सोस्ससि सद्द मुतिगानं आनुभावञ्च राजिनो ॥१२१॥

[हे माढर तोते-पण्डित! जल्दबाज को लक्ष्मी नही मिलती। जब तक राजा से भेट नही होती, तब तक यही रह। यहाँ मृदङ्ग आदि का शब्द सुनने को मिलेगा और राजा का प्रताप देखने को मिलेगा ॥१२१॥]

शाम को दोनो ने मैथुन-धर्म सेवन किया। हर तरह से परस्पर अत्यन्त प्रिय हो गये। तब तोते के बच्चे ने सोचा—"अब यह मुझसे रहस्य नही छिपायेगी। अब इससे पूछकर जाना चाहिये।" वह बोला—"मैना!" "स्वामी! क्या!"
"मै तुझे कुछ कहना चाहता हूँ। कहता हूँ।"

"स्वामी कहे।"

"अच्छा! आज हमारा मङ्गल-दिवस है। दूसरे दिन सोचूँगा।"

"स्वामी! यदि मङ्गल-बात है तो कहें, यदि अमाङ्गलिक हैं तो मत कहे।"

"यह तो मङ्गल-कथा ही है।"

"तो स्वामी! कहे।"

"यदि सुनना चाहती है तो तुझे कहता हूँ" कह उस रहस्य को पूछने के लिये डेढ गाथा कही—

यो नुखो य तिब्बो सद्दो तिरोजनपदे सुतो
धीता पञ्चालराजस्स ओसधी विय वण्णिनी,
त दस्सति विदेहान सो विवाहो भविस्सति ॥१२२॥

[दूसरे दूसरे जनपदो मे यह जोर का हल्ला सुना जाता है कि ओसधी तारे की तरह प्रकाश-युक्त वर्ग वाली, पञ्चालराज-कन्या विदेहो को दी जायगी और वह विवाह होगा। ॥२२॥]

उसकी बात सुनी तो वह बोली—"स्वामी। मङ्गल-दिन अमाङ्गलिक बात क्यो मुँह से निकालते हो?"

"मै मङ्गल-बात कहता हूँ। तू अमाङ्गलिक कहती है। यह क्या बात है?"

"स्वामी। शत्रुओ को भी ऐसी मङ्गल-क्रिया न हो।"

"तो भद्रे। बता।"

"स्वामी। नही कह सकती।"

"भद्रे। यदि तू मुझसे कोई रहस्य छिपायेगी तो उस दिन से हमारा सहवास नही होगा।"

उसके दबाव देने पर वह बोली—"तो स्वामी। सुने।' उसने गाथा कही—

ने दिसो ते अमित्तान विवाहो होतु माढर,
यथा पञ्चालराजस्स वेदेहेन भविस्सति ॥१२३॥

[माढर। तेरे शत्रुओ का भी ऐसा विवाह न हो जैसा पञ्चालराज तथा वेदेह का होगा ॥१२३॥]

इस गाथा के कहने पर जब उसने पूछा 'भद्रे। ऐसी बात क्यो कहती है?' तो उसने 'सुन, दोष बताती हूँ' कह दूसरी गाथा कही—

आनयित्वान वेदेह पञ्चालानं रथेसभो,
ततो न घातयिस्सति तस्स सखिख भविस्सति ॥१२४॥

[वेदेह को यहाँ मँगवाकर, पञ्चालो का राजा उसे मरवा डालेगा। उनकी मैत्री नही होगी ॥१२४॥]

इस प्रकार उसने तोते-पण्डित को सारा रहस्य बता दिया। यह सुन उसने केवट्ट की प्रशसा की—'आचार्य केवट्ट उपाय कुशल है। इसमें आश्चर्य नही कि वह ऐसे उपाय से राजा को मरवा डाले।' फिर बोला—'इस प्रकार की अमाङ्गलिक-

बात से हमे क्या लेना-देना' और चुप रह सो रहा। यह जान कि उसके आने का उदेश्य पूरा हो गया, वह रात उसके साथ विता, विदा होने की इच्छा से कहा—"भद्रे! मै सिवि राष्ट्र जाकर राजा से कहूँगा कि मुझे श्रेष्ठ भार्य्या मिल गई।" उसने गाथा कही—

हन्द खो म अनुजानाहि रत्तियो सत्तमत्तियो
यावाह सिविरास्जस आरोचेमि महेसिनो,
लद्धो च मे आवसथो सालिकाय उपन्तिक ॥१२५॥

[मुझे सात रात भर के लिये अनुज्ञा दे। मै जाकर सिवि राज की पटरानी को कह आऊँ कि मुझे मैना के साथ रहना मिल गया है ॥१२५॥]

मैना की इच्छा नही थी कि उससे वियोग हो, किन्तु उसकी वात सुन उसका विरोध न कर सकने के कारण उसने आगे की गाथा कही—

हन्द खो त अनुजानामि रत्तियो सत्तमत्तियो
सचे त्व सत्तरत्तेन नागच्छसि ममन्तिके,
मञ्ञे ओक्कन्तसत्त मे मताय आगमिस्ससि ॥१२६॥

[मै तुझे सात रातभर की छुट्टी देती हूँ। यदि तू सात रात के बाद मेरे पास नही आयेगा तो मै समझती हूँ कि मेरा प्राण निकलने पर मेरे मरने पर आयेगा ॥१२६॥]

उसने दिल मे तो सोचा, 'चाहे तू जी और चाहे मर, मुझे इससे क्या' किन्तु वाणी से बोला—'भद्रे! क्या कहती है। मै भी यदि आठवे दिन तुझे न देख पाऊँगा तो कैसे जीता रहूँगा।' वह वहाँ से उडा और थोडी दूर सिवि राष्ट्र की ओर जा, रुक कर मिथिला पहुँचा और पण्डित के कन्धे पर उतरा। बोधिसत्व ने उसे ऊपर महल पर ले जाकर पूछा। उसने सारा समाचार सुना दिया। उसने भी पूर्व प्रकार से उसका सत्कार किया।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च सो गन्त्वान माढरो सुव पण्डितो,
महोसधस्स अक्खासि सालिया वचन इद ॥१२७॥

[तव माढर नामक तोते-पण्डित ने जाकर मैना का यह कहना महोषध पण्डित को बता दिया ॥१२७॥]

यह बात सुनी तो बोधिसत्व को विचार आया—'मेरी सम्मति न रहने पर भी राजा जायेगा। जायेगा तो महान् विनाश को प्राप्त होगा। तब मेरी निंदा होगी—'ऐसे ऐश्वर्य्यदाता की बात का ख्याल कर उसकी रक्षा नही की।' मेरे जैसे पण्डित के रहते यह क्यो नष्ट होगा। यह मेरी जिम्मेदारी है कि मै राजा से भी पहले जाऊँ, चूलनी से भेंट करूँ, और भली प्रकार विदेह-नरेश के रहने के लिये नगर का निर्माण करवा, गव्यूति-मात्र चलने योग्य सुरग और आधे-योजन की बडी सुरग बनवाऊँ, और इस प्रकार चूळनी राजा की कन्या को अपने राजा की चरण-सेविका बनाऊँ, और अट्ठारह अक्षौहिणी सेना तथा सौ राजाओ के घेरकर खडे रहते हुए भी, अपने राजा को राहु के मुँह से चन्द्रमा को छुडा लाने की तरह छुडा कर ले आऊँ।' इस प्रकार विचार करते करते उसका मन प्रीति से भर गया। उसने प्रसन्नता के आवेश में प्रीति-वाक्य कहते हुए यह आधी गाथा कही—

यस्सेव घरे भुञ्जेय्य भोग,
तस्सेव अत्थ पुरिसो चरेय्य॥१२८॥

[आदमी को चाहिये कि जिसके घर मे रहकर भोगो का भोग करे, उसी का हित करे॥१२८॥]

उसने स्नान किया और अलकृत हो बडे ठाट-बाट से राजकुल जा, राजा को प्रणाम कर एक ओर खडे हो पूछा—"देव ! क्या आप उत्तरपञ्चाल नगर अवश्य ही जायेंगे ?" "हाँ तात ! यदि मुझे पञ्चाल चण्डी नही मिलती तो मुझे राज्य से क्या लाभ ? मुझे मत छोड। मेरे साथ ही चल। वहाँ जाने से हमारे दो प्रयोजन सिद्ध होगे—स्त्री-रतन प्राप्त होगा और राजा के साथ मैत्री स्थापित होगी।" "तो देव ! मै पहले जाकर आपके लिए निवास-स्थान बनवाऊँगा। जब मै सूचना भिजवाऊँ, तभी आप आइयेगा", । उसने दो गाथायें कही—

हन्दाह गच्छामि पुरे जनिन्द
पञ्चालराजस्स पुर सुरम्भ,
निवेसनानि मापेतु वेदेहस्स यसस्सिनो ॥१२९॥
निवेसनानि मापेत्वा वेदेहस्स यसस्सिनो,
यदाते पहिणेय्यामि तदा एय्यासि खत्तिय॥१३०॥

[राजन ! मै पाञ्चाल राज्य के सुन्दर नगर को पहले जाता हूँ—यशस्वी विदेह

के लिए निवास-स्थान बनवाने।।१२९।। जब मैं यशस्वी विदेह-नरेश के लिए निवास-स्थान बनवा चुकूँ और सन्देश भिजवाऊ, तो हे क्षत्रिय! आप तब आना ।।१३०।।]

यह सुन राजा यह सोच प्रसन्न हुआ कि पण्डित मुझे छोड नही रहा है। बोला—"तात! आगे जाते समय तुम्हे किस चीज की आवश्यकता है?"

"देव! सेना।"

"तात! जितनी चाहिए, उतनी ले जा।"

"देव! चारो जेलखानो के द्वार खुलवा, चोरो की हथकडियाँ-बेडियाँ कटवा, उन्हे भी मेरे साथ भेजे।" "तात! जैसा चाहे वैसा कर।"

बोधिसत्व ने जेलखाने खुलवाये, वहा से शूर योधा और ऐसे आदमी जो जहाँ जाये वहाँ कार्य सुफल करें निकलवाये और उन्हे कहा—'मेरी सेवा मे रहो।' फिर उनका सत्कार करवाया। बढई, लोहार, चमार, चित्रकार आदि नाना प्रकार के शिल्पियो की अठारह श्रेणियाँ ली। बसूला, कुल्हाडी, कुदाल, खती आदि बहुत से औजार लिए। इस प्रकार यह बहुत सी सेना ले नगर से निकला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च पायासि पुरे महोसधो
पञ्चाल राजस्स पुर सुरम्म
निवेसनानि मापेतुँ वेदेहस्स यसस्सिनो ।।१३१।।

[तब यशस्वी विदेह-राज के लिए निवास-स्थान बनवाने को महोषध आगे आगे पञ्चाल राज के सुन्दर नगर गया ।।१३१।।]

बोधिसत्व ने जाते समय योजन योजन की दूरी पर एक गाँव मे एक एक अमात्य को बसाकर कहा—'जब राजा पञ्चाल चण्डी को लेकर वापिस लौटे, तो तुम हाथी, घोडो तथा रथो को तैयार कर, राजा को ले, शत्रुओ से बच यथा-शीघ्र मिथिला पहुँच जाना।' उसने गङ्गा-तट पहुँच आनन्द-कुमार को बुलवाकर कहा—'आनन्द! तू तीन सौ बढइयो को लेकर गङ्गा के ऊपर जा और लकडी कटवा, तीन सौ नौकाये बनवा और नगर निर्माण के लिए वही शहतीर आदि छिलवा, हलकी लकडी से नौकाये भर शीघ्र आ।' किन्तु स्वय गङ्गा के उस पार जा, जहाँ उतराथा वहाँ से कदमो से ही गिनती कर निश्चय किया कि यह आधी-योजन जगह है, यहाँ बडी सुरग बनेगी। यहाँ हमारे राजा का निवास-नगर बनेगा। यहाँ से राजगृह तक गव्यूति-मात्र चलने-योग्य सुरग बनेगी। इस प्रकार निर्णय कर उसने नगर में प्रवेश

किया। चूळनी राजा को जव वोधिसत्व के आने की वात पता लगी तो उसने सोचा, अब मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। शत्रुओ का विनाश देख सकूंगा। यह आ गया है तो विदेह-राज भी शीघ्र ही आयेगा। उसे यह सोच वडा ही आनन्द हुआ कि दोनो को मारकर समस्त जम्बुद्वीप का राजा बनूंगा। सारे नगर मे हलचल मच गयी—'यह महोपध पण्डित है। इसने सौ राजाओ को ऐसे ही भगा दिया था जैसे ढेले से कौवे।' नागरिक जव उसके सौन्दर्य्य को निहार रहे थे तभी वोधिसत्व राज-द्वार पहुँचा और रथ से उतर राजा के पास सूचना भिजवाई। जब कहा गया कि आवे तो प्रविष्ट हो राजा को प्रणाम कर एक ओर खडा हुआ।

राजा ने उसका कुशल-क्षेम पूछ प्रश्न किया—"तात! राजा कब आयेगा?"
"देव! जब मै सूचना भिजवाऊँगा"।

"तू किसलिए आया है?"

"देव! आपने राजा के लिए निवास-स्थान बनवाने को।"

"तात! अच्छा।"

राजा ने उसकी सेना को खर्चा दिलवा, बोधिसत्व का भी बहुत सत्कार करा, निवास-स्थान दिलवा कर कहा—तात! जब तक तुम्हारा राजा आता है, तब तक उत्कण्ठा रहित होकर जो कुछ हमारे हित में हो वह भी करते रहो। उसने राज-भवन में चढते समय ही सीढियो के नीचे खडे हो निश्चय कर लिया कि इस जगह चलने की सुरग होगी। उसके मन मे विचार आया—'राजा कहता है कि हमारे हित मे जो हो सो करो। ऐसा करना चाहिए कि सुरग खोदते जाते समय यह सीढियो पर न चढे।' यह सोच उसने राजा से कहा—"देव! मैंने प्रवेश करते समय ही सीढियो के नीचे खडे हो इन की बनावट मे दोप देखा है। यदि आपको अच्छा लगे और लकडियाँ मिले तो मै इसे ठीक से बनवा दूँ।"

"तात! अच्छा। बनवा।"

उसने यहाँ सुरग-द्वार होगा, निश्चय कर उस सीढी को वहाँ से हटा, जहाँ सुरग-द्वार बनेगा वहाँ बालू न गिरने देने के लिये, पटडा लगवा, उसे ऐसा स्थिर कर कि गिरे नही, सीढी बनवाई। राजा उस भेद को न समझ सका। उसने यही सोचा कि मेरे स्नेह से करता है। इस प्रकार वह दिन मरम्मत में ही बिता अगले दिन कहा—"देव! यदि यह ज्ञात हो जाय कि हमारा राजा कहाँ रहेगा तो उसे अच्छी तरह ठीक-ठाक कर लें।"

"अच्छा पण्डित ! मेरे निवास-स्थान के अतिरिक्त नगर में जो स्थान भी सबसे अच्छा लगे वह स्थान ग्रहण कर।"

"महाराज ! हम अतिथि हैं। आपके बहुत से प्रिय योधा हैं। उनके घर लिए जायेंगे तो वे हमारे साथ युद्ध करेंगे। उनके साथ हम कैसे झगड़ेंगे?"

"पण्डित ! उनके कहने की चिन्ता न कर। जो स्थान तुझे अच्छा लगे ले।"

"देव ! वे बार-बार आकर आपको कहेंगे। उससे आपको चित्त की शान्ति नही मिलगी। यदि आप चाहे तो आप ऐसा कर सकते है कि जब तक हम घर लें तब तक हमारे ही आदमी द्वारपाल रहे। तब वे प्रवेश न पा लौट जायेंगे। ऐसा होने से आपको भी चित्त सुख होगा।"

राजा ने 'अच्छा' कहकर स्वीकार कर लिया। बोधिसत्व ने सीढी के नीचे, सीढी के ऊपर, बडे दरवाजे पर, सभी जगह अपने ही आदमी नियुक्त कर दिये और उन्हे आज्ञा दी—"किसी को भी न आने दो।"

तब पण्डित ने अपने आदमियो को आज्ञा दी।

'राज-माता का घर गिराने का ढग बनाओ।' उन्होने ड्योढी और बरामदे से ईंटे तथा मिट्टी गिरानी आरम्भ की। राज-माता ने यह समाचार सुना तो पूछा—'तात ! मेरा घर क्यो फोड रहे हो?"

'महोषध पण्डित इसे गिरवाकर अपने राजा के लिए भवन बनवाना चाहता है।"

"यदि ऐसा है तो यही रहो।"

"हमारे राजा की सेना-सवारी बहुत है। यह पर्याप्त नही है। दूसरा बनवायेंगे।"

"तुम मुझे नही पहचानते ! मै राज-माता हूँ। अभी पुत्र के पास जाकर सूचना दूँगी।"

"हम राजा के कहने से ही तुडवा रहे है। यदि रुकवा सके तो रुकवा।"

उसे क्रोध आया। अभी दण्ड की व्यवस्था करती हूँ सोच राज-द्वार गई। उसे रोका गया—'अन्दर प्रवेश मत कर।' 'तात ! मै राज-माता हूँ' "हम यह जानते है। किन्तु हमें राजा की आज्ञा है कि किसी को घुसने न दो। तू जा" जब उसने देखा कि उसे जो चाहिए वह नही मिलता तो रुक कर, खडी हो अपने घर को देखने लगी। तब एक ने उसे उठाकर, गर्दन से पकड जमीन पर गिरा दिया—यहाँ क्या करती है? जाती है या नही? उसने सोचा—राजा की ही आज्ञा होगी।

अन्यथा ये ऐसा न कर सकते। मै पण्डित के ही पास जाऊँगी। जाकर बोली—"तात महोषध! मेरा घर क्यो तुडवा रहा है?" उसने बातचीत नही की। किन्तु पास खडे हुए आदमी ने पूछा—"देवी, क्या कहती है?"

"तात पण्डित घर क्यो उजडवा रहा है?"

"विदेह राजा के लिये निवास-स्थान बनवाने को।"

"क्या वह यह मानता है कि इतने बडे नगर मे अन्यत्र स्थान नही मिलता है। यह लाख की रिश्वत लेकर अन्यत्र बनवा ले।"

"अच्छा देवी, आपका घर छोड देगे।"

"लेकिन रिश्वत की बात किसी से न कहना, नही तो दूसरे लोग भी रिश्वत लेकर अपना घर छुडाने की बात करेगे।"

"तात! मेरे लिये भी यह लज्जा की ही बात है कि राज-माता ने रिश्वत दी। मै किसी को नही कहूँगी।"

उसने 'अच्छा' कहा और उससे लाख की रिश्वत ले केवट्ट के घर पहुँचा। वह राजद्वार पहुँचा। वहाँ बाँस की खपच्चियो से उसकी चमडी उधेड दी गई। तब उसने भी इच्छा-पूर्ति होते न देख लाख की रिश्वत ही दी। इस प्रकार सारे नगर के घरो को लेकर उनसे रिश्वत लेने से नौ करोड कार्षापण इकट्ठे हो गये। बोधिसत्व सारे नगर मे घूम राज-कुल पहुँचा।

तब राजा ने पूछा—"पण्डित! क्या निवास स्थान मिला?" "महाराज! ऐसा कौन है जो न दे। किन्तु घर देने मे उन्हे कष्ट होता है। हमारे लिये भी यह योग्य नही है कि उनकी प्रिय वस्तु उनसे छुडाये। नगर से बाहर गव्यूति भर की दूरी पर गङ्गा और नगर के बीच मे अपने राजा का निवास-नगर बनवायेंगे।" यह बात सुन राजा ने सोचा, 'नगर के भीतर युद्ध करने में कठिनाई है। अपनी सेना और पराई सेना का पता नही लगता। नगर से बाहर युद्ध करना सहज है। नगर के बाहर ही इन्हें कूट-पीट कर मार डालेगे।' उसने प्रसन्न हो कहा, "अच्छा तात! जो स्थान तू ने चुना है वही बनवा।" "महाराज! मैं तो बनवाऊँगा। लेकिन जिस जगह हमारा काम चल रहा हो वहाँ लकडी-पत्तो आदि के लिये तुम्हारे आदमियो को नही जाना चाहिये। जायेंगे तो झगडा करेंगे। उससे न तुम्हे और न हमें ही चित्त की शान्ति मिलेगी।"

"अच्छा पण्डित! उधर आना जाना बन्द कर दे।"

"देव ! हमारे हाथियो को पानी मे रहने का वहुत अभ्यास है। वे पानी में ही खेलते है। पानी मैला हो जाने पर यदि नागरिक शिकायत करे कि जवसे महोपध आया है तवसे साफ पानी पीने को नही मिलता है तो उसे भी सहन करना होगा।" राजा ने 'तुम्हारे हाथी निश्चिन्त होकर खेले' कह नगर मे मुनादी करा दी—'जो यहाँ से निकलकर महोषध पण्डित के नगर-निर्माण की जगह जायेगा उसे हज़ार का दण्ड।'

बोधिसत्व ने राजा को नमस्कार किया और अपने आदमियो को ले, नगर से निकल छिपे स्थान पर नगर निर्माण कार्य्य आरम्भ किया। गङ्गा के पार गग्गली नाम का एक गाँव वसाया। वहाँ हाथी, घोडे, रथ, गौ तथा बैल रखे और नगर-निर्माण कार्य्य का विचार कर सारा कार्य बाँट दिया—इतना कार्य अमुक लोग करे। फिर सुरग बनाने के कार्य्य का निश्चय किया। बडी सुरग का द्वार गङ्गा-तीर पर रखा गया। छ हजार योधा वडी सुरग खोदने लगे। वडी वडी मशको मे मट्टी ले जाकर गङ्गा मे गिराते। जितनी मट्टी गिराई जाती उसे हाथी दबा देते। नदी मट-मैली हो गई। नगरवासी कहने लगते कि "महोपध पण्डित के आने के समय से अच्छा पानी पीने को नही मिलता। गङ्गा मटमैली ही बहती है। क्या कारण है?" पण्डित के नियुक्त आदमी समाधान करते—"महोषध के हाथी गङ्गा नदी मे क्रीडा करते है। वे पानी में कीचड कर देते है। इसीसे नदी मट-मैली बहती है।" बोधिसत्वो के उद्देश्य पूरे होते है। इसीसे सुरग मे जडे, पत्थर या ककड सभी जमीन मे चले गये। चलने की सुरग का द्वार उस नगर मे रहा। सात सौ आदमी चलने की सुरग खनने लगे। मशको आदि से मिट्टी ले जाकर उस नगर मे गिराते। जितनी मिट्टी गिराई जाती उसमे पानी मिला मिलाकर चारदीवारी चुनते जाते अथवा दूसरे काम करते। बडी सुरग का प्रवेश-द्वार नगर मे था। उसमे अठारह हाथ ऊँचा यन्त्र-द्वार लगा हुआ था। एक आणि के खीच लेने से बन्द हो जाता, एक आणि के खीच लेने से खुल जाता। बडी सुरग के दोनो ओर चुनाई कराकर चूने का पलस्तर करवाया। ऊपर तख्तो की छत बनवा, दिखाई देने के स्थान पर मिट्टी का लेप करवा सफैदी करवाई। कुल मिलाकर अस्सी वडे दरवाजे और चौसठ छोटे दरवाजे हुए। सभी यन्त्र-युक्त ही थे। एक आणि के खीचते ही सभी बन्द हो जाते, एक के खीचने से सभी खुल जाते। दोनो तरफ सैकडो दीपो के आले थे। वे भी यन्त्रयुक्त ही थे। एक के खोलने पर सभी खुल जाते, एक के वन्द होने पर सभी

वन्द हो जाते। दोनो ओर एक सौ क्षत्रियो के लिये एक सौ सोने के कमरे थे। एक एक में नाना वर्ण के विछौने विछे थे। किसी किसी मे श्वेत-छत्र सहित महान् शय्या थी, किसी किसी मे सिंहासन सहित महान् शैय्या थी, किसी किसी मे सुन्दर स्त्री-मूर्ति थी, विना हाथ से छूए यह पता ही न लगे कि यह मनुष्य नही है। सुरग की दोनो दीवारो मे चतुर चित्रकारो ने नाना प्रकार के चित्र वनाये। उन्होने शक्र लीला, सिनेरु (पर्वत) परिण्ड-सागर, महासागर चातुर्महाद्वीप, हिमालय, अनोतप्त-मनो शिलातल, चान्द, सूर्य्य, चातुर्महाराजिक देव, छ काम-स्वर्ग आदि सभी चीजे सुरग मे दिखाई। पृथ्वी पर चान्दी-वर्ण वालुका विखेर उस पर दर्शनीय कमल दिखाये। दोनो ओर नाना प्रकार की दुकाने भी दिखाई। जहाँ तहाँ सुगन्धित मालाये तथा पुष्प मालाये लटका 'सुधर्मा' नामक देवसभा की तरह सुरग को सजा दिया। उन तीन सौ वढइयो ने भी तीन सौ नौकाये वाँध, इमारती सामान से भर, गङ्गा से लाकर पण्डित को सूचना दी । उसने उन्हे नगर के काम में ले, 'जब मैं आज्ञा करूँ तब लाना' कह छिपे स्थान पर रखवाया। नगर मे पानी की खाई, अट्ठारह हाथ ऊँची चारदीवारी, गोपुर, अट्टालिका, राजभवन आदि भवन, हस्तिशाला आदि और पुष्करिणिया सभी कुछ वनकर समाप्त हो गया। बडी-सुरग, चलने की सुरग, नगर—ये सब कुछ चार महीने मे वनकर समाप्त हो गया। बोधिसत्व ने चार महीने के वाद राजा के पास आने के लिये दूत भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

निवेसनानि मापेत्वा वेदेहस्स यसस्सिनो,
अथस्स पहिणी दूत एहिदानि महाराज मापित ते निवेसनं ॥१३२॥

[यशस्वी विदेह के लिये निवास-स्थान का निर्माण कर दूत भेजा गया कि महाराज। आप आये। गृह-निर्माण हो चुका ॥१३२॥

दूत का कहना सुन प्रसन्न हो राजा बहुत से अनुयाइयो के साथ विदा हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दूसरी गाथा कही—

ततोव राजा पायासि सेनाय चतुरगिया,
अनन्त वाहन दट्ठुं फीत कम्पिलिय पुर ॥१३३॥

[तब राजा चतुरङ्गिनी सेना को लेकर अनन्त-सेना वाले समृद्धिशाली काम्पिल्य नगर को देखने गया ॥१३३॥]

वह क्रमश गङ्गा के तट पर पहुँचा। वोधिसत्व ने अगवानी की और राजा को नवनिर्मित नगर मे लिवा ले गया । उसने वहाँ श्रेष्ठ प्रासाद में रह, नाना प्रकार के

श्रेष्ठ भोजन खा, थोडा विश्राम कर, शाम को अपने आगमन की सूचना देने के लिये दूत भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततोव खो सो गन्त्वान ब्रह्मदत्तस्स पाहिणि,
आगतोस्मि महाराज तव पादानि वन्दितुं ॥१३४॥
ददाहि दानि मे भरिय नारिं सब्बगसोभिनिं,
सुवण्णेन परिच्छन्न दासीगणपरक्खवत्त ॥१३५॥

[तब उसने जाकर ब्रह्मदत्त को सूचना भिजवाई—महाराज! आपके चरणो की वन्दना करने के लिए आ गया हूँ। अब मुझे सर्वाङ्ग सुन्दर नारी भार्य्या के रूप मे दे जो स्वर्ण से ढँकी हो और जिसके साथ दासिया हो ॥१३४-१३५॥]

दूत की बात सुन चूळनी प्रसन्न हुआ—अब मेरा शत्रु कहाँ जायेगा? दोनो के सिर काटकर जयपान करेंगे। उसने क्रोध से उत्पन्न प्रसन्नता प्रकट करते हुए दूत का सत्कार कर आगे की गाथा कही—

स्वागत ते वेदेह अथो ते अदुरागत
नक्खत्तञ्ञेव परिपुच्छ अहं कञ्ञं ददामि ते,
सुवण्णेन पटिच्छन्न दासीगणपुरक्खत ॥१३६॥

[हे वेदेह! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारा आगमन शुभ है। नक्षत्र पूछ। मै तुझे दासियो सहित, स्वर्णाच्छादित कन्या दूगा ॥१३६॥]

यह सुन दूत ने विदेह-नरेश के पास जा सूचना दी, "देव! मङ्गल-कृत्य के लिये योग्य नक्षत्र जाने। राजा तुम्हे कन्या देगे।" उसने दुबारा दूत भेजा—'आज ही योग्य नक्षत्र है।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च राजा वेदेहो नक्खत्त परिपुच्छथ,
नक्खत्त परिपुच्छित्वा ब्रह्मदत्तस्स पाहिणि ॥१३७॥
ददाहिदानि मे भरिय नारिं सब्बगसोभिनिं,
सुवण्णेन पटिच्छन्न दासिगणपुरक्खत ॥१३८॥

[तब विदेह-नरेश ने नक्षत्र पूछा और नक्षत्र पूछकर चूळनी राज के पास दूत भेजा—मुझे सर्वाङ्ग सुन्दरी, सोने से ढँकी, दासियो सहित नारी भार्य्या रूप मे दें ॥१३७-१३८॥]

चूळनी राजा ने भी कहलाया—

ददामि दानि ते भरियं नारिं सब्बगसोभिनिं,
सुवण्णेन पटिच्छन्नं दासीगणपुरक्खतं ॥१३९॥

[मै अब तुझे सर्वाङ्ग सुन्दरी, स्वर्ण से आच्छादित, दासियो से घिरी नारी भार्य्या रूप मे देता हूँ ॥१३९॥]

यह गाथा कह 'अब भेजता हूँ, अब भेजता हूँ' झूठ बोलते हुए एक सौ राजाओ को सकेत किया—अट्ठारह अक्षौहिणी सेना के साथ सभी युद्ध के लिये तैयार हो निकले। दोनो शत्रुओ के सिर काट कल जय-पान करेगे। वे सभी निकल पडे। अपने निकलते समय उसने माता तलताल देवी को, पटरानी नन्दा देवी को, पुत्र पञ्चाल चण्ड को और पुत्री पञ्चालचण्डी को महल पर ही रहने दिया।

बोधिसत्व ने चूळनी नरेश और उसके साथ आई सेना का बडा सत्कार किया। कुछ मनुष्य सुरा पान करते थे। कुछ मत्स्य मास आदि खाते थे। कुछ दूर से चलकर आने के कारण थकावट के मारे सोते थे। विदेह राजा तो सेनकादि पण्डितो को ले, अमात्यगणो से घिरा हुआ अलकृत महाप्रासाद के ऊपर बैठा था। चूळनी राजा भी अट्ठारह अक्षोहिणी सेना को ले नगर को 'तीन जोडो तथा चार सक्षेपों' से घेरकर, सैकडो-हजारो मशाले लिये सूर्य्योदय करता हुआ सा बडी तैय्यारी किये खडा था।

यह जान बोधिसत्व ने अपने तीन सौ योधाओ को भेजा—"तुम चलने की सुरग से जाकर राजा की माँ, पटरानी, पुत्र और पुत्री को चलने की सुरग से लाकर, यहाँ सुरग से ले जाकर, सुरग-द्वार से बाहर न निकाल, जब तक हमारा आगमन न हो, तब तक सुरग के अन्दर ही उन्हें रखे रह, हमारे आगमन के समय सुरग से निकाल, सुरग के दरवाजे पर महान् विशाल तल्ले पर बिठाना। उन्होने उसका कहना स्वीकार किया और चलने की सुरग से जा, सीढियो की जड मे रखे हुए तख्तो को निकाला। फिर सीढियो के नीचे, सीढियो के ऊपर और महान् तल्ले पर पहरा देने वालो के तथा कुबडे आदि अन्य प्रकार के लोगो के हाथ-पैर बाँध मुँह बन्द कर दिये और उन्हें जहाँ-तहाँ छिपी जगहो में रख दिया। तब राजा के लिये तैय्यार खाद्यसामग्री मे से कुछ खा और कुछ चूर्ण-विचूर्ण कर प्रासाद के ऊपर चढे।

उस समय तलताल देवी यह सोच कि कौन जाने क्या होगा,नन्दादेवी को, राजपुत्र को तथा राजकन्या को, अपने पास एक ही शैय्या पर सुलाती थी। उन

योद्धाओ ने कमरे के बीच मे खडे होकर आवाज दी। उसने निकल कर पूछा—"तात ! क्या है?" "देवी। हमारे राजा ने विदेह-नरेश को तथा महोपध को जान से मार डाला है और अब सारे जम्बुद्वीप का एकछत्र राजा हो गया है। उसने सौ राजाओ के मध्य बैठ बडे ठाट-बाट से महापान पीते हुए हमें भेजा है कि आप चारो जनो को लेकर आये। वे महल से उतर सीढियो के नीचे पहुँचे। वे उन्हे ले, चलने की सुरग मे पहुँचे। वे बोले—"हमें यहाँ रहते इतना समय हो गया, हमने यह गली नही देखी।" "इस गली मे सदैव नही उतरा जाता। इसका नाम मङ्गल-गली है। आज मङ्गल-दिवस होने से राजा ने इसी गली से लाने की आज्ञा दी है।" उन्होने उनका विश्वास कर लिया। कुछ उन चारो जनो को लेकर चले। कुछ रुके और राज-भवन का रतनगृह खोल यथेच्छ मूल्यवान्-धन लेकर आये। दूसरे चारो जनो ने भी जब आगे बडी सुरग को देव-सभा की तरह अलङ्कृत देखा तो सोचा, राजा के लिये सजाई गई होगी। वे उन्हें महागङ्गा के पास ले गये और सुरग के अन्दर ही सजे भवन मे बिठा कुछ पहरा देने लगे और कुछ उनके ले आने की बोधिसत्व को सूचना देने गये।

उसने उनकी बात सुनी तो प्रसन्न हुआ। सोचा, अब मेरा मनोरथ पूरा होगा। वह राजा के पास जा एक ओर खडा हुआ। राजा भी कामुकता के वशीभूत हुआ 'अब वह लडकी भेजता है, अब वह लडकी भेजता है' सोचता हुआ पलग से उठ खिडकी के पास जा खडा हुआ। जब उसने लाखो मशालो से प्रकाशित और भारी सेना से घिरा हुआ नगर देखा तो उसके मन मे सन्देह हुआ कि यह क्या है? उसने पण्डित के साथ मन्त्रणा करते हुए गाथा कही—

> हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना तिट्ठन्ति वम्मिता,
> उक्का पदित्ता झायन्ति किन्नु मञ्ञन्ति पण्डिता ॥१४०॥

[हाथी, घोडे, रथ और कवच पहने पैदल सेना खडी है। प्रज्वलित मशालें जल रही है। हे पण्डित ! इसका क्या अर्थ है? ॥१४०॥]

यह सुन सेनक बोला—"महाराज ! चिन्ता न करें। आज बहुत मशाले दिखाई दे रही है। मालूम होता है कि राजा तुम्हें देने के लिये लडकी लिये चला आ रहा है। पुक्कस का कहना था कि तुम्हारा सत्कार करने के लिये सेना लेकर खडा होगा। जो जिसे अच्छा लगा वह उसने कहा। राजा को जब यह आवाजें सुनाई देने लगी कि अमुक स्थान पर सेना खडी हो, अमुक स्थान पर पहरेदार हो,

तथा अप्रमादी रहो और उसने कवच पहने सेना देखी तो उसे मरने का डर लगा। उसने बोधिसत्व का मत जानने की कामना से गाथा कही—

हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना तिट्ठन्ति वम्पिता,
उक्का पदित्ता झायन्ति किन्नु काहान्ति पण्डिता ॥१४१॥

[हाथी, घोडे, रथ तथा कवच पहने पैदल सेना खडी है। प्रज्वलित मशाल जलते है। पण्डित! (हम) क्या करेंगे? ॥१४१॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा, इस अन्धे मूर्ख को थोडा डराकर पीछे अपना बल दिखाकर सान्त्वना दूँगा। उसने गाथा कही—

रक्खति त महाराज चूळनीयो महब्बलो,
पदुट्ठो ते ब्रह्मदत्तो पातो त घातयिस्सति ॥१४२॥

[महाराज! बलशाली चूलनीय ने आपको घेर लिया है। दुष्ट ब्रह्मदत्त प्रात काल आपका घात कर देगा ॥१४२॥]

यह सुन सभी को मृत्यु-भय लगा। राजा का कठ सूख गया। मुँह से थूक गिरने लगा। शरीर जलने लगा। उसने मृत्यु से भयभीत हो रोते पीटते दो गाथायें कही—

उब्बेधते मे हदय मुखञ्च परिसुस्सति,
निब्बुतिं नाधिगच्छामि अग्गिदड्ढोव आतपे ॥१४३॥
कम्मारान यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि
एवम्पि हदय मय्ह अन्तो झायति नो बहि ॥१४४॥

[मेरा हृदय कापता है। मुँह सूखता है। जैसे आग से जले आदमी को धूप मे शान्ति नही प्राप्त होती उसी प्रकार मुझे चैन नही है ॥१४३॥ जैसे सुनारो की आग अन्दर से जलाती है बाहर से नही, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अन्दर से जल रहा है, बाहर से नही ॥१४४॥]

बोधिसत्व ने उसका रोना सुन 'यह मूर्ख और समय मेरी बात नही मानता' सोच उसका थोडा और निग्रह करने के लिये कहा—

पमत्तो मन्तनातीतो भिन्नमन्तोसि खत्तिय,
इदानि खो त तायन्तु पण्डिता मन्तिनो जना ॥१४५॥
अकत्वा मच्चस्स वचन अत्थकामहितेसिनो,
अत्तपीति रतो राज मिगो कुटेव ओहितो ॥१४६॥

यथापि मच्छो बलिस वक मसेन छादित,
आमगिद्धो न जानाति मच्छो मरणमत्तनो ॥१४७॥
एवमेव तुव राज चूळनेय्यस्स धीतर
कामगिद्धो न जानासि मच्छोव मरणमत्तनो ॥१४८॥
सचे गच्छासि पञ्चाल खिप्पमत्त जहेस्ससि,
मिग पथानुपन्न व महन्त भयमेस्सति ॥१४९॥
अनरियरूपो पुरिसो जनिन्द
अहीव उच्छङ्गगतो डसेय्य,
न तेन मेत्तिं कयिराथ धीरो
दुक्खो हवे का पुरिसेन सगमो ॥१५०॥
यन्त्वेव जञ्ञा पुरिसं सीलवायं बहुस्सुतो,
तेनेव मेत्तिं कयिराथ धीरो
सुखो हवे सुप्पुरिसेन सगमो ॥१५१॥

[हे क्षत्रिय ! तू प्रमत्त है, मन्त्रणा के अनुसार चलने वाला नही है। मित्र मन्त्रणा के अनुसार चलने वाला है। अब वे मन्त्रणा देनेवाले पण्डित-जन तेरा त्राण करें ॥१४५॥ हितैषी अमात्य का कहना न मानकर हे राजन ! अपने मजे में मस्त होने के कारण आप जाल मे फँसे मृग की भान्ति हो गये ॥१४६॥ जैसे मास से ढके काटे को मछली निगल जाती है और मास के लोभ के कारण अपनी मृत्यु को नही देख सकती है, उसी प्रकार हे राजन् ! आप चूळनी राज की कन्या की कामना के कारण अपनी मृत्यु को नही देखते है ॥१४७-१४८॥ यदि पञ्चाल जायेंगे तो शीघ्र ही अपना आप गँवा देंगे। (मनुष्य–) पथ मे आये मृग की तरह बडे भय को प्राप्त होंगे ॥१४९॥ हे राजन् ! अनार्य पुरुष गोद मे बैठे सर्प की तरह डसता है। बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि उससे मैत्री न करे। दुष्ट आदमी की सगति का परिणाम दु ख ही होता है ॥१५०॥ जिसे जाने कि यह सदाचारी है और बहुश्रुत है, बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि उसीसे मैत्री करे। सत्पुरुष की सगति का परिणाम सुख होता है ॥१५१॥]

उसे 'फिर ऐसा तो नही करेगा' कह, और अच्छी तरह निग्रह करते हुए राजा की पहले कही हुई बात याद दिलाई—

बालो तुव एळभूगो सि राज
यो उत्तमत्थानि मयि लपित्थो,
किमेवाह नगलकोटिवद्धो
अत्थानि जानिस्स यथापि अञ्ञे ॥१५२॥
इम गले गहेत्वान नासेथ विजिता मम,
यो मे रतन लाभस्स अनन्तरायाय भासति ॥१५३॥

[हे राजन्! आप वज्रमूर्ख है कि आपने मुझसे ऐसी ऊँची दर्जे की बाते की। मै हल की मूठ पकडने वाला औरो की तरह ऊँची-ऊँची बातो को कैसे समझ सकता हू! ॥१५२॥ इसे गर्दन से पकड मेरे देश से निकाल दो जो यह मेरे रतन-लाभ में विघ्न डालने वाली बात कहता है ॥१५३॥]

ये दो गाथाये कह बोधिसत्व ने और भी कहा—"महाराज! मै किसान का लडका हूँ। जैसे तेरे दूसरे सेनक आदि पण्डित बातें समझते है वैसे मै कैसे समझ सकता हूँ। यह मेरा अविपथ है। मै तो गृहस्थ का शिल्प ही जानता हूँ। यह बात सेनकादि ही समझते हैं। वे पण्डित हैं। आज अठारह अक्षौहिणी सेना से घिरे होने की हालत में तुम्हे बचाये। मुझे तो गरदन से पकड कर निकालने की आज्ञा दी थी। अब मुझे किसलिये पूछता है?" इस प्रकार उसका और भी निग्रह किया। यह सुन राजा ने सोचा—"पण्डित मेरा दोष ही कह रहा है। उसने पहले ही भावी-भय देख लिया था। इसीलिये मेरा अत्यन्त निग्रह कर रहा है। किन्तु यह इतने समय तक निकम्मा नही रहा होगा। इसने अवश्य ही मेरी सुरक्षा की व्यवस्था की होगी।" उससे अनुरोध करते हुए उसने दो गाथाये कही—

महोसध अतीतेन नानुविज्झन्ति पण्डिता,
किं म अस्स व सम्बद्ध पतोदेनेव विज्झसि ॥१५४॥
सचेव पस्सासि मोक्ख खेम वा पन पस्ससि,
तेनेव म अनुसास किं अतीतेन विज्झसि ॥१५५॥

[हे महोषध! पण्डितजन भूतकाल की बात को लेकर (वाणी से) नही बीधते है। घोडे की तरह बधे हुए मुझको तू कोडो से क्यो पीटता है? ॥१५४॥ यदि मुक्ति का मार्ग दिखाई देता है, यदि कल्याण दिखाई देता है तो मुझे वही बता। पुरानी बात लेकर अब (वाणी से) क्यो बीधता है? ॥१५५॥)

तब बोधिसत्व ने सोचा—"यह राजा बहुत अन्धा मूर्ख है, पुरुष-विशेष को भी नही पहचानता है। इसे थोडा तग करके बाद मे इसकी सहायता करूगा।" तब उसने कहा—

अतीत मानुस कम्म दुक्कर दुरभिसम्भव,
न तसक्कोमि मोचेतुं त्वम्पि जानस्सु खत्तिय ॥१५६॥
सन्ति वेहासया नागा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्यु यस्स होन्ति तथा विधा ॥१५७॥
सन्ति वेहासय अस्सा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्यु यस्स होन्ति तथाविधा ॥१५८॥
सन्ति वेहासया पक्खी इद्धिमन्तो यसस्सिनो
तेपि आदाय गच्छेय्यु यस्स होन्ति तथा विधा ॥१५९॥
सन्ति वेहासया यक्खा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्यु यस्स होन्ति तथाविधा ॥१६०॥
अतीत मानुस कम्म दुक्कर दुरभिसम्भव,
न त सक्कोमि मोचेतुं अन्तलिक्खेन खत्तिय ॥१६१॥

[मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है। मै तुझे उससे मुक्त नही कर सकता। हे क्षत्रिय! तू ही जान ॥१५६॥ भृद्धिमान्, यशस्वी नाग है जो आकाश मार्ग से ले जाने में समर्थ है, यदि किसी के पास वैसे (हाथी) हो तो वे भी उसे आकाश-मार्ग से ले जा सकते है ॥१५७॥ बुद्धिमान्, यशस्वी घोडे है जो ले जा सकते है ॥१५८॥ बुद्धिमान् यशस्वी पक्षी है जो ले जा सकते है ॥१५९॥ भृद्धिमान् यशस्वी आकाशगामी यक्ष है ले जा सकते है ॥१६०॥ मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है। हे क्षत्रिय! मै तुझे आकाश-मार्ग से मिथिला नगरी ले जाकर उससे नही बचा सकता ॥१६१॥]

राजा यह सुन अप्रतिहत हो गया। तब सेनक ने सोचा—अब राजा के लिए और हमारे लिये भी पण्डित के सिवाय दूसरा कोई सहारा नही। राजा तो इसकी बात सुन भयभीत हो गया है। कुछ बोल नही सकता। मै पण्डित से प्रार्थना करता हूँ। उसने दो गाथाये कही—

अतीरदस्सी पुरिसो महन्ते उदकण्णवे,
यत्थ सो लभते गाध तत्थ सो विन्दते सुख ॥१६२॥
एव अम्हञ्च रञ्ञोच त्व पतिट्ठा महोसध,
त्व नोसि मन्तिन सेट्ठो अम्हे दुक्खा पमोचय ॥१६३॥

[भारी समुद्र मे डूबने वाले आदमी को जब किनारा नही दिखाई देता, तो जहाँ कही भी उसे शरण-स्थान मिलता है वही वह सुख का अनुभव करता है ॥१६२॥ इसी प्रकार हे महोषध अब हमारा और राजा का तू ही शरण-स्थान है। तू ही हम मन्त्रियो में श्रेष्ठ है। हमें दु ख से मुक्त कर ॥१६३॥]

उसका निग्रह करते हुए बोधिसत्व ने गाथा कही—

अतीत मानुस कम्म दुक्कर दुरभिसम्भव,
न न सक्कोमि मोचेतु त्वम्पि जानस्सु सेनक ॥१६४॥

[मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है, मैं तुझे उससे मुक्त नही कर सकता। हे सेनक! तू ही जान ॥१६४॥]

राजा ने इच्छापूर्ति का रास्ता न देख, मृत्यु से भयभीत हो बोधिसत्व से बातचीत करने में अपने आपको असमर्थ पा सोचा—'हो सकता है सेनक ही कोई उपाय जानता हो, उससे पूछता हूँ।' उसने गाथा कही—

सुणोहि मेत वचन यस्ससेतं महब्भय,
सेनक दानि पुच्छामि किं किच्च इध मञ्ञसि ॥१६५॥

[मेरा वचन सुन। यह महान् भय दिखाई देता है। हे सेनक! मै पूछता हूँ कि अब क्या करना योग्य है? ॥१६५॥]

यह सुन सेनक ने सोचा—'राजा उपाय पूछता है। भला हो चाहे बुरा इसे एक उपाय बताता हूँ।' उसने गाथा कही—

अग्गि द्वारतो देम गण्हामसे विकत्तन,
अञ्ञमञ्ञ वधित्वान खिप्प हेस्साम जीवित ॥
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिर दुक्खेन मारयि ॥१६६॥

[हम द्वार बन्द करके आग लगा दें और शस्त्र ले परस्पर एक दूसरे का वध कर शीघ्र ही मर जायें। हमें राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दु ख देकर न मारे ॥१६६॥]

यह सुन राजा असन्तुष्ट हुआ। बोला—अपने स्त्री-बच्चो की इस प्रकार चिता बना। उसने पुक्कुस आदि से प्रश्न किया। उन्होने भी अपनी मूर्खता के अनुरूप ही बात कही। इसीलिये कहा गया है—

सुणोहि एतं वचन पस्ससेत महब्भयं,
पुक्कुसं दानि पुच्छामि किं किच्च इध मञ्ञसि ॥१६७॥

[यह वचन सुन। यह महान भय दिखाई देता है। हे पुक्कस! मै पूछता हू कि अब क्या करना चाहिए? ॥१६७॥]

विस खादित्वा मिय्याम खिप्प हेस्साम जीवित,
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिर दुक्खेन मारयि ॥१६८॥

[हम जहर खाकर मर जायेगे। शीघ्र ही जीवन समाप्त कर देंगे। हमे राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दु ख देकर न मारे ॥१६८॥]

सुणोहि एत वचन पस्ससेत महब्भय,
काविन्द दानि पुच्छामि कि किच्चं इध मञ्ञसि ॥१६९॥

[यह वचन सुन। यह महान् भय दिखाई देता है। हे काविन्द! मै पूछता हूँ कि अब क्या करना चाहिए? ॥१६९॥]

रज्जुया बज्झ मिय्याम पपाता पपतेमसे,
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिर दुक्खेन मारयि ॥१७०॥

[हम फासी लगाकर मर जायेगे, प्रपात से गिर पडेगे। हमें राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दु ख देकर न मारे ॥१७०॥]

सुणोहि एत वचन पस्ससेत महब्भय,
देविन्ददानि पुच्छामि किं किच्च इध मञ्ञसि ॥१७१॥

[यह वचन सून। यह महान भय दिखाई देता है। हे देविन्द! मै पूछता हूँ कि अब क्या करना चाहिए ? ॥१७१॥]

अग्गिं द्वारतो देम गण्हामसे विकत्तनं,
अञ्ञमञ्ञ वधित्वान खिप्प हेस्साम जीवित,
न नो सक्कोति मोचेतु सुखे नेव महोसधो ॥१७२॥

[हम द्वार बन्द करके आग लगादे, और शस्त्र ले परस्पर एक दूसरे का वध कर शीघ्र ही मर जाये। जब महोपध भी हमें नही बचा सकता (तब और क्या करें?) ।।१७२।।]

यह सुन राजा ने बोधिसत्वके प्रति किये गये अपराध का स्मरण कर,उसके साथ वार्तालाप न कर सकने के कारण, उसे सुनाकर विलाप-गाथाये कही—

यथा कदलिनो सार अन्वेस नाधिगच्छति,
एव अन्वेसमानान पञ्ह नाज्झ गमामसे ।।१७३।।
यथा सिम्बलिनो सार अन्वेस नाधिगच्छति,
एव अन्वेसमानान पञ्ह नाज्झगमामसे ।।१७४।।
अदेसे वत नो वुत्थ कुञ्जरान वनोदके,
सकासे दुम्मनुस्सान बालानमविजानत ।।१७५।।
उब्बेधते मे हृदय मुखञ्च परिसुस्सति,
निब्बुति नाधिगच्छामि अग्गिदड्ढोव आतपे ।।१७६।।
कम्मारान यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि,
एवम्पि हृदय मय्ह अन्तो झायति नो बहि ।।१७७।।

[जैसे केले के तने के छिलके उतारने से अन्दर से कोई सार तत्व नही निकलता, उसी प्रकार हमारे खोजने पर भी हमे प्रश्न का उत्तर नही मिलता ।।१७३।। जिस प्रकार सिम्बली-बृक्ष में से भी खोजने पर कुछ सार-तत्व नही प्राप्त होता, उसी प्रकार हमारे खोजने पर भी हमें प्रश्न का उत्तर नही मिलता ।।१७४।। जैसे हाथी का निर्जल स्थान में निवास हो, उसी प्रकार इन दुष्ट, मूर्ख तथा अजानकार मनुष्यो के बीच हमारा रहना अदेश में रहना है ।।१७५।। मेरा हृदय कापता है। मुँह सूखता है। जैसे आग से जले आदमी को धूप में शान्ति प्राप्त नही होती, उसी प्रकार मुझे चैन नही है ।।१७६।। जैसे सुनारो की आग अन्दर से जलाती है, बाहर से नही, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अन्दर से जल रहा है, बाहर से नही ।।१७७।।]

यह सुना तो पण्डित ने सोचा—यह राजा अत्यन्त कष्ट पा रहा है। यदि इसे सान्त्तवना नही दूगा, तो इसका हृदय फट जायगा और यह मर जायगा। उसने उसे सान्त्तवना दी।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो सो पण्डितो धीरो अत्थदस्सी महोसधो,
वेदेह दुक्खित दिस्वा इ वचनम ब्रवी ॥१७८॥
मा त्व भायि महाराज मात्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि राहुगहितव चन्दिम ॥१७९॥
मा त्व भायि महाराज मा त्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि राहुगहितव सूरिय ॥१८०॥
मा त्व भायि महाराज मात्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि पङ्के सन्तव कुञ्ज ॥१८१॥
मा त्व भायि महाराज मा त्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि पेळाबध्दव पन्नग ॥१८२॥
मा त्व भायि महाराज मा त्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि मच्छे जालगतेरिव ॥१८३॥
मा त्व भायि महाराज मा त्व भायि रथेसभ,
अह त मोचयिस्सामि सयोग्गबल वाहन ॥१८४॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्व भायि रथेसभ,
पञ्चाल वाहयिस्सामि काकसेनव लेड्डुना ॥१८५॥
आवु पञ्जा किमत्थिया अमच्चोवापि तादिसो,
यो त सब्बाध पक्खन्त दुक्खा न परिमोचये ॥१८६॥

[तब उस प्रज्ञावान्, अर्थदर्शी, पण्डित महोषध ने विदेह-राज को दुखी देख ये वचन कहे ॥१७८॥ महाराज! आप मत डरे। राजन्! आप मत डरे। मैं आपको राहु के मुख से चन्द्रमा को मुक्त करा लेने की तरह मुक्त करा लूंगा ॥१७९॥ महाराज। आप मैं आपको राहु के मुख से सूर्य्य को मुक्त करा लेने की तरह मुक्त करा लंगा ॥१८०॥ महाराज! आप मैं आपको कीचड मे फसे हाथी की तरह मुक्त करा लूंगा ॥१८१॥ महाराज! आप मैं आपको पिटारी में से साँप को मुक्त कराने की तरह मुक्त करा लूँगा ॥१८२॥ महाराज! आप . मैं आप को जाल में फँसी हुई मछली की तरह मुक्त करा लूगा ॥१८३॥ महाराज! आप . मै आपको रथ, सेना तथा वाहनो सहित मुक्त करा लूगा ॥१८४॥ महाराज! आप मैं पञ्चालो को ऐसे भगा दूंगा जैसे ढेले से कौओ

की सेना को ॥१८५॥ उस प्रज्ञा से क्या प्रयोजन और वह मन्त्री भी किस काम का जो विपत्तिग्रस्त आपको दुःख से न छुडाये ॥१८६॥]

उसकी बात सुनी तो उसे शान्ति मिली। उसे विश्वास हो गया कि अब मेरी जान बच जायगी। जब बोधिसत्व ने सिंहनाद किया तो सभी सन्तुष्ट हुए। तब सेनक ने पूछा—"पण्डित! तू हम सब को कैसे ले जायगा?" "मै अलङ्कृत सुरग से ले जाऊँगा। तुम तैय्यार होओ। उसने सुरग का द्वार खोलने के लिए योधाओ को आज्ञा देते हुए गाथा कही—

एथ माणवा उट्ठेथ मुख सोधेथ सन्धिनो,
वेदेहो सह मच्चेहि उम्मग्गेन गमिस्सति ॥१८७॥

[तरुणो उठो। सुग्ग को और सेंध को खोलो। अमात्यो सहित विदेह-नरेश सुरग से जायगा ॥१८७॥]

उन्होने उठकर सुरग का द्वार खोला। सारी सुरग अलङ्कृत देव-सभा की तरह प्रकाशित थी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स त वचन सुत्वा पण्डितस्सानुसारिनो,
उम्मग्ग द्वार विवरिंसु यन्तयुत्ते च अग्गले ॥१८८॥

[उसकी बात सुन पण्डित की आज्ञा मानने वालो ने यन्त्रयुक्त द्वारो को खोल दिया ॥१८८॥]

उन्होने सुरग का द्वार खोल बोधिसत्व को सूचना दी। उसने राजा को सकेत किया—देव! यह समय प्रासाद से उतरने का है। राजा उतरा। सेनक ने सिर की पगडी उतारी। कपडा उतारने लगा। बोधिसत्व ने उसे देख पूछा—'तात! क्या करता है?' "सुरग में से जाते समय पगडी सभाल, काछ कसकर जाना चाहिए।" "सेनक! ऐसा मत सोच कि सुरग से जाना है तो झुककर घुटनो के बल प्रवेश करना होगा। यदि हाथी से जाना चाहता है तो हाथी पर चढ। सुरग अट्ठारह हाथ ऊँची है। विशाल द्वार है। तू जैसे चाहे सज-सजाकर राजा के आगे आगे चल।"

बोधिसत्व ने सेनक को आगे किया, राजा को बीच में और स्वय पीछे-पीछे हो लिया। क्यो? अलङ्कृत सुरग को देखते हुए धीरे धीरे न चलने लगे। सुरग

मे लोगो के लिए खाने-पीने की बहुत सामग्री थी। मनुष्य खाते-पीते सुरग देखते चल रहे थे। बोधिसत्व भी 'महाराज चले' कह प्रेरित करते हुए पीछे पीछे आ रहे थे। राजा अलङ्कृत देव-सभा के समान सुरग को देखता चलता था।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

पुरतो सेनको याति पच्छतो च महोसधो,
मज्झे च राजा वेदेहो अमच्चपरिवारितो ॥१८९॥

[आगे-आगे सेनक जाता था और पीछे महोषध। बीच मे अमात्यो से घिरा हुआ राजा चलता था ॥१८९॥]

जब उन्हे पता लगा कि राजा आया है तो वे नौजवान चूळनी राजा की माता, देवी, पुत्र और लडकी को लेकर ऊँचे महल पर जा पहुँचे। राजा भी बोधिसत्व सहित सुरग से निकला। चूळनी राजा की माता आदि ने जब विदेह-नरेश और पण्डित को देखा तो समझा कि हम निश्चय पराये हाथो में फस गई है। हमे लेकर यहाँ आने वाले पण्डित के ही आदमी होगे। मृत्यु से डरकर उन्होने चिल्लाना आरम्भ किया। चूळनी राजा भी इस डर से कि कही विदेह-नरेश भाग न जाय गङ्गा से गव्यूति मात्र की दूरी पर था। उसने शान्त रात्रि मे उनकी आवाज सुनी तो उसकी इच्छा हुई कि कहे कि यह तो नन्दा देवी की सी आवाज है। किन्तु वह कुछ नही बोला। उसे डर लगा कि कोई यह मजाक न करे कि नन्दा देवी को यहाँ कहाँ देख रहे हो!

बोधिसत्व ने पञ्चालचण्डी कुमारी को वहाँ रतनो के ढेर पर बिठा, उसका अभिषेक कर कहा—"महाराज! आप इसी के लिए आये है। यह आपकी पटरानी हो।" तीन सौ नौकाये लाई गई। राजा महल से उतर अलङ्कृत नौका पर चढा। वे चारो पण्डित भी नौका पर चढे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

उम्मग्गा निक्खमित्वान वेदेहो नावमारुहि,
अभिरूळहञ्च त ञत्वा अनुसासि महोसधो ॥१९०॥
अय ते ससुरो देव अय सस्सु जनाधिप,
यथा मातु पटिपत्ति एव ते होतु सस्सुया ॥१९१॥
यथापि नियको भाता सउदरियो एकमातुको,
एव पञ्चाल चण्डीते दयितब्बो रथेसभ ॥१९२॥

अय पञ्चालचण्डी ते राजपुत्ती अभिज्झिता,
काम करोहि ते ताय भरिया ते रथेसभ ॥१९३॥

[सुरग से निकल कर विदेह-नरेश नौका पर चढा । जव महोषघ ने देखा कि वह नौका पर चढ गया है तो उसने उसे यह उपदेश दिया—"देव! यह आपका श्वसुर १ है, और हे राजन्! यह आपकी सास है। जो कुछ माता के प्रति करनीय कर्त्तव्य है, वे ही आप सास के प्रति करे ॥१९०-१९१॥" जैसा अपनी एक ही माता से जन्मा सहोदर भाई हो वैसे ही हे राजन्! आपको पञ्चाल-चण्ड को समझना चाहिए। हे राजन्! यह राजपुत्री पञ्चाल-चण्डी है, जिसे आप चाहते थे। अब इसके साथ जो चाहे करे। यह आपकी भार्य्या है ॥१९२-१९३॥]

बडे भारी दुक्ख से मुक्त हो नौका से जाने के इच्छुक राजा ने बोधिसत्व को 'तात! तू किनारे पर खडा ही खडा बात कर रहा है' कह गाथा कही—

आरूय्ह नाव तरमानो किन्नु तीरम्हि तिट्ठसि,
किच्छा मुत्तम्ह दुक्खतो यामदानि महोसध ॥१९४॥

[जल्दी से नौका पर चढो। अब किनारे पर क्या खडे हो। बडी कठिनाई से हम दु ख से मुक्त हुए है। हे महोषघ! अब हम चले ॥१९४॥]

बोधिसत्व ने 'देव! आप के साथ मेरा जाना योग्य नही' कहा—

नेस धम्मो महाराज योह सेनाय नायको,
सेनङ्ग परिहापेत्वा अत्तान परिमोचये ॥१९५॥
निवेसनम्हि ते देव सेनङ्ग परिहापित,
त दिन्न ब्रह्मदत्तेन आनयिस्स रथेसभ ॥१९६॥

[महाराजा यह धर्म नही है कि मै सेना का नायक होकर सेना को छोड केवल अपनी जान बचा लूँ ॥१९५॥ 'देव! आपके निवास-स्थान पर सेना छोडी है। हे राजन्। मै उसे ब्रह्मदत्त से लेकर आऊँगा ॥१९६॥]

'उन आदमियो में से कुछ दूर से चलकर आये होने के कारण थके है और सोये पडे है। कोई खा-पी रहे है। यह भी नही जानते कि हम निकल भागे है। कई रोगी है। मेरे साथ चार महीने तक काम करने वाले मेरे उपकारी मनुष्य

---

१. चूळनी राजा ने श्वसुर के अभाव में उसके पुत्र को ही श्वसुर कहा।

यहाँ बहुत हैं। मैं किसी एक आदमी को भी छोडकर नही जा सकता। मैं रुककर आपकी उस सारी सेना को ब्रह्मदत्त से सकुशल लेकर आऊँगा। महाराज! आप कही भी बिना विलम्ब किये शीघ्र जायें। मैंने रास्ते मे हाथी घोडे, आदि वाहन रखे हैं, थके-थके वाहनो को छोड समर्थ समर्थ वाहन ले शीघ्र मिथिला पहुँचे।

तब राजा ने गाथा कही—

अप्पसेनो महासेन कथ विग्गय्ह ठस्ससि,
दुब्बलो बलवन्तेन विहञ्ञिस्ससि पण्डित ॥१९७॥

[अल्प सेना वाला होकर तू महान् सेना के सामने कैसे ठहरेगा? हे पण्डित! दुर्बल बलवान द्वारा मारा जायगा ॥१९७॥]

तब बोधिसत्व ने गाथा कही—

अप्पसेनोपि चे मन्ती महासेन अमन्तिन,
जिनाति राजा राजानो अदिच्चोवुदयं तम ॥१९८॥

[बुद्धिमान् के पास यदि अल्प-सेना भी हो तो भी वह बहुत सेना वाले मूर्ख को जीत लेता है, उसी प्रकार (एक) राजा कई राजाओ को जीत लेता है, जैसे उदय ोने वाला सूर्य्य अन्धकार को ॥१९८॥]

यह कहकर बोधिसत्व ने राजा को बिदा किया—तुम जाओ। उसे शत्रु के हाथ से मुक्त होने की प्रसन्नता थी और चण्ड-कुमारी के मिल जाने से उस का मनोरथ भी पूरा हो गया था। इसलिए वह बोधिसत्व के गुणो का स्मरण कर बहुत आनन्दित हुआ। वह पण्डित के गुण सेनक को कहता हुआ गाथा कहने लगा—

सुसुख वत सवासो पण्डितेहिति सेनक
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थ गते मोचयी नो महोसधो ॥१९९॥

[हे सेनक! पण्डितो के साथ रहना बडा सुखद है, पिजरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फसी मछली के समान हमें महोपध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया ॥ १९९ ॥]

यह सुन सेनक ने भी पण्डित का गुणानुवाद किया—

एवमेत महाराज पण्डिता हि सुखावहा,
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयी नो महोसधो ॥२००॥

[महाराज! यह ऐसा ही है। पण्डित सुखदायक होते ही हैं। पिंजरे में बन्द पक्षी के समान और जाल मे फसी मछली के समान हमे महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया है ॥२००॥]

तब विदेह नरेश नदी पारकर योजन भर की दूरी पर बोधिसत्व द्वारा बसाये गये गाँव मे पहुँचा। वहाँ बोधिसत्व द्वारा नियुक्त मनुष्यो ने राजा को हाथी-घोडे आदि वाहन तथा खाना पीना दिया। उसने थके हुए हाथी, घोडे, रथ छोडे और दूसरे वाहन ले, उनके साथ अन्य गाँव पहुँचा। इस तरह से सौ योजन का मार्ग तै कर अगले दिन प्रात काल ही मिथिला नगरी जा पहुँचा।

बोधिसत्व ने भी सुरग के द्वार पर पहुँच कर अपनी बाधी हुई तलवार खोली और सुरग के द्वार पर बालू फैला दी। बालू रख, सुरग मे दाखिल हो, सुरग से जाकर उस नगर मे प्रवेश किया। फिर सुगन्धित जल से स्नान कर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खाये और शय्या पर लेट सोचने लगा कि मेरा मनोरथ पूरा हो गया।

उस रात के बीतने पर चूळनी राजा सेना को व्यवस्थित करता हुआ वहाँ आ पहुँचा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

रक्खित्वा कसिण रत्तिं चूळनीयो महब्बलो,
उवेन्त अरुणुग्गम्हि उपकारिं उपागमि ॥२०१॥
आरुय्ह पवर नाग बलवन्त सट्ठिहायन,
राजा अवोच पञ्चालो चूळनीयो महब्बलो ॥२०२॥
सन्नद्धो मणिवम्मेन सरमादाय पाणिना,
पेस्सिये अज्झभासित्थ पुथुगुम्बे समागते ॥२०३॥

[सारी रात पहरा देते रहने के बाद, अरुणोदय होने पर महाबलशाली चूलनीय राजा उपकारि (नामक) नगर मे पहुँचा ॥२०१॥ बलवान्, साठ वर्ष के श्रेष्ठ हाथी पर चढे हुए महाबलशाली पञ्चाल-नरेश चूलनीय राजा ने कहा ॥२०२॥ मणि-से कवच से सन्नद्ध, हाथ में बाण लिए हुए राजा ने अपने दूतो तथा आये हुए बहुत शिल्पज्ञो को कहा ॥२०३॥]

उनका स्वरूप प्रकट करने के लिए—

हत्थारूहे अनीकट्ठे रथिके पत्तिकारके,
उपासनम्हि कतहत्थे वाळवेधे समागते ॥२०४॥

[हाथी-सवार थे, सैनिक थे, रथ-सवार थे, पैदल थे, धनुष-विद्या मे कुशल थे—वे बाल तक को बीध सकते थे ॥२०४॥]

अब राजा ने विदेह-नरेश को जीते जी पकडने की आज्ञा देते हुए कहा—

पेसेथ कुञ्जरे दन्ती बलवन्ते सट्ठिहायने,
मद्दन्तु कुञ्जरा नगर वेदेहेन सुमापितं ॥२०५॥
वच्छदन्तमुखा सेता तिखिणग्गा अट्ठिवेधिनो,
पनुन्ना धनुवेगेन सम्पतन्तु तरीतर ॥२०६॥
माणवा चम्मिनो सूरा चित्रदण्डयुता बुधा,
पक्खन्दिनो महानागा हत्थीन होन्तु सम्मुखा ॥२०७॥
सत्तियो तेलधोतायो अच्चिमन्ती पभस्सरा,
विज्जोतमाना तिट्ठन्तु सतरसा वियतारका ॥२०८॥
आवुधबलवन्तान गुणिकायूरधारिन
एतादिसान योधान सगामे अपलायिन,
वेदेहो कुतो मुच्चिस्सति सच पक्खीव काहति ॥२०९॥
तिस मे पुरिसनावुत्यो सब्बे वेकेकनिच्छिता,
येस सम न पस्सामि केवल महिम चर ॥२१०॥
नागा च कप्पिता दन्ती बलवन्तो सट्ठिहायना,
येस खन्धेसु सोभन्ति कुमारा चारुदस्सना ॥२११॥
पीतालकारा पीतवसना पीतुत्तरनिवासना,
नागक्खन्धेसु सोभन्ति देवपुत्ताव नन्दने ॥२१२॥
पाठीनवण्णा नेत्तिसा तेलधोता पभस्सरा,
निट्ठिता नरवीरेहि समधारा सुनिस्सिता ॥२१३॥
वेल्लाळिनो वीतमला सिक्कायसमया दळहा,
गहिता बलवन्तेहि सुप्पहारप्पहारिहि ॥२१४॥
सुवण्णथरुसम्पन्ना लोहितकच्छूपधारिता,
विवत्तमाना सोभन्ति विज्जू वब्भघनन्तरे ॥२१५॥

पताका बम्मिनो सूरा असिचम्मस्स कोविदा,
थरुग्गहा सिक्खितारो नागखन्धातिपातिनो ॥२१६॥
एदिसेहि परिक्खित्तो नत्थि मोक्खो इतो तव,
पभाव ते न पस्सामि येन त्व मिथिल वजे ॥२१७॥

[दान्तो वाले, बलवान, साठ वर्ष के हाथी भेजो ताकि वे विदेह-नरेश का बनवाया हुआ नगर रोद डाले ॥२०५॥ जो वछडे के दान्त के समान श्वेत है, जिनकी नोक तीखी है, जो हड्डियो को भी बीध सकते है ऐसे छोडे हुए तीर, धनुष के जोर से लगातार गिरे ॥२०६॥ हाथ में ढाल लिये, बहादुर, विचित्र दण्डयुक्त आयुध धारी तरुण-योधा कूदकर महानाग हाथियो के सम्मुख हो ॥२०७॥ तेल से धोई हुई, प्रज्वलित, चमकती हुई शक्तिया औषधी तारे की तरह दीप्त हो ॥२०८॥ आयुध तथा बल से युक्त, कवच रूपी बाजूबन्द पहनने वाले, सग्राम से न भागने वाले योधाओ से बचकर विदेह-नरेश चाहे आकाश-मार्ग से भी उडे, कहाँ जायेगा ? ॥२०९॥ मेरे पास उनतालीस हजार चुने हुए योधा है, जिनके समान सारी पृथ्वी पर घूमने पर भी मुझे दिखाई नही देते है ॥२१०॥ बलवान साठ वर्ष के, दान्तो वाले, कसे हुए नाग है, जिनके कन्धो पर सुन्दर कुमार शोभा देते है ॥२११॥ पीत-वर्ण अलकार, पीतवर्ण वस्त्र तथा पीतवर्ण चादरो वाले कुमार हाथियो के कन्धे पर उसी प्रकार शोभा देते है जैसे नन्दन-वन मे देव-पुत्र ॥२१२॥ पाठीन (मछली) के वर्ण की, तेल लगी हुई, चमकती हुई, बराबर धार वाली, तेज तलवारे जिन्हे वीर-पुरुषो ने धारण कर रखा है ॥२१३॥ मध्याह्न सूर्य्य की तरह चमकदार, जँग-रहित, स्टील की बनी हुई, प्रहार करने मे पटु, बलवान पुरुषो द्वारा धारण की हुई तल-वारें ॥२१४॥ सोने की मूठवाली, लाल रग की म्यान वाली नगी तलवारे ऐसे ही शोभा देती है जैसे घने बादलो के बीच बिजली ॥२१५॥ पताकायें और कवच धारण करने वाले, ढाल-तलवार चलाने में पण्डित, (तलवार की) मूठ पकडने मे शिक्षित तथा हाथी की गरदन गिरा दे सकने वाले योधाओ से घिरे होने के कारण अब तेरी यहा से मुक्ति नही है। अब मै तेरा कोई ऐसा प्रताप नही देखता कि तू यहा से बच कर मिथिला पहुँच सके ॥२१६-२१७॥]

बोधिसत्व के नियुक्त आदमियो ने 'कौन जाने क्या हो' सोचा और अपने सेवको सहित आकर बोधिसत्व के गिर्द हो गये। उस समय बोधिसत्व शैय्या से उठ, प्रात कृत्य समाप्त कर, जलपान के अनन्तर, सजसजा कर, लाख के मूल्य के

काशी-वस्त्र धारण कर, लाल कवल एक कधे पर रख, सात रत्न जडित, भेट मे मिला हुआ दण्ड ले, स्वर्ण पादुका पर चढ, देवप्सरा के समान अलकृत स्त्री द्वारा पखा किया जाता हुआ, अलकृत प्रासाद के झरोखे को खोल, अपने आपको चूळनी राजा को दिखाते हुए, देवेन्द्र शक्र के समान इधर उधर टहलने लगा। चूळनी राजा उसकी शोभा देख चित्त को प्रसन्न न रख सका। 'अब उसे पकडूगा' सोच उसने जल्दी जल्दी हाथी भेजे। पण्डित ने सोचा, 'यह समझता है कि मैंने विदेह-नरेश को काबू कर लिया है और इसलिए जल्दी जल्दी चला आ रहा है। यह नही जानता कि हमारा राजा इसके बाल-बच्चे लेकर चला गया है। अपना सोने के आइने जैसा मुंह इसे दिखाकर इसके साथ बातचीत करता हूँ।' उसने झरोखे में बैठे ही बैठे मुंह से मधुर-वाणी निकाल कहा—

> किन्नु सन्तरमानोव नाग पेसेसि कुञ्जर,
> पहट्ठरूपो आपतसि लद्धत्थोस्मिति मञ्जसि ॥२१८॥
> ओहरेत धनु चाप खुरप्प पटिसहर,
> ओहरेतं सुभ वम्म वेळुरियमणिसन्थत ॥२१९॥

[क्या जल्दी जल्दी हाथी को आगे बढा रहा है! यह समझ कर कि मेरा मनोरथ पूरा हो गया, बडा प्रसन्न प्रसन्न चला आता है ॥२१८॥ इस धनुष को और इन बाणो को समेट लो और बिल्लौर तथा मणि जडे इस कवच को भी उतार दो ॥२१९॥]

उसने उसका कहना सुना तो सोचा कि गृहपति-पुत्र मेरा मजाक उडा रहा है। 'आज बताऊँगा तेरा क्या करना है' कह उसे धमकी देते हुए उसने गाथा कही—

> पसन्नमुखवण्णोसि मिहितपुब्बञ्च भाससि,
> होति खो मरणकाले तादिसी वण्णसम्पदा ॥२२०॥

[तेरे चेहरे पर प्रसन्नता है। तू मुस्कराहट के साथ बोलता है। मरने के समय आदमी के मुँह पर ऐसी ही रौनक आ जाती है ॥२२०॥]

जिस समय वह उसके साथ इस प्रकार बातचीत कर रहा था, बडी भारी सेना ने बोधिसत्व की रूप-श्री देख सोचा—'हमारा राजा महोषध पण्डित के साथ मन्त्रणा कर रहा है। सुनें तो कि क्या बातचीत कर रहे है।' वह राजा के समीप जा पहुँची। पण्डित ने भी उसकी बात सुनी तो सोचा, 'यह नही जानता कि मैं

महोषध पण्डित हूँ। मै इसे अपने-आपको मारने नही दूगा' उसने। 'तुम्हारा षडयन्त्र खुल गया। तुमने और केवट्ट ने जो मन मे सोचा था, वह नही हुआ। जो मुंह से कहा था, वही हुआ' प्रकट करते हुए गाथा कही—

मोघ ते गज्जित राज भिन्नमन्तोसि खत्तिय,
दुग्गण्हो हि तया राजा खलुंकेनेव सिन्धवो ॥२२१॥
तिण्णो हिय्यो राजा गग सामच्चो सपरिज्जनो,
हसराज यथा धको अनुज्जव पपतिस्ससि ॥२२२॥

[राजन्! तेरी गर्जना व्यर्थ है। हे क्षत्रिय! तेरे षडयन्त्र का पता लग गया। जिस प्रकार खलुक (घोडा) सिन्धव (घोडे) को नही पा सकता उसी प्रकार तू अब हमारे राजा को नही पा सकता ॥२२१॥ हमारा राजा कल ही अपने अमात्यो तथा परिजनो सहित गङ्गा पार कर गया। यदि तू पीछा करेगा तो जैसे हस-राज का पीछा करने वाला कौआ गिर पडता है, वैसे ही तू भी रास्ते मे ही गिर पडेगा ॥२२२॥]

अब निर्भय सिंह की तरह उदाहरण देते हुए कहा—

सिगाला रत्तिभागेन फुल्ल दिस्वान किंसुकं,
मसपेसीति मञ्ञान्ता परिब्बूळहा मिगाधमा ॥२२३॥
वीतिवत्तासु रत्तीसु उग्गतस्मि दिवाकरे,
किंसुक फुल्लित दिस्वा आसच्छिन्ना मिगाधमा ॥२२४॥
एवमेव तुव राज वेदेह परिवारिय,
आसच्छिन्नो गमिस्ससि सिगाला किंसुक यथा ॥२२५॥

[रात के समय गीदड किंसुक फूल को फूला देखते है। वे अधम उसे मास-पेशी मान घेर कर खडे हो जाते है। रात्रि के बीतने पर जब सूर्य्योदय होता है, तो फूले हुए किंसुक को देखकर वे अधम निराश हो जाते है। इसी तरह गीदडो के किंसुक फूल को छोडकर चले जाने की तरह हे राजन्! तू भी निराश होकर जायेगा ॥२२३-२२५॥]

राजा ने उसकी निर्भय वाणी सुनी तो सोचा—"यह गृहपति-पुत्र बहुत बढ बढ कर बात करता है। निश्चय से उसने विदेह-नरेश को भगा दिया होगा।' उसे बहुत अधिक क्रोध आया। सोचने लगा—'पहले इस गृहपति-पुत्र के कारण ही

हम निर्वस्त्र तक हो गये। अब इसने हमारे हाथ में आया हुआ शत्रु भगा दिया। इसने हमारा बहुत अनर्थ किया है। दोनो को दिया जाने वाला दण्ड इसे ही दूगा।' उसने उसे दण्ड देने की आज्ञा देते हुए कहा—

इमस्स हत्थपादेच कण्णनासञ्च छिन्दथ
यो मे अमित्त हत्थगत वेदेह परिमोचयि ॥२२६॥
इम मसव पातब्ब सूले कत्वा पचन्तु त,
यो मे अमित्त हत्थगतं वेदेह परिमोचयि ॥२२७॥
यथापि आसभ चम्म पथव्या वितनिय्यति,
सीहस्स अथो व्यग्घस्स होति सकसमाहत,
एव त वितनित्वान वेधमिस्साम सत्तिया,
यो मे अमित्त हत्थगत वेदेह परिमोचयि ॥२२८॥

[जिसने मेरे हाथ आये शत्रु विदेह-नरेश को भगा दिया उसके हाथ-पाव तथा कान-नाक काट डालो ॥२२६॥ जिसने मेरे हाथ आये शत्रु को भगा दिया इसे पकाने योग्य माँस की तरह सीख पर चढाकर पकाओ ॥२२७॥जैसे पृथ्वी पर बैल का चमडा फैलाया जाता है और जैसे सिंह या व्याघ्र का चमडा सीख पर चढाया जाता है, उसी प्रकार जिसने हाथ मे आये हुए शत्रु को भगा दिया हम उसे शक्ति से फैला कर काटेंगे ॥२२८॥]

यह सुन बोधिसत्व मुस्कारया। यह राजा नही जानता कि मैंने इसकी देवी और इसके परिवार को मिथिला पहुँचा दिया है। इसीलिए मुझे दण्ड देने की बात सोचता है। क्रोध के वशीभूत हो यह मुझे शूल से बीध भी सकता है, अथवा और जो इसे अच्छा लगे कर सकता है। 'इस शोकातुर को कष्ट दे हाथी की पीठ पर बैठे ही बैठे बेहोश बना देने वाली बात कहता हूँ' सोच कहा—

सचे मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एव पञ्चालचण्डस्स वेदेहो छेदयिस्सति ॥२२९॥
सचे मे हत्थे च पादे च कण्ण नासञ्च छेच्छसि,
एव पञ्चालचण्डिया वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३०॥
सचे मे हत्थेच पादेच कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एवनन्दाय देविया वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३१॥

सचे मे हत्थेच पादेच कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एव ते पुत्तदारस्स वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३२॥
सचे मस व पातब्ब सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं पञ्चाल चण्डस्स वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३३॥
सचे म स व पातब्ब सूले कत्वा पचिस्ससि,
एव पञ्चालचण्डिया वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३४॥
सचे मसव पातब्ब सूले कत्वा पचिस्ससि,
एव नन्दा देविया वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३५॥
सचे मस व पातब्ब सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं ते पुत्तदारस्स वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३६॥
सचे म वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एव पञ्चालचण्डस्स वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३७॥
सचे म वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एव पञ्चालचण्डिया वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३८॥
सचे म वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एवं नन्दाय देविया वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३९॥
सचे म वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एव ते पुत्तदारस्स वेदेहो वेधयिस्सति,
एव नो मन्तित रहो वेदेहेन मया सह ॥२४०॥
यथा पलसत चम्मं कोन्तिमन्ती सुनिट्ठित,
उपेति तनुताणाय सरान पटि हन्तवे ॥२४१॥
सुखावहो दुक्खनुदो वेदेहस्स यसस्सिनो,
मतिं ते पटिहञ्ञामि उसुं पलसतेन वा ॥२४२॥

[यदि मेरे हाथ-पाव तथा नाक-कान कटवायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड के हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवा देगा ॥२२९॥ यदि मेरे विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी के देगा ॥२३०॥ यदि मेरे विदेह-नरेश नन्दा देवी के देगा ॥२३१॥ यदि मेरे विदेह-नरेश तेरी माता के देगा ॥२३२॥ यदि पकाने योग्य माँस की तरह मुझे सीख पर चढा कर पकायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड को पकवायेगा ॥२३३॥

यदि विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी को पकायेगा ॥२३४॥ यदि विदेह-नरेश नन्दा-देवी को पकवायेगा ॥२३५॥ यदि विदेह-नरेश तेरे स्त्री-पुत्र को पकवायेगा ॥२३६॥ यदि मुझे फैलाकर शक्ति से विधवायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड को विंधवायेगा ॥२३७॥ यदि विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी को विंधवायेगा ॥२३८॥ यदि विदेह-नरेश नन्दा देवी को विंधवायेगा ॥२३९॥ यदि विदेह-नरेश तेरे स्त्री-पुत्र को विंधवायेगा। इसी प्रकार मैंने और विदेह-नरेश ने एकान्त मे मन्त्रणा की थी ॥२४०॥ जैसे चर्मकारो की कान्ती से कमाया हुआ वालिश्त भर चमडा तीरों को रोककर शरीर की रक्षा का कारण वन जाता है, उसी प्रकार मै भी यशस्वी विदेह को सुख देने वाला हूँ और उसके दुख को मिटाने वाला हूँ ? जैसे बालिश्त भर चमडा तीरो को रोकता है वैसे मै तेरी बुद्धि को कुण्ठित करता हूँ ॥२४१-२४२॥]

यह सुना तो राजा सोचने लगा—"गृहपति-पुत्र! क्या बोलता है। जैसे मै इसे दण्ड दूगा, वैसे ही विदेह-नरेश मेरे स्त्री-बच्चो को दण्ड देगा। यह नही जानता कि मेरे स्त्री-बच्चे पहरे मे कितने सुरक्षित है। 'अव मारा जाऊँगा' सोच मृत्यु-भय के कारण विलाप करता है।" उसने उसके कहने का विश्वास नही किया। बोधिसत्व ने यह सोच कि यह समझता है कि मै भय के कारण ऐसा कह रहा हूँ, यह गाथा कही—

इघ पस्स महाराज सुञ्ञं अन्तेपुर तव
ओरोधो च कुमारा च तव माता च खत्तिय,
उम्मग्गा नीहरित्वान वेदेहस्सुपनामिता ॥२४३॥

[महाराज! अपने अन्त पुर को देखे। वह शून्य है। हे क्षत्रिय! तेरा रनिवास, कुमार और तेरी माता सुरग से निकाल कर विदेह-नरेश को सौप दी गई है।२४३॥]

यह सुन राजा सोचने लगा—'पण्डित वडे विश्वास के साथ बोल रहा है। मैने रात के समय गङ्गा के पास नन्दा देवी का शब्द भी सुना था। यह पण्डित महा प्रज्ञावान् है। कही सच ही न हो।' उसे भयानक शोक उत्पन्न हुआ। लेकिन उसने धैर्य रख, चिन्ता न करते हुए की तरह, एक अमात्य को बुला, पता लगाने के लिये भेजते हुए दूसरी गाथा कही—

इघ अन्तेपुर मय्हं गन्त्वान विचिनाथ न,
यथा इमस्स वचन सच्च वा यदि वा मुसा ॥२४४॥

[मेरे अन्त पुर मे जाकर पता लगाओ कि जो कुछ यह कह रहा है वह सत्य है अथवा झूठ है ? ।।२४४।।]

वह आदमियो को लेकर राजभवन पहुँचा । वहाँ उसने द्वार खोल, अन्दर जा देखा कि हाँथ-पाँव बधे, मुँह ढँके अन्त पुर के पहरेदार खूटियो से लटक रहे है, इसी प्रकार कुबडे ठिंगने आदि भी है, टूटे फूटे बरतन और खाना-पीना जहाँ तहाँ बिखरा पडा है, रतन-घर-द्वार खोलकर रतन लूट लिये गये है, खुले-द्वार शयन-गृह की खिडकियो से भीतर जाकर कौवे घूम रहे है और वह छोडे हुए गाँव की तरह अथवा श्मशान-भूमि की तरह श्री-हीन है । उसने राजा को कहा—

एवमेत महाराज यथा आह महोसधो,
सुञ्ञा अन्तेपुर सब्ब काक पट्टनक यथा ।।२४५।।

[महाराज ! जैसे यह महोषध ने कहा, वैसा ही है । सारा अन्त पुर कौओ के पत्तन के समान शून्य है ।।२४५।।]

राजा चारो जनो के सम्भव-वियोग के शोक से कापने लगा । उसे हुआ कि इस सारे दु ख का मूल कारण गृहपति पुत्र है । वह डण्डा खाये जहरीले साप की तरह बोधिसत्व के प्रति अति क्रोधित हो गया । बोधिसत्व ने उसका ढग देखा तो सोचा —'यह राजा बहुत ऐश्वर्यशाली है । कही क्रोध में आकर यह सोचे कि मुझे उनसे क्या और मुझे मरवा न डाले । क्यो न मै नन्दा देवी के शरीर सौन्दर्य की प्रशसा करूँ, जैसे इसने उसे कभी देखा न हो ? तब सम्भव है कि यह उसे याद कर यह सोचे कि यदि मैं महोषध को मारूँगा तो ऐसे स्त्री-रत्न को फिर न पा सकूँगा । और यह अपनी भार्य्या के साथ स्नेह होने के कारण मेरे साथ कुछ न करेगा ।' यह सोच उसने आत्मरक्षार्थ प्रासाद पर खडे ही खडे, लाल वस्त्र के भीतर से स्वर्ण-वर्ण बाँह निकाल कर उसके जाने के मार्ग का वर्णन करते हुए कहा—

इतो गता महाराज नारी सब्बङ्गसोभना,
कोसुम्भफलक सुस्सोणी हसगग्गरभाणिनी ।।२४६।।
इतो नीता महाराज नारी सब्बगसोभना,
कोसेय्यवसना सामा जातरूपसुमेखला ।।२४७।।
सुरत्तपादा कल्याणी सुवण्णमणीमेखला,
परिवतक्खी सुतनु बिम्बोट्ठा तनुमज्झिमा ।।२४८।।

सुजाता भुजगलट्ठीव वेल्लीवतनुमज्झिमा,
दीघस्सा केसा असिता ईसकग्गपवेल्लिता ॥२४९॥
सुजाता मिगछापोव हेमन्ताग्गिसिखारिव,
नदीव गिरिदुग्गेसु सञ्छन्ना खुद्दवेळुहि ॥२५०॥
नागनासूरु कल्याणी पठमा तिम्बरुत्थनी,
नातिदीघा नातिरस्सा नालोमा नातिलोमसा ॥२५१॥

[महाराज ! सर्वाङ्ग सुन्दरी, जिसकी श्रोणी स्वर्ण-फलक के समान है और जो हसो के समान मधुर भाषिणी है, इस रास्ते से गई है ॥२४६॥ महाराज ! सर्वाङ्ग सुन्दरी नारी, जो कोपेय्य-वस्त्र धारण किये थी, जो स्वर्ण-वर्ण थी तथा जिसकी सुनहरी मेखला थी, यहा से ले जाई गई है ॥२४७॥ जिसके पाव रक्त-वर्ण है, जो कल्याणी है, जिसकी मणि-मेखला स्वर्ण-वर्ण है, जिसकी आखे कबूतर के समान है, जिसका सुन्दर शरीर है, जिसके ओठ बिम्ब (फल) के समान है और जो मध्य-भाकार की है ॥२४८॥ भुजङ्ग-लता की तरह सुजात, स्वर्णवेदिका की तरह मँझली, लम्बे काले केश जो कि आगे से थोडे घुघराले ॥२४९॥ व्याघ्र की बच्ची के समान सुजात, हेमन्त-ऋतु की अग्नि-शिखा के समान प्रकाशवती, छोटे श्रोतो द्वारा गिरि-दुर्गो मे शोभायमान नदी की तरह सुशोभित ॥२५०॥ हाथी की सूड जैसी जाँघ वाली, सुन्दरी, तिम्बरु स्तन वालियो मे प्रथम, न बहुत ऊची, न बहुत नीची और बाल-शून्य और न अति बालो वाली ॥२५१॥]

जब बोधिसत्व इस प्रकार उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर रहा था वह उसके लिये ऐसी हो गई जैसे पहले कभी न देखी हो। उसके मन मे बहुत स्नेह पैदा हुआ। बोधिसत्व ने यह जान कि उसके मन मे स्नेह पैदा हो गया है, अगली गाथा कही—

नन्दाय नून मरणे नन्दसि सिरिवाहन,
अहञ्च नून नन्दाच गच्छाय यमसाधन ॥२५२॥

[हे श्रीवर्धन ! तू नन्दा की मृत्यु से प्रसन्न होता है। मै और नन्दा दोनो इकट्ठे यम के पास जायेंगे ॥२५२॥]

बोधिसत्व ने अब तक नन्दा की ही प्रशसा की है, औरो की नही। ऐसा क्यो है? प्राणी सब से अधिक प्रिय भार्य्या से ही आसक्त रहते है। फिर माता की याद आने से बेटे-बेटी की भी याद आ सकती है। इसीलिये उसने उसी का वर्णन किया। राजमाता का तो बूढी होने के कारण ही वर्णन नही किया। ज्ञानी बोधिसत्व के

मधुर स्वर से वर्णन करते करते ही राजा को ऐसा लगने लगा मानो नन्दा देवी आकर सामने खडी हो गई हो।

तब राजा सोचने लगा—'महोपध के अतिरिक्त और कोई मेरी भार्य्या लाकर नही दे सकता।' उसकी याद आने से उसके मन मे शोक उत्पन्न हुआ। तब बोधिसत्व ने राजा को सान्त्वना दी—'महाराज! चिन्ता न करे। तुम्हारी देवी, पुत्र और माता तीनो आ जायेंगे। मेरे यहा से जाने की देर है। राजन्! आप धीरज धारण करें।' तब राजा सोचने लगा—मैंने अपने नगर को सुरक्षित करवा, इसके 'उपकारी' नगर को इतनी सेना से घेर कर रखा। इसने इस प्रकार सुरक्षित नगर मे स भी मेरी देवी, पुत्र और माता को मगवा कर विदेह को दिलवा दिया। हमें और घेरकर खडे हुए इतने लोगो को बिना पता लगने दिये सेना-सहित विदेह-नरेश को भगा दिया। क्या यह दिव्य-माया जानता है अथवा नजर-बन्दी? उसने उसे पूछते हुए कहा—

> दिब्ब अधीयसे माय अकासि चक्खुमोहन,
> यो मे अमित्त हत्थगत वेदेह परिमोचयि ॥२५३॥

[हाथ मे आए मेरे शत्रु विदेह को निकाल भगाया, क्या तू दिव्य-माया पढा है अथवा नजरवन्द करना जानता है? ॥२५३॥]

यह सुन बोधिसत्व ने 'महाराज! मैं दिव्य माया जानता हू। पण्डित-जन दिव्य-माया जान कर खतरा आने पर अपने को तथा दूसरो को भय से मुक्त करते हैं' कह, गाथा कही—

> अधीयन्ति महाराज दिब्बमा[य]ध पण्डिता,
> ते मोचयन्ति अत्तान पण्डिता मन्तिनो जना ॥२५४॥
> सन्ति माणवपुत्तामे कुसला स[न्]धिछेदका
> येस कतेन मग्गन वेदेहो मिथिल गतो ॥२५५॥

[महाराज! पण्डित-जन दिव्य-माया सीखते है। वे पण्डित मन्त्री-जन अपने आपको छुडा लेते है ॥२५४॥ मेरे पास सेन्ध लगाने में कुशल जवान हैं, जिनके बनाये हुए मार्ग से ही विदेह-नरेश मिथिला गया ॥२५५॥]

यह सुन कि 'अलकृत सुरग से गया' राजा की इच्छा हुई कि देखे वह सुरग कैसी है? उसका इशारा समझ, बोधिसत्व ने 'राजा सुरग देखना चाहता है, इसे सुरग दिखाऊगा' सोच 'यह सुरग है' दिखाते हुए कहा—

इंघ पस्स महाराज उम्मग्ग सावुमापितं,
हत्थीन अथ अस्सान रथान अथ पत्तिन,
आलोकभूतं तिट्ठन्त उम्मग्ग सावुनिट्ठित ।।२५६।।

[महाराज ! इस सुरग को देखे। इसमें हाथी, घोडे, रथ तथा पैदल सभी चित्रित हैं और उन सब से प्रकाशित होकर यह अच्छी तरह निर्मित है ।।२५६।।]

इतना कह 'महाराज ! मेरी प्रज्ञा रूपी चन्द्रमा और ज्ञान रूपी सूर्य्य के उदय होन के स्थान पर अलकृत सुरग में अस्सी महाद्वार और चौसठ छोटे दरवाजे, एक सौ शयनागार तथा सैकडो प्रकाश-कोठे देखें । मेरे साथ प्रसन्न चित्त होकर अपनी सेना सहित 'उपकारी' नगर में प्रवेश करे।' इतना कह उसने नगर-द्वार खुलवाया। सौ जनो को साथ ले राजा नगर मे घुसा। बोधिसत्व प्रासाद से उतर राजा को प्रणाम कर अनुचरो सहित सुरग मे घुसा। राजा ने सुरग को अलकृत देव-नगर के समान पा बोधिसत्व की प्रशसा करते हुए कहा—

लाभा वत विदेहान यस्स मे एदिसा पण्डिता,
घरे वसन्ति विजिते यथा त्वसि महोसघ ।।२५७।।

[विदेह-राष्ट्र के नागरिक बडे भाग्यवान् हैं जिनके घर अथवा देश में ऐसे पण्डित रहते हैं, जैसा महोपघ तू है ।।२५७।।]

तब बोधिसत्व ने उसे सौ शयनागार दिखाये। एक का दरवाजा खोलने पर सब का दरवाजा खुल जाता। एक का बन्द करने पर सब का बन्द हो जाता। राजा सुरग देखता हुआ आगे आगे चला जा रहा था। पण्डित पीछे-पीछे। सारी सेना सुरग के भीतर चली गई। राजा सुरग से निकल आया। पण्डित ने जब जाना कि वह बाहर निकल आया तो स्वय निकल कर बिना दूसरो को निकलने दिये सुरग का द्वार बन्द करने के लिये अर्गल खीच दी । अस्सी महाद्वार, चौसठ छोटे द्वार, सौ शयनागार, सैकडो प्रकाश-कोठो के द्वार एक ही बार में बन्द हो गये । सारी सुरग में लोकन्तरिक नरक जैसा अन्धकार छा गया। लोग डर गये । बोधिसत्व ने कल सुरग में प्रवेश करते समय जो खड्ग रखी थी वह ली और जमीन से अठारह हाथ ऊँचे उछल चढकर, राजा को हाथ से पकड तलवार उगली। फिर राजा को धमकाते हुए पूछा—"महाराज ! सारे जम्बुद्वीप मे राज्य किसका है ?" उसने डरकर कहा "पण्डित तेरा" और 'अभय' की याचना की। उसने तलवार राजा को दे दी और कहा—"महाराज ! डरें नही। मैंने आपको मारने के लिए तलवार हाथ में नही

ली। अपनी प्रज्ञा दिखाने के लिये ही। महाराज! यदि आप मुझे मारना चाहते हैं तो इसी तलवार से मार डालें और यदि अभय देना चाहते है तो अभय दे दें।" 'पण्डित! तू चिन्ता मत कर। मैंने तुझे पहले ही 'अभय' दे रखी है।" दोनो ने तलवार को छूकर परस्पर द्वेष-रहित रहने की शपथ खाई।

तब राजा ने बोधिसत्व से पूछा—"पण्डित! इतना प्रज्ञावान् होकर भी तू राज्य क्यो नही लेता?" "महाराज! यदि मै इच्छा करूँ तो आज सारे जम्बुद्वीप के राजाओ को मारकर राज्य ले सकता हूँ। किन्तु दूसरो को मारकर ऐश्वर्य प्राप्त करना पण्डितो द्वारा प्रशसित कार्य नही है।" "पण्डित! लोगो को बाहर निकलने को द्वार नही मिल रहा है, इसलिये चिल्ला रहे है। सुरग का द्वार खोल लोगो के प्राण बचा।" उसने दरवाजा खोल दिया। सारी सुरग प्रकाशित हो गई। लोगो को सान्त्वना हुई। सभी राजा अपनी अपनी सेना के साथ बाहर आये और पण्डित के पास पहुँचे। वह राजा के साथ ऊँची मजिल पर था। वे राजागण बोले—"पण्डित! तेरे कारण हमें जीवन दान मिला है। यदि मुहूर्त्त पर सुरग का द्वार न खोलता तो हम सभी का वही मरना हो जाता।" "महाराजो! न केवल अभी पहले भी मेरे ही कारण तुम्हारे प्राण बचे है।" "पण्डित! कब?" "याद है कि एक हमारा नगर छोड सारे जम्बुद्वीप का राज्य ले पञ्चाल नरेश ने जय-पान पीने के लिये सुरा तैयार की थी?" "पण्डित! हाँ।" "तब इस राजा ने केवट्ट के साथ कुमन्त्रणा कर शराब और मत्स्य-माँस मे विष मिलाकर तुम्हे मारने का आयोजन किया था। तब मैंने यह सोच कि मेरे देखते देखते ये इतने जने अनाथ की तरह न मरें अपने आदमी भेज, सभी बरतन तुडवा, इनकी मन्त्रणा बिगाड तुम्हें जीवन दान दिया।" वे सभी उद्विग्न-चित्त हुए और चूळनी राजा से पूछा—"महाराज! क्या यह सच है?" "हाँ पण्डित सत्य ही कहता है। मैंने केवट्ट की बात मान ऐसा किया था।" उन सभी ने बोधिसत्व का आलिगन किया—"पण्डित! तू ही हम सब का शरण-स्थान हुआ। तेरे ही कारण हमारे प्राण बचे।" उन सभी ने अलकारो से बोधिसत्व की पूजा की। पण्डित ने राजा से कहा—"महाराज! आप चिन्ता न करें। यह कुसगति का परिणाम है। आप इन राजाओ से क्षमा याचना करे।" राजा ने क्षमा याचना की—"दुष्ट पुरुष की सगति के कारण मैंने ऐसा किया। यह मेरा दोष है। क्षमा करें। फिर ऐसा न करूँगा।" वे परस्पर अपना अपना दोष स्वीकार कर मिल गये। तब राजा ने बहुत सी खाने-पीने की सामग्री मँगवाई और उन सब

के साथ सप्ताह भर सुरग मे ही खेलते रहकर, नगर में प्रवेश कर बोधिसत्व का बहुत सत्कार किया। फिर सौ राजाओ के बीच ऊँची-मजिल पर बैठकर पण्डित को अपने ही पास रखने की इच्छा से राजा ने कहा—

वुत्तिञ्च परिहारञ्च दिगुण भत्तवेतन
ददामि विपुल भोग भुञ्ज कामे रमस्सुच,
मा विदेह पच्चगमा किं विदेहो करिस्सति ॥२५८॥

[मै तुझे दुगुना ऐश्वर्य्य, ग्राम-निगमादि, खाना-पीना तथा वेतन दूगा। यही रहकर विपुल काम-भोगो मे रमण कर। अब विदेह मत जा। विदेह-नरेश (और तेरे लिये) क्या करेगा? ॥२५८॥]

पण्डित ने इसका निषेध करते हुए कहा—

यो चजेथ महाराज भत्तार धनकारणा
उभिन्न होति गारय्हो अत्तनो च परस्सच,
याव जीवेय्य वेदेहो नाञ्ञस्स पुरिसो सिया ॥२५९॥

[महाराज! जो कोई धन के लोभ से अपने स्वामी को छोड देता है, उसका अपना-आप भी उसकी निन्दा करता है और दूसरे भी उसकी निन्दा करते हैं। जब तक विदेह जीता है तब तक मै दूसरे का आदमी नही होऊँगा ॥२५९॥]

यो चजेथ महाराज भत्तार धनकारणा
उभिन्न होति गारय्हो अत्तन च परस्स च
याव जीवेय्य वेदेहो नाञ्ञस्स विजते वसे ॥२६०॥

[महाराज! जो कोई तब तक मै दूसरे के राज्य में नही रहूँगा ॥२६०॥].

तब राजा बोला—"पण्डित! तो वचन दो कि जब तुम्हारा राजा दिवगत हो जायेगा, तब यहाँ आकर रहोगे।" "महाराज! जीता रहूँगा तो आऊँगा।"

राजा ने सप्ताह भर बहुत सत्कार करके, सप्ताह की समाप्ति पर अनुज्ञा लेने के समय 'पण्डित! मै तुझे यह यह देता हूँ' कह गाथा कही—

दम्मि निक्खसहस्स गामासीतिञ्च कासिसु,
दासि सतानि चत्तारि दम्मि भरिया सतञ्च ते,
सब्ब सेनङ्गमादाय सोत्थि गच्छ महोसध ॥२६१॥

[मैं तुझे हजार निकष देता हूँ, काशी -जनपद के अस्सी गाँव देता हूँ, चार सौ दासियाँ देता हूँ और सौ स्त्रिया देता हूँ। हे महोपध! सारी सेना लेकर सकुशल जा ॥२६१॥]

उसने भी राजा को कहा—"महाराज! तुम अपने सम्बन्धियो के लिये चिन्तित न हो। मैंने अपने राजा को जाते समय ही कह दिया था कि महाराज! नन्दा देवी को माता के स्थान पर रखे, पञ्चाल चण्ड को छोटे (भाई) के स्थान पर समझे। हाँ, तुम्हारी लडकी का भी अभिषेक करके उसे राजा के साथ विदा कर दिया था। तुम्हारी माता, देवी और पुत्र को शीघ्र ही भेज दूँगा।" 'राजा ने 'पण्डित, अच्छा' कहकर अपनी लडकी को देने के लिये दासी, दास, वस्त्र, अलकार, हिरण्य, स्वर्ण, अलकृत हाथी, अश्व, रथादि उसे सौपकर कहा कि ये उसे दे देना। फिर सेना-वाहन आदि के सम्बन्ध मे जो करना उचित है, वह बताया—

यावं ददन्तु हत्थीन अस्सान द्विगुणं विध,
तप्पेन्तु अन्नपाणेन रथिके पत्तिकारके ॥२६२॥

[घोडो को दुगना तथा हाथियो को जितना लगे उतना चारा दो और रथी तथा पैदल जाने वालो को अन्न-पान से सन्तुष्ट करो ॥२६२॥]

ऐसा कह पण्डित को विदा करते हुए कहा—

हत्थी अस्से रथे पत्ती गच्छेवादाय पण्डित,
पस्सतु त महाराजा वेदेहो मिथिल गत ॥२६३॥

[पण्डित! हाथी, घोडे, रथ और पैदल लेकर जाओ। मिथिला पहुँचने पर तुम्हें महाराजा विदेह देखे ॥२६३॥]

इस प्रकार उसने पण्डित का महान् सत्कार कर उसे विदा किया। उन सौ राजाओ ने भी बहुत सत्कार किया और बहुत भेंट दी। उनके पास नियुक्त पुरुष पण्डित के ही साथ हो लिये। वह बहुत से अनुयाइयो के साथ मार्गारूढ हुआ और रास्ते में चूळनी राजा द्वारा दिये गये गावो से कर वसूल करने के लिये आदमियो को भेजता हुआ विदेह-राष्ट्र पहुँचा। सेनक (पण्डित) ने भी रास्ते में आदमी को नियक्त कर रखा था ताकि देखें कि चूळनी राजा फिर आता है अथवा नही आता है? और उसे आदेश था कि कोई भी आये उसे सूचना दी जाय। उसने तीन योजन की दूरी से ही आकर सूचना दी कि बहुत से अनुयाइयो के साथ पण्डित चला आ रहा

है। यह सुन वह राज-भवन पहुँचा। राजा ने भी महल पर चढ, झरोखे से बडी भारी सेन' दख सोचा—'यह महोपध की सेना तो थोडी सी थी, यह तो बहुत ज्यादा है। कही चूळनी तो नही आ गया है?" उसने भयभीत हो यह वात जाननी चाही—

हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना पदिस्सते महा,
चतुरंगिनी भिसरूपा किन्नु मञ्ञन्ति पण्डित ॥२६४॥

[हाथी, घोडे, रथ, पैंदल—बडी भारी सेना दिखाई दे रही है। इस चतुरङ्गिनी सेना का रूप भयानक है—तुम क्या मानते हो? ॥२६४॥]

तब सेनक ने यह बात बताते हुए कहा—

आनन्दो ते महाराज उत्तमो पतिदिस्सति,
सब्ब सेनगमादाय सोत्थि पत्तो महोसधो ॥२६५॥

[महाराज! आपके लिये बडे आनन्द का विषय दिखाई दे रहा है। सारी सेना सहित महोषध सकुशल चला आ रहा है॥२६५॥]

यह सुन राजा बोला—'सेनक! पण्डित की सेना तो थोडी-सी है, यह तो बहुत बडी सेना है?' 'महाराज! उसने राजा को प्रसन्न कर लिया होगा और उसी ने यह इतनी बडी सेना दी होगी।' राजा ने नगर में मुनादी करा दी—'नगर को अलकृत कर पण्डित का स्वागत किया जाय।' नागरिको ने वैसा ही किया। पण्डित ने नगर मे प्रवेश कर, राजकुल जा, राजा को नमस्कार किया। राजा ने उसका आलिंगन किया और श्रेष्ठ-आसन पर बैठ, कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

यथापेत सुसानस्मि छड्डेत्वा चतुरोजना,
एव कम्पिल्लिये त्यम्ह छड्डयित्वा इधागता ॥२६६॥
अथ त्व केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
केन वा अत्थ जातेन अत्तान परिमोचयि ॥२६७॥

[जैसे चारो जने मुर्दे को श्मशान मे छोडकर चले आये, उसी प्रकार हम तुझे कम्पिल्ल राष्ट्र में छोडकर चले आये। तूने किस तरह, किस हेतु से अथवा किस ढग से अपने आपको मुक्त कराया? ॥२६६–२६७॥]

तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अत्थ अत्थेन वेदेह मन्त मन्तेन खत्तिय,
परिवारयिस्स राजान जम्बुदीप व सागरो ॥२६८॥

[हे विदेह-नरेश! मैंने उनका अर्थ अपने अर्थ से, हे क्षत्रिय! मैंने उनकी मन्त्रणा अपनी मन्त्रणा से और उनके राजा भी ऐसे घेर लिये जैसे समुद्र ने जम्बुद्वीप को घेर रखा है ।।२६८।।]

यह सुन राजा सन्तुष्ट हुआ। तब पण्डित ने चूळनी राजा द्वारा दी गई भेंट के बारे में कहा—

दिन्न निक्खसहस्स मे गामासीति च कासिसु
दासी सतानि चत्तारि दिन्न भरियासतञ्च मे,
सब्ब सेनमादाय सोत्थिनम्हि इधागतो ।।२६९।।

[मुझे हजार निक्ख दिये, काशी जनपद के सौ गाँव दिये, चार सौ दासियाँ दी और सौ भार्य्यायें दी। मैं सारी सेना लेकर सकुशल यहाँ आपहुचा ।।२६९।।]

तब राजा अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ और उसने बोधिसत्व की प्रशसा करते हुए वही उल्लास-वाक्य कहा—

सुसुख वत सवासो पण्डितेहीति सेनक
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयीनो महोसधो ।।२७०।।

[हे सेनक! पण्डितो के साथ रहना बडा सुखद है, पिंजरे मे बन्द पक्षी के समान और जाल मे फँसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से युक्त किया ।।२७०।।]

सेनक ने भी उसका कथन स्वीकार किया, वही गाथा कही—

एवमेत महाराज पण्डिताहि सुखावहा,
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयीनो महोसधो ।।२७१।।

[महाराज! यह ऐसा ही है। पण्डित सुखदायक होते ही है। पिञ्जरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फँसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया ।।२७१।।]

राजा ने नगर में उत्सव की मुनादी करवा दी। सप्ताह भर उत्सव मनाया जाये। जो जो भी मुझसे स्नेह रखते हो, सभी पण्डित का सत्कार-सम्मान करें।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आहञ्ञन्तु सब्बवीणा भेरियो देण्डिमानि च,
नदन्तु मागधा सखा वग्गु वदतु दुन्दुभि ॥२७२॥

[सभी वीणा, भेरी तथा दण्डिम बजें। मागध शङ्ख नाद करें। सुन्दर दुदुभी बजें ॥२७२॥]

नगर तथा जनपद के लोग यूं ही पण्डित का सत्कार करने के इच्छुक थे। उन्होने मुनादी सुनी तो और भी सत्कार किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयु ॥२७३॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयु ॥२७४॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बहु अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयु ॥२७५॥
बहुज्जनो पसन्नोसि दिस्वा पण्डितमागते,
पण्डितम्हि अनुप्पत्ते चेळुक्खेपे अवत्तथ ॥२७६॥

[रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण सभी पण्डित के लिये बहुत अन्नपान लाये ॥२७३॥ हाथी-सवार, सैनिक, रथी और पैदल—सभी पण्डित के लिये बहुत अन्न-पान लाये ॥२७४॥ जनपद के लोग भी आये और निगम के लोग भी आये—सभी पण्डित के लिये बहुत अन्न-पान लाये ॥२७५॥ पण्डित को आया देख बहुत जन प्रसन्न हुए। पण्डित के आने पर लोगो ने वस्त्र उछाले ॥२७६॥]

तब बोधिसत्व ने उत्सव की समाप्ति पर राज-भवन पहुंच कर कहा—"महाराज चूळनी राजा की माता, देवी और पुत्र को शीघ्र ही लौटा देना चाहिये।" "तात! भिजवा दो" उसने उन तीनो जनो का महान् सत्कार कर, अपने साथ आई सेना का भी सत्कार-सम्मान करवा, उन तीनो को बडे ठाट-बाट के साथ अपने आदमियो के सग भेजा। राजा ने जो अपनी सौ स्त्रियाँ तथा चार सौ दासियाँ दी थी उन्हें नन्दा देवी के साथ भेज दिया। अपने साथ आई सेना भी उनके साथ लौटा दी। वे बडे ठाट-बाट से उत्तर पञ्चाल नगर पहुँचे। तब राजा ने मा को पूछा—"मा! क्या विदेह-नरेश ने सेवा-सुश्रुषा की।" "तात क्या कहता है, मेरी देवता की तरह

पूजा की, नन्दा देवी को भी माता की तरह पूजा और पञ्चाल चण्ड को छोटा भाई बना कर रखा।" यह सुन राजा अति सन्तुष्ट हुआ और उसने बहुत भेट भिजवाई। इसके बाद से वे दोनो मिलकर प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

महा उम्मग्ग काण्ड समाप्त

पञ्चाल चण्डी राजा की प्रिया थी, मन को अच्छी लगने वाली। दूसरे वर्ष उसने पुत्र को जन्म दिया। इसके दसवे वर्ष विदेह-नरेश मर गया। बोधिसत्व ने उसे छत्र धारण करवा पूछा—'देव! मै तुम्हारे नाना चूळनी राजा के पास जाता हूँ "पण्डित! मुझे छोटेपन मे छोडकर मत जाओ। मै तुम्हे पिता मानकर सत्कार करूगा।" पञ्चाल चण्डी ने भी प्रार्थना की—"पण्डित! तुम्हारे जाने के बाद दूसरा शरण-स्थान नही है। मत जायें।" उसने भी सोचा,'मै राजा को वचन दे चुका हूँ। बिना गये नही रह सकता।' लोगो के विलाप करते रहने पर भी वह अपने सेवको को साथ ले, निकलकर उत्तर पञ्चाल नगर जा पहुँचा। राजा ने उसके आगमन की बात सुनी तो अगवानी कर बडे सत्कार से नगर मे प्रवेश कराया और उसे बडा सा घर दिया। किन्तु प्रथम दिगे अस्सी गाँवो के अतिरिक्त और कुछ विशेष नही दिया। वह उस राजा की सेवा मे रहने लगा।

उस समय भेरी नामक पीरब्राजिका राज-भवन में भोजन करती थी। वह पण्डिता थी, मेघावी थी, उसने बोधिसत्व को कभी नही देखा था। केवल सुना भर था कि महोषध पण्डित राजा की सेवा मे रहता है। उसने भी उसे नही देखा था। केवल सुना ही था कि भेरी नायक पीरब्राजिका राज-भवन मे भोजन करती है। नन्दादेवी बोधिसत्व से रुष्ट थी। उसका कहना था कि इसने प्रिय-वियोग कर हमें कष्ट दिया। उसने पाँच राजप्रिय स्त्रियो को आज्ञा दी कि बोधिसत्व पर आरोप लगा उससे राजा का मन खिन्न करने का प्रयत्न करें। वे इसका अवसर देखती हुई घूमती थी।

एक दिन जब वह पीरब्राजिका खाकर जा रही थी उसने राजाङ्गण मे बोधिसत्व को राजा की 'सेवा' में आते देखा। वह उसे नमस्कार कर खडी हुई। उसने सोचा, "यह 'पण्डित' है। 'मै इसकी परीक्षा करूगी कि यह 'पण्डित' है अथवा 'अपण्डित'?" उसने हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछने हुए बोधिसत्व को देख हाथ पसारा। उसने प्रश्न किया—"पण्डित! परदेश से मँगवाकर अब तुम्हारी राजा सेवा करता है या नही करता है? बात क्या है?" बोधिसत्व ने समझ लिया कि हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछ

रही है। उसने प्रश्न का उत्तर देते हुए मुट्ठी बन्द की। उसने मन से प्रश्न का उत्तर दिया—"आर्ये! मुझसे वचन ले, मुझे बुलवा, अब राजा ने मुट्ठी बाँध ली। अब मुझे विशेष कुछ नही देता।" उसने उसकी बात सुन, हाथ उठाकर सिर पर रखा। इसका भावार्थ था—पण्डित! यदि कष्ट है तो मेरी ही तरह प्रव्रजित क्यो नही हो जाता? यह जान बोधिसत्व ने अपने पेट को स्पर्श किया। इसका भावार्थ था—'आर्ये! मुझे अनेको का पालन-पोषण करना है, इसीसे प्रव्रजित नही होता।" इस प्रकार वह हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछ अपने निवास-स्थान को चली गई।

बोधिसत्व भी उसे नमस्कार कर राज-सेवा मे पहुँचा। नन्दा देवी द्वारा नियुक्त राज-प्रिय स्त्रियो ने खिडकी मे से उनकी वह क्रिया देख चूळनी राजा के पास जा शिकायत की 'देव! महोषध मेरी परिव्राजिका के साथ मिलकर तुम्हारा राज्य लेना चाहता है। वह तुम्हारा शत्रु हो गया है।' राजा ने पूछा—"तुमने क्या देखा, सुना?' 'महाराज! परिव्राजिका ने भोजनानन्तर उतरते समय महोषध को देख हाथ फैलाकर प्रश्न किया—"राजा को हाथ की हथेली की तरह या खलिहान की तरह बराबर करके क्या तू उसका राज्य नही ले सकता?" बोधिसत्व ने भी तलवार पकडने की तरह मुट्ठी बन्द कर उत्तर दिया—'कुछ दिनो के बाद इसका सिर काटकर राज्य अपने हाथ मे ले लूगा।' उसने अपना हाथ सिर पर रखा कि सिर ही काटना। बोधिसत्व ने पेट पर हाथ रखा कि उसे बीच से काटूगा। महाराज अप्रमादी हो। महोषध को मरवा डालना योग्य है।"

उसने उनकी बात सुन सोचा—"पण्डित मुझसे द्वेष नही कर सकता। मै परिव्राजिका से पूछूँगा।" अगले दिन परिव्राजिका के भोजन के समय उसने पास जाकर पूछा—"आर्ये! क्या महोषध पण्डित को देखा है?"

"हाँ महाराज! कल भोजन करके यहाँ से जाते समय देखा है?"

"कोई बातचीत हुई?"

"बातचीत नही हुई।"

"यह सुन कि यह पण्डित है और यह सोच कि यदि पण्डित होगा तो समझ जायगा मैंने हाथ पसार कर हस्त-मुद्रा से उससे प्रश्न पूछा कि क्या राजा का हाथ तेरे लिये खुला है अथवा मुट्ठी बन्द है। क्या वह तुझे चीजे देता है वा नही देता है? पण्डित ने मुट्ठी बन्द की कि राजा ने मुझसे वचन ले, बुला अब हाथ सकुचित कर लिया है। कुछ नही देता। तब मैंने सिर को हाथ लगाया कि यदि कष्ट है तो मेरी तरह

प्रव्रजित हो जा। उसने पेट को हाथ लगाया कि मुझे बहुत जनो का पालन-पोषण करना है, बहुत जनो के पेट भरने है, इसलिये प्रव्रजित नही हो सकता।"

"आर्ये! महोपध पण्डित है।"

"हाँ महाराज! पृथ्वी भर में उसके समान कोई नही है।"

राजा ने उसकी बात सुन, उसे नमस्कार कर विदा किया। उसके चले जाने पर पण्डित से प्रवेश किया। उसने उससे भी पूछा—"पण्डित! क्या तूने मेरी परि-व्राजिका देखी?"

"हाँ महाराज! कल यहाँ से निकलते समय दिखाई दी। उसने हाथ मुद्रासे मुझसे प्रश्न पूछा। मैने भी से वैसे ही उत्तर दिया।" जैसा उसने कहा था वैसा ही कहा।

राजा ने उस दिन प्रसन्न हो पण्डित को सेनापति बना दिया। सारे काम उसे ही सौंप दिये। वह बहुत ऐश्वर्य-शाली हो गया। केवल राजा ही उससे अधिक ऐश्वर्य-शाली था। राजा ने एक बारगी ही मुझे इतना अधिक ऐश्वर्य-शाली बना दिया है। राजा लोग कभी-कभी मरवा डालने की नीयत से भी ऐसा करते है। मै इसकी परीक्षा करूँ कि वह मेरा सुहृदय है अथवा नही? और कोई पता नही लगा सकता। मेरी परिव्राजिका ज्ञानी है। वह किसी उपाय से पता लगायेगी। वह बहुत सी सुगन्धी तथा माला आदि ले परिव्राजिका के निवास स्थान पर पहुँचा और उसे प्रणाम कर तथा उसकी पूजा कर कहा—"आर्ये! जिस दिन से तुमने राजा से मेरे गुण का वर्णन किया उस दिन से राजा मुझे अत्यधिक ऐश्वर्य्य दे रहा है। मै नही जानता कि यह वह स्वाभाविक रूप से दे रहा है अथवा अस्वाभाविक रूप से? अच्छा होगा यदि किसी उपाय से यह पता लगायें कि राजा का मेरे प्रति क्या भाव है?

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और अगले दिन राज-भवन जाते-जाते ही जल-राक्षस के प्रश्नो का विचार किया। उसने सोचा—गुप्तचर की भांति, ढंग से, राजा से प्रश्न पूछकर पता लगाऊँगी कि वह पण्डित का सुहृदय है अथवा नही है? वह गई और भोजनान्तर बैठी। राजा भी उसे प्रणाम कर एक ओर बैठा। उसने सोचा, यदि पण्डित के प्रति राजा की दुर्भावना होगी तो वह प्रश्न पूछने पर उसे लोगो के सामने ही व्यक्त कर देगा जो ठीक नही होगा। मै उसे एकान्त में

प्रश्न पूछूँगी। उसने कहा—"महाराज! मैं एकान्त चाहती हूँ।" राजा ने आदमियो को चले जाने को कहा। वह बोली—"महाराज! आपसे प्रश्न पूछूँगी?" "आर्ये! पूछ। जानता होऊँगा तो उत्तर दूँगा।" उसने जल-राक्षस के प्रश्नो की पहली गाथा कही—

सचे वो वुट्हमानानं सत्तन्न उदकण्णवे
मनुस्स बलिमेसानो नावं गण्हेय्य रक्खसो,
अनुपुब्ब कथ दत्वा मुञ्चेसि दकरक्खिनो॥२७७॥

[यदि गम्भीर समुद्र मे सात जनो (माता, नन्दादेवी, तीक्षण-मन्त्री कुमार (भाई), धनुसेखर मित्र, पुरोहित, महोपध तथा आप) की नौका को मनुष्य-बलि का इच्छुक राक्षस पकड ले, तो आप किस क्रम से इनकी भेट देकर अपने आपको मुक्त करायेंगे॥२७७॥]

यह सुन राजा ने अपना विचार व्यक्त करते हुए यह गाथा कही—

मातर पठम दज्ज भरिय दत्वान भातरं
ततो सहाय दत्वान पञ्चम दज्ज ब्राह्मण,
छट्ठा हदज्जमत्तान नेव दज्ज महोसध॥२७८॥

[सबसे पहले मैं मा की 'बलि' दूँगा, तब भार्य्या की, तब भाई की, तब मित्र की और पाञ्चवें नम्बर पर ब्राह्मण की और छठे नम्बर पर मैं अपनी 'बलि' दूँगा। महोषध की 'बलि' दूँगा ही नही॥२७८॥]

इतने से यह प्रश्न समाप्त हो गया। परिव्राजिका ने जान लिया कि राजा के मन मे महोपध के प्रति सुहृद भाव है। किन्तु इतने भर से पण्डित का गुण प्रसिद्ध नही होगा। तब उसने सोचा—मैं जनता के बीच इनका गुणगान करूँगी। राजा इनके अवगुण सुन पण्डित के गुण कहेगा। इस प्रकार पण्डित का गुण आकाश मे चन्द्रमा के समान प्रकट हो जायगा। उसने अन्त पुर के सभी लोगो को इकट्ठा करवाया और आरम्भ से फिर राजा से वही प्रश्न पूछा। राजा ने वही उत्तर दिया। तब उसने 'महाराज'! आप कहते हैं कि मैं सर्व-प्रथम माता को ही राक्षस को सौंपूँगा। माता का तो बडा गुण है। आपकी माता भी औरो की माता जैसी नही है। इसका आप पर बडा उपकार है' कहते हुए उसने दो गाथाये कही—

पोसेता ते जनेन्ती च दीघरत्तानुकम्पिका,
छम्भीं तयि पदुट्ठस्मि पण्डिता अत्थदस्सिनी,
अञ्ञं उपनिस कत्वा वधा त परिमोचयि ॥२७९॥
त तादिस पाणदर्दि ओरस गब्भधारिणि,
मातर केन दोसेन दज्जासि दक्खनो ॥२८०॥

[यह तेरा पोपण करने वाली है, तुझे जन्म देने वाली है, दीर्घकाल तक तुझ पर अनुकम्पा करती रही है। जब इसने देखा कि छम्भी (ब्राह्मण) के मन में तेरे प्रति द्वेष है, तो इस बुद्धिमती ने अन्य उपाय करके तुझे वध से बचा लिया ॥२७९॥

तू इस प्राणयदायनी, छाती सें लगाकर रखने वाली, गर्भ मे धारण करने वाली मा को उसके किस अपराध के कारण राक्षस को सौपने देगा ॥२८०॥]

यह सुन राजा ने 'आर्ये! मेरी मा मे बहुत गुण हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि इसका मुझ पर बडा उपकार है। तो भी मेरे ही गुण अधिक हैं' कह, माता के अवगुण कहते हुए दो गाथायें कही—

दहरा विय अलकार धारेति अपिलन्धन,
दोवारिके अनीकट्ठे अतिवेल पजग्घति ॥२८१॥'
ततोपि पटिराजान सय दूतानि सासति,
मातर तेन दोसेन दज्जाह दकरक्खिनो ॥२८२॥

[तरुणियो की तरह न धारण करने योग्य गहनो को धारण करती है। द्वार-पालो तथा सैनिको के साथ देर तक हँसी-मजाक करती रहती है ॥२८१॥ फिर विरोधी राजाओ के पास अपने आप दूत भेजती रहती है। मैं माता के इसी दोष से उसे जल-राक्षस को दे दूँगा ॥२८२॥]

'अच्छा महाराज! माँ को तो आप इस अपराध के कारण राक्षस को सौप दें, किन्तु आपकी भार्य्या तो गुणवती है, कह, गाथाये कही—

इत्थि गुम्बस्स पवरा अच्चन्तपियवादिनी,
अनुग्गता सीलवती छायाव अनपायिनी ॥२८३॥
अक्कोधना पञ्ञावती पण्डिता अत्थदस्सिनी,
उब्बरिं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२८४॥

[स्त्रियो में श्रेष्ठ, अत्यन्त-प्रियवादनी, अनुगामनी, सदाचारिणी, छाया की भान्ति पीछे-पीछे चलने वाली, क्रोध-रहति, प्रज्ञावान, पण्डिता तथा अर्थदर्शी (अपनी) भार्य्या किस अपराध के कारण राक्षस को (सौंप) देगा ? ।।२८३–२८४।।

उसने उसके अवगुण कहे—

खिड्डारतिसमापन्नं अनत्थवसमागत,
सा म सकान पुत्तान अयाच याचते धन ।।२८५।।
सोह् ददामि सारत्तो लहु उच्चावच धन
सुदुच्चज चजित्वान पच्छा सोचामि दुम्मनो,
उब्बरि तेन दोसेन दज्जामि दकरक्खिनो ।।२८६।।

[काम-क्रीडा मे अनुरक्त तथा अनर्थकारी वासना के वशीभूत हुआ जान वह मुझे अपने पुत्र-पुत्रियो को दिये गये, न माँगने योग्य गहनो की याचना करती है ।।२८३।। राग के वशीभूत हुआ मै छोटी-बडी चीजे दे देता हूँ। न देने योग्य चीजो को देकर पीछे पछताता हूँ। मै अपनी भार्य्या को इसी दोष के कारण उसे जल-राक्षस को सौप दूँगा ।।२८६।।]

तब परिव्राजिका ने प्रश्न किया—'इसे तो इस दोष के कारण (राक्षस को) सौपेगा, किन्तु तीक्षण-मन्त्रीकुमार नामका जो तेरा छोटा भाई है उसे किस दोष के कारण (राक्षस को) सौंप देगा ?' उसने गाथा कही—

येनोच्चिता जानपदा आनीता च पटिग्गहं,
आभत पररज्जेहि अभिट्ठाय बहु धन ।।२८७।।
धनुग्गहान पवर सूरं तिखिणमन्तीन,
मातर केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ।।२८८।।

[जिसने जनपद की अभिवृद्धि की और जो तुम्हें परदेस से अपने घर लौटा लाया और जिसने दूसरे राज्यो को अभिभूत कर बहुत धन प्राप्त किया उस धनुर्धारियो मे श्रेष्ठ शूर-वीर तीक्ष्ण-मन्त्री भाई को किस अपराध के कारण (जल-राक्षस को) सौंप देगा ? ।।२८७-२८८।।]

राजा ने उसका दोष कहा—

मयोच्चिता जानपदा आनीता च पटिग्गहं,
आभत पररज्जेहि अभिट्ठाय बहु धन ।।२८९।।

धनुग्गहान पवरो सूरो तिक्खिणमन्ति च,
मयाय सुखितो राजा अतिमञ्ञति दारको ॥२९०॥
उपट्ठानम्पि मे अय्ये न सो एति यथा पुरे,
भातर तेन दोसेन दज्जाहं दकरक्खिनो ॥२९१॥

['मैने जनपदो की अभिवृद्धि की और परदेस से घर लौटा लाया और दूसरे राज्यो को अभिभूत कर बहुत धन लाया । मै धनुर्धारियो मे श्रेष्ठ हूँ । शूर हूँ । मै तीक्ष्ण-मन्त्री हूँ । मैने ही इस राजा को सुखी किया है' सोच, यह लडका मेरी उपेक्षा करता है। अब यह पहले की तरह भेट करने भी नही आता। इसी दोष के कारण मै भाई को (जल-राक्षस को) सौप दूगा ।।२८९-२९१।।]

परिव्राजिका ने 'अच्छा' तुम्हारा भाई भी सदोष हो सकता है । किन्तु यह धनुशेखर कुमार तो तुम्हारा बडा स्नेही तथा उपकारी है' कह उसका गुण कहते हुए गाथाये कही—

एकरत्तेन उभयो तुवञ्च धनुसेख वा,
उभो जातेत्थ पञ्चाला सहाया सुसमावया ॥२९२॥
चरिया त अनुबन्धित्थो एकदुक्खसुखो तव
उस्सुक्को ते दिवारत्ति सब्बकिच्चेसु ब्यावटो,
सहाय केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२९३॥

[तुम और धनुशेखर कुमार दोनो का जन्म एक ही समय हुआ। दोनो पञ्चाल हैं । दोनो मित्र है। दोनो समवयसक है । वह तुम्हारे पीछे चलने वाला है । तुम्हारे दुख में दुखी और तुम्हारे सुख मे सुखी है । वह तुम्हारे सभी काम करने के लिए दिनरात उत्सुक रहता है। तुम किस कारण ऐसे मित्र को (जल-राक्षस को) सौंप दोगे ।।२९२-२९३।।]

राजा ने उसका दोष कहा—

चरियाय अय अय्ये पजग्घित्थो मया सह,
अज्जापि तेन वण्णेन अतिवेल पजग्घति ॥२९४॥
उब्बरियापि मे अय्ये मन्तयामि रहोगतो,
अनामन्ता परिसति पुब्बे अप्पटिवेदिनो ॥२९५॥
लद्धवारो कतोकासो अहिरिक अनादर,
सहाय तेन दोसेन दज्जाहं दकरक्खिनो ॥२९६॥

[आर्ये ! यह पहले मेरे साथ हसी-मजाक करता रहा है। आज भी उसी तरह चिरकाल तक हसी-मजाक करता है। मै जब एकान्त मे अपनी भार्य्या से भी बातचीत करता होता हूँ तो भी यह विना पूर्व सूचना दिये घुस आता है। इस कारण मै अवसर आने पर, बारी आने पर, उस आदर न करने वाले निर्लज्ज मित्र को (जल-राक्षस को) सौप दूगा ॥२९४-२९६॥]

परिव्राजिका बोली—अच्छा,इसका भी यह दोष है। पुरोहित तो तेरा बहुत उपकारी है। उसने उसके गुण कहे—

कुसलो सब्बनिमित्तान रुदञ्ञु आगतागमो,
उप्पादे सुपिने युत्तो निय्याणे च पवेसने ॥२९६॥
पद्धो भुम्मन्तलिक्खस्मि नक्खत्तपदकोविदो,
ब्राह्मण केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२९८॥

[सब लक्षणो का ज्ञाता है, सभी (जानवरो की) भाषा जानता है, सब शास्त्रो का ज्ञाता है, सभी उत्पातो तथा स्वप्नो का भाष्य-कर्त्ता है, सभी बाहर-जाने तथा बाहर से आने के नक्षत्रो से परिचित है, पृथ्वी तथा आकाश के सभी दोषो से परिचित है, सभी नक्षत्रो से सुपरिचित है—ऐसे ब्राह्मण को तू किस अपराध के कारण जल-राक्षस को सौंप देगा ? ॥२९७-२९८॥]

राजा ने दोष कहा—

परिसायम्पि मे अय्ये मीलयित्वा उदिक्खति,
तस्मा अज्ज भमुं लुद्द दज्जाह दगरक्खिनो ॥२९९॥

[यह परिषद के बीच मे भी मेरी ओर क्रुद्ध की भाति आखे फाड फाडकर देखता है। इसलिए आज मै इस स्थिर भौ वाले भयानक शक्ल वाले ब्राह्मण को (जल-राक्षस को) सौप दूगा ॥२९९॥]

तब परिव्राजिका ने 'महाराज ! अपने माता से आरम्भ करके इन पाँचो जनो को कहा कि मै जल-राक्षस को दे दूगा। और यह भी कहा कि इस प्रकार की श्री तथा ऐश्वर्य्य की चिन्ता न कर यह जीवन भी महोषध पण्डित के लिए बलिदान कर दूगा। उसमें ऐसा क्या गुण है ?' पूछते हुए ये गाथायें कही—

ससमुद्दपरियाय महिं सागरकुण्डल,
वसुन्धर आवससि अमच्चपरिवारितो ॥३००॥

चातुरन्तो महारट्ठो विजितावी महब्बलो,
पथब्या एकराजासि यसो ते विपुलगतो ॥३०१॥
सोळसित्थिसहस्सानि आमुत्त मणिकुण्डला,
नाना जनपदा नरियो देवकञ्ञूपमा सुभा ॥३०२॥
एव सब्बगसम्पन्न सब्बकामसमिद्धिन,
सुखितान पिय दीघ जीवित आहु खत्तिय ॥३०३॥
अथ त्व केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
पण्डित अनुरक्खन्तो पाण चजसि दुच्चज ॥३०४॥

[सागर से घिरी हुई पृथ्वी पर तू अमात्यो से घिरा हुआ राज्य करता है। तेरा राष्ट्र चारो दिशाओ मे फैला है। तू विजयी है। तू महाबलवान है। तू पृथ्वी का एक राजा है। तेरा ऐश्वर्य्य महान् है। मोतियो, मणियो तथा कुण्डलो से लडी सोलह हजार स्त्रिया है, जो नाना जनपदो से आई है नारियाँ है, जो सुन्दर हैं तथा जो देव-कन्याओ के समान है। हे क्षत्रिय! जो सर्वाङ्ग सम्पूर्ण होते है, जो हर तरह से स्मृद्ध होते है तथा जो सुखी होते है उन्हे जीवन 'प्रिय' कहा गया है। तो फिर तू किस कारण से अथवा किस हेतु से पण्डित को बचाने के लिए अपने दुष्त्याज्य प्राणो का त्याग करता है ॥३००-३०४॥]

उसने उसकी बात सुन, पण्डित का गुणानुवाद करते हुए ये गाथायें कही—

यतोपि आगतो अय्ये मम हत्थ महोसधो,
नाभिजानामि धीरस्स अनुमत्तम्पि दुक्कत ॥३०५॥
सचेव किस्मिचि काले मरण मे पुरे सिया,
पुत्तेच मे पपुत्तेच सुखापेय्य महोसधो ॥३०६॥
अनागते पच्चुप्पन्न सब्बमत्थ विपस्सति,
अनापराधकम्मन्त न दज्ज दकरक्खिनो ॥३०७॥

[आर्ये! जब से भी महोषध मेरे हाथ आया है, तब से मैंने इस पण्डित का एक भी दोष नही देखा। यदि किसी समय मैं इससे पहले मर जाऊ तो महोषध पण्डित मेरे पुत्रो तथा प्रपुत्रो को सुख पहुचावेगा। यह अनागत और वर्तमान सभी बातो का ध्यान रखता है। इस निरपराध को मै जल-राक्षस को नही सौपूंगा ॥३०५-३०७॥]

इस प्रकार यह जातक कथा समाप्त होने जा रही है। तब परिव्राजिका ने सोचा—इतने से भी पण्डित के गुणो की प्रसिद्धि नही होगी। सारे नगर-निवासियो

के बीच, सागर के ऊपर सुगन्धित जल छिडकने के समान उन्हे प्रकट करूगी। वह राजा को लिए प्रासाद से नीचे उतरी और राजाङ्गन मे आसन बिछा, उस पर बैठ, उसने नागरिको को इकट्ठा करवाया। फिर उसने राजा को आरम्भ से जल-राक्षस प्रश्न पूछे और उसके भी उक्त प्रकार से ही उत्तर देने पर नागरिको को सम्बोधित कर कहा—

इद सुणोय पञ्चाला चूळनीयस्स भासित,
पण्डित अनुरक्खन्तो पाण चजति दुच्चज ॥३०८॥
मातु भरियाय भातुच्च सखिनो ब्राह्मणस्स च,
अत्तनोचापि पञ्चालो छन्न चजति जीवित ॥३०९॥
एव महत्थिका पञ्ञा निपुणा साधुचिन्तनी,
दिट्ठधम्मे हितत्थाय सम्पराये सुखाय च ॥३१०॥

[हे पञ्चाल नागरिको ! चूळनी के इस अभिभाषण को सुनो। यह पण्डित को बचाने के लिये अपने दुस्त्याज्य प्राणो का त्याग कर रहा है। इस प्रकार यह प्रज्ञा महान् अर्थों के सिद्ध करने वाली है, समर्थ है और कल्याणकारिणी है। यह इस लोक में हितकर होती है और परलोक मे भी सुख देती है ॥३०८-३१०॥]

इस प्रकार रतन-गृह पर मणि का शिखर रखने के समान उसने बोधिसत्व के गुण कह देशना को समाप्त किया।

जल-राक्षस-प्रश्न समाप्त

महाउम्मग्ग का सम्पूर्ण वर्णन समाप्त

जातक-समोधान इस प्रकार है—

भेरी उप्पलवण्णासि पिता सुद्धोदनो अहू,
माता आसि महामाया अमरा बिम्ब सुन्दरी ॥३११॥
सुवो अहोसि आनन्दो सारिपुत्तोसि चूळनी,
महोसधो लोकनाथो एव धारेथ जातक ॥३१२॥

[भेरी उत्पलवर्णा थी, पिता शुद्धोदन थे, माता महामाया थी, अमरा देवी बिम्बसुन्दरी थी ॥३११॥ तोता आनन्द था, सारिपुत्र चूळनी था, और महोषध तो लोक-नाथ (बुद्ध) ही थे— इस प्रकार इस जातक को समझना चाहिये ॥३१२॥]

५४७. महावेस्सन्तर जातक

"फुसनीवरवण्णाभे "यह शास्ता ने कपिलवस्तु के आश्रय निग्रोधाराम में वास करते समय 'कमल-वर्षा' के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब शास्ता धर्म-चक्र प्रवर्तन कर चुकने के बाद क्रमश राजगृह पहुचे और वहाँ हेमन्त ऋतु गुजार कर मार्ग-दर्शक उदासी स्थविर के पीछे-पीछे बीस हजार क्षीणास्रवो के साथ पहली बार कपिल वस्तु गये, तब शाक्य राजाओ ने सोचा—"हम अपने जाति-श्रेष्ठ को देखेंगे।" उन्होंने इकट्ठे हो भगवान् के लिए उपयुक्त निवास-स्थान का विचार किया। उन्होंने निश्चय किया कि निग्रोध शाक्य का आराम रमणीय है। वहाँ उन्होंने हर तरह की व्यवस्था कर, गन्ध-पुष्पादि हाथ में ले, अगवानी करते हुए, सभी अलङ्कारो से अलङ्कृत, नगर के बच्चो तथा बच्चियो को पहले भेजा। उसके बाद राजकुमारो तथा राजकुमारियो को। उनके बाद गन्ध-पुष्प-चूर्णादि स्वय ले, शास्ता की पूजा करते हुए, भगवान के लिए ले जा, निग्रोध-आराम पहुचे। वहाँ भगवान् बीस हजार क्षीणास्रवो से घिरे बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे थे। शाक्य लोग बडा मान करने वाले थे, अभिमानी थे। उन्होंने यह सोच कि सिद्धार्थ कुमार हम से छोटा है, हम से कनिष्ठ है भानजा है पुत्र है, नाती है, छोटे छोटे राजकुमारो को कहा—"तुम नमस्कार करना। हम तुम्हारी पीठ पीछे बैठे रहेंगे।" जब वे बिना नमस्कार किये, इस प्रकार बैठ गये तो भगवान् ने उनका आशय समझ सोचा—'मेरे सम्बन्धी मुझे नमस्कार नही करते है। अच्छा उनसे नमस्कार कराता हूँ।" भगवान् ने अभिज्ञा-पक्षीय ध्यान लगाया और उठकर आकाश में जा पहुचे। फिर उनके सिर पर धूल बिखेरते हुए से होकर, गण्डम्ब वृक्ष मूल मे,यमक-प्रातिहारि सदृश प्रतिहारि दिखाई। राजा ने उस आश्चर्य्य को देखा तो बोला—"भन्ते! जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब तुम्हे काल देवल को नमस्कार कराने के लिए ले जाया गया। तुम्हारे पाँव

उलट कर ब्राह्मण के सिर जा लगे। यह देख मैंने तुम्हारी वन्दना की थी। यह मेरी पहली वन्दना थी। बोने के मङ्गल दिन जम्बू-वृक्ष के नीचे शैय्या पर बैठे रहने के समय जब वृक्ष की छाया को उसी जगह खड़े देखा तो भी मैंने तुम्हारे चरणो की वन्दना की। यह मेरी दूसरी वन्दना है। अब इससे पहले न देखी गई यह प्रातिहारि देखकर भी तुम्हारे चरणो की वन्दना करता हूँ। यह मेरा तीसरी बार नमस्कार है। जब राजा ने नमस्कार किया तो एक शाक्य भी नही बचा जो बिना नमस्कार किये रह सके। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार जब भगवान् सम्बन्धी-गणो से नमस्कार करवा चुके तो आकाश से उतर आसन पर बैठे। भगवान् के बैठते ही सभी रिश्तेदार समाहित हो गये। वे सब एकाग्र-चित्त होकर बैठ गये। तब महा-मेघ उठा और कमल-वर्षा हुई। ताम्र-वर्ण जल नीचे आवाज करता जाता था। जो भीगना चाहते थे वे भीगते थे, जो भीगना नही चाहते थे उनके शरीर पर बूद मात्र भी नही गिरती थी। यह देख सभी को आश्चर्य्य हुआ। सभी कहने लगे—"अहो! अद्भुत है! अहो! बुद्धो का प्रताप! जिनके सम्बन्धियो के समागम मे इस प्रकार की कमल वर्षा होती है।" यह सुन शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी मेरे रिश्तेदारो के समागम मे ऐसी कमल-वर्षा हुई है' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की गाथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर मे राज्य करते समय सिवि-नरेश को सञ्जय नाम के पुत्र का लाभ हुआ। उसने उसके आयु-प्राप्त होने पर फुसति नाम की मद्र-राज-कन्या को लाकर, सञ्जय को राज्य सौप, उसे पटरानी बनाया। यह उसकी पूर्व कथा है—

अब से इकानवे वर्ष पूर्व विपश्यी नामक शास्ता लोक मे उत्पन्न हुए। जिस समय वह बन्धुमती नगर के आश्रय से कल्याणकर मृगदाय में विहार कर रहे थे, एक राजा ने बन्धुम राजा के पास अनर्घ चन्दनसार के साथ लाख के मूल्य की स्वर्ण-माला भेजी। राजा की दो लडकियाँ थी। उसने उन दोनो को भेट देने की इच्छा से बडी लडकी को चन्दनसार दे दिया और छोटी लडकी को स्वर्ण-माला दे दी। उन दोनो ने सोचा कि इन्हें हम अपने शरीर पर धारण न कर इनसे शास्ता की ही पूजा करेंगे। उन्होने राजा से पूछा—'तात! हम चन्दनसार तथा स्वर्ण-माला से दशबलधारी

की पूजा करेगी।" राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। ज्येष्ठ लडकी ने चन्दन को बारीक पिसवाया और स्वर्ण-पेटी भरवा कर लिवा चली। छोटी बहन ने स्वर्ण-माला को गले की माला बनवाया और सोने की पिटारी मे रख लिवा चली। वे दोनो मृगदाय मे विहार मे पहुची। ज्येष्ठ लडकी ने चन्दन-चूर्ण से दशबल के स्वर्ण-वर्ण शरीर की पूजा कर और शेष चूर्ण गन्धकुटी मे बिखेर कर प्रार्थना की—"भन्ते! मै भविष्य मे तुम्हारे सदृश बुद्ध की माता बनू।" छोटी लडकी ने तथागत के स्वर्ण-वर्ण शरीर की स्वर्ण-माला की छाप से पूजाकर प्रार्थना की—"भन्ते! जब तक अर्हत्व लाभ न हो तब तक यह अलङ्कार इस शरीर से पृथक् न हो।" शास्ता ने उनका अनुमोदन किया। तक दोनो आयु-पर्य्यन्त जी कर देवलोक मे उत्पन्न हुई। उनमे से बडी बहन इकानवे कल्प से देव-लोक से मनुष्य-लोक और मनुष्य-लोक से देव-लोक मे जन्म ग्रहण करती रही और अन्त मे इकानवे कल्पो के समाप्त होने पर बुद्ध-माता महामाया देवी हुई। छोटी बहन भी उसी प्रकार जन्म ग्रहण करती हुई काश्यप बुद्ध के समय किसी राज की लडकी होकर उत्पन्न हुई। छाती पर चित्रित माला के समान अलङ्कृत छाती लिये पैदा होने से उसका नाम उरच्छद कुमारी हो पडा। सोलह वर्ष की आयु होने पर शास्ता का दानानुमोदन सुन स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुई। आगे चलकर दानानुमोदन सुनते समय ही जब पिता स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ, उसी दिन वह अर्हत्व को प्राप्त हो, प्रव्रजित होकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुई। किकी राजा को भी और सात लडकियाँ हुई। उन के नाम है—

> समणी समणगुत्ता च भिक्खुणी भिक्खदायिका,
> धम्मा चेव सुधम्मा च सघदासी च सत्तिमा ॥१॥

[समणी, समणगुप्ता, भिक्खुणी, भिक्खदायिका, धम्मा, सुधम्मा तथा सातवी सङ्घदासी थी ॥१॥]

इस बुद्ध युग मे वे हुई—

> खेमा उप्पलवण्णा च पटाचारा च गोतमी,
> धम्मदिन्ना महामाया विसाखा चापि सत्तिमा ॥२॥

[खेमा, उत्पल वर्णा, पटाचारा, गोतमी, धम्म-दिन्ना, महामाया सातवी विशाखा हुई ॥२॥]

उनमें से 'फुसती' सुधर्मा नाम धारिणी हुई। उसने दानादि पुण्य-कर्म किये और विपश्यी नामक सम्यक् सम्बुद्ध की जो चन्दन चूर्ण से पूजा की थी उसके फल से

लाल चन्दन से रजित शरीर सदृश हो वह देव-लोक तथा मनुष्य लोक मे जन्म ग्रहण करती हुई आगे चलकर शक्र देवराज की पटरानी होकर पैदा हुई। जब वहाँ उसकी आयु पूरी हो गई और पाँचो पूर्व-निमित्त प्रकट हुए तो देवेन्द्र शक्र उसके आयु-क्षय होने की बात जान, उसे भारी ठाट-बाट के साथ नन्दन-वन ले गया। वहाँ वह अलङ्कृत शय्या पर बैठी। शक्र ने स्वय शैय्या के पास बैठ कहा—"भद्रे फुसती! मै तुझे दस वर देता हूँ। ग्रहण कर।" यह कहकर उसने इस हजार गाथाओ वाली वेस्सन्तर जातक की पहली गाथा कही—

फुसति वरवण्णाभे वरस्सु दसधा वरे,
पथव्या चारुपुब्बाग य तुय्हं मनसो पिय ॥३॥

[हे श्रेष्ठ वर्ण धारिणी फुसती! हे पृथ्वी मे सुन्दर अङ्गो वाली! तुझे मन से जो अच्छे लगें, ऐसे दस वर माग ॥३॥]

इस प्रकार महावेस्सन्तर धर्म-देशना देव लोक मे प्रतिष्ठित हो गई।

उसने अपने च्युत होने की बात न जान, प्रमाद वश दूसरी गाथा कही—

देवराज नमो त्यत्थु किं पापं पकत मया,
रम्मा चावेसि म ठाना वातोव धरणी रुहं ॥४॥

[हे देवराज! तुझे नमस्कार है, मैंने ऐसा कौनसा पापकर्म किया है जिससे तू मुझे इस रमणीक स्थान से वैसे ही गिरा देना चाहता है, जैसे हवा वृक्ष को? ॥४॥]

उसका प्रमाद देख शक्र ने दो गाथाये कही—

न चेव ते कत पाप न च मे त्वमसि अप्पिया,
पुञ्जञ्च ते परिक्खीण येन तेवं वदामहं ॥५॥
सन्तिके मरण तुय्हं विनाभावो भविस्सति,
पतिगण्हाहि मे एते वरे दस पवेच्छतो ॥६॥

[न तो तूने कोई पाप ही किया है और न तू मेरी अप्रिया है। अब तेरा पुण्य समाप्त हो गया है, जिससे मै ऐसा कहता हूँ ॥५॥ तेरा मरण समीप है, अब तेरा वियोग होगा। इस लिए मै जो दस 'वर' दे रहा हूँ, वे ले ले ॥६॥]

उसने शक्र की बात सुन, अपना मरण निश्चित जान, वर मागते हुए कहा—

वर मे अदो सक्क सब्बभूतानमिस्सर,
सिविराजस्स भद्दन्ते तत्थ अस्स निवेसने ॥७॥

नीलनेत्ता नीलभमु नीलक्खीच यथामिगी,
फुसती नाम नामेन तत्थ पस्स पुरिन्दद ॥८॥
पुत्त लभेथ वरद याचयोग अमच्छरिं,
पूजित पतिराजेहि कित्तिमन्त यसस्सिन ॥९॥
गब्भ मे धारयन्तिया मज्झिमङ्ग अनुन्नत,
कुच्छि अनुन्नता अस्स चाय व लिखित सम ॥१०॥
थना मे नप्पतेय्यु पलिता नस्सन्तु वासव,
काये रजो न लिम्पेथ वज्झञ्चापि पमोचये ॥११॥
मयूरकोञ्चाभिरुदे नारीवरगणायुते,
खुज्जचेला पकाकिण्णे सूतमागधवण्णिते ॥१२॥
चित्रग्गलेरुघुसिते सुरामंसपबोधने,
सिविराजस्स भद्दन्ते तत्थ अस्स महोसिया ॥१३॥

[हे सब प्राणियो के ईश्वर शक्र ! यदि तू मुझे 'वर' ही देना चाहता है तो यह 'वर' दे कि मै सिविराज के घर मे पटरानी होऊ ॥७॥ मेरी नीली आखे हो, नीली भौए हो, नीले नेत्र हो जैसे मृगी के। और वहाँ भी हे पुरेन्द्र ! मै 'फुसती' नाम से ही ज्ञात होऊ ॥८॥ मुझे श्रेष्ठ वस्तुओ का दाता, दानी, उदार पुत्र मिले जो अन्य राजाओ द्वारा पूजित हो, प्रशसित हो और यशस्वी हो ॥९॥ जब मै गर्भ धारण करू तब मेरी कोख अनुन्नत, मध्यमाकार की ही रहे जैसे समानाकार चित्रित धनुष ॥१०॥ मेरे स्तन लम्बे न हो, हे वासव मेरे सिर के सफेद बाल नष्ट हो जाये, शरीर में बुढापा न आये और मै प्राण-दण्ड पाये व्यक्ति को भी मुक्त करा सकू ॥११॥ मै सिविराज के उस घर मे पटरानी बनू, जहा मयूर तथा क्रौञ्चो का नाद होता हो, जहाँ सुन्दर सुन्दर नारिया हो, जो छोटे कर्मचारियोसे घिरा हो, जहाँ सूत तथा मागध स्तुति करते हो, जहाँ चित्रित खिडकी-दरवाजो की आवाज होती हो और जहाँ 'शराब पीओ, मास खाओ' कहकर आदमियो को प्रबोधित किया जाता हो ॥१२-१३॥]

शक्र बोला—

ये ते दस वरा दिन्ना मया सब्बगसोभने,
सिविराजस्स विजिते सब्बे ते लच्छसी वरे ॥१४॥

इद वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
फुसतिया वर दत्वा अनुमोदित्थ वासवो ॥१५॥

[हे सर्वाङ्ग शोभिनी ! मैने जो तुझे ये दस 'वर' दिये है ये सभी तुझे सिविराज के राष्ट्र मे प्राप्त होगे ॥१४॥ देवेन्द्र देवराज सुजम्पति ने यह कहकर 'फुसती को 'वर' दिया और वर देकर उसका अनुमोदन किया ॥१५॥]

दसवर गाथा समाप्त

इस प्रकार उन 'वरो' को ग्रहण कर, वहाँ से च्युत हो, वह मद्रराज की पटरानी की कोख मे आई। क्योकि वह पैदा होते ही चन्दन-चूर्ण बिखरे वर्ण जैसा शरीर लेकर पैदा हुई, इसलिये नामकरण के दिन उसका नाम 'फुसती' ही रखा गया। वह बडे ठाट-बाट से बडी होती हुई सोलह वर्ष की होने पर बडी रूपवान् हूई। तब उसे सिविराज अपने पुत्र सञ्जय कुमार के लिये ले आये। उन्होने पुत्र के सिर पर छत्र धारण करा, 'फुसती' को सोलह हजार स्त्रियो मे श्रेप्ठ बना पटरानी बना दिया। इसी लिये कहा गया है—

ततो चुता सा फुसती खत्तिये उपपज्जथ,
जेतुत्तरम्हि नगरे सञ्जयेन समागमि ॥१६॥

[वहाँ से च्युत होकर वह 'फुसती' क्षत्रिय-कुल मे उत्पन्न हुई और जेतुत्तर नगर में सञ्जय को प्राप्त हुई ॥१५॥]

वह सञ्जय की प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली हुई। तब शक्र ने विचार करते हुए सोचा—"मैने जो नौ 'वर' फुसती को दिये वे सब पूरे हो गये। एक दसवा पुत्र वाला 'वर' पूरा नही हुआ। उसे भी पूरा कराऊगा।"

उस समय बोधिसत्व का त्र्योत्रिश-देवलोक मे निवास था। उसकी 'आयु' समाप्त हो गई थी। यह जान शक्र ने उसके पास जाकर कहा—"मित्र ! तुझे मनुष्य लोक जाना चाहिये। वहा सिवि राजा की पटरानी फुसती की कोख में प्रवेश करना चाहिये।" शक्र ने उससे तथा अन्य साठ हजार च्युत होने वाले देव-पुत्रो से प्रतिज्ञा कराई तथा अपने स्थान को लौट आया। बोधिसत्व वहाँ से च्युत हो वही पैदा हुए। शेष देव-पुत्र भी साठ हजार अमात्यो के घरो मे पैदा हुए। बोधिसत्व के कोख में आ जाने पर 'फुसती' को दोहद उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि चारो नगर-द्वारो पर, नगर के मध्य मे तथा निवास-स्थान के द्वार पर छ दान

शालाये स्थापित करा प्रतिदिन छ लाख का त्याग कर दान दे। राजा ने उसका 'दोहद' सुना तो निमित्त जानने वालो से पूछा। उनका उत्तर था—"महाराज! देवी की कोख मे दान की प्रवृत्ति वाला प्राणी आया है। वह दान देने से तृप्त न होगा।" राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ और उसने उक्त प्रकार से ही दान दिये जाने की व्यवस्था कर दी। जबसे बोधिसत्व ने कोख में प्रवेश किया, राजा की 'आय' असीम हो गई। उसके पुण्य के प्रताप से सारे जम्बुद्वीप के राजा गण भेंट भेजने लगे। देवी बडे ठाट से गर्भ धारण करती रही। दस महीने पूरे होने पर उसने राजा से कहा—नगर देखना चाहती हू। राजा ने नगर को देव-नगर की तरह सजवाया, देवी को श्रेठ रथ पर चढाया और नगर की प्रदक्षिणा कराई। जब वे वैश्यो की गली के बीच आये तो रानी का 'समय' हो गया। राजा को सूचना दी गई। उसने वैश्यो की गली मे ही उसके लिये प्रसूतिका-गृह की व्यवस्था कर दी। उसने वहाँ पुत्र को जन्म दिया। इसी लिये कहा गया है—

> दस मासे धारयित्वान करोन्ती पुरपदक्खिण,
> वेस्सान वीथिया मज्झे जनेसि फुसती मम ॥१७॥

[दस महीने तक मुझे गर्भ में रख, नगर की प्रदक्षिणा करते समय, वैश्यो की गली मे 'फुसती' ने मुझे जन्म दिया ॥१७॥]

बोधिसत्व माता की कोख से शुद्ध रूप मे आँख खोले हुए निकले। बाहर निकलते ही माता से कहा—"मा! दान दूगा। कुछ है?" उसने उसके फैले हाथ पर हजार की थैली रखकर कहा—"तात! जितना चाहे उतना दान कर।" बोधिसत्व ने उम्मग्ग जातक मे, इस जातक मे और अन्तिम जन्म मे पैदा होते ही बातचीत की है। नाम-करण के दिन वैश्यो की गली मे पैदा होने के कारण वेस्सन्तर नाम रखा गया। इसलिए कहा गया—

> न मय्हं मत्तिकं नामं नपि पेत्तिकसम्भवं,
> जातोम्हि वेस्सवीथियं तस्मा वेस्सन्तरो अहु ॥१८॥

[न मेरा नाम माता पर है और न पिता पर। वैश्य-गली में जन्म होने के कारण 'वेस्सन्तर' नाम हुआ ॥१८॥]

जन्म लेने के दिन ही आकाश में विचरण करने वाली एक हस्थिनी अभिमङ्गल माने जाने वाले एक सर्वश्वेत हाथी-बच्चे को लेकर आई और मङ्गल हस्ती के स्थान

पर रखकर चली गई। बोधिसत्व के 'प्रत्यय' से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम 'प्रत्यय' ही रख दिया गया। राजा ने 'वडी लम्बी' आदि दोषो से रहित मधुर-दूध वाली चौसठ दाइयाँ बोधिसत्व के लिए नियुक्त की। उसके साथ जन्म ग्रहण करने वाले साठ हजार बच्चो के लिए भी दाइयो की व्यवस्था की। वह साठ हजार बच्चो के साथ वडी शान से वढने लगा।

राजा ने उसे लाख के मूल्य के वच्चो के गहने मगवाकर दिये। उसने चार-पाँच वर्ष की आयु होने पर गहने उतार दाइयो को दे दिये और फिर उनके देने पर नही लिए। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने दूसरे गहने बनवा दिये। वोला—'मेरे पुत्र ने जो दिया ठीक दिया। यह श्रेष्ठ दान ही है।' कुमार ने वह गहने भी दे दिये। वचपन मे ही उसने दाइयो को नौ वार गहने दिये। आठ वर्ष की आयु होने पर शैय्या पर पडा पडा सोचता था—"मै अपने आपको दान मे देना चाहता हूँ। यदि कोई मेरे हृदय की याचना करे तो मै उसे छाती फाड कर, हृदय निकाल कर दे दू, यदि आखो की याचना करे तो आखे उखाड कर दे दू और यदि शरीर की याचना करे तो सारे शरीर से मास नोच कर दे दू।"जब वह इस प्रकार से स्वाभाविक रूप से सरस चिन्तन कर रहा था तो चुरान्नवे नहुत दो लाख योजन मोटी यह पृथ्वी मस्त हाथी की तरह गर्जती हुई कापी। सुमेरु पर्वत-राज अच्छी तरह सिधाई हुई बेत की तरह झुककर, नाचता हुआ जेतुत्तरनगर के सामने आ खडा हुआ। पृथ्वी की आवाज होने से गरजते हुए देव ने थोडी देर के लिए वर्षा की। बिजली चमकी। सागर उवल पडा। देवेन्द्र शक्र ने ताली बजाई। महाब्रह्मा ने साधुकार दिया। ब्रह्मलोक तक शोर मच गया। कहा भी गया है—

यदाह दारको होमि जातिया अट्ठवस्सीको,
तदा निसज्ज पासादे दान दातु विचिन्तयिं ॥१९॥
हृदय ददेय्य चक्खुम्पि मसम्पि रुधिरम्पि च,
ददेय्य काय सावेत्वा यदि कोचि याचये म ॥२०॥
सभाव चिन्तयन्तस्स अकम्पितमसठित,
अकम्पितत्थ पठवी सिनेरुवन वटसक ॥२१॥

[जब मै जन्म से आठ वर्ष का हुआ तव प्रासाद पर बैठे बैठे मैने दान देने का सकल्प किया। मै हृदय दे दूँ, आख दे दूँ, मास दे दू, खून दे दू और यदि कोई मागे तो

सुनाकर उसे शरीर दे दू। इस प्रकार जब मै स्वाभाविक रूप से सोच रहा था तो सिनेरु पर्वत से अलङ्कृत अकम्पित, अमस्थित पृथ्वी काप उठी ॥१९-२१॥]

सोलह वर्ष की आयु होते होते बोधिसत्व सब शिल्पो मे निष्णात हो गये। पिता ने उसे राजा बनाने का विचार कर, उसकी मा से मन्त्रणा कर, मद्र राजकुल से माद्री नाम की मामा-लडकी ला उसे सोलह हजार स्त्रियो मे पटरानी बना दिया। बोधिसत्व का राज्यभिषेक किया। बोधिसत्व ने राज्य पर प्रतिष्ठित होने के बाद से प्रति दिन छ लाख का त्याग कर महादान देना आरम्भ किया। आगे चलकर माद्री देवी ने पुत्र को जन्म दिया। उसे कञ्चन जाल मे ग्रहण किया गया। इससे उसका नाम जाली कुमार ही रख दिया गया। उसके पैदल चलने लगने पर लडकी ने जन्म ग्रहण किया। उसे कृष्णार्जिन मे लिया गया। उससे उसका नाम कृष्णार्जिन ही हो गया।

बोधिसत्व हर महीने छ बार अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठे दानशालायें देखने जाते। उस समय कलिङ्ग राष्ट्र मे अनावृष्टि हुई। खेती नही पकी। महान् अकाल पड गया। आदमियो को जीना कठिन हो गया तो वह चोरी करने लगे। दुर्भिक्ष से पीडित जनपदवासी राजाङ्गन मे इकट्ठे हो चिल्लाने लगे। यह सुन राजा ने पूछा—तात! क्या बात है? उसे वह बात बताई गई। राजा ने उन्हे 'अच्छा तात! देव बरसाऊगा' कह बिदा किया। किन्तु वह शीलग्रहण कर उपोसथ-व्रत रखकर भी वर्षा न बरसा सका। उसने नागरिको को एकत्र कर प्रश्न किया—"मै शील ग्रहण कर सप्ताह भर तक उपोसथव्रती रहकर भी वर्षा नही बरसा सका। तात क्या करना चाहिए?" "यदि देव! आप वर्षा नही बरसा सकते तो जेतुत्तर नगर में वेस्सन्तर नामक सञ्जय राजपुत्र है। वह दानाभिमुख है। उसके पास सर्वश्वेत मङ्गल-हाथी है। वह जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ वर्षा होती है। ब्राह्मणो को भेज उस हाथी की याचना कर उसे मगवायें। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर ओर ब्राह्मणो को बुलवाकर उन में से आठ जनो को चुना तथा उन्हे खर्चा देकर भेजा—"जाओ उस वेस्सन्तर से हाथी माग कर लाओ।"

ब्राह्मण क्रमश जेतुत्तर नगर पहुचे। उन्होने दानशाला के सामने बैठ भोजन किया। फिर अपने शरीर पर धूल तथा राख मल कर, पूर्णिमा के दिन राजा से हाथी की याचना करने के इरादे से राजा के दान-शाला आने के समय पूर्व-द्वार पर पहुचे। राजा भी दान-शाला को देखने की इच्छा से, प्रात काल ही सुगन्धित जल

पर रखकर चली गई। वोधिसत्व के 'प्रत्यय' से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम 'प्रत्यय' ही रख दिया गया। राजा ने 'वडी लम्बी' आदि दोषो से रहित मधुर-दूध वाली चौसठ दाइयाँ वोधिसत्व के लिए नियुक्त की। उसके साथ जन्म ग्रहण करने वाले साठ हजार वच्चो के लिए भी दाइयो की व्यवस्था की। वह साठ हजार वच्चो के साथ वडी शान से वढने लगा।

राजा ने उसे लाख के मूल्य के वच्चो के गहने मगवाकर दिये। उसने चार-पाँच वर्ष की आयु होने पर गहने उतार दाइयो को दे दिये और फिर उनके देने पर नही लिए। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने दूसरे गहने बनवा दिये। वोला—'मेरे पुत्र ने जो दिया ठीक दिया। यह श्रेष्ठ दान ही है।' कुमार ने वह गहने भी दे दिये। वचपन मे ही उसने दाइयो को नौ वार गहने दिये। आठ वर्ष की आयु होने पर शैय्या पर पडा पडा सोचता था—"मै अपने आपको दान मे देना चाहता हूँ। यदि कोई मेरे हृदय की याचना करे तो मै उसे छाती फाड कर, हृदय निकाल कर दे दू, यदि आखो की याचना करे तो आखे उखाड कर दे दू और यदि शरीर की याचना करे तो सारे शरीर से मास नोच कर दे दू।"जब वह इस प्रकार से स्वाभाविक रूप से सरस चिन्तन कर रहा था तो चुरान्नवे नहुत दो लाख योजन मोटी यह पृथ्वी मस्त हाथी की तरह गर्जती हुई कापी। सुमेरु पर्वत-राज अच्छी तरह सिघाई हुई बेत की तरह झुककर, नाचता हुआ जेतुत्तरनगर के सामने आ खडा हुआ। पृथ्वी की आवाज होने से गरजते हुए देव ने थोडी देर के लिए वर्षा की। विजली चमकी। सागर उबल पडा। देवेन्द्र शक्र ने ताली बजाई। महाब्रह्मा ने साधुकार दिया। ब्रह्मलोक तक शोर मच गया। कहा भी गया है—

> यदाह दारको होमि जातिया अट्ठवस्सीको,
> तदा निसज्ज पासादे दान दातु विचिन्तयि ॥१९॥
> हृदय ददेय्य चक्खुम्पि मसम्पि रुधिरम्पि च,
> ददेय्य काम सावेत्वा यदि कोचि याचये म ॥२०॥
> सभाव चिन्तयन्तस्स अकम्पितमसठित,
> अकम्पितत्थ पठवी सिनेरुवन वटसक ॥२१॥

[जब मै जन्म से आठ वर्ष का हुआ तब प्रासाद पर बैठे बैठे मैने दान देने का सकल्प किया। मै हृदय दे दूँ, आख दे दूँ, मास दे दू, खून दे दू और यदि कोई मागे तो

सुनाकर उसे शरीर दे दू। इस प्रकार जब मै स्वाभाविक रूप से सोच रहा था तो सिनेरु पर्वत से अलङ्कृत अकम्पित, अमस्थित पृथ्वी काप उठी ।।१९-२१।।]

सोलह वर्ष की आयु होते होते बोधिसत्व सब शिल्पो मे निष्णात हो गये। पिता ने उसे राजा बनाने का विचार कर, उसकी मा से मन्त्रणा कर, मद्र राजकुल से माद्री नाम की मामा-लडकी ला उसे सोलह हजार स्त्रियो मे पटरानी बना दिया। बोधिसत्व का राज्यभिषेक किया। बोधिसत्व ने राज्य पर प्रतिष्ठित होने के बाद से प्रति दिन छ लाख का त्याग कर महादान देना आरम्भ किया। आगे चलकर माद्री देवी ने पुत्र को जन्म दिया। उसे कञ्चन जाल मे ग्रहण किया गया। इससे उसका नाम जाली कुमार ही रख दिया गया। उसके पैदल चलने लगने पर लडकी ने जन्म ग्रहण किया। उसे कृष्णाजिन मे लिया गया। उससे उसका नाम कृष्णाजिन ही हो गया।

बोधिसत्व हर महीने छ बार अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठे दानशालायें देखने जाते। उस समय कलिङ्ग राष्ट्र मे अनावृष्टि हुई। खेती नही पकी। महान् अकाल पड गया। आदमियो को जीना कठिन हो गया तो वह चोरी करने लगे। दुर्भिक्ष से पीडित जनपदवासी राजाङ्गन मे इकट्ठे हो चिल्लाने लगे। यह सुन राजा ने पूछा—तात! क्या बात है? उसे वह बात बताई गई। राजा ने उन्हे 'अच्छा तात! देव बरसाऊगा' कह बिदा किया। किन्तु वह शीलग्रहण कर उपोसथ-व्रत रखकर भी वर्षा न बरसा सका। उसने नागरिको को एकत्र कर प्रश्न किया—"मै शील ग्रहण कर सप्ताह भर तक उपोसथव्रती रहकर भी वर्षा नही बरसा सका। तात क्या करना चाहिए?" "यदि देव! आप वर्षा नही बरसा सकते तो जेतुत्तर नगर मे वेस्सन्तर नामक सञ्जय राजपुत्र है। वह दानाभिमुख है। उसके पास सर्वश्वेत मङ्गल-हाथी है। वह जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ वर्षा होती है। ब्राह्मणो को भेज उस हाथी की याचना कर उसे मगवाये। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर और ब्राह्मणो को बुलवाकर उन मे से आठ जनो को चुना तथा उन्हें खर्चा देकर भेजा—"जाओ उस वेस्सन्तर से हाथी माग कर लाओ।"

ब्राह्मण क्रमश जेतुत्तर नगर पहुचे। उन्होने दानशाला के सामने बैठ भोजन किया। फिर अपने शरीर पर धूल तथा राख मल कर, पूर्णिमा के दिन राजा से हाथी की याचना करने के इरादे से राजा के दान-शाला आने के समय पूर्व-द्वार पर पहुचे। राजा भी दान-शाला को देखने की इच्छा से, प्रात काल ही सुगन्धित जल

के सोलह घडो से स्नान कर, भोजन कर, अलङ्कृत हो, अलङ्कृत हाथियो के कन्धे पर बैठ पूर्व-द्वार पहुचा। ब्राह्मणो को वहाँ मौका नही मिला तो वह दक्षिण-द्वार पहुचे और वहाँ एक ऊची जगह पर खडे हो जब राजा पूर्व की दान-शाला देख दक्षिण द्वार की ओर आ रहा था, तो हाथ उठा कर बोले—"आप वेस्सन्तर की जय हो।" बोधिसत्व ने ब्राह्मणो को देखा तो हाथी को उन के खडे होने की जगह ले जा, हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे पहली गाथा कही—

> परूळह कच्छ नख लोमा पकदन्ता रजस्सिरा,
> पग्गय्ह दक्खिण बाहु किं मं याचन्ति ब्राह्मण ॥२२॥

[जिनके काख के बाल, नाखून तथा रोम बढे हुए है, जिनके दान्तो पर मैल है और जिनके सिर पर धूल है ऐसे ब्राह्मण आगे बढकर मुझसे किस चीज की याचना कर रहे हैं ? ॥२२॥]

यह सुन ब्राह्मण बोले—

> रतन देव याचाम सिवीनं रट्ठवड्ढन,
> ददाहि पवर नाग ईसादन्त उरूळहव ॥२३॥

[हे देव! हे सिवियो के राष्ट्रवर्धन! हम हस्ति-रतन की याचना करते है। हमे बडे दान्तो वाला, महान् श्रेष्ठ हाथी दे ॥२३॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा 'मैं सिर से आरम्भ करके अपने शरीर तक का दान दे देना चाहता हूँ। ये तो बाह्य वस्तु ही मागते है। इनका सकल्प पूरा करूगा।" उसने हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे कहा—

> ददामि न विकम्पामि य मं याचन्ति ब्राह्मण,
> पभिन्न कुञ्जर दन्ति ओपवुय्ह गजुत्तमं ॥२४॥

[मैं घबराता नही हूँ। ब्राह्मण जिसकी याचना करते है, वह मै उन्हे देता हूँ—'मद' वाला, बडे दान्तो वाला, सवारी के योग्य, श्रेष्ठ कुञ्जर, हाथी ॥२४॥]

इतनी सूचना दे—

> हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह राजा चागाधिमानसो,
> ब्राह्मणानं अदा दान सिवीनं रट्ठवड्ढनो ॥२५॥

(सिवियो के राष्ट्रवर्धन, त्यागाभिमुख राजा ने हाथी के कन्धे से उतर ब्राह्मणो को दान दिया ॥२५॥]

उसके चारो पैरो मे चार लाख के मूल्य का गहना था। दोनो ओर दो लाख का गहना था। पेट के नीचे का कम्वल लाख का था। पीठ पर का मोतियों का जाल, स्वर्ण-जाल तथा मणि-जाल तीनो तीन लाख के थे। दोनो कानो के घण्टे दो लाख के थे। पीठ पर विछा कम्वल लाख का था। माथे पर का गहना लाख का था। (दूसरे) तीन गहने तीन लाख के थे। कान का चूडालकार दो लाख का था। दोनो दान्तो के अलकार दो लाख के थे। मूण्ड का स्वस्तिक अलकार एक लाख का था। इस प्रकार ये शरीर पर के अलकार वाईस लाख के थे। चढने की सीढी लाख की थी। खाने का कडाहा लाख का था। इन सभी का मूल्य चौवीस लाख हुआ। छत्र के ऊपर मणि, चूळामणी, मुक्ताहारमणी, अङ्कुश पर मणी, हाथी के गले मे वाधने के मुक्ताहार मे मणि, हाथी के कुम्भ पर मणी—ये सव छ अमूल्य मणियाँ और सातवा हाथी तो अमूल्य ही था। इस प्रकार ये सारी सातो अमूल्य वस्तुये ब्राह्मणो को दे दी। उसी प्रकार हथवान, हाथियो की देखभाल आदि करने वाले पाच सौ कुल भी दिये। उसके दान के समय उक्त प्रकार से ही पृथ्वी-कपन आदि हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते समय शास्ता ने कहा—

तदासि य भिंसनक तदासि लोमहसन,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ ॥२६॥
तदासि भिंसनक तदासि लोमहसन,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि खुब्भित्थ नगर तदा ॥२७॥
समाकुल पुर आसि घोसो च विपुलो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि सिवीन रट्ठवड्ढने ॥२८॥

[जिस समय हाथी दिया गया उस समय हलचल मच गई, रोमाच हो गया और पृथ्वी काँप उठी ॥२६॥ जिस समय हाथी दिया गया उस समय हलचल मच गई, रोमाच हो गया और नगर के लोग क्षुब्ध हो उठे ॥२७॥ सारा नगर आकुल हो गया और नगर में बडा हल्ला हो गया जिस समय सिवियो के राष्ट्रवर्धन ने हाथी का दान किया ॥२८॥]

इसीलिये कहा गया है—

अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि मेदिनी सम्पकम्पथ ॥२९॥

अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भरवो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि खुभिय नगर तदा ॥३०॥
अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा,
हत्थिनाके पदिन्नम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥३१॥

[हाथी के दिये जाने पर महान् भयानक तुमुल नाद हुआ और पृथ्वी काँप उठी ॥२९॥ हाथी के दिये जाने पर नगर क्षुब्ध हो उठा और महान् भयानक तुमुल नाद हुआ ॥३०॥ जिस समय सिवियो के राष्ट्र वर्धन ने हाथी दिया महान् भयानक तुमुल नाद हुआ ॥३१॥]

उसके दान से क्षुब्ध हुए नगरवासी राजा के पास आये और बोले। इसीलिये कहा गया—

उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा,
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका ॥३२॥
केवलो चापि निगमो सिवयोचापि समागता,
दिस्वा नाग नीयमान ते रञ्ञो पटिवेदयु ॥३३॥
विधम देवते रट्ठ पुत्तो वेस्सन्तरो तव,
कथ वो हत्थिन दज्जा नाग रट्ठस्स पूजित ॥३४॥
कथ नो कुञ्जर दज्जा ईसादन्त उरूळ्हव,
खेत्तञ्ञु सब्बयुद्धान सब्बसेत गजुत्तम ॥३५॥
पण्डुकम्बलसञ्छन्न पभिन्न सत्तुमद्दन,
दन्ति सवाळबीजनिं सेत केलास साविस ॥३६॥
ससेतच्छत्त सवुपधेय्य साथब्बण सहत्थिप,
अग्गयान राजवाहि ब्राह्मणान अदा धन ॥३७॥

[उग्र राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार तथा पैदल, सारे निगम-वासी और सिवि राष्ट्र के निवासियो ने जब हाथी को ले जाया जाता देखा तो वे राजा के पास पहुचे और कहने लगे ॥३२-३३॥ देव ! तुम्हारा राष्ट्र और वेस्सन्तर पुत्र विध्वस्त हो गया। राज्य-पूजित हाथी कैसेदे दिया गया ? ॥३४॥ बडे दान्तो वाले महान् सभी युद्धो का क्षेत्रज्ञ, सर्वश्वेत, श्रेष्ठ हाथी कैसे दे दिया गया ? ॥३५॥ पाण्डु-वर्ण कम्बल से आच्छादित, 'मद' वाला, शत्रु के मरदन करने वाला, बडे दान्तो वाला, वाळबीजनी-सहित, कैलाश पर्वत के समान श्वेत,

श्वेत-छत्र सहित, आस्तरण सहित, हस्ति-वैद्य सहित, हस्ति-परिचारको सहित, राज्य-वाहन, श्रेष्ठ-दान नाग ब्राह्मणो को दे दिया गया ।।३६-३७।।]

इतना कहकर फिर बोले —

अन्न पाणञ्च सो दज्जा वत्थसेनासनानिच,
एत सो दान पतिरूप एत सो ब्राह्मणारहँ ।।३८।।
अय ते वसराजा नो सिवीन रट्ठवड्ढन,
कथ वेस्सन्तरो पुत्तो गज भाजेति सञ्जय ।।३९।।
सचे त्व न करिस्ससि सिवीन वचन इम,
मञ्ञे त सहपुत्तेन सिवी हत्थे करिस्सरे ।।४०।।

[अन्न, पान, वस्त्र तथा शयनासन वह दे सकता है । यह उचित दान है । यह ब्राह्मणो को दिया जाना योग्य है । यह सिवियो के राष्ट्र की वृद्धि करने वाला वश-परम्परागत राजा है । हे सञ्जय ! यह वेस्सन्तर हाथी का दान कैसे कर सकता है ? ।।३८-३९।। यदि तू सिवियो का यह कहना नही करेगा तो सिवी-नागरिक तुझे और तेरे पुत्र को अपने हाथ में कर लेंगे ।।४०।।]

तब राजा ने यह समझ कि ये वेस्सन्तर के मार डालने की इच्छा रखते हैं, कहा—

काम जनपदो मासि रट्ठञ्चापि विनस्सतु
नाह सिवीन वचना राजपुत्त अदूसक,
पब्बाजेय्य सका रट्ठा पुत्तोहि मम ओरसो ।।४१।।
काम जनपदो मासि रट्ठञ्चापि विनस्सतु
नाह सिवीन वचना राजपुत्त अदूसक,
पब्बाजेय्य सका रट्ठा पुत्तोहि मम अत्रजो ।।४२।।
न चाह तस्स दुब्भेय्य अरियसीलवतो हिसो,
असिलोकोपि मे अस्स पापञ्च पसवे बहु,
कथ वेस्सन्तर पुत्त सत्थेन घातयामसे ।।४३।।

[चाहे जनपद न रहे और चाहे राष्ट्र भी जाता रहे । मै सिवियो के कहने से निर्दोष राजपुत्र को अपन राष्ट्र से नही निकालूगा । वह मेरा ओरस पुत्र है ।।४१।। चाहे जनपद . वह मेरा अत्रज पुत्र है ।।४२।। मै उससे द्वेष नही करूगा, वह आर्य-

शील युक्त है। ऐसा करने से मेरी निन्दा भी होगी और मुझे बहुत पाप भी होगा। मैं वेस्सन्तर पुत्र को शस्त्र से कैसे मरवा सकता हू ? ।।४३।।]

सिवी-वासी बोले—

मानं दण्डेन सत्थेन नहि सो बन्धना रहो,
पब्बाजेहि च न रट्ठा वके वसतु पब्बते ।।४४।।

[उसे दण्ड न दे, उसका शस्त्र से वध न कराये, वह बन्धनागार के भी योग्य नही है, उसे राष्ट्र से निकाल दे। यह टेढे-मेढे पर्वतो मे जाकर रहे ।।४४।।]

राजा बोला—

एसो चे सिवीन छन्दो छन्द न पनुदामसे,
इम सो वसतु रत्ति कामे च परिभुञ्जतु ।।४५।।
ततो रत्या विवसने सुरियुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्तु न ।।४६।।

[यदि सिवियो का यही मत है तो मै उसका खण्डन नही करता। रात भर वह काम-भोगो का अनुभव करे। रात्रि की समाप्ति होने पर तथा सूर्य्योदय होने पर तमाम सिवि इकट्ठे होकर उसे राष्ट्र से निकाल दें ।।४५-४६।।]

उन्होने रात भर रहने देने का राजा का कहना मान लिया। उन्हें विदाकर पुत्र को सदेस भेजने के लिए दूत को बुलाकर उसके पास भेजा। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वेस्सन्तर के भवन पहुच वह समाचार कह सुनाया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए ये गाथाये कही गई है—

उट्ठेहि कत्ते तरमानो गन्त्वा वेस्सन्तर वद,
सिवयो देव ते कुद्धा नेगमा च समागता ।।४७।।
उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
केवलो चापि निगमो सिवयो चापि समागता ।।४८।।
अस्मा रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्ति त ।।४९।।

स कत्ता तरमानोव सिविराजेन पेसितो,
आमुत्तहत्थाभरणो सुवत्थो चन्दनभूसितो ॥५०॥
सीस नहातो उदकेसो आमुत्तमणिकुण्डलो,
उपागमी पुर रम्म वेस्सन्तरनिवेसन ॥५१॥
तत्थद्दस कुमार सो रममान सके पुरे,
परिकिण्ण अमच्चेहि तीदसान व वासव ॥५२॥
सो तत्थगन्त्वा रममान कत्ता वेस्सन्तर ब्रवी,
दुक्ख ते वेदयिस्सामि मा मे कुज्झि रथेसभ ॥५३॥
वन्दित्वा रोदमानो सो कत्ता राजानमब्रवि,
भत्ता मेसि महाराज सब्बकामरसाहरो,
दुक्ख ते वेदयिस्सामि तत्थ अस्सासयन्तु म ॥५४॥
सिवयो देवते कुद्धा नेगमा च समागता,
उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा ॥५५॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
केवलो चापि निगमो सिवयो चापि समागता ॥५६॥
अस्मा रत्त्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्ति त ॥५७॥

[हे दूत ! उठ। जल्दी से जाकर वेस्सन्तर को कह कि देव ! सिविवासी तेरे प्रति क्रुद्ध हो गये हैं। निगम के लोग आये है। उग्र राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, पैदल, निगम के सारे लोग तथा सिवि के लोग भी आये हैं। इस रात्रि के समाप्त होने पर, सूर्य्योदय होने पर तमाम सिवि-वासी इकट्ठे होकर तुम्हें देश-निकाला दे देंगे ॥४७-४९॥ सिवि-राज द्वारा भेजा गया वह दूत शीघ्रता से वेस्सन्तर के सुन्दर भवन में आ पहुचा। उसके हाथो में मोतियो के आभरण थे, अच्छे वस्त्र पहने था, चन्दन लगा था, सिर से नहाया था, बाल गीले थे और मणि-कुण्डल पहने था ॥५०-५१॥ वहाँ उसने मन्त्रियो से घिरे कुमार को अपने भवन में आनन्द मनाते देखा जैसे देवताओ से घिरा हुआ इन्द्र हो ॥५ ॥ उस दूत ने वहाँ आनन्द मनाते हुए वेस्सन्तर के पास जाकर कहा—'हे रथो के स्वामी ! मैं आपको दुखद बात सुना रहा हूँ। मुझ पर क्रोध न करें ॥५३॥ रोते हुए उस

दूत ने प्रणाम कर राजा को यह कहा—महाराज! आप मेरी सब कामनाये पूरी करने वाले मेरे स्वामी हैं। मैं आपको दुखद समाचार देता हूँ। आप मुझे आश्वस्त करें।।५४।। देव! सिविवासी तेरे प्रति क्रुद्ध हो गये हैं?। निगम के लोग आये है। उग्र-राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, पैदल, निगम के सारे लोग तथा सिवि के लोग भी आये हैं। इस रात्रि के समाप्त होने पर, सूर्योदय होने पर तमाम सिववासी इकट्ठे होकर तुम्हें देश-निकाला दे देंगे।।५५-५७।।]

बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

किस्मि ये सिवयो कुद्धा नाहं पस्सामि दुक्कतं,
तं मे कत्ते वियाचिक्ख कस्मा पब्बाजयन्ति मं ।।५८।।

[सिविवासी मुझ पर क्यो क्रुद्ध हो गये हैं। मैंने कोई अपराध नही किया है। हे दूत! मुझे बता कि वे मुझे देश-निकाला क्यो देंगे?।।५८।।]

दूत ने उत्तर दिया—

उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा,
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
नागदानेन खीयन्ति तस्मा पब्बाजयन्ति न ।।५९।।

[उग्र राजपुत्र, वैश्य ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, और पैदल सभी तेरे हाथी-दान से क्रुद्ध हो गये है। इसीलिए तुझे देश-निकाला दे देंगे।।५९।।]

यह सुन बोधिसत्व ने आनन्दित हो कहा—

हदय चक्खुम्पहं दज्जं किं मे बाहिरकं धनं,
हिरञ्ञं वा सुवण्णं वा मुत्ता वेळुरिया मणि ।।६०।।
दक्खिणं वापहं बाहुं दिस्वा याचकमागते,
ददेय्य न विकम्पेय्य दाने मे रमती मनो ।।६१।।
कामं मं सिवयो सब्बे पब्बाजेन्तु हनन्तु वा,
नेव दाना विरमिस्सं कामं छिन्दन्तु सत्तधा।।६२।।

[सोना, मोती, माणिक आदि बाहरी धन की क्या बात मैं हृदय तथा आंख भी दे सकता हूँ।।६०।। भिक्षुक के आने पर दाहिनी बाँह भी दे सकता हूँ। मैं दे दूंगा। मैं काँपूगा नही। मुझे दान देना अच्छा लगता है।।६१।। चाहे सारे सिवि-

वासी मिलकर मुझे देश-निकाला दे दे, मार डालें अथवा-सात टुकडे कर दे, मै दान देने से नही रुकूगा ।।६२।।]

यह सुन दूत ने अपनी मति से ही उसे ऐसा आदेश सुनाया जो उसे न राजा ने सुनाने को कहा था और न नागिरिको ने । वह बोला—

एव त सिवयो आहु नेगमा च समागता,
कोन्तिमाराय तीरेन गिरिं आरञ्जर पति,
येन पब्बाजिता यन्ति तेन गच्छतु सुब्बतो ।।६३।।

[सिवि-निवासी लोगो ने तथा आगत निगमवासियो ने कहा है—कोनितमा नदी क किनारे, आरञ्जर पर्वत की ओर मुँह करके, जिस रास्ते से देश से निकाले हुए लोग जाते हं, उसी रास्ते से 'सुव्रत' भी जाये ।।६३।।]

यह बात उससे देवता ने कहलवाई । बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"अच्छा, अपराधियो के जाने के मार्ग से ही जाऊगा । नागरिक मुझे किसी अन्य अपराध के कारण नही निकाल रहे हं, मैंने हाथी का दान दिया है, इसीलिये निकाल रहे हैं । ऐसा है तो मै 'सात सौ' का महादान दूगा । नागरिक मुझे एक दिन दान देने दें । कल दान देकर तीसरे दिन चला जाऊगा उसने कहा—

सोह तेन गमिस्सामि येन गच्छन्ति दूसका,
रत्तिं दिव मे खमथ याव दान ददामहं ।।६४।।

[मैं उसी मार्ग से जाऊगा, जिस मार्ग से अपराधी जन जाते है । जब तक मैं दान दे लू, तब तक मुझे एक रात-दिन के लिये क्षमा करे ।।६४।।]

'अच्छा, देव नागरिको को कहूगा' कहकर दूत चला गया । बोधिसत्व ने उसे विदा किया और सेनापति को बुलाकर कहा—"मै कल 'सात सौ' का दान दूगा । सात सौ हाथी, सात सौ घोडे, सात स रथ, सात सौ स्त्रिया, सात सौ गौए, सात सौ दासियाँ, और सात सौ दासो की व्यवस्था करो । साथ ही नाना प्रकार के खाने-पीने की भी । सुरा की भी । सभी देने योग्य चीजें उपस्थित करो । इस प्रकार सात सौ के दान की आज्ञा दे, आमात्यो को विदाकर वह अकेला ही माद्री के निवास-स्थान पर पहुचा और शैय्या पर बैठ उसके साथ बातचीत करने लगा ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आमन्तयित्थ राजान मद्दिं सब्बगसोभन,
य ते किञ्चि मया दिन्न धन धञ्ञञ्च विज्जति ॥६५॥
हिरञ्ञ वा सुवण्ण वा मुत्ता वेलुरिया बहू,
सब्बे त निदहेय्यासि यञ्च ते पेत्तिक धन ॥६६॥

[राजा ने उस सर्वाङ्गशोभन माद्री को सम्बोधित करके कहा—"जो कुछ भी मेरा दिया धन और धान्य है, हिरण्य, सोना, मोती तथा बिल्लौर, और जो कुछ भी तेरा पैतृक धन है उस सब को 'निधि' करके रख दे ॥६५-६६॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
कुहिं देव निदहेय्यामिये त मे अक्खाहिपुच्छितो ॥६७॥

[उस सर्वाङ्ग सुन्दरी राजपुत्री माद्री ने उससे प्रश्न किया—'देव! बतायें कि इस धन को मैं 'निधि' करके कहाँ रखूँ? ॥६७॥]

वेस्सन्तर बोला—

सीलवन्तेसु दज्जासि दान मद्दि यथारह,
न हि दाना पर अत्थि पतिट्ठा सब्ब पाणिन ॥६८॥

[माद्री! सदाचारियो को यथा योग्य दान दे। सभी प्राणियो के लिए दान से बढकर सहारा नही है ॥६८॥]

उसने 'अच्छा' कहकर उसका वचन स्वीकार कर लिया। आगे उपदेश देते हुए कहा—

पुत्तेसु मद्दि दय्यासि सस्सुया ससुरम्हि च,
यो च त भत्ता मञ्ञेय्य सक्कच्च त उपट्ठहे ॥६९॥
नो चे त भत्ता मञ्ञेय्य मया विप्पवसेन ते,
अञ्ञ भत्तार परियेस मा किसित्थ मया विना ॥७०॥

[हे माद्री! पुत्रो तथा सास और श्वसुर के प्रति मैत्री का भाव रखना। मेरे बाद जो भी तेरा स्वामी बने उसकी भी अच्छी तरह सेवा करना। मेरे जाने पर यदि कोई तेरा 'स्वामी' न बने तो तू दूसरा 'स्वामी' खोज लेना, मेरे विना कष्ट मत पाना ॥६९-७०॥]

माद्री सोचने लगी, यह वेस्सन्तर ऐसी बातें क्यो बोल रहा है। उसने प्रश्न किया—"देव ! यह ऐसी अनुचित बात मुंह से क्यो निकाल रहे हो ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"भद्रे , मैंने हाथी का दान दिया है । इसलिए सिवि लोग मुझ पर क्रुद्ध हो मुझे देश से निकाल रहे है। कल मै 'सात सौ' का महादान देकर, परसो नगर से से निकल जाऊगा।" वह बोला—

अहं हि वन गच्छामि घोर वाळमिगायुत,
ससयो जीवित मय्ह एककस्स ब्रहावन ॥७१॥

[मैं जगली जानवरो के भयानक वन मे जाता हूँ। वहाँ जगल मे अकेले रहते हुए का जीवित रहना सदिग्ध है ॥७१॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बगसोभना,
अभुम्मे कथ भणसि पापक वत भाससि ॥७२॥
नेस धम्मो महाराज य त्व गच्छेय्य एकको,
अहम्पि तेन गच्छामि येन गच्छसि खत्तिय ॥७३॥
मरण वा तया सद्धि जीवित वा तया बिना,
तदेव मरण सेय्यो यञ्चे जीवे तया बिना ॥७४॥
अग्गि निज्जालयित्वान एकजालसमाहित,
तत्थ मे मरण सेय्यो यञ्चे जीवे तया बिना ॥७५॥
यथा आरञ्ञक नाग दन्ति अन्वेति हत्थिनी,
जेस्सन्त गिरिदुग्गेसु समेसु विसमेसु च ॥७६॥
एव त अनुगच्छामि पुत्ते आदाय पच्छतो,
सुभरा ते भविस्सामि न तें हेस्सामि दुब्भरा ॥७७॥

[सर्वाङ्गशोभना माद्री राजपुत्री बोली—तू अयथार्थ बात क्यो बोलता है। बुरी बात क्यो मुँह से निकालता है ? ॥७ ॥ महाराज। यह धर्म नही है कि आप अकेले ही जाये। हे क्षत्रिय ! जहाँ आप जायेंगे, वहाँ मै भी आपके साथ जाऊगी ॥७३॥ तेरे साथ मरना और तेरे बिना जीना—इन दोनो मे तेरे बिना जीने से तेरे साथ मरना ही श्रेयस्कर है ॥७४॥ आग जला कर, उसकी एक ज्वाला में जलकर मर जाना तेरे बिना जीने की अपेक्षा अच्छा है ॥७५॥ जैसे हस्तिनी जगल में विचरने वाले नाग के पीछे पीछे पहाड, दुर्ग,

सम तथा विषम स्थानो मे जाती है, उसी प्रकार मै भी पुत्रो को लेकर आपके पीछे पीछे जाऊगी । मै आपके लिए सुभर रहूगी। दूभर नही बनूगी ।।७६-७७।।)

यह कह उसने हिमालय का वर्णन आरम्भ किया, मानो उसने उसे पहले देखा हो—

इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
आसीनेव्न गुम्बस्मि न रज्जस्स सरिस्ससि ।।७८।।
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
कीळन्ते वनगुम्बस्मि न रज्जस्स सरिस्ससि ।।७९।।
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
अस्समे रमणीयम्हि न रज्जस्स सरिस्ससि ।।८०।।
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
कीळन्ते अस्समे रम्मे न रज्जस सरिस्ससि ।।८१।।
इमे कुमारे पस्सन्तो मालधारी अलकते,
अस्समे रमणीयम्हि न ।।८२।।
इमे कुमारे पस्सन्तो मालधारी अलकते,
कीलन्ते अस्समे ।।८३।।
यदा दक्खिसि नच्चन्ते कुमारे मालधारिनो,
अस्समे रमणीयम्हि ।।८४।।
यदा दक्खिसि नच्चन्ते कुमारे मालधारिनो,
कीळन्ते अस्समे ।।८५।।
यदा दक्खिसि मातग कुञ्जर सट्ठिहायन,
एक अरञ्ञे विचरन्त न रज्जस सरिस्ससि ।।८६।।
यदा दक्खिसि मातग कुञ्जर सट्ठिहायन,
सायपातो विचरन्त न रज्जस्स सरिस्ससि ।।८७।।
यदा करेणुसघस्स यूथस्स पुरतो वज,
कोञ्च काहिति मातगो कुञ्जरो सट्ठिहायनो,
तस्स त नदतो सुत्वा न रज्जस्स सरिस्ससि ।।८८।।
दुभतो वनविकासे यदा दक्खिसि कामद,
वने वालमिगाकिण्णो न रज्जस्स सरिस्ससि ।।८९।।

मिग दिस्वान सायण्हं पञ्चमालिन आगत,
किम्पुरिसे च नच्चन्ते न रज्जस सरिस्ससि ॥९०॥
यदा सोस्ससि निग्घोस सन्दमानाये सिन्धुया,
गीत किम्पुरिसानञ्च न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९१॥
यदा सोस्ससि निग्घोस गिरिगब्भरचारिनो,
वस्समानस्स लूकस्स न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९२॥
यदा सीहस्स ब्यग्घस्स खग्गस्स गवयस्सच,
वने सोस्ससि वाळान न रज्जस्स सरिस्सति ॥९३॥
यदा मोरीहि परिकिण्ण बीरहिन मत्थ कासिन,
मोर दक्खिसि नच्चन्त न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९४॥
यदा मोरीहि परिकिण्ण अण्डज चित्रपेक्खुन,
मोर दक्खिसि नच्चन्त न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९५॥
यदा मोरीहि परिकिण्ण नीलगीव सिखण्डिन,
मोर दक्खिसि नच्चन्त न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९६॥
यदा दक्खिसि हेमन्ते पुप्फिते धरणीरुहे,
सुरभिसम्पवायन्ते न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९७॥
यदा हेमन्तिके मासे हरित दक्खिसि मेदिनि,
इन्द्रगोपक सञ्छन्न न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९८॥
यदा दक्खिसि हेमन्ते पुप्फिते धरणीरुहे,
कुटज बिम्बजालञ्च पुप्फित लोमपद्धक,
सुरभिसम्पवायन्ते न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९९॥
यदा हेमन्तिके मासे वन दक्खिसि पुप्फित,
ओपुप्फानि च पद्मानि न रज्जस्स सरिस्ससि ॥१००॥

[इन सुन्दर, प्रियभाषी कुमारो को जगल मे बैठे देखकर राज्य की याद नही आयेगी ॥७८॥ इन जगल मे खेलते देखकर आयेगी ॥७९॥ इन सुन्दर रमणीय आश्रम मे देखकर. आयेगी ॥८०॥ इन सुन्दर रमणीय आश्रम में खेलते देखकर आयेगी ॥८१॥ इन मालाधारी अलकृत कुमारो को आश्रम मे देखकर राज्य की याद नही आयेगी ॥८२॥ इन मालाधारी आश्रम मे खेलते देखकर .

आयगी ।।८३।। जब मालाधारी कुमारो को आश्रम मे नाचते देखेगा, तब राज्य की याद नही आयगी ।।८४।। जब मालाधारी आश्रम मे खेलते देखेगा, तब आयेगी ।।८५।। जब साठ वर्ष के मातङ्ग हाथी को वन मे अकेले विचरते देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।८६।। जब साठ वर्ष के साय प्रात विचरते देखेगा तो आयेगी ।।८७।। जब हथिनियो के समूह के आगे आगे जाता हुआ, साठ वर्ष का मातङ्ग हाथी क्रौंच नाद करेगा, तो उसके उस नाद को सुनकर राज्य की याद नही आयेगी ।।८८।। जब जगली मृगो से घिरे जगल मे दोनो ओर से उठने वाली, सभी कामनाओ को पूरा करने वाली घटाये देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।८९।। शाम के समय मृग को आया देख तथा किन्नरो को नाचता देख राज्य की याद नही आयेगी ।।९०।। जब बहती हुई नदियो का निर्घोप तथा किन्नरो का गीत सुनेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९१।। जब गिरि-गह्वर मे रहने वाले उल्लू की आवाज सुनेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९२।। जब वन मे व्याघ्र, सिंह, गेंडे, भैंसे तथा अन्य जगली जानवरो की आवाज सुनेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९३।। जब मोरनियो से घिरे हुए, मोर-पख वाले, पर्वत पर बैठे मोर को नाचते देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९४।। जब मोरनियो से घिरे, विचित्र, अण्डज मोर को नाचते देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९५।। जब मोरनियो से घिरे हुए, नीली गर्दन वाले, कलगी वाले मोरकोनाचते देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९६।। जब हेमन्त ऋतु मे सुगन्धित फूलो को पुष्पित देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९७।। जब हेमन्त के महीने मे पृथ्वी को हरित-वर्ण और बीर-बहूटियो से ढका देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९८।। जब हेमन्त ऋतु मे कुटज, कुरवक तथा लोम पद्म को और पुष्पो को फूला देखेगा और सुगन्धित वायु को चलते देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।९९।। जब हेमन्त के महीनो में वन को पुष्पित और पद्मो को गिरा देखेगा तो राज्य की याद नही आयेगी ।।१००।।]

इस प्रकार माद्री ने हिमालय-वासिनी की तरह इतनी गाथाओ से हिमालय का वर्णन किया।

हिमालय-वर्णन समाप्त

फुसती देवी को भी जब पता लगा कि उसके पुत्र को बहुत कठोर आज्ञा मिली है तो उसने सोचा कि मैं देखू कि वह क्या करता है ? जाकर पता लगाने के उद्देश्य

से वह छिपी छिपी जाकर शयनागार के द्वार पर खडी हुई। जब उसने उन दोनो की बातचीत सुनी तो वह करुणार्द्र हो विलाप करने लगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेस लालप्पित सुत्वा पुत्तस्स सुणिसाय च,
करुण परिदेवेसि राजपुत्ती यसस्सिनी ॥१०१॥
सेय्यो विस मे खायित पपाता पपतेय्याह,
रज्जुया बज्झ मिय्याह कस्मा वेस्सन्तर पुत्त
पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१०२॥
अज्झायक दानपतिं याचयोग अमच्छरिं,
पूजित पतिराजेहि कित्तिमत यसस्सिन,
कस्मा वेस्सन्तरं पुत्त पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१०३॥
मातापेत्तिभर जन्तुं कुलेजेट्ठापचायिन,
कस्मा वेस्सन्तर पुत्त पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१०४॥
रञ्ञो हित देवहित ञातीन सखिन हित,
हित सब्बस्स रट्ठस्स कस्मा वेस्सन्तर पुत्त पब्बाजेन्ति अदूसक॥१०५॥

[अपने पुत्र तथा पुत्र-वधु की बातचीत सुन, यशस्वी राजपुत्री करुणापूर्ण विलाप करने लगी ॥१०१॥ मेरे लिये यह अच्छा है कि मै विष खा लू अथवा प्रपात से गिर पडू, अथवा रस्सी बाधकर मर जाऊँ—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यो दिया जा रहा है?॥॥१०२॥ अध्ययन-शील, दाता, त्यागी, मात्सर्य्य-रहित, विरोधी-राजाओ द्वारा पूजित, कीर्ति-प्राप्त तथा यशस्वी—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यो दिया जा रहा है? ॥१०३॥ माता-पिता के सेवक, कुल मे बडो का आदर करने वाले—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यो दिया जा रहा है? ॥१०४॥ राजा का हितैषी है, देवताओ का हितैषी है, रिश्तेदारो का हितैषी है, मित्रो का हितैषी है तथा सारे राष्ट्र का हितैषी है—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यो दिया जा रहा है? ॥१०५॥]

इस प्रकार वह करुण-विलाप कर तथा पुत्र और पुत्र-वधू को आश्वस्त कर राजा के पास जाकर बोली—

मधूनिव पलातानि अम्बा व पतिता छमा,
एव हेस्सति ते रट्ठ पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१०६॥
हसो निक्खीणपत्तोव पल्ललस्मि अनूदके,
अपविद्धो अमच्चेहि एको राज विहीपसि ॥१०७॥
त त ब्रूमि महाराज अत्थो ते मा उपच्चगा,
मा तं सिवीन वचना पब्बाजेसि अदूसक ॥१०८॥

[तू निर्दोष को देश-निकाला दे रहा है, तेरा राष्ट्र मधु-मक्खियो रहित मधु के छत्ते की तरह अथवा जमीन पर गिरे आमो की तरह हो जायेगा। जल रहित तालाब मे पख रहित हस की तरह हो जायगा। अमात्यो से विहीन होकर तू अकेला ही रह जायगा। हे महाराज! मैं कहती हूँ जिसमें तेरा अनर्थ न हो, तू सिवियो का कहना मानकर निर्दोष को देश-निकाला न दे ॥१०६–१०८॥]

यह सुन राजा ने कहा—

धम्मस्सापचितिं कुम्मिं सिवीन विनय धज,
पब्बाजेमि सक पुत्त पाणा पियतरो हि मे ॥१०९॥

[मै सिवियो की ध्वजा वेस्सन्तर कुमार को दण्डित करके धर्म की पूजा कर रहा हूँ। अपने प्राण से भी अधिक प्रिय-पुत्र को देश-निकाला दे रहा हूँ ॥१०९॥]

यह सुन देवी रोती-पीटती हुई बोली—

यस्सपुब्ब धजग्गानि कणिकाराव पुप्फिता,
यायन्त मनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११०॥
यस्स पुब्बे धजग्गानि कणिकारवनानि च,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥१११॥
यस्स पुब्बे अनीकानि कणिकाराव पुप्फिता,
यायन्तमनुयायन्ति स्वज्जेकोव गमिस्सति ॥११२॥
यस्स पुब्बे अनीकानि कणिकारवनानि च,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११३॥
इन्दगोपकवण्णाभा गन्धारा पण्डुकम्बला,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११४॥

[जिसकी ध्वजाये पहले सुपुष्पित कर्णिकार की तरह स्वर्णमय थी और उसके जाते समय उसका अनुकरण करती थी, वह आज अकेला ही जायेगा ।।११०।। जिसकी ध्वजाये पहले कर्णिकार-वन की तरह स्वर्णमय थी और जायेगा ।।१११।। जिसकी सेनाये पहले सुपुष्पित कर्णिकार की तरह स्वर्णमय थी और जायेगा ।।११२।। जिसकी सेनाये पहले कर्णिकार वन की तरह स्वर्णमय थी और जायेगा ।।११३।। इन्द्रगोपक के वर्ण समान वर्ण वाले, गन्धार-देश के लाल-कम्बल वाले जिसके जाते समय उसका अनुकरण करते थे, वह आज अकेला ही जायेगा ।।११४।।]

यो पुब्बे हत्थिना याति सिविकाय रथेन च,
स्वाज्ज वेस्सन्तरो राजा कथ गच्छति पत्तिको ।।११५।।
कथ चन्दनलित्तगो नच्चगीतप्पबोधनो,
खराजिन फरसुञ्च खारिकाजञ्च हाहिति ।।११६।।
कस्मा नाभिहरीयन्ति कासावा अजिनानि वा,
पविसन्त ब्रह्मारञ्ञ कस्मा चीर न बज्झरे ।।११७।।
कथ नु चीर धारेन्ति राजपब्बजिता जना
कथ कुसमय चीर मद्दी परिदहेस्सति ।।११८।।
कासियानि च धारेत्वा खोमकोदुम्बरानि च,
कुसचीरानि धारेन्ती कथ मद्दी करिस्सति ।।११९।।
वय्हाहि परियायित्वा सिविकाय रथेन च,
साकथज्ज अनुच्चगी पथ गच्छति पत्तिका ।।१२०।।
यस्सा मुदुतला हत्था चरणा च सुखेधिता,
सा कथज्ज अनुच्चगी वन गच्छति भीरुका ।।१२१।।
यस्सा मुदुतला पादा चरणा च सुखेधिता
पादुकाहि सुवण्णाहि पीळमानाव गच्छति,
सा कथज्ज अनुच्चगी पथ गच्छति पत्तिका ।।१२२।।
यास्सु इत्थिसहस्सस्स पुरतो गच्छति मालिनी,
सा कथज्ज अनुच्चगी वन गच्छति एकिका ।।१२३।।
यास्सु सिवाय सुत्वान मुहु उत्तसते पुरे,
सा कथज्ज अनुच्चगी वन गच्छति भीरुका ।।१२४।।

यास्सु इन्दस्स गोत्तस्स उलूकस्स पवस्सतो,
सुत्वान नदतो भीता वारुणीव पवेधति,
सा कथज्ज अनुच्चगी वन गच्छति भीरुका ॥१२५॥

[जो पहले हाथी, पालकी या रथ से जाता था, वह वेस्सन्तर राजा आज पैदल कैसे जायेगा ? ॥११५॥ जिसका अङ्ग चन्दन से लिप्त होता था, जिसे नृत्य-गीत द्वारा प्रबुद्ध किया जाता था, वह किस प्रकार अजिन-चर्म, फरसा और झोली-बहँगी ढोयेगा ? ॥११६॥ ये काषाय वस्त्र तथा अजिन (चर्म) क्यो नही बाधते है। ये बडे जगल मे प्रवेश करते हुए चीर (-वल्कल) क्यो नही बाधते ? ॥११७॥ राज प्रव्रजित जन चीर कैसे धारण करेंगे ? माद्री असमय मे ही चीर कैसे धारण करेगी ? ॥११८॥ काशी, खोम तथा कोदुम्बर वस्त्र धारण करने के बाद यह कुश (-तृण) का वस्त्र माद्री कैसे धारण करेगी ? ॥११९॥ जो रथ और पालकी मे बैठकर आती जाती थी, वह अनिन्दित-अङ्गी पैदल कैसे जायगी ? ॥१२०॥ जिसके हाथ और चरण अत्यन्त कोमल है, वह अनिन्दित अङ्गो वाली डरपोक आज बन कैसे जा रही है ? ॥१२१॥ जिसके पाव कोमल है और चरण सुख मे पल है और जो स्वर्ण-पादुकाओ पर भी कष्ट से चलती थी, वह अनिन्दित अग वाली आज पैदल कैसे जायगी ? ॥१२२॥ जो मालाधारिणी हजार-स्त्रियो के आगे आगे जाती थी, वह अनिन्दित अङ्ग वाली आज अकेली वन कैसे जा रही है ? १२३॥ जो पहले गीदडी की आवाज सुनकर बारबार डर जाती थी, वह अनिन्दित अङ्ग वाली डरपोक आज वन कैसे जा रही है ? ॥१२४॥ जो कोसिय गोत्र के उल्लू की आवाज सुनकर वारुणी यक्षिणी की तरह कापती थी, वह अनिन्दित-अङ्ग वाली डरपोक आज वन कैसे जा रही है ? ॥१२५॥]

सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
चिर दुक्खेन झायिस्स सुञ्ञ आगम्मिम पुर ॥१२६॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१२७॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
तेन तेन पधाविस्स पिये पुत्ते अपस्सती ॥१२८॥

कुररी हतछापाव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
चिर दुक्खेन झायिस्स सुञ्ञ आगम्मिम पुर ॥१२९॥
कुररीव हत छापाव सुञ्ञ दिस्वा कुलावक,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३०॥
कुररी हतछापाव सुञ्ज दिस्वा कुलावक,
तेन तेन पधाविस्स पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३१॥
सा नून चक्कवाकी व पल्ललस्मि अनूदके,
चिर दुक्खेन झायिस्स सुञ्ञ आगम्मिम पुर ॥१३२॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मि अनूदके,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३३॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मि अनूदके,
तेन तेन पधाविस्स पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३४॥
एव चे मे विलपन्तीं या राजपुत्त अदूसक,
पब्बाजेसि वन रट्ठा मञ्ञे हेस्सामि जीवित ॥१३५॥

[जिस प्रकार हत-पुत्र शकुनी घोसले को खाली देखकर दुखी होती है, उसी प्रकार मै भी इस नगर को शून्य देखकर चिरकाल तक दुखी रहूँगी ॥१२६॥ जिस प्रकार हत-पुत्र शकुनी घोसले को खाली देखकर (दुखी होती है) उसी प्रकार मैं भी प्रिय पुत्र के न देख सकने के कारण कृश, पाण्डु-वर्ण हो जाऊँगी ॥१२७॥ जैसे घोसले को खाली देखकर हत-पुत्र शकुनी उसी प्रकार मै प्रिय पुत्र के न देख सकने के कारण जहाँ-तहाँ भागती फिरूँगी ॥१२८॥ हत-शिशु कुररी की तरह भागती फिरूँगी ॥१२९-१३१॥ जल रहित तालाब मे चक्रवाकी की तरह फिरूँगी ॥१३२-१३४॥ यदि मेरे इस प्रकार विलाप करते रहने पर भी तू निर्दोष राजपुत्र को देश-निकाला दे देगा तो मुझे लगता है कि मै प्राण छोड दूगी ॥१३५॥]

देवी के रोने-पीटने की आवाज सुन सञ्जय की सभी सिवि-कन्यायें इकट्ठी होकर रोने-पीटने लगी। उनके रोने-पीटने की आवाज सुन बोधिसत्व के निवास-गृह में वैसे ही रोना-पीटना आरम्भ हो गया। दोनो राज-कुलो मे कोई भी होश सभाले न रह सका। हवा के झोके से मर्दित शाल वृक्षो की तरह गिरकर रोने पीटने लगे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्सा लालप्पित सुत्वा सब्बा अन्तेपुरे, बहू,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं सिविकञ्ञा समागता ॥१३६॥
सालाव सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ता च दारा च वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३७॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३८॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३९॥

[उसका विलाप सुन सिवि-राज की सभी लडकिया अन्त पुर आकर बाहे पकड कर रोने लगी। जैसे हवा द्वारा ताडित वृक्ष गिर पडते है, उसी प्रकार वेस्सन्तर के राज-भवन में स्त्री-पुत्र गिरे पडे थे ॥१३६-१३७॥ रनवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण वैस्सन्तर के निवास-गृह मे बाहें पकड कर रोते थे। हाथी-सवार पहरेदार रथी तथा पैदल वस्सन्तर के निवास-गृह मे बाहे पकड कर रोते थे ॥१३८-१३९॥]

ततो रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
अथ वेस्सन्तरो राजा दान दातुमुपागमी ॥१४०॥
वत्थानि वत्थकामान सोण्डानं देथ वारुणिं,
भोजन भोजनत्थीनं सम्मा देथ पवेच्छथ ॥१४१॥
माच कञ्चि वणिब्बके हेठयित्थ इधागते,
तप्पेथ अन्नपाणेन गच्छन्तु पटिपूजिता ॥१४२॥
तेसु मत्ता किलन्ताव सम्पतन्ति वणिब्बका,
निक्खमन्ते महाराजे सिवीन रट्ठवड्ढने ॥१४३॥
अच्छेच्छु वत भो रुक्ख नानाफलधर दुम,
यथा वेस्सन्तर रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१४४॥
अच्छेच्छुं वत भो रुक्ख सब्बकामदद दुम,
यथा वेस्सन्तर रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१४५॥
अच्छेच्छुं वत भो रुक्ख सब्बकामरसाहरे,
यथा वेस्सन्तर रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसक ॥१४६॥

[तब रात के बीतने पर और सूर्य्य के उदय होने पर वेस्सन्तर राजा दान देने के लिये आया ॥१४०॥ (उसने आज्ञा दी)—"वस्त्र की इच्छा करने वालो को वस्त्र, शराबियो को वारुणि, भोजन चाहने वालो को भोजन अच्छी प्रकार दिया जाय ॥१४१॥ यहाँ आने वाला कोई भिखारी कष्ट न पाये। उन्हे अन्न-पान से सन्तुष्ट किया जाय। वे आदृत होकर लौटे ॥१४२॥ उनमे से क्लान्त-मत्त भिखारी गिर पड़ते थे और विलाप करते थे कि सिवियो के राष्ट्र-वर्धन महाराज वेस्सन्तर के चले जाने पर (हमें कौन दान देगा ?) ॥१४३॥ यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह फलो से लदे हुए पेड को काट डालने के समान है ॥१४४॥ यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह सब कामनाओ की पूर्ति करने वाले वृत्त को काट डालने के समान है ॥१४५॥ यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह सब इच्छाओ की पूर्ति करने वाले वृक्ष को काट डालने के समान है ॥१४६॥]

ये वुद्धा ये च दहरा ये च मज्झिमपोरिसा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु निक्खमन्ते महाराजे
सिवीन रट्ठवड्ढने ॥१४७॥

[जो वृद्ध थे, जो छोटे थे और मध्यम आयु के थे, सभी सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर बाहे पकड कर रोने लगे ॥१४७॥]

अतियक्खा वस्सवरा इत्थागारञ्च राजिनो,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्द निक्खमन्ते महाराजे सिवीन
रट्ठवड्ढने ॥१४८॥

[भूत-विद्या के ज्ञाता, हिजडे तथा स्त्रियो के गृह के राज-कर्मचारी—सभी सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज वेस्सन्तर के निकलने पर बाहें पकड कर रोने लगे ॥१४८॥]

थियोपि तत्थ पक्कन्द या तम्हि नगरे अहू,
निक्खमन्ते महाराजे सिविन रट्ठवड्ढने ॥१४९॥
ये ब्राह्मणा ये च समणा अञ्ञेवापि वणिब्बका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु अधम्मो किर भो इति ॥१५०॥

[उस नगर मे जो स्त्रिया भी थी वे भी सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर रोने-पीटने लगी ।।१४९।। जो ब्राह्मण थे, जो श्रमण थे और जो दूसरे भिखारी थे, वे भी वाहें पकड कर रोने लगे कि यह अधर्म हो रहा है ।।१५०।।]

यथा वेस्सन्तरो राजा यजमानो सके पुरे,
सिवीन वचनत्थेन सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५१।।
सत्तहत्थिसते दत्वा सब्बालकारभूसिते,
सुवण्णकच्छे मातगे हेमकप्पनवाससे ।।१५२।।
आरूळहे गामणीयेहि तोमरकसपाणिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५३।।

[जैसे वेस्सन्तर राजा अपने नगर मे यज्ञ करता हुआ सिवियो के कहने से अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा है ।।१५१।। सभी अलकारो से विभूषित, स्वर्ण से लदे, स्वर्ण से कसे ऐसे सात सौ मातङ्ग हाथी देकर जिन पर तोमर-अकुस धारी ग्रामणी वैठे है, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकलता है ।।१५२-१५३।।)

सत्त अस्ससते दत्वा सब्बालंकारभूसिते,
आजानीयेव जातिया सिन्धवे सीघवाहिने,
आरूळहे गामणीयेहि इल्लिया चापधारिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५४--।।१५५।।
सत्त रथसते दत्वा सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्धे सब्बालंकार भूसिते।।१५६।।
आरूळहे गामणीयेहि चापहत्थीहि वम्मिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५७।।
सत्त इत्थिसते दत्वा एकमेका रथे ठिता,
सन्नद्धा निक्ख रज्जूहि सुवण्णेन अलकता ।।१५८।।
पीतालंकारा पीतवसना पीताभरणभूसिता,
आळार पमुखा हसुला सुपञ्ञा तनु मज्झिमा,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५९।।
सत्त धेनु सते दत्वा सब्बाकसूपधारणा,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१६०।।

सत्त दासिसते दत्वा सत्त दाससतानि च,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६१॥
हत्थि अस्सरथे दत्वा नारियो च अलकता,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६२॥
तदासि य भिसनक तदासि लोमहसन,
महादाने पदिन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ ॥१६३॥
तदासि य भिसनक तदासि लोमहसन,
यम्पञ्जलिकतो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६४॥

[सभी अलकारो से विभूषित, श्रेष्ठ, शीघ्रगामी सात सौ ऐसे घोडे देकर जिन पर इल्लीय (खड्ग) तथा धनुषधारी ग्रामणी बैठे है, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५४-१५५॥ ध्वजाधारी, अस्त्र-शस्त्र युक्त सात सौ ऐसे रथ दे कर जिनमें सभी अलकारो से विभूषित चीतें तथा व्याघ्र जुते है और जिनमे धनुष तथा ढाल लिये ग्रामणी बैठे है, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५६-१५७॥ एक-एक रथ मे बैठी हुई, स्वर्ण-रज्जु से बधी, स्वर्ण से अलकृत, पीले अल-कारो, वस्त्रो तथा आभूषणो से युक्त, विशाल आखो वाली, मुँह पर मुस्कराहट वाली तथा सुश्रोणी सात सौ स्त्रिया देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५८-१५९॥ रजतमय पात्रो सहित सात सौ गौवे देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६०॥ सात सौ दासिया तथा सात सौ दास देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६१॥ हाथी, घोडे, रथ और अलकृत नारिया देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६२॥ उस समय हलचल मच गई, उस समय रोमाच हो गया, जिस समय महादान दिया गया, पृथ्वी काँप उठी ॥१६३॥ उस समय हलचल मच गई, उस समय रोमाच हो गया, जब हाथ जोडे, राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६४॥]

देवताओ ने जम्बुद्वीप भर के राजाओ को सूचित कर दिया था कि वेस्सन्तर क्षत्रिय कन्याओ आदि का महादान दे रहा है। इसलिये देवताओ के प्रताप से क्षत्रिय-जन रथो में बैठकर आये और क्षत्रिय कन्या आदि उसका दान लेकर चले गये। इसी प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रादि भी दान ले गये। उसे दान देते ही देते शाम हो गई। वह अपने वासस्थान पहुच, वहा से अलकृत रथ पर बैठ माता पिता के निवास-गृह पर पहुचा कि उन्हे नमस्कार कर कल चला जाऊगा। माद्री देवी ने

सोचा कि मैं भी इनके साथ जाकर मातापिता की आज्ञा ले लू, उसके साथ साथ गई। बोधिसत्व ने पिता को नमस्कार कर अपने जाने की बात कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आमन्तयित्थ राजान सञ्जय धम्मिन वर,
अवरुद्धसि म देव वक गच्छामि पब्बत ॥१६५॥
ये हिकेचि महाराज भूता ये च भविस्सरे,
अतित्ता येव कामे ही गच्छन्ति यमसाधन ॥१६६॥
सोह सके अभिसंसि यजमानो सके पुरे,
सिवीन वचनत्येन सम्हा रट्ठा निरज्जह ॥१६७॥
अघ तपतिसेविस्स वने वाळमिगाकिण्णे,
खग्गदीपिनिसेविते अह पुञ्ञानि करोमि
तुम्हें पकम्हि सीदथ ॥१६८॥

[धार्मिक राजाओ मे श्रेष्ठ सञ्जय राजा को सम्बोधित कर बोला—"हे देव! आप मुझे निकालते है। मैं वक पर्वत को जाता हूँ ॥१६५॥ महाराज! जितने भी लोग हुए है वा होगे वे सभी काम-भोगो मे अतृप्त रहकर ही यमराज के यहाँ जायेगे ॥१६६॥ अपने नगर मे (दान-) यज्ञ करके मैंने अपने लोगो को ही कष्ट दिया। मैं सिवियो के कहने के अनुसार अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा हूँ ॥१६७॥ वन में जगली जानवरो के बीच रहता हुआ मैं कष्ट से रहूँगा। किन्तु उसे गेंडे-चीते आदि के वासस्थान वन मे मैं पुण्य करूगा। तुम कीचड मे डूबोगे ॥१६८॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन चार गाथाओ द्वारा पिता से बातचीत कर, माता के पास जा प्रणाम कर, प्रव्रज्या की अनुमति मागते हुए कहा—

अनुजानाहि म अम्म पब्बज्जा मम रुच्चति,
सोह सके अभिसंसि यजमानो सके पुरे ॥१६९॥
सिवीन वचनत्थेन सम्हा रट्ठा निरज्जह
अघं त पतिसेविस्स वने वाळमिगाकिण्णो,
खग्गदीपिनि सेविते अह पुञ्ञानि करोमि
तुम्हे पकम्हि सीदथ ॥१७०॥

[मा! मुझे अनुज्ञा दे। मुझे प्रव्रज्या अच्छी लगती है। मैंने अपने नगर में (दान-) यज्ञ करके अपनों को कष्ट दिया ॥१६९॥ सिवियो के कहने के अनुसार मैं अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा हूँ। मैं उस जगली जानवरो वाले वन मे कष्ट से रहूँगा, किन्तु मैं उस गेंडे-चीते रहने वाले वन मे पुण्य करूँगा। तुम कीचड में डूबोगे ॥१७०॥]

यह सुन फुसती ने कहा—

अनुजानामि त पुत्त पब्बज्जा ते समिज्झतु,
अयञ्च मद्दी कल्याणी सुसञ्जा तनुमज्झिमा,
अच्छत सह पुत्तेहि किं अरञ्ञे करिस्सति ॥१७१॥

[पुत्र! तुझे अनुज्ञा देती हूँ। तेरी प्रव्रज्या सफल हो। किन्तु यह सुश्रोणी, मध्यगात्री कल्याणी माद्री जगल मे क्या करेगी? यह अपने पुत्रो के साथ यही रहे ॥१७१॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया—

नाहं अकामा दासिम्पि अरञ्ञ नेतुमुस्सहे,
सचे इच्छति अन्वेतु सचे निच्छति अच्छतु ॥१७२॥

[मैं अनिच्छुक दासी को भी जगल साथ नही ले जाना चाहता। यदि चाहे तो आये, यदि न चाहे तो न आये ॥१७२॥]

तब पुत्र की बात सुन राजा ने उससे प्रार्थना की। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो सुण्हं महाराजा याचितु पटिपज्जथ,
मा चन्दनसमाचारे रजोजल्ल अधारयि ॥१७३॥
मा कासियानि धारेत्वा कुसचीरमधारयि,
दुक्खो वासो अरञ्ञस्मिं माहि त्वं लक्खणे गमी ॥१७४॥

[तब महाराजा अपनी पुत्र-वधु से याचना करने गये—हे रक्तचन्दन धारिणी! अब धूल मत धारण कर। काशी के वस्त्र पहन कर अब कुशा का चीर मत धारण कर। जगल में रहना दुखद होता है। हे (शुभ-) लक्षणे! तू मत जा ॥१७३-१७४॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
नाह त सुखमिच्छेय्य य मे वेस्सन्तर विना ॥१७५॥

[सर्वाङ्ग शोभन राजपुत्री माद्री वोली—"जो सुख वेस्सन्तर के विना मुझे अकेली को प्राप्त हो, मुझे उसकी इच्छा नही है" ॥१७५॥]

तमब्रवी महाराजा सिवीन रट्ठवड्ढनो,
इँघ मद्दि निसामेहि वने ये होन्ति दुस्सहा ॥१७६॥

[सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उसे कहा—माद्री ! वन में जो-जो कष्ट होते है, उन्हें सुन ॥१७६॥]

बहू कीटा पतगा च मकसा मधुमक्खिका,
ते पि त तत्थ हिंसेय्यु त ते दुक्खतर सिया ॥१७७॥
अपरे पस्स सन्ताये नदीनुपनिसेविते,
सप्पा अजगरा नाम अविसा ते महब्बला ॥१७८॥
ते मनुस्स मिग वापि अपिमासन्नमागत,
परिक्खिपित्वा भोगहि वसमानेन्ति अत्तनो ॥१७९॥
अञ्ञेपि कण्ह जटिनो अच्छा नाम अघम्मिगा,
न तेहि पुरिसो दिट्ठो रुक्खमारुय्ह मुच्चति ॥१८०॥
सघट्टयन्ता सिंगानि तिक्खग्गानि महारिनो,
महिसा विचरन्तेत्थ नदि सोतुम्बर पति ॥१८१॥
दिस्वा मिगान यूथान गव सञ्चरते वने,
धेनूव वच्छगिद्धाव कथ मद्दि करिस्ससि ॥१८२॥
दिस्वा सम्पतिते घोरे दुमग्गेसु प्लवगमे
अखेत्तञ्ञाय ते मद्दि भविसन्ते महब्भय ॥१८३॥
या त्व सिवाय सुत्वान मुहु उत्तससे पुरे,
सा त्व वक अनुप्पत्ता कथ मद्दि करिस्ससि ॥१८४॥
ठिते मज्झन्तिके काले सन्निसिन्नेसु पक्खिसु,
सनतेव ब्रहारञ्ञ तत्थ किं गन्तुमिच्छसि ॥१८५॥

[बहुत से कीट-पतङ्ग, मच्छर तथा मधुमक्खिया भी वहा तुझे कष्ट दे सकती हैं। उससे तुझे बहुत दुःख होगा ॥१७७॥ नदियो के समीप रहने पर और भी सताप

देख। महाबलशाली सर्प और विप-रहित अजगर हैं जो पास आये हुए मनुष्य अथवा पशु को फन से घेरकर अपने वश में कर लेते हैं ।।१७८-१७९।। दूसरे भी काले बालो वाले दुखदायी रीछ हैं। उन्होने कभी आदमी नही देखा। वृक्ष पर चढने से ही आदमी उनसे बचता है ।।१८०।। तेज सीगो वाले, प्रहार देने वाले भैंसे आपस मे सीग लडाते हुए सोतुम्बर नदी के किनारे विचरते हैं ।।१८१।। मृगो के समूह तथा गौओ को वन मे विचरते देख वत्स-लोभी माद्री क्या करेगी ? ।।१८२।। पेडो की शाखाओ पर भयानक बन्दरो को कूदते देख वन-भूमि का ज्ञान न होने के कारण हे माद्री ! तुझे बहुत डर लगेगा ।।१८३।। जो तू पहले गीदडी की आवाज सुनकर बार-बार डर जाती थी, हे माद्री ! वक पर्वत पहुँच कर तू क्या करेगी ।।१८४।। मध्याह्न के समय, पक्षियो के बैठे होने पर और भयानक जगल मे आवाज होती है, वहा क्या जाने की इच्छा करती है ? ।।१८५।।]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बगसोभना,
यानि एतानि अक्खासि वने पटिभयानि मे,
सब्बानि अभिसम्भोस्स गच्छञ्ञेव रथेसभ ।।१८६।।
कास कुस पोटकिलं उसीर मुञ्जबब्बज,
उरसा पनुदहेस्सामि नास्स हेस्सामि दुन्नया ।।१८७।।
बहूहि वत चरिया हि कुमारी विन्दते पति,
उदरस्सुपरोधेन गोहनुब्बेठनेन च ।।१८८।।
अग्गिस्स परिचरियाय उदकुम्मजनेन च,
वेघब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसम ।।१८९।।
अपिस्सा होति अप्पत्तो उच्छिट्ठम्पि भुञ्जितु,
यो न हत्थे गहेत्वान अकाम परिकड्ढति,
वेघब्ब कटुक लोके गच्छेञ्ञेव रथेसभ ।।१९०।।
केसग्गहणमुक्खेपा भुम्या च परिसुम्भना,
दत्वा च नोपक्कमति बहु दुक्ख अनप्पक,
वेघब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसम ।।१९१।।
सुक्कच्छवी वेघवरो दत्वा सुभगमानिनो,
अकामं परिकड्ढन्ति उलूकञ्ञेव वायसा,
वेघब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ।।१९२।।

अपि ञातिकुले फीते कसपज्जोतते वस,
नेवातिवाक्यं न लभे भातुहि सखिकाहि च,
वेधब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९३॥
नग्गा नदी अनुदका नग्ग रट्ठ अराजिक
इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो,
वेधब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९४॥
धजो रथस्स पञ्ञाण धूमो पञ्ञाणमग्गिनो
राजा रट्ठस्स पञ्ञाण भत्ता पञ्ञाणमित्थिया,
वेधब्ब कटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९५॥
या दळिद्दी दळिद्दस्स अड्ढा अड्ढस्स कित्तिमा,
त वे देवा पससन्ति दुक्कर हि करोति सा ॥१९६॥
सामिक अनुबन्धिस्स सदा कासायवासिनी
पथव्यापि अभेज्जन्त्या निच्छे वेस्सन्तर विना,
वेधब्ब कुटुक लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९७॥
अपि सागरपरियन्त बहुवित्तधर महिं,
नाना रतनपरिपूर निच्छे वेस्सन्तर विना ॥१९८॥
कथन्नु तास हदयं सुखरा वत इत्थियो,
या सामिके दुक्खितम्हि सुखमिच्छन्ति अत्तनो ॥१९९॥
निक्खमन्ते महाराजे सिवीन रट्ठवड्ढने,
तमह अनुबन्धिस्स सब्बकामददो हि मे ॥२००॥

[सर्वाङ्ग शोभन राजपुत्री माद्री ने उसे कहा—"जो तूने मुझे वन मे ये भय बताये है। इन सब को मै सहन करूँगी। हे रथेसभ! मै जाऊगी ही ॥१८६॥ कास, कुस, पोटकिल, उसीर, मुञ्ज तथा बबञ्ज जितने भी घास है उनको मै छाती से चीरती हुई चली जाऊगी। उनके कारण मै अपना रास्ता नही छोडूगी ॥१८७॥ बहुत कठिनाई से कुमारियो को पति मिलता है, उपवास से, गऊ के जबडे से कुटवाने से (?), अग्नि-परिचर्य्या से तथा जलमें डुबकिया लगाने से। हे रथेसभ! लोक मे वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१८८-१८९॥ उसे उच्छिष्ठ खाना भी नही मिलता और कोई भी उस अनिच्छुक को हाथ से पकड कर खीचता है। हे रथेसभ! लोक मे वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१९०॥ बालो से

पकड कर (?) भूमि पर गिरा देते है और इस प्रकार बहुत दुख देकर भी खडे देखते रहते है। लोक मे वैधव्य बहुत कष्टदायी है। मै जाऊगी ही ॥१९१॥ पाउडर लगाकर अपने आपको सुन्दर मानने वाले, विध्वा स्त्री की कामना करने वाले लोग उस अनिच्छुक को कुछ भी देकर उसे वैसे ही खीचते है जैसे कौवे उल्लु को। लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१९२॥ स्वर्ण जैसे स्मृद्ध कुलमे रहकर भी विधवा को भाई और सखियो के तिरस्कार-वचन सहने ही पडते है। हे रथेसम ! लोक मे वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मे जाऊगी ही ॥१९३॥ बिना जल के नदी नगी है, बिना राजा के राष्ट्र नगा है, दस भाई होने पर भी बिना पति के स्त्री भी नगी ही है। हे रथेसभ ! लोक मे वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१९४॥ ध्वजा से राष्ट्र की घोषणा होती है, धुएँ से आग की घोषणा होती है, राजा से राष्ट्र की घोषणा होती है, स्वामी से स्त्री की घोषणा होती है। हे रथेसम ! लोक मे वैधव्य बडा कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१९५॥ जो यशस्वी स्त्री अपने धनी पति के साथ धनी और दरिद्र पति के साथ दरिद्री बन कर रहती हे देवता भी उसकी प्रशसा करते है, क्योकि वह बडा दुष्कर कार्य्य करती है ॥१९६॥ मै काषाय वस्त्र धारिणी होकर स्वामी का ही अनुसरण करुगी। अविभक्त पृथ्वी की स्वामिनी होकर भी मै वेस्सन्तर के बिना रहना नही चाहती। हे रथेसभ ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मै जाऊगी ही ॥१९७॥ चाहे अनेक प्रकार से सुन्दर, नाना रत्नो से परिपूर्ण, सागर पर्य्यन्त सारी पृथ्वी भी मुझे मिले, मै वेस्सन्तर के बिना नही चाहती ॥१९८॥ उन स्त्रियो का हृदय कैसा है ! वे स्त्रिया बडी ही कठोर हृदया होगी जो स्वामी के दुखी रहने पर अपने लिये सुख चाहती है ॥१९९॥ सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर मै उसका अनुसरण करूँगी। वह मेरी सब कामनाओ की पूर्ति करने वाला है ॥२००॥)

तमब्रवी महाराज मद्दिं सब्बगसोभन
इमे ते दहरा पुत्ता जाली कण्हाजिना चुभो,
निक्खिप्प लक्खणे गच्छ मय ते पोसियामसे ॥२०१॥

[महाराज ने उस सर्वाङ्ग शोभन माद्री को कहा—ये जाली और कृष्णाजिन तेरी सन्तान है। हे शुभ-लक्षणे ! इन्हें यही छोड जा। हम इनका पालन-पोषण करेंगे ॥२०१॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बगसोभना
पिया मे पुत्तका देव जाली कण्हाजिना चुभो,
त्यामहं तत्थ रमेस्सन्ति अञ्ञे जीवसोकिनं ॥२०२॥

[सर्वाङ्ग शोभना राजपुत्री माद्री ने उसे कहा—"देव ! जाली तथा कृष्णाजिन दोनो मेरी प्रिय सन्तान हैं। ये दोनो जगल मे हम शोकाकुलो का दिल बहलायेंगे ॥२०२॥]

तमब्रवी महाराज सिवीन रट्ठवड्ढनो,
सालीन ओदन भुत्वा सुचि मसूपसेचन,
रुक्खफलानि भुञ्जन्ता कथ काहन्ति दारका ॥२०३॥
भुत्वा सतफले कसे सोवण्णे सतराजिके,
रुक्खपत्तेसु भुञ्जन्ता कथ काहन्ति दारका ॥२०४॥
कासियानि च धारेत्वा खोमकोदुम्बरानि च,
कुस चीरानि धारेन्ता कथ काहन्ति दारका ॥२०५॥
वय्हाहि परियायित्वा सिविकाम रथेन च,
पत्तिका परिधावन्ता कथ काहन्ति दारका ॥२०६॥
कूटागारे सयित्वान निवासे फुस्सितग्गळे,
सयन्ता रुक्खमूलस्मि कथ काहन्ति दारका ॥२०७॥
पल्लङ्केसु सयित्वान गोणके चित्तसन्थते,
सयन्ता तिणसन्थारे कथ काहन्ति दारका ॥२०८॥
गन्धिकेन विलिम्पित्वा अगरुचन्दनेन च,
रजोजल्लानि धारेन्ता कथ काहन्ति दारका ॥२०९॥
चमरीमोरहत्थेहि वीजितगा सुखेधिता,
दट्ठाडसेहि मकसेहि कथ काहन्ति दारका ॥२१०॥

[सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उसे कहा—शालीधान का शुद्ध समास भात खाकर अब वृक्षो के फल खाते हुए ये बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०३॥ सतराजिक भार के सात फलको से बने हुए स्वर्णमय थालो मे भोजन करने के बाद अब वृक्षो के पत्तो मे खाते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०४॥ काशिक, खोमक और उदम्बर वस्त्र धारण करने के बाद अब कुश-चीर पहने हुए बच्चे कैसे क्या

करेंगे ? ॥२०५॥ पालकी और रथ वाहनो से जाकर अब पैदल दौडते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०६॥ अच्छी प्रकार से बन्द कूटागार की निवास-स्थानो मे शयन करके अब वृक्षो की छाया मे सोने वाले बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०७॥ लम्बे बालो वाले चित्रित आस्तरण बिछे पलगो पर सोकर अब तिनको के बिछौनो पर सोने वाले बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०८॥ अगरु तथा चन्दन के लेप करने वाले अब धूल मे लोटते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०९॥ जिनके शरीर पर चवरी तथा मोर-पख झुलाये जाते थे और जो सुखपूर्वक पाले गये है अब डाँसो तथा मच्छरो से काटे जाने पर बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२१०॥]

इस प्रकार उनके बातचीत करते हुए ही रात बीत गई। रात बीत जाने पर सूर्य्योदय हुआ। बोधिसत्व के लिये चार सिन्धव घोडे जुता हुआ अलकृत रथ ला कर राजद्वार पर खडा कर दिया गया। माद्री ने सास-ससुर को प्रणाम किया और शेष स्त्रियो से अनुज्ञा ले, उन्हे देख, अपने दो पुत्रो को ले, वेस्सन्तर से भी पहले रथ पर जा पहुची। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बगसोभना,
मा देव परिदेवेसि मा च त्व विमनो अहु,
यथा मयं भविस्साम तथा हेस्सन्ति दारका ॥२११॥
इद वत्वान पक्कामि मद्दी सब्बगसोभना,
सिविमग्गेन अन्वेसि पुत्ते आदाय लक्खणा ॥२१२॥

[सर्वाङ्ग शोभना माद्री राजपुत्री उससे बोली—देव ! आप रोये नही तथा अपना मन भी खराब न करें। जैसे हम रहेंगे वैसे ही बच्चे भी रहेंगे ॥२११॥ इतना कह सर्वाङ्ग-शोभना, सुलक्षणा माद्री पुत्रो को लेकर सिवि-राजा के ही मार्ग से गई ॥२१२॥]

ततो वेस्सन्तरो राजा दान दत्वान खत्तियो,
पितु मातु च वन्दित्वा कत्वा च न पदक्खिण ॥२१३॥
चतुवाहिं रथं युत्त सीघमारुय्ह सन्दन,
आदाय पुत्तदारञ्च वक पायासि पब्बत ॥२१४॥

[तब वह क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा दान दे, माता-पिता की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, चार घोडे जुते रथ में शीघ्र चढकर, स्त्री-पुत्र को साथ ले वक पर्वत पहुचा ॥२१३-२१४॥]

ततो वेस्सन्तरो राजा येनासि वहुको जनो,
आमन्त खो त गच्छाम अरोगा होन्तु जातयो ॥२१५॥

[तव वेस्सन्तर राजा ने जहा वहुत से आदमी थे, वहा पहुच कर कहा—आप लोगो की अनुज्ञा ले जा रहे हैं। हमारे सम्वन्धी सुखी रहे ॥२१५॥]

इस प्रकार जव वोधिसत्व ने उन्हे सूचित किया और उपदेश दिया कि वे अप्रमादी रहकर दानादि पुण्य करे और उपदेश देकर जगाने लगा तो वोधिसत्व की माता ने आभरणो सहित सात रतनो से भरी गाडिया दोनो ओर भेजी कि मेरा पुत्र दानशील है, दान दे। उसने भी अपने शरीर के गहने उतार आये याचको को अट्ठारह वार दिये और वाद मे सभी दे दिये। वह नगर से निकला तो उसकी इच्छा हुई कि घूम कर नगर को देखे। उसके सकल्प के अनुसार जितनी जगह पर उसका रथ खडा था, उतनी पृथ्वी कट कर, पलट गई और उसने रथ का मुह नगर की ओर कर दिया। उसने माता-पिता का निवासस्थान देखा। उस करुणा के प्रभाव से पृथ्वी-कम्पन आदि हुए। इसीलिये कहा गया—

निक्खमित्वान नगरा निवत्तित्वा विलोकिते,
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवन वटसक[1] ॥२१६॥

[जव नगर से निकल कर उसने रुक कर देखा उस समय भी सुमेर शीर्षाभरण वाली पृथ्वी कापी ॥२१६॥]

स्वय देख कर माद्री को भी दिखाने के लिये गाथा कही—

इघ मद्दि निसामेहि रम्मरूप व दिस्सति,
आवासो सिविसेट्ठस्स पेत्तिक भवन मम ॥२१७॥

[माद्री! ध्यान दे। सिविश्रेष्ठ का निवास-स्थान मेरा पैत्रिक भवन रमणीय दिखाई देता है ॥२१७॥]

इस प्रकार वोधिसत्व ने साथ जन्मे साठ हजार अमात्यो तथा शेष जनता को देखा और सबको रोक दिया। फिर रथ को हाकते हुए कहा—"भद्रे! यदि पीछे से भिखमगे आये तो ख्याल रखना।" वह भी देखती बैठी रही। उसके 'सात सौ' के दान मे कुछ ब्राह्मण न पहुच सके थे। ऐसे चार ब्राह्मणो ने नगर मे आकर पूछा—

---

१ चरिया पिटक अकित्ति वग्ग।

"राजा कहा है ?" उत्तर मिला—"दान देकर चला गया।" तब उन्होने पूछा—"कुछ लेकर गया है ?" उत्तर दिया—"रथ से गया है।" उन्होने उससे घोडे मागने की इच्छा से उसका पीछा किया। माद्री ने उन्हे आते देखा तो कहा—"देव! याचक आ रहे है।" बोधिसत्व ने रथ रोक दिया। उन्होने आकर घोडे मागे। बोधिसत्व ने उन्हे चारो घोडे दे दिये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

त ब्राह्मणा अन्वगमु ते त अस्से अयाचिसु,
याचितो पटिपादेसि चतुन्न चतुरो हये ॥२१८॥

[उन ब्राह्मणो ने पीछा किया। उन्होने उससे घोडे मागे। मागने पर उसने चारो को चार घोडे दे दिये ॥२१८॥]

घोडे दे दिये जाने पर रथ का धुर आकाश मे ही स्थित रहा। ब्राह्मणो के जाते ही चार देव-पुत्र लाल मृगो का रूप बनाकर आये और रथ के धुरे को खीच ले गये। बोधिसत्व ने यह जान कि वे देव-पुत्र है, यह गाथा कही—

इघ मद्दि निसामेहि चित्तरूपव दिस्सति,
मिगा रोहिच्चवण्णेन दक्खिणस्सावहन्ति म ॥२१९॥

[माद्री लाल मृगो के रूप मे (देव-पुत्र) सुन्दर दिखाई देते है और वे मुझे चतुर-अश्वो की तरह खीचे लिये जा रहे है ॥२१९॥]

उनके इस प्रकार चलते रहने पर एक और ब्राह्मण ने आकर रथ मागा। बोधिसत्व ने स्त्री-पुत्र को उतार उसे रथ दे दिया। रथ दे दिये जाने पर देव-पुत्र अन्तर्धान हो गये।

रथ के दिये जाने की बात प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अयेत्थ पञ्चमो आग सो त रथमयाचथ,
तस्स त याचितोदासि नचस्सुमहतो मनो ॥२२०॥
ततो वेस्सन्तरो राजा ओरोपेत्वा सके जन,
अस्सासयी अस्सरथ ब्राह्मणस्स धनेसिनो ॥२२१॥

[तब एक पाचवाँ ब्राह्मण आया और उसने उससे रथ की याचना की। उस के मागने पर उसने दे दिया और उसने अपना मन मैला नही किया। तब वेस्सन्तर

राजा न अपने लोगो को उतार धन-खोजी ब्राह्मण को अश्वरथ देकर प्रसन्न कर दिया ॥२२०-२२१॥]

तब से वे सभी पैदल ही हो लिये। बोधिसत्व ने माद्री से कहा—

त्व महि कण्हाजिन गण्ह लहुका एसा कणिट्ठिका,
अहं जालि गण्हिस्सामि गरुको भातिकोहिसो ॥२२२॥

[माद्री! कृष्णार्जिना छोटी है, हलकी है। तू इसे ले। इसका भाई जालि भारी है। मैं उसे लेता हूँ ॥२२२॥]

ये कह दोनो जने दोनो बच्चो को गोद मे उठाकर चले। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

राजा कुमार आदाय राजपुत्ती च दारिक,
सम्मोदमाना पक्कामु अञ्ञमञ्ञ पियवदा ॥२२३॥

[राजा ने कुमार को लिया और राजपुत्री ने कुमारिका को और दोनो परस्पर मधुर सम्भाषण करते हुए चले ॥२२३॥]

दान-काण्ड समाप्त

रास्ता चलते चलते वे आदमियो को आते देखकर पूछते—वङक पर्वत कहाँ है? इसीलिए कहा गया—

यदि केचि मनुजा एन्ति अनुमग्गे पटीपथे,
मग्गं ते पटिपुच्छाम कुहि वकत पब्बतो ॥२२४॥
ते तत्थ अम्हे पस्सित्वा करुण परिदेवयु,
दुक्ख ते पटिवेदेन्ति दूरे वकत पब्बतो ॥२२५॥

[यदि उधर से कोई आदमी आते दिखाई देते तो हमे रास्ता पूछते कि वङक-पर्वत कहाँ है? वे हमे देखकर करुणा से दुखी होते और दुख से कहते कि वङक पर्वत दूर है ॥२२४-२२५॥]

तब मार्ग के दोनो ओर फलदार वृक्षो को देखकर बच्चे रोते। बोधिसत्व के प्रताप से फलदार वृक्ष झुककर हाथ के पास आ जाते। तब वह उन पर से पके फल तोडकर उन्हे देता। यह देख माद्री ने आश्चर्य प्रकट किया। इसीलिए कहा गया है—

यदि पस्सन्ति पवने दारका फलिते दुमे,
तेस फलान हेतुहि उपरोदन्ति दारका ॥२२६॥
रोदन्ते दारके दिस्वा उब्बिग्गा विपुला दुमा,
सयमेवोनमित्वान उपगच्छन्ति दारके ॥२२७॥
इद अच्छेरक दिस्वा अब्भुत लोमहसन,
साधुकार पवत्तेसि मद्दी सब्बगसोभना ॥२२८॥
अच्छेर वत लोकस्मि अब्भुत लोमहसन,
वेस्सन्तरस्स तेजेन सयमेवोमता दमा ॥२२९॥

[यदि बच्चे वन मे फलदार वृक्षो को देखते,तो बच्चे उन फलो के लिये रोने लग जाते ॥२२६॥ बच्चो को रोते देख बहुत उद्विग्न-चित्त हुए पेड स्वय झुककर बच्चो के समीप हो जाते ॥२२७॥ यह अद्भुत रोमांचित करने वाला आश्चर्य देखकर सर्वाङ्ग शोभन माद्री ने 'साधुकार' दिया ॥२२८॥ लोक मे रोमाञ्चित कर देने वाला अद्भुत आश्चर्य्य है—वेस्सन्तर के प्रताप से वृक्ष स्वयमेव झुक गये है ॥२२९॥]

जेतुत्तर नगर से स्वर्णगिरिताल नामका पर्वत पाँच योजन था, वहाँ से कोन्तिमार नदी पाञ्च योजन है। वहाँ से आरञ्जर गिरि नामका पर्वत पाञ्च योजन है। वहाँ से दुर्निविष्ट ब्राह्मण-ग्राम पाञ्च योजन। वहाँ से मातुल नगर दस योजन। इस प्रकार वह मार्ग जेतुत्तर-नगर से तीस योजन था। देवताओ ने मार्ग को छोटा कर दिया। एक ही दिन में वे मातुल नगर पहुच गये।

इसीलिये कहा गया—

सखिपिसु पथ यक्खा अनुकम्पाय दारके,
निक्खन्त दिवसेनेव चेतरट्ठमुपागमु ॥२३०॥

[देवताओ ने बच्चो पर दया करके मार्ग छोटा कर दिया। जिस दिन वे चले थे, उसी दिन चेतराष्ट्र पहुच गय ॥२३०॥]

चलते-चलते जेतुत्तर नगर से जलपान के समय निकल शाम होते-होते चेतराष्ट्र के मातुल नगर जा पहुचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ते गन्त्वा दीघमद्धान चेतरट्ठमुपागमुं,
इद्ध फीत जनपद बहुमस सुरोदन ॥२३१॥

[बहुत दूर चलकर वे चेत राष्ट्र आ पहुचे। यह जन पद मास, सुरा तथा भात से समृद्ध था ।।२३१।।)

उस समय मातुल नगर मे साठ हजार क्षत्रिय रहते थे। बोधिसत्व नगर के भीतर न जा, नगर के द्वार पर शाला मे बैठ रहे। तब माद्री ने बोधिसत्व के पाँव की धूल झाडी और उसके पाँव दबाने लगी। फिर बोसित्व के आगमन की बात प्रकट करने के लिए वह शाला से निकली और उसकी आँखो के सामने खडी हो गई। इससे नगर में आती जाती स्त्रियो ने उसे देख घेर लिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

चेतियो परिकिरिंसु दिस्वा लक्खणमागत
सुखुमालो वतय अय्या पत्तिका परिधावप्ति ।।२३२।।
वटहाहि परियायित्वा सिविकाय च खत्तिया
साज्ज मद्दी अरञ्ञस्मि पत्तिका परिधावति ।।२३३।।

[उस शुभ लक्षणा माद्री को आया देख चेदि (?) की स्त्रियो ने घेर लिया। कहने लगी—यह सुकुमारी पैदल चल रही है। जो क्षत्राणी पालकी में बैठकर चलती थी, वह माद्री आज जगल मे पैदल दौड रही है ।।२३२-२३३।।]

जनता ने माद्री, वेस्सन्तर तथा उसके पुत्रो को अनाथ अवस्था मे आये देखा तो जाकर राजाओ को सूचना दी। साठ हजार राजा रोते—पीटते उसके पास पहुचे। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

त दिस्वा चेतपामोक्खा रोदमाना उपागमुं,
कच्चिन्नु देव कुसल कच्चिदेव अनामय,
कच्चि पिता आरोगा ते सिवीनञ्च अनामय ।।२३४।।

[यह देख चेत (जनपद) के प्रमुख लोग रोते हुए आये और पूछने लगे—देव! कुशल तो है? देव! नीरोग तो है? देव! आपके पिता स्वस्थ तो हैं? और सिवि के लोग भी सकुशल तो है? ।।२३४।।]

को ते वल महाराज को नु ते रथमण्डल,
अनस्सको अरथको दीघमद्धानमागतो,
कच्चीनामित्तेहि पकतो अनुप्पत्तोसिम दिस ।।२३५।।

[महाराज! आपकी सेना कहाँ है? आप का रथ कहाँ है? आप विना घोड़े के, विना रथ के दूर तक चले आये हैं। क्या शत्रुओ से अभिभूत होकर इस ओर आना हुआ है?॥२४२॥]

तब बोधिसत्व ने उन राजाओ को अपने आगमन का कारण बताते हुए कहा—

कुसलञ्चेव मे सम्म अथो सम्म अनामय,
अथो पिता अरोगो मे सिवीनञ्च अनामय॥२४३॥
अहं हि कुञ्जर दज्ज ईसादन्त उरूळहव,
खेत्तञ्ञु सब्बयुद्धान सब्बसेत गजुत्तम॥२४४॥
पण्डुकम्बलसञ्छन्न पभिन्न सत्तुमद्दन,
दन्ति सवाळबीजनि सेत केलाससादिस॥२४५॥
ससेतच्छत्त सउपधेय्य साथब्बण सहत्थिप,
अग्गवान राजवाहि ब्राह्मणान अदासह॥२४६॥
तस्मि मे सिवयो कुद्धा पिता च उपहतो मनो,
अवरुद्धति म राजा वक गच्छामि पब्बत
ओकास सम्मा जानाथ वने यत्थ वसामसे॥२४७॥

[मित्रो! मैं सकुशल हूँ। मित्रो! मैं निरोग हूँ। मेरा पिता भी स्वस्थ है। और सिवी के लोग भी सकुशल हैं॥२४३॥ मैंने बड़े भारी, बड़े दान्तो वाले, सभी युद्धो के क्षेत्र से परिचित, सर्व-श्वेत श्रेष्ठ कुञ्जर हाथी का दान कर दिया, जो पाण्डु-वर्ण कम्बल से ढका था, जिसके माथे से मद बह रहा था, जो शत्रुओ का मर्दन करने वाला था, जो बड़े दान्तो वाला था, विशाल पखे वाला था और कैलाश के समान श्वेत था॥२४४-२४५॥ मैंने श्वेत-छत्र सहित, गद्दी सहित, हस्ति-चिकित्सक सहित और हथवान् सहित वह राजा का श्रेष्ठ वाहन ब्राह्मणो को दे दिया॥२४६॥ इसी से सिवी लोग क्रुद्ध हो गये है, और राजा का मन भी मेरे प्रति खराब हो गया है। राजा मेरे विरुद्ध हो गया है। मैं वङ्क पर्वत जाता हूँ। हे मित्रो! जगल मे हम जिस जगह रहे, हमें वहाँ रहने की अनुज्ञा दो॥२४७॥]

वे राजा बोले—

स्वागत ते महाराज अथो ते अदुरागत,
इस्सरोसि अनुप्पत्तो य इधत्थि पवेदय॥२४८॥

साक भिस मधु मस सुद्ध सालीनमोदन,
परिभुञ्ज, महाराज पाहुणो नोसि आगतो ॥२४९॥

[महाराज! आपका स्वागत है। आप का आना शुभ है। आप हमारे 'ईश्वर' आ गये है। जो कुछ यहाँ कहने का हो कहे ॥२४८॥ हे महाराज! आप हमारे अतिथि आये है—शाक, भिस, मधु, मास और शुद्ध शाली धान का भात ग्रहण करे ॥२४६॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर क्रिया—

परिग्गहीत य दिन्न सब्बस्स अग्घिय कत,
अवरुद्धति म राजा वक गच्छामि पब्बत,
ओकास सम्माजानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२५०॥

[जो कुछ तुमने दिया वह मैंने स्वीकार किया। आप सबने मेरा बडा उपकार किया। किन्तु राजा मेरे विरुद्ध है। मै वङ्क पर्वत जा रहा हूँ। वहाँ हमारे रहने के लिये योग्य जगह बताओ ॥२५०॥]

वे राजागण बोले—

इधेव ताव अच्छस्सू चेतरट्ठे रथेसभ
याव चेता गमिस्सन्ति रञ्ञो सन्तिके याचितु,
निज्झापेतु महाराज सिवीन रट्ठवड्ढन ॥२५१॥
त त चेता पुरक्खत्वा पतीता लद्धपच्चया,
परिवारेत्वान गच्छन्ति एव जानाहि खत्तिय ॥२५२॥

[हे रथेसभ! तबतक यहाँ इस चेतिय राष्ट्र मे ही रहे। ये लोक सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज से प्रार्थना करने और आपकी निर्दोषता प्रकट करने जायेगे ॥२५१॥ हे क्षत्रिय! आप यह जाने कि ये प्रतिष्ठा तथा प्रसन्नता पूर्वक तुझे आगे करके घेर कर ले जायेगे ॥२५२॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

मा वो रुच्चित्थ गमण रञ्ञो सन्तिके याचितु,
निज्झापेतु महाराज राजा तत्थ न इस्सरो ॥२५३॥
अच्चुग्गता हि सिवयो बलत्था नेगमा च ये,
ते पब्बाजेतुमिच्छन्ति राजान मम कारणा ॥२५४॥

[आप लोग राजा से प्रार्थना करने और महाराज पर मेरी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये जाने का सकल्प न करे। वहाँ राजा के हाथ मे अधिकार नही है। वहाँ सिवि जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये है। वे मेरे कारण राजा को निकालना चाहते है ॥२५०॥]

उन राजाओ ने कहा—

स चे एसा पवत्तेत्थ रट्ठस्मि रट्ठवड्ढन,
इधेव रज्ज कारेहि चेतेहि परिवारितो ॥२५५॥
इद्ध फीतञ्च रट्ठ इद्धो जनपदो महा,
मति करोहि त्व देव रज्जस्समनुसासितु ॥२५६॥

[हे राष्ट्रवर्धन! यदि उस राष्ट्र का ऐसा समाचार है तो चेतिय लोगो के वीच रहकर आप यही राज्य करे। यह राष्ट्र तथा यह महाजनपद समृद्ध है। हे देव! आप यही राज्य का अनुशासन करने का सकल्प करे ॥२५ ॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया——

न मे छन्दो मति अत्थि रज्जस्समनुसासितु,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेतपुत्ता सुणाथ मे ॥२५७॥
अतुट्ठा सिवया अस्सु बलत्था नेगमा च ये,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेता रज्जेभिसेचयु ॥२५८॥
असम्मोदियम्पि वो अस्स अच्चन्त मम कारणा,
सिवीनं भण्डनञ्चापि विग्गहो मेन रुच्चति ॥२६९॥
अथस्स भण्डन घोर सम्पहारोचलप्पको,
एकस्स कारणा मय्ह हिंसेय्यु बहुके जने ॥२६०॥
परिग्गहीत य दिन्न सब्बस्स अग्घिय कत,
अवरुद्धति म राजा वक गच्छामि पब्बत,
ओकास सम्मा जानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२६१॥

[हे चेतिय-पुत्रो सुनो। मै राष्ट्र से निकाला गया हूँ। मेरी राज्य का अनुशासन करने की इच्छा नही है ॥२५७॥ सिवी-जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासी यह सुनकर असतुष्ट हो सकते है कि चेतिय वासियो ने देश से निकाले हुए को राजा बनाया ॥२५८॥ मेरे कारण मेल-मिलाप टूट सकता है। मुझे यह अच्छा नही

साक भिस मधु मस सुद्ध सालीनमोदन,
परिभुञ्ज, महाराज पाहुणो नोसि आगतो ॥२४९॥

[महाराज ! आपका स्वागत है। आप का आना शुभ है। आप हमारे 'ईश्वर' आ गये है। जो कुछ यहाँ कहने का हो कहे ॥२४८॥ हे महाराज ! आप हमारे अतिथि आये है—शाक, भिस, मधु, मास और शुद्ध शाली धान का भात ग्रहण करे ॥२४९॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया—

परिग्गहीत य दिन्न सब्बस्स अग्घिय कत,
अवरुद्धति म राजा वक गच्छामि पब्बत,
ओकास सम्माजानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२५०॥

[जो कुछ तुमने दिया वह मैंने स्वीकार किया। आप सबने मेरा बडा उपकार किया। किन्तु राजा मेरे विरुद्ध है। मै वङ्क पर्वत जा रहा हूँ। वहाँ हमारे रहने के लिये योग्य जगह बताओ ॥२५०॥]

वे राजागण बोले—

इधेव ताव अच्छस्सू चेतरट्ठे रथेसभ
याव चेता गमिस्सन्ति रञ्ञो सन्तिके याचितुं,
निज्झापेतु महाराज सिवीन रट्ठवड्ढन ॥२५१॥
त त चेता पुरक्खत्वा पतीता लद्धपच्चया,
परिवारेत्वान गच्छन्ति एव जानाहि खत्तिया ॥२५२॥

[हे रथेसभ ! तबतक यहाँ इस चेतिय राष्ट्र मे ही रहे। ये लोक सिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज से प्रार्थना करने और आपकी निर्दोषता प्रकट करने जायेंगे ॥२५१॥ हे क्षत्रिय ! आप यह जाने कि ये प्रतिष्ठा तथा प्रसन्नता पूर्वक तुझे आगे करके घेर कर ले जायेंगे ॥२५२॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

मा वो रुच्चित्थ गमण रञ्ञो सन्तिक याचितुं,
निज्झापेतु महाराज राजा तत्थ न इस्सरो ॥२५३॥
अच्चुग्गता हि सिवयो बलत्था नेगमा च ये,
ते पब्बमेतुमिच्छन्ति राजान मम कारणा ॥२५४॥

[आप लोग राजा से प्रार्थना करने और महाराज पर मेरी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये जाने का सकल्प न करे। वहाँ राजा के हाथ मे अधिकार नही है। वहाँ सिवि जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये हैं। वे मेरे कारण राजा को निकालना चाहते हैं ।।२५४।।]

उन राजाओ ने कहा—

स चे एसा पवत्तेत्थ रट्ठस्मि रट्ठवड्ढन,
इधेव रज्ज कारेहि चेतेहि परिवारितो ।।२५५।।
इद्ध फीतञ्च रट्ठ इद्धो जनपदो महा,
मति करोहि त्व देव रज्जस्समनुसासितु ।।२५६।।

[हे राष्ट्रवर्धन ! यदि उस राष्ट्र का ऐसा समाचार है तो चेतिय लोगो के बीच रहकर आप यही राज्य करे। यह राष्ट्र तथा यह महाजनपद स्मृद्ध है। हे देव ! आप यही राज्य का अनुशासन करने का सकल्प करे ।।२५ ।।]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया——

न मे छन्दो मति अत्थि रज्जस्समनुसासितु,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेतपुत्ता सुणाथ मे ।।२५७।।
अतुट्ठा सिवया अस्सु बलत्था नेगमा च ये,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेता रज्जेभिसेचयु ।।२५८।।
असम्मोदियम्पि वो अस्स अच्चन्त मम कारणा,
सिवीन भण्डनञ्चापि विग्गहो मेन रुच्चति ।।२६९।।
अथस्स भण्डन घोर सम्पहारोचनप्पको,
एकस्स कारणा मय्ह हिंसेय्यु बहुके जने ।।२६०।।
परिग्गहीत य दिन्न सब्बस्स अग्घिय कत,
अवरुद्धति म राजा वक गच्छामि पब्बत,
ओकास सम्मा जानाथ वने यत्थ वसामसे ।।२६१।।

[हे चेतिय-पुत्रो सुनो। मै राष्ट्र से निकाला गया हूँ। मेरी राज्य का अनुशासन करने की इच्छा नही है ।।२५७।। सिवी-जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासी यह सुनकर असतुष्ट हो सकते है कि चेतिय वासियो ने देश से निकाले हुए को राजा बनाया ।।२५८।। मेरे कारण मेल-मिलाप टूट सकता है। मुझे यह अच्छा नही

लगता कि सिवियो से झगडा लडाई हो ।।२५९।। इस प्रकार वहुत झगडा और लडाई हो सकती है। मेरे एक के कारण वहुतो की हिंसा हो सकती है ।।२६०।। जो कुछ तुमने दिया वह मैंने स्वीकार किया। आप सबने मेरा वडा उपकार किया। किन्तु राजा मेरे विरुद्ध है। मैं वक पर्वत जा रहा हूँ। वहाँ हमारे रहने के लिये योग्य जगह बताओ ।।२६१।।]

इस प्रकार अनेक तरह से आग्रह करने से भी बोधिसत्व नें राज्य की इच्छा नही की। उन राजाओ ने उसका वहुत सत्कार किया। वह नगर मे जाना नही चाहता था। लोगो ने उस शाला को ही अलकृत कर, कनात घेर, महाशयनासन बिछवा, सभी ओर पहरा विठा दिया। एक दिन, एक रात वह उनके पहरे की शाला मे रहा। अगले दिन प्रात काल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, उन राजाओ से घिरा हुआ शाला से निकला। साठ हजार क्षत्रिय पन्द्रह योजन तक उसके साथ साथ गये। वहाँ जगल के द्वार पर खडे हो उन्होंने आगे का पन्द्रह योजन का रास्ता बताते हुए कहा—

तग्घ ते मयमक्खाम यथापि कुसला तथा,
राजिसी यत्थ सम्मन्ति आहुतग्गी समाहिता ।।२६२।।
एस सेलो महाराज पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थत्व सह पुत्तेहि सह भरियायचच्छसि ।।२६३।।
त चेता अनुसासिंसु अस्सु नेत्ता रुदम्मुखा,
इतो गच्छ महाराज उज्जु येनुत्तरामुखो ।।२६४।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते विपुलं नाम पब्बत,
नाना दुमगणाकिण्ण सीतच्छाय मनोरम ।।२६५।।
तमतिक्कम्म भद्दन्ते अथ दक्खिसि आपक,
नदिं केतुमतिं नाम गम्भीर गिरिगब्भर ।।२६६।।
पुथु लोममच्छाकिण्ण सुपतित्थ महोदिक,
तत्थ न्हात्वा पिवित्वा च अस्सासेत्वा च पुत्तके ।।२६७।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते निग्रोध मधुपिप्फल,
रम्मके सिखरे जातं सीतच्छाय मनोरम ।।२६८।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते नालिक नाम पब्बत,

नानादिजगणाकिण्ण सेल किम्पुरिसायुत ॥२६९॥
तस्स उत्तरपुब्बेन मुचलिन्दो नाम सो सरो,
पुण्डरीकेहि सञ्छन्नो सेतसोगान्धियेहि च॥२७०॥
सो वन मेघसकास धुव हरितसद्दल,
सोहोवामिसपेक्खीव वनसण्ड विगाहिय,
पुप्फरुक्खेहि सच्छन्न फलरुक्खेहि चूभय ॥२७१॥
तत्थ बिन्दुस्सरा वग्गु नाना वण्णा बहु दिजा,
कुज्जन्तमुपकुज्जन्ति उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥२७२॥
गन्त्वा गिरिविदुग्गान नदीन पभवानि च,
सो दक्खसि पोक्खरणिं करञ्जककुधायुत॥२७३॥
पुथुलोममच्छाकिण्ण सुपतित्थ महोदिक,
समञ्च चतुरस्सञ्च साधुं अप्पटिगन्धिय ॥२७४॥
तस्सा उत्तरपुब्बेन पण्णसाल अमापय,
पण्णसाल अमापेत्व उञ्छाचरियाय ईहथ ॥२७५॥

[अच्छा, जैसा हम जानते है वैसा हम तुझे बताते हैं कि ध्यानावस्थित, अग्निहोत्री राजर्षि कहाँ रहते हैं ? ॥२६२॥ महाराज ! यहाँ गन्धमादन पर्वत है, जहाँ आप पुत्रो तथा भार्य्या सहित रहेगे ॥२६३॥ उन्होने रोते हुए अश्रु-पूर्ण नेत्रो से उसे कहा—महाराज ! यहाँ से सीधे उत्तर-मुख जायें ॥२६४॥ वहाँ तेरा भला हो, तू नाना वृक्षो से आकीर्ण, शीतल छाया वाले, मनोरम पर्वत को देखेगा ॥२६५॥ तेरा भला हो, उससे आगे तू केतुमति नाम की नदी देखेगा—जो गहरी है और जो गिरि मे से निकलती है ॥२६६॥ वहाँ बहुत रोमो वाली मछलियो से आकीर्ण, सुतीर्थ, बहुत जल वाली नदी पा स्नान कर तथा पानी पीकर बच्चो को आश्वस्त करना ॥२६७॥ वहाँ तेरा भला हो, तू सुन्दर शिखर पर उत्पन्न मनोरम शीतल छाया वाले निग्रोध (वृक्ष) को देखेगा जिसमे मधुर फल लगे होगे ॥२६८॥ तब, तेरा भला हो, तू नाना पक्षियो से आकीर्ण नालिक नाम पर्वत देखेगा, जहाँ किन्नरो का वास है ॥२६९॥ उसके उत्तर-पूर्व मुचलिन्द नाम का तालाब है जहाँ श्वेत-सुगन्धित कँमल खिले हैं ॥२७०॥ वहाँ बादलो के समान निरन्तर नील-वर्ण रखने वाला वन है, जो फूल और फल के वृक्षो से लदा है। आप शिकार खोजने वाले सिंह की तरह उस वन मे जाये ॥२७१॥ वहाँ नाना प्रकार के बहुत से मधुर-स्वर

वाले पक्षी हैं। वे ऋतु अनुकूल पुष्पित वनो पर बैठकर कुजन तथा प्रति-कुजन करते हैं ।।२७२।। वहाँ से गिरि दुर्गों तथा नदी-नालो को पारकर करञ्ज तथा ककुध युक्त पुष्करिणी को देखेगा ।।२७३।। वहाँ बहुत लोमवाली मछलियाँ है, बढिया (स्नान) तीर्थ हैं, बहुत जल है, बराबर है, चतुष्कोण है, स्वादु है, खराब गन्ध नही है ।।२७४।। उसके उत्तर-पूर्व पर्णशाला बनाये और वहाँ फल-फूल चुगकर खाते हुए जीवन यापन करे ।।२७५।।]

तब उन राजाओ ने उसे पन्द्रह योजन का मार्ग बताकर बिदा किया। वेस्सन्तर को मार्ग मे कोई बाधा न हो और किसी शत्रु को अवसर न मिल जाय सोच एक चतुर सुशिक्षित आदमी को वन के दरवाजे पर पहरेदार बनाकर बिठा दिया और उसे आज्ञा दी कि तू आने जाने वालो पर नजर रखना। इसके बाद वे अपने घर चले गये। स्त्री-पुत्र सहित वेस्सन्तर भी गन्ध मादन पर्वत पहुचा। उस दिन वह वही रहा। तब बडे पर्वत की छाया मे उत्तराभिमुख चल केतुमती नदी के किनारे बैठ वनचर (मनुष्य) का दिया हुआ मास खाया। उसे सोने की सुई दी। फिर नहा कर, (पानी) पीकर, थकावट उतारी और नदी पार कर सान पर्वत के शिखरपर स्थित निग्रोध की छाया मे कुछ देर बैठा और उसके फल खाये। वहाँ से उठकर चल देने पर नालिक नाम के पर्वत पर पहुँचा। उसे छोड मुचलिन्द तालाब के किनारे किनारे पूर्वोत्तर कोने पर पग-डण्डी से जा घोर वन मे पहुँचा। उसे भी पारकर गिरि-दुर्ग-नदी-नालो से आगे उस चौकोर पुष्करिणी पर पहुँचा।

उस समय देवराजा शक्र ने ध्यान लगाया तो उसे पता लगा कि बोधिसत्व ने हिमालय मे प्रवेश किया है। उसे निवास-स्थान चाहिए। उसने विश्वकर्मा को बुलाकर भेजा—"तात! तू जा वङ्क पर्वत के अन्दर रमणीय स्थान पर आश्रम बनाकर आ।" उसने वहाँ पहुँचा दो पर्णशालाये बनवाई। रात्रि और दिन के लिए दो चन्क्रमण-भूमियाँ बनवाईं। उनके सिरो पर नाना प्रकार के पुष्प-वृक्ष तथा कदली-वन लगवाये। फिर प्रव्रजितो की सभी आवश्यकताओ की व्यवस्था कर वहाँ यह अक्षर लिखवा दिये कि जो प्रव्रजित होना चाहे, वे इन्हें लेलें। तब अमनुष्यो, भयानक-शब्दो, जगली जानवरो तथा पक्षियो को दूर हटा वह अपने निवास-स्थान को लौट आया।

बोधिसत्व ने भी जब पगडण्डी देखी तो समझा कि यह प्रव्रजितो के रहने की जगह होगी। उसने माद्री तथा अपने दोनो पुत्रो को आश्रम के सीमा-द्वार पर

खड़ा किया और स्वय आश्रम मे प्रविष्ट हुआ। जब अक्षर देखे तो समझ गया कि शक्र ने हमे देख लिया है। उसने पर्णशाला-द्वार खोल अन्दर प्रवेश किया और खड्ग तथा धनुष छोड, कपडे उतार, ऋषियो का वेष पहन लिया। फिर हाथ मे लाठी ले, पर्णशाला से निकला और चन्क्रमण-भूमि पर चढ इधर-उधर चन्क्रमण किया। उसके बाद प्रत्येक बुद्ध सदृश शान्त-भाव से स्त्री-बच्चो के पास पहुँचा।

माद्री बोधिसत्व के चरणो पर गिरी ओर रोई। फिर उसी के साथ आश्रम की सीमा मे प्रवेश कर, अपनी पर्णशाला मे जा तपस्वी-वेष पहना। बाद मे पुत्रो को भी तपस्वी-कुमार बना दिया। चारो क्षत्रिय वडक पर्वत मे रहने लग गये। तब माद्री ने बोधिसत्व से वरदान मागा--"--देव! आप फल-मूल के लिए न जाकर यही रहें। मै फल-मूल लाऊँगी।" इसके बाद से वह जगल से फल-मूल लाकर तीनो जनो को पोसने लगी। बोधिसत्व ने भी वरदान मागा--"माद्री! अब हम प्रव्रजित हो गये हैं। स्त्री ब्रह्मचर्य्य मे बाधक है। अब से तू असमय मेरे पास न आना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। बोधिसत्व की मैत्री के प्रताप से चारो ओर तीन योजन तक के सभी जानवर भी परस्पर मैत्री-चित्त हो गये।

माद्री देवी भी प्रात काल ही उठ, खाने-पीने की चीज उपस्थित कर, मुँह धोने का जल तथा दातुन लाती और फिर आश्रम मे झाडू दे, दोनो पुत्रो को पिता के पास छोड, टोकरी खति और काटा हाथ मे ले जगल जाती। वहाँ से फूल-मूल ले, टोकरी भर, शाम को लौटती और फल-फूल को पर्णशाला मे रख स्वय स्नान करती तथा पुत्रो को भी स्नान कराती। तब चारो क्षत्रिय पर्णशाला के द्वार पर बैठ फल-मूल खाते। तब माद्री दोनो पुत्रो को ले अपनी पर्णशाला चली जाती। इस प्रकार वे सात महीने तक उसी पर्वत में रहे।

वन-प्रवेश काण्ड समाप्त

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र मे दुन्निविट्ठ ग्राम मे रहने वाला जूजक नाम का एक ब्राह्मण था। उसने भीख मागकर सौ कार्षापण इकट्ठे किये। उन्हें एक ब्राह्मण-परिवार के पास रखकर वह और धन खोजने के लिये गया। उसके आने में विलम्ब हुआ तो वह धन खर्च हो गया। जब उसने लौटकर मागा तो कार्षापण न दे सकने के कारण उन्होने अपनी अमित्रतापन नामक लडकी उसे दे दी। वह उसे कालिङ्ग

राष्ट्र मे दुन्निविट्ठ गाव मे ले गया और वही रहने लगा। अमित्रतापन अच्छी तरह ब्राह्मण की सेवा करती। तब दूसरे तरुण-ब्राह्मण उसके गुणो की ओर देख अपनी अपनी भार्य्याओ को ताडते। कहते—"यह बूढे ब्राह्मण की सेवा करती है। तुम हमारी ओर से क्यो लापरवाही करती हो?" उन्होने सोचा, 'इस अमित्रतापन को इस गाँव से भगायेंगे।' इसलिये नदी तीर्थ आदि पर इकट्ठी हो वे उसकी हँसी उडाने लगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अहुवासी कलिंगेसु पूजको नाम ब्राह्मणो,
तस्सासि दहरा भरिया नामेनामित्ततापना ॥२७६॥

ता न तत्थ गतावोचु नदीउदकहारिका,
थियो त परिभासिसु समागन्त्वा कुतूहला ॥२७७॥

अमित्ता नूंन ते माता अमित्तो नून ते पिता,
ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय सति॥२७८॥

अहित वत ते ञाती मन्तयिसु रहोगता,
ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय सति ॥२७९॥

दुक्कर वत ते ञाती मन्तभिसु रहोगता,
ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय सति ॥२८०॥

पापक वत ते ञाती मन्तयिसु रहोगता,
ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय सति ॥२८१॥

अमनाप वत ते ञाती मन्तयिसु रहोगता,
ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय सति ॥२८२॥

अमनाप वासं वससि एव दहरिया सती,
या त्व वससि जिण्णस्स मत ते जीविता वर ॥२८३॥

न हि नून तुम्ह कल्याणि पिता माता च सोभने,
अञ्ज भत्तार विन्दिसु ये त जिण्णस्स पादसु
एव दहरिय सति ॥२८४॥

दुप्पिटठ ते नवमिय अकत अग्गिहुत्तक,

ये त जिण्णस्स पादसु एव दहरिय संति ॥२८५॥
समणे ब्राह्मणे नून ब्रह्मचरियपरायणे
सा त्व लोके अभिसपि सीलवन्ते बहुस्सुते,
या त्व वससि जिण्णस्स एव दहरिया सती ॥२८६॥
न दुक्ख अहिना दट्ठ न दुक्ख सत्तिया हत
तञ्च दुक्खञ्च तिप्पञ्च य पस्से जिण्णक पति ॥२८७॥
नत्थि खिड्डा नत्थि रति जिण्णेन पतिना सह,
नत्थि अल्लापसल्लापो जग्घितम्पि न सोभति ॥२८८॥
यदा दहरो दहरा च मन्तयन्ति रहोगता,
सब्बेस सोका नस्सन्ति ये केचि हदयनिस्सिता ॥२८९॥
दहरा त्व रूपवती पुरिसान अभिपत्थिता,
गच्छ ञाति कुले अच्छ कि जिण्णो रमयिस्सति ॥२९०॥

[कलिङ्ग राष्ट्र मे पूजक नाम का ब्राह्मण था । उसकी अमित्रतापन नाम की भार्य्या थी ॥२७६॥ नदी जल लाने वाली स्त्रियाँ वहाँ जाने पर (जैसे) कुतूहल से उसका मजाक उडाती थी ॥२७७॥ निश्चय से तेरे माता और पिता तेरे शत्रु है, जिन्होने इस तरुण अवस्था मे तुझे एक बूढे को सौप दिया है ॥२७८॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारो ने एकान्त मे तेरे विरुद्ध मन्त्रणा की है, जिन्होने इस तरुण अवस्था मे तुझे एक बूढे को सौंप दिया है ॥२७९॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारो ने एकान्त मे बडी दुष्कर मन्त्रणा की है, जिन्होने दिया है ॥२८०॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारो ने बडी बुरी मन्त्रणा की है, जिन्होने दिया है ॥२८१॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारो ने बडी प्रतिकूल मन्त्रणा की है दिया है ॥२८२॥ इस तरुणाई मे जो तू बूढे के साथ रहती है यह तो प्रतिकूल वास है। ऐसे रहने से तो मरना अच्छा है ॥२८३॥ हे कल्याणी ! हे सुन्दरी ! तेरे माता पिता ने तेरे लिये दूसरा पति नही ही खोजा ! इस तरुणाई मे तुझे बूढे को सौंप दिया है ॥२८४॥ तेरा नौमी का यज्ञ ठीक नही हुआ होगा । तूने अग्नि-होत्र भी ठीक नही किया होगा । इस तरुणाई मे तुझे बूढे को सौप दिया गया ॥२८५॥ तूने ब्रह्मचारी, सदाचारी, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो को बुरा-भला कहा है इसीमे तुझे इस तरुणाई मे बूढे के

साथ रहना पड रहा है ।।२८-।। सर्प का काटना इतना दुखदायी नही, शक्ति से मारा जाना इतना दुखदायी नही, जितना तीव्र दुख बूढे पति के साथ रहना है।।२८७।। बूढे पति के साथ न क्रीडा होती है, न रति होती है, न बातचीत होती है और उसका हँसना भी अच्छा नही लगता ।।२८८।। जब तरुण और तरुणी एकान्त मे बातचीत करते है तो उनके हृदय के सभी शोक नष्ट हो जाते है ।।२८९।। तू तरुण है, रूपवान है, तुझे आदमी चाहते है। जा अपने पिता के घर जाकर रह। यह बूढा क्या रमण करेगा ? ।।२९०।।]

जब उन्होने उसका मजाक उडाया तो वह पानी का घडा ले रोती हुई घर पहुँची। ब्राह्मण ने पूछा—'आप क्यो रोती है ?" उसने उसे बताते हुए यह गाथा कही—

न ते ब्राह्मण गच्छामि नदिं उदकहारिया,
थियो म परि भासन्ति तया जिण्णेन ब्राह्मण ।।२९१।।

[ब्राह्मण ! मै अब तेरे लिये नदी पर पानी लेने न जाऊँगी। तेरे बूढेपन की बात कहकर स्त्रिया मेरा मजाक उडाती है ।।२९१।।]

पूजक बोला—

मामेत्व अकरा कम्म मा मे उदकमाहरि,
अह उदकमाहिस्स मा भोति कुपिता अहू ।।२९२।।

[तू मेरा काम मत किया कर। तू पानी मत लाया कर। मै पानी ले आऊँगा। देवी ! कुपित न हो ।।२९२।।]

ब्राह्मणी बोली—

नाह तम्हि कुले जाता य त्व उदकमाहरे,
एव ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामह घरे ।।२९३।।
सचे मे दास दासिं वा नानयिस्ससि ब्राह्मण,
एव ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामि सन्तिके ।।२९४।।

[मै ऐसे कुल मे पैदा नही हूँ कि तू पानी लाये। हे ब्राह्मण ! तू यह जान ले कि मै तेरे घर मे नही रहूँगी ।।२९३।। हे ब्राह्मण ! यदि तू मेरे लिये दास या दासी

नहीं लायेगा, तो हे ब्राह्मण ! तू यह जान ले कि मैं तेरे घर में नहीं रहूँगी ॥२९४॥]

पूजक बोला—

नत्थि मे सिप्पट्ठान वा धन धञ्ञ व ब्राह्मणी,
कुतोह दास दासि वा आनयिस्सामि भोतिया,
अह भोति उपट्ठिस्स मा भोति कुपिता अहू ॥२९५॥

[हे ब्राह्मणी ! मेरा कोई कारखाना नहीं, धन नहीं, धान्य नहीं। देवी ! मैं दास या दासी कहाँ से लाऊँ ? देवी ! क्रुद्ध मत हो। मैं देवीकी सेवा करूँगा ॥२९५॥]

ब्राह्मणी बोली—

एहि ते अहमक्खिस्स यथा मे वचन सुत,
एस वेस्सन्तरो राजा वङ्के वसति पब्बते ॥२९६॥
त त्व गन्त्वान याचस्सु दास दासिञ्च ब्राह्मण,
सो ते दस्सति याचितो दास दासिञ्च खत्तियो ॥२७९॥

[यहाँ आ, जैसा मैंने सुना है, वैसा मैं कहती हूँ। यह वेस्सन्तर राजा वङ्क पर्वत में रहता है। ब्राह्मण ! तू जाकर उससे दास और दासी की याचना कर। वह क्षत्रिय मागने पर तुझे 'दास' और 'दासी' देगा ॥२९६-२९७॥]

पूजक बोला—

जिण्णोहमस्मि अबलो दीघोवद्धा सुदुग्गमो,
मा भोति परिदेवेसि मा च त्व विमना अहू,
अहं भोति उपट्ठिस्स मा भोति कुपिता अहू ॥२९८

[मैं बूढा हूँ। दुर्बल हूँ। मार्ग लम्बा है और कठिन है। देवी ! मत रो पीट और मन खराब मत कर। देवी ! क्रुद्ध मत हो। मैं तेरी सेवा करूँगा ॥२९८॥]

ब्राह्मणी बोली—

यथा अगन्त्वा सगाम अयुद्धोव पराजितो,
एवमेव तुव ब्रह्मे अगन्त्वाव पराजितो ॥२९९॥
सचे मे दास दासिं वा नानयिस्ससि ब्राह्मण

एव ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामह घरे,
अमनाप ते कीरस्सामि त ते दुक्ख भविस्सति ॥३००॥
नक्खत्ते उतुपब्बेसु यदा म दक्खसि लकत,
अञ्ञेहि सद्धि रममान त ते दुक्ख भविस्सति ॥३०१॥
अदस्सनेन मह्य ते जिण्णस्स परिदेवतो,
भीय्यो वका च पलिता बहू हेस्सन्ति ब्राह्मण ॥३०२॥

[जैसे कोई बिना सग्राम मे गये, बिना लडे ही पराजित हो जाय, उसी प्रकार हे ब्राह्मण! तू बिना सग्राम मे गये ही पराजित हो गया। हे ब्राह्मण! यदि तू मेरे लिये 'दास' 'दासी' नही लायेगा तो हे ब्राह्मण! तू यह बात जान ले कि मै तेरे घर नही रहूँगी। मै तुझे अच्छी न लगने वाली बात करूगी, जिससे तुझे दु ख होगा ॥२९९-३००॥ नक्षत्र-उत्सव मे या पर्व-उत्सव मे जब तू मुझे अलकृत को किसी दूसरे के साथ रमण करते देखेगा तो तुझे दु ख होगा ॥३०१॥ हे ब्राह्मण! जब तू मुझे न देख पायेगा और रोयेगा तो तेरे बदन पर और झुरियाँ पड जायेगी तथा बाल भी और सफेद हो जायेगे ॥३०२॥]

यह सुन ब्राह्मण डर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो ब्राह्मणो भीतो ब्राह्मणिया वसानुगो,
अट्टितो कामरागेन ब्राह्मणि एतदब्रवी ॥३०३॥
पाथेय्य मे करोहि त्व सकुल्या सगुळानिच,
मधुपिण्डिका च सुकतायो सत्तु भत्तञ्च ब्राह्मणी ॥३०४॥
आनयिस्स मेथुनके उभो दासकुमारके,
ते त परिचरिस्सन्ति रत्तिन्दिवमतन्दिता ॥३०५॥

[तब वह ब्राह्मण डर गया। ब्राह्मणी के वशीभूत हुए उस ब्राह्मण ने कामुकता से पीडित हो उस ब्राह्मणी से कहा—तू मेरे लिये गुड के पुओ सहित सकुलि का पाथेय तैयार कर। हे ब्राह्मणी! अच्छी तरह तैयार किये गये लड्डू हो और सत्तु-भोजन हो ॥३०३-३०४॥ मै दोनो दास-कुमारो की जोडी लेकर आऊगा, जो रात दिन अप्रमाद-पूर्वक तेरी सेवा करेगे ॥३०५॥]

उसने जल्दी से पाथेय तैयार कर ब्राह्मण को सूचना दी। उसने घर में मरम्मत की जगह मरम्मत की और दरवाजे को मजबूत बनाया। फिर जगल से लकडी ला और घडे में पानी ला सभी बरतन भर दिये। फिर वही तपस्वी का भेष बना उसे ताकीद की—"भद्रे! अब से असमय बाहर मत निकलना। मेरे आने तक अप्रमादी रहना।" इसके बाद जूते पहन और पाथेय की थैली कँधे पर लटका, अमित्रतापन की प्रदक्षिणा कर, आखो मे आसु भरकर चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> इद वत्वा ब्रह्मबन्धु पटिमुञ्चि उपहना,
> ततो सो मन्तयित्वान भरिय कत्वा पदक्खिण ॥३०६॥
>
> पक्कामि सो रुण्णमुखो ब्राह्मणो सहितब्बतो,
> सिवीन नगर फीत दासपरियेसन चर ॥३०७॥

[उस ब्राह्मण-बन्धु ने यह कहा और जूते पहने। तब भार्य्या के साथ बातचीत कर और उसकी प्रदक्षिणा कर तपस्वी के भेष मे वह ब्राह्मण घर से रोता रोता निकला। वह दास की खोज में सिवियो के स्मृद्ध नगर की ओर चला ॥३०७॥]

उसने उस नगर में पहुच इकट्ठे हुए जनो से पूछा—"वेस्सन्तर कहाँ है?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> सो तत्थ गन्त्वा अवच ये तत्थासु समागता,
> कुहिं वेस्सन्तरो राजा कत्थ पस्सेमु खत्तिय ॥३०८॥
>
> सो जनो त अवचासि ये तत्थासु समागता,
> तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
> पब्बाजितो सका रट्ठ वके वसति पब्बते ॥३०९॥
>
> तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
> आदाय पुत्तदारञ्च वके वसति पब्बते ॥३१०॥

[जो लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे, वहाँ पहुँचकर उसने पूछा—"वेस्सन्तर राजा कहाँ है? हम उस क्षत्रिय को कहाँ देखें? ॥३०८॥ जो लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे, उन्होने उसे उत्तर दिया—"हे ब्राह्मणो! तुम से तग आकर, अति-दान के कारण

उसे देश-निकाला मिला है। अब वह वङ्क पर्वत पर रहता है ॥३०९॥ हे ब्राह्मण! तुम से तंग आकर, स्त्री-पुत्र को लेकर वह क्षत्रिय वङ्क पर्वत पर रहता है ॥३१०॥]

'इस प्रकार हमारे राजा का नाशकर, यह फिर चला आया है, जरा ठहर' कह लोगो ने ढेले और डण्डे हाथ में ले उसका पीछा किया। देवताओ के वशीभूत हो उसने वंक पर्वत का ही रास्ता ग्रहण किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सो चोदितो ब्राह्मणिया ब्राह्मणो कामगिद्धिमा,
अघ त पतिसेवित्थ वने वाळमिगाकिण्णे
खग्गदीपिनिसेविते ॥३११॥
आदाय वेलुव दण्ड अग्गिहुत्त कमण्डलुं,
सो पाविसि ब्रह्मरञ्ज यत्थ अस्सोसि कामद ॥३१२॥
त पविठ्ठ ब्रहारञ्ञ कोका न परिवारयुं,
विक्कन्दि सो विप्पनट्ठो दूरे पन्था अपक्कमि ॥३१३॥
ततो सो ब्राह्मणो गन्त्वा भोगलुद्धो असञ्ञतो,
वकस्सोहरणे नट्ठो इमा गाथा अभासथ ॥३१४॥

[ब्राह्मणी से प्रताडित कामुक-ब्राह्मण ने जँगली गेंडे, चीतें आदि जगली जानवरो के निवास-स्थान जगल मे प्रवेश कर दु ख प्राप्त किया। उसने बेल का डण्डा, सरवा तथा कमण्डल लिया और जिस जगह उसने कामनाओ की पूर्ति करने वाले वेस्सन्तर की बात सुनी थी, उस बडे जगल मे प्रवेश किया। जब वह उस बडे जगल में घुसा तो उसे कुत्तो ने घेर लिया। वह मार्ग-भ्रष्ट होकर चिल्लाया और रास्ते से दूर चला गया। तब वह भोग-लोभी, दुराचारी ब्राह्मण वङ्क-पर्वत के मार्ग से पथ-भ्रष्ट हो ये गाथायें कहने लगा ॥३१४॥]

को राजपुत्त निसभ जयन्त अपराजित
भये खेमस्स दातार को मे वेस्सन्तर विदू ॥३१५॥
यो याचत पतिट्ठासि भूतान धरणीरिव,
धरणूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३१६॥

यो याचत गती आसि सवन्तीनव सागरो,
उदधूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३१७॥

कल्याणतित्थ सुचिम सीतुदक मनोरम
पुण्डरीकेहि सञ्छन्न युत्त किञ्जक्खरेणुना,
रहदूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३१८॥

अस्सत्थ व पथे जात सीतच्छाय मनोरम
सन्तान विस्समेतार किलन्तान पतिग्गह,
तथूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३१९॥

निग्रोध व पथे जात सीतच्छाय मनोरम,
सन्तान विस्समेतार किलन्तान पटिग्गह,
तथूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३२०॥

अम्ब इव पथे जात सीतच्छाय मनोरम,
सन्तान विस्समेतार किलन्तान पटिग्गह,
तथूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३२१॥

साल इव पथे जात सीतच्छाय मनोरम,
सन्तान विस्समेतार किलन्तान पटिग्गह,
तथूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३२२॥

द्रुम इव पथ जात सीतच्छाय मनोरम,
सन्तान विस्समेतार किलन्तान पटिग्गह,
तथूपम महाराज को मे वेस्सन्तर विदू ॥३२३॥

एवञ्च मे विलपता पविट्ठस्स ब्रहावने,
अह जानन्ति या वज्जा नन्दि सो जनये मम ॥३२४॥

एवञ्च में विलपतो पविट्ठस्स ब्रहावने,
अह जानन्ति यो वज्जा ताय सो एकवाचाय,
पसवे पुञ्ञ अनप्पक ॥३२५॥

[कौन है जो मुझे उस राजपुत्र वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो श्रेष्ठ है, जो विजयी है, जो अपराजित है तथा जो भय-भीत को निर्भय करने वाला है ॥३१' ॥

कौन ह जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो याचको का वैसा ही प्रतिष्ठा-स्थान है जैसे पृथ्वी सभी प्राणियो का और जो पृथ्वी के समान है ॥३१६॥ कौन है जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो याचको की उसी प्रकार प्रतिष्ठा है जैसे सागर नदियो की ओर जो सागर के समान है ॥३१७॥ कौन है जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो कल्याण-तीर्थ, पवित्र शीतल जल वाले, मनोरम, कमलो से आच्छन्न, कमलो की रेणु युक्त तालाब के समान है ॥३१८॥ कौन ह जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो रास्ते में उत्पन्न अश्वत्थ वृक्ष की तरह निग्रोधवृक्ष की तरह आम्र वृक्ष की तरह शाल वृक्ष की तरह वृक्ष की तरह शीतल छाया वाले है, मनोरम है, श्रान्तो को विश्राम देने वाले है, क्लान्तो को आश्रय देने वाले है ॥३१९- ३२३॥ इस प्रकार इस घोर जगल में प्रवेश कर विलाप करते हुए मुझको जो यह कहेगा कि मै जानता हूँ, वह मुझे अत्यन्त आनन्द देगा ॥३२४॥ इस प्रकार इस घोर जगल मे प्रवेश कर विलाप करते हुए मुझको जो यह कहगा कि मै जानता हूँ वह इस एक वचन से बहुत पुण्य कमायेगा ॥३२५॥]

उसका विलाप सुना तो पहरे पर नियुक्त चेतिय-पुरुष ने, जो मृग का शिकारी बना हुआ जगल मे घूम रहा था, सोचा—'यह ब्राह्मण ! वेस्सन्तर का निवास-स्थान जानने के लिए विलाप कर रहा है। यह किसी धार्मिक बात के लिए नही आया है। यह माद्री अथवा बच्चे मागेगा। इसे यही मार डालता हूँ।' उसने उसके पास जा, धनुष खेंच उसे डराया—'ब्राह्मण ! तुझे जीता न रहने दूंगा।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स चेतो पटिस्सोसि अरञ्ञे लुद्दको चर,
तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
पब्बाजितो सका रट्ठा वके वसति पब्बते ॥३२६॥

तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
आदाय पुत्तदारञ्च वके वसति पब्बते ॥३२७॥

अकिच्चकारी दुम्मेधो रट्ठा विवनमागतो,
राजपुत्त गवेसन्तो बको मच्छमिवोदके ॥३२८॥

तस्स त्याह न दस्सामि जीवित इघ ब्राह्मण,
अय हि ते मया नुन्नो करो पास्सति लोहित ॥३२९॥
सिरो ते वज्झयित्वान हृदय छेत्वा सवन्धन,
पन्थ सकुण यजिस्सामि तुय्ह मसेन ब्राह्मण ॥३३०॥
तुय्ह मसेन मेदेन मत्थकेन च ब्राह्मण,
आहुर्ति पग्गहेस्सामि छेत्वान हृदय तव ॥३३१॥
त मे सुयिट्ठ सुहुत तुय्ह मसेन ब्राह्मण,
न च त्व राजपुत्तस्स भरिय पुत्तेच नेस्ससि ॥३३२॥

[जगल में घूमने वाले शिकारी ने उसे यह प्रत्युत्तर दिया—'हे ब्राह्मण ! तुम से तग आकर, अति-दान के कारण उसे देश-निकाला मिला है। अब वह वड्क-पर्वत पर रहता है ॥३२६॥ हे ब्राह्मण ! तुम से तग आकर, स्त्री-पुत्र को लेकर वह क्षत्रिय वड्क-पर्वत पर रहता है ॥३२७॥ तू अहित-करने वाला है, तू मूर्ख है। तू राजपुत्र को खोजते खोजते राष्ट्र से यहा जगल मे आया है, जैसे जल में मछली ॥३२८॥ हे ब्राह्मण ! मैं तुझे जीवित न रहने दूंगा। यह मेरे द्वारा खीचा हुआ तीर तेरा रक्त-पान करेगा ॥३२९॥ तेरा सिर काट कर और तेरा हृदय पृथक करके हे ब्राह्मण ! मै पथ-शकुन नाम का यज्ञ करुगा ॥३३०॥ हे ब्राम्हण ! तेरे मास, चर्बी और मस्तक से तथा तेरा हृदय काटकर मै आहुति दूंगा ॥३३१॥ हे ब्राह्मण ! तेरे मास से मेरा यज्ञ अच्छी तरह होगा। और तू राज-पुत्र की भार्य्या तथा बच्चो को भी न ले जा सकेगा ॥३३२॥]

उसने उसका कहना सुन, मृत्यु से भयभीत हो, झूठ बोलते हुए कहा—

अवज्झो ब्राह्मणो दूतो चेतपुत्त सुणोहिमे,
तस्मा दूत न हनन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥३३३॥
निज्झता सिवयो सब्बे पिता न दट्ठुमिच्छति,
माता चदुब्बला तस्स अचिरा चक्खूनि जीयरे ॥३३४॥
तेसाह पहितो दूतो चेतपुत्त सुणोहि मे,
राजपुत्र नयिस्सामि यदि जानासि सस मे ॥३३५॥

[हे चेति-पुत्र। सुन। ब्राह्मण-दूत अवध्य होता है। इसलिए दूत को नही मारते है। यही पुराना नियम है। सभी सिवी शान्त हो गये हैं। पिता उसे देखना चाहता है। उसकी माता दुर्बल हो गई है। शीघ्र ही उसकी आखे जाती रहेंगी। हे चेति-पुत्र! मेरी बात सुन। मै उनका भेजा हुआ दूत हूँ। यदि उनका पता मालूम हो, तो मुझे बता॥३३२-३३५]

तब चेति-पुत्र यह समझ कि यह वेस्सन्तर को लेने आया है, प्रसन्न हुआ। उसने कुत्तो को बाँध, ब्राह्मण को पेड से उतार शाखाओ के बीच विठा यह गाथा कही—

पियस्स मे पियो दूतो पुण्णपत्त ददामि ते,
इमञ्च मधुनो तुम्ब मिगसत्थिञ्च ब्राह्मण,
तञ्च ते देसमक्खिस्स यत्थ सम्मति कामदो ॥३३६॥

[तू मेरे प्यारे का प्रिय-दूत है। मै तुझे भरा पात्र देता हूँ। यह मधु का भरा हुआ तुम्बा है और यह मृग की जाघ है। और मै तुझे वह देश भी बताता हूँ जहाँ कामनाओ की पूर्ति करने वाला रहता है ॥३३६॥]

पूजक-काण्ड समाप्त

चेतिय-पुत्र ने ब्राह्मण को भोजन कराया और रास्ते के लिये उसे कमण्डलु भरा शहद तथा पकी हुई मृग की जाघ दी और रास्ते पर खडे हो दाहिना हाथ उठा बोधिसत्व का निवास-स्थान बताते हुए कहा—

एस सेलो महाब्रह्मे पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥३३७॥
धारेन्तो ब्राह्मण वण्ण आसदञ्चमस जट,
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति ॥३३८॥
एते नीला पदिस्सन्ति नानाफलधरा दुमा,
उग्गता अब्भकूट व नीला अञ्जनपब्बता ॥३३९॥
धवस्स कण्णा खदिरा साला फन्दनमालुवा,
सम्मवेधन्ति वातेन सकिं पीता व माणवा ॥३४०॥
उपरि दुमपरियायेसु सगीतियोव सूयरे,
नज्जूहा कोकिलसघा सम्पतन्ति दुमा दुम ॥३४१॥

अव्हयन्तेव गच्छन्त सारवापण्णसमेरिता,
रमयन्तेव आगन्तुं मोदयन्ति निवासिन,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तोहि सम्मति ॥३४२॥
धारेन्तो ब्राह्मण वण्ण आसदञ्च मस जट,
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति ॥३४३॥

[हे महाब्राह्मण! यह गन्धमादन पर्वत है, जहाँ पुत्रो सहित राजा वेस्सन्तर वास करता है ॥३३७॥ श्रेष्ठ वेष मे अकुश, आहुति डालने का सरुआ, तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोता है और अग्नि की पूजा करता है ॥३३८॥ ये नील-वर्ण, आकाश-शिखर के समान, अञ्जन पर्वत पर उगे हुए फलदार वृक्ष दिखाई देते हैं ॥३३९॥ पहली बार मदिरा पिये तरुण की भान्ति धव, अश्व-कर्ण, खदिर, शाल, फन्दन तथा मालुव के पेड हवा से हिल रहे हैं ॥३४०॥ पेडो की ऊपरी शाखाओ पर सगीत सुनाई देता है। नज्जूह तथा कोकिल एक पेड से दूसरे पेड पर कूदते है ॥३४१॥ शाखाओ के हिलने वाले पत्ते जाने वालो को बुलाते (प्रतीत होते) है, आने वालो का दिल बहलाते है और रहने वालो को सुख देते है। वही पुत्रो सहित राजा वेस्सन्तर निवास करता है ॥३४२॥ श्रेष्ठ-वेष में अकुश, आहुति, डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है ॥३४३॥]

इससे आगे भी आश्रम-भूमि की प्रशसा करता हुआ कहने लगा—

अम्बा कपित्था पनसा साला जम्बु विभीतका,
हरीतका आमलका अस्सत्था खदरानि च ॥३४४॥
चारू तिम्बरुक्खाचेत्थ निग्रोधा च कपित्थना,
मधु मधुका थेवन्ति नीचे पक्काचुदुम्बरा ॥३४५॥
पोक्खता भवेय्या च मुद्दिका च मधुत्थिका,
मधुं अनेलक तत्थ सकमादाय भुञ्जरे ॥३४६॥
अञ्ञेत्थ पुप्फिता अम्बा अञ्ञे तिट्ठन्ति दोविला,
अञ्ञे आमा च पक्का च भेकवण्णा तदूभय ॥३४७॥
अथेत्थ हेट्ठा पुरिसो अम्बपक्कानि गण्हति,

आमानि चेव पक्कानि वण्णगन्धरसुत्तमे ॥३४८॥

अतेव मे अच्छरियं हिंकारो पटिभाति मं,
देवानमिव आवासो सो भति नन्दनूपमो ॥३४९॥

विभेदिका नाळिकेरा खज्जुरीन ब्रहावने,
मालाव गन्थिता ठन्ति धजग्गानेव दिस्सरे,
नानावण्णेहि पुप्फेहि नभं ताराचितामिव ॥३५०॥

कुटजी कुट्ठतगरी पाटलियो च पुप्फिता,
पुन्नागा गिरिपुन्नागा कोविळारा च पुप्फिता ॥३५१॥

उद्दालका सोमरुक्खा अगरुभल्लियो व हू,
पुत्तजीवा च ककुधा असनाचेत्थ पुप्फिता ॥३५२॥

कुटजा सल्ला नीपा कोसम्ब लबुजा धवा,
साला च पुप्फिता तत्थ पलाल खल सन्निभा ॥३५३॥

तस्साविदूरे पोक्खरणी भूमिभागे मनोरमे,
पदुमुप्पलसञ्छन्ना देवानमिव नन्दने ॥३५४॥

अथेत्थ पुप्फरसमत्ता कोकिला मञ्जुभाणिका,
अभिनादेन्ति पवनं उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥३५५॥

भस्सन्ति मकरन्देहि पोक्खरे पोक्खरे मधु,
अथेत्थ वाता वायन्ति दक्खिणा अथ पच्छिमा,
पदुम किञ्जक्खरेणूहि ओकिण्णो होति अस्समो ॥३५६॥

थूला सिंघाटका चेत्थ ससादिया पसादिया,
मच्छकच्छप ब्याविद्धा बहूचेत्थमुपयानका,
मधुंभिसेहि सवति खीर सप्पिमुळालिहि ॥३५७॥

सुरभि तं वनं वाति नानागन्धसमेरितं,
सम्मद्दतेव गन्धेन पुप्फसारवाहि तं वनं,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ॥३५८॥

अथेत्थ सुकणा सन्ति नानावण्णा बहूदिजा,
मोदन्ति सहभरियाहि अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो ॥३५९॥

नन्दिका जीव पुत्ता च जीवपुत्ता पियाचनो,
पिया पुत्र । पिया नन्दा दिजा पोक्खरणीवरा ॥३६०॥

मालाव गन्थिता ठन्ति धजग्गानेव दिस्सरे,
नानावण्णेहि पुप्फेहि कुसलेहेव सुगन्धिका,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥३६१॥

धारेन्तो ब्राह्मण वण्ण आसदञ्च मसञ्जट,
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति ॥३६२॥

[आम, कैथ, कटहल, शाल, जामुन, विभीतक, हर्रे, आवला, अश्वत्थ तथा खैर के पेड ॥३४४॥ सुन्दर तिम्ब-वृक्ष, न्यग्रोध, कैथ, महुआ, और नीचे पके गूलर शोभा देते है ॥३४५॥ मधु चाहने वाले पारेवत भवेय्य (फल ?), अगूर तथा शुद्ध मधु स्वय लेकर खाते है । कुछ आमो पर बौर आ गया है, कुछ मे गुठली पड गई है। कुछ कच्चे है और कुछ पके है—दोनो का वर्ण मेण्ढक के वर्ण के समान है ॥३४६-३४७॥ वहाँ नीचे खडा हुआ आदमी ही पके आम तोड सकता है—कच्चे और पके आम, वर्ण तथा रस मे श्रेष्ठ ॥३४८॥ मुझे आश्चर्य होता है। यह निवास-स्थान देवताओ के नन्दन-वन की तरह सुशोभित है ॥३४९॥ ताड, नारियल और खजूरो के घोर जगल मे इन फलो की मालायें सी गुथी हुई हैं । ये अलकृत ध्वजाओ के समान प्रतीत होते हैं। नाना वर्ण के पुष्प आकाश के तारागणो के समान सुशोभित है ॥३५०॥ कुटजी, कुट्ठ, तगरी तथा पाटलि पुष्पित है। पुन्नाग, गिरि-पुन्नाग और कोविळार पुष्पित है ॥३५१॥ उद्दालक, सोम-वृक्ष, अगरू, बहुत से भल्लिय, पुत्रजीव, ककुध तथा असन पुष्पित है ॥३५२॥ कुटज, सलळ, नीप, कोसम्ब, लबुज, धव और शाल इतने पुष्पित थे कि उनका नीचे पडा हुआ ढेर पराल के खलिहान के समान था ॥३५३॥ उससे थोडी ही दूर पर मनोरम प्रदेश मे पुष्करिणी थी, जो कमलो से ढकी थी और देवताओ के नन्दन-वन की पुष्पकरिणी के समान थी ॥३५४॥ वहाँ पुष्पो के रस से मस्त, मधुर-भाषिणी कोयल है, जो ऋतु के अनुसार पुष्पित वृक्षो पर बैठ वन को निनादित कर देती है ॥३५५॥ पद्मनी के पत्तो पर मकरन्द झरता है। दक्षिण तथा पश्चिम से हवा चलती है। पद्म की रेणु से आश्रम ढका हुआ है ॥३५६॥ वहाँ बडे बडे सिघाडे है, स्वय उत्पन्न धान गिर

कर मच्छ-कच्छप युक्त पानी मे वहे जाते दिखाई देते है । यहाँ बहुत से कर्कट है। भिसो से मधु चूता है और मृणालो से दूध ।।३५७।। इस वन मे नाना प्रकार की सुगन्धित हवा चलती है । पुष्पशाखाओ से यह वन लोगो को मस्त बना देता है। पुष्प-गन्ध के कारण चारो ओर भ्रमर गूँजते हैं ।।३५८।। यहाँ नाना वर्णों के पक्षी हैं। वे परस्पर चहचहाते हुए अपनी भार्य्याओ के साथ आनन्द मनाते है।।३५९।। यहाँ पुष्करिणी पर नन्दिका, जीव-पुत्र, जीव-पुत्र-प्रिय, पिय-पुत्र तथा प्रियानन्दा नाम के पक्षी हैं।।।३६०।। नाना वर्णों के पुष्प ऐसे लगते हैं जैसे कुशाल लोगो ने मालाये गूँथी हो और वे ध्वजाओ के समान सुशोभित है । यहाँ पुत्रो सहित वेस्सन्तर राजा रहता है।।३६१।। श्रेष्ठ वेश अकुश, आहुति डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म विछाकर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है।।३६२।।]

इस प्रकार जव चेतिपुत्र ने वेस्सन्तर के निवास-स्थान का पता दे दिया तो पूजक ने प्रसन्न हो कुशल-क्षेम की वात करते हुए यह गाथा कही—

इदञ्च मे सत्तुभत्त मधुना पटिसयुत,
मधुपिण्डिका च सुकतायो सत्तुभत्त ददामिते ।।३६३।।

[यह मेरे पास मधु-मिश्रित सत्तु-भोजन है और अच्छी तरह बने लड्डू हैं। मैं तुझे यह सत्तु-भोजन देता हूँ ।।३६३।।]

यह सुन चेति-पुत्र ने कहा—

तुय्हेव सम्बल होतु नाह इच्छामि सम्बलं,
इतोपि ब्रह्मे गण्हाहि गच्छ ब्रह्मे यथासुखं ।।३६४।।
अय एकपदी एति उजुं गच्छति अस्सम,
इसीपि अच्चुतो तत्थ पकदन्तो रजस्सिरो,
धारेन्तो ब्राह्मण वण्ण आसदञ्च मसञ्जट ।।३६५।।
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति,
त त्व गन्त्वान पुच्छस्सु सो ते मग्ग पवक्खति ।।३६६।।

[यह 'पाथेय' तेरा ही रहे। मै 'पाथेय' नही चाहता। हे ब्राह्मण ! यहाँ से भी 'पाथेय' ले जा और सुखपूर्वक जा ।।३६४।। यह पगडण्डी सीधी आश्रम जाती

है। वहाँ एक ऋपी भी रहता है, जिमके दान्त मैले है और सिर मे धूल है। उसका श्रेष्ठ वेप है, और वह अकुश, आहुति डालने का मराव तथा जटायें धारण किये है। वह चर्म बिछाकर पृथ्वी पर सोता है। उसे जाकर तू पूछना। वह तुझे मार्ग बतायेगा ॥३६५-३६६॥]

इद सुत्वा ब्रह्मबन्धु चेत कत्वा पदक्खिण,
उदग्गचित्तो पक्कामि येनासि अच्चुतो इसि ॥३६७॥

[यह बात सुन, ब्रह्म-बन्धु ने चेति-पुत्र की प्रदक्षिणा की और प्रसन्न चित्त हो जहाँ अच्चुत ऋपि था वहाँ गया ॥३६७॥]

उपवन वर्णन समाप्त

गच्छन्तो भारद्वाजो सो अद्दस अच्चुत इसिं,
दिस्वान त भारद्वाजो सम्मोदि इसिना सह ॥३६८॥
कच्चिन्नु भोतो कुसल कच्चि भोतो अनामय,
कच्चि उञ्छेन यापेसि कच्चि मूलफला बहू ॥३६९॥
कच्चि डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंस ा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥३७०॥

[उस भारद्वाज (पूजक) ने जाते हुए अच्चुत-ऋपी को देखा। उसे देख भारद्वाज ने ऋपी के साथ कुशल-वार्ता की। आप सकुशल तो है? आप निरोग तो है?, क्या फल-मूल चुगकर ही जीवन-यापन करते है? क्या फल-मूल बहुत है? क्या डक मारने वाले जानवर, मच्छर तथा रेंगने वाले कीडे थोडे ही है? क्या जगली जानवरो के वन मे हिंसा नही होती? ॥३६८-३७०॥]

तपस्वी बोला—

कुसलञ्चेव मे ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामय,
अथो उञ्छेन यापेमि अथो मूलफला बहू ॥३७१॥
अथो डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा मय्ह न विज्जति ॥३७२॥
बहूनि वस्सपूगानि अस्समे वसतो मम,
नाभिजानामि उप्पन्न आबाध अमनोरम ॥३७३॥

स्वागत ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागत,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥३७४॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वर वर ॥३७५॥
इदम्पि पाणीय सीत आभत गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचे त्व अभिकङ्खसि ॥३७६॥

[हे ब्राह्मण ! मै सकुशल हूँ। हे ब्राह्मण ! मै निरोग हूँ। मै फल-मूल चुगकर जीवन यापन करता हूँ। फल-मूल भी बहुत है ॥३७१॥ डक मारने वाले, मच्छर तथा रेगने वाले जानवर भी अधिक नही है। वन मे जगली जानवर है किन्तु मुझे कष्ट नही होता ॥३७२॥ मुझे आश्रम मे रहते बहुत से वर्ष हो गये। मुझे कभी कोई बुरी बीमारी नही हुई ॥३७३॥ महाब्राह्मण ! तेरा स्वागत है। महाब्राह्मण ! तेरा आना शुभ है। तेरा भला हो। तू अन्दर प्रवेश कर और अपने पाँव धो ॥३७४॥ तिन्दुक, पियाल, मीठे कासुमारिय तथा दूसरे अच्छे-अच्छे, छोटे-बडे फल खा ॥३७५॥ यह गिरि-गह्वर से लाया हुआ शीतल पानी है। हे महाब्रह्मे ! यदि इच्छा हो तो पी ॥३७६॥]

पूजक बोला—

पटिग्गहीत य दिन्न सब्बस्स अग्घिय कत
सञ्जयस्स सक पुत्तं सिवीहि विप्पवासित,
तमह दस्सनमागतो यदि जानासि सस मे ॥३७७॥

[जो कुछ मुझे दिया, वह मैने स्वीकार किया। यह सब अमूल्य है। सञ्जय के अपने पुत्र को सिवि-वासियो ने देश-निकाला दे दिया है। मै उसे देखने आया हूँ। यदि जानता हो तो मुझे बता ॥३७७॥]

तपस्वी बोला—

न भव एति पुञ्ञत्थ सिविराजस्स दस्सन,
मञ्ञे भव पत्थयति रञ्ञो भरिय पतिब्बत ॥३७८॥
मञ्ञे कण्हाजिन दासिं जालिं दासञ्च इच्छसि,
अथवा तयो मातापुत्ते अरञ्ञो नेतुमागतो,
न तस्स भोगा विज्जन्ति धन धञ्ञञ्चब्राह्मण ॥३७९॥

[आपका सिविराज को देखने आना शुभ-सकल्प नही मालूम देता। मालूम होता है कि आप राजा की पतिव्रता भार्य्या को चाहते है ॥३७८॥ मालूम होता है कि आप कृष्णाजिना को दासी रूप मे और जालि को दास रूप मे चाहते है। अथवा हो सकता है कि तीनो माता-पुत्रो को जगल से लेने आये हो। हे ब्राह्मण! उसके पास अब धन-धान्य रूपी भोग-पदार्थ नही है ॥३७९॥]

यह सुन पूजक बोला—

अकुद्धरूपाहं भोता नाहं याचितुमागतो,
साधु दस्सनमरियान सन्निवासो सदा सुखो ॥३८०॥
अदिट्ठपुब्बो सिविराजा सिवीहि विप्पवासितो,
तमहं दस्सनमागतो यदि जानासि संस मे ॥३८१॥

[आप मुझ पर क्रोध न करे। मै याचना करने नही आया हूँ। आर्यो का दर्शन अच्छा है और उनकी सगति सुखदायक है। जब से सिवियो ने उसे देश से निकाला है, तब से मैने सिविराज को नही देखा है। मै उसे देखने के लिये आया हूँ। यदि जानता है तो मुझे बता ॥३८०-३८१॥]

उसने उसका विश्वास कर कहा—'अच्छा, तुझे बताता हूँ। आज तू यही रह। उसे फल-मूल से सतर्पित कर अगले दिन हाथ उठाकर मार्ग दिखाते हुए कहा—

एस सेलो महाब्रह्मे पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥३८२॥

॥३९१॥

[यहाँ पृष्ठ (५७८-५७९) पर आई स० ३४० से स० ३४६ तक की गाथाओ की पुनरावृत्ति है। अर्थ पृष्ठ (५७९) पर ही देखे ॥३८२-३९१॥]

करेरिमाला वितता भूमिभागे मनोरमे,
सद्दलाहरिता भूमि न तत्थुद्धसते रजो ॥३९२॥
मयूर गीव सकासा तूलफस्ससमूपमा,
तिणानि नातिवत्तन्ति समन्ता चतुरगुला ॥३९३॥
अम्बा जम्बूकपित्था च नीचे पक्काचुदुम्बरा,

परिभोगेहि रुक्खेहि वन त रतिवड्ढन ॥३९४॥
वेळुरियवण्णूपनिम मच्छगुम्बनिसेवित,
सुचि सुगन्ध सलिल आपो तत्थपि सदति ॥३९५॥
तस्साविदूरे पोक्खरणी भूमिभागे मनोरमे,
पदुमुप्पलसञ्छन्ना देवानमिव नन्दने ॥३९६॥
तीणि उप्पलजातानि तस्मि सरसि ब्राह्मण,
विचित्र नीलानेकानि सेतलोहितकानि च ॥३९७॥

[सुन्दर भूमि पर करेरी-पुष्पो की माला फैली थी । सतत हरित वर्ण पृथ्वी पर धूल नही उड रही थी ॥३९२॥ मोर की गर्दन के समान, रूई जैसे कोमल तिनके चारो ओर चार अङ्गु ल से अधिक नही बढते थे ॥३९३॥ आम, जामुन, कैथ तथा नीचे पके गूलर आदि फल-दार वृक्षो से वह वन सुशोभित था ॥३९४॥ बिल्लौर के रग के मच्छो के समूह से युक्त, पवित्र, सुगन्धित जल वाली नदी वहाँ बहती है ॥३९५॥ उसके पास ही रमणीय भूमिभाग मे पुष्करिणी है जो देवताओ के नन्दन वन के पद्मो से ढकी है ॥३९६॥ हे ब्राह्मण! उस पुष्करिणी मे तीन प्रकार के उत्पल है—कुछ नीले है, कुछ सफेद है तथा कुछ लाल है ॥३९७॥]

इस प्रकार चतुष्कोण पुष्करिणी की शोभा का वर्णन कर अब मुचलिन्द तालाब का वर्णन करते हुए कहा—

खोमा च तत्थ पदुमा सेतसोगन्धिकेहि च,
कलम्बकेहि सञ्छन्नो मुचलिन्दो नाम सो सरो ॥३९८॥
अपेत्थ पदुमा फुल्ला अपरियन्ताव दिस्सरे,
गिम्हा हेमन्तिका फुल्ला जण्णुतग्घा उपत्थरा ॥३९९॥
सुरभि सम्पवायन्ति विचित्रा पुप्फसन्थता,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ॥४००॥

[मुचलिन्द नाम का वह तालाब खोम सदृश पद्मो से तथा श्वेत-सुगन्धित कलम्बको से आच्छन्न था ॥३९८॥ यहाँ पुष्पित-पद्मो की कही कोई सीमा नही दिखाई देती—ग्रीष्मकाल तथा हेमन्त-काल में पुष्पित होने वाले पुष्प पानी में जाँघ तक ऊँचे खडे है ॥३९९॥ नाना प्रकार के फूलो की सुगन्धी से सुगन्धित

वायु चलती है और पुष्पो की सुगन्धी से आकर्षित होकर फूल चारो ओर गूजते हैं ।।४००।।]

अथेत्थ उदकन्तस्मि रुक्खा तिट्ठन्ति ब्राह्मण,
कदम्बा पाटली फुल्ला कोविळारा च पुप्फिता ।।४०१।।
अकोला कच्चिकारा च पारिजञ्ञा च पुप्फिता,
वारणसायना रुक्खा मुचलिन्दमभितो सर ।।४०२।।
सिरीसा सतपारीसा साधु वायन्ति पद्मका
निग्गुण्डी सिरिनिग्गुण्डी असनाचेत्थ पुप्फिता ।।४०३।।
पगुरा वकुला साला सोमञ्जना च पुप्फिता,
केतका कणिकारा च कणवेरा च पुप्फिता ।।४०४।।
अञ्जुना अञ्जुकण्णा च महानामा च पुप्फिता,
सम्पुप्फितग्गा तिट्ठन्ति पज्जलन्तेव किंसुका ।।४०५।।
सेतपण्णी सत्तपण्णा कदलीयो कुसुम्भरा,
धनुतक्कारी पुप्फेहि सिंसपावरणेहि च ।।४०६।।
अच्छिवा सबला रुक्खा सल्लकियो च पुप्फिता,
सेतगेरुच तगरा मसिकुट्ठा कुलावरा ।।४०७।।
दहरा च रुक्खा वुद्धा च अकुटिला चेत्थ पुप्फिता,
अस्सम उभतो ठन्ति अग्यागार समन्ततो ।।४०८।।

[हे ब्राह्मण! वहाँ सरोवर के तट पर वृक्ष खडे है—कदम्ब, पाटली तथा कोविलार। सभी सुपुष्पित हैं ।।४०१।। मुचलिन्द सरोवर के चारो ओर अकोल, कच्चिकार, पारिजञ्ञ और पुष्पित वारणसायक वृक्ष थे ।।४०२।। सिरीस, श्वेत-पारिस तथा पद्मक अच्छी तरह सुगन्ध देते हैं। निग्गुण्डी सिरिनिग्गुण्डी तथा असन वहाँ पुष्पित हैं ।।४०३।। पङ्गुर, वकुल, शाल और पुष्पित सोमञ्जन। केतक, कणिकार और पुष्पित कणवेर ।।४०४।। अर्जुन, अर्जुन-कर्ण और पुष्पित महानाम किंसुक इस प्रकार पुष्पित खडे हैं, मानो प्रज्वलित हो ।।४०५।। श्वेत पर्णी, सप्त-पर्णी, कदली तथा कुसुम्भर वृक्ष हैं जो धनुतक्कारी पुष्पो से तथा सरसो की चादर से ढके थे ।।४०६।। अच्छिव, सबल तथा सुपुष्पित सल्लकी। श्वेतगेरू, तगर, मसि,

कुट्ठ तथा कुलावर वृक्ष ।।४०७।। छोटे, बडे, सीधे तथा पुष्पित पेड अग्नि-आगार को चारो ओर से घेर आश्रम के दोनो ओर खडे है ।।४०८।।]

अथेत्थ उदकन्तस्मि बहुजातो फणिज्जको,
मुग्गतियो कटतियो सेवालसिसक बहु ।।४०९।।
उद्दापवन्त उल्लुळित मक्खिका हिंगुजालका,
दासीमकचकोचेत्थ बहू नीचेकलम्बका ।।४१०।।
फलम्बरकसञ्छन्ना रुक्खा तिट्ठन्ति ब्राह्मण,
सत्ताह धारियमानान गन्धो तेस न विज्जति ।।४११।।
उभतो सर मुचलिन्द पुप्फा तिट्ठन्ति सोभना,
इन्दीवरेहि सञ्छन्न वनन्तमुपसोभित ।।४१२।।
अद्धमास धारियमानान गन्धो तेस न छिज्जति,
नीलपुप्फिसेतवारी पुप्फिता गिरिकण्णिका,
कटेरुकेहि सञ्छन्न वनन्त तुलसीहि च ।।४१३।।
सम्मद्दतेव गन्धेन पुप्फसाखाहि त वन,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ।।४१४।।
तीणि कक्कारुजातानि तस्मि सरसि ब्राह्मण,
कुम्भमत्तानि चेकानि मुरजमत्तानि ता उभो ।।४१५।।

[वहाँ पानी के तट पर बहुत से कणिज्जक, मूग, मास शैवाल तथा लाल चदन है ।।४०९।। वहाँ पानी हिल्लोरे भरता है। हिङ्गुजालक पौदो पर मधुमक्खियां गुञ्जार करती घूमती है। दासी तथा मकचक थे और बहुत से नीचकलम्बक थे। ।।४१०।। हे ब्राह्मण ! एलम्बक नाम की लताओ से पेड ढके हुए है। उनके पुष्पो की गन्ध सप्ताह भर तक रहती है। मुचलिन्द सरोवर के दोनो ओर सुन्दर पुष्प है। वन के सिरे पर इन्दीवर शोभा दे रहे है। उनके पुष्पो की गन्ध आध महीने तक नही जाती। नीलपुष्पी, श्वेतवारी तथा गिरिकर्णिका से सुशोभित है। कटेरुक तथा तुलसी वृक्ष से वन आच्छादित है ।।४११-४१३।। पुष्पो वाली शाखाओ के पुष्पो की सुगन्धी से वह वन मस्त है पुष्पो की गन्ध से भौंरे चारो ओर गुजार कर रहे है ।।४१४।।] ब्राह्मण ! उस

तालाव में तीन कक्कारु-फल हैं—एक घडे जितने वडे और दो मृदङ्ग जितने वडे ॥४१५॥]

अथेत्थ सासपो वहुको नादियो हरितायुतो,
असी तालाव तिट्ठन्ति छेज्जा इन्दीवरा वहू ॥४१६॥
अप्फोटा सुरियवल्लीच काळिया मधुगन्धिया,
असोका मुदयन्ती च वल्लिभो खुद्दपुप्फियो ॥४१७॥
कोरण्डका अनोजाच पुप्फिता नागवल्लिका,
रुक्खमारुय्ह तिट्ठन्ति फुल्ला किंसुकवल्लियो ॥४१८॥
कटेरुहा च वासन्ती यूथिका मधुगन्धियो,
नीलिया सुमना भण्डी सोभति पदुमुत्तरो ॥४१९॥
पाटली समुद्दकप्पासी कणिकारा च पुप्फिता,
हेमजाला च दिस्सन्ति रुचिरा अग्गिसिखूपमा ॥४२०॥
यानि कानि च पुप्फानि थलजानुदकानि च,
सब्बानि तत्थ दिस्सन्ति एव रम्मो महोदधी ॥४२१॥

[वहाँ सरसो वहुत है, हरा आयुत तथा नादिय (लहसुन) वहुत है, असी (वृक्ष) ताड वृक्ष के समान खडे हैं तथा इन्दीवर काटने योग्य है ॥४१६॥ वहाँ अप्फोट (लता) है, सूरियवल्ली है, काळिया है, मधुगन्धिया है, अशोक है, मुदयन्ती है, वल्लिभो है और खुदपुप्फियो है ॥४१७॥ कोरण्डक और अनोज नाग-लतायें पुष्पित हैं, फूली हुई किंसुक लतायें वृक्षो पर चढी हुई है ॥४१८॥ कटेरुह, वासन्ती तथा जूही मधु के समान गन्ध वाले पुष्प-वृक्ष हैं। नीलिया सुमना लता, भण्डी और पदुमुत्तर वृक्ष सुशोभित है ॥४१९॥ पाटली, समुद्र कप्पासी और कणिकार पुष्पित हैं। ये स्वर्ण-जाल के समान सुन्दर और अग्नि-शिखा के समान दिखाई देते हैं। ॥४२०॥ जितने भी स्थल अथवा जल मे उत्पन्न होने वाले पुष्प है, वे सभी वहा दिखाई देते हैं। मुचलिन्द सरोवर ऐसा रमणीय है ॥४२१॥]

अथस्सा पोक्खरणिया पहूता वारिगोचरा,
रोहिता नळपी सिङ्कुम्भीला मकरा सुसू ॥४२२॥
मधु च मधुलट्ठी च तालीसा च पियगुका,

उन्नका भद्दमुत्ता च सपुप्फा च लोलुपा ॥४२३॥
सुरभी च रुक्खा तगरा पहूता तुङ्गवण्टका,
पद्मका नरदा कुट्ठा झामका च हरेणुका ॥४२४॥
हलिद्दका गन्धसिला हिरिवेरा च गुग्गुला,
विभेदिका, चोरका कुट्ठा कप्पूरा च कलिंगुच ॥४२५॥

[इस पुष्करिणी में जल के जीव बहुत हैं—रोहित, नलपी, सिङ्गु, मगर-मच्छ, मकर तथा सोस (?) ॥४२२॥ मधु, मलहरी, तालीस, प्रियङ्ग (=राई), उन्नक, भद्रमुस्त, शत-पुष्प तथा लोलुप (पौदे) हैं ॥४२३॥ वहा सुगन्धित वृक्ष हैं—तगर, तुङ्गवटक, पद्मक, नरद, कुट्ठ, झामक तथा हरेणुक ॥४२४॥ हलदी, गन्धशिला, हिरिवेट, गुग्गल, विभेदिक, चोरक, कुट्ठ, कपूर तथा कलिङ्ग हैं ॥४२५॥]

अथेत्थ सीहव्यग्घा च पुरिसालू च हत्थियो,
एणेय्य पसदा चेव रोहिच्चा सरभा मिगा ॥४२६॥
कोट्ठसुणा सुलोपी च तुलिया नळसन्निभा,
चमरी चलनी लङ्घी झापिता मक्करा पिचु ॥४२७॥
कक्कटा कतमाया च इक्का गोणसिरा बहू,
खग्गा वराहा नकुला कालकेरत्थ बहूतसो ॥४२८॥
महिसा सोणा सिगाला च पम्पका च समन्ततो,
आकुच्चा पचलाका च चित्रका चापि दीपियो ॥४२९॥
पेलका च विघासादा सीहा कोकनिसातका,
अट्ठपादा च मोरा च भस्सरा च कुकुत्थका ॥४३०॥
चकोटा कुक्कुटा नागा अञ्ञमञ्ञ पकूजिनो,
बका बलाका नज्जूहा दिन्दिभा कुञ्जवादिका ॥४३१॥
ब्यग्घीनसा लोहपिट्ठा पम्पका जीवजीवका,
कपिञ्जरा तित्तिरायो कुलावा पटिकुत्तका ॥४३२॥
मन्दालका चेतकेदु भण्डुतित्तिरनामका,
चेलावका पिंगुलायो गोधका अगहेतुका ॥४३३॥

करविया च सग्गा च उहुकारा च कुक्कुहा,
नानादिजगणाकिण्ण नानासरनिकुज्जित ॥४३४॥

[वहाँ शीघ्र-व्याघ्र है, पुरिमालू-यक्षणिया है, हाथी है, एणेय्य चितकवरे मृग है और रोहित तथा शरभ मृग है। गीदड है, कुत्ते है, सुलोपी (मृग) है, तुलिय (बिल्ले) है, नल पुष्प के से वर्ण के वन्दर है, चमरी, चलनी तथा लङ्घी वात-मृग है, झापित, मर्कट और पिचू (वन्दर) है ॥४२६-४२७॥ कर्कट तथा कतमाया (मृग), भालु और बहुत से वन-वृषभ है। गेडे है, सूअर है, मगर-मच्छ है और बहुत से काल-मृग है ॥४२८॥ भैसे है, वन्दर है, गीदड है और चारो ओर पम्पक (?) है। गोह है, गजकुम्भ मृग है, चित्रक है तथा दीपि मृग है। खरगोश है, विघा-साद (पक्षी) है, सिंह है, कोक (भेडिये) को खाने वाले जानवर है, शरभ मृग है, मोर है, हस है तथा ककुत्य (पक्षी) है ॥४२९-४३०॥) चकोर है, मुर्गे है, परस्पर चिघाडने वाले नाग है, वगुले है, सारस है, नज्जुहा (पक्षी) है, दिन्दिया (पक्षी) हैं तथा कुज्जवादिक (पक्षी) है ॥४३१-॥ बाज है, लोहित पृष्ठ (पक्षी) है, पम्पक (पक्षी) है, जीव जीवक है, कपिंजर है, तीतर है, कुलाव तथा पटिकुत्तक है ॥४३२॥ पद्दाल है, चेतकेदु है, भण्डु है, तीतर है, चेलावक है, पिङ्गल है, गोधक है तथा अङ्ग हेतुक है ॥४३३॥ कोयल है, चातक है, उल्लु है और कुक्कु है। इस प्रकार नाना तरह के पक्षियो से आकीर्ण तथा नाना प्रकार के स्वरो से गुञ्जारित है ॥४३४॥]

अथेत्थ सकुणा सन्ति नीलका मञ्जुभाणका,
मोदन्ति सहभरि याहि अञ्ञमञ्ञा पकुजिनो ॥४३५॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति विजा मञ्जुस्सरा सिता,
सेतच्छकूटा भद्रक्खा अण्डजा चित्रपेक्खुणा ॥४३६॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति विजा मञ्जुस्सरा सिता,
सिखण्डिनीलगीवाहि अञ्ञमञ्ञा पकुजिनो ॥४३७॥
ककुत्थका कुलीरका कोट्ठापोक्खरसातका
काळामेय्या बलीयक्खा कदम्बा सुवसाळिका ॥४३८॥
हलिद्दा लोहिता सेता अथेत्था नळका बहू,

वारणा हिंगुराजा च कदम्बा सुवकोकिला ॥४३९॥
उक्कुसा कुररा हंसा आटा परिवदन्तिका,
पाकहंसा अतिबला नज्जुहा जीवजीवका ॥४४०॥
पारेवता रविहंसा चक्कवाका नदीचरा,
वारणाभिरुदा रम्मा उभो कालूपकूजिनो ॥४४१॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति नानावण्णा बहू दिजा,
मोदन्ति सह भरियाहि अञ्ञमञ्ञ पकूजिनो ॥४४२॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति नानावण्णा बहू दिजा,
सब्बे मञ्जूनि कूजन्ति मुचलिन्दमभितो सर ॥४४३॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति करवी नाम ते दिजा,
मोदन्ति सह भरियाहि अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो ॥४४४॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति करवी नाम ते दिजा,
सब्बे मञ्जूनि कूजन्ति मुचलिन्दमभितो सर ॥४४५॥
एणेय्यपसदाकिण्णं नाम संसेवितं वन,
नानालताहि सञ्छन्न कदलीमिगसेवित ॥४४६॥
अथेत्थ सासपो बहुको नीवारो वरको बहु,
साली अकट्ठपाको च उच्छुतत्थ अनप्पको ॥४४७॥
अय एकपदी एति उजुं गच्छति अस्सम,
खुद पिपास अरति तत्थ पत्तो न विन्दति,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥४४८॥
धारेन्तो ब्राह्मण वण्ण आसदञ्च मसजट,
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति ॥४४९॥

[यहाँ मधुर-बोली वाले नीले पक्षी है। वे अपनी भार्य्याओ के साथ परस्पर कूजते हैं ॥४३५॥ यहाँ निरन्तर मधुर-बोली बोलने वाले पक्षी है जिनकी आँखो के गोलक तथा आँखे सुन्दर है, जो अण्डज है और जिनके विचित्र पर है ॥४३६॥ यहाँ निरन्तर मधुर-बोली बोलने वाले पक्षी है, जिनके सिर पर कलगी है, जिनकी गरदन नीली है और जो परस्पर कूजते हैं ॥४३७॥ ककुत्थक है, मुर्गे है, कोट्ठ है,

पोक्खर हैं और सातक हैं, काळामेय्य हैं, वलीयक्ष हैं और कदम्ब (वृक्ष) पर बैठने वाले तोतें मैना हैं ।।४३८।। वहाँ बहुत से पीले, लाल और श्वेत रग के मरकण्डे हैं, वारण, हिङ्गुराज तथा कदम्ब पर रहने वाले तोते तथा कोयल हैं ।।४३९।। कुररी हैं, कुररा हैं, चम्मच-चोचे हैं, परिवदन्तिका है, पाक-हस है, अति-बल (पक्षी) हैं, नज्जुहा है तथा जीव जीवक है ।।४४०।। कबूतर हैं, रवि-हस है, नदीचर चक्रवाक हैं, सुन्दर स्वर वाले वारण (पक्षी) हैं, जो दोनो समय गूजते हैं ।।४४१।। इस प्रकार नाना तरह के बहुत से पक्षी हैं जो अपनी भार्य्याओ के साथ परस्पर कूजते हैं ।।४४२।। इस प्रकार नाना तरह के बहुत से पक्षी हैं जो मुचलिन्द तालाब के चारो ओर सुन्दर कुजन करते हैं ।।४४३।। यहाँ कोयल पक्षी हैं जो अपनी भार्य्याओ के साथ परस्पर कुजन करते हुए आलन्द मनाते हैं ।।४४४।। यहाँ कोयल पक्षी हैं जो मुचलिन्द सरोवर के चारो ओर सुन्दर कुजन करते हैं ।।४४५।। एणि तथा पसद मृगो से आकीर्ण, नागो से सेवित है, नाना प्रकार की लताओ से ढका हुआ है और कदली मृग से सेवित है ।।४४६।। वहाँ सरसो बहुत है, नीवार तथा वरक बहुत है, साली है, अकट्ठपाक है, और वहाँ ऊख बहुत है ।।४४७।। यह जो पगडण्डी आती है, वह सीधी आश्रम जाती है, वहाँ पहुचने वाले को क्षुधा, पिपासा और असन्तोष नही रहता और सन्तान सहित वेसन्तर राजा वही रहता है ।।४४८।। श्रेष्ठ वेष में अकुश, आहुति डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछा कर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है ।।४४९।।]

इद सुत्वा ब्रह्मबन्धु इसिं कत्वा पदक्खिणं,
(वे)स्सन्तरो उदग्गथ (वे)यचतोतमिक्किप अहू ।।४५०।।

[यह सुना तो उस ब्राह्मण ने ऋषी की प्रदक्षिणा की और प्रसन्न होकर वहाँ गया जहाँ वेस्सन्तर राजा था ।।४५०।।]

महावन वर्णन समाप्त

पूजक भी अच्चुत तपस्वी के बताये मार्ग से गया और चोकोर पुष्करिणी पर पहुँच सोचने लगा—आज बहुत शाम हो गई । अब म द्री जगल से लौट आयेगी । स्त्रिया दान देने मे बाधा उपस्थित करने वाली होती है । कल जिस समय वह जगल में गई होगी, उस समय मैं आश्रम पहुँच वेस्सन्तर से बच्चो की याचना कर,

उसके आने से पहले उन्हे लेकर चला जाऊँगा। वह समीप के ही एक सानु-पर्वत पर चढ आराम की जगह लेट रहा।

उस रात ब्राह्म-मुहूर्त मे माद्री ने स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था—एक आदमी है। काला रग है। दो काषाय वस्त्र पहने है। दोनो कानो मे लाल मालाए धारण किये, हाथो मे शस्त्र लिये डराता हुआ आया है और पर्णशाला मे प्रवेश कर माद्री को जटा से पकड, खीचकर भूमि पर पट गिरा दिया है। वह रोती रही है। उसकी दोनो आँखे निकाल, दोनो हाथ काट, छाती चीर, रक्त चूते हृदय-माँस को लेकर चला गया है। वह जाग गई तो उसे डर लगा। उसने सोचा कि मैंने बुरा स्वप्न देखा है। स्वप्न का अर्थ लगाने वाला मेरे वेस्सन्तर के समान कोई नही है। मै उसे जाकर पूछूँगी। उसने पर्णशाला जा बोधिसत्व का पर्णशाला-द्वार खटखटाया। बोधिसत्व ने पूछा—"कौन है?" "देव! मै माद्री हूँ।" "भद्रे। हमने परस्पर जो तय किया था, उसका उल्लघन कर असमय क्यो आई है?" "देव! काम राग के कारण नही आई हूँ। मैंने बुरा स्वप्न देखा है।" "माद्री! तो सुना।" उसने जैसा देखा था वैसा कह सुनाया। बोधिसत्व ने स्वप्न का विचार किया तो समझ लिया कि मेरी दान-पारमिता की पूर्ति होने जा रही है। कल याचक आकर मुझ से मेरी सन्तान माँगेगा। उसने माद्री को सान्तवना देकर विदा करने के लिए कहा—"माद्री! तेरे दुशयन अथवा दुर्भोजन के कारण चित्त चचल हो गया होगा। डर मत।" रात बीतने पर उसने अपने सभी कृत्य समाप्त कर, दोनो पुत्रो को गोद मे ले उनका चुम्बन लिया—'आज मैंने बुरा स्वप्न देखा। तात! अप्रमादी होकर रहना।' फिर बोधिसत्व को दोनो बच्चे सौप और दोनो के बारे मे सावधान रहने के लिये कह, टोकरी आदि ले, आँसू पोछती हुई, फल-मूल लेने के लिये जगल गई।

पूजक भी यह समझ कि अब माद्री जगल गई होगी, सानु-पर्वत से उतरा और पग-डण्डी के रास्ते आश्रम की ओर आया। बोधिसत्व भी पर्णशाला के बाहर पत्थर की पटडी पर स्वर्ण-प्रतिमा की तरह बैठकर प्यासे शराबी की तरह उसकी प्रतीक्षा करने लगे कि अब माँगने वाला आयेगा। उसके बच्चे भी पैरो के पास खेल रहे थे। उसने रास्ता देखते हुए ब्राह्मण को आते देखा। उसने सात महीने से उठा-कर रखी हुई दान-धुरी को पुन उठाते हुए की तरह प्रसन्नता पूर्वक 'ब्राह्मण! तू आ' कहते हुए जालिया कुमार को सबोधित कर यह गाथा कही—

उट्ठेहि जालि पतिट्ठ पोराण विय दिस्सति,
ब्राह्मण विय पस्सामि नन्दियो माभिकीररे ॥४५१॥

[जालि उठकर प्रतिष्ठित हो। पूर्व जैसा ही दिखाई देता है। ब्राह्मण जैसा देखता हूँ। मेरे मन मे आनन्द हिलोरे ले रहा है ॥४५१॥]

यह सुन कुमार ने कहा—

अहम्पि तात पस्सामि यो सो ब्रहाव दिस्सति,
अत्थिको विय आयाति अतिथि नो भविस्सति ॥४५२॥

[तात! वह जो ब्राह्मण जैसा आता है, मुझे भी दिखाई देता है। वह याचक की तरह चला आ रहा है। वह हमारा अतिथि होगा ॥४५२॥]

यह कह कुमार उसका सत्कार करने के लिये आसन से उठा और ब्राह्मण की अगवानी कर उसका सामान लेना चाहा। ब्राह्मण ने उसे देखते ही सोचा—यह वेस्सन्तर का पुत्र जालीय कुमार होगा। उसने आरम्भ से ही कठोर वचन बोलने का निश्चय कर ताली बजाई—'दूर हो।' कुमार ने दूर हटकर सोचा—'क्या कारण है। यह ब्राह्मण अति कठोर है।' उसने उसके शरीर की ओर ध्यान दिया, तो उसे आदमी के अट्ठारह दोष दिखाई दिये। ब्राह्मण ने भी बोधिसत्व के पास जा कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

कच्चिन्नु भोतो कुसल कच्चि भोतो अनामय,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू ॥४५३॥
कच्चि डसा च मकसा त अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥४५४॥

[देखें गाथा सख्या ३७२ तथा ३७३॥]

बोधिसत्व ने भी उससे कुशल-क्षेम की बातचीत करते हुए कहा—

कुसलञ्चेव नो ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामय,
अथो उञ्छेन यापेम अथो मूल फला बहू ॥४५५॥
अथो डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा अम्ह न विज्जति ॥४५६॥

[देखें गाथा सख्या ३७४ तथा ३७५॥]

सत्त नो मासे वसत अरञ्जे जीवसोकिन,
इमम्पि पठम पस्साम ब्राह्मण देववण्णिन,
आदाय बेळुव दण्ड अग्गिहुत्त कमण्डलु ॥४५७॥

[जगल में विना किसी के रहते सात महीने हो गये। यह देव-ब्राह्मण का प्रथम ही दर्शन है—विल्व का डण्डा अग्नि-होम तथा कमण्डल लिये हुए ॥४५७॥]

स्वागत ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागत,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥४५८॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वर वर ॥४५९॥
इदाम्पि पानीय सीत आभत गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचे त्व अभिकङ्खसि ॥४६०॥

[देखे गाथा सख्या ३७७, ३७८ तथा ३७९॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—'यह ब्राह्मण इस घोर-जगल मे व्यर्थ नही आया होगा। बिना विलम्ब किये म इसमे आने का कारण पूछूंगा।' उसने यह गाथा कही—

अथत्व केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
अनुप्पत्तो ब्रहारञ्ज त मे अक्खाहि पुच्छितो ॥४६१॥

[हे ब्राह्मण! मैं पूछता हूँ मुझे बता कि तू किस उद्देश्य से किस हेतु से इस घोर-जगल मे आया है? ॥४६१॥]

पूजक ने उत्तर दिया—

यथा वारिवहो पूरो सब्बकाले न खीयति,
एव त याचिता गच्छि पुत्ते मे देहि याचितो ॥४६२॥

[जैसे भरी हुई नदी कभी क्षीण नही होती। इसी प्रकार मैं तुमसे माँगने आया हूँ। मेरे मागने पर आप अपनी सन्तान मुझे दे ॥४६२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने प्रसन्न हो पसारे हाथ पर हजार की थैली रखते हुए की तरह पर्वत को गुजाते हुए ये गाथाये कही—

ददामि न विकम्पामि इस्सरो नय ब्राह्मण,
पातो गता राजपुत्ती साय उञ्छातो एहीति ॥४६३॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
तस्सा नहाते उपघाते अथ ने मालधारिने ॥४६४॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
नानावत्थेहि सञ्छन्ने नानागन्धविभूसिते,
नाना मूलफला किण्णे गच्छिस्सादाय ब्राह्मण ॥४६५॥

[मैं कापता नहीं हूँ। मैं देता हूँ। तू मेरे बच्चो का स्वामी है। इन्हें ले जा। राजपुत्री प्रात काल फलमूल चुगने गई है। शाम तक लौट आयेगी। हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रात काल जाना जब वह आकर इन्हे नहला देगी, सूँघ लेगी और मालाए पहना देगी।। हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रात काल नाना प्रकार के वस्त्रो से अच्छादित, नाना प्रकार की सुगन्धियो से विभूषित और नाना प्रकार के फल-मूल के साथ इन्हे लेकर जाना ॥४६३-४६५॥]

पूजक बोला—

न वासमभिरोचामि गमण मय्ह रुच्चति,
अन्तरायोपि मे अस्स गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥४६६॥
न हेता याचयोगी न अन्तरायस्स कारिया,
इत्थियो मन्तं जानान्ति सब्ब गण्हन्ति वामतो ॥४६७॥
सद्धाय दान ददतो मास अद्दक्खि मातर,
अन्तरायम्पि सा कीयरा गच्छञ्ञेव रथेसभा ॥४६८॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसुं,
सद्धाय दान ददतो एव पुञ्ञ पवड्ढति ॥४६९॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसु,
मादिसस्स धनं दत्वा राज सग्ग गमिस्ससि ॥४७०॥

[मैं रहना नहीं चाहता। मुझे जाना ही अच्छा लगता है। हे रथेसभ! कुछ बाधा भी हो सकती है। मैं तो जाऊँगा ही ॥४६६॥ स्त्रियाँ दान-शीला नहीं होती। वे बाधा ही डालने वाली होती है। स्त्रियाँ मन्त्र जानती हैं। वे सभी कुछ उल्टा करके

सत्त नो मासे वसत अरञ्जे जीवसोकिन,
इमम्पि पठम पस्साम ब्राह्मण देववण्णिन,
आदाय बेळुव दण्ड अग्गिहुत्त कमण्डलु ॥४५७॥

[जगल मे बिना किसी के रहते सात महीने हो गये। यह देव-ब्राह्मण का प्रथम ही दर्शन है—विल्व का डण्डा, अग्नि-होम तथा कमण्डल लिये हुए ॥४५७॥]

स्वागत ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागत,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥४५८॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वर वर ॥४५९॥
इदाम्पि पाणीय सीत आभत गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचे त्व अभिकङ्खसि ॥४६०॥

[देखे गाथा सख्या ३७७, ३७८ तथा ३७९॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—'यह ब्राह्मण इस घोर-जगल में व्यर्थ नही आया होगा। बिना बिलम्ब किये मै इसमे आने का कारण पूछूँगा।' उसने यह गाथा कही—

अथत्व केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
अनुप्पत्तो ब्रहारञ्ञ त मे अक्खाहि पुच्छितो ॥४६१॥

[हे ब्राह्मण! मै पूछता हूँ मुझे बता कि तू किस उद्देश्य से किस हेतु से इस घोर-जगल मे आया है? ॥४६१॥]

पूजक ने उत्तर दिया—

यथा वारिवहो पूरो सब्बकाले न खीयति,
एव त याचिता गच्छि पुत्ते मे देहि याचितो ॥४६२॥

[जैसे भरी हुई नदी कभी क्षीण नही होती। इसी प्रकार मैं तुमसे माँगने आया हूँ। मेरे मागने पर आप अपनी सन्तान मुझे दे ॥४६२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने प्रसन्न हो पसारे हाथ पर हजार की थैली रखते हुए की तरह पर्वत को गुजाते हुए ये गाथाये कही—

वदामि न विकम्पामि इस्सरो नय ब्राह्मण,
पातो गता राजपुत्ती साय उञ्छातो एहीति ॥४६३॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
तस्सा नहाते उपघाते अथ ने मालधारिने ॥४६४॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
नानावत्थेहि सञ्छन्ने नानागन्धविभूसिते,
नाना मूलफला किण्णे गच्छिस्सादाय ब्राह्मण ॥४६५॥

[मैं कापता नही हूँ। मैं देता हूँ। तू मेरे बच्चो का स्वामी है। इन्हे ले जा। राजपुत्री प्रात काल फलमूल चुगने गई है। शाम तक लौट आयेगी। हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रात काल जाना जब वह आकर इन्हे नहला देगी, सूँघ लेगी और मालाए पहना देगी॥ हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रात काल नाना प्रकार के वस्त्रो से अच्छादित, नाना प्रकार की सुगन्धियो से विभूपित और नाना प्रकार के फल-मूल के साथ इन्हे लेकर जाना ॥४६३-४६५॥]

जूजक बोला—

न वासमभिरोचामि गमणं मय्ह रुच्चति,
अन्तरायोपि मे अस्स गच्छञ्चेव रथेसभ ॥४६६॥
न हेता याचयोगी न अन्तरायस्स कारिया,
इत्थियो मन्तं जानन्ति सब्बं गण्हन्ति वामतो ॥४६७॥
सद्धाय दानं ददतो मासं अद्दक्खि मातरं,
अन्तरायम्पि सा कयिरा गच्छञ्चेव रथेसभ ॥४६८॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसुं,
सद्धाय दानं ददतो एवं पुञ्ञं पवड्ढति ॥४६९॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसुं,
मादिसस्स धनं दत्वा राज सग्गं गमिस्ससि ॥४७०॥

[मै रहना नही चाहता। मुझे जाना ही अच्छा लगता है। हे रथेसभ! कुछ बाधा भी हो सकती है। मै तो जाऊँगा ही ॥४६६॥ स्त्रियाँ दान-शीला नही होती। वे बाधा ही डालने वाली होती है। स्त्रियाँ मन्त्र जानती है। वे सभी कुछ उल्टा करके

ग्रहण करती है ॥४६७॥ श्रद्धापूर्वक दान दिये जाते हुओ को इनकी माँ न देखे। इस प्रकार श्रद्धा से दान देने से अधिक पुण्य होता है ॥४६८॥ अपने पुत्रो को बुला। वे माता को न देखे। हे राजन! मेरे जैसे को (पुत्र) धन देने से तुझे स्वर्ग लाभ होगा ॥४६९-४७०॥]

वेस्सन्तर बोला—

सचे त्वं निच्छसे दट्ठुं मम भरियं पतिब्बतं,
अय्यकस्सपि दस्सेहि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥४७१॥
इमे कुमारे दिस्वान मञ्जुके पियभाणिन,
पतीतो सुमनो वित्तो बहु दस्सति ते धनं ॥४७२॥

[यदि तू मेरी पति-व्रता भार्य्या को नही देखना चाहता है। तो मेरे पिता को जालि तथा कृष्णाजिना दोनो को दिखाना। इन सुन्दर प्रिय-भाषी कुमारो को देखकर प्रसन्न-चित्त हुआ मेरा पिता तुझे बहुत धन देगा ॥४७१-४७२॥]

पूजक बोला—

अच्छेदनस्स भायामि राजपुत्त सुणोहि मे,
राजा दण्डाय मं दज्जा विक्किणेय्य हनेय्य वा,
जीनो धनञ्च दासे च गारय्हस्स ब्रह्मबन्धुया ति ॥४७३॥

[हे राजपुत्र! मेरी बात सुन। मुझे डर लगता है कि कही ये मुझसे छीन न लिये जाये। सम्भव है राजा मेरे दण्ड की व्यवस्था करे, मुझे बिकवावे (?) या मरवावे। ब्राह्मणी भी मेरी निन्दा करे कि इसने धन तथा दास दोनो को गँवाया ॥४७३॥]

वेस्सन्तर बोला—

इमे कुमारे दिस्वान मञ्जुके पियभाणिने,
धम्मे ठितो महाराज सिवीनं रट्ठवड्ढनो,
लद्धा पीतिं सोमनस्सं बहु दस्सति ते धनं ॥४७४॥

[इन सुन्दर प्रिय-भाषी कुमारो को देखकर, सिवियो का राष्ट्र-वर्धक धार्मिक 'महाराजा प्रसन्न हो तुझे बहुत धन देगा ॥४७४॥]

पूजक बोला—

नाह तम्पि करिस्सामि य म त्व अनुसाससि,
दारके च अह नेस्स ब्राह्मणिया परिचारके ॥४७५॥

[जो वात तू मुझ करने को कहता है, वह मै नही करूँगा। मै ब्राह्मणी के लिये सेवक-बच्चे ले जाऊँगा ॥४७५॥]

उसकी ऐसी कठोरवाणी सुन बच्चे पर्णशाला के पिछवाडे भागे। वहाँ पिछवाडे से भी भाग घनी झाडियो मे जा छिपे। वहाँ भी उन्हे ऐसा लगता था कि कही पूजक आकर पकड न ले। वे डर के मारे काँपते थे और कही भी ठहर न सकने के कारण जहाँ-तहाँ दौडकर पुष्करिणी के किनारे पहुँचे। वहाँ वे वल्कल-चीर को अच्छी तरह कस, पानी मे उतर, कमल-पत्र से सिर ढक पानी मे जा छिपे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारा व्यथिता सुत्वा लुद्दस्स भासित,
तेन तेन पधाविसु जालिकण्हाजिना उभो ॥४७६॥

[उस क्रूर की वाणी सुन बच्चे दुखी हुए। वे दोनो—जालि और कृष्णार्जिना—जहाँ-तहाँ दौडने लगे ॥४७६॥]

पूजक को भी जब कुमार न दिखाई दिये तो उसने बोधिसत्व को खरी-खोटी सुनाई—"वेस्सन्तर! तू ने अभी मुझे बच्चे दिये। जब मैने कहा कि मै जेतुत्तर नगर नही जाऊँगा और बच्चो को ब्राह्मणी की सेवा करने के लिये ले जाऊँगा तो तूने सकेत से बच्चो को भगा दिया और अब ऐसे बैठा है जैसे कुछ नही जानता हो। मालूम होता है कि ससार मे तेरे समान झूठा कोई नही है।" यह सुना तो बोधिसत्व ने सोचा, वे डरकर भाग गये होगें। उसने कहा 'ब्राह्मण! चिन्ता न कर। मै तुझे कुमारो को लाकर देता हूँ।' वह उठकर पर्णशाला के पिछवाडे गया। तब उसने जाना कि वे घने जगल में घुस गये। वह उनके पैरो के चिह्न के अनुसार पुष्करिणी के तट पर पहुचा। जब उसने देखा कि उनके पाँव पानी मे उतरे है तो वह समझ गया कि पानी में उतर कर छिपे होगे। उसने "तात! जालिनी" बुलाकर दो गाथायें कही—

एहि तात पियपुत्त पूरेथ मम पारमि,
हदय मेभिसिञ्चेथ करोथ वचन मम ॥४७७॥

याननावा च मे होथ अचला भवसागरे,
जातिपार तरिस्सामि सन्तारेस्स सदेवक ॥४७८॥

[तात प्रियपुत्र। आ। मेरी पारमिता को पूरा कर। मेरे हृदय को सीच। मेरा कहना कर। भवसागर को पार करने के लिये मेरी स्थिर नौका-वाहन बन। मै जन्म-मरण के बन्धन के पार जाऊँगा और सदैव लोक का उद्धार करूँगा ।।४७७-४७८।।]

कुमार ने पिता का शब्द सुना तो सोचने लगा—'ब्राह्मण चाहे मेरा जो कुछ करे। मै पिता के साथ दो बाते नही करूँगा।' उसने सिर निकाला और कँवल के पत्ते हटा पानी से निकला। फिर बोधिसत्व के दाहिने पाँव पर गिर, पैर का गिट्टा जोर से पकड रोने लगा। तब बोधिसत्व ने पूछा—"तात! तेरी बहन कहाँ है?" "तात! भय का कारण उपस्थित होने पर प्राणी अपनी रक्षा करते ही है।" बोधिसत्व ने समझा कि मेरे बच्चो ने परस्पर एक दूसरे को वचन दिया होगा। उसने 'अम्म कण्हे! आ' बुलाते हुए दो गाथाये कही—

एहि अम्म पियपीति पूरेथ मम पारमि,
हृदय मेमिसिञ्चेथ करोथ वचनं मम ॥४७९॥
यानननावा च मे होथ अचला भवसागरे,
जातिपार तरिस्सामि उद्धरिस्स सदेवक ॥४८०॥

[अम्म प्रिय पुत्री! आ। मेरी पारमिता को पूरा कर। मेरे हृदय को सीच। मेरा कहना कर। भव-सागर के पार करने के लिये मेरी स्थिर नौका-वाहन बन। मै जन्म-मरण के बन्धन के पार जाऊगा और सदेव लोक का उद्धार करूगा।४७९-४८०।।]

उसने भी सोचा कि पिता के साथ दो बाते नही करूँगी। वह भी उसी तरह बाहर निकली और बोधिसत्व के बाये पाँव पर गिरकर, पैर का गिट्टा जोर से पकड रोने लगी। उनके आँसू बोधिसत्व के खिले कमलो जैसे चरणो पर पडते। बोधिसत्व ने बच्चो को उठाकर आश्वसान दिया और बोला—"तात जालि! क्या तू मेरे दानी होने की बात नही जानता? तात मेरे उद्देश्य को पूरा कर।" उसने वहाँ खडे ही खडे जैसे कोई बैलो का मूल्य निश्चित

करे बच्चो का मूल्य निश्चित कर दिया। उसने पुत्रो को सम्बोधित कर कहा—"तात जालि! यदि तू दासता से मुक्त होना चाहे तो ब्राह्मण को हजार निकप देकर मुक्त हो जाना। तेरी बहन असाधरण सुन्दरी है। कोई नीच-जाति का आदमी ब्राह्मण को कुछ भी धन दे, तेरी बहन को दासता से मुक्त कर, 'जाति' को कलङ्कित कर सकता है। राजा के अतिरिक्त कोई दूसरा 'सभी सौ चीजें' नही दे सकता। इस लिये यदि तेरी बहन दासता से मुक्त होना चाहे तो ब्राह्मण को 'सौ दास सौ दासियाँ, सौ हाथी, सौ घोडे, तथा सौ निकप, इस प्रकार सभी सौ सौ चीजे देकर दासता से मुक्त होवे। इस प्रकार बच्चो का मूल्य निश्चित कर, उन्हे आश्वासन दे, आश्रम ले जा, कमण्डल से पानी ले, ब्राह्मण को बुलाया, और यह प्रार्थना की कि मेरा यह दान सर्वज्ञ-ज्ञान का प्रत्यय बने, ब्राह्मण को प्रिय-पुत्रो का दान कर दिया। उसने कहा—'हे ब्राह्मण! सौ पुत्रो से, हजार पुत्रो मे और लाख पुत्रो से भी सर्वज्ञता-ज्ञान मेरे लिये प्रियतर है।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारे आदाय जालिं कण्हाजिनञ्चुभो,
ब्राह्मणस्स अदा दान सिवीन रट्ठवड्ढनो ॥४८१॥

ततो कुमारे आदाय जालिं कण्हाजिनञ्चुभो,
ब्राह्मणस्स अदा वित्तो पुत्तके दानमुत्तम ॥४८२॥

तदासि य भिंसनक तदासि लोमहसन,
य कुमारे पदिन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ ॥४८३॥

तदासि य भिंसनक तदासि लोमहसन,
य पञ्जलिकतो राजा कुमारे सुखवच्छिते,
ब्राह्मणस्स अदा दान सिवीन रट्ठवड्ढनो ॥४८४॥

[तब सिवियो के राष्ट्र-वर्धन ने जालि तथा कृष्णाजिना दोनो बच्चो को ब्राह्मण को दान कर दिया ॥४८१॥ तब जालि और कृष्णाजिना दोनो बच्चो को ले उसने ब्राह्मण को पुत्रो का उत्तम दान दे दिया ॥४८२॥ तब शोर हो गया, तब रोमाञ्च हो उठा। बच्चो का दान दिये जाते समय पृथ्वी काँप उठी ॥४८३॥ उस समय शोर हो गया, उस समय रोमाञ्च हो गया जब सिवियो

के राष्ट्र-वर्धन राजा ने सुख में पले हुए बच्चो को कर-बद्ध हो ब्राह्मण को दान दे दिया ।।४८४।।]

बोधिसत्व दान दे चुकने पर खडे हो यह सोचते हुए कि मेरा दान सु-दान है बच्चो को देखने लगे। पूजक भी घने जगल मे घुसा। वहाँ दान्त से एक लता काट उसने कुमार का दाहिना हाथ तथा कुमारी का बाया हाथ एक साथ बाधा और उसी लता की छडी ले उन्हे पीटता हुआ ले चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो ब्राह्मणो लुद्दो लत दन्तेहि छिन्दिय,
लताय हत्थे बधित्वा लताय अनुमज्जथ ।।४८५।।

ततो सो रज्जुमादाय दण्डमादाय ब्राह्मणो,
आकोटयन्तो ते नेति सिविराजस्स पेक्खतो ।।४८६।।

[तब उस क्रूर ब्राह्मण ने दान्तो से लता काटी और लता से उनके हाथ बाध और लता से ही उन्हें पीटने लगा। तब सिविराज की नजर के सामने ही रस्सी और डण्डा हाथ मे लिए वह ब्राह्मण उन्हें पीटते हुए ले गया ।।४८६।।]

जहाँ जहाँ उन्हे चोट लगती वही से चमडी छिल जाती। रक्त बहता। चोट के समय परस्पर एक दूसरे को सहारा देते। एक अड-बड जगह पर ब्राह्मण फिसल कर गिर पडा। बच्चो के कोमल हाथो पर से कठोर लता बधन खिसक गया। वे रोते-पीटते भाग कर बोधिसत्व के पास जा पहुचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारा पक्कामु ब्राह्मणस्स पमुञ्चिय,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि पितर सो उदिक्खति ।।४८७।।

वेध अस्सत्थ पत्तव पितुपादाभिवन्दति,
पितुपादानि वन्दित्वा इद वचनमब्रवि ।।४८८।।

अम्मा च तात निक्खन्ता त्वञ्च नो तात दस्ससि,
याव अम्मम्पि पस्सेमु अथ नो तात दस्ससि ।।४८९'

अम्मा च तात निक्खन्ता त्वञ्च नो तात दस्ससि
मा नो त्व तात अदया याव अम्मापि एति नो

तदाय ब्राह्मणो काम विक्किणातु हनातु वा ॥४९०॥

बलकपादो अद्धनखो अयो ओवद्धपिण्डिको,
दीघुत्तरोट्ठो चपलो कळारो भग्गनासको ॥४९१॥

कुम्भूदरो भग्गपिट्ठि अयो विसमचक्खुलो,
लोहमस्सु हरितकेसो वलीन तिलकाहतो ॥४९२॥

पिंगलो च विनतो च विकतो च ब्रह्म खरो,
अजिनानि च सन्नद्धो अमनुस्सो भयानको ॥४९३॥

मनुस्सो उदाहु यक्खो मसलोहितभोजनो,
गामा अरञ्ञा आगम्म धन त तात याचति,
नीयमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ॥४९४॥

अस्मा नून ते हदय आयस दळहबधन,
यो नो बद्धे न जानासि ब्राह्मणेन धनेसिना,
अच्चायिकेन लुद्देन यो नो गावोव सुम्भति ॥४९५॥

इधेव अच्छत कण्हा न सा जानाति किस्मिचि,
मिगीव खीरसम्मत्ता यूथा हीना पकन्दति ॥४९६॥

[तब ब्राह्मण से मुक्त होकर बच्चे निकल भागे। अश्रु-पूर्ण नेत्रो से कुमार पिता की ओर देखने लगा ॥४८७॥ पीपल के पत्ते की तरह कांपते हुए उसने पिता के चरणो की वन्दना की। पिता के चरणो की वन्दना कर उसने यह कहा ॥४८८॥ "तात ! अम्मा बाहर गई है। आप हमे दे रहे है। हम अम्मा को देख लें। तब तात आप हमे दें ॥४८९॥ तात ! अम्मा बाहर गई है। आप हमे दे रहे है। हे तात ! जब तक हमारी मा नही आती, तब तक आप हमे न दे। बाद मे यह ब्राह्मण चाहे हमें बेचे चाहे मारे ॥४९०॥ चौडा पैर, सडे नाखून, गली हुई पिण्डली, लम्बा होठ, टपकती हुई राल, सूअर जैसे दांत, टूटी हुई नाक, घडे जैसा पेट, टूटी-कमर, बेंहगी आंख, ताम्र वर्ण मुंह, लाल-बाल, तिलो वाली झुरियाँ पडी चमडी, पिङ्गल-वर्ण आँखें, कन्‍ , पीठ और कमर झुकी हुई, कटकट करती हुई हड्डियाँ, लम्बा अस्निग्ध, अजिन-चर्म पहने, भयानक राक्षस जैसा है ॥४९१-४९३॥ यह मनुष्य है अथवा रक्त मास खाने वाला कोई यक्ष है, जो गाव से जगल मे आकर तुझसे

धन मागता है। हे तात! हमे पिशाच लिये जा रहा है। आप क्या देखते हैं?॥४९४॥ तात! आपका हृदय हमारे प्रति लोहे जैसा कठोर है। धन-लोभी ब्राह्मण ने हमे बाध रखा है और आप को जैसे पता ही नही। अत्यन्त क्रूर ब्राह्मण हमे पशुओ की तरह पीट रहा है ॥४९५॥ यह कृष्णा कुछ नही जानती। यह यही रहे। यह उस मृगी की भान्ति है जो समूह से पृथक होने पर रोती है॥४९६॥]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने कुछ नही कहा। तब कुमार ने माता-पिता को लेकर विलाप करना आरम्भ किया—

न मे इद तथा दुक्ख लब्भा हि पुमुना इद,
यञ्च अम्म न पस्सामि त मे दुक्खतर इतो॥४९७॥

न मे इद तथा दुक्ख लब्भा हि पुमुना इद,
यञ्च तात न पस्सामि त मे दुक्खतर इतो॥४९८॥

सा नून कपणा अम्मा चिररत्ताय रुच्छति,
कण्हाजिन अपस्सन्ती कुमारिं चारुदस्सनिं॥४९९॥

सो नून कपणो तातो चिररत्ताय रुच्छति,
कण्हाजिन अपस्सन्तो कुमारिं चारुदस्सनिं॥५००॥

सो नून कपणा अम्मा चिन रुच्छति अस्समे,
कण्हाजिन अपस्सन्ती कुमारिं चारुदस्सनिं॥५०१॥

सो नून कपणो तातो चिर रुच्छति अस्समे,
कण्हाजिन अपस्सन्तो कुमारिं चारुदस्सनिं॥५०२॥

सा नून कपणा अम्मा चिररत्ताय रुच्छति,
अड्ढरत्तेव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति॥५०३॥

सो नून कपणो तातो चिररत्ताय रुच्छति,
अड्ढरत्तेव रत्ते वा नदीव अवसुच्छति॥५०४॥

इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिका,
विविधानि रुक्खजातानि तानि अज्जजहा से॥५०५॥

अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
विविधानि फल जातानि तानि अज्ज जहामसे॥५०६॥

इमे तिट्ठन्ति आरामा अय सीतोदिका नदी,
यत्थस्सु पुब्बे कीळाम तानि अज्ज जहामसे ॥५०७॥

विविधानि पुप्फजातानि अस्मि उपरिपब्बते,
यानस्सु पुब्बे धारेम तानि अज्ज जहामसे ॥५०८॥

विविधानि फलजातानि अस्मि उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे भुञ्जाम तानि अज्ज जहामसे ॥५०९॥

इमे नो हत्थिका अस्सा बलिबद्दा च नो इमे,
येहिस्सु पुब्बे कीळाम तानि अज्ज जहामसे ॥५१०॥

[मेरे लिये यह दु ख नही है। पुरुष को ऐसा दुख-सुख होता ही है। यह जो मुझे माता का दर्शन नही मिलेगा, यही वडा दु ख है ॥४९७॥ मेरे लिये यह होता ही है। यह जो पिता का दर्शन नही मिलेगा, यही वडा दु ख है ॥४९८॥ वह विचारी माँ चारुदर्शना कुमारी के दर्शन के बिना चिरकाल तक रोती रहेगी ॥४९९॥ वह विचारे तात चारुदर्शना　　चिरकाल तक रोते रहेंगें ॥५००॥ वह बिचारी माँ चारुदर्शना कुमारी के दर्शन बिना आश्रम मे चिरकाल तक रोती रहेगी ॥५०१॥ वह बिचारे तात　　आश्रम मे　　रोते रहेगें ॥५०२॥ वह बिचारी मा चिरकाल तक रोती रहेगी और आधी रात वा रात के बीतने पर नदी की तरह सूख जायगी ॥५०३॥ वह बिचारे तात चिरकाल तक　　सूख जायेंगे ॥५०४॥ ये वे जामुन के वृक्ष और लटकते हुए सिन्धुवारिक तथा अन्य नाना प्रकार के पेड है। आज हम उन्हे छोड रहे है ॥५०५॥ अश्वत्थ,कटहल, न्यग्रोध, कैंथ (और) बहुत से फल हैं। आज हम उन्हें छोड रहे है ॥५०६॥ ये आश्रम है और यह शीतल जल वाली नदी है, जहाँ हम खेलते रहे है। आज हम उन्हे छोड रहे है ॥५०७॥ इस पर्वत पर नाना प्रकार के पुष्प है, जिन्हें हम पहले धारण करते रहे है। आज हम उन्हे छोड रहे है ॥५०८॥ इस पर्वत पर नाना प्रकार के फल है, जिनका हम पहले उपभोग करते रहे है। आज हम उन्हें छोड रहे है ॥५०९॥ ये हमारे हाथी, घोडे और बैल है, जिनसे हम पहले खेलते रहे है। आज हम उन्हे छोड रहे है ॥५१०॥]

जिस समय वह इस प्रकार विलाप कर रहा था उसी समय पूजक भी आया और उसे बहिन सहित पकड कर पीटता हुआ ले चला। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

नीयमाना कुमारा ते पितर एतद ब्रवु,
अम्म आरोग्यं वज्जासि त्वञ्च तात सुखी भव ॥५११॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च नो इमे,
तानि अम्माय वज्जासि सोक तेहि विनेस्सति ॥५१२॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च नो इमे,
तानि अम्मा उदिक्खन्ती सोक पटिविनेस्सति ॥५१३॥

[जब उन बच्चो को ले जा रहे थे तो वे पिता से बोले—मा को आरोग्य कहना और हे तात ! तू सुखी रहना। ये हमारे हाथी, घोडे और बैल है। इन्हे अम्मा को दे देना। ये उसके शोक को दूर करेगे। ये हमारे हाथी, घोडे और बैल है। इन्हे देखकर अम्मा अपना शोक दूर करेगी ॥५११-५१३॥]

पुत्रो को लेकर बोधिसत्व के मन मे बहुत शोक उत्पन्न हुआ। उसका हृदय-मास गर्म हो गया। जैसे किसी हाथी को केशर सिंह ने पकड लिया हो अथवा चन्द्रमा राहु के मुँह मे चला गया हो, उस तरह वह कॉपता हुआ अपने आपको सभाले न रख सका। अश्रुपूर्ण नेत्रो से पर्णशाला मे प्रवेश कर करुणा-पूर्ण विलाप करने लगा। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा दान दत्वान खत्तियो,
पण्णसाल पविसित्वा करुणं परिदेवयि ॥५१४॥

[तब वेस्सन्तर राजा दान देकर, पर्णशाला मे प्रविष्ट हो करुणा-पूर्ण विलाप करने लगा ॥५१४॥]

इससे आगे बोधिसत्व की विलाप-गाथाये है—

कन्वज्ज छाता तसिता उपरुच्छन्ति दारका,
सायं सवेसनाकाले को ने दस्सति भोजन ॥५१५॥
कन्वज्ज छाता तसिता उपरुच्छन्ति दारका
साय सावेसनाकाले अम्म छातम्ह देथ नो ॥५१६॥

कथन्नु पथ गच्छन्ति पत्तिका अनुपाहना,
सन्ता सूणेहि पादेहि को ने हत्थे गहेस्सति ॥५१७॥

कथ नु सो न लज्जेय्य सम्मुखा पहर मम,
अदूसकान पुत्तान अलज्जि वत ब्राह्मणो ॥५१८॥

योहि मे दासिदासस्स अञ्ञो वा पन पेस्सियो,
तस्सापि सुविहीनस्स को लज्जी पहरिस्सति ॥५१९॥

वारिजस्सेव मे सतो बद्धस्स कुमिना मुखे,
अक्कोसति पहरति पिये पुत्ते अपस्सतो ॥५२०॥

[भूख, प्यास लगने पर बच्चे अब किसके सामने रोयेंगे ? शाम को सोने के समय उन्हे कौन भोजन देगा ? ॥५१५॥ भूख, प्यास लगने पर बच्चे अब किसके सामने रोयेंगे ? शाम को किसे कहेंगे कि माँ भूख लगी है, हमे भोजन दे ॥५१६॥ बिना जूते के वे नगे कैसे पैदल चलेगे। उन कोमल पैर वालो को थक जाने पर कौन हाथ मे लेगा ॥५१७॥ उसे मेरे सामने ही निर्दोष बच्चो को पीटने मे कैसे लज्जा नही आई ? वह ब्राह्मण निर्लज्ज है ॥५१८॥ जो मेरा दासी-दास हो अथवा और वैसा ही कोई भी हो उसे कौन शरमदार आदमी पीटेगा ? ॥५१९॥ जाल मे बँधी हुई मछली के समान मेरे रहते मेरी आँखो के सामने ही यह मेरी प्रिय सतान को गाली देता है, पीटता है ! ॥५२०॥]

सन्तान के प्रति स्नेह होने से बोधिसत्व के मन मे सकल्प-विकल्प उठने लगे—यह ब्राह्मण मेरे बच्चो को बहुत कष्ट देता है। ब्राह्मण का पीछा कर उसे मार बच्चो को ले आऊँ। फिर बच्चो को कष्ट देना तो अनुचित है, किन्तु दान देकर सोचना भी सत्पुरुषो का धर्म नही है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये राजा के सकल्प-विकल्प के सम्बन्ध मे ये दो गाथाये हैं—

आदु चाप गहेत्वान खग्ग बन्धित्वा वामतो,
आनयामि सके पुत्ते पुत्तान हि वधो दुखो ॥५२१॥

अट्ठानमेत दुक्खरूप य कुमारा विहञ्ञरे,
सतञ्च धम्ममञ्ञाय को दत्वा अनुतप्पति ॥५२२॥

[धनुष लेकर और बाई ओर खड्ग बाध कर अपने पुत्रो को ले आऊ। पुत्रो का वध बहुत कष्टदायक है ॥५२१॥ कुमारो का कष्ट पाना बहुत अनुचित और दुखद है, किन्तु सत्पुरुषो का धर्म जान, देकर कौन अनुताप करे ॥५२२॥]

उस समय उसने बोधिसत्व की परम्परा को याद किया। उसने देखा कि सभी बोधिसत्वो ने धन का त्याग, अङ्ग का त्याग, जीवन का त्याग, सन्तान का त्याग और भार्य्या का त्याग किया है। ऐसा कोई नही है जो बिना ये पाच त्याग किये बुद्ध हो गया हो। मै भी उनमे से हूँ। बिना बेटा-बेटी का त्याग किये मै भी बुद्ध नही हो सकता हूँ। हे वेस्सन्तर! क्या दूसरो के दासता करने के लिये दिये गये पुत्रो के दुख को तू नही जानता जो ब्राह्मण का पीछा कर उसे मारने की सोचता है। दान दे चुकने के बाद उसकी चिन्ता करना तेरे योग्य नही। इस प्रकार उसने अपने आपका निग्रह किया और दृढ सकल्प किया कि यदि वह बच्चो को मार भी डाले तो दान दे चुकने के बाद से वे मेरे कुछ नही लगते। इस प्रकार का निश्चय कर वह पर्णशाला से निकला और पर्णशाला के द्वार पर पत्थर-शिला पर स्वर्ण-मूर्ति की तरह आ बैठा।

पूजक भी बच्चो को पीटता हुआ ले चला। तब कुमार ने विलाप किया—

> सच्च किरेवमाहसु नरा एकच्चियथा इध,
> यस्स नित्थ सका माता यथा नत्थि तथेव सो ॥५२३॥
>
> एहि कण्हे मरिस्साम नत्थत्थो जीवितेन नो,
> दिन्नम्हापि जनिन्देन ब्राह्मणस्स धनेसिनो,
> अच्चायिकस्स लुद्दस्स यो नो गावोव सुम्भति ॥५२४॥
>
> इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिता,
> विविधानि रुक्खजातानि तानि कण्हे जहामसे ॥५२५॥
>
> अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
> विविधानि फलजातानि तानि कण्हे जहामसे ॥५२६॥
>
> इमे तिट्ठन्ति आरामा अय सीतोदका नदी,
> यत्थस्सु पुब्बे कीळाम तानि कण्हे जहामसे ॥५२७॥

विविधानि पुप्फजातानि अस्मिं उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे धारेय तानि कण्हे जहायसे ॥५२८॥
विविधानि फलजातानि अस्मिं उपरिपब्बते,
यानस्सु पुब्बेते भुञ्जाम तानि कण्हे जहाससे ॥५२९॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च नो इमे,
येहिस्सु पुब्बे कीळाम तानि कण्हे जहाससे ॥५३०॥

[यहाँ कुछ आदमियो ने सत्य ही कहा है कि जिसकी अपनी मा नही है, उसका होना न होना बराबर है ॥५२३॥ आ कृष्णा मरे। हमारे जीने का कोई प्रयोजन नही है। हमे राजा ने धन के लोभी अत्यन्त क्रूर ब्राह्मण को दे दिया है जो हमे पशुओ की तरह पीटता है ॥५२४॥ अगली गाथाओ के अर्थ के लिये देखें गाथा सख्या ५०५ से गाथा सख्या ५१० तक।]

फिर ब्राह्मण एक विसम स्थान पर फिसल कर गिर पडा। उनके हाथ से बधन खिसक गया। वे पिटे मुर्गा-मुर्गी की तरह भाग कर एक दौड मे ही फिर पिता के पास आ पहुँचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

नीयमाना कुमारा ते ब्राह्मणस्स पमुञ्चिय,
तेन तेन पधाविंसु जाली कण्हाजिना चुभो ॥५३१॥

[उन बच्चो को ब्राह्मण लिये जा रहा था। जाली तथा कृष्णाजिना दोनो उसके हाथ से छूट कर इधर-उधर भाग गये ॥५३१॥]

पूजक जल्दी से उठा और लता तथा डण्डा हाथ मे लिये ही कल्प के अन्त में उठने वाली आग की तरह उठ कर आया और बोला—तुम भागने में बडे चतुर हो। वह फिर उनके हाथ बाध ले चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करने हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो रज्जुमादाय दण्डमादाय ब्राह्मणो,
आकोटयन्तो ते नेति सिविराजस्स पेक्खतो ॥५३२॥

[तब सिविराज की नजर के सामने ही रस्सी और डण्डा लिये वह ब्राह्मण उन्हें पीटता हुआ ले चला ॥५३२॥]

इस प्रकार लिये जाते समय कृष्णाजिना रुक कर पिता की ओर देखती हुई पिता से बोली। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

त त कण्हाजिनावोच अय म तात ब्राह्मणो,
लट्ठिया पतिकोटेति घरे जात व दासिय ॥५३३॥
न चायं ब्राह्मणो तात धम्मिका होन्ति ब्राह्मणा,
यक्खो ब्राह्मणवण्णेन खादितु तात नेति नो,
नियमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ॥५३४॥

[कृष्णाजिना उसे बोली—'तात! यह ब्राह्मण मुझे घर मे पैदा हुई दासी की तरह लाठी से पीटता है ॥५३३॥ तात! यह ब्राह्मण नही है, ब्राह्मण तो धार्मिक होते हैं। यह तो ब्राह्मण-वेष मे कोई यक्ष है जो हमे खाने के लिये ले जा रहा है। तात! हमें पिशाच लिये जा रहा है। आप क्या देख रहे हैं? ॥५३४॥]

छोटी बच्ची के विलाप से और उसे कापते हुए जाता देख बोधिसत्व के मन में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसका हृदय गर्म हो गया। गर्म साँस नाक से ही न निकल सकने के कारण मुँह से आने जाने लगी। आसू रक्त बनकर आखो से निकलने लगे। तब उसने सोचा कि यह ऐसा दुःख स्नेह के ही कारण होता है और किसी कारण से नही। मुझे स्नेह न कर मध्यस्थ ही होना चाहिये। उसने अपने ज्ञान-बल से उस शोक-रूपी शल्य को निकाल फेंका और प्रकृतिस्थ हो बैठा। गिरि-द्वार तक बिना पहुँचे ही कुमारी विलाप करती हुई गई—

इमे नो पादुका दुक्खा दीघोचद्धा सुदुग्गमो,
नीचे वोलम्बते सुरियो ब्राह्मणे च तरेति नो ॥५३५॥
ओकन्दामसि भूतानि पब्बतानि वनानि च,
सरस्स सिरसा वन्दाम सुपतित्थे च आपके ॥५३६॥
तिणलता च ओसध्यो पब्बतानि वनानि च,
अम्म् आरोग्य वज्जाथ अय नो नेति ब्राह्मणो ॥५३७॥
वज्जन्तु भोन्तो अम्मञ्च मद्दिं अम्हाक मातर,
सचे अनुपतितुकामासि खिप्प अनुपतियासि नो॥५३८॥
अय एकपदी एति उजु गच्छति अस्सम,
तमेव अनुपतियासि अपि पस्सेसि नो लहु ॥५३९॥

अहोवत रे जरिनि वनमूलफलहारिके,
सुञ्ञ दिस्वान अस्सम त ते दुक्ख भविस्सति ॥५४०॥
अतिवेल नून अम्माय उञ्छालद्धो अनप्पको,
या नो बद्धे न जानाति ब्राह्मणेन धनेसिना,
अच्चायिकेन लुद्देन यो नो गावोव सुम्भति ॥५४१॥
अहज्ज अम्म पस्सेमु साय उञ्छातो आगत,
दज्जा अम्मा ब्राह्मणस्स फल खुद्देन मिस्सित ॥५४२॥
तदाय असितो धातो न बाळह तरयेय्य नो,
सूणाच वत नो पादा बाळह तारेति ब्राह्मणो,
इति तत्थ विलपिसु कुमारा मातु गिद्धिनो ॥५४३॥

[हमारे पाँव दुख रहे है। रास्ता लम्बा और दुर्गम है। सूर्य्य सिर पर है और ब्राह्मण हमें जल्दी चला रहा है ॥५३५॥ हम सभी को नमस्कार करते है, पर्वतो को, वनो को, सरोवर को भी सिर से नमस्कार करते है तथा सुतीर्थ वाली नदी को ॥५३६॥ हे तृण-लताओ! हे ओपधियो! हे पर्वतो! हे वनो! अम्मा को 'आरोग्य' कहना। हमें यह ब्राह्मण लिये जा रहा है ॥५३७॥ आप हमारी माँ माद्री को कहें कि यदि वह हमारे पीछे आना चाहे तो शीघ्र आये ॥५३८॥ यह पगडण्डी आती है। यह सीधी आश्रम जाती है। इसी पगदडण्डी से चली आये तो हमसे शीघ्र भेंट हो सकती है ॥४३९॥ अरी जटाधारिणी! अरी वन से फलमूल लेकर आने वाली! आश्रम सूना देखकर तुझे दु ख होगा ॥५४०॥ निश्चय से माँ को फल-मूल बहुत विलम्ब से मिले है। वह नही जानती कि धन के लोभी ब्राह्मण ने हमें बाध लिया है। यह अति क्रूर है। यह हमें पशुओ की तरह पीटता है ॥५४१॥ जब मा शाम को फल-मूल चुग कर आयेगी तब हम उसे देखेंगे। माँ! ब्राह्मण को मधु मिश्रित फल दे ॥५४२॥ तब यह खा पीकर सन्तुष्ट हुआ रहने से हमे बहुत नही चलायगा। हमारे पाँव सूज गये है। ब्राह्मण बहुत जल्दी चलाता है। इस प्रकार वे मातृ-स्नेही बच्चे विलाप करते थे ॥५४३॥]

कुमार पर्व समाप्त

जब राजा ने ब्राह्मण को अपने पुत्र देकर पृथ्वी को गुजा दिया तो ब्रह्म लोक तक हल्ला हो गया। उससे हिमवन्तवासी देवताओ का हृदय पिघल गया। उन्होने

ब्राह्मण द्वारा लिये जाते हुओ का विलाप सुन आपस में मन्त्रणा की—यदि माद्री समय रहते आश्रम लौट आयेगी तो वहाँ बच्चो को न देख, वेस्सन्तर से पूछा और यह जान कि वे ब्राह्मण को दे दिये गये है, वह स्नेह-बहुल होने से तुरन्त पीछा करेगी और बहुत कष्ट पायेगी। उन्होने तीनो देव-पुत्रो को आज्ञा दी कि तुम सिंह, व्याघ्र तथा चीते का रूप बना, देवी का जाने का रास्ता रोक, सूर्य्यास्त के बाद मार्ग न दे ऐसा करो कि वह चन्द्रमा के प्रकाश मे ही आश्रम पहुचे और सिंह आदि से उसकी रक्षा करो ताकि उसे कष्ट न हो।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेस लालप्पित सुत्वा तयो वाळा वने मिगा,
सीहो ब्यग्घो च दीपी च इद वचनमब्रवु ॥५४४॥
माहेव नो राजपुत्ती साय उञ्छातो आगमा,
माहेवम्हाक निब्भोगे हेठयित्थ वने मिगा ॥५४५॥
सीहोचेन विहेठेय्य ब्यग्घो दीपी च लक्खणं,
नेव जालीकुमारस्स कुतो कण्हाजिना सिया,
उभयेनेव जीयेथ पति पुत्त च लक्खणा ॥५४६॥

[उनका विलाप सुन उन देव-पुत्रो को आज्ञा हुई कि तुम सिंह, व्याघ्र और चीता—इस प्रकार से तीनो जगली जानवर बन जाओ ॥५४४॥ राजपुत्री रात को फल-मूल चुग कर न लौटे और हमारी सीमा मे उसे किसी भी जगली-जानवर का कष्ट न हो ॥५४५॥ यदि इस सुन्दरी की सिंह, व्याघ्र अथवा चीते ने हिंसा की तो न जालीकुमार रहेगा और न कृष्णाजिना। सुन्दरी अपने पति तथा बच्चो के साथ जीती रहे ॥५४६॥]

उन पुत्रो ने 'अच्छा' कह उन देवताओ की बात स्वीकार की और सिंह, व्याघ्र तथा चीते की शकल बना उसके आने के रास्ते मे क्रमश लेट रहे। माद्री ने भी सोचा कि आज मैने बुरा स्वप्न देखा है। आज मै समय से ही आश्रम जाऊगी। वह काँपती काँपती फल-मूल खोजती रही। उसके हाथ से खती गिर गिर जाती थी। उसके कधे से उसका उद्ग्रीव गिर गिर जाती थी। दाहिनी आख फडकती थी। फलदार वृक्ष बिना फल वाले वृक्ष प्रतीत हो रहे थे और बिना फलवाले फलदार वृक्ष। दसो दिशाये नही दिखाई दे रही थी। वह सोचने लगी कि क्या कारण है कि जो पहले कभी नही होता था वह आज हो रहा है। वह कहने लगी—

खणित्तिक मे पतति दक्खिणक्खिच फन्दति,
अफला फलिनो रुक्खा सब्बा मुय्हन्ति मे दिसा ॥५४७॥
तस्सा सायण्हकालम्हि अस्समा गमण पति,
अत्थमितम्हि सुरियम्हि वाळा पन्ये उपट्ठहुं॥५४८॥
नीचेचो लम्वते सुरियो दूरे च वत अस्समो,
य तेस इतो हस्स त ते भुञ्जेय्यु भोजन ॥५४९॥
सो नून खत्तियो एको पण्णसालाय्र अच्छति,
तोसेन्तो दारके छाते मम दिस्वा अनायतिं ॥५५०॥
ते नून पुत्तका मय्ह कपणाय वराकिया,
साय सवेसनाकाले खीरपीता व अच्छरे ॥५५१॥
ते नून पुत्तका मय्ह कपणाय वराकिया,
साय सवेसना काले वारिपीताव अच्छरे ॥५५२॥
ते नून पुत्तका मय्ह कपणाय वराकिया,
पच्चुग्गता म तिट्ठन्ति वच्छा बालाव मातर ॥५५३॥
ते नून पुत्तका मय्ह कपणाय वराकिया ,
पच्चुग्गता म तिट्ठन्ति हसाव उपरि पल्लले ॥५५४॥
ते नून पुत्तका मय्ह कपणाय वराकिया,
पच्चुग्गता म तिट्ठन्ति अस्समस्साविदूरतो ॥५५५॥
एकायनो एकपथो सरा सोब्भा च पस्सतो,
अञ्ञ मग्ग न पस्सामि येन गच्छेय्य अस्सम ॥५५६॥
मिगा नमत्थु राजानो काननस्मि महब्बला,
धम्मेन भातरो होथ मग्ग मे देथ याचिता ॥५५७॥
अवरुद्धस्सह भरिया राजपुतस्स सिरी तो,
तञ्चाह नातिमञ्ञामि राम सीतावनुब्बता ॥५५८॥
तुम्हे च पुत्ते पस्सेथ साय सवेसन पति,
अहञ्च पुत्ते पस्सेय्य जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५५९॥
बहुञ्चिद मूलफल भक्खो चाय अनप्पको,
ततो उपड्ढ दस्सामि मग्ग मे देथ याचिता ॥५६०॥

राजपुत्ती च नो माता राजपुत्तो च नो पिता,
धम्मेन भातरो होथ मग्गं मे देथ याचिता ॥५६१॥

[मेरी खती गिरती है, मेरी दाहिनी आख फडकती है, बिना फल वाले वृक्ष फलदार प्रतीत होते हैं, मुझे सभी दिशायें मूढ बना रही हैं ॥५४७॥ शाम को जब सूर्य्यास्त हो गया और उसके आश्रम आने का समय हुआ तो मार्ग में जगली जानवर आ बैठे ॥५४८॥ सूर्य्य नीचे आ गया है और आश्रम दूर है। जो कुछ मै यहाँ से ले जाऊँगी, उसी का वह भोजन करेंगे ॥५४९॥ मुझे न आता देख वह क्षत्रिय अकेला बैठा भूखे बच्चो को सन्तोष दे रहा होगा ॥५५०॥ मुझ विचारी के वे बच्चे शाम को जैसे बिना दूध के रहते हैं वैसे (बिना फल-मूल के) रहेंगे ॥५५१॥ मुझ विचारी के वे बच्चे शाम को जैसे बिना पार्न के रहते है वैसे (बिना फल-मूल के) रहेगे ॥५५२॥ वे मुझ बिचारी के बच्चे वैसे ही मेरी प्रतीक्षा करते खडे रहते है जैसे बछडे अपनी माँ को ॥५५३॥ वे मुझ बेचारी के बच्चे मेरी प्रतीक्षा में खडे होगे जैसे सरोवर पर हस ॥५५४॥ वे मुझ बेचारी के बच्चे आश्रम के पास मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे ॥५५५॥ एक ही रास्ता है, एक ही पथ है, तालाब तथा प्रपातो को देखते हुए। आश्रम जाने का मुझे दूसरा रास्ता नही दिखाई देता ॥५५६॥ हे जानवरो ! तुम्हे नमस्कार है। तुम जगल मे महाबलवान् राजा हो। तुम मेरे धर्म के भाई हो। मै माग रही हूँ। मुझे रास्ता दो ॥५५७॥ मै देश से निकाले गये श्रीमान् राजपुत्र की भार्य्या हूँ। मै उसी प्रकार उसकी उपेक्षा नही करती हूँ जैसे पति-व्रता सीता राम की ॥५५८॥ तुम शाम को सोने के समय अपने अपने बच्चो को देखते हो। मै भी जाली और कृष्णाजिना अपने दोनो बच्चो को देखूँ ॥५५९॥ फल-मूल बहुत है और खाद्य-सामग्री भी बहुत है। मै इसमें से आधे तुम्हें दे दूगी। तुम मागने पर रास्ता दे दो ॥५६०॥ हमारी मा-T राजपुत्री है, हमारा पिता राजपुत्र है। तुम धर्म के भाई बनो। मै मागती हूँ। मुझे रास्ता दे दो ॥५६१॥]

जब उन देवपुत्रो ने समय देख समझा कि अब उसे जाने देने का ठीक समय है तो वे उठकर चले गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने यह गाथा कही—

तस्सा लालप्पमानाय बहु कारुञ्ञसहित,
सुत्वा नेलपतिं वाच वाळा पन्था अपक्कमु ॥५६२॥

[उसे अत्यन्त करुणा पूर्ण स्वर मे विलाप करते (देख) और उसकी मधुर वाणी सुन जानवर रास्ते से हट गये ॥५६२॥]

जगली जानवरो के चले जाने पर वह भी आश्रम पहुची। वह पूर्णिमा-उपोसथ का दिन था। उसने योगाभ्यास के चबूतरे के सिरे पर खडे हो, जहाँ उसे पहले बच्चे दिखाई दे जाते थे, वहाँ उन्हे न देख कहा—

इमम्हि न पदेसम्हि पुत्त पसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता म तिट्ठन्ति वच्छा बालाव मातर ॥५६३॥
इमम्हि न पदेसम्हि पुत्तका पसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता म तिट्ठन्ति हस व उपरि पल्लले ॥५६४॥
इमम्हि न पदेसम्हि पुत्तका पसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता मॅ तिट्ठन्ति अस्समस्साविदूरतो ॥५६५॥
ते मिगा विय उक्कण्णा समन्तामभिधाविनो,
आनन्दितो पमुदिता वग्गमानाव कम्परे,
त्यज्जपुत्त न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५६६॥
छकलीव मिगी छाप पक्खी मुत्ताव प जरा,
ओहाय पुत्ते निक्खमिं सीहीवामिसगिद्धिनी,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५६७॥
इद तेस परक्कन्त नागानमिव पब्बते,
चितको परिकिण्णायो अस्समस्साविदूरतो,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५६८॥
वालुकायपि ओकिण्णा पुत्तका पसुकुण्ठिता,
समन्तामभिधावान्त ते न पस्सामि दारके ॥५६९॥
ये म पुरे पच्चुदेन्ति अरञ्ञा दूरमायतिं,
त्यज्जपुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५७०॥
छकलिव मिगिं छापा पच्चुग्गन्त्वान अस्समा,
दूरे म पविलोकेन्ति ते न पस्सामि दारके ॥५७१॥
इदञ्चतेस कीळनक पतित पण्डुबेळुव,
त्यज्ज पुत्तेन पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५७२॥

थना च मटिहमे पूरा उरो च सम्पदालति,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५७३॥
उच्छंगे मे विचिनन्ति थना एकाव लम्बति,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो॥५७४॥
यस्सु सायण्हसमय पुत्तका पसु कुण्ठिता,
उच्छगे मे विवत्रन्ति ते न पस्सामि दारके ॥५७५॥
अयं सो अस्समो पुब्बे समज्जो रटि भाति म,
त्यज्ज पुत्ते अपस्सन्त्या भमते विय अस्समो ॥५७६॥
किमिद अप्पसद्दोव अस्समो पटिभाति म,
काकोळापि न वस्सन्ति मता में नून दारका ॥५७७॥
किमिदं अप्पसद्दोव असम्मोपटिमाति मं,
सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून वारका ॥५७८॥

[इस जगह मेरे धूल-धूसरित बच्चे आकर मेरी प्रतीक्षा मे खडे हो जाते थे जैसे छोटे बछडे अपनी मा की ॥५६३॥ इस जगह जैसे सरोवर के ऊपर हस ॥५६४॥ इस जगह आश्रम से थोडी ही दूर पर मेरे धूल-धूसरित बच्चे आकर मेरी प्रतीक्षा मे खडे हो जाते थे ॥५६५॥ वे जो हिरन के बच्चो की तरह उछलते हुए चारो ओर दौडते थे, आनन्दित, प्रमुदित, उछल कूदकर (माता के हृदय को) कपाते थे, मै आज जाली और कृष्णाजिना अपने दोनो बच्चो को नही देखती ॥५६६॥ जैसे बकरी, मृगी अथवा पिंजरे से मुक्त पक्षी और मास-लोभिनी सिंहनी अपने बच्चो को छोडकर चली जाती है, उसी प्रकार मै उन्हे छोडकर निकली। मै आज नही देखती ॥५६७॥ पर्वत पर नागो के पद-चिह्न के समान ये उनके पद-चिह्न है और ये आश्रम से थोडी ही दूर पर बिखरे हुए बालू के ढेर है। मै आज नही देखती ॥५६८॥ बालू लगे और धूल-धूसरित बच्चे मेरे चारो ओर दौडते थे। उन बच्चो को (आज) नही देखती ॥५६९॥ जगल मे दूर से आते देखकर ही जो पहले मेरी अगवानी करते थे मै आज . नही देखती ॥५७०॥ बकरी और मृगी के बच्चो के समान जो आश्रम से मेरी अगवानी करने के लिये जाते थे और मुझे दूर से ही देखते थे, उन बच्चो को आज नही देखती ॥५७१॥ यह उनके खेलने का पाण्डु-वर्ण बिल्व गिरा पडा है । मै आज नही देखती ॥५७२॥ मेरे स्तन दूध से भरे है और हृदय फट रहा है। मै आज -

नही देखती ।।५७३।। मेरी गोद मं लोटते थे, एक स्तन से लटक जाती थी। मैं आज नही देखती ।।५७४।। शाम को जो धूल-धूसरित बच्चे मेरी गोद मे लोटते थे, मैं उन बच्चो को नही देखती ।।५७५।। यह आश्रम मुझे पहले महफिल की तरह मालूम देता था, आज जब बच्चे नही दिखाई देते है तो वह आश्रम मुझे घूमता हुआ मालूम देता है ।।५७६।। यह क्या है कि आश्रम मे कुछ आवाज नही सुनाई देती। कौवे तक भी नही बोल रहे है। निश्चय से बच्चे मर गये है ।।५७७।। यह क्या है नही सुनाई देती। पक्षी तक भी गये है ।।५७८।।]

इस प्रकार विलाप करती हुई वह बोधिसत्व के पास पहुची और फलो की टोकरी उतारी। जब उसने बोधिसत्व को चुप-चाप बैठे और उसके पास बच्चो को न देखा तो वह बोली—

किमिद तुण्हीभूतोसि अपि रत्तेव मे मनो,
काकोळापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ।।५७९।।
किमिद तुण्हीभूतोसि अपि रत्तेव मे मनो,
सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ।।५८०।।
कच्चिनु में अय्यपुत्त मिगा खादिंसु दारके,
अरञ्जे इरिने विवने केन नीतामे दारका ।।५८१।।
आदु ते पहिता दूता आदु सुत्ता पियवदा,
आदु बहि नो निक्खन्ता खिड्डासु पसुता नु ते ।।५८२।।
नेवास केसा विस्सन्ति हत्थपादा न जालिनो,
सकुणान व ओपातो केन नीता मे दारका ।।५८३।।

[आप चुप क्यो है। मेरा मन रात जैसा है। कौवे भी नही बोलते हैं। निश्चय से मेरे बच्चे मर गये है ।।५७९।। आप चुप क्यो है ? पक्षी भी गये है ।।५८०।। आर्य-पुत्र ! क्या मेरे बच्चो को जगली जानवर खा गये ? इस वीरान सूने जगल में से मेरे बच्चो को कौन ले गया ? ।।५८१।। क्या उन्हे कही दूत बनाकर भेज दिया है ? क्या वे प्रियभाषी सोये पडे है ? क्या वे खेलने में मस्त होकर बाहर गये हैं ? ।।५८२।। न उनके बाल दिखाई देते है और न जाली के हाथ-पाँव दिखाई देते हैं। क्या पक्षी आ पडे है ? मेरे बच्चो को कौन ले गया ? ।।५८३।।]

ऐसा कहने पर भी बोधिसत्व कुछ नही बोला। तब उसने 'देव! मुझसे बोलते क्यो नही, मेरा क्या अपराध है?' पूछते हुए कहा—

इद ततो दुक्खतर सल्लविद्धो यथा वणो,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालि कण्हाजिनञ्चुभो ॥५८४॥
इदम्पि दुतिय सल्ल कम्पेति हदयं मम,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि त्वञ्च म नाभिभाससि ॥५८५॥
अज्जेव मे इम रत्ति राजपुत्त न ससति,
मञ्ञे उक्कन्त सत्त म पातो दक्खिसि नो मत ॥५८६॥

[यह उससे भी बढकर दु ख है, जैसे जख्म को शल्य से बीध दिया गया हो, यह जो मैं जाली और कृष्णाजिना दोनो बच्चो को नही देखती हूँ ॥५८४॥ यह जो दूसरा शल्य है वह मेरे हृदय को कँपाता है, मैं जाली और कृष्णाजिना दोनो बच्चो को नही देखती हूँ और आप भी मुझने नही बोलते है ॥५८५॥ हे राजपुत्र! यदि आज ही रात मुझे नही बतायेंगे तो ऐसा लगता है कि आप मुझे प्रात काल विगत-जीव मरा हुआ पायेंगे ॥५८६॥]

बोधिसत्व ने कठोर वाणी से उसका पुत्र-शोक दूर करने के विचार से कहा—

ननूमद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
पातो गतासि उञ्छाय किमिद सायमागता ॥५९०॥

[हे माद्री! हे श्रेष्ठ नारी! हे राजपुत्री! हे यशस्विनी! तू फल-मूल लेने के लिये प्रात काल गई और अब रात (सायकाल) को लौटी है! ॥५९०॥]

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—

ननुत्व सद्दमस्सोसि ये सर पातुमागता,
सीहस्स विनदन्तस्स व्यग्घस्स च निकुज्जित ॥५९१॥
अहु पुब्बनिमित्त मे विचरन्त्या ब्रहा वने,
खणित्तो मे हत्था पतितो उग्गीवञ्चापि असतो ॥५९२॥
तदाह व्यथिता भीता पुथु कत्वान अञ्जलिं,
सब्बा दिसा नमस्सिस अपि सोत्थि इतो सिया ॥५९३॥
माहेव नो राजपुत्तो हतो सीहेन दीपिना,
दारका वा परामट्ठा अच्छकोकतरच्छिहि ॥५९४॥

सीहो व्यग्घो च दीपी च तयो वाळा वने मिगा,
ते म परिया वरु मग्ग तेन सायम्हि आगता ॥५९५॥

[क्या तूने तालाव पर पानी पीने आये दहाडते हुए सिंह और व्याघ्र की आवाज नही सुनी ? ॥५९१॥ घोर जगल मे विचरते समय इस दु ख का पूर्व-लक्षण प्रकट हुआ। मेरे हाथ से खती गिर पडी और कधे से उद्ग्रीव भी खिसक पडा ॥५९२॥ तव मैने व्यथित और भयभीत होकर वारवार हाथ जोडकर सभी दिशाओ को नमस्कार किया कि अव कल्याण हो ॥५९३॥ राजपुत्र को सिंह, चीते आदि न मारें और वच्चे भालू, भेडिये तथा लकड-वग्घे से वचे रहे ॥५९४॥ सिंह, व्याघ्र और चीता, इन तीन जगली जानवरो ने मेरा रास्ता रोक लिया। इसलिये मैं शाम को आई ॥५९५॥]

वोधिसत्व ने उससे उतनी ही वात की। फिर अरुणोदय होने तक कुछ नही बोला। तब से माद्री नाना प्रकार से विलाप करती रही—

अह पतिञ्च पुत्तेच आचेरमिव माणवो,
अनुट्ठिता दिवारत्ति जटिनी ब्रह्मचारिणी ॥५९६॥
अजिनानि परिदहित्वा वनमूलफलहारिया,
विचरामि दिवारत्ति तुम्ह कामा हि पुत्तका ॥५९७॥
इम सुवण्णहालिद्दि आभत पण्डुबेळुव,
रुक्खपक्कानि चाहासि इमेते पुत्ता कीळना ॥५९८॥
इम मुळालवटक सालुक पिञ्जरोदक,
भुञ्ज खुद्देहि सयुत्त सहपुत्ते हि खत्तिय ॥५९९॥
पदुम जालिनो देहि कुमुद पन कुमारिया,
मालिने पस्स नच्चन्ते सिविपुत्तानि वव्हय ॥६००॥
ततो कण्हाजिनायापि निसामेहि रथेसभ,
मञ्जुस्सराय वग्गुया अस्सम उपयन्तिया ॥६०१॥
समानसुखदुक्खम्हा रट्ठा पब्बाजिता उभो,
अपि सिविपुत्ते पस्सेसि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥६०२॥
समणे ब्राह्मणे नून ब्रह्मचरिय परायणे,
अह लोके अभिसपिं सीलवन्ते बहुस्सुते,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥६०३॥

[मैने जटाधारिणी ने, ब्रह्मचारिणी ने दिन रात पति तथा पुत्रो की ऐसी सेवा की जैसे विद्यार्थी अपने आचार्य की ।।५९६।। हे बच्चो ! तुम्हारे ही हित मे अजिन चर्म धारण करके दिनरात वन के फलमूल खोजती फिरती हूँ ।।५९७।। यह मै स्वर्ण-वर्ण हलदी लाई हूँ और यह पाण्डु-वर्ण बिल्व । और हे पुत्र ! यह दूसरे वृक्ष पर पके हुए फल हैं। ये तुम्हारे खिलौने हैं ।।५९८।। यह मूल-खण्ड है, यह सालु है और ये सिंघाडे हैं। हे क्षत्रिय ! इन्हे पुत्रो के साथ मधु-मिश्रित करके खाये ।।५९९।। जाली को पद्म दे और कुमारी को कुमुद । नाचते हुए मालाधारी जीवो (?) को देखे और सिविपुत्र को बुलायें ।।६००।। हे रथेसभ ! तब मधुर स्वर वाली, सुन्दर, आश्रम आने वाली कृष्णाजिना की ओर भी ध्यान दे ।।६०१।। हम दोनो सुख-दुख मे समान रहे हैं और राष्ट्र से निकाले गये हैं। मुझे जालि और कृष्णाजिन बच्चे दिखाये ।।६०२।। मैने निश्चय से ब्रह्मचारी, सदाचारी, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणो को लोक मे शाप दिया होगा। मै आज जाली और कृष्णाजिना दोनो बच्चो को नही देखती हूँ ।।६०३।।]

उसके इस प्रकार विलाप करने पर भी बोधिसत्व ने कुछ नही कहा। उसके चुप रहने पर वह कापती हुई चन्द्रमा के प्रकाश मे बच्चो को खोजने लगी। जहाँ-जहाँ जामुन के वृक्ष आदि के नीचे वे खेलते थे उन उन स्थानो पर जा विलाप करती हुई वह कहने लगी—

इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिका,
विविधानि रुक्खजातानि ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०४।।
अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
विविधानि फलजातानि ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०५।।
इमे तिट्ठन्ति आरामा अय सीतोदिका नदी,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०६।।
विविधानि फलजातानि अस्मि उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे भुञ्जिसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०७।।
इमे ते हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च ते इमे,
ये हिस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०८।।

[ये वे जामुन के वृक्ष हैं, वेदिसा (वृक्ष) है, सिन्धुवारिका (वृक्ष) है तथा अन्य नाना प्रकार के वृक्ष हैं । वे बच्चे नही दिखाई देते ।।६०४।। पीपल, कटहल,

न्यग्रोध तथा कैथ नाना प्रकार के फल हैं, वे बच्चे नही दिखाई देते ॥६०५॥ ये वे आराम है और यह शीतल नदी है, जहाँ वे पहले खेलते थे, वे बच्चे नही दिखाई देते ॥६०६॥ इस पर्वत के ऊपर नाना प्रकार के पुष्प हैं, जिन्हे वे पहले धारण करते थे। वे बच्चे नही दिखाई देते ॥६०७॥ इस पर्वत के ऊपर नाना प्रकार के फल है, जिन्हें वे पहले खाते थे। वे बच्चे दिखाई नही देते ॥६०८॥ ये हाथी, घोडे और ये बैल हैं जिनसे वे पहले खेलते थे। वे कुमार दिखाई नही देते ॥६०९॥]

जब उसे पर्वत के ऊपर बच्चे नही दिखाई दिये तो वहाँ से उतरी और फिर आश्रम आकर उन्हे खोजने लगी। वहाँ उनके खिलौने देख बोली—

इमे सामा ससोलूका बहुका कदली मिगा,
येहिस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ॥६१०॥
इमे हंसा च कोञ्चा च मयूरा चित्रपेक्खुणा,
ये हिस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ॥६११॥

[ये (स्वर्ण-) मृग है, ये खरगोश हैं, ये उल्लू है और ये बहुत से कदली मृग हैं जिनसे वे पहले खेलते थे । अब वे बच्चे दिखाई नही देते ॥६१०॥ ये हंस है, ये क्रौंच है और ये चित्रित परो वाले मोर है, जिनसे वे पहले खेलते थे। अब वे बच्चे दिखाई नही देते ॥६११॥]

जब उसे आश्रम मे भी अपनी प्रिय सन्तान दिखाई नही दी तो वह वहाँ से निकली और पुष्पित गहन-वन मे चली गई। उस स्थान को देखती हुई वह बोली—

इमा ता वनगुम्बायो पुप्फिता सब्बकालिका,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ॥६१२॥
इमा ता पोक्खरणियो रम्मा चक्कवाकुपकूजिता,
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ॥६१३॥

[ये सर्वदा पुष्पित रहने वाले वन-समूह है, जहाँ वे पहले खेलते थे। अब वे बच्चे दिखाई नही देते ॥६१२॥ ये वे रमणीक पुष्करिणियाँ हैं जहा चक्रवाक

गूजते हैं और जो मन्दालक, पद्म-उत्पलो से ढकी है और जहाँ पहले बच्चे खेलते थे अब वे बच्चे दिखाई नही देते ॥६१३॥]

जब उसे कही भी बच्चे न दिखाई दिये तो वह फिर बोधिसत्व के पास पहुँची और उसे चिन्तित देख बोली—

न ते कट्ठानि भिन्नानि न ते उदकमाभत,
अग्गिपि ते न हापितो किन्नु मन्दोव झायसि ॥६१४॥
पियो पियेन सगम्म समो मे व्यप ज्जति,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालि कण्हाजिनञ्चुभो ॥६१५॥

[न तो तूने लकडी ही तोडी है और न पानी ही ला रखा है। आग भी नहीं जलाई है। क्या सोच कर रहे हैं ? ॥६१४॥ (पहले) प्रिय का प्रिय से मेल होने से दु ख दूर हो जाता था । मैं आज जालि और कृष्णार्जिना दोनो बच्चो को नही देखती हूँ ॥६१५॥]

उसके ऐसा कहने पर भी बोधिसत्व चुप-चाप ही बैठा रहा । उसके कुछ न बोलने पर वह शोक-म ा आहत-मृगी की तरह काँपती हुई, जहाँ जहाँ पहले गई थी वहाँ वहाँ फिर जा कर लौटी। वह बोली—

न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
काकोळापि न वस्सन्ति हता मे नून दारका ॥६१६॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ॥६१७॥

[देव ! मुझे वे दिखाई नही देते। ये भी नही जानती कि कैसे मरे ? कौवे भी नही बोलते हैं। मेरे बच्चे निश्चय से मर गये ॥६१६॥ देव ! मुझे वे मरे ? पक्षी भी मर गये ॥६१७॥]

इतना बोलने पर भी बोधिसत्व मौन ही रहा । पुत्र-शोक से अभिभूत होने के कारण वह तीसरी बार भी उन्ही स्थानो में वायु-वेग से घूमी । एक रात में घूमने की जगह घूमने पर पन्द्रह योजन की (सी) हो गई । रात बीत गई। अरुणोदय हो गया। वह फिर जाकर बोधिसत्व के पास खडी हो विलाप करने लगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सा तत्थ परिदेवित्वा पब्बतानि वनानि च,
पुन देवस्सम गन्त्वा सामिकस्सन्ति रोदति ॥६१८॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
काकोळापि न वस्सन्ति हता मे नून दारका ॥६१९॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
सकुणपि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ॥॥६२०॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
विचरन्ति रुक्खमूलेसु पब्बतेसु गुहासु च ॥६२१॥
इति मद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
बाहा पग्गय्ह कन्दित्वा तत्थेव पतिता छमा ॥६२२॥

[वह पर्वतो तथा वनो मे विलाप कर चुकने के बाद फिर स्वामी के पास जा कर रोने लगी ।।६१८-६२०।। देव ! मैं वृक्षो के नीचे, पर्वतो में और गुहाओ मे घूमती हूँ । मुझे पता नही लगता कि वे कैसे मरे है ।।६२१।। इस प्रकार वह श्रेष्ठ-देवी, यशस्विनी, राजपुत्री हाथ उठाकर रोती हुई वही जमीन पर गिर पडी ।।६२२।।]

बोधिसत्व यह समझ कि यह मर गई है सोचने लगा कि माद्री विदेश मे अनुचित जगह पर मरी । यदि जेतुत्तर नगर में इसकी काल क्रिया हुई होती तो बहुत सत्कृत होती । दोनो राष्ट्र दहल जाते । मै जगल में अकेला हूँ । मै क्या करूँ ? उसे बहुत शोक हुआ । लेकिन उसने होश सभाला और सोचा कि पहले देखता हूँ, उसने उसके हृदय पर हाथ रखकर देखा तो वह गर्म लगा । वह कमण्डल मे जल ले आया । यद्यपि सात महीने तक उसका शरीर-स्पर्श नही हुआ था तो भी स्नेह की अधिकता के कारण वह प्रव्रजित-भाव का ख्याल न रख सका । उसने अश्रु-पूर्ण नेत्रो से उसका सिर उठाकर जाघ मे रखा और पानी के छीटे दे, बैठा बैठा उसका मुह और छाती मलने लगा । माद्री को भी थोडी देर के बाद होश आ गया । वह उठी और लज्जा-भय का ख्याल कर बोधिसत्व को नमस्कार करके बोली—"स्वामी वेस्सन्तर ! बच्चे कहाँ गये हैं ?"

"देवी ! मैने एक ब्राह्मण को दास-कर्म के लिये दे दिये ।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मक्खपत्त राजपुत्तिं उदकेन अभिसिञ्चय,
अस्सत्थ त विदित्वान अथ न एतदब्रवि ॥६२३॥

[उस अपने पास आई हुई राजपुत्री पर पानी छिडका और जब उसे आश्वस्त जाना तो उसे यह कहा ।।६२३।।]

तब उसने पूछा—"पुत्र ब्राह्मण को देकर मेरे सारी रात विलाप करके घूमते रहने पर भी मुझे क्यो नही बताया ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

आदियेनेव ते मद्दि दुक्ख न कातुमिच्छिय,
दलिद्दो याचको वुद्धो ब्राह्मणो घरमागतो,
तस्स दिन्ना मया पुत्ता माद्दि मा भायि अस्सस ।।६२४।।
म पस्स मद्दि मा पुत्ते मा बाळ्ह परिदेवसि ,
लच्छाम पुत्ते जीवन्ता अरोगा च भवामसे ।।६२५।।
पुत्ते पसुञ्च धञ्जञ्च यञ्च मञ्ञ घरे धन,
दज्जा सप्पुरिसो दान दिस्वा याचकमागते ,
अनुमोदाहि मे मद्दि पुत्तके दानमुत्तम ।।६२६।।

[माद्री ! मैने तुझे आरम्भ मे ही दु ख पहुँचाना नही चाहा । एक दरिद्र बूढा ब्राह्मण घर आ गया था । माद्री ! मैंने उसे पुत्र दे दिये हैं । भय मत कर। आश्वस्थ हो ।।६२४।। माद्री ! मेरी ओर देख । पुत्रो की ओर न देख । अधिक मत रो । जीते रहे तो पुत्र मिल जायेंगे और हम सुखी होगे ।।६२५।। याचक के आने पर सत्पुरुष को चाहिये कि पुत्र, पशु, धान्य और घर मे जो धन हो वह उसे दे । माद्री ! पुत्रो का दान श्रेष्ठ है । तू मेरा अनुमोदन कर ।।६२६।।]

माद्री बोली—

अनुमोदामि ते देव पुत्तके दानमुत्तम,
दत्वा चित्त पसादेहि भिय्यो दानदवोभव ।।६२७।।
यो त्व मच्छेरभूतेसु मनुस्सेसु जनाधिप,
ब्राह्मणस्स अदा दान सिवीन रट्ठवड्ढनो ।।६२८।।

[हे देव ! जो तूने पुत्रो का श्रेष्ठ दान दिया है, मैं उसका अनुमोदन करती हूँ । (दान) देकर चित्त को प्रसन्न कर तथा और भी दान देने वाला हो ।।६२७।। हे राजन ! हे सिवियो के राष्ट्रवर्धन ! आपने जो मात्सर्य्य-युक्त मनुष्यो में ब्राह्मण को दान दिया (उससे भी और अधिक दान दे) ।।६२८।।]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने माद्री को कहा—'मादी ! यह तू क्या कहती

है ? यदि पुत्र दे कर मैंने चित्त प्रसन्न न किया होता तो ये आश्चर्य न हुए होते' कह सभी पृथ्वी के नाद करने आदि आश्चर्य्यो का वर्णन किया। तब माद्री ने उन आश्चर्य्यो की बात सोच दान का अनुमोदन करते हुए कहा—

निन्नादिता ते पठवी सद्दो ते तिदिव गतो,
समन्ता विज्जुता आगु गिरीन व पतिस्सुता ॥६२९॥

[तेरे लिये पृथ्वी ने निनाद किया। वह शब्द त्रि-दिव (लोक) तक पहुँचा। पर्वतो के प्रति-श्रुत शब्द की तरह चारो ओर से अकाल-बिजली उठी ॥६२९॥]

तस्स ते अनुमोदन्ति उभो नारद पब्बता,
इन्दो च ब्रह्मा च प्रजापती च,
सोमो यमो वेस्सवणोव राजा,
सब्बे देवा अनुमोदन्ति तावतिंसा स इन्दका ॥६३०॥
इति मद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
वेस्सन्तरस्स अनुमोदि पुत्तके दानमुत्तम ॥६३१॥

[दोनो नारद-पर्वत (वासी देवताओ) ने उसके दान का अनुमोदन किया। इन्द्र ने किया, ब्रह्मा ने किया और प्रजापति ने किया। सोम, यम तथा कुबेर ने किया। सभी देवता अनुमोदन करते हैं और त्रयोत्रिंश देवता ॥६३०॥ इस प्रकार श्रेष्ठ देवी, यशस्विनी, राजपुत्री माद्री ने वेस्सन्तर द्वारा दिये गये पुत्रो के श्रेष्ठ दान का अनुमोदन किया ॥६३१॥]

माद्री-पर्व समाप्त

इस प्रकार जब वे आपस में मेल की बातचीत कर रहे थे शक्र ने सोचा—'वेस्सन्तर राजा ने कल पूजक को पुत्रो का दान दे पृथ्वी को गुंजा दिया। अब कोई हीन पुरुष उसके पास जा, सभी लक्षणो से युक्त शीलवती माद्री को उससे माँग, राजा को अकेला छोड, माद्री को ले कर(न)चल दे। तब वह अनाथ, असहाय हो जाय।' उसने और सोचा कि मैं ब्राह्मण वेष से उसके पास जा, माद्री को माँग, उसकी (दान-) पारमिता को शिखर पर चढा, किसी के लिये अदेय बना, फिर उसे उसी को लौटा कर आऊँगा। वह सूर्य्योदय के समय उसके पास पहुँचा। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमंणम्पति,
सक्को ब्राह्मणवण्णेन पातो तेसं अदिस्सथ ॥६३२॥

[तब रात्रि की समाप्ति होने पर, सूर्य्योदय होने पर, प्रात काल ही शक्र ब्राह्मण-वेष मे उनके सामने प्रकट हुआ ॥६३२॥]

उसने कुशल-क्षेम पूछी—

कच्चिन्नु भोतो कुसल कच्चि भोतो अनामय,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू ॥६३३॥
कच्चि डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥६३४॥

[देखे गाथा सख्या ॥३७२ तथा ३७३॥]

बोधिसत्व ने भी उत्तर दिया—

कुसलञ्चेव नो ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामय,
अथो उञ्छेन यापेम अथो मूलफला बहू ॥६३५॥
अथो डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा अम्ह न विज्जति ॥६३६॥
सत्त नो मासे वसत अरञ्ञे जीवसोकिन,
इमम्पि दुतिय पस्साम ब्राह्मण देववण्णिन,
आदाय बेळुव दण्डं धारेन्त अजिनक्खिपं ॥६३७॥

[देखे गाथा सख्या ३७४ तथा ३७५ ॥ जगल मे बिना किसी के (अकेले) रहते सात महीने हो गये। यह देव वर्ण ब्राह्मण का दूसरा दर्शन है—बिल्व का डण्डा और अजिन-चर्म का पहनावा ॥६३७॥]

स्वागतं ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागत,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥६३८॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वर वर ॥६३९॥
इदम्पि पाणीय सीत आभत गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचेत्व अभिकङ्खसि ॥६४०॥

[देखें गाथा सख्या ३७७, ३७८ तथा ३७६।।]

इस प्रकार उसके साथ कुशल-क्षेम बतिया कर आने का कारण पूछा—

अयत्थ केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
अनुपत्तो ब्रह्।रञ्ज त मे अक्खाहि पुच्छितो ।।६४१।।

[देखें गाथा सख्या ४६०।।]

तब शक्र ने 'महाराज ! मैं बूढा हो गया हूँ। यह मै आपकी भार्य्या माद्री की याचना करने आया हूँ। वह मुझे दे' कह गाथा कही—

यथा वारिवहो पूरो सब्बकाल न खीयति,
एव त याचितागञ्छिं भरिय मे देहि याचितो ।।६४२।।

[जैसे भरी हुई नदी कभी क्षीण नही होती। इसी प्रकार मैं तुमसे याचना करने आया हूँ। मेरे मागने पर आप अपनी भार्य्या मुझे दे ।।६४२।।]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने 'ब्राह्मण ! कल बच्चे दे दिये थे। जगल में अकेला रह कर तुझे माद्री कैसे दे दूँ ?' न कह फैलाये हाथ पर हजार की थैली रखने की तरह बिना चिपके, बिना बँधे, आसक्ति रहित हो कर पर्वत को गुँजाते हुए यह गाथा कही—

ददामि न विकम्पामि य म याचसि ब्राह्मण,
सन्त नप्पटिगुहामि दाने में रमती मनो ।।६४३।।

[हे ब्राह्मण ! जो तू माँगता है मै देता हूँ। मैं विचलित नही होता हूँ। जो है उसे मैं छिपाता नही हूँ। मुझे दान देना अच्छा लगता है ।।६४३।।]

यह कह शीघ्र ही कमण्डलु से जल ले हाथ पर गिरा ब्राह्मण को भार्य्या दे दी। उसी क्षण उपरोक्त प्रकार के सभी आश्चर्य हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मद्दिं हत्थे गहेत्वान उदकस्स च कमण्डलु,
ब्राह्मणस्स अदा दान सिवीन रट्ठवड्ढनो ।।६४४।।
तदासि यं भिंसनक तदासि लोमहसन,
मद्दिं परिच्चजन्तस्स मेदिनी समकम्पथ ।।६४७।।
नेवस्स मद्दी भकुटी न सन्धीयति न रोदति,
पेक्खतेवस्स तुण्ही सा एसो जानाति यं वर ।।६४८।।

[सिवियो के राष्ट्रवर्धन ने हाथ मे पानी का कमण्डलु लिया और माद्री को हाथ से पकड कर ब्राह्मण को दान दिया ।।६४४।। उस समय भय उत्पन्न हुआ, उस समय रोमाच हुआ । जब माद्री त्यागी गई उस समय पृथ्वी काप उठी ।।६४७।। माद्री ने न भौ टेढी की, न विरोध किया और न रोई । वह यह मान कर कि यह जानता है कि क्या श्रेष्ठ है चुपचाप देखती रही ।।६४८।।]

कहा भी गया है—

> जालिं कण्हाजिनं धीतं मद्दिदेविं पतिब्बतं,
> चजमानो न चिन्तेसिं बोधिया येव कारणा ।।६४८।।
> न मे देस्सा उभो पुत्ता मद्दी देवी न देस्सिया,
> सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा पिये अदासहं ।।६४९।।

[जालि (कुमार) कृष्णाजिना पुत्री और माद्री पतिव्रता का त्याग करते हुए बोधि के ही कारण से मैंने चिन्ता नही की ।।६४८।। दोनो बच्चो से भी मेरा द्वेष नही और माद्री से भी मेरा द्वेष नही । किन्तु मुझे सर्वज्ञता प्रिय है । इसलिए मैंने प्रियो का त्याग कर दिया ।।६४९।।]

बोधिसत्व ने 'माद्री कैसा है' पूछते हुए मुँह देखा । उसने 'देव ! मेरी ओर क्या देखते है ?' कह सिंह-नाद करते हुए यह गाथा कही—

> कोमारी यस्सहं भरिया सामिको मम इस्सरो,
> यस्सिच्छे तस्स मं दज्जा विक्किणेय्य हनेय्य वा ।।६५०।।

[मै कुमारी जिसकी भार्य्या हूँ, वह मेरा स्वामी है, वह मेरा ईश्वर है । वह जिसे चाहे उसे दे, बेचे वा मार डाले ।।६५०।।]

शक्र ने उनके श्रेष्ठ विचार की स्तुति की । इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> तेसं सङ्कप्पमञ्ञाय देविन्दो एतदब्रवि,
> सब्बे जिताते पच्चूहा ये दिब्बा ये च मानुसा ।।६५१।।
> निन्नादिता ते पठवी सद्दो ते तिदिवं गतो,
> समन्ता विज्जुता आगु गिरीनं व पटिस्सुता ।।६५२।।
> तस्स ते अनुमोदन्ति उभो नारद पब्बता,
> इन्दो च ब्रह्मा च पजापती च,

सोमो यमो वेस्सवणो च राजा,
सब्बे देवा अनुमोदन्ति दुक्कर हि करोति सो ॥६५३॥
दुद्द ददमानान दुक्कर कम्मकुब्बत,
असन्तो नानुकुब्बन्ति सत धम्मो दुरन्नयो ॥६५४॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति,
असन्तो निरय यन्ति सन्तो सग्गपरायणा ॥६५५॥
यमेत कुमारे अददा भरिय अददा वने वस,
ब्रह्मयानमनोककम्म सग्गे ते त विपच्चतु ॥६५६॥

[उनका सकल्प जान देवेन्द्र बोला—दिव्य तथा मानुष सभी शत्रुओ को जीत लिया है ॥६५१॥ तुमने पृथ्वी गुजा दी। तुम्हारा स्वर त्रिदिव (लोक) तक पहुँच गया। गिरियो की प्रति-श्रुति के समान चारो ओर से (अकाल) बिजली कौध गई। दोनो नारद पर्वतो के अधिवासी देवता तेरा अनुमोदन करते हैं—इन्द्र, ब्रह्मा और प्रजापती। सोम, यम और राजा कुबेर सभी देवता अनुमोदन करते है कि बडा दुष्कर कार्य्य किया है ॥६५२-६५३॥ देने वालो के लिये देना कठिन है, करने वालो के लिये यह कर्म दुष्कर है। असत्पुरुष ऐसा कर्म नही करते। सत्पुरुषो की गति दुर्ज्ञेय है ॥६५४॥ इसलिये सत्पुरुषो तथा असत्पुरुषो की गति भिन्न भिन्न होती है। असत्पुरुष नरक को जाते है, सत्पुरुप स्वर्ग को जाते है ॥६५५॥ जो बच्चो का दान किया और जो जगल मे रहते भार्य्या का दान दिया, यह ब्रह्म-यान नरक-लोक को लाघ कर स्वर्ग में फल दायक हो ॥६५६॥]

इस प्रकार शक्र ने अनुमोदन कर और यह सोच कि मुझे अब यहाँ विलम्ब नही करना चाहिये और यह इसे ही देकर जाना चाहिये, ये गाथायें कही—

ददामि भोतो भरिय मद्दि सब्बगसोभन,
त्वञ्ञेव मद्दिया छन्नो मद्दीच पतिनासह ॥६५७॥
यथा पयो च सखो च उभो समानवण्णिनो,
एव तुवञ्च मद्दीच समानमनचेतसा ॥६५८॥
अवरुद्धेथ अरञ्ञस्मि उभो सम्मथ अस्समे,
खत्तिया गोत्तसम्पन्ना सुजाता मातुपेत्तितो,
यथा पुञ्ञानि कयिराथ ददन्ता अपरापर ॥६५९॥

[सिवियो के राष्ट्रवर्धन ने हाथ मे पानी का कमण्डलु लिया और माद्री को हाथ से पकड कर ब्राह्मण को दान दिया ।।६४४।। उस समय भय उत्पन्न हुआ, उस समय रोमाच हुआ। जब माद्री त्यागी गई उस समय पृथ्वी काप उठी ।।६४७।। माद्री ने न भौ टेढी की, न विरोध किया और न रोई। वह यह मान कर कि यह जानता है कि क्या श्रेष्ठ है चुपचाप देखती रही ।।६४८।।]

कहा भी गया है—

जालिं कण्हाजिन धीत मद्दिदेवि पतिब्बत,
चजमानो न चिन्तेसि बोधिया येव कारणा ।।६४८।।
न मे देस्सा उभो पुत्ता मद्दी देवी न देस्सिया,
सब्बञ्ञुत पिय मय्ह तस्मा पिये अदासह ।।६४९।।

[जालि (कुमार) कृष्णाजिना पुत्री और माद्री पतिव्रता का त्याग करते हुए बोधि के ही कारण से मैंने चिन्ता नही की ।।६४८।। दोनो बच्चो से भी मेरा द्वेष नही और माद्री से भी मेरा द्वेष नही। किन्तु मुझे सर्वज्ञता प्रिय है। इसलिए मैंने प्रियो का त्याग कर दिया ।।६४९।।]

बोधिसत्व ने 'माद्री कैसा है' पूछते हुए मुँह देखा। उसने 'देव! मेरी ओर क्या देखते है?' कह सिंह-नाद करते हुए यह गाथा कही—

कोमारी यस्सह भरिया सामिको मम इस्सरो,
यस्सिच्छे तस्स म दज्जा विकिणेय्य हनेय्य वा ।।६५०।।

[मै कुमारी जिसकी भार्य्या हूँ, वह मेरा स्वामी है, वह मेरा ईश्वर है। वह जिसे चाहे उसे दे, बेचे वा मार डाले ।।६५०।।]

शक्र ने उनके श्रेष्ठ विचार की स्तुति की। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेस सकप्पमञ्ञाय देविन्दो एतदब्रवि,
सब्बे जितातेपच्चूहा ये दिब्बा ये च मानुसा ।।६५१।।
निन्नादिता ते पठवी सद्दो ते तिदिव गतो,
समन्ता विज्जुता आगु गिरीन व पटिस्सुता ।।६५२।।
तस्स ते अनुमोदन्ति उभो नारद पब्बता,
इन्दो च ब्रह्मा च पजापती च,

सोमो यमो वेस्सवणो च राजा,
सब्बे देवा अनुमोदन्ति दुक्कर हि करोति सो ॥६५३॥
दुद्द ददमानान दुक्कर कम्मकुब्बत,
असन्तो नानुकुब्बन्ति सत धम्मो दुरन्नयो ॥६५४॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति,
असन्तो निरय यन्ति सन्तो सग्गपरायणा ॥६५५॥
यमेत कुमारे अददा भरिय अददा वने वस,
ब्रह्मयानमनोककम्म सग्गे ते त विपच्चतु ॥६५६॥

[उनका सकल्प जान देवेन्द्र बोला—दिव्य तथा मानुष सभी शत्रुओ को जीत लिया है ॥६५१॥ तुमने पृथ्वी गुजा दी। तुम्हारा स्वर त्रिदिव (लोक) तक पहुँच गया। गिरियो की प्रति-श्रुति के समान चारो ओर से (अकाल) बिजली कौंध गई। दोनो नारद पर्वतो के अधिवासी देवता तेरा अनुमोदन करते है—इन्द्र, ब्रह्मा और प्रजापती। सोम, यम और राजा कुबेर सभी देवता अनुमोदन करते है कि बडा दुष्कर कार्य्य किया है ॥६५२-६५३॥ देने वालो के लिये देना कठिन है, करने वालो के लिये यह कर्म दुष्कर है। असत्पुरुष ऐसा कर्म नही करते। सत्पुरुषो की गति दुर्ज्ञेय है ॥६५४॥ इसलिये सत्पुरुषो तथा असत्पुरुषो की गति भिन्न भिन्न होती है। असत्पुरुष नरक को जाते है, सत्पुरुष स्वर्ग को जाते है ॥६५५॥ जो बच्चो का दान किया और जो जगल मे रहते भार्य्या का दान दिया, यह ब्रह्म-यान नरक-लोक को लाघ कर स्वर्ग मे फल दायक हो ॥६५६॥]

इस प्रकार शक्र ने अनुमोदन कर और यह सोच कि मुझे अब यहाँ विलम्ब नही करना चाहिये और यह इसे ही देकर जाना चाहिये, ये गाथाये कही—

ददामि भोतो भरिय मद्दि सब्बगसोभन,
त्वञ्ञेव मद्दिया छन्नो मद्दीच पतिनासह ॥६५७॥
यथा पयो च सङ्खो च उभो समानवण्णिनो,
एव तुवञ्च मद्दीच समानमनचेतसा ॥६५८॥
अवरुद्धेथ अरञ्ञस्मि उभो सम्मथ अस्समे,
खत्तिया गोत्तसम्पन्ना सुजाता मातुपेत्तितो,
यथा पुञ्ञानि कयिराथ ददन्ता अपरापर ॥६५९॥

[मै तेरी सर्वाङ्ग सुन्दरी भार्य्या माद्री तुझे देता हूँ। तू ही माद्री के अनुरूप है और माद्री पति के अनुरूप है ।।६५७।। जैसे दूध और शङ्ख का वर्ण एक ही जैसा है, उसी प्रकार तू और माद्री समान मन और चित्त वाली है ।।६५८।। यहाँ जगल मे दोनो एक-चित्त हो कर (?) रहो। वह माता पिता की ओर से सुजात है, सगोत्र है, क्षत्रिया है। यथापूर्व जब तब दान करते हुए पुण्य कर्म करो ।।६५९।।]

यह कह 'वर' देने के लिये अपने आपको प्रकट करते हुए कहा—

सक्कोहमस्मि देविन्दो आगतोस्मि तवन्तिके,
वर वरस्सु राजिसि वरे अट्ठ ददामि ते ।।६६०।।

[मै देवेन्द्र शक्र तेरे पास आया हूँ। हे राजर्षी! वरदान माँग। मै तुझे आठ वर देता हूँ ।।६६०।।]

यह कहते हुए वह अपने दिव्य-स्वरूप मे प्रज्वलित होता हुआ तरुण-सूर्य्य की तरह आकाश मे स्थिर हुआ।

तब बोधिसत्व ने 'वर' माँगते हुए कहा—

वर चे मे अदो सक्क सब्बभूतानमिस्सर,
पिता म अनुमोदेय्य इतो पत्त सक घर,
आसनेन निमन्तेय्य पठम त वर वरे ।।६६१।।
पुरिसस्स वध न रोचेय्य अपि किब्बिसकारिक,
वज्झ वधम्हा मोचेय्य दुतियेत वर वरे ।।६६२।।
ये च वुद्धा ये च दहरा ये च मज्झिमपोरिसा,
ममेव उपजीवेय्यु ततियेत वर वरे ।।६६३।।
परदार न गच्छेय्य सदारपसुतो सिय,
थीन वस न गच्छेय्य चतुत्थेत वर वरे ।।६६४।।
पुत्तो मे सक्क जायेथ सो च दीघायुको सिया,
धम्मेन जिने पठवि पञ्चमेत वर वरे ।।६६५।।
ततो रत्या विवसने सुरियुग्गमण पति,
दिब्बा भक्खा पातुभवेय्य छट्ठमेत वर वरे ।।६६६।।
ददतो मे न खीयेथ दत्वा नानुतपेय्याह,
दद चित्त पसादेय्य सत्तमेत वर वरे ।।६६७।।

इतो विमुच्चमानाहं सग्गगामी विसेसगु,
अनिव्वतो ततो अस्स अट्ठमेतं वरं वरे ॥६६८॥

[हे सब प्राणियो के 'ईश्वर' शक्र ! यदि तू मुझे वर देना चाहता है तो पहला 'वर' तो यह दे कि जब मैं यहाँ से अपने घर जाऊँ तो मेरा पिता मेरा अनुमोदन करे तथा मुझे आसन लेने के लिये कहे ॥६६१॥ दूसरा 'वर' यह दे कि राजापराधी भी हो मुझे उसका 'वध' अच्छा न लगे। मैं जो वध होने जा रहा हो उसे वध से मुक्त करा दूँ ॥६६२॥ तीसरा 'वर' दे कि जो बूढ़े हैं, जो छोटे हैं और जो मध्यमा-वस्था के हैं वे सब मेरे ही सहारे जीयें ॥६६३॥ चौथा 'वर' दे कि मैं परस्त्रीगमन न करूँ, अपनी स्त्री में ही अनुरक्त रहूँ। मैं स्त्रियो के वशीभूत न होऊँ ॥६६४॥ पाँचवाँ 'वर' दे कि जो मेरा पुत्र हो वह ही दीर्घायु हो और धर्म से पृथ्वी को जीते ॥६६५॥ छठा 'वर' दे कि रात्री के बीत जाने पर सूर्य्य का उदय होने पर दिव्य भोजन प्रादुर्भूत हो ॥६६६॥ सातवा 'वर' दे कि मेरे दान देने से धन समाप्त न हो और देकर मुझे अनुताप न हो और देने से मेरे चित्त मे आनन्द हो ॥६६७॥ आठवां 'वर' दे कि यहा से छूटने पर मैं विशेष रूप से स्वर्गगामी होऊँ और वहाँ से फिर जन्म-मरण के बन्धन से मोक्ष लाभ करूँ ॥६६८॥]

तस्स तं वचनं सुत्वा देविन्दो एतदब्रवी,
अचिरं वत ते तातो पिता तं दट्ठुमेस्सति ॥६६९॥

[उसकी यह बात सुन उसे देवेन्द्र ने कहा—तात ! तेरा पिता शीघ्र ही तुझे देखने आयेगा ॥६६९॥]

शक्र ने बोधिसत्व को इतना कहा और अपने स्थान को चला गया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने यह गाथा कही—

इदं वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
वेस्सन्तरे वरं दत्वा सग्गकायं अपक्कमी॥ ६७०॥

[देवराज देवेन्द्र सुज पति ने ऐसा कहा और वेस्सन्तर को 'वर' देकर स्वर्ग लोक को चला गया ॥६७०॥]

शक्र पर्व समाप्त

बोधिसत्व और माद्री प्रसन्नता पूर्वक शक्र के दिये हुए आश्रम में रहने लगे। जूजक भी बच्चो को लिये साठ योजन के मार्ग पर निकल पड़ा। देवता बच्चो की

हिफाजत करते थे। सूर्य्यास्त होने पर पूजक बच्चो को बाध जमीन पर लिटा देता और स्वय भयानक जगली जानवरो के डर के मारे वृक्ष पर चढ शाखाओ के अन्दर पड रहता। उस समय एक देव-पुत्र वेस्सन्तर का रूप बना और एक देवकन्या माद्री का रूप बना, आकर, बच्चो को मुक्त कर, हाथ-पाँव की मालिश कर, नहला, सजा, खाना खिला, दिव्य शैय्या पर सुला, अरुणोदय के समय फिर बँधे हुओ के रूप मे ही सुलाकर अन्तर्धान हो जाते।

इस प्रकार वे देवताओ की कृपा से निरोगी रह चले जा रहे थे। पूजक के सिर पर भी देवता सवार था। वह भी दो सप्ताह मे कालिङ्ग राष्ट्र पहुचने के बजाय जेतुत्तर नगर जा पहुचा। उस दिन ब्राह्म-मुहूर्त मे सञ्जय सिविराज ने भी स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था। जब राजा दरबार मे बैठा था एक आदमी ने कँवल के दो फूल लाकर राजा के हाथ मे रख दिये। राजा ने दोनो कानो पर धारण कर लिये। उनकी रेणु निकल कर राजा के पेट पर पडी। उसने जाग कर प्रात काल ही ब्राह्मणो से पूछा। उन्होने बताया—'देव! बहुत दिन के गये सगे लौट कर आयेगे।' वह प्रात काल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा दरबार मे बैठा। देवताओ ने ब्राह्मण को राजाङ्गन मे पहुचा दिया। उस समय राजा ने बच्चो की ओर देखकर कहा—

कस्सेत मुखमाभाति हेम वुत्तत्तभग्गिवा,
निक्ख व जातरूपस्स उक्कामुखपहसित ॥६७१॥
उभो सदिसपच्चगा उभो सदिसलक्खणा,
जालिस्स सदिसो एको एका कण्हाजिना यथा ॥६७२॥
सीहा बिला व निक्खन्ता उभो सम्पतिरूपका,
जातरूपमया येव इमे दिस्सन्तिदारका ॥६७३॥

[यह अग्नि-दीप्त स्वर्ण के समान किसका मुँह दिखाई देता है, मानो सुनार की आग में पडा हुआ सोना हो ॥६७१॥ दोनो के अग-प्रत्यङ्ग समान है, दोनो के लक्षण एक है, एक जालि के समान है, दूसरी कृष्णाजिना के समान ॥६७२॥ गुफा से निकले सिंह के समान दोनो रूपवान है। ये दोनो बच्चे स्वर्ग के समान प्रतीत होते है ॥६७३॥]

इस प्रकार राजा ने तीन गाथाओ से बच्चो की प्रशसा कर एक अमात्य को आज्ञा दी—"जा बच्चो सहित इस ब्राह्मण को ले आ।" वह जल्दी से जाकर लिवा लाया। तब ब्राह्मण ने राजा को कहा—

कुतो नु भव भारद्वाज इमे आनेसि दारके ।

[भारद्वाज! ये बच्चे कहाँ से लाये?]

पूजक बोला—

मय्ह ते दारका देव दिन्ना वित्तेन सञ्जय,
अज्ज पन्नरसा रत्ति यतो दिन्ना मे दारका ॥६७४॥

[हे सञ्जय! मुझे ये बच्चे सन्तुष्ट चित्त द्वारा दिये गये हैं। आज इन बच्चो को मुझे मिले पन्द्रह दिन हो गये ॥६७४॥]

राजा ने पूछा—

केन वा वाचपेय्येन सम्माजायेन सद्दहे,
को ते त दानमददा पुत्तके दानमुत्तम ॥६७५॥

[किस प्रिय-वचन से तुझे प्राप्त हुए। सम्यक-ज्ञान से हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न कर। तुझे यह दान किसने दिया है? पुत्र-दान श्रेष्ठ है ॥६७५॥]

पूजक बोला—

यो याचत पतिट्ठासि भूतान धरणीरिव,
सो मे वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वस ॥६७६॥
यो याचत गती आसि सवन्तीनव सागरो,
सो मे वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वस ॥६७७॥

[जैसे प्राणियो के लिये पृथ्वी, उसी प्रकार जो याचको का आधार है, उस वेस्सन्तर राजा ने मुझे वन मे रहते हुए पुत्र दिये। जैसे नदियो के लिये सागर उसी प्रकार जो याचको का शरण स्थान है, उस वेस्सन्तर राजा ने वन मे रहते हुए मुझे पुत्र दिये ॥६७६-६७७॥]

यह सुन अमात्यगण वेस्सन्तर की निन्दा करने लगे—

दुक्कत वत भो रञ्ञा सद्धेन घरमेसिना,
कथ नु पुत्तके दज्जा अरञ्ञे अवरुद्धको ॥६७८॥
इमं भोन्तो निसामेथ यावन्तेत्थ समागता,
कथ वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वस ॥६७९॥

दास दासिञ्च सो दज्जा अस्स वास्सतरी रथ,
हत्थिञ्च कुञ्जर दज्जा कथ सो दज्जा दारके ॥६८०॥

[घर मे रहते समय भी श्रद्धावान् राजा ने दुष्कर कार्य्य किया । अब जगल मे निर्वासित रहने पर वह बच्चो का दान कैसे कर सकता हे ? ॥६७८॥ आप जितने लोग यहाँ आये हैं, सुने कि वेस्सन्तर राजा वन मे रहते समय बच्चो का दान कैसे कर सकता है ? ॥६७९॥ वह दास-दासियो का दान कर सकता है, घोडे, खच्चर तथा रथ का दान कर सकता है, कुञ्जर हाथी का दान कर सकता है, वह बच्चो का दान कैसे कर सकता है ? ॥६८०॥]

यह सुना तो कुमार पिता की निन्दा नही सहन कर सका । उसने वायु-प्रताडित सिनेरु पर्वत की भान्ति हाथ उठाकर यह गाथा कही—

यस्स नत्थि घरे दासो अस्सोवास्सतरी रथो,
हत्थी च कुञ्जरो नागो किं सो दज्जा पितामह ॥६८१॥

[हे पितामह ! जिसके घर मे दास न हो, घोडा न हो, खच्चर न हो, रथ न हो, हाथी न हो और कुञ्जर नाग न हो वह क्या दे ? ॥६८१॥]

राजा बोला—

दानमस्स पससाम न च निन्दाम पुत्तका,
कथ नु हदय आसि तुम्हे दत्वा वणिब्बके ॥६८२॥

[बच्चे ! हम इस दान की प्रशसा करते हैं । हम इस दान की निन्दा नही करते । तुम्हे याचक को देकर उसका हृदय कैसा था ? ॥६८२॥]

कुमार बोला—

दुक्खस्स हदय आसि अथो उण्हम्पि पस्ससि,
रोहि हेव तम्बक्खी पिता अस्सूनि वत्तयि ॥६८३॥

[उसका हृदय दु ख-पूर्ण था, उसकी आँखे गरम थी और (ताम्रवर्ण) रोहिणी के समान ताम्रवर्ण की थी । पिता की आँख से आसू भी गिरे थे ॥६८३॥]

अब (कृष्णाजिना के जिस वचन को सुन कर उसके आसू गिरे) वह वचन बताया—

यं त कण्हाजिनावोच अय म तात ब्राह्मणो,
लट्ठिया पतिकोटेति घरे जात व दासिय ॥६८४॥

न चाय ब्राह्मणो तात धम्मिका होन्ति ब्राह्मणा,
यक्खो ब्राह्मणवण्णेन खादितुं तात नेति नो,
नीयमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ॥६८५॥

[कृष्णाजिना ने कहा—तात ! मुझे यह ब्राह्मण घर में उत्पन्न हुई दासी की तरह लाठी से पीटता है। तात यह ब्राह्मण नही है। ब्राह्मण तो धार्मिक होते है। यह तो ब्राह्मण-वेश मे कोई यक्ष है जो हमे खाने के लिये ले जा रहा है। तात ! हमे पिशाच लिये जा रहा है, आप क्या देख रहे हैं ? ॥६८४-६८५॥]

राजा ने जब देखा कि बच्चे ब्राह्मण को छोड नही रहे है तो उसने गाथा कही—

राजपुत्ती च वो माता राजपुत्तो च वो पिता,
पुब्बे मे अकमारुटह किन्नु तिट्ठथ आरका ॥६८६॥

[तुम्हारी माता राजपुत्री है, तुम्हारा पिता राजपुत्र है। पहले आकर मेरी गोद में बैठो। दूर क्यो खडे हो ? ॥६८६॥]

कुमार बोला—

राजपुत्ती च नो माता राजपुत्तो च नो पिता,
दासा मय ब्राह्मणस्स तस्मा तिट्ठाम आरका ॥६८७॥

[हमारी माता राजपुत्री है, हमारा पिता राजपुत्र है, किन्तु हम ब्राह्मण के दास हैं, इसलिये दूर खडे हैं ॥६८७॥]

राजा बोला—

मा सम्मेव अवचुत्थ डय्हते हदय मम,
चितका विय मे कायो आसने न सुख लभे ॥६८८॥
मा सम्मेव अवचुत्थ भीयो सोक जनेथ म,
निक्किणिस्सामि दब्बेन न वो दासा भविस्सथ ॥६८९॥
किमग्घिय हि वो तात ब्राह्मणस्स पिता अदा,
यथाभूत मे अक्खाथ पटिपादेन्तु ब्राह्मणं ॥६९०॥

[सौम्य ! ऐसी बात मुह से मत निकाल। मेरा हृदय जलता है। जैसे चिता पर वैसे ही मेरे शरीर को इस आसन पर सुख नही मिल रहा है ॥६८८॥ सौम्य ! ऐसी बात मुँह से मत निकाल। इससे मेरा शोक और भी बढता है। मैं मूल्य देकर

छुडा लूगा। तुम दास नही रहोगे ।।६८६।। तात! तुम्हारे पिता ने तुम्हारा कितना मूल्य लगाकर तुम्हे ब्राह्मण को दिया था। मुझे यथार्थ कहो ताकि ब्राह्मण को धन दिया जाय ।।६६०।।]

कुमार बोला—

सहस्सग्घ हि म तात ब्राह्मणस्स पिता अदा,
अच्छ कण्हाजिन कञ्ञ हत्थिना च सतेन वा ।।६६१।।

[पिता ने हजार कीमत लगा कर मुझे ब्राह्मण को दिया और अच्छी कृष्णाजिना की सौ हाथी आदि ।।६६१।।]

राजा ने बच्चो को मुक्ति-मूल्य दिलाते हुए कहा—

उट्ठेहि कत्ते तरमानो ब्राह्मणस्स अवाकर,
दासीसत दाससत गव हत्थूसभ सत,
जातरूपसहस्सञ्च पुत्तान देहि निक्कय ।।६६२।।

[हे कर्मचारी! उठ। जल्दी कर। ब्राह्मण को सौ दासी-दास, सौ गौवे, सौ हाथी, सौ बैल और हजार निकष बच्चो के मुक्ति-मूल्य स्वरूप दे ।।६६२।।]

ततो कत्ता तरमानो ब्राह्मणस्स अवाकरी,
दासीसत दाससत गव हत्थूसभ सत,
जातरूपसहस्सञ्च पुत्तानं दासि निक्कयं ।।६६३।।

[तब कर्मचारी ने शीघ्रता से ब्राह्मण को सौ दासी-दास, सौ गौवे, सौ हाथी, सौ बैल और हजार निकष बच्चो के मुक्ति-मूल्य स्वरूप दिये ।।६६३।।]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

निक्किणित्वा नहापेत्वा भोजयित्वान दारके,
समलकरित्वा भण्डेन उच्छगे उपवेसयु ।।६६४।।६६४।।
सीस नहाते सुचिवत्थे सब्बाभरणभूसिते,
राजा अके करित्वान अय्यको परिपुच्छथ ।।६६५।।
कुण्डले घुसिते माले सब्बालकारभूसिते,
राजा अके करित्वान इद वचनमब्रवि ।।६६६।।
कच्चि उभो अरोगा ते जालि मातापिता तव,
कच्चि उञ्छेन यापेन्ति कच्चि मूलफला बहू ।।६६७।।

कच्चि डसा च मकसा च अप्पमेव, सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥६९८॥

[उनका मुक्ति-मूल्य दे, स्नान करा, खिला-पिला, गहनो से अलकृत कर गोद में बिठाया ॥६९४॥ सिर नहाये, साफ वस्त्र पहने और सब अलकारो से भूषित बच्चो को दादा-राजा ने अक मे बिठा कर पूछा ॥६९५॥ जिनके कुण्डल मनोरम आवाज कर रहे थे और जो मालाओ तथा सभी अलकारो से अलकृत थे उन्हे गोद में बिठा कर राजा ने यह बात कही—"जाली ! क्या तेरे माता-पिता दोनो निरोग हैं ? क्या फल-मूल चुग कर जीवन यापन करते हैं ? क्या फल-मूल बहुत है ? ६९६-६९७॥ क्या डास और मच्छर तथा दूसरे रेंगने वाले थोडे ही हैं ? क्या जगली जानवरो से आकीर्ण वन मे हिंसा नही होती ? ॥६९८॥]

कुमार ने उत्तर दिया—

अथो उभो अरोगा मे देव मातापिता मम,
अथो उञ्छेन यापेन्ति अथो मूलफला बहू ॥६९९॥
अथो डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा तेस न विज्जति ॥७००॥
खणन्तालुक लम्बानि बिलालीतक्कलानि च,
कोल भल्लाटक बेल्ल सा नो आहच्च पोसति ॥७०१॥
यञ्चेव सा आहरति वनमूलफलहारिका,
त नो सब्बे समागन्त्वा रत्ति भुञ्जाम नो दिवा ॥७०२॥
अम्मा च नो किसा पण्डु आहरन्ति दुमप्फल,
वातातपेन सुखुमाली पदुमं हत्थगतामिव ॥७०३॥
अम्माय पतनूकेसा विचरन्त्या ब्रहावने,
वने वाळमिगाकिण्णे खग्गदीपिनिसेविते ॥७०४॥
केसेसु जट बन्धित्वा कच्छे जल्लमधारयी,
चम्मवासी छमा सेति जातवेद नमस्सति ॥७०५॥

[हे देव ! मेरे दोनो माता पिता निरोग हैं। वे फल-मूल चुग कर गुजारा करते है और फल-मूल बहुत है ॥६९९॥ और डास तथा मच्छर अधिक नही है, तथा रेंगने वाले जानवर भी। वन मे जगली जानवरो से हिंसा भी नही है ॥७००॥

वह आलु तथा कलम्ब खन कर लाती है और बिलाली तथा तक्कल भी । वह कोल, भल्लाटक तथा बेल्ले लाकर हमे पोसती है ॥७०१॥ वह वन-फल-मूल लाने वाली जो कुछ भी लाती है उसे हम इकट्ठे होकर रात मे खाते है, दिन मे नही ॥७०२॥ वृक्षो के फल चुग-चुग कर लाती हुई अम्मा कृष्ण और पाण्डु-वर्ण की हो गई है । हवा और धूप लगने से उसकी दशा कुम्हलाय हुए कवल की सी हो गई है ॥७०३॥ घोर जगल मे घूमती हुई मा के बाल क्षीण पड गये है । गेंडे और चीते वाले वन में जगली जानवर है । केशो की जटाये बाध कर, काछ गीली रखते है । वे चर्म पर रहने वाले पृथ्वी पर सोते है और अग्नि को नमस्कार करते है ॥७०४-७०५॥]

इस प्रकार मा के दु ख का वर्णन कर पितामह को दोष देते हुए यह कहा—

पुत्ता पिया मनुस्सान लोकस्मि उदपज्जिसु,
नहनूनम्हाक अय्यस्स पुत्ते स्नेहो अजायथ ॥७०६॥

[*लोक में आदमियो को पुत्र प्रिय होते है । हमारे पितामह को अपने पुत्र से* स्नेह नही है ॥७०६॥]

तब राजा अपना दोष प्रकट करता हुआ बोला—

दुक्कतञ्च हि नो पुत्त भूनहच्च कत मया,
योह सिवीनं वचना पब्बाजेसि अदूसक ॥७०७॥
य मे किञ्चि इध अत्थि धन धञ्ञ च विज्जति,
एतु वेस्सन्तरो राजा सिविरट्ठे पसासतु ॥७०८॥

[पुत्र ! मैंने दुष्कृत कार्य्य किया । मैन सिवियो के कहने से निर्दोष पुत्र को निकाल दिया । यह मैने भ्रूण-हत्या जैसा कर्म किया ॥७०७॥ जो कुछ मेरे पास यहा धन धान्य है, (वह सब उसका है) वेस्सन्तर राजा आये और सिवि राष्ट्र पर अनुशासन करे ॥७०८॥]

कुमार बोला—

न देव मय्हं वचना एहिति सिविसुत्तमो,
सयमेव देवो गन्त्वान सिञ्च भोगेहि अत्रज ॥७०९॥

[देव ! मेरे कहने से सिवि-श्रेष्ठ आने वाले नही है । आप स्वय जाकर अपने पुत्र पर सम्पत्ति की वर्षा करें ॥७०९॥]

ततो सेनापति राजा सञ्जयो अज्झभासथ,
हत्थि अस्सा रथा पत्ती सेना सन्नाहयन्तु न,
नेगमा च म अन्वेन्तु ब्राह्मणा च पुरोहिता ॥७१०॥
ततो सट्ठिसहस्सानि युधिनो चारुदस्सना,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा नाना वण्णे हिलकता ॥७११॥
नीलवण्णधरानेके पीतानेके निवासिता
अञ्ञे लोहित उण्हीसा सुद्धानेके निवासिता,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा नानावत्थेहिलकता ॥७१२॥
हिमवा यथा गन्धधरो पब्बतो गन्धमादनो,
नानारुक्खेहि सञ्छन्नो महा भूतगणालयो ॥७१३॥
ओसधेहि च दिब्बेहि दिसा भाति पवाति च,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा दिसा भन्तु पवन्तु च ॥७१४॥
ततो नागसहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
सुवण्णकच्छा मातगा हेमकप्पनवाससा ॥७१५॥
आरूळहा गामणीयेहि तोमरकुसपाणिहि,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा हत्थिक्खन्धेहि दस्सिता ॥७१६॥
ततो अस्स सहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
आजानीया च जातिया सिन्धवा सीघवाहना ॥७१७॥
आरूळहा गामणीयेहि इल्लिया चापधारिहि,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा अस्सपिट्ठेहिलकता ॥७१८॥
ततो रथसहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
अयो सुकतनेमियो सुवण्णचितपक्खरे ॥७१९॥
आरोपेन्तु धजे तत्थ चम्मानि कवचानिच
विप्फालेन्तु च चापानि बळहधम्मा पहारिनो,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा रथेसु रथजीविनो ॥७२०॥

[तब राजा सञ्जय ने सेनापति को कहा—हाथी, घोडे, रथ, पैदल सेना को तैयार करो। निगम के लोग तथा ब्राह्मण और पुरोहित मेरा अनुकरण करे ॥७१०॥ तब चारु-दर्शन, नाना प्रकार से अलकृत, साठ हजार योधा तैयार होकर शीघ्र आयें ॥७११॥ अनेक नील वस्त्रधारी, अनेक पीत वस्त्रधारी, अनेक लाल पगडी

वाले, अनेक सफेद वस्त्र वाले नाना प्रकार के वस्त्रो से अलकृत होकर शीघ्र आयें ।।७१२।। जैसे गन्धमादन हिमालय पर्वत सुगन्धित (वस्तुओ) को धारण किये है, नाना प्रकार के वृक्षो से आच्छादित है, यक्षादि का घर है और दिव्य ओषधियो की सुगन्धि से दिशाये चमक रही हैं तथा प्रवाहित हो रही है, उसी प्रकार वे शीघ्र तैयार होकर आये। दिशाये चमके और प्रवाहित हो ।।७१३-७१४।। उसके बाद चौदह हजार हाथी रहे—जिनकी काछ मे सोना हो और जो सुनहरी साज से कसे हो ।।७१५।। उन पर तोमर-अकुश-धारी ग्रामणी बैठे है। हाथियो के कन्धो पर बैठे हुए वे तैयार होकर शीघ्र आये ।।७१६।। उसके बाद चौदह हजार घोडे हो, जो श्रेष्ठ जाति के आजानीय घोडे हो और शीघ्रगामी हो ।।७१७।। उन पर इल्लिय-खड्ग तथा धनुपधारी ग्रामणी बैठे हो। वे तैयार होकर शीघ्र आयें ।।७१८।। उसके बाद चौदह हजार रथ हो जिनकी नेमिया अच्छी तरह बनी हो और जिनकी किनारियाँ सूनहरी हो ।। ७१९ ।। उन पर ध्वजाये चढाई जाय, चर्म के कवच चढाये जायें, दृढ प्रहार देने वाले धनुष चढाये जाये। रथ जीवी लोग रथ मे बैठ तैयार होकर शीघ्र आये ।।७२०।।]

इस प्रकार राजा ने सेना के बारे मे आज्ञा दे 'मेरे पुत्र के आने के लिये जेतुत्तर नगर से वक पर्वत तक आठ उपभ (विस्तृत) मार्ग समतल करके अलकृत करने के लिये यह यह करो' आज्ञा देते हुए कहा—

लाजा ओलोपिया पुप्फा मालागन्धविलेपना,
अग्घियानि च तिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२१।।
गामे गामे सत कुम्भा मेरयस्स सुरायच,
मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२२।।
मसा पूवा सकुलियो कुम्मासा मच्छसयुता,
मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२३।।
सप्पि तेल दधि खीर कगु वीहि बहू सुरा,
मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२४।।
आळारिका च सूदा च नट नट्टक गायका,
पाणिस्सरा कुम्भथूनियो मण्डका सोकज्झायिका ।।७२५।।
आहञ्ञन्तु सब्बवीणा भेरियो देण्डिमानिच,
खरमुखानि धम्मन्तु वदन्तु एकपोक्खरा ।।७२६।।

मुतिगा पणवा सखा गोधा परिवदेन्तिका
दिन्दिमानि व हञ्ञन्तु कुटुम्बा दिन्दिमानि वाति ॥७२७॥

[जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर खील बिखेरे जायें, पुष्प, माला-गन्ध-विलेपन आदि के वितान हों और अमूल्य चीजें रहें ॥७२१॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर गाँव गाँव में सुरा तथा मेरय के सौ सौ घड़े रखे जायें ॥७२२॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर मांस, पूए, मट्ठी, मत्स्य मिश्रित कुल्माष रखे जायें ॥७२३॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर घी, तेल, दही, खीर तथा कङ्गु और धान की बनी बहुत सी शराब रखी जाय ॥७२४॥ योजन बनाने वाले, नट, नर्तक, गायक, हस्त-सगीत वाले, कुम्भथून (ढोल) बजाने वाले, मुण्ड-गायक (?), जादूगर (हों) ॥७२५॥ सभी वीणायें, भेरी और देण्डिम बजे। शङ्ख फूके जायें। एकपोक्खर (ढोल) बजें ॥७२६॥ मृदङ्ग, पणव, शङ्ख, गोध, परिवदेन्ति, दिन्दिमानि तथा कुटुम्बदिन्दिमानि बाजे बजें ॥७२७॥]

इस प्रकार राजा ने मार्ग को अलकृत करने की आज्ञा दी। पूजक भी सीमा से अधिक खाकर उसे पचा न सकने के कारण वहीं मर गया। राजा ने उसका शरीर-कृत्य कराया और नगर में मुनादी कराई। उसके किसी रिश्तेदार का पता नहीं लगा। धन फिर राजा का ही हो गया। सातवें दिन सारी सेना इकट्ठी हो गई राजा बड़े ठाट-बाट से जाली को मार्ग-दर्शक बना कर चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा सेना महती आसि उय्युत्ता सिविवाहिनी,
जालिना मग्गनायेन वकं पायासि पब्बतं ॥७२८॥
कुच नदति मातगो कुजरो सट्ठिहायनो,
कच्छाय बज्झमानाय कुच नदति वारणो ॥७२९॥
आजानीया हसिस्सिसु नेमिघोसो अजायथ,
अब्भ रजो अच्छादेसि उय्युत्ता सिविवाहिनी ॥७३०॥
सा सेना महती आसि उय्युत्ता हारहारिणी,
जालिना मग्गनायेन वक पायासि पब्बतं ॥७३१॥
ते पाविसु ब्रहारञ्ञं बहुसाख महोदकं,
पुप्फरुक्खेहि सञ्छन्नं फलरुक्खेहि चूभयं ॥७३२॥

तत्थ बिन्दुस्सरा वग्गु' नानावण्णा बहू दिजा,
कुज्जन्तमुपकुज्जन्ति उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥७३३॥
ते गन्त्वा दीघमद्धान अहोरत्तानमच्चये,
पदेस त उपागच्छु यत्थ वेस्सन्तरो अहू ॥७३४॥

[वह सिविवाहिनी सेना बडी थी। वह जाली के मार्ग-नायकत्व मे वक पर्वत को प्राप्त हुई ॥७२८॥ काछ बधे साठ वर्ष के मातङ्ग वारण ने क्रौञ्च नाद किया ॥७२९॥ आजानीय घोडे हिनहिनाये, रथ के पहिये की आवाज हुई। धूल से आकाश ढक गया। सिविवाहिनी सेना चली ॥७३०॥ वह ले जाने वाली सेना बडी थी। वह जाली के मार्ग-नायकत्व मे वक पर्वत को प्राप्त हुई ॥७३१॥ वे उस बहुत शाक तथा बहुत जल वाले घोर जगल मे प्रविष्ट हुए जो कि फूलो और फलो के वृक्षो से ढका था ॥७३२॥ वहाँ ऋतु के अनुसार फूले वृक्षो पर सुस्वर, सुन्दर, नाना वर्ण के बहुत से पक्षी परस्पर चहचहाते थे ॥७३३॥ वे दिन-रात दीर्घ सफर तै करके वहा पहुचे जहा वेस्सन्तर था ॥७३४॥]

महाराजपर्व समाप्त

जालिकुमार ने मुचलिन्द सरोवर के किनारे छावनी डाल, चौदह हजार रथो को आये रास्ते पर ही रोक, जिस तिस स्थान पर सिंह, व्याघ्र, गेडे के मार्ग आदि पर चौकी बैठा दी। हाथी आदि का बडा शोर हुआ। बोधिसत्व ने यह सुन सोचा—क्या कोई शत्रु पिता को मार कर अब मुझे मारने के लिय आया है? वह मृत्यु-भय के मारे माद्री सहित पर्वत पर चढ गया और वहा से सेना देखी। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

तेसं' सुत्वान निग्घोस भीतो वेस्सन्तरो अहू,
पब्बतं अभिरूहित्वा भीतो सेन उदिक्खति ॥७३५॥
इघमद्दिनिसामेहि निग्घोसो यादिसो वने,
आजानीया हसिस्सन्ति धजग्गानि च दिस्सरे ॥७३६॥
इमे नून अरञ्ञस्मि मिगसघानि लुद्दका
वागुराहि परिक्खिप्प सोब्भ पातेत्वा तावदे,
विक्कोसमाना तिप्पाहि हन्ति तेस वर वर ॥७३७॥

यया भय अदूसका अरञ्ञे अवरुद्धका,
अमित्तहत्थत्थगता पस्स दुब्बलघातक ॥७३८॥

[उनकी आवाज सुन वेस्सन्तर डर गया। उसने डर के मारे पर्वत पर चढ वहाँ से सेना को देखा ॥७३५॥ माद्री ! सुन। वन मे जैसी आवाज आ रही है। श्रेष्ठ घोडे हिनहिना रहे है और ध्वजाये दिखाई दे रही है ॥७३६॥ जैसे जगल मे शिकारी जानवरो को जाल मे फसाकर उसी समय प्रपात मे गिरा देते है उसी प्रकार ये हमे तीव्र शक्ति खोच खोच कर मार डालेगे ॥७३७॥ जैसे हम निर्दोष जगल भेज दिये गये है, उसी प्रकार हम शत्रु के हाथ मे पड गये है। इस दुर्बल-घात देख ॥७३८॥]

उसने उसकी बात सुन और यह सोच कि अपनी ही सेना होगी, बोधिसत्व को आश्वासन देते हुए गाथा कही—

अमित्ता नप्पसहेय्यु अग्गीव उदकण्णवे,
तदेव त्व विचिन्तेहि अपि सोत्थि इतो सिया ॥७३९॥

[जिस प्रकार आग पानी को हानि पहुचाने में समर्थ नही होती उसी प्रकार शत्रु समर्थ नही होगे। वैसा ही तू सोच। इससे कल्याण होगा ॥७३९॥]

बोधिसत्व ने शोक पर विजय पाई और उसके साथ ही पर्वत से उतर पर्णशाला द्वार पर बैठा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा ओरोहित्वान पब्बता,
निसीदि पण्णसालाय वळ्हं कत्वान मानस ॥७४०॥

[तब वेस्सन्तर राजा पर्वत से उतर और चित्त को दृढ करके पर्णशाला के द्वार पर बैठा ॥७४०॥]

उस समय सञ्जय ने देवी को सम्बोधित करके कहा—"भद्रे फुसति ! यदि हम सभी एक साथ जायेंगे तो बहुत शोक होगा। पहले मै जाता हूँ। तब यह अन्दाजा करके कि अब शोक शान्त करके बैठे होगें, तू सब लोगो के साथ आना। थोडे समय के बाद जाली और कृष्णाजिना आवें।" यह कह रथ को रोक और उसका मुँह जिधर से आये थे उधर फेर, जहाँ तहाँ चौकी बिठा, अलकृत हाथी के कन्धे से उतर जहाँ पुत्र था वहाँ पहुचा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

निवत्तयित्वान रथ वोत्थापेत्वान सेनियो,
एक अरञ्ञे विहरन्त पिता पुत्त उपागमि ॥७४१॥
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह एकसो पञ्जलीकतो,
परिकिखत्तो अमच्चेहि पुत्त सिञ्चितुमागमि ॥७४२॥
तत्थद्दस कुमार सो रम्मरूप समाहितं,
निसिन्न पण्णसालाय झायन्त अनकुतोभय ॥७४३॥

[रथ को रोक कर और सैनिको को नियुक्त कर पिता जगल मे अकेले रहने वाले पुत्र के पास आया ॥७४१॥ हाथी के कन्धे से उतर, चादर को एक कन्धे पर कर, अमात्यो से घिरा राजा, हाथ जोडे ? पुत्र पर धन की वर्षा करने आया ॥ ॥७४२॥ उसने वह उस सुन्दर, एकाग्र चित्त, निर्भय, ध्यानी कुमार को पर्णशाला मे बैठे हुए देखा ॥७४३॥]

तञ्च दिस्वान आयन्त पितर पुत्तगिद्धिन,
वेस्सन्तरो च मद्दी च पच्चुग्गन्त्वा अवन्दिसु ॥७४४॥
मद्दी च सिरसा पादे ससुरस्साभिवादयि,
मद्दी अहञ्हि ते देव पादे वन्दामि ते सुसा,
तेसु तत्थ पलिस्सज्ज पाणिना परिमज्जथ ॥७४५॥

[पुत्र-स्नेही पिता को आते देखकर, वेस्सन्तर तथा माद्री ने आगे बढकर वन्दना की ॥७४४॥ 'देव ! मै तुम्हारे चरणो की बहुत बहुत वन्दना करती हूँ' कह माद्री ने सिर से ससुर के चरणो में अभिवादन किया। उन दोनो ने उस (आश्रम की) भूमि को हृदय लगा कर हाथ से उसका परिमार्जन किया ॥७४०-७४५॥]

तब रो पीट कर शोक के शान्त होने पर राजा ने उनका कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

कच्चि वो कुसल पुत्त कच्चि पुत्त अनामय,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू॥७४६॥
कच्चि डसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥७४७॥

[पुत्र! कुशल तो है! पुत्र निरोग तो हो? क्या फल-मूल चुग कर ही गुजारा करते हो? क्या फल-मूल बहुत है? ॥७४६॥ क्या डाँस, मच्छर तथा रेंगने वाले जानवर थोड़े ही हैं? जंगली जानवरों से घिरे जंगल में क्या हिंसा नहीं होती? ७४७॥]

पिता की बात सुन बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अत्थिनो जीविका देव या च यादिसि कीदिसा,
कसिरा हि जीविका होम उञ्छाचरियाय जीवित ॥७४८॥
अनिद्धिन महाराज दमेतस्सव सारथि,
त्यम्हा अनिद्धिका दन्ता असमिद्धि दमेति नो ॥७४९॥
अपि नो किसानि मसानि पितु मातु अदस्सना,
अवरुद्धान महाराज अरञ्ञे जीव सोकिन ॥७५०॥

[देव! हमारी जीविका जैसी तैसी है। हम फल-मूल चुग कर खाते हैं। यह जीविका कष्टकर ही है ॥७४८॥ महाराज! जैसे सारथी घोड़े का दमन करता है वैसे ही दरिद्रता आदमी का दमन करती है। हम भी दरिद्र होने के कारण दमित हैं। दरिद्रता हमारा दमन करती है ॥७४९॥ और फिर माता पिता का दर्शन न मिलने से हम और भी कृष हैं। महाराज! जंगल में निकाल दिये गये शोकाकुलों को (क्या सुख?) ७५०॥]

यह कह फिर पुत्रों का समाचार पूछते हुए कहा—

येपिते सिविसेट्ठस्स दायादप्पत्तमानसा,
जाली कण्हाजिनाचुभो, ब्राह्मणस्स वसानुगा,
अच्चायिकस्स लुद्दस्स यो ने गावोव सुम्भति ॥७५१॥
ते राजपुत्तिया पुत्त यदि जानाथ संसथ,
परियापुणाथ नो खिप्प सप्पदट्ठव माणव ॥७५२॥

[जो भी श्रेष्ठ सिवि के दायाद—जाली तथा कृष्णाजिना—असफल मनोरथ होकर ब्राह्मण के वशीभूत हुए, जो क्रूर ब्राह्मण उन्हें गौवों की तरह पीटता है ॥७५१॥ उन राजपुत्र तथा राजपुत्री के बारे में यदि कुछ जानते हो तो कहो। जिस प्रकार सर्प से डसे गये माणवक को शीघ्र (औषधि दी जाती है), उसी प्रकार हमें भी शीघ्र बताओ ॥७५१॥]

उभो कुमारा निक्कीता जाली कण्हाजिना चुभो,
ब्राह्मणस्स धन दत्वा पुत्त मा भायि अस्सस ॥७५३॥

[जाली और कृष्णाजिना दोनो बच्चे ब्राह्मण को धन देकर छुडा लिये गये है। पुत्र! डर मत। आश्वस्थ रह ।।७५३।।]

यह सुन बोधिसत्व ने आश्वस्थ हो पिता का कुशल क्षेम पूछा—

कच्चिन्नु तात कुसल कच्चि तात अनामय,
कच्चिन्नु तात मे मातु चक्खु न परिहायति ।।७५४।।

[तात! कुशल तो है? तात निरोग तो है? तात! मेरी मा की नजर कमजोर तो नही पड रही है? ।।७५४।।]

राजा बोला—

कुसलञ्चेव मे पुत्त अथो पुत्त अनामय,
अथोपि पुत्त ते मातु चक्खु न परिहायति ।।७५५।।

[पुत्र! मै सकुशल हूँ। पुत्र! मै निरोग हूँ। पुत्र! तेरी माता की नजर भी कमजोर नही पड रही है ।।७५५।।]

बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

कच्चि अरोग योग्ग ते कच्चि वहति वाहन,
कच्चि फीता जनपदा कच्चि वुट्ठि न छिज्जति ।।७५६।।

[क्या तेरे रथ ठीक है? क्या वे सवारी देते है? क्या जनपद स्मृद्ध है? क्या अनावृष्टि तो नही होती? ।।७५६।।]

राजा बोला—

अथो अरोग योग्ग मे अथो वहति वाहन,
अथो फीता जनपदा अथो वुट्ठि न छिज्जति ।।७५७।।

[मेरे रथ ठीक है। वे सवारी देते है। जनपद स्मृद्ध है। अनावृष्टि नही होती ।।७५६।।]

जिस समय वे इस प्रकार बातचीत कर रहे थे तो फुसती देवी भी यह समझ कि अब शोक को कम कर बैठे होगे, बहुत बडी जमात के साथ पुत्र के पास पहुची।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इच्चेव मन्तयान माता नेथं अदिस्सथ,
राजपुत्ती गिरिद्वारे पत्तिका अनुपाहना ।।७५७।।

तञ्च दिस्वान आयन्ति मातर पुत्तगिद्धिनिं,
वेस्सन्तरो च मद्दी च पच्चुग्गन्त्वा अवन्दिसुं ॥७५८॥
मद्दी च सिरसा पादे सस्सुया अभिवादयि,
मद्दी अहञ्हि ते अय्ये पादे वन्दामि ते भुसा,॥७५९॥

[उन्हे इस प्रकार मन्त्रणा करते हुए माता ने देखा—राजपुत्री पर्वत-द्वार पर नगे पाँव खडी थी ॥७५७॥ पुत्र-स्नेही माता को आते देख वेस्सन्तर तथा माद्री ने आगे बढकर मा को प्रणाम किया ॥७५८॥ 'आर्ये ! मै तुम्हारे चरणो की बहुत बहुत वन्दना करती हूँ' कह माद्री ने सास के चरणो मे सिर से अभिवादन किया ॥७५९॥]

जब वे फुसती देवी की वन्दना कर खडे थे तो कुमारो तथा कुमारियो से घिरे हुए बच्चे आये। माद्री खडी उनका रास्ता ही देख रही थी। उसने जब उन्हे सकुशल आते देखा तो वह अपने आप को सभाले न रख सकी। जैसे तरुण बछडो को देखकर गऊ उसी प्रकार वह विलाप करती हुई भागी। वे भी उसे देख रोते हुए उसी की ओर दौड कर आये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मद्दिञ्च पुतका दिस्वा दूरतो सोत्थिमागता,
कन्दन्तामभिधाविंसु वच्छा बालाव मातर ॥७६०॥
मद्दी च पुतके दिस्वा दूरतो सोत्थिमागते,
वारुणी व पवेधेन्ति थनधाराभिसिञ्चथ ॥७६१॥

[बच्चो ने दूर से माद्री को देखा कि सकुशल चली आ रही है। वे रोते हुए मा के पास वैसे ही दौड कर आये जैसे छोटा बछडा मा के पास ॥७६०॥ माद्री ने भी जब अपनी सन्तान को दूर से सकुशल आते देखा तो कापते हुए उसने वारुणी की तरह स्तन-धाराओ से उनका अभिसिञ्चन किया ॥७६१॥]

उस समय पर्वतो ने आवाज की। पृथ्वी काँप उठी। समुद्र मे ज्वार भाटा आ गया। गिरिराज सुमेरु झुक गया। छ कामावचर देव-लोको में कोलाहल हो गया। शक्र देवराज तथा छ क्षत्रिय परिषदे बेहोश हो गई। उनमें एक भी इस योग्य नही था कि किसी दूसरे के शरीर पर पानी छिडक सके। 'पुष्कर-वर्षा' बरसाने के सकल्प से छ क्षत्रियो के स्थान पर पुष्कर-वर्षा बरसाई गई। जो भीगना चाहते थे वे भीगते

थे, जो भीगना नही चाहते थे उन पर एक बूंद भी नही ठहरती थी। जैसे कंवल के पत्ते पर से उसी प्रकार उनकी देह से पानी लुडक जाता था। इस प्रकार वह वर्षा वैसी ही थी जैसी पुष्कर-वन मे पडी वरसात हो। छ क्षत्रिय आश्वस्थ हुए। जनता को यह देख वडा आश्चर्य हुआ कि सम्बन्धियो के सम्मेलन मे पुष्कर-वर्षा हुई और महापृथ्वी कापी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

समागतानं जातीनं महाघोसो अजायथ,
पब्बता समनादिंसु मही पकम्पिता अहु,
वुट्ठिधारं पवेच्छन्तो देवो पावस्सि तावदे ॥७६२॥
अथ वेस्सन्तरो राजा जातीहि समगच्छथ,
नत्तारो सुनिसा पुत्तो राजा देवीच एकतो ॥७६३॥
यदा समागता आसु तदासि लोमहंसन,
पञ्जलिका तस्स याचन्ति रोदन्ता भेरवेवने ॥७६४॥
वेस्सन्तरञ्च मद्दिञ्च सब्बेरट्ठा समागता,
त्वं नोसि इस्सरो राजा रज्ज कारेथ नो उभो ॥७६५॥

[आये हुए सम्बन्धी वडा हल्ला करने लगे। पर्वतो का निनाद हुआ। पृथ्वी कांप उठी। उसी समय देव ने वर्षा की धारा बरसाई ॥७६२॥ तब वेस्सन्तर राजा अपने सम्बन्धियो के साथ गया—नाती, पुत्र वधु, पुत्र, राजा तथा देवी, सभी एक साथ ॥७६३॥ जब सभी इकट्ठे हो गये तब रोमाच हुआ। उस भयानक वन मे राष्ट्र से आकर सभी हाथ जोड कर वेस्सन्तर तथा माद्री से प्रार्थना करने लगे —आप हमारे ईश्वर राजा है। आप दोनो हम पर राज्य करे। ॥७६५॥]

क्षत्रिय काण्ड समाप्त

यह सुन बोधिसत्व ने पिता के साथ बातचीत करते हुए यह गाथा कही—

धम्मेन रज्ज कारेन्तं रट्ठा पब्बाजयित्थ म,
त्वञ्च जानपदा चेव नेगमा च समागता ॥७६६॥

[तू ने, तथा जनपद और निगम के लोगो ने धर्मानुसार राज्य करते हुए मुझे देश से निकाल दिया ॥७६६॥]

तब राजा ने पुत्र से क्षमा मागी—

दुक्कतञ्च हिनो पुत्त भून हच्च कत मया,
योह सिवीन वचना पब्बाजेसिं अदूसक ॥७६७॥

[पुत्र ! मैंने दुष्कृत किया। मैंने भ्रूण-हत्या के समान पाप किया। मैंने सिवियो के कहने से निर्दोष को देश से निकाल दिया ॥७६७॥]

यह गाथा कह अपना दु ख दूर करने के लिये कहते हुए यह गाथा कही—

येन केनचि वण्णेन पितु दुक्ख उदब्बहे,
मातु भगिणिया चापि अपि पाणेहि अत्तनो ॥७६८॥

[मा, बहन और पिता का दु ख जैसे भी हो दूर करना चाहिये। अपने प्राण दे कर भी ॥७६८॥]

राजा ने बोधिसत्व से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। बोधिसत्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसकी स्वीकृति जान उसके साथ उत्पन्न साठ हजार अमात्य बोले—"महाराज ! अब यह नहाने का समय हो गया है। धूल उतार फेंके।" बोधिसत्व ने उन्हे 'थोडा सब्र करो' कह पर्णशाला मे प्रवेश किया, ऋषि-वेष उतारा, सभाल कर रखा और फिर पर्णशाला से निकल पर्णशाला की तीन बार प्रदक्षिणा कर पाच अङ्गो से उसकी वन्दना की—"यहाँ रहकर मैंने साढे नौ महीने तक श्रमण-धर्म पालन किया है। (दान-) पारमिता की पूर्ति करने की कामना से दान देकर पृथ्वी को कपा दिया है।" नाई आदि ने उसकी हजामत बनाने आदि का कार्य किया। तब देव-राज के समान सभी अलकार पहने हुए विराजमान उसका राज्याभिषेक किया गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा रजोजल्ल पवाहयि,
रजोजल्ल पवाहेत्वा सच्चवण्णमधारयि ॥७६९॥

[तब वेस्सन्तर राजा ने धूल धो डाली। धूल साफ करके राजवेष धारण कर लिया ॥७६९॥]

तब उसका महान् ऐश्वर्य्य हुआ। जहाँ देखो तहाँ पृथ्वी कापती थी। वाराङ्गनाओ ने मगल-घोषणा की। तमाम बाजे बजे। महासमुद्र की कोख मे बादल की गर्जना के समान आवाज हुई। हस्ति-रतन को अलकृत कर ले चले। वह खड्ग-रतन

बाघ कर हाथी-रतन पर सवार हुआ। उसी समय साथ उत्पन्न साठ हजार अलकृत अमात्य घेर कर खडे हो गये। माद्री देवी को भी स्नान करा कर, अलकृत कर उसका अभिषेक किया। उसके सिर पर अभिषेक-जल गिराते हुए 'वेस्सन्तरो त पालेतु' आदि मङ्गल-वचन कहे गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सीस नहातो सुचिवत्थो सब्बाभरण भूसितो,
पच्चय नागमारुय्ह खग्ग बन्धि परन्तप ॥७७०॥
ततो सट्ठि सहस्सानि युद्धिनो चारुदस्सना,
सहजाता परिकरिंसु नन्दयन्ता रथेसभ ॥७७१॥
ततो मद्दिम्पि नहापेसु सिविकञ्ञा समागता,
वेस्सन्तरो त पालेतु जाली कण्हाजिनाचुभो,
अथोपि त महाराजा सञ्जयो अभिरक्खतु ॥७७२॥

[सिर से स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहन, शत्रुओ को अनुतप्त करने वाला राजा खड्ग बाघ कर अपने जन्म के दिन ही पैदा हुए नाग पर चढा ॥७७०॥ तब साथ उत्पन्न, चारु-दर्शन, साठ हजार योधाओ ने राजा को प्रसन्न करते हुए घेर लिया ॥७७१॥ तब सिवि-कन्याओ ने आकर माद्री को भी स्नान करवाया और आशीर्वचन कहे—"जाली तथा कृष्णार्जिना दोनो और वेस्सन्तर तेरी रक्षा करें। और महाराज सञ्जय भी तेरी रक्षा करे ॥७७२॥]

इदञ्च पच्चयं लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दिय आचरिंसु रमणीये गिरिब्बजे ॥७७३॥
इदञ्च पच्चय लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दि वित्ता सुमना पुत्ते सगम्म लक्खणा ॥७७४॥
इदञ्च पच्चय लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दि वित्ता पतीता सह पुत्तेहि लक्खणा ॥७७५॥

[भिक्षुओ, इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और अपने (वनवास के) पहले कष्टो की याद कर रमणीय गिरि ब्रज मे वेस्सन्तर तथा माद्री ने आनन्द मनाया। इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और अपने (वनवास के) पहले कष्टो की याद कर, पुत्रो से मिलकर प्रसन्न-वदन माद्री और भी प्रसन्न हुई। इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और प्रीति-युक्त माद्री ने आनन्द मनाया ॥७७३-७७५॥]

इस प्रकार हर्षित हो पुत्रो से बोली—

एकभत्ता पुरे आसि निच्च थण्डिलसायिनी,
इति मेत वत आसि तुम्ह कामाहि पुत्तका ॥७७६॥
तं मे वत समिद्धज्ज तुम्हे सगम्म पुत्तका,
मातुजम्पि त पालेतु पितुजम्पि च पुत्तका ॥७७७॥
अथोपित महाराज सञ्जयो अभिरक्खतु,
यं किञ्चत्थि कत पुञ्ञ मय्ह चेव पितुच्च ते,
सब्बेन तेन कुसलेन अजरो त्व अमरो भव ॥७७८॥

[हे बच्चो ! तुम्हारी कामना से मेरा यह व्रत था—एक बार भोजन करना और भूमि पर सोना ॥७७६॥ हे बच्चो ! तुम्हे प्र.प्त कर आज मेरा वह व्रत पूरा हो गया। माता तथा पिता दोनो द्वारा अर्जित पुण्य तुम्हारी रक्षा करे ॥७७७॥ महाराज सञ्जय भी तुम्हारी रक्षा करे। मैंने और तेरे पिता ने जितना भी पुण्य अर्जित किया है, उस सारे कुशल-कर्म के प्रताप से तुम अजर-अमर होओ ॥७७८॥]

फुसती देवी ने भी 'अब से मेरी पुत्र-वधु इन वस्त्रो को पहने और इन आभूषणो को धारण करें' कह सन्दूक भर भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

कप्पासिकञ्च कोसेय्य खोमकोदुम्बरानि च,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दि असोभथ ॥७७९॥
ततो खोमञ्च कायूर अगद मणिमेखल,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८०॥
ततो खोमञ्च कायूर गीवेय्य रतनामय,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८१॥
उन्नत मुखफुल्लञ्च नाना रत्ते च माणिये,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८२॥
उग्गत्थन गिंगमक मेखल पटिपादुक,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८३॥
सुत्तञ्च सुत्तवज्जञ्च उपनिज्झाय सेय्यसि,
असोभथ राजपुत्ती देवकञ्जाव नन्दने ॥७८४॥

सीस नहाता सुचिवत्थः सब्बाभरणभूसिता,
असोभथ राजपुत्ती तावतिंसा व अच्छरा ॥७८५॥
कदलीव वातच्छु पिता जाता चित्त लतावने,
दन्तावरण सम्पन्ना राजपुत्ती असोभथ ॥७८६॥
सकुणी मानुसिनीच जाता चित्तपत्ता पति,
निग्रोधपक्क बिम्बोट्ठी राजपुत्ती असोभथ ॥७८७॥

[कपास के वस्त्र, कोसेय्य-वस्त्र, खोमक तथा उदुम्बर—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७७९॥ और स्वर्ण-निर्मित ग्रीवाभरण, अङ्गद तथा मणि-मेखला—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८०॥ फिर स्वर्ण-निर्मित (दूसरा) ग्रीवाभरण तथा रतन निर्मित ग्रीवा-भरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८१॥ उन्नत-आभरण, माथे का आभरण तथा नाना प्रकार के मणिमय आभरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८२॥ उग्गत्थन (आभरण) गिङ्गमक (आभरण), मेखला तथा पादाभरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८३॥ सूत वाले तथा बिना सूत के आभरण धारण करके रहती थी। राजपुत्री नन्दन-वन मे देवकन्याओ के समान सुशोभित थी ॥७८४॥ सिर से नहाई हुई, साफ वस्त्र पहने राजपुत्री त्र्योत्रिंश भवन की अप्सराओ के समान सुशोभित होती थी ॥७८५॥ चित्र लतावन मे उत्पन्न, वायु-स्पर्शित स्वर्ण कदली की तरह और (बिम्बफल सदृश) होठो से युक्त राजपुत्री सुशोभित होती थी ॥७८६॥ जैसे मनुष्य शरीर मे उत्पन्न हुई शकुनी सुन्दर परो से आकाश मे जाती हुई सुशोभित होती है, उसी प्रकार पके न्यग्रोध के समान होठो वाली राजपुत्री सुशोभित होती थी ॥७८७॥]

तस्सा च नागमानेसु नातिवद्ध व कुञ्जर,
सत्तिक्खम सरक्खम ईसावन्त उरूळहव ॥७८८॥
सा मद्दी नागमारुहि नातिवद्ध व कुञ्जर,
सत्तिक्खम सरक्खमं ईसावन्त उरूळहव ॥७८९॥

[उस माद्री के लिये शक्ति और बाणो को सहने मे समर्थ रथ की धुरि सदृश द तो वाला प्रौढ, बडा हाथी लाया गया ॥७८८॥ वह माद्री शक्ति और बाणो के

सहने में समर्थ रथ की धुरि सदृश दान्तो वाले, प्रौढ, बडे हाथी पर चढी ।।७८९।।]

वे दोनो बडे ठाट-बाट मे छावनी पर पहुचे। बारह अक्षोहिणी सेना के साथ सञ्जय राजा महीना भर पर्वत-क्रीडा वन-क्रीडा करता रहा। बोधिसत्व के तेज से इतने बडे जगल मे किसी जगली जानवर वा पक्षी ने किसी को कष्ट नही दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सब्बम्हि त अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
वेस्सन्तरस्स तेजेन नाञ्ञमञ्ञमहेठयु ।।७९०।।
सब्बम्हि त अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ दिजा अहू,
वेस्सन्तरस्स तेजेन नाञ्ञमञ्ञमहेठयु ।।७९१।।
सब्बम्हि त अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
एकज्झ सन्निपतिसु वेस्सन्तरे पयातम्हि,
सिविनं रट्ठवड्ढने ।।७९२।।
सब्बम्हि दिजा अहू,
एकज्झ पयातम्हि
सिविन रट्ठवड्ढने ।।७९३।।
सब्बम्हि त अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
नास्सु मञ्जूनि कूजिंसु वेस्सन्तरो पयातम्हि,
सिवीन रट्ठवड्ढने ।।७९४।।
सब्बम्हि विजा अहू,
नास्सु मञ्जूनि कूजिसु वेस्सन्तरे पयातम्हि,
सिवीन रट्ठवड्ढने ।।७९५।।

[उस सारे जगल मे जितने जगली पशु थे, वेस्सन्तर के तेज से किसी ने परस्पर हिंसा नही की ।।७९०।। उस सारे , जितने पक्षी थे, वेस्सन्तर के की ।।७९१।। उस सारे जगल में जितने जगली पशु थे, सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के चले जाने पर सभी एक जगह इकट्ठे हुए ।।७९२।। उस सारे जगल मे जितने पक्षी थे, सिवियो इकट्ठे हुए ।।७९३।। उस सारे जगल में जितने जगली

पशु थे, सिवियो के राष्ट्र वर्धन वेस्सन्तर के चले जाने पर, उनमे से कोई भी मधुर स्वर से नही बोला ॥७९४॥ उस पक्षी थे बोला ॥७९५॥]

सञ्जय नरेश महीना भर वन-क्रीडा मे लगा रहा। तब उसने सेनापति को बुलाकर पूछा—"तात ! हम चिरकाल से जगल मे रह रहे हैं। क्या तूने मेरे पुत्र का गमन-मार्ग अलकृत कर लिया ?" उसका उत्तर था—"हाँ ! देव ! अब यह चलने का समय है।" उसने वेस्सन्तर को सूचित कराया और सेना ले चल दिया। वक गिरि से जेतुत्तर नगर तक साठ योजन अलकृत मार्ग पर बोधिसत्व बडे ठाट-बाट से चल पडा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

पटियत्तो राजमग्गो विचित्तो पुप्फसन्थतो,
वसो वेस्सन्तरो यत्थ यावताच जेतुत्तरा ॥७९६॥
ततो सट्ठिसहस्सानि युधिनो चारुदस्सना,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तो पयातम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥७९७॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीन रट्ठवड्ढने ॥७९८॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीन रट्ठवड्ढने ॥७९९॥
समन्ता जानपदा नेगमा च समागता,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवोन रट्ठवड्ढने ॥८००॥
करोटिया चम्मधरा खग्गहत्था सुवम्मिनो,
पुरतो पटिपज्जिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥८०१॥

[जहाँ वेस्सन्तर रहता था, वहाँ से जेतुत्तर नगर तक राजमार्ग अलकृत था, सजा हुआ था और फूल बिखरे थे ॥७९६॥ तब सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के

जाने पर साठ हजार, चार-दर्शन योद्धाओ से चारो ओर से आकर घिर गये ।।७६७।। सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य त था ब्राह्मण सभी आकर घिर गये ।।७६८।। सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर हाथी-सवार, सैनिक, रथी और पैदल सभी आकर घिर गये ।।७६६।। सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर आये हुए जनपद वासी तथा निगम वासी सभी चारो ओर से घिर आये ।।७००।। सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर किरीटधारी (?) चर्मधारी, खड्गधारी तथा कवचधारी योधा आगे आगे चले ।।८०१।।]

साठ योजन मार्ग दो महीने मे तै करके राजा जेतुत्तर नगर पहुचा। अलकृत नगर में प्रवेश कर वह प्रासाद पर चढा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ते पाविसु पुर रम्म बहुपाकारतोरण,
उपेत अन्नपाणेहि नच्चगीतेहि चूभय ।।८०२।।
वित्ता जानपदा आसु नेगमा च समागता,
अनुप्पत्ते कुमारम्हि सिवीन रट्ठवड्ढने ।।८०३।।
चेलुक्खेपो अवत्तित्थ आगते धनदायके,
नन्दिप्पवेसि नगरे बन्धनमोक्खो अघोसथ ।।८०४।।

[वे बहुत प्राकारो तथा तोरणो वाले नगर में प्रविष्ट हुए जो अम्ल-पान तथा नृत्य-गीत से युक्त था ।।८०२।। सिवियो के राष्ट्रवर्धन कुमार के आगमन पर जनपद के लोग तथा आये हुए निगम-वासी प्रसन्न हुए ।।८०३।। धन के दाता बोधिसत्व के आगमन पर वस्त्र उछाले गये। नगर मे वेस्सन्तर महाराज की आज्ञा प्रचलित हुई और (कैदियो की) मुक्ति की घोषणा की गई ।।८०४।।]

जिस दिन उसने नगर मे प्रवेश किया उसी दिन ब्राह्म-मुहूर्त के समय बोधिसत्व सोचने लगा—"रात बीतने पर मेरे आने की बात सुन याचक लोग आयेंगे। उनको मैं क्या दूगा ?" उस समय शक्र का आसन गर्म हुआ। उसे विचार करने पर जब यह कारण ज्ञात हुआ तो उसने राजभवन के पश्चिम और पूर्व की ओर सात रत्नो की ऐसी घोर वर्षा की कि कमर तक ढेर लग गया। सारे नगर में घुटनो तक वर्षा हुई। अगले दिन बोधिसत्व ने 'उन उन घरो के पश्चिम-पूर्व में बरसा हुआ धन

उन्ही का हो' घोषणा करा शेष धन अपने घर मे भण्डारो मे सग्रह करवा दान स्थापित किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

जातरूपमय वस्स देवो पावस्सि तावदे,
वेस्सन्तरे पविट्ठम्हि सिवीन रट्ठवड्ढने ॥८०५॥
ततो वेस्सन्तरो राजा दान दत्वान खत्तियो
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो सग्ग उपपज्जथ ॥८०६॥

[जिस समय सिवियो के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर नगर मे प्रवेश किया उसी समय देव ने सोने की वर्षा बरसाई ॥८०५॥ तब वह बुद्धिमान् क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा दान दे, शरीर छूटने पर स्वर्गलोक मे पैदा हुआ ॥८०६॥]

नगर काण्ड समाप्त

शास्ता ने इस हजार गाथाओ वाली महावेस्सन्तर धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पूजक देवदत्त था। अमित्र-तापना चिञ्चा माणविका थी। चेतपुत्र छन्न था। अच्चुत तपस्वी सारिपुत्र था। शक्र अनुरुद्ध था। सञ्जय न`न्द्र सुद्वोदन महाराजा। फुसती देवी महामाया थी। माद्री देवी राहुलमाता थी। जाली कुमार राहुल था। कृष्णाजिना उत्पल वर्णा। शेष पीरषद् बुद्ध-परिषद थी। वेस्सन्तर महाराज तो मै ही था।

महानिपात वर्णन समाप्त

जातकर्थकथा समाप्त